BHARTI

1962

JAN-OCT

G. K. C.
HARIDWAR LIB.

COMPILED

RT-23

Stock Verification-2024

भारती

[भवन की पत्रिका]

जनवरी १९६२

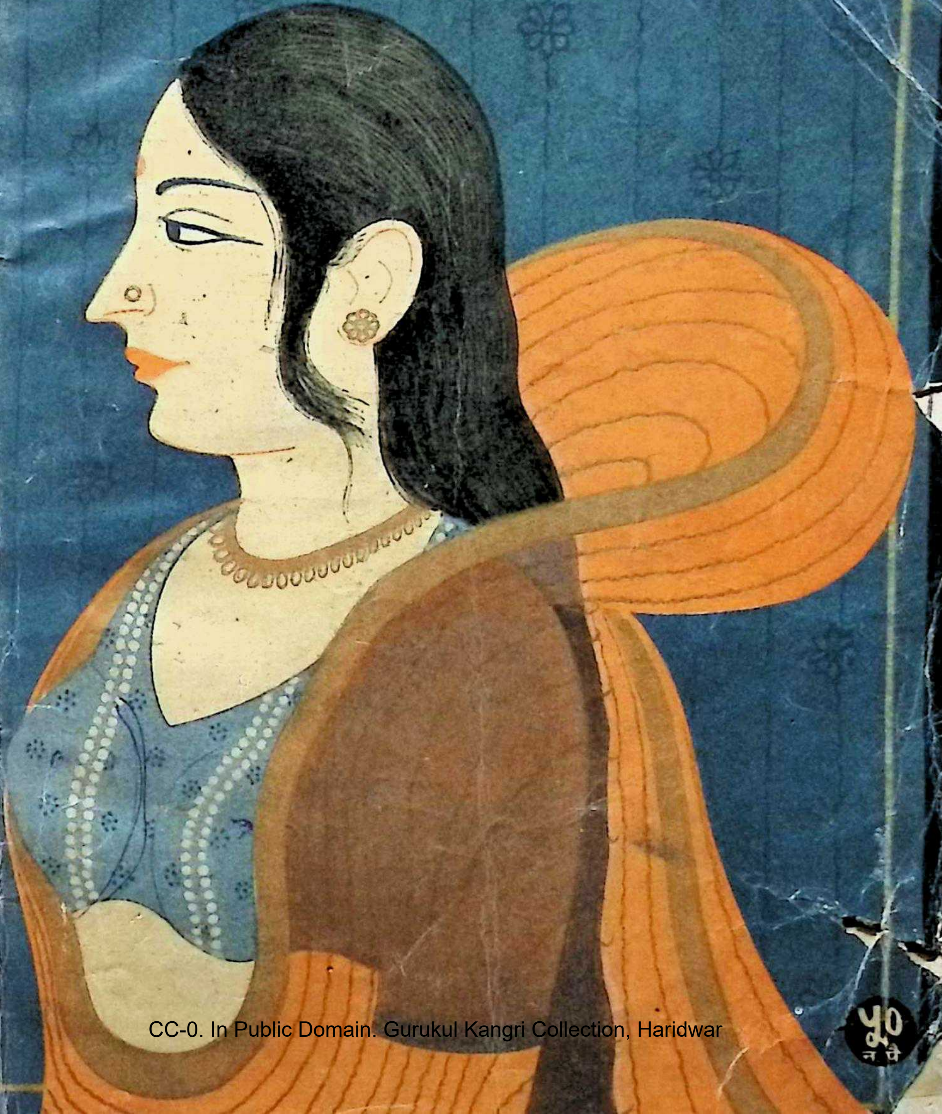

५०
न पै

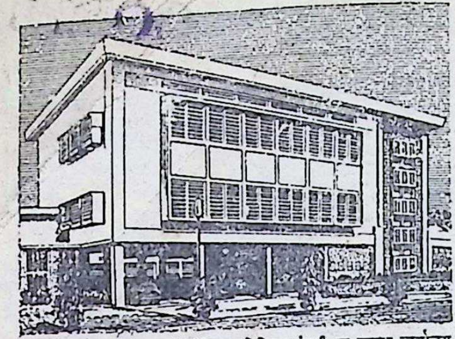

एसीसी और शंकर ब्रांड सीमेंट देश की प्रगति के लिए सुदृढ़ नींव की स्थापना में सहायक हैं

मद्रास में इंग्लिश इलेक्ट्रिक कंपनी का प्रबन्ध कार्यालय

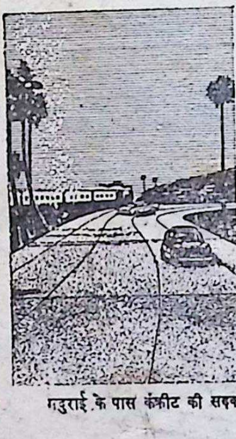

मदुराई के पास कंक्रीट की सड़क

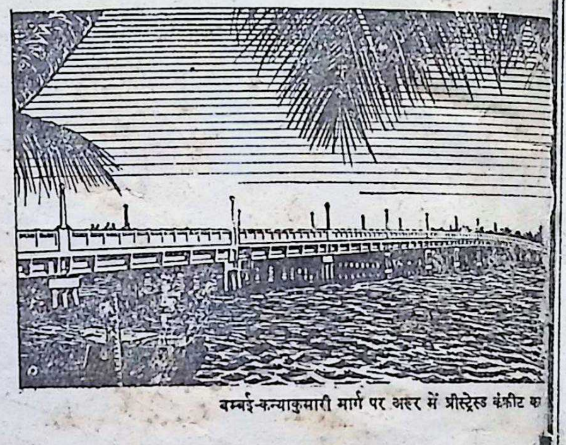

बम्बई-कन्याकुमारी मार्ग पर अरूर में प्रीस्ट्रेस्ड कंक्रीट का

आज भारत अपने उज्ज्वल भविष्य, अपनी सुख-समृद्धि के निर्माण में जुटा हुआ है। चारों ओर देश की म आकांक्षाओं के अनुरूप ही विशाल निर्माण-कार्य चल रहा है। बढ़ते हुए नगर के बीचोंबीच...छोटे-से गाँव आसपास... विशाल पर्वत की छाती पर... समुद्र के आँचल पर... जहाँ देखिए वहाँ सीमेंट कंक्रीट की बड़ी-बड़ी इ लम्बी-चौड़ी सड़कें, बड़े-बड़े पुल, ऊँचे-ऊँचे बाँध आदि बनते जा रहे हैं। यह नया दृश्य दिखाता है कि प्रगति देश के लिए सीमेंट क्या-क्या कर सकता है। और भारत को दिनोंदिन अधिकाधिक मात्रा में उच्च कोटि का स प्रदान कर उसकी प्रगति के लिए सुदृढ़ नींव की स्थापना करने में एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड तथा इं सीमेंट्स लिमिटेड योगदान दे रही हैं।

दि सीमेंट मार्केटिंग कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटे
दि एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड
दि इंडिया सीमेंट्स लिमिटेड

113533

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

रजिस्टर्ड

बालों की रूसी तथा बालों को गिरने से रोकनेवाला सर्वोत्तम बाल शक्तिवर्धक तेल। विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य सामग्रियों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया हुआ यह तेल मस्तिष्क को ही ठंडा नहीं रखता, अपितु शरीर-संस्थान को भी सुधारता है। इसका सेवन करने से प्रगाढ़ निद्रा आती है। साथ ही यह शरीर-मालिश के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद है। सब ऋतुओं में सेवन योग्य।

मूल्य ४·५० रु. बड़ी शीशी तथा २·२५ रु. छोटी शीशी। सर्वत्र प्राप्य।

उमेश योग दर्शन

(प्रथम भाग)

चार भाषाओं में—हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती तथा मराठी

लेखक— योगिराज उमेशचन्द्र जी

१०८ वास्तविक आसन चित्रों से सुसज्जित पाचनशक्ति को सुधारने तथा श्वास क्रिया के साथ शरीर-संस्थानों पर प्रकाश डालने वाली योग के वास्तविक अर्थ की अत्युत्तम, अद्वितीय, सरस एवं पठनीय पुस्तक। इसमें योग चिकित्सा, क्रोमोपैथी तथा मानस चिकित्सा का भी विद्वतापूर्ण विवेचन है। यह प्रत्येक गृह, अस्पताल तथा पुस्तकालय के लिये संग्रहणीय है।

मूल्य १५ रु. डाक व्यय २ रु. अतिरिक्त।

UMESH YOGA D

योगासनचित्रपट

विभिन्न योगासनों के साथ 'आर्ट ग्लेज्ड' कागज पर छपा हुआ योगासन चित्र भी प्राप्य है। मूल्य २ रु. (डाक व्यय सहित जो मनीआर्डर द्वारा भेजा जा सकता है।)

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

दादर, बम्बई १४

113533

सोच समझ कर
और
बहुत ज़रूरत के
वक्त ही
खर्च
कीजिये

आजकल हम पूंजीगत सामान के निर्माण में ज
आम इस्तेमाल की ज्यादातर चीजों की अभी क
अतः जब तक ये खूब मात्रा में बनने और
दाम पर मिलने लगें, तब तक क्या आप इनके
काम नहीं चला सकते? या खरीदारी कुछ सम
नहीं कर सकते?

अपनी बचत को लाभकारी उपयोग में ल
राष्ट्रीय विकास में सहायता कीजिये और
भविष्य समृद्ध बनाइये।

राष्ट्रीय बचत संगठ

पुस्तकालय १२ १/६२

वर्ष ६ : अंक ६]

भारती

[जनवरी १९६२

संस्थापक :
कन्हैयालाल मुन्शी

प्रबन्ध सम्पादक :
जयन्तकृष्ण ह. दवे

प्रकाशक :
सु. रामकृष्णन्

सम्पादक :
वीरेन्द्रकुमार जैन

सहयोगी :
श्रीराम मिश्र
ओंकारनाथ शर्मा
रामलाल शुक्ल

कार्यालय :
भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड,
बम्बई ७

एक अंक : ५० न.पै.
वार्षिक : ५)

अथर्ववेद : नमन् ५
कन्हैयालाल मुन्शी : कुलपति का पत्र ६
सम्पादकीय : वे अखण्ड कर्म-पुरुष सनातन जीवन का वरण करें १२
श्री अरविन्द : यह जगत मिथ्या-माया नहीं है १६
महात्मा गान्धी : मेरे सपनों का भारत २०
अनिलकुमार : स्वीकारो, प्राणों का सौरभ टीका २२
डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : युगनद्ध की पुनर्व्याख्या २४
प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय : काम के माध्यम से पूर्णकाम शिवत्व की साधना २८
वीरेन्द्रकुमार जैन : विज्ञान युग के वाद फिर से धर्म-युग आने को है ३०
परेश : हतवर्चा ३२
राजेन्द्र किशोर : फिर वकुल दीखे ३३
रामचन्द्र शुक्ल : परमाणु युग में धर्म, साहित्य और कला ३४
डॉ. रवीन्द्र भ्रमर : दो कविताएँ ३९
डॉ. एफ. डब्लू. हेलमान : आज का जर्मन-साहित्य ४०
कुमारी श्रीराधा : परामर्श ४८
विजेन्द्र : फागुनी शाम मनःस्थितियों में ४९
महेन्द्रनाथ सिंह : काशी की चित्र-चर्चित दीवारें ५०
विन्दा करन्दीकर, इन्दिरा : दो मराठी कविताएँ ५५
वेद 'राही' : अजनबी हाथ ५६

आगामी अंक के प्रमुख आकर्षण

- आगामी अति-मानसिक विश्व की अधिष्ठात्री, श्री माँ :
- जहाँ वेदान्त और विज्ञान मिलते हैं : स्वामी विवेकानन्द
- साम्यवादी देशों में धर्म की विजय : डॉ. अमृतेश्वर
- धर्म और कर्म : जैनेन्द्रकुमार
- शक्ति का स्वरूप और उसकी साधना : विनायकराव करमलकर
- मरणोत्तर जीवन : डा. कैलाशनाथ मिश्र
- आगामी युग का तीर्थंकर अवतार लेने को है : वीरेन्द्रकुमार जैन
- विद्रोह की नग्न-ज्वाला का महान कवि, आॅर्थर रिम्बो : गोपालचन्द्र जोशी
- वेदों में पुरुष सत्ता : बाबूराम अवस्थी
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का जन्म : राधेश्याम यादव
- तीन सशक्त कहानियाँ और कई कविताएँ

रजनीकान्त मोदी : क्या धरती पर अमर जीवन सम्भव है ? ६०
अवधेश कुमार : अस्ति और वृत्त ६४
रामनरेश पाठक : चतुर्वर्ग सिद्धि ६५
दीनानाथ शास्त्री : पुनर्जन्म : मनोविज्ञान की प्रयोगशाला में ६६
राजेन्द्र सक्सेना : सागर-तट की शाम ७१
अवधविहारी गुप्त : प्राचीन भारत में कोरियाई यात्री ७२
दीनदयाल ओझा : अमर सोहागिन मीराबाई का सिंगार ✓ ७८
हरीश करुण : प्रिया का पत्र ८१
देवव्रत देव : निवेदन ८१
एस. लाल : कहानी का प्रश्न ८२
डॉ. कैलाशनाथ मिश्र : परकाय प्रवेश विद्या ✓ ८८
कन्हैयालाल मुन्शी : कृष्णावतार ९४
कन्हैयालाल मुन्शी : तपस्विनी १०४
राजेन्द्र जगोत्ता : इंग्लेण्ड में बढ़ता हुआ वेदान्त का प्रभाव ११८

इस अंक के सज्जाकार :
सर्वश्री रामचंद्र शुक्ल, महेन्द्रनाथ सिंह, दिनेश शाह, कमलाक्ष शेनाय, कुमार ज्योतीन्द्र जैन

आवरण-चित्र : मुक्त श्री
चित्रकार : कमलाक्ष शनाय

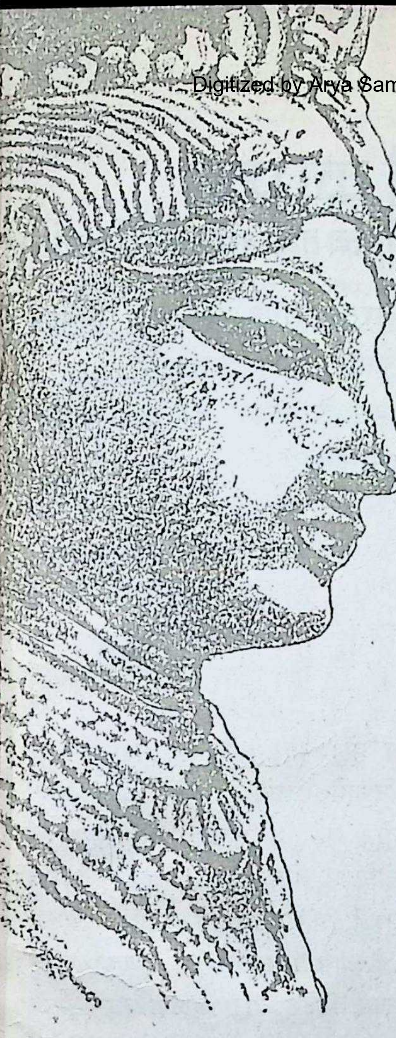

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

प्रत्येक दिशा से शुभ एवं सुन्दर विचार हमें प्राप्त हों।

भारती

[भवन की पत्रिका]

●

आगामी विश्व विकास का सूचक :

जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

●

नमन्

ओ३म् यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणेनमः ।।
ओ३म् यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणेनमः ।।

जो अतीत, भविष्य तथा वर्तमान का अधिष्ठाता है और जो केवल सुखस्वरूप है, उस महान् ब्रह्म को हमारा नमन् है। भूमि जिसके पैर हैं, अन्तरिक्ष जिसका उदर है, द्युलोक जिसका मस्तक है, उस महान् ब्रह्म को हमारा नमन् है।

— अथर्ववेद

भगवान विष्णु
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

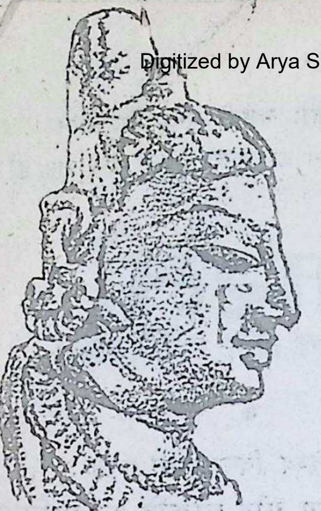

कुलपति का पत्र

जीवन साहित्य तथा संस्कृति से संबंधित

- भारत में लोक-शासन का भविष्य
- हिंसारहित तानाशाही
- नेहरू के बाद का भारत : कुछ संभावनाएँ।

भगवती सरस्वती
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड, बंबई,
१ जनवरी, १९६२

मेरे युवा मित्र,

पिछले दस वर्षों में हमारे संविधान द्वारा संस्थापित संसदीय जनतंत्र-प्रणाली का रूप ही परिवर्तित हो गया है। इसके कई कारण पाये जा सकते हैं, जैसे हमारी आन्तरिक दुर्बलता, संसार की बदलती हुई परिस्थितियाँ और हमारे राजनीतिक क्षेत्र में एक ऐसे प्रचंड, शक्तिमान नक्षत्र का उदय होना, जिसकी एक केन्द्रीय मंत्री ने, बहुत ठीक ही, एक ऐसे विशाल वट-वृक्ष से तुलना की है, जो अपने तले कइयों को आश्रय तो देता है, लेकिन पनपने किसी को नहीं देता।

जनतंत्रीय शासन-प्रणाली वहीं सफल हो सकती है, जहाँ जनता का एक भाग जागृत हो, तथा राजनीति में सक्रिय रुचि रखता हो; साथ ही वह उस प्रणाली को टिकाये रखने के लिए संकल्पशील भी हो। जहाँ यह वर्ग किसी देश के राजनीतिक जीवन में प्रचुर प्रभाव रखता है, वहाँ संसदीय जनतंत्र सफल हुआ है, जैसे स्विट्ज़रलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन और ब्रिटिश कामनवेल्थ के उसके कुछ साथी देशों में इसके प्रतिरूप पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों—फ्रांस, जरमनी इटली और स्पेन—में जहाँ यह वर्ग प्रभावशाली नहीं रहा; जनतंत्रीय शासन-प्रणाली कभी तो बहुत सफल रही, किन्तु अधिकांशतः बुरी तरह असफल। पूर्वी यूरोप, लैटिन, अमेरिका और ब्रिटिश कामनवेल्थ के बाहर के अफ्रीकी देशों में इसी जागृत,

राजनीतिक वर्ग के अभाव में जनतंत्रीय प्रयोग असफल रहे।

हम लोग ब्रिटिश कामनवेल्थ का एक अंग काफी दिनों तक रहे हैं। १९४७ के पूर्व संसदीय जनतंत्र प्रणाली का अनुभव हमें था। हमारी विधान सभा ने स्वेच्छा से इसी प्रणाली को स्वीकार किया। सभी को यह आशा थी कि हमारे देश में वह सफल रहेगी; असफल होने के कोई कारण थे भी नहीं। यदि वह अब भी सफल नहीं हो पायी है तो, उसकी वजह यही है कि जनता का जागरूक, राजनीतिक वर्ग क्षीण हो रहा है और शीघ्र ही यदि कोई क्रान्तिकारी घटना नहीं हुई तो, कुछ ही वर्षों में वह विलुप्त हो जायगा। इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति का कारण खोजना बहुत कठिन नहीं है।

संसदीय जनतंत्र-प्रणाली की सफलता के लिए यह आवश्यक है, कि जनता का एक शक्तिशाली अंग उसके समर्थन को कटिबद्ध हो। यह समर्थन सक्रिय हो सकता है, अथवा निषेधात्मक भी; उस अवस्था में वह नाराज़गी की सूरत अख्तियार कर सकता है और जरूरत पड़ने पर सरकार पर अवैधानिक दबाव भी डाल सकता है।

गांधीजी ने सत्याग्रह का आधार सत्य और अहिंसा से अनुप्रेरित सामूहिक अनुशासन माना था। एक नैतिक आधार और प्रजा के समर्थन के बिना उन्होंने किसी भी ध्येय के लिए सामूहिक आन्दोलन नहीं किया। सम्पूर्ण अहिंसा के न रहते वे किसी आन्दोलन की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। लेकिन पिछले दस वर्षों में देश में जो तथा-कथित 'सत्याग्रह' हुए हैं, वे न तो सत्य से प्रेरित थे और न अहिंसा द्वारा अनुमोदित। उनका ध्येय सामूहिक दबाव से किसी गिरोह का कुछ लाभ मात्र था। उनमें अनुशासन की बजाय विशृंखलता की भावना ही अधिक रही है।

ऐसी अवस्था में न्याय और व्यवस्था का टिकना समाज में मुश्किल हो जाता है और सरकार को पुलिस की मदद लेनी ही पड़ती है। और, जिन्हें शांति प्रिय है, उन्हें सरकार की इस कार्रवाई को आवश्यक भी मानना पड़ता है। पंजाब में अभी कुछ समय पहले कैरों सरकार ने जो दमन की नीति अपनायी थी, उसका समर्थन वहाँ के अधिकांश लोगों ने इसीलिए किया, कि आन्दोलन बड़ा उग्र और खतरनाक रूप ले रहा था।

दूसरा खतरा, भाषावाद, जो शायद दोनों में अधिक भयंकर है, राष्ट्रीय विघटन के बीज बो रहा है। इसका लक्ष्य शुरू में तो प्रान्तीय भाषाओं का विकास था। गांधीजी के समय में भी यह हानिकारक तत्त्व था, किन्तु गांधीवादी परम्परा के पीछे हटने

और एक अनैतिक आर्थिक 'शक्तिवाद' के प्रादुर्भाव के साथ भाषावाद एक शक्तिशाली दलगत भावना बन गया है, जो राष्ट्र-विरोधी है और देश को अनेक टुकड़ों में विभाजित करने पर तुला है।

दूसरा विघटनात्मक तत्त्व देश की अर्थ-व्यवस्था में अपार धनराशि का बाहर से लाया जाना है, जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इस राशि का कुछ अंश तो व्यवस्था की त्रुटियों से नष्ट हो जाता है, कुछ ग़ैर-क़ानूनी तरीकों से लोगों की जेबें भरने में चला जाता है; शेष ऐसी योजनाओं में अधिकाधिक खर्च होता है, जिनसे देश को तत्काल लाभ नहीं पहुँचता। मूल्यों की वृद्धि के साथ-साथ नैतिक स्तर गिरता जाता है, चीजें महँगी होती रहती हैं, लोग ग़लत तरीक़े अपनाते हैं; कालाबाजार, भ्रष्टता और पक्षपात का बोलबाला हो जाता है। इससे सरकारी हस्तक्षेप जीवन के अधिकाधिक अंगों में होने लगता है। समाजवाद के नामपर सरकारी नियन्त्रण की जो स्तुति-प्रशंसा होती है, उससे यह हस्तक्षेप अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है।

इन सब का कुल नतीजा यह निकला कि, जो लोग गांधीजी की तरह सादा जीवन और महत् विचार को माननेवाले हैं और जो स्वतंत्रता को स्वयं उसीके लिए प्यार करते हैं, वे राष्ट्र के मानस पर अपना प्रभाव दिन-दिन खोते चले जा रहे हैं।

पूर्वकाल में भारत की एकता उसकी सांस्कृतिक एकरूपता के आधार पर टिकी थी। संस्कृत भाषा और धर्मशास्त्रों पर आधारित आचार-विचार के माध्यम से एक प्रभावशाली अल्पसंख्यक वर्ग, इस एकता की भावना को सुदृढ़ रखता था। लेकिन आज धर्मशास्त्रों में कोई उतना विश्वास नहीं रखता। वर्णाश्रम धर्म, जिसे कभी प्रत्येक बुद्धिशाली व्यक्ति एकता का आधार-स्तम्भ समझता था, आज के युग की नवीन परिस्थितियों में बेकार-सा पड़ा गया है।

दूसरा कारण देश के राजनीतिक जीवन में परदेशों के प्रति वफादार, एक सुगठित और भली प्रकार अनुशासित साम्यवादी दल का प्रकट होना है। ऊपर से वह कुछ भी कहे, लेकिन दरअसल वह एक षड़यंत्रकारी गिरोह है, जो स्वतंत्र संस्थाओं की सहायता का लाभ उठाकर जनतंत्र की जड़ें काटने में लगा है। स्वतंत्रता विरोधी ऐसे दल के रहते हुए सरकार को भी उसके मुक़ाबले के लिए कुछ कदम उठाने पड़ते हैं। सिवा इसके और कोई उपाय भी नहीं या तो जनतंत्र की रक्षा के लिए वह ठोस तरीक़े अपनाये, अथवा उसे विलुप्त हो जाने दे।

तीसरे, सत्ता प्राप्ति के समय कांग्रेस की जो ऐतिहासिक स्थिति थी, वह आज नहीं है। जब अंग्रेज़ों ने उसे सत्ता प्रदान की, तो वह एक सुव्यवस्थित दल था। आज़ादी हासिल करने का फ़क्र उसे था। सरदार वल्लभभाई पटेल जैसा राजनीतिज्ञ भी उसके पास था, जो संगठन की अद्भुत क्षमता रखते थे। उसका दूसरा नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू जनता का लाडला था। संविधान को रूप देनेवाली विधान सभा में अधिकांशतः स्वतंत्रता के वे सेनानी थे, जिनकी स्वतंत्र जनतंत्र व्यवस्था और संसदीय संस्थाओं में अटूट श्रद्धा थी।

१९५० में कांग्रेस के हाथ में जो सत्ता आयी, वह अंग्रेजों को भी कभी प्राप्त नहीं थी। भारत उस समय अपूर्व रूप से सुगठित था। किन्तु शक्ति हाथ में आनेपर स्वस्थ जनतंत्र के लिए अति आवश्यक एक संसदीय दल की भूमिका अदा करने के बजाय कांग्रेस एकस्तम्भीय शक्ति का यंत्र बन गया।

जबतक सरदार पटेल जीवित थे, तबतक कांग्रेस अपनी आन्तरिक कार्यप्रणाली में एक प्रकार का संसदीय जनतंत्र ही था। स्वयं उसके अन्तर्गत दो दल थे। किन्तु सरदार की मृत्यु के पश्चात् पंडित नेहरू ही सर्वोच्च नेता के रूपमें प्रतिष्ठित हुए। यद्यपि जनतंत्र में वे विश्वास रखते हैं और स्वयं को लोकतांत्रिक कहते भी हैं, फिर भी स्वभाव से वे तानाशाह हैं और उनकी दृष्टि बहुत-कुछ मार्क्सवाद से प्रभावित है।

इसीलिए धीरे-धीरे एक ही स्तम्भ पर आधारित कांग्रेस पार्टी एक ही व्यक्ति पर शक्ति, नीति-निर्धारण, कार्यक्रम और चुनाव में सफलता के लिए निर्भर रहने लगी। और, उसके महत्त्वाकांक्षी सदस्य अन्ततः अपने राजनीतिक भविष्य के लिए भी उन्हींका मुँह ताकने लगे। परिणामस्वरूप, पार्लियामेंट में भी एक ही सम्पूर्ण सत्ताधारी व्यक्ति द्वारा निर्देशित कांग्रेस का ही बोलबाला रहा। अन्य संसदीय दल संख्या में नगण्य होने और अपनी चुनौतियों को सत्ता प्राप्त कर, कभी अमल में लाने की क्षमता न रखने के कारण, आलोचकों के दल से अधिक कुछ नहीं हैं।

पार्लियामेंट आज केवल कांग्रेस की नीतियों की ही अभिव्यक्ति करती है, जो वास्तव में कांग्रेस के अगुआ अथवा सरकार के प्रमुख के नाते एक ही व्यक्ति की नीति और कार्यक्रम है। इससे स्वतंत्र संस्थानों के लिए अति आवश्यक संसदीय भावना का लोप हो गया है और हमारी सरकार एक ऐसे कृपालु राजा की तरह ही अधिक बन गयी है, जो जनतंत्र प्रणाली को किसी तरह निभा रहा है, न कि उसके

बल पर जीवित है।

एक साम्यवादी देश की ही तरह हमारे यहाँ एक ही दल का शासन है और उस दलपर प्रभुत्व भी एक ही नेता का है, जिसने अपने दल में अबतक जनतंत्रीय नेतृत्व का विकास नहीं किया और न देश में ही उसे पनपने दिया। हाल ही में उप-नेता के पद को जिस प्रकार लांछित किया गया, वह इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। जनतंत्रीय चुनाव को इसीलिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता कि 'पितृ-भावना' की कहीं अवज्ञा न हो।

फिर भी, एक साम्यवादी देश में एक दलीय जो शासन होता है उसमें और हमारे यहाँ के शासन में एक प्रमुख अन्तर है। वह यह कि कांग्रेस सरकार हिंसा और क्रूरता को पसन्द नहीं करती और कुछ विशेष स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप नहीं करती, क्योंकि पंडित नेहरू उन्हें दबाने की कभी सोच ही नहीं सकते। फिर भी यह संसदीय जनतंत्र तो नहीं है!

स्वतंत्र चुनाव, जो संसदीय जनतंत्र प्रणाली का प्रथम आधार है, देश की आवाज़ का शायद ही प्रतिनिधित्व करता है। कांग्रेस के नामपर वही एक नेता केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों पर नियन्त्रण रखता है। और प्रशासन के ज़रिये काँग्रेस देश की आर्थिक व्यवस्था पर सम्पूर्ण नियन्त्रण रखती है। इसीलिए चुनाव-अभियान के वास्ते वह इतना धन संग्रह कर सकती है, जितना कि देश की अन्य सभी राजनीतिक पार्टियाँ मिलकर भी नहीं। शक्ति, सहायता और धन उसे बनाये रखने के लिए सदा ही उपलब्ध हैं।

फिर भी इतना तो औचित्य के साथ कहना ही पड़ेगा कि, यह सब किसी पूर्व योजना का फल नहीं हैं; न पंडित नेहरू को ही इसके लिए दोषी ठहराया जा सकता है। सच तो यह है कि इतिहास ही प्रथमतः इसके लिए उत्तरदायी है, जिसने एक विशिष्ट प्रतिभावान व्यक्ति को अपने समकालीनों से बहुत ऊंचा उठा दिया; दूसरे, हमारे यहाँ राजनीति में रुचि रखनेवाले लोगों के विचार प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति अधकचरे हैं; तीसरे, जनता में आपसी मतभेद और फूट इतनी है कि उन्हें एकता में बाँध रखने के लिए कुछ दवाव डालना ही पड़ता है; चौथे, हमारे राजनीतिक नेताओं में भय-मुक्त स्वतंत्रता की भावना की कमी है, और पाँचवे, देश में जनतंत्र के भविष्य के बारे में लोग लापरवाह हैं।

यही कारण है कि हमारे देश में संसदीय जनतंत्र-प्रणाली विनाश के बहुत क़रीब है। वास्तव में हमारे यहाँ हिंसा रहित किंतु भ्रष्टाचार सहित तानाशाही है। हिंसा के स्थान पर यह बड़े पैमाने पर

संरक्षण और भ्रष्टाचार को पनपने देती है।

संसदीय जनतंत्र-प्रणाली इन्हीं दो परिस्थितियों में हमारे देश में पुनर्जीवित हो सकती है जब कि,

कोई विरोधी दल, जो स्वतंत्र जनतंत्र-प्रणाली का कट्टर पक्षपाती हो, अगले चुनाव में सफल हो जाय और राजनीतिक जीवन में एक संतुलन स्थापित करे, अथवा पंडित नेहरू अवस्था की परिपक्वता के साथ अपने ही दल में जनतंत्रीय नेतृत्व का विकास करें और अपने से पृथक्-दूसरी पार्टियों का भी वे आदर करें। अबतक तो वे ऐसा नहीं कर पाये हैं।

यदि ऐसी कुछ घटनाएँ नहीं घटीं तो, संसदीय जनतंत्र-प्रणाली का विनाश अवश्यम्भावी है और जब पंडित नेहरू राजनीतिक मंचपर नहीं रहेंगे तो, एक ही स्तम्भ पर आधारित कांग्रेस पार्टी छिन्न-भिन्न हो जायेगी। उसके बाद भयंकर राजनीतिक अव्यवस्था का होना प्रायः निश्चित है।

जहाँ तक अनुमान लगाया जा सकता है, तब इन दो में से किसी एक परिस्थिति का देश को सामना करना पड़ेगा:

(अ) कांग्रेस और उसके सहयोगी तत्वों के भग्नावशेष से ही किसी एक ऐसे सशक्त दल का प्रादुर्भाव हो, जिसका नेतृत्व सुगठित और वास्तविक रूप से जनतांत्रिक हो और जो कुछ समय तक जनतंत्रात्मक तानाशाही रखने के बाद, जब स्थिति सामान्य हो जाय तब, फिर से संसदीय जनतंत्र प्रणाली का प्रयोग करे, क्योंकि उसके सभी नेता प्रायः समान दर्जे के होंगे।

(ब) यदि ऐसा नहीं हुआ तो, जैसा कि साम्यवादी नेता ज़ेड़. ए. अहमद ने कहा, कांग्रेस में साम्यवाद के जो सम्भव समर्थक हैं, वे षड़यंत्र रचकर जनतंत्र प्रणाली का ख़ात्मा कर देंगे, तथा आन्तरिक मामलों में सारी सत्ता खुद हथियाकर बाहरी तौरपर कम्युनिस्ट ब्लाक से प्रभावित रहेंगे।

हाँ, राष्ट्रीय सेना यदि भारत की स्वतंत्रता और आज़ादी की रक्षा करने के लिए देश की बागड़ोर अपने हाथ में ले ले और सैनिक तानाशाही के माध्यम से बिगड़ी स्थिति को सम्हाले, और यदि उसके नेता अच्छे राजनीतिज्ञ हुए, तो वह अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद के खतरे के बावजूद संसदीय जनतंत्र शासन-प्रणाली के उपयुक्त स्थिति लानेका प्रयास कर सकती है।

आपका

कन्हैयालाल मुन्शी

सम्पादकीय

वे अखण्ड कर्म-पुरुष सनातन जीवन का वरण करें

गत ३० दिसम्बर १९६१ को, भारतीय विद्या भवन के कुलपति, और नवीन भारत के एक शिखरस्थ संस्कार-स्वामी और साहित्य-स्वामी श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने अपने जीवन के पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश किया है। कर्म के जिस अखंड अव्याहत प्रवाह में श्री मुन्शी ने अपना समूचा जीवन जिया है, और आज भी जीते चले जा रहे हैं, उसे काल-गणना के नख-क्षत से आँका या गिना नहीं जा सकता। इस एक वर्ष में उनकी जीवन-धारा को बहुत करीब से देखने का अवसर हमें मिला है, और हमने देखा है, कि उनका जीवन जैसे एक अविराम गतिशील नदी की तरह, सहज, निर्द्वन्द्व, सुनिर्दिष्ट भाव से किसी निश्चित लक्ष्य के महासमुद्र की ओर बहा चला जारहा है। यह महासमुद्र श्री भगवान् की अमृता भूमा का ही हो सकता है, इसी से उनकी जीवन-धारा में आज भी कहीं कोई वार्धक्य, थकान, मॉनोटनी या मरणोन्मुखता का शैथिल्य या गिराव नहीं दिखायी पड़ता। अविश्रांत कर्म की एक वह्नि-शिखा, अनाहत ऊर्ध्वगामी तेज से अहर्निश प्राज्वल्यमान है।

वैज्ञानिक और यांत्रिक सभ्यता की पराकाष्ठा पर पहुँचकर, भौतिक ऐश्वर्य को उसके सारे पहलुओं में भोगकर, मनुष्य आज जैसे जीवन से ऊब गया है। सर्जना और विचार के सारे ही क्षेत्रों में, जीवन की विफलता, पराजय, अर्थहीनता, भीषणता, ग्लानि, अवसाद और ऊब (मॉनोटनी) के गीत गाये जा रहे हैं। जीवन का कोई अर्थ या प्रयोजन मनुष्य को नहीं दिखायी पड़ रहा है। हर क्षण, हर कुछ को भोग या जी लेने के बाद, आधुनिक मनुष्य के मन में प्रश्न उठता है–अब क्या हो?– What next? आज के विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, कविता की हर कृति के शेष में यही प्रश्न-चिह्न लगा है। और इस प्रश्न के उत्तर में हमारे सामने फैला पड़ा है–निश्चेतन का एक अफाट विराट शून्य–जिसमें अस्तित्व धारण करना आज के मनुष्य के लिए दूभर हो रहा है।

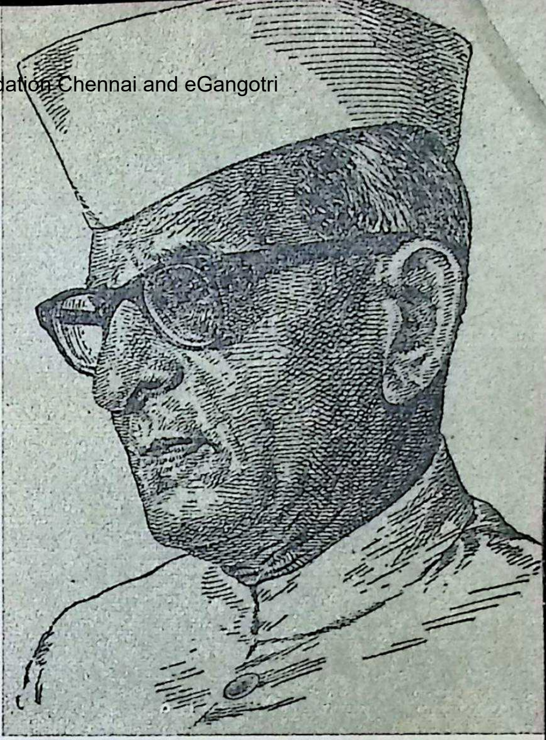

आज की समस्त साहित्यिक कृतियों में जो एकाकीपन की समस्या है, वह भी जड़त्व और प्रमाद के इसी शून्य और जीवन की अर्थ-प्रयोजनहीनता के कारण है।

चूंकि आज के, मनुष्य ने हमारी अन्तश्चेतना की अनन्तिनी भूमा के प्राकट्य-स्वरूप आत्मा और भगवान् को अस्वीकार करके, अपने सीमित-क्षुद्र अहं को उनकी जगह स्थापित किया है, इसी कारण हमारी समूची सत्ता आज इस महामरण के शून्य में अनाथ होकर भटकने को छोड़ दी गयी है। लेकिन इस अतिभौतिकवाद और अहंवाद की चरम ट्रैजडी के चलते भी, पृथ्वी के पूर्वीय और पश्चिमी, दोनों ही गोलार्द्धों में ऐसे विरल जाज्वल्य व्यक्तित्व विद्यमान हैं, जो भगवान् की अनन्त ऋताश्री भूमा के भीतर जीवन धारण कर रहे हैं, आत्मा की अमरता और अनन्तता के आनन्द से उनका चैतन्य चिरउन्मेषित और प्रज्वलन्त है। विज्ञान, साहित्य, दर्शन, चिन्तन, निर्माण और कर्म के सारे ही क्षेत्रों में, इस अराजकता और प्रलय की बेला में, ऐसे ही ज्योति-द्रष्टा, कर्म-योगी, चिन्ता-योगी, और साहित्य-संस्कार-स्वामी व्यक्तित्व, सनातन जीवन के ध्रुव को धारण किये, आगामी कल की नवीन विकासमान मानवता के लिए, नयी जीवन-भूमिका का द्वार मुक्त कररहे हैं।

पूर्वी गोलार्द्ध में हमारे युग में श्री अरविन्द उसी नूतन जीवन-भूमा के क्रांतद्रष्टा संदेशवाहक थे। अखंड कर्मयोगी श्री कन्हैयालाल मुन्शी का व्यक्तित्व भी भगवती भूमा के उसी अव्याहत अनन्त कर्म, आनन्द और नित-नव-सम्भव सर्जन-निर्माण का प्रतीक है। अपने सर्वतोमुखी कार्य-क्षेत्रों के सभी सीमन्तों पर पल-पल तत्पर और सन्नद्ध भाव से कार्य करते हुए भी श्री मुन्शी की साहित्य-सृजना की तेजवेदी आज भी जागृत है। धारावाहिक रूप से भवन की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रहा उनका उपन्यास 'कृष्णावतार' इस बात का प्रमाण है। अनायास ही ऐसा लग आता है, कि 'कृष्णावतार' में

श्री मुन्शी, मानों कल्पान्तकाल की इस महातमस बेला के सम्मुख, युग-युग सम्भव नित-नूतन आविर्भावित भगवान् की सनातन पुरुषोत्तम लीला को, आधुनिक युग की सारी-चरम समस्याओं और अंतिम प्रश्नों का एक युगानुरूप प्रकाश देने के लिए ही, एक नूतन भावभूमि पर रच रहे हैं। मानों कि किसी आगामी पुरुषोत्तम के अवतरण की दूरागत पग-ध्वनि से प्रेरित होकर ही यह रचना हो रही है।

नूतन भारत के ऐसे अखंड कर्म-पुरुष और सनातन अमर जीवन के द्रष्टा और सृष्टा श्री कन्हैयालाल मुन्शी की इस पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर, हम अनन्त जीवनेश्वर श्री भगवान् से प्रार्थना करते हैं, कि उनके कर्म और सृजन की यह धारा सनातन काल में अक्षुण्ण प्रवाहित होती रहे : उत्तरोत्तर महत्तर जीवन-भूमिकाएँ धारण करते हुए, वे आगामी काल की अतिमानव जाति के अवतरण में एक अग्रगामी इकाई बनकर प्रकट हों।

★

शाश्वत यौवन

यौवन जीवन की किसी विशेष अवस्था का नाम नहीं, वह तो मन की एक अवस्था है। वह आपकी इच्छा–शक्ति का परीक्षण, कल्पना की शक्ति, भावनाओं का उद्वेग, साहस का परिचय तथा भय और आरामपसंदगी पर विजय का सूचक है।

केवल कुछ वर्ष जीने से ही मनुष्य बूढ़ा नहीं होता है। अपने आदर्शों का परित्याग ही बुढ़ापा लाता है। उम्र बढ़ने से चमड़ी में झुर्रियाँ पड़ती हैं, लेकिन उत्साह खो देने से तो आत्मा में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। चिंता, आशंका, आत्म–विश्वास की कमी, भय तथा निराशा.. ...ये ही वे वस्तुएं हैं जो दीर्घ काल का काम कम ही समय में कर देती हैं, जिनसे ऊंचा उठा हुआ सिर नीचे झुक जाता है और उत्साह धूलि–धूसरित हो जाता है।

आप उतने ही युवा हैं जितना आपका विश्वास, उतने ही बूढ़े हैं जितना आपका संशय, उतने ही जवान हैं जितना आपका आत्म-विश्वास, उतने ही वृद्ध हैं जितना आपका भय। अपनी आशा के अनुरूप ही यौवन का अनुभव आप कर सकते हैं और अपने नैराश्य के अनुकूल ही जरावस्था का। जब तक धरती, मनुष्य और असीम से आप सौन्दर्य, प्रसन्नता, साहस, भव्यता तथा शक्ति का संदेश प्राप्त करते हैं, तब तक आप तरुण हैं।

——भारतीय विद्या भवन से प्रसारित

★

बीसवीं शती भारत के आद्य तीर्थंकर
स्वामी विवेकानन्द की जन्म-जयन्ती
१२ जनवरी १९६२ के अवसर पर.

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था

"...मेरा मानना है कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप हमारी अपनी जनता की अवज्ञा है, और वही हमारे पतन का सबसे बड़ा कारण है। जबतक हिन्दुस्तान की जनता को भली प्रकार से भोजन-वसन, शिक्षा, संरक्षण नहीं प्राप्त होता, तबतक बड़ी-से-बड़ी राजनीतियाँ भी निरुपयोगी और विफल होंगी। देश के शिक्षालयों का सारा ख़र्च जनता के सिर है, इसी जनता के बल हमारे देव-मन्दिरों का निर्माण होता है, और इसके बदले में उस जनता को हम देते हैं, ठोकरें! यह विशाल जनता लगभग हमारे उच्च वर्गों की दास बनी हुई है। यदि हम भारत को पुनर्जन्म देना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले इस जनता को उबारना होगा।........."

श्री अरविन्द

यह जगत मिथ्या-माया नहीं है

[मायावाद और अतिमानस ज्ञान पर मास्टर के दो पत्र]

* * *

परम्परागत भारतीय योग और अध्यातम पर आधुनिक विज्ञान-युगीन मानव का यह आरोप है कि, वह हमारे इस प्यारे जीवन-जगत को मिथ्या-माया कह कर, उसका तिरस्कार करता है, उससे पलायन करने का उपदेश देता है। हमारे युग के अतिमानस सूर्य-योगी श्री अरविंद ने, चैतन्य के सर्वोपरि अति-मानस स्तर का आविष्कार करके– उपरोक्त आरोप का निराकरण किया है, और किसी लोकातीत सिद्धालय में नहीं, पर हमारे इस प्यारे लोकालय में ही– सच्चिदानंद भगवान के पूर्ण ज्ञान, प्रकाश, आनन्द, शक्ति और सौन्दर्य को जीवन की चंचल लीला में उतार लाने का परम आश्वासनदायक वचन दिया है।

* * *

जैसा कि तुम्हारे गुरु ने भी बताया है शंकर का ज्ञान सत्य का केवल एक ही पक्ष प्रस्तुत करता है; शुद्ध सत्ता की निश्चल शांति के भीतर से आध्यात्मिक मानस जो परमतम का साक्षात्कार करता है, उसीका ज्ञान वह है। इस एकांतिक मार्ग से चले थे, इसी कारण विश्व-जगत के मूल श्रोत को शंकर भ्रांति या माया की सृष्टि के अतिरिक्त और किसी रूप में न तो स्वीकार ही कर सके और न उसकी अन्यथा व्याख्या ही कर सके। जब तक कोई परमतम सत्ता के गतिशील (परिणमनशील) और स्थिर, दोनोंही पक्षों का साक्षात्कार नहीं कर लेता, तब तक वह पदार्थों के सच्चे उद्‌गम और क्रियाशील ब्रह्म की सम सत्ता का अनुभव नहीं कर सकता। तब चिरंतन सत्ता की शक्ति मात्र मिथ्या या माया की शक्ति बन जाती है और जगत अबूझ हो उठता है, वह विराट पागलपन के एक रहस्य के रूप में अथवा चिरंतन सत्ता के एक अंतहीन प्रलाप के रूप में हमारे सामने आता है। इस बात के समर्थन में कोई कितना ही वचन और

निरूपण का तर्क क्यों न प्रस्तुत करे, विश्व-जगत को देखने का यह तरीका कोई भी बोध हमें नहीं देता, केवल अबोध्य वस्तु का एक मानसिक फॉर्मूला वह हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जब हम परमतम सत्ता की, उसके सत् और चिद्-शक्ति वाले दोनों ही द्विविध और अभिन्न पक्षों की ओर से देखेंगे, तभी हमारे आंतरिक अनुभव में पदार्थों का संपूर्ण सत्य प्रत्यक्ष हो सकता है। इस दूसरे पक्ष का विकास शाक्त तांत्रिकों ने किया था। वेदांतिक और तांत्रिक सत्यों को संयुक्त करके ही हम पूर्णज्ञान की उपलब्धि कर सकते हैं।

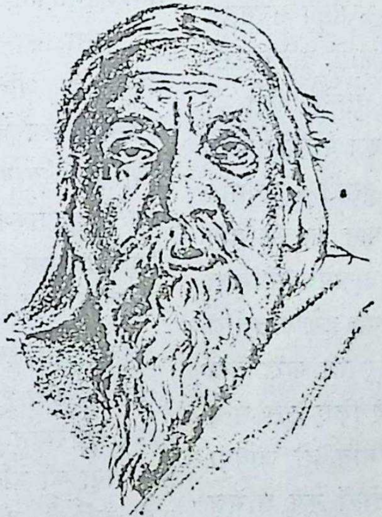

दार्शनिक दृष्टि से तुम्हारे गुरु की शिक्षा भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है, और साफ है कि यह शंकर के सिद्धांत से अधिक पूर्णतर, सत्य और विशालतर ज्ञान की दृष्टि है। गीता में पहले ही से यह बात प्रकट है कि पुरुषोत्तम और पराशक्ति (आद्या शक्ति) ही जीव का रूप धारण करके विश्व-सृष्टि का संचालन कर रहे हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि पुरुषोत्तम और पराशक्ति दोनों ही एक शाश्वत और अभिन्न सत्ता हैं; पराशक्ति विश्व को प्रकट करती है, साथ ही वह जगत में ईश्वर के रूप में भगवान को भी प्रगट करती है, और आप स्वयम् उन भगवान के समकक्ष ईश्वरी शक्ति के रूप में अवतरित होती है। यों भी कहा जा सकता है कि परमात्मा की परम चैतन्य शक्ति ही ईश्वर-ईश्वरी, आत्मा - आत्मशक्ति, पुरुष-प्रकृति और जीव-जगत के रूप में प्रकट या प्रस्तुत होती है। मानस-बुद्धि द्वारा निरूपित सत्य का पूर्ण स्वरूप यही हो सकता है। अतिमानस में तो ये प्रश्न उठते ही नहीं है: यह तो मानस-बुद्धि का ही काम है कि वह भगवान के विविध पक्षों में विरोध उत्पन्न करके समस्या को जन्म देती है। यथार्थ में ये विभिन्न पक्ष परस्पर विरोधी नहीं हैं, वे एक और अभिन्न हैं।

अति मानसिक ज्ञान अभी उपलब्ध नहीं हुआ है, क्योंकि अभी तो अतिमानस ही उपलब्ध नहीं हुआ है, पर अन्तर्बोधित

(Intuitive) अध्यात्म चेतना में उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है। स्पष्ट ही तुम्हारे गुरु ने अपने अनुभव में उसीका साक्षात्कार किया था और उद्धृत अंश में भी बुद्धि-मानसिक भाषा में उसीको व्यक्त किया था। यह सम्भव है कि परम एक में अपनी सत्ता के विसर्जन की अनुभूति आरम्भ करके हम अतिमानसिक ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकें, पर शर्त केवल इतनी ही है कि हम उसीको परमतम सत्य मानकर ही रुक न जायें, वल्कि उसी परम एक का चिरंतन चैतन्य-शक्ति की प्रतिनिधि परम माता के रूप में साक्षात्कार करने को अग्रसर हों। दूसरी ओर यदि हम परम माता की मार्फत अग्रसर होंगे तो वह हमें परम शांत एकमेव में मुक्त भी कर देगी, साथ ही वह हमें गतिशील परम एक का साक्षात्कार भी करा देगी और उस बिन्दु से हमारे लिए उस सत्य तक पहुँचना बहुत आसान हो जायगा जिसमें महासत्ता के ये दोनों रूप अभिन्न और तदाकार विराजमान हैं। साथ ही परमात्म सत्ता और उसके प्राकटच के बीच बुद्धि-मानस के द्वारा जो खाई उत्पन्न कर दी जाती है वह भी इस राह से चल कर पट जायेगी, और तव सत्य के भीतर ऐसी कोई विच्छिन्नता नहीं रह जायगी जो इस सारे जगत-व्यापार को हमारे लिए अबोध (अबूझ) बना देती है। यदि इसके प्रकाश में अपने गुरु द्वारा पाई हुई शिक्षा की जाँच करोगे तो पाओगे कि किसी कदर कम दार्शनिक भाषा में वही बात यहाँ भी कही गयी है।

२-१०-१९३८

[२]

...यदि शंकर की अविकार निर्विकल्प शुद्ध चेतना की निर्धारणा ही तुम्हें मान्य हो, तो तुम्हें इस योग का मार्ग नहीं चुनना होगा। क्योंकि इस योग में शुद्ध चेतना और शुद्ध सत्ता का साक्षात्कार मात्र प्रथम सोपान है, अंतिम लक्ष्य वह नहीं है। किंतु अविकल्प चेतना में आंतरिक सृजन-प्रेरणा के लिए कोई स्थान नहीं होता है—समस्त व्यापार-क्रिया और सृजना उसके लिए आवश्यक रूप से एक वहिरंग और विजातीय वस्तु हो उठती है।

मेरा योग इस अपर्याप्त भूमिका पर आधारित नहीं है कि आत्मसत्ता (आत्मा नहीं) चिरन्तन रूप से मुक्त है। इस प्रस्थापना की गति अपने आप से परे और कहीं नहीं है, और एक आरम्भिक बिन्दु के रूप में ही यदि इसका उपयोग किया जाये, तब भी वह हमें इसी निष्कर्ष पर ला छोड़ेगा कि क्रिया और सर्जना की कोई सार्थकता और मूल्य नहीं है। प्रश्न केवल सर्जना के अर्थ का ही नहीं है, प्रश्न यह है कि क्या कोई ऐसी परम सत्ता है जो मात्र शुद्ध, अविकल्प चेतना और सत्ता ही नहीं है, वल्कि जो सृष्टि की गतिमान शक्ति का उदगम और अवलम्बन भी है,

और क्या विराट सत्ता में उसकी कोई सार्थकता या मूल्य भी है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय शब्दों और विचारों के सहारे चलने वाले दार्शनिक तर्क से नहीं हो सकता है, बल्कि वह आध्यात्मिक अनुभव ही उसकी थाह पा सकता है जो मानस के परे जाकर आध्यात्मिक सत्ताओं के प्रदेश में प्रवेश करता है।

प्रत्येक मानस अपने ही तर्क से तुष्ट हो जाता है, पर आध्यात्मिक प्रयोजनों की दृष्टि से उस तुष्टि का कोई मूल्य नहीं है। वह तो केवल इस बात का द्योतक है कि आध्यात्मिक अनुभव के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति कितनी दूर तक और किस राह जाने को तैयार है। यदि तुम्हारा तर्क तुम्हें शंकर द्वारा निरूपित परमात्मस्वरूप की ओर ले जाता है तो यह इसी बात को प्रकट करता है कि तुम वेदांत-अद्वैत (मायावाद) के मार्ग पर ही अग्रसर होना चाहते हो। यह योग विराट सत्ता के मूल्य को स्वीकार करता है और उसे एक पारमार्थिक सत्ता मानता है; इसका उद्देश्य एक उच्चतर सत्य-चेतना या दिव्य अतिमानसिक चेतना के भीतर प्रवेश करना है, जिसमें क्रिया और सर्जना, अज्ञान और अपूर्णता की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि सत्य, प्रकाश और दिव्य आनन्द की अभिव्यक्ति है। पर उसके लिए इस मर्त्य मानस, जीवन और शरीर को उस उच्चतर चेतना के प्रति समर्पित कर देना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इसका कारण यह है कि मर्त्य मानव के लिए अपने ही प्रयत्न द्वारा मानस को पार कर के अतिमानस चेतना में प्रवेश करना बहुत कठिन काम है, क्योंकि उस चेतना की गतिमत्ता मानसिक नहीं होती है, वह तो एक सर्वथा भिन्न प्रकार की शक्ति में से आती है। जो ऐसे परिवर्तन की पुकार को स्वीकार कर सकते हैं, उन्हींको इस योग में प्रवेश करना चाहिये।

२–१०–१९३८

★

अपने अन्दर विचार और शब्द से अलग हो जाओ, अपने अन्दर निश्चल हो जाओ, ऊपर ज्योति की ओर ताको और बाहर विशाल विश्व–चेतना की ओर ताको, जो तुम्हारे चारों ओर विद्यमान है। उज्ज्वलता और विशालता के साथ अधिकाधिक एक होते जाओ। तब ऊपर से सत्य तुम्हारे सामने उदित होगा और तुम्हारे चारों ओर से तुम्हारे अन्दर प्रवाहित होगा। ● ●

निरंतर आन्तरिक विकास होते रहने पर ही मनुष्य जीवन में सतत नवीनता और अक्षय रस पा सकता है। दूसरा कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं है।

— श्री अरविन्द

★

महात्मा गांधी

मेरे सपनों का भारत

[राष्ट-पिता बापू की पुण्यतिथि
३० जनवरी के अवसर पर]

भारत भोग-भूमि नहीं, बल्कि उसके विपरीत सच्चे अर्थ में कर्म-भूमि है। मुझे ऐसा लगता है कि भारत का उद्देश्य दूसरे देशों से भिन्न है। भारत में ऐसी क्षमता है कि वह विश्व का धार्मिक नेतृत्व कर सका। इस देश ने आत्म-शुद्धि के लिए जिस मार्ग को स्वेच्छा-पूर्वक अपनाया है, उसकी मिसाल दुनिया में कहीं नहीं। भारत को लोहे के अस्त्रों की आवश्यकता नहीं, वह देवोपम अस्त्रों के सहारे लड़ा है, आज भी वह ऐसा कर सकता है। जहाँ अन्य देश पशुवल के पुजारी रहे हैं, भारत सब को आत्मवल से जीत सकता है।

* * *

मैं एक ऐसे विधान के निमित्त चेष्टा करूँगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी व प्रभुता से मुक्त करेगा और ज़रूरत पड़ने पर उसे अपराध करने का अधिकार देगा। मैं एक ऐसे भारत के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहूँगा, जिसे गरीव से गरीब व्यक्ति भी अपना देश समझेगा—ऐसा देश, जिसके निर्माण में उसका हाथ रहा है और जहाँ उच्च और नीच वर्ग के आदमियों का श्रेणी-विभाजन नहीं होगा, तथा जहाँ पर सब जातियों के लोग पूरे मेल-जोल से रह सकेंगे।

* * *

यदि भारत तलवार के सिद्धांत को अपनाये तो, सम्भव है कि वह क्षणिक विजय प्राप्त करले, पर तव भारत वैसा नहीं रहेगा, जिस पर मुझे नाज़ है। मैं भारत को प्यार करता हूँ, क्योंकि जो कुछ आज मैं हूँ, वह उसीकी वदौलत हूँ। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि, उसे विश्व को संदेश देना है, उसे यूरोप का अन्धानुकरण नहीं करना है। जब भारत तलवार ग्रहण करेगा, वह मेरे लिए परीक्षा की घड़ी होगी। मैं आशा करता हूँ, उस समय मैं अयोग्य साबित नहीं होऊँगा।

113533

मेरे धर्म की कोई भौगोलिक सीमा नहीं है। यदि इसमें मेरा जीवित विश्वास है तो वह धर्म देश-प्रेम से भी ऊँचा होगा। अहिंसा-धर्म के द्वारा भारत की सेवा के लिए ही मेरा जीवन अर्पित है।

भारत जब दूसरे राष्ट्रों के शोषण की ओर अग्रसर होगा—और उद्योगीकरण की हालत में उसे यह करना ही पड़ेगा, तब वह दूसरे राष्ट्रों के लिए अभिशाप और संसार के लिए खतरा हो जायगा।

○ ○ ○

यह मैं खूब जानता हूँ, कि जब भारत अहिंसात्मक उपायों द्वारा अपने मकसद को हासिल करेगा तो, वह एक बड़ी सेना, वैसा ही नाविक बेड़ा और उससे भी मज़बूत हवाई सेना रखना नहीं चाहेगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के युद्ध में भारत की आत्म-चेतना यदि उस ऊँचाई को पहुँच सके, जिसकी आवश्यकता अहिंसक जीत के लिए पड़ती है तो, संसार के मूल्यांकन का रूप ही वदल जायेगा और युद्ध की सामग्री का अधिकांश व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगेगा।

चित्र : सुधीर रंजन खास्तगीर

○ ○ ○

अहिंसात्मक स्वराज्य की कुंजी आर्थिक समानता है। आर्थिक समानता के कार्यक्रम द्वारा पूंजी और श्रम के बीच सदियों का विरोध मिट जायगा। हमारा उद्देश्य देश के मुट्ठी भर धन-कबेरों को नीचे लाना तथा लाखों भूखे-नंगे लोगों को ऊपर उठाना है। जब तक धनिकों और करोड़ों क्षुधार्तों के बीच इतनी चौड़ी खाई बनी हुई है, तब तक अहिंसात्मक शासन बिल्कुल असम्भव है। स्वतंत्र भारत में जब कि सबको समान अधिकार रहेगा, नयी दिल्ली के भव्य-भवनों और गरीब मज़दूरों की झोपड़ियों का यह अंतर एक दिन भी नहीं चल सकता। अगर जनहित के लिए स्वेच्छापूर्वक उस वैभव और अधिकार का त्याग नहीं किया गया, तो निश्चय ही एक दिन भयंकर हिंसात्मक क्रांति होकर रहेगी।

*

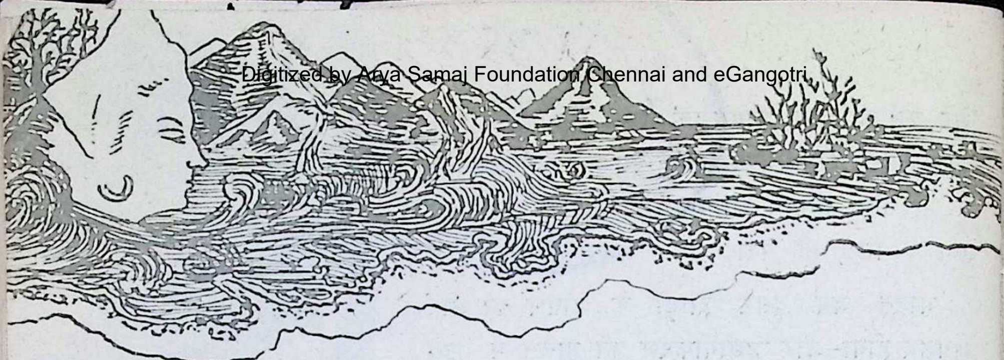

अनिल कुमार

प्रजा-तंत्र दिवस
२६ जनवरी के अवसर पर

●

स्वीकारो, प्राणों का सौरभ टीका

ओ जननी, ओ अन्नदा भूमि !
आकाश-छत्र सा वरद्-हस्त धारे सिर पर
ओ पितृ देश !
बलिदान-ईंट-सीमेंट रक्त—गारे से पुख़्ता बनी
नींव पर खड़े
सद्य-स्वाधीन नये गणतंत्र देश !
मेरे अपने पावन स्वदेश।

गंगा, रेवा, कृष्णा, कावेरी नदी-स्तनों
से धन्य हमारी कामधेनु।
जाने कब से पी रहे तुम्हारा
दूध सरीखा गंगाजल
हम कोटि-कोटि तेरे बेटे।
तेरी रक्षा में सतत खड़े...
ऊपर पर्वत, नीचे समुद्र,
पानी की संस्कृति में पनपे
हम मेघ-अश्रु से फूल, फले !
हम काल-मेघ की वर्षा से
कुछ रोज हुए झुलसे-झुलसे !
जल-थल से टूट पड़ी हरदम
आतंक टिड्डियों से कुतरे,
हम नुचे-नुचे।
सीमान्तर-व्यापी विपुल धर्म के कीचड़ में
उपजे हम अद्भुत श्वेत-कमल।
हम ज्ञानेश्वर। हम तुकाराम।
हम नरसी, चंडीदास, सूर।
हम नन्दनार, नानक, मीरा,
हम लाल-कमल पैने कबीर।
दृढ़ सत्यव्रती चांडाल बने हम हरिश्चन्द्र,
मेनका भोगने वालों के हाथों में
अपनी बागडोर।

हम सत्य-पक्ष के नेता बन कर
पद्म-चरण में आहत हैं।
हम गोली पर सीने को सूली दिये हुए
दृढ़ सत्य शांति की श्वेत ध्वजा बापू महान।
हम सबके सब जाह्नवी-पुत्र,
हम आपस में सब दूध-बन्धु।

मेरे विचार के प्राणों में
रे सब स्पन्दित हो रहे आज,
मेरी धड़कन में बजने वाले महासत्य
तथ्यों की आँखों में आ-आकर झाँक रहे
हे अभी-अभी स्वाधीन हुए गणतन्त्र देश।

मेरे अपने पावन स्वदेश,
चुपचाप परायी आँखों से तुम देख रहे
सत्ता के पग्गड़धारी धर्माचार्यों से
जो हुआ पराजित मेरे मन का ज्ञानेश्वर,
लिख रहा रात-दिन हल्के-फुल्के पाठ्यग्रंथ।
चैतन्य-स्रोत अमृत-अक्षर का केन्द्रस्थल
यह ज्ञानमल्ल निःशेष हुआ;
अब लीक पीटता है मेरा रूढ़ी-द्रोही।
आतंक बाघ पर बैठा बूढ़ा
एजप्रूफ वह चांगदेव,
खामखा अहं का रोब मार कर
चला गया;
अधबनी भीत पर आँगन की
ज्ञानेश्वर बैठे सपरिवार,
मुखमार्जन करते रहे चौंक कर आतंकित।
उन पग्गड़धारी पंडों की
तुम ढाल बने मेरे स्वदेश।
तुम चांगदेव के अहंकार की
पीठ ठोकते पितृदेश।
प्रत्येक हृदय में बैठा बागी ज्ञानेश्वर
जीवन-सुविधा से निर्वासित,
तुम सौतेली आँखों से उनको
देख रही हो मातृभूमि!

तुम देख रही हो जन्मभूमि...
गोदा तट पर
उस तपी रेत में प्यास-विकल–
बछड़े की पैनी जन-पुकार
अनसुनी किये,
जीवन सत्यों का गंगाजल
काँवर में लेकर भाग रहा
कायर प्राणी यह एकनाथ।
जल रहे मरुस्थल में प्राणों के रामेश्वर
लेकिन रूढ़ी एकनाथ को चिन्ता क्या?
वह तो
जीवन जाह्नवी भरे मंगल घट ले,
जंगल में पड़े हुए पत्थर पर
यों ही औंधे करता है,
तुम देती उसको पुण्य और आशीर्वाद
ओ जन्भूमि!

मेरे कबीर को धर्म, जाति, रूढ़ी के भीषण
महासमर में लथपथ देखो धीर देश।
मेरे पद, साखी और सबद की मणिमाला को
ताक रहीं चीलें विभेद की,
आँख गड़ाये घूर रहे हैं कई गृद्ध-पंडे।

[शेष पृष्ठ ९९ पर

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

युगनद्ध की पुनर्व्याख्या

प्राचीन भारतीय ज्ञान-राशि के अपने ढंग के निराले नवयुगीन व्याख्याता डॉ. उपाध्याय ने प्रस्तुत लेख में यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि बौद्ध आगमों में प्रतिपादित 'युगनद्धता' का सिद्धान्त, सृष्टि-प्रकृति और मानवों में सनातन विद्यमान परस्पर विरोधी वृत्तियों और द्वंद्वों का निराकरण करके, निखिल कल्याणकारी एकता और सामरस्य की स्थापना के लिए अत्यन्त वैज्ञानिक समाधान उपस्थित करता है।

आज सामाजिक और वैयक्तिक समस्याओं के समाधान के लिए 'सह-अस्तित्व', 'समझौता' आदि जैसे शब्द अधिक प्रचलित हो रहे हैं। प्रायः लोग 'एडजस्टमेंट' को सम्पूर्ण रोगों का उपचार मानते हैं। कतिपय उदाहरण लीजिए। यदि पत्नी मूर्खा है और पति विद्वान है और यदि इस असंगति के कारण विग्रह उत्पन्न होता है तो लोग कहेंगे, भाई, एडजस्ट करो। यदि पति कुरूप है, पत्नी सुरूपा, यदि पत्नी कुरूपा है और पति सुंदर, तो भी झगड़ा होनेपर लोग 'एडजस्टमेंट' या 'समझौता' के लिए कहेंगे। यदि शासक अप्रिय है और प्रजा असंतुष्ट, यदि विश्व के आधे भाग में साम्यवाद और आधे में जन-तंत्रवाद है, यदि परिवार के अंतर्गत सदस्यों के स्वभाव-भिन्नता के कारण उद्वेग है, यदि सभा-संस्थाओं में कुछ व्यक्ति अवांछनीय हैं, और यदि पड़ौस में कुछ लोग अशांतिकर हैं तो उक्त सभी स्थितियों में 'सहअस्तित्व' या 'समझौता' का उपदेश आपको पग-पग पर मिलेगा। किंतु गहराई से विचार करने पर क्या 'समझौतावाद' या 'सहअस्तित्ववाद' समस्या का समाधान कर सकता है? वस्तुतः समस्या के समाधान से भी कोई समाधान नहीं होता। समस्या का अभाव

'शांति' नहीं है, समस्या का अभाव 'सामंजस्य' नहीं है, क्योंकि यह तो 'अशांति' या 'कष्ट' का निषेध हुआ। प्राचीनों ने दुःख की परिभाषा की है कि, जहाँ सुख का अभाव हो, वहाँ दुःख है। किंतु शांति और सामंजस्य की परिभाषा यह नहीं की गयी कि जहाँ अशांति या उद्वेग का अभाव हो, वहाँ शांति या सामंजस्य हैं। क्योंकि सुख, शांति, सामंजस्य आदि 'भावात्मक' स्थितियाँ हैं और भावात्मक वस्तु किसी अन्य वस्तु का अभाव मात्र नहीं है, अपितु भावात्मक वस्तु के अस्तित्व का अर्थ है, किसी वस्तु का यथार्थ में विद्यमान रहना। यदि ऐसा न होता एवं शांति और सुख केवल अशांति और दुःख के अभाव मात्र होते, तब दुःख और सुख का अथवा अशांति और शांति का द्वंद्व क्यों माना जाता। उक्त दुःख सुखादि का द्वंद्व मानने का तात्पर्य यह है कि दुःख के समानान्तर सुख की सत्ता है, अशांति के साथ शांति की भी सत्ता है। नैयायिक मुक्ति को दुःख का अत्यन्ताभाव मानते थे, किंतु उनकी मुक्ति की कल्पना कभी प्रेरक नहीं बनी, अतः सुख और शांति आदि स्थितियाँ भावात्मक स्थितियाँ हैं औरउ नका अभावात्मक स्थितियों—दुःख, अशांति, क्रोध, ग्लानि आदि से संघर्ष प्रति-क्षण होता रहता है।

और इन परस्पर-विरोधी वृत्तियों के द्वंद्व से ही समाज, व्यक्तित्व, आदि का विकास होता है। पदार्थ या वृत्ति अपने अंतरस्थित संघर्ष के विना नवीन पदार्थ अथवा 'नवीन वृत्ति' के रूप में विकसित नहीं हो सकते। इसी प्रकार जब कोई 'नया विचार', 'नयी सूझ', 'अंतर्दृष्टि' आदि का अचानक जन्म होता है, तब हम समझते तो यह हैं कि नयी सूझ या नया विचार 'स्वतः प्रकाशित' है अथवा किसी 'दैवी-प्रेरणा' का परिणाम है, किंतु जिस प्रकार पदार्थ, अंतरस्थित दो परस्पर-विरोधी स्थितियों के संघर्ष से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार नये विचार, नयी कल्पना', 'नयी सूझ' आदि का भी जन्म होता है। $\frac{२}{३}$ हाइड्रोजन और $\frac{१}{३}$ आक्सीजन के मिलने पर पानी बन जाता है और पानी में हाइड्रोजन और आक्सीजन

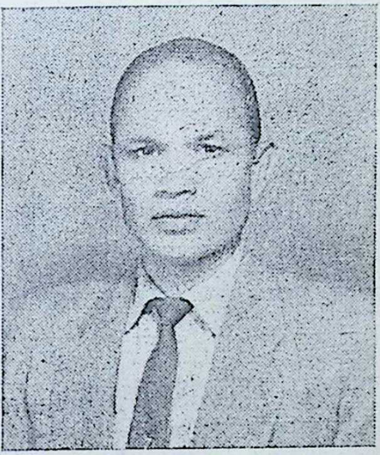

लेखक

का उक्त अनुपात दिखायी नहीं पड़ता अर्थात् 'पानी', हाइड्रोजन और आक्सीजन से सर्वथा 'नवीन' पदार्थ है, इसी प्रकार व्यक्ति के भीतर उसकी चेतना में होनेवाले 'संघर्ष' से 'नये विचार', 'नयी सूझ' आदि का जन्म होता रहता है।

हमारे प्राचीन विचारक जब कहते थे कि सृष्टि द्वंद्वमयी है, तब वह इसी उक्त 'अंतः संघर्ष' अथवा 'द्वंद्वात्मक पद्धति' की ओर संकेत करते थे। यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि वे 'पदार्थविद्या' (विज्ञान) और 'मानवीय मन' की एकता, उस वैज्ञानिक विधि और विस्तार से प्रमाणित नहीं कर सके, जिस प्रकार आज विज्ञान सिद्ध कर रहा है। फिर भी, जहाँ तक 'वैयक्तिक चेतना' का प्रश्न है, प्राचीन विचारक 'आंतरिक संघर्ष' को शांति और सुख में बदलने उपाय बताते हैं, किंतु वे उपाय 'समझौतावाद' या 'सहअस्तित्ववाद' पर आधारित नहीं हैं, वे अधिक पुष्ट भूमि पर आधारित हैं, कहना चाहिए, अधिक मनोवैज्ञानिक विधि अपना कर वे चले हैं। और चूँकि 'सामाजिक समस्याओं' का जन्म मनुष्य की वैयक्तिक-चेतना के कारण भी होता है, अतः प्राचीनों के बताये हुए उपचार सामाजिक समस्याओं के समाधान में पर्याप्त सहायता करते हैं।

इन उपचारों में एक उपाय बौद्ध दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित 'युगनद्धता' का सिद्धांत है। शैवागमों और शाक्तागमों में यही सिद्धांत 'शिवशक्ति-सामंजस्य'' अथवा समरसता के नाम से प्रसिद्ध है। पांचरात्र वैष्णव इसीको अपने ढंग से 'लक्ष्मी-विष्णु ऐक्य' कहते हैं। जिस प्रकार आज की किसी भी सामाजिक समस्या के समाधान के लिए, इतिहास और समाजशास्त्र की सहायता ली जाती है, 'सामाजिक समस्या' क्यों उत्पन्न हुई, किन परिस्थितियों में उत्पन्न हुई, प्रारम्भ में उसका रूप क्या था? आज उसका रूप क्या है? आदि प्रश्न 'इतिहास' या 'विकास' से सम्बन्धित है, उसी प्रकार प्राचीन प्रत्येक समस्या का समाधान, अपने-अपने 'सम्प्रदाय' द्वारा प्रतिपादित 'सृष्टिविज्ञान' (Cosmology) में ढूँढ़ते थे। उदाहरण के लिए बाह्य पदार्थ, भिन्न दिखायी पड़ता है, पदार्थों में कुछ पदार्थ प्रिय लगते हैं, कुछ अप्रिय हैं, कुछ पवित्र पदार्थ हैं, कुछ अपवित्र हैं और इन सबसे 'चेतना' पूर्णतः भिन्न दिखायी पड़ती है। पदार्थ जड़ हैं, चेतना चेतन है। शैव, शाक्त, वैष्णव दार्शनिक इस स्थिति में, यही कर सकते थे कि जड़ पदार्थ और चेतना की एकता घोषित करें, अन्यथा दार्शनिक दृष्टि से 'द्वैतवाद' की सृष्टि होगी जो बुद्धिसंगत नहीं है और समाज में 'भेदबुद्धि' की वृद्धि होगी जो कल्याणकारक नहीं है। अतः

जड़पदार्थ और चेतना की एकता घोषित की गयी, किन्तु यह 'एकता' किसी सिद्धांत पर आधारित होनी चाहिए। अतः व्यावहारिक जीवन में 'युगल' की 'एकता' देखकर उन्होंने सृष्टि के मूल में 'शिव-शक्ति' अथवा 'धनात्मक और ऋणात्मक' शक्तियों की कल्पना की और उनकी एकता पर बल दिया। अतः प्राचीनों का 'दर्शन' भी 'समस्याओं' के समाधान के लिए ही प्रतिपादित हुआ है और उनके द्वारा कल्पित 'प्रतीक', सामाजिक या वैयक्तिक आवश्यकता के ही फल हैं।

इसी प्रकार बौद्धों ने शैवों-शाक्तों के 'युगल-सामरस्य' के सादृश्य पर 'युगनद्धता' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। "सामाजिक आवश्यकता क्या थी"? मनुष्य 'पदार्थ' को अधिक महत्व देता है और उनके संग्रह के लिए अन्यायपूर्ण मार्ग अपनाता है, विप्लव करता है, असत्य का पथ पकड़ता है। अतः 'पदार्थ' के प्रति आसक्ति से उसकी वैयक्तिक चेतना में, निषेधवादी स्थितियों—क्रोध, निराशा, दुःख, अशांति, उद्वेग आदि की, वृद्धि हो जाती है और भावात्मक स्थितियों—सुख, आनन्द, शांति आदि दमित हो जाती हैं। अतः पदार्थ के प्रति आसक्ति को समाप्ति करने के लिए 'दर्शन' की आवश्यकता है, एक 'दृष्टि' की आवश्यकता है। इस विशेष 'दृष्टि' के बिना पदार्थ के प्रति आसक्ति दूर नहीं हो सकती। अतः 'युगनद्धवादियों' ने जगत् के पदार्थों को 'शून्यवत्' अथवा 'स्वप्नवत्' घोषित किया।* पदार्थ के प्रति आसक्ति के कारण उत्पन्न 'द्वंद्व' को समाप्त करने के लिए उनकी दृष्टि में सर्वोत्तम उपाय यह था कि 'मूल विच्छेदन' कर देना चाहिए। आसक्ति-उच्छेदन से जो परस्पर-विरोधी भावों का प्रवाह बनता है, वह स्वयं नष्ट हो जायगा। अतः प्रश्न यह नहीं है कि जगत् 'स्वप्नवत्' है या यथार्थ है, बौद्धविचारकों द्वारा जगत् को स्वप्नवत् घोषित करने का प्रयोजन यह था कि पदार्थ के प्रति आसक्ति समाप्त हो। अतः प्राचीनों के 'दर्शनों' और 'साधनाओं' के समझने के लिए उनके 'प्रयोजन' को नहीं भुला देना चाहिए। प्रयोजन यह है कि समाज और व्यक्ति का तथा व्यक्ति के अंतरस्थित परस्पर-विरोधी भावनाओं और इच्छाओं में 'युगनद्धता' अथवा

---

* अ. प्रतिबिम्बनिभं पश्यन् जगत् शुद्धमनाविलम्।
मायापुरुषवत् सर्वं कुर्य्याद् नुपलम्भत :—अद्वयवज्रसंग्रह

ब. यावदाभासते यत्त्च तन्मायैव च भासते
तत्त्वतो हि निराभासः शुद्धानन्तनभोनिभ :—वही

(शेष पृष्ठ १०८ पर)

प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय

काम के माध्यम से पूर्णकाम शिवत्व की साधना

[तांत्रिक अनुभव-कथा]

'हमारा प्राण काममय है। काम बीज ही आदि बीज है। यही शक्ति, स्थिति और लय– इन तीनों अवस्थाओं द्वारा प्रत्येक जीव में क्रियाशील है। ज्ञान और कर्म का संयुक्त जीवन ही काम है, जिसे लंगोट बांध कर वश में नहीं किया जा सकता। प्रकृति से विरोध कर न कोई अपना कल्याण कर सकता है, न जगत का। तांत्रिक साधना में मनुष्य प्रकृति के साथ चल कर ही आगे बढ़ता है। यौवन से तंत्र की प्रवृत्तिमार्गी साधना शुरू होती है, और अन्त में जीव के अखण्ड सच्चिदानन्द रूप की उपलब्धि करा कर ही यह समाप्त होती है। चैतन्य की पाश-बद्ध अवस्था जीव है; और पाश-मुक्त अवस्था शिव है।...'

तंत्र-शास्त्र की जटिल, बहुश्रुत पर बहुनिन्दित साधना-प्रक्रियाओं के मर्म तक पहुँचने की एक अनिवार्य और तीव्र जिज्ञासा लेकर मैंनें उड़ीसा, बंगाल और आसाम के शक्ति-पीठों और तांत्रिक तीर्थों का परिभ्रमण किया है।

पहले तो बहुत-कुछ जो भी तांत्रिक-जीवन देखा उससे दिलचस्पी बढ़ी नहीं; जसे पुरी के जगद्बन्धु मंदिर में एक भैरव से भेंट हुई, जिसके पास दो भैरवियाँ भी थीं। बड़ी और छोटी के आपसी सौतिया-डाह और झगड़ों से तंग आकर भैरव ने १५ रुपये देकर बड़ी को हमेशा के लिए बिदा कर दिया और छोटी के साथ एक नयी जगह जा बसा। तांत्रिक साधना के बारे में पूछ-ताछ करने पर वह सिर्फ इतना बता सका था, कि वैदिक-मार्ग के अधिकारी भेद के समान हमारे यहाँ भी पाशवाचार, वीराचार और दिव्याचार जैसा भेद-त्रय है। तंत्रमत के अनुसार भोगेच्छा को पूर्णतया भोग द्वारा ही ध्वस्त

किया जा सकता है। अतः पंचमकार यानी मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन तंत्र साधना के अभिन्न अंग हैं। पाश-बद्ध प्राणी ही जीव है और पाश-मुक्त प्राणी ही शिव। अतः ऐहिक जीवन में पाशमुक्ति ही तंत्र का लक्ष्य है।

नवद्वीपसे सिउड़ी और फिर तांत्रिकों के प्रसिद्ध तीर्थ वक्रेश्वर में मुझे वैद्यनाथ बाबा के दर्शन हुए और उनकी कृपा से ही महायोगी अष्टावक्र के आश्रम में अघोरी बाबा की संगति मिली। उनकी बाह्य रूपरेखा बड़ी-अद्भुत लगी—उज्ज्वल श्याम-वर्ण, लम्बा-चौड़ा शरीर, स्थूलकाय पर निरलस और ज्वलन्त, प्रदीप्त, सम्मोहक आँखें। मैं उन्हें बस, देखता ही रह गया—पहली बार तो। मुझे बैठे रहते उन्होंने देखा भी और नहीं भी।

बहुत देर बाद पूछा, —"यहाँ क्यों आया है रे?" मैं चुप रहा तो बोले, "तुझे क्या चाहिए साले, तू ब्राह्मण है, ब्रह्मा-विष्णु के पैर छू जाकर। हर साल बच्चे पैदा कर। कम्पनी के जूते खा! भाग यहाँ से! वैद्यनाथ बाबा मुझे उनकी गालियों की बाबत बता चुके थे, अतः मैं फिर भी चुप बैठा रहा। मुझे थोड़ा भी क्रोध नहीं आया। सारा शरीर एक अजीब-से शीतल-जल से सिक्त होगया हो। मानो वह फिर गरज पड़े—"अरे साला' बोल न? कहाँ से आया है, क्या सोचकर चला है? नहीं तो तेरा सर्वनाश होगा।"

इसपर मैंने सिर्फ़ इतना कहा—"मैं यह जानना चाहता हूँ कि तंत्र-मत वास्तव में घृणा करने योग्य है, या उसमें सचमुच कुछ महान् तत्त्व भी हैं, जिनके बलपर, कि वह आज भी संसार में टिका है।"

"सब साले तेरा अनुमान है!"

"पर क्या इस अनुमान के पीछे कोई सत्य नहीं?"

"तेरा विश्वास और सत्य सब अनुमान मात्र हैं। तेरे मन में बसे अनुमान से जो

[शेष पृष्ठ ११३ पर]

वीरेन्द्रकुमार जैन

विज्ञान-युग के बाद फिर से धर्म-युग आने को है

> '...मेरी निश्चय प्रतीति है कि विज्ञान-युग की इस पराकाष्ठा पर, भौतिक शक्ति के इस चरम विकास को आत्मिक शक्ति द्वारा संतुलित, संयोजित और नियंत्रित करने के लिये अब पृथ्वी पर फिर से धर्म-युग आने को है। यह मानव मात्र के हृदय में विराजमान, सकल चराचर की एकात्मता के सूत्रधार श्री भगवान के नव प्राकट्य का वह युग होगा, जब मानव, मानव अपने बीच की मौलिक एकता को पहचान कर, उसकी जीवन-परक सिद्धि के लिये ही, अपनी वैज्ञानिक सामर्थ्य का उपयोग करेंगे।

* * *

विज्ञान का युग आज अपने चूड़ान्त उत्कर्ष पर पहुँचा है। भौतिक तत्व पर आज मनुष्य ने अपूर्व प्रभुता स्थापित की है। परमाणु को तोड़कर उसने अपार भौतिक सम्भावनाओं के द्वार मुक्त किये हैं। देश, काल और गति पर उसने चमत्कारिक विजय पायी है। भूगोल और खगोल के महा-मिलन की घड़ी निकट पहुँच रही है। केवल पृथ्वी के विभिन्न देशों की ही नहीं, अनेक ब्रह्मांडों की, और शायद अनेक अगोचर लोकों की प्रजाएँ आज एक-दूसरे से मिलने को उत्सुक हैं; ऐसी कोई अदम्य और अपूर्व प्रेरणा मनुष्य की इस अन्तरिक्ष यात्रा के पीछे साफ लक्षित हो रही है।

पर दूसरी ओर यह इतनी बड़ी भौतिक शक्ति, सामर्थ्य और सम्भावना का प्रभु, आज का वैज्ञानिक मनुष्य, अपनी अंतर आत्मा में कितना दीन, ह्रस्व और अधःपतित होता जा रहा है। विज्ञान की इस वेगीली प्रगति के साथ, दिन-दिन प्रलयकारी महायुद्धों की सम्भावनाएँ बढ़ रही हैं। मानव सम्बन्धों में प्रेम, सद्भाव और एकात्मता के मूल्य उत्तरोत्तर ह्रस्व होते जा रहे हैं। अब तक के स्थापित सारे नैतिक मूल्य, अपना आधार

खोकर तेजी से विघटित हो रहे हैं। मनुष्य की आत्मिक और नैतिक चेतना एक दिशाहीन अराजकता के अन्धकार में भटक रही है। सर्वोपरि हो उठी है आज भौतिक सम्पदा और सामर्थ्य। और उस पर अपना-अपना एकाधिपत्य स्थापित करने की होड़ में, मानवों, जातियों और राष्ट्रों के बीच सत्यानाशी स्पर्द्धाएँ, विग्रह, संघर्ष और अन्तहीन युद्ध चल रहे हैं।

यह इसलिए हुआ है कि मनुष्य ने भौतिक तत्व को ही सब कुछ मान लिया, और अपनी आत्मा की उसने सम्पूर्णरूप से अवज्ञा कर दी। परिणाम यह हुआ कि एक ओर मनुष्य की भौतिक शक्ति का विकास तो पराकाष्ठा पर पहुँचा, पर दूसरी ओर उसकी आत्मिक चेतना, और आत्म-शक्ति कुंठित और जड़ीभूत होती चली गयी। यों सत्ता के दो अविनाभावी पक्ष, भौतिक और आत्मिक, का सन्तुलन टूट गया; और इसके फलस्वरूप असत्य, हिंसा, घृणा, द्वेष और अमंगल की नकारात्मक शक्तियाँ दुर्दम्य रूप से प्रबल हो उठीं। तब समूची मानवता के सर्वांगीण और सर्वमंगलकारी अभ्युदय और विकास के लिए यह आवश्यक है कि भौतिक-आत्मिक-संयुक्त सत्ता के उस खोये हुए संतुलन को लौटाया जाये। इसके लिए अनिवार्य रूप से ज़रूरी है कि मनुष्य की वर्तमान भौतिक शक्ति-सामर्थ्य के अनुपात में ही, उसकी आत्मिक शक्ति और सामर्थ्य का विकास भी हो। भौतिक शक्ति के विस्तार के अनुरूप ही उसकी आत्मा भी विस्तृत हो।

और आत्म-विस्तार तथा आत्म-शक्ति के विकास का एकमात्र तंत्र है धर्म। कोई साम्प्रदायिक रूढ़ धर्म नहीं। धर्म के मानी है वह चेतना, जो अपने स्वस्थ स्वभाव में रहे, और जो सत्य को, सृष्टि को, जीवन को धारण करे: उसका सर्वतोमुखी अभ्युदय और सर्वकल्याणकारी विकास विस्तार करे।

और मेरी निश्चय प्रतीति है कि विज्ञान युग की इस पराकाष्ठा पर, भौतिक शक्ति के इस चरम विकास को आत्मिक शक्ति द्वारा संतुलित, संयोजित और नियंत्रित करने के लिए अब पृथ्वी पर फिर से धर्म-युग आने को है। मानव का यह आगामी धर्मयुग, रूढ़ परम्परागत धर्मों का पिष्टपेषण या कोई प्रतिगामी प्रत्यावर्तन मात्र नहीं होगा। यह मानव मात्र के हृदय में विराजमान, सकल चराचर की एकात्मता के सूत्रधार, उन सर्व जनगण-मन अधिनायक भगवान के प्राकट्य का युग होगा, जब मानव, मानव अपने बीच की बुनियादी एकता और आत्मीयता को यथार्थ रूप में पायें और पहचानेंगे। और उस एकता और प्रेम की चरमसिद्धि के लिए ही, वे अपनी वैज्ञानिक भौतिक सामर्थ्य का उपयोग करेंगे।

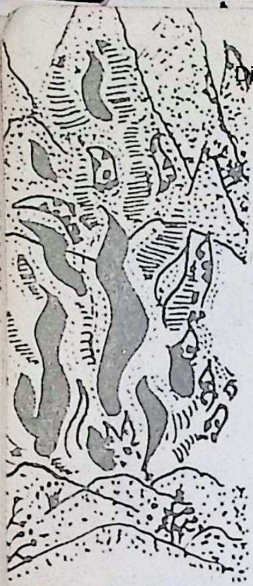

परेश

●

इतवर्चा

लक्ष्य से भटकी हुई संभावनाओ !
यज्ञ में यदि हवि मुखर
तो ज्वाल भी होगा प्रखर ही

लाश पर निजकी खड़े हो
मोह उस निष्प्राण पर अब व्यर्थ,
निश्चय टूटने मत दो
अखंडित ही समर्पण
यज्ञ की समिधा बनेंगे।

टूटते मुड़ते हुए व्यक्तित्व !
क्षितिजों में अंजी सुरमई घटाओं
के क्षयी कौमार्य ने खींचा तुम्हें क्या ?
दग्ध दावानल भभकता पृष्ठ-भू में
पूर्व ही तुम जानते थे।

अब न लौटाओ सनातन तत्ववाही यात्राएँ
सार्थ नायक !
चिर पथिक ! !
यात्रिक् अमर ! ! !

हिम-ढका यदि गिरि-शिखर
अधिपत्यका के गर्भ में ही अग्नि-गव्हर।

*

राजेन्द्र किशोर

फिर बकुल दीखे

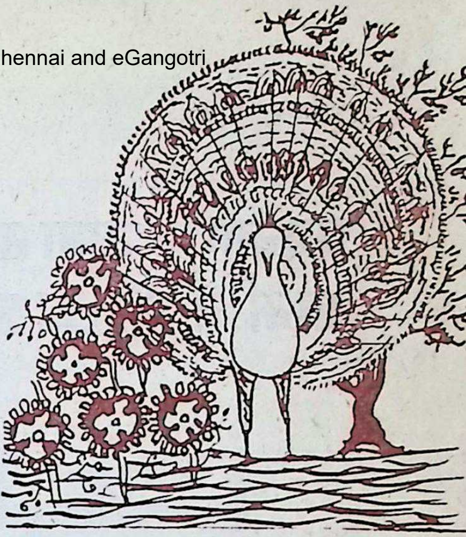

फिर बकुल दीखे,
सपनों के नये व्याकुल बकुल दीखे,
आह! मेरी आत्मा के महाकल्पों में उतरते गये
ये सृजन के देवता, व्याकुल बकुल के फूल।

हम न ठहरेंगे यहाँ पर,
आज हम भी वहीं जायेंगे।
हंस आयेंगे,
हमारे पहुँचने पर बकुल-वन में हंस आयेंगे,
मोर आयेंगे,
हमारे मुस्कराने से पंख उनके घटाओं से फैल जायेंगे,
हमारा उन्माद
व्याकुल बकुल-वन में प्रीतिमोहित पक्षियों में स्वर जगायेगा;
हमारा सुख
अमृतकन्या तृषाओं के पुष्पपर्वी गीत बनकर फैल जायेगा।

चलो, हम बकुल-वन में चलें।
और सहना कठिन है, यहाँ रहना कठिन है,
आज तो अब आत्मा के महाकल्पों में उतरते जा रहे हैं
ये सृजन के देवता
व्याकुल बकुल के फूल।

रामचन्द्र शुक्ल

परमाणु-युग में धर्म, साहित्य और कला

विज्ञान के द्वारा परमाणु को दो टूक तोड़कर मनुष्य ने, जिस अभूतपूर्व शक्ति का स्वामित्व आज प्राप्त कर लिया है—उससे वह चाहे तो सृष्टि का मूलोच्छेदक विनाश भी कर सकता है, और चाहे तो पृथ्वी पर अमरों का स्वर्ग भी उतार सकता है। यदि इस महाशक्ति द्वारा हमें स्वर्ग निर्माण करना है—तो यह काम राज-पुरुषों और शासकों द्वारा सम्भव नहीं। चरम-परम मानवीय सम्वेदना, और सार्वभौम मानव-आत्मा की एकता के अनुभोक्ता, सर्जक और सन्देशवाहक साहित्यकार और कलाकार ही अपने अमोघ मांत्रिक सर्जन से इस कार्य को सिद्ध कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि, सत्ता-स्वामी राजपुरुषों के शिखर-सम्मेलन होने के बजाय, अब योगियों, धर्म-पुरुषों, वैज्ञानिकों, राज-पुरुषों, साहित्यकारों और कलाकारों के संयुक्त शिखर-सम्मेलन आयोजित हों।

जब कभी नये साहित्य, कला, सभ्यता या संस्कृति की बात चलती है और नये मानव मूल्यों का प्रश्न उठाया जाता है, तो लोग आपत्ति करते हैं। अपनी मान्य प्राचीन परम्पराओं, तथा संस्कृति की दुहाई देते हैं और कहते हैं कि हमारा देश प्राचीन है, मानव मूल्यों तथा आदर्शों की दृष्टि से पूरी तरह सम्पन्न है। हमारे सामने कोई ऐसा प्रश्न नहीं कि हम नये मूल्यों की ओर निहारें या पाश्चात्य देशों की नक़ल करें।

उपरोक्त स्थिति एक दुराग्रह मात्र है, उन लोगों का जो आज की वस्तुस्थिति से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। यह सही है कि अब तक पूर्व और पश्चिम के विचारों में विरोधी दिशाओं का अंतर रहा है। एक अध्यात्मवाद की ओर उन्मुख था, दूसरा भौतिक प्रगति की ओर, पर आज वस्तुस्थिति बिलकुल भिन्न है। संसार आज एक ऐसे स्थल पर पहुँच गया है, जहाँ रास्ते दो नहीं एक दिखायी पड़ते हैं।

वही वैज्ञानिक प्रगति जो पश्चिम को एक अन्य रास्ते पर ले जारही थी और उसे पूर्वी देशों की सभ्यता तथा संस्कृति से अलग किये हुये थी, आज उसे एक ऐसे स्थल पर ले आयी है, जहाँ उसे और प्रगति करने के पहले अपने किये पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। आज पश्चिम में इसीलिए अपनी प्रगति का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक हो गया है।

लेखक

इस सबका एक मात्र कारण है विज्ञान की चरम प्रगति। इसने एक ज़बरदस्त ख़तरा मानव जाति के सामने और उसके हाथ में लाकर रख दिया है और यह है अणु विस्फोट की महाशक्ति – एटम बम्ब–इसका एक अति-लघु परिणाम हम हिरोशिमा तथा नागासाकी काण्ड जापान में देख चुके हैं। इस लघु परिणाम के फलस्वरूप पिछला महायुद्ध मिनटों में बन्द हो गया। जहाँ बम्ब गिराया गया था वहाँ की मानवता मिनटों में राख के ढेर में परिर्वतित हो गयी और जिनपर बम्ब का केवल साधारण असर पड़ा, वे सात पीढ़ियों तक के लिए कोढ़ी हो गये हैं।

इसी एक काण्ड ने चेतावनी दे दी है, कि विज्ञान के द्वारा मानव ने अब वह शक्ति प्राप्त करली है, जिससे यदि वह चाहे तो हजारों, लाखों वर्ष से प्रगति करती मानवता को पल भर में राख का ढेर बना सकता है। इससे न पूर्व बचेगा न पश्चिम। यह सारी मानवता के सामने एक ज़बरदस्त सवाल है।

आज जो लोग पूर्व और पश्चिम में भेदभाव करते हैं, अपनी सभ्यता और संस्कृति का दम्भ भरते हैं, उनके सामने भी यही सवाल है–क्या सारी मानवता ख़तरे में नहीं है?

यही एक सवाल है, आज सारे बुद्धिजीवी संसार के सामने–मानवता की रक्षा कैसे की जाय?

यही एक सवाल है, जिसने आज पूर्व और पश्चिम को इतना समीप ला दिया है, जितना पहले कभी नहीं था।

यही एक सवाल है, जो यह सिद्ध करता है कि हमें नये जीवन मूल्यों की आवश्यकता है और हमें बाध्य करता है विचार करने के लिए कि अब हमारी आगे की प्रगति किस आधार पर हो।

यही एक सवाल है सारी मानवता के सामने, विज्ञान और कला के सामने।

यदि मानवता को हम हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट भ्रष्ट नहीं करना चाहते तो वह कौन से नये जीवन मूल्य हैं, जिनपर हमें आगे की प्रगति करनी चाहिए?

पश्चिमी देश के सारे विचारक इसी सवाल का जवाब खोजने में लगे हुए हैं और हर संभव सुझाव पर विचार कर रहे हैं। वह प्राचीन हो या अर्वाचीन, पूर्व का हो या पश्चिम का।

इधर पाश्चात्य देशों में महात्मा गांधी के विचारों पर जितनी गहराई से अध्ययन हो रहा है, पहले कभी नहीं हुआ—वह गांधी जिसका परम मूल्य था अहिंसा और शांति, केवल शांति नहीं; क्योंकि बिना अहिंसा के जो शांति होगी, वह श्मशान की ही शांति हो सकती है। इतना ही नहीं पूर्वी देशों में अध्यात्मवाद तथा धार्मिक तत्वों की ओर भी पाश्चात्य चिंतकों का ध्यान तेजी से जारहा है। और इन सबका लक्ष्य है, नये मानव मूल्यों की खोज।

ख़तरे का अंदेशा प्राणिमात्र को एक सूत्र में, एक इकाई में बांधने का काम करता है। विज्ञान के द्वारा जो ख़तरा उपस्थित हुआ है उसने मानव जाति के सम्मुख एकसूत्र में अब बँध जाने का संदेश भी दे दिया है और विज्ञान यदि मानव कल्याण की ओर उन्मुख होकर प्रगति करे तो, उसमें यह शक्ति भी निहित है कि वह सारी मानवता को सुख, समृद्धि तथा आनन्द प्रदान कर एक सूत्र में बाँधकर उस स्वर्ग में पहुँचा दे सकती है, जिसकी हम अब तक केवल कल्पना मात्र करते रहे हैं। पर यह तभी हो सकता है, जब विज्ञान अहिंसा और अध्यात्म जैसे मूल्यों के साथ होकर चले। यह कैसे हो, इसके लिए नये तथा पुष्ट नैतिक मूल्यों को फिर से आत्मसात् करना होगा और यह कार्य नये जीवन-दर्शन के अन्वेषियों का है। प्रश्न सारी मानवता का है, इसलिए वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, साहित्यकारों, कलाकारों, विचारकों सबको मिलकर, एक सूत्र में बँधकर सोचने-विचारने का समय आ गया है। इससे अब कम्यूनिस्ट भी अलग नहीं रह सकते, क्योंकि यह प्रश्न उनका भी है। वे भी इस ख़तरे से बचना चाहेंगे और ऐसा तभी हो सकता है, जब वे दुनिया के और लोगों के साथ मिलकर विचार करें। यही कारण है कि रूस से शांति का नारा जोरों से उठ रहा है। वही नारा जो गांधी, ईसा या बुद्ध ने उठाया था!

बीसवीं शताब्दी के महान् दार्शनिक तथा विचारक बर्ट्रेन्ड रसल ने ख़तरे की घण्टी बजाते हुए साफ-साफ शब्दों में कहा है—

"परमाणविक वैज्ञानिक (न्यूक्लियर फिजिसिस्ट) अब शायद उस चरम रहस्य के इतने समीप पहुँच चुके हैं, कि वे सोचते हैं अब समय आगया है कि वे अपनी प्रगति को सदा के लिए बन्द कर दें।"

"संसार की वर्तमान परिस्थिति और अटामिक महायुद्ध का ख़तरा यह साबित करते हैं कि वैज्ञानिक प्रगति बिना किसी तत्सम्बन्धी धर्माचरण तथा राजनैतिक प्रगति के शायद उस महाकाल की विभीषिका को और भी प्रज्वलित कर दे।"

"वैज्ञानिक के सामने यह प्रश्न है कि वह कौन-सा सरल तरीका अपनावे इससे पहले कि सारी मानव जाति का अस्तित्व ही मिट जाय।"

विज्ञान द्वारा उपलब्ध भौतिक प्रगति ने और अतिशय मानसिक प्रगति ने मनुष्य को अतिशय ख़ुदग़र्ज बना दिया है और ऐसा व्यक्ति कभी ख़ुदग़र्जी में इतना पागल हो जा सकता है कि उसके नशे म वह ऐसा कार्य करने पर भी उद्यत हो जाय, जो अन्ततोगत्वा सारी मानवता के साथ-साथ उसके भी अस्तित्व को निर्मूल कर दे। ऐसी स्थिति में इसका मुक़ाबला अतिशय मानव संवेदना तथा सहानुभूति या सह-अस्तित्व की भावना ही कर सकती है। यह बात दूसरी है कि सहानुभूति की यह भावना मानव जाति में पूरी ताक़त के साथ कैसे स्थापित हो कि महाविनाश से पहले हम अपने को बचा सकने में सफल हों।

साहित्य और कला में यह ताक़त है, यदि हम इसमें विश्वास कर सकें। मुझे एक उदाहरण याद आता है, नादिरशाह के उस क़त्लेआम का जिसके मध्य एक कवि की पंक्ति में इतनी ताक़त उत्पन्न हुई थी, कि उसने क्षणभर में नर पैशाचिक क़त्लेआम रुकवा दिया था।

महात्मा बुद्ध का वह दृश्य याद आता है, जब सहानुभूति की अपार शक्ति के बलपर नरसंहारी अंगुलिमाल का मस्तक अहिंसा के मूर्ति के सामने सदा के लिए झुक गया था। वह क्षण याद आता है जब मानव सहानुभूति के बल पर एक बर्बर जाति को ईसा ने अपन प्रेमपाश में बाँध लिया था। अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं पुराण, इतिहास और साहित्य में।

यह भले कहा जाय कि सहानुभूति वह मानव मूल्य नहीं जो नया हो, पर वही चीज़ नयी बन जाती है, जो नयी शक्ति ग्रहण कर लेती है और यह कार्य भी साहित्यकार और कलाकार के सामर्थ्य के भीतर का ही है।

अनुभूति ही आधार है, साहित्य और कला की रचना का, और उस अनुभूति को

अभिव्यक्त करने के लिए ही कलाकार रचना करता है। जब अनुभूति ज़ोरदार होती है और ज़ोरदार माध्यम के द्वारा अभिव्यक्ति पाती है, तो वह संवेदना जगाने में समर्थ होती है। कलाकार में यदि संवेदना का गुण पर्याप्त न हो तो, उसको अनुभूति हो ही नहीं सकती और तब उसकी अभिव्यक्ति भी केवल एक बेजान खोखली कला रहेगी। संवेदना का आधार सहानुभूति है। जब कलाकार अपने चारोंओर की सृष्टि (नेचर) या समाज से पूर्ण सहानुभूति रखता है तभी संवेदना जागृत होकर अनुभूति प्राप्त करती है, और अनुभूति तथा संवेग ज़ोरदार होकर अभिव्यक्ति पाने के लिए मचल पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में ही ऊँची कला जन्म लेती है, इसलिए कलाकार में सहानुभूति की भावना का बलवान होना नितांत आवश्यक है। यदि कलाकार में सहानुभूति की भावना बलवान है तो, निश्चय ही उसकी कला के द्वारा दूसरों में सहानुभूति पैदा करने का पूरा सामर्थ्य होगा।

प्राणी मात्र के प्रति यहाँ तक कि जड़ पदार्थों के प्रति भी सहानुभूति रखना अपने में बहुत बड़ी बात है और यदि इसको मानव समाज पूरी तरह अपना सके तो, आटम बम क्या उससे भी बड़ी विनाश लीलाओं को निर्मूल किया जा सकता है। यही एक मूल्यवान वस्तु है आज की विकट परिस्थिति से पार पाने का। दिमाग़ी शतरंज की चालों का ज़माना खत्म हो चुका है। विज्ञान के क्षेत्र में भी उसीको जाने का अधिकार होना चाहिए, जो पूर्णरूप से मानव सहानुभूति से प्रेरित होकर उस ओर जाता है।

विज्ञान के बल पर पीड़ित मानवता को ऊपर उठाने का बस एक ही रास्ता है, अपनी तथा मानव जाति की रक्षा का। प्रसन्नता की बात है कि किसी न किसी रूप में रूस तथा अमेरिका, ऐसे विज्ञान के क्षेत्र में सम्पन्न राष्ट्र भी, इसी मार्ग पर चलने का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रयास कर रहे हैं। यह बात दूसरी है कि पुरानी वृत्ति कभी-कभी आवेग में उछलकर सामने आ जाती है, पर इसका नियंत्रण करना नितांत आवश्यक है।

बैर्ट्रण्ड रसेल व्यंगात्मक शैली में कहते हैं—"यदि मुझे यह भी आशा होती कि एटम विस्फोट रूपी महाकाल के बाद हिरन और गिलहरियाँ, बुलबुल और पपीहा भी बच रहेंगे, तो मैं कुछ और गम्भीरता के साथ इस प्रश्न पर विचार करता, क्योंकि मनुष्य अपने को सारी सृष्टि का स्वामी होने के लायक सिद्ध नहीं कर सका है। पर आशंका इसकी है एटम बम की भयानक रसायन-विद्या (ऐलकेमी) किसी भी प्रकार के जीव को जीता न छोड़ेगी और पृथ्वी सदा के लिए मृत्यु का चिह्न बनकर बेवक़ूफ़ों की तरह बराबर निरर्थक सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाया करेगी।"

★

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर

दो कविताएँ

मैं पैरों की धूल

मेरी मिट्टी
श्याम सलोनी !
इसमें कितने बीज छिपे हैं
इस रहस्य को
जाने कौन ?
आने वाले किस मुहूर्त्त में
क्या हो जाए,
कहाँ कौनसा नन्हा अंकुर
सीना तान खड़ा हो जाए !
गोल तिकोने पत्ते फूटें
हरियाली चँदवा बन जाए !
मेरी इस धूसरित प्रकृति में
कितना रस उद्वेलित,
मैं पैरों की धूल
भला मुझको
पहचाने कौन ?
मेरी श्याम सलोनी मिट्टी...

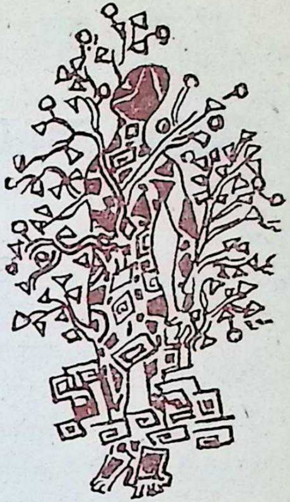

मेरी सुबह

गीली, गुलाब की
पँखुरियों पर
मैंने पढ़ लिया है तुम्हारा नाम,
मेरी सुबह मह-मह महकती है।

नीली-सी चिड़िया,
उसके नन्हें-नन्हें पंख,
कहाँ बाँधूं अपना पैग़ाम,
मेरी सुबह कूकती पिहकती है।

नीम की नयी–
सुर्ख़ फुनगियाँ
तुम्हें झुक-झुक करे हैं सलाम,
मेरी सुबह उगती है–
दहकती है।

डॉ. एफ़. डब्लू. हेलमान

आज का जर्मन साहित्य

हमारी शताब्दी के पिछले दोनों महायुद्धों का केन्द्रस्थल रहा है जर्मनी। उस जर्मनी के नवीनतम साहित्य की मूल प्रवृत्तियाँ क्या हैं, यह जानकारी समस्त प्रगतिमान विश्व-साहित्य के लिए बहुत मानी रखती है। प्रस्तुत लेख में आपको वह जानकारी मिलेगी। नवोत्थिक जर्मनी के साहित्यकार आज अतीत की भीषणताओं पर विजय पाकर, मानव-सम्बन्धों की नयी आधार-भूमि खोजने में संलग्न हैं।

समसामयिक साहित्य, विशेषतः जर्मन साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए उसके इतिहास के प्रति सचेतन रहना अति आवश्यक है। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण जर्मनी के साहित्य-संसार की गति में कोई अवरोध या अंतर नहीं आया, यह तो कोई भी नहीं कहेगा। वस्तुतः नात्सीवाद और युद्ध का जो भीषण दुष्प्रभाव सांस्कृतिक क्षेत्र पर पड़ा, वह आर्थिक क्षेत्रपर भी नहीं पड़ा। पश्चिमी जर्मनी ने युद्ध के बाद जिस तेज़ी से अपनी आर्थिक व्यवस्था को सम्हाल लिया, उतनी जल्दी वह अपना सांस्कृतिक पुनरुत्थान नहीं कर पायेगा।

टॉमस मान

कवि, दार्शनिक एवं अन्य कलाकार सम्पूर्ण पतन, नात्सीवाद की भयंकर दुर्व्यवस्था, अपराध में स्वयं भागी होने की दोष-भावना, पराजय, विनाश और देश के बटवारे के मानसिक आघात को सहज ही नहीं भुला सकते। वास्तविक रूप से मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक संतुलन और पुनसँगठन, यदि वह ईमानदारी से किया

गया तो, धीरे-धीरे ही होगा। जर्मन चरित्र के लिए यह बात विशेषरूप से सत्य है।

इस लेख का शीर्षक 'आज का जर्मन साहित्य' है; किन्तु उसका सम्बंध केवल पश्चिमी जर्मन साहित्य से ही है, क्योंकि पूर्व जर्मनी में जो साहित्य अब तक प्रकाशित हुआ है, वह अनिवार्यतः एक ही राजनीतिक विचारधारा का अनुकरण करता है और इसलिए जर्मनी में स्वतंत्र बौद्धिक जीवन की विविधता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

हाईरिश बॅल

०००

कथा-साहित्य के क्षेत्र में गत महायुद्ध के बाद के दस वर्ष तो उन्हीं लेखकों से प्रभावित रहे जिन्होंने १९२०–३० के वर्षों में ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था। वस्तुतः उनमें से कई तो इन्हीं दिनों ख्याति लाभ कर सके, जैसे फ्रैंत्स काफ्का। उनकी लघु कहानियाँ और दो महान उपन्यास 'डास श्लोस' (क़िला) और 'डेर प्रोत्सेस' (मुकदमा) ने उनके बाद के लेखकों को अत्यंत प्रभावित किया। अन्य लेखकों जैसे हैरमान ब्रोश, राबर्ट मुसिल, हेनरिश मान और उनके अधिक प्रख्यात भाई टामस मान तथा अल्फ्रेड डब्लिन की कई पुस्तकें लड़ाई के ज़माने में अथवा उससे भी पहले लिखी गयी थीं, लेकिन नात्सी सरकार ने, चूंकि उन पर प्रतिबंध लगा दिया था, अथवा ये लेखक स्वदेश से पलायन कर गये थे, उनमें से अधिकांश का परिचय तो वृहत्तर साहित्यिक संसार से इन्हीं दिनों हुआ।

उनके अतिरिक्त कुछ नयी रचनाएँ अवश्य थीं, जिन्होंने वर्तमान परिस्थिति को ग्रहण करने, युद्ध के दुष्परिणामों का वर्णन करने, अथवा पिछले दस वर्षों के भयानक अनुभवों पर विजय प्राप्त करने की भी क़ोशिश की। इस सिलसिले में सर्वप्रथम और सबसे अग्रणी टामस मान के 'डोक्टोर फाउस्टुस' का ज़िक्र हमें करना होगा। उन्होंने आधुनिक युग के अनरूप, विद्वान फाउस्टुस क़ी उस पुरानी जर्मन कथा को रूपांतरित किया, जिसमें अधिक ज्ञान की तृष्णा के वशीभूत होकर उन्हें शैतान के साथ संधि करते

दिखाया गया है। मान के उपन्यास में फाउस्टुस एक आधुनिक संगीत-रचनाकार बताया गया है, जिसकी ज़िन्दगी जर्मन राष्ट्र के दुर्भाग्य के साथ १९४५ के भयानक अंत तक प्रतीकात्मक ढंग से जुड़ी हुई है। इस उपन्यास में टामस मान की कवि-अन्तर्दृष्टि का पुनःदर्शन होता है और जर्मन भाषा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में इसकी गणना की जा सकती है।

दूसरा एक रोचक उपन्यास जो १९२० से लेकर अबतक के समय को स्पष्ट कर पाया है, वह है अल्फ्रेड डब्लिन का 'हैमलेट ओडेर डी लांग नाश्ट निम्ट आइन एंड' (हैमलेट अथवा दीर्घ निशा की समाप्ति) है। युद्ध में आहत एक ऐसे अंगरेज सैनिक की बीमारी की यह कहानी है, जो जीवन के कठोर सत्यों को अस्वीकार करने से इन्कार कर देता है और विशुद्ध सत्य द्वारा ही जो फिर से जीवन का वरण करता है। वह ढकोसलों की उन सड़ी-गली दीवारों को ढाह देता है, उन नक़ाबों को हटा देता है, जिनके पीछे लोग स्वयं को छिपाते हैं। टामस मान के 'डोक्टोर फाउस्टुस' की तरह ही डब्लिन का यह उपन्यास गत वर्षों की अत्यंत महत्वपूर्ण विचारधाराओं का दिग्दर्शन करता है।

डॉ. कार्ल जास्पर्स

इन दिनों गद्य-लेखकों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है और वे अतीत को भूलकर अपने उपन्यासों तथा लघु कथाओं में नये क्षितिजों पर अभियान करना चाहते हैं। इनमें अधिक परम्परावादी पंथ के प्रतिनिधियों के रूप में वर्नेर बेर्गेनग्रुएन, गेर्ट्रूड फान ले फोर्त, एडत्सर्ड शापेर के नाम लिये जा सकते हैं; तेस्फां आंद्रे, अर्न्स्ट यूंगार, लुइसी रिंज़ेर, हांइत्स रिस की पुस्तकें वोल्फगांग बोर्शेर्ट, आर्नो श्मिट, हांस एरिश नोसाक, सिग्फ्रिट लैंत्स तथा हांस बेंडर की अत्याधुनिक रचनाओं के बीच की एक कड़ी मानी जा सकती हैं।

समसामयिक जर्मन लेखकों के विशाल समूह में से केवल कुछ को ही विशिष्ट की संज्ञा दी सकती है। हांइरिश बॅल गत दस वर्षों में अपने उपन्यासों और लघु-कथाओं द्वारा सुविख्यात हो गये हैं।

अपने नवीनतम उपन्यास 'बिलियर्ड उम हात्सेन' (साढ़े नौ बजे बिलियर्ड) में उन्होंने सन् १९५८ के केवल किसी एक दिन की अवधि में एक आर्किटेक्ट परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी कही है, और फिर यह साबित कर दिया है कि उनकी लेखन-शैली सामान्य पाठक तथा साहित्यिक आलोचक दोनों को रुचिकर हो सकती है।

विलहेल्म लेमान

गुंटेर ग्रास ने शायद पश्चिमी जर्मनी में पिछले साल का सबसे विवादास्पद उपन्यास लिखा है, 'डी ब्लेख्त्रोमेल' (टिन का ढोल)। इसका नायक और व्याख्याकार एक बौना है, जो नात्सी जर्मनी में अपनी जिन्दगी और युद्धोत्तर काल को एक पागलखाने से देखता है, जहाँ उसे ज़बरदस्ती बंद कर दिया गया है। जर्मनी के पिछले तीस सालों की यह एक बड़ी ठोस और रोमांचकारी टीका है। गर्ट गैसर एक और नैतिकतावादी और अच्छा आलोचक है, तथा स्वयं की आलोचना करने की भी क्षमता उसमें है। उसका उपन्यास 'श्लुसबेल' (निर्गमन नृत्य) पश्चिमी जर्मनी के आर्थिक पुनरुत्थान के नूतन प्रभाव पर एक व्यंग है।

आधुनिक जर्मन साहित्य का अवलोकन स्वित्ज़रलैंडवासी मैक्स फ्रिश द्वारा लिखित जर्मन उपन्यासों, विशेषकर उनके 'स्टिलर' के बिना पूरा नहीं होगा। इसमें व्यक्ति की अहंभावना की आलोचनात्मक व्याख्या की गयी है। 'स्टिलर' की सफलता का कारण उसमें एक वास्तविक व्यक्तिगत समस्या का इस प्रकार दिखाया जाना है, जिसमें वह किसी एक निश्चित ऐतिहासिक काल के परे, किसी सर्वकालिक सर्वसामान्य समस्या का प्रतीक भी जान पड़े।

०००

दार्शनिक विचार के क्षेत्र में भी नात्सी शासन की समाप्ति के बाद एक प्रकार का शून्य, एक अभाव-सा, दिखायी पड़ने लगा है। नये सिरे से प्रारम्भ करने के लिए फिर उसी, हिटलर पूर्व की, मुक्त विचारधारा का आश्रय लेना पड़ा। अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों की अपेक्षा इस क्षेत्र में १९२०–३० के वर्षों के प्रमुख दार्शनिक आज फिर अधिक प्रभावशाली

सिद्ध हो रहे हैं।

निकोलाइ हार्टमान, जिनकी मृत्यु १९५० में हो गयी, वृद्धावस्था के कारण अपने विचारों, में परिवर्तन नहीं ला पाये और उन्होंने अपनी शिक्षा-शैली जारी रखी तथा अपने ग्रंथ 'फिलोसोफी डेर नाटुर उंड डेर आस्थेटिक (प्रकृति एवं सौंदर्य का दर्शन) का अंतिम भाग पूरा किया। उन्होंने कैंट की क्रान्ति को अस्वीकार किया, अर्थात् यह नहीं माना कि हमारे ज्ञान के विषय हमारे विचारों के अनुकूल और मन के प्रतिरूप होते हैं। यद्यपि अब भी उनके श्रद्धालु कुछ लोग हैं, लेकिन उनका प्रभाव शनैः शनैः कम हो गया है।

कार्ल जास्पर्स औषध तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र से निकलकर दर्शन के क्षेत्र में आये। अपने मनोविज्ञान-विषयक अनुभवों के कारण उन्हें व्यक्तियों तथा वर्गों की मानसिक स्थितियों को गहराई से समझने में मदद मिली है। मनुष्य की स्वतंत्रता तथा प्रमाणिकता को अक्षुण्ण रखने के अपने प्रयास के कारण वे जर्मन 'एक्सिजटेंत्सफिलोसोफी' के प्रवर्तक वन गये, किंतु यह परम्परागत जर्मन दर्शन का ही एक अंग है; इसे अधिक विख्यात सात्रे, कैमस तथा ग्रेवियल मार्सल के फ्रेंच 'एक्सिसतेंशियालिज्म' से संबद्ध नहीं समझना चाहिए।

हिटलर के सत्तारूढ़ होने से कुछ ही समय पूर्व उन्होंने तीन खंडों का एक ग्रंथ 'फ़िलोसोफी' प्रकाशित किया था, जिसका सबसे महत्वपूर्ण खंड 'एक्सिज़टेंत्सहेलुंग' था। १९४५ के बाद जास्पर्स ने हिडलबर्ग युनिवर्सिटी के पुर्ननिर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनकी नवीनतम पुस्तक 'डी एटोमबोम्ब उंड डी त्सुकुंफ्ट डेर मेंशाइट' (अणुबम्ब और मानव जाति का भविष्य) संसार की महत्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने में उनकी सक्रिय रुचि प्रतीक है। इसमें उन्होंने एक राजनीतिक दर्शन की बुनियाद रखने की भी कोशिश की है।

पश्चिमी जर्मनी में सर्वाधिक प्रभावशाली दार्शनिक मार्टिन हैडेगर हैं। 'ज़ाइन उंड त्साइट', जो कि जर्मन 'एक्सिजटेंत्सफिलोसोफी' का प्रमुख ग्रंथ है, के बाद उन्होंने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वे परम्परावादी अध्यात्म को अस्वीकार करते हैं और सुकरात के पूर्व काल से अपना दर्शन प्रारंभ करते हैं। उनके विवेकपूर्ण विचार के साथ व्युत्पत्ति तथा परम्परावादी पुराणतत्व का कुछ ऐसा समिश्रण हुआ है कि उनका दर्शन न केवल प्रमुख दर्शन ही बन गया है, बल्कि एक फ़ैशन भी। किंतु जर्मन 'एक्सिजटेंत्स-फिलोसोफी' का अधिक महत्व तो इस बात में है कि जर्मन सांस्कृतिक जीवन के

प्रायः सभी क्षेत्रों–धर्म, साहित्य, कला, यहाँ तक कि अध्यापन पर भी इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। अन्य दर्शनों की अपेक्षा जर्मनी की आज यही प्रमुख विचारधारा है।

०००

साहित्यिक अभिव्यक्ति में कविता का स्थान जर्मनी में सदा ही बहुत ऊँचा रहा है और आज भी है, यद्यपि उसका स्वरूप अब बहुत-कुछ बदल गया है। काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप-वैविध्य के प्रतीक काव्यजगत् के दो ध्रुव, गाटफ्रिट बैन और विल्हेम लेमान हैं।

आधुनिक कवि के मस्तिष्क को प्रायः प्रयोगशाला की उपमा दी जाती है और यह बैन के ठीक उपयुक्त भी है। उनकी कविताओं में सुनियंत्रित प्रयोगवाद और अन्वेषण का जो वातावरण है, वह काफी प्रभावोत्पादक है। गाटफ्रिट बैन का देहांत १९५६ में हो गया, किंतु नयी पीढ़ी के कई तरुण कवियों पर उनका प्रभाव है।

आधुनिक जर्मनी के काव्यजगत् के दूसरे छोर पर विल्हेम लेमान के रहस्यवादी प्रकृति-काव्य का सौन्दर्य दिखायी पड़ता है। वहाँ पर प्राचीन कथाओं, सरल प्रकृति तथा प्रादेशिक दृश्यों का अब भी दर्शन होता हैं।

इन दो छोरों के बीच कई कवि हैं जैसे, बर्टोल्ट ब्रेश्ट, हांस माग्नुस ऐंत्सेनबर्गर, कार्ल क्रोलोव, गुएंटर ग्रास, इल्से आइशिंगर, गुएंटर आइश, हेंत्स पिओंटेक और अंत में अत्याधुनिक जर्मन कवियों में दो अति सम्मानित कवि, इंगबर्ग बाशमान तथा पाउल सिलें। बाशमान की कविता जब कि गेटे और रूमानी कवियों के गीतों के नज़दीक है, पाउल सिलें ने, जिन्होंने वलेरी तथा एलेक्ज़ेंडर ब्लोक का अनुवाद भी किया है, आधुनिक यूरोपियन कविता से काफी-कुछ सीखा है। किंतु उस जर्मन परम्परा में भी उनका स्थान सुरक्षित है जो हैल्डरलिन से प्रारंभ होकर रिल्के तथा ट्राक्ल के मध्य प्रवाहित होती है।

बहुत-सी कविताएँ युद्ध की भयंकरता तथा उसके दुष्परिणामों को अभिव्यक्ति देती हैं। प्रायः सभी कविताएँ विभिन्न प्रयोग हैं, क्योंकि कवि अस्पष्ट भावनाओं को सरल, किन्तु असाधारण परोक्ष-बिम्बों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास कर रहे हैं; जहाँ संसार की अवश्यम्भावी घटनाएँ घटित होती हैं, वहाँ वे नये क्षेत्रों के उद्घाटन की चेष्टा करते हैं। उनकी सारी कविता में भाषा को एक निरन्तर जटिल होती जा रही, शंकास्पद वास्तविकता को आत्मसात करने की क्षमता देने का प्रयास परिलक्षित है। उसमें से कितनी अक्षुण्ण रहेगी यह तो समय ही बतायेगा। किंतु उनकी

कविताओं को पढ़ना मानव पुनरनुस्थापन में भाग लेना है। ०००

जर्मन थिएटर के क्षेत्र में अधिकांश नाट्य-गृहों के ध्वस्त हो जाने के परिणाम-स्वरूप एक शून्य-स्थिति का होना स्वाभाविक ही था; केवल जर्मनों का थिएटर के प्रति अत्यधिक प्रेम ही शेष नहीं हो सका। युद्ध के पश्चात् कुछ ही वर्षों में आधुनिक नाट्यगृहों का निर्माण केवल शहरों में ही नहीं, बल्कि छोटे-छोटे प्रांतीय केंद्रों में भी हो गया। इसके लिए जर्मनी की वह परम्परा ही बधाई की पात्री है, जिसके कारण अधिकांश नाट्यगृहों को राज्य अथवा नगर प्रशासन, और कहीं-कहीं दोनों से, सहायता मिलती है। इस प्रकार पश्चिम जर्मनी के थिएटर बहुत-कुछ व्यापारी अथवा राजनीतिक सीमाओं से बचे हुए हैं।

जर्मनी में बहुत-से पुराने प्रचलित नाटक और विदेशों के प्रायः सभी महत्वपूर्ण नाटक खेले जाते हैं; कभी-कभी तो स्वयं उनके मूल देशों से भी पहले (उदाहरण के लिए अमरीकी, यूजीन ओ'नेल के नाटक)। इन नाटकों की संख्या सम-सामयिक जर्मन नाटककारों की रचनाओं से अधिक है। युद्ध के फलस्वरूप इस क्षेत्र में भी एक अभाव-सा हो गया है। युद्ध-पूर्व के कुछ नाटककार ही बचे हैं: गर्हर्ट हाउपमान की रचनाएँ, मुख्यतः उनके प्रारंभिक नाटक, अभी भी खेले जाते हैं। बर्टोल्ट ब्रेश्ट के नाटक भी काफी लोकप्रिय हैं, हालाँकि वे अब पूर्व जर्मनी में जाकर बस गये हैं। कार्ल त्सुकमायर, जिन्होंने १९२५ में अपने विनोदी नाटक 'डेर फ्रोहलीश वाइनवर्ग' (खुशनुमा बगीचा) से जर्मन नाट्य-संसार पर विजय प्राप्त की थी, फिर स्वदेश लौट आये हैं और उनकी नयी कृति 'डेस टेंफेल जनराल' (शैतान का सेनाधिकारी) नात्सी जर्मनी के बारे में श्रेष्ठ नाट्य ही नहीं, युद्धोत्तर काल का जर्मनी का सर्वाधिक सफल नाटक भी है।

कुछ नयी प्रतिभाएँ भी सामने आयी हैं और नये नाटकों का निर्माण हुआ है। महायुद्ध के कुछ बाद ही वोल्फगांग बोर्शेट ने अपना एकमात्र नाटक 'ड्राउसन फोर डेर टुएर' (दरवाज़े के बाहर) लिखा, जिसमें एक युद्ध से लौटे सिपाही की ट्रैजेडी है, जो उस समाज में अपने आपको फिट नहीं बैठा पाता, जो युद्ध को भूल जाना चाहता है। लगभग इसी विषय पर एक अधिक व्यंगात्मक कृति है, कार्ल विटलिंगर की 'केनेन ज़ी डी मिल्श-स्ट्रास' (क्या तुम आकाश-गंगा को जानते हो?)। यह गत वर्षों का सर्वाधिक सफल नाटक है (१९५९ में यह ३३ थिएटरों में खेला गया)। इनके अतिरिक्त लिओपोल्ड आलसेन, वोल्फगांग हिल्डशाइमर, माटिआस ब्रान के नाटक भी

उल्लेखनीय हैं। किंतु जर्मनी में आज जो सर्वाधिक सम्मानित नाटककार हैं, वे हैं स्वित्ज़रलैंडवासी माक्स फ्रिश और फ्रेडरिश ड्यूरेंमाट जो अन्य आधुनिक नाटककारों की अपेक्षा ब्रेश्ट की रचनाओं से अधिक प्रभावित हैं और उनके इस सिद्धांत को मानते हैं कि दर्शक को भावातिरेक में न डालकर, उसकी आलोचनात्मक शक्ति को जागृत किया जाय।

पश्चिम जर्मनी में थिएटरों की गतिविधि तो काफी विशाल है, किन्तु असाधारण नये नाटकों की कमी है। इसका एक कारण तो नात्सीवाद का दीर्घ तानाशाही शासन है। दूसरा कारण जो महत्वपूर्ण है, वह यह कि आधुनिक साहित्य में मूल्यों का ह्रास हुआ है। केवल वहीं जहाँ जीवन के अर्थ तथा मूल्य में सक्रिय विश्वास हो, इस मूल्य तथा किसी विरोधी शक्ति के नाटकीय संघर्ष से वास्तविक भावनाएँ पैदा हो सकती हैं। बौद्धिक विचार साहित्य नाट्य की अपेक्षा कथा-उपन्यास के माध्यम के लिए अधिक उपयुक्त है, क्योंकि नाटक का आधार तो अभिनय है।

रेडियो-नाटकों के क्षेत्र में स्टेज पर सफल कई नाटक रंगमंच पर खेले जाने के पूर्व रेडियो के लिए लिखे गये थे। बोर्शेर्ट का 'ड्राउसन फार डेर टुएर' तथा आलसेन का 'फिलमोन उंड बाउकिस' पहले रेडियो पर ही सुने गये थे। गुएंटर आइश, अर्न्स्ट श्नाबेल तथा इंगबर्ग बाशमान मुख्यत: इसी नये माध्यम के लिए लिखते हैं। ड्युरेनमाट भी स्टेज और रेडियो दोनों के लिए लिखते हैं।

सोलह वर्ष बाद भी जर्मनी गत महायुद्ध के भयानक परिणामों से मुक्त नहीं हुआ है। पश्चिमी जर्मनी के सांस्कृतिक क्षेत्र की गतिविधियों और संभावनाएँ तो अनेक हैं, किन्तु अधिक व्यापक निर्णय के लिए अभी कुछ प्रतीक्षा करनी होगी। इस लघु लेख में तो यही दिखाया जा सकता है कि अतीत पर विजय पाने के लिए सर्वत्र कई प्रतिभाएँ सक्रिय हैं और वे विश्व-साहित्य से नये सम्बंध स्थापित करना चाहती हैं, तथा जीवन को समझने की दिशा में जर्मन योगदान के लिए प्रयत्नशील हैं।

अनु : ओंकारनाथ शर्मा

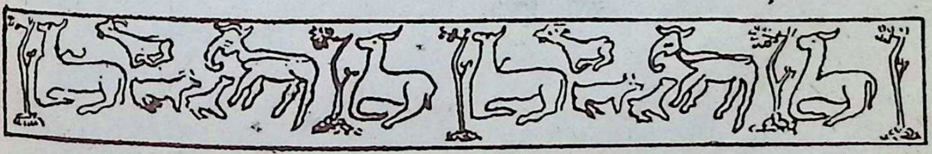

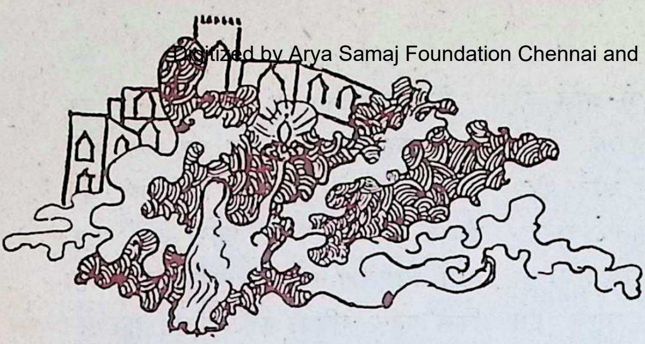

कुमारी श्रीराधा

परामर्श

चलें हम
वहाँ....वहाँ....बहुत दूर
इन सहारों से दूर.....
चंदन, रोली, कपूर की बाती लेकर
हमारे सपनों का महल
जोहता होगा राह।
प्रत्येक खिड़कियों पर प्रतीक्षा होगी।
चंदन, रोली, कपूर की बाती उसे अर्पित कर देंगे।
क्वांरा मन चैती गीत-सा
हवा पर बहा देंगे।

हम दो राहों से
इतिभ्रमित आये थे यहाँ;
और एकही प्याले में जहर पी गये थे;
अशेष फूलों की गंध हम एक दूसरे को अरप गये थे;
यह कथा इस रेततट पर लिखकर छोड़ चलें हम;
हमारे चरण-चिह्नों पर आने वालों को विभ्रम नहीं होगा;
चलें हम।

★

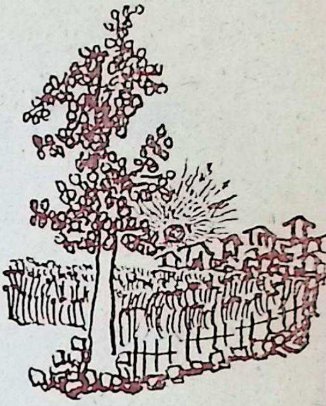

फागुनी शाम मन:स्थितियों में

विजेन्द्र

इन फागुनी शाम मन:स्थितियों में
हँसता दिन-फूल कचनार
खड़ा पास में
अधनंगा नीम सलोना
नयी फुनगियाँ : रस-भीने पोरो में थामें
ढलता दिन–काले बन कउओं की रात बुलाता
सुबह
सांझ
आता-जाता
केश राशि में छुपा हुआ–फ़सलों के चेहरों का चेहरा
अधपके पोस्त-खेतों में
पीकर चैता की भीनी खुशबू–गाँव–
ऊंघ रहा है सांझ–धुंआता
सूनी गलियों में
दबता पावों से पतझर अकुलाता
बातास अकेला
दिशा-दिशा कोने-कोने–गंधाता–
भटक गया है
किस-किस को उघरे अंग लगाता
डूब गया है–सूरज असमय
फागुनी शाम मन:स्थितियों में
कौन बुलाता !

★

महेन्द्रनाथ सिंह

काशी की चित्र-चर्चित दीवारें

भारत के आदिकालीन धर्म-केन्द्र, ज्ञान-केन्द्र और संस्कार-केन्द्र काशी की दीवारों पर लोक-कलाकारों द्वारा चित्रित चित्र, भारतीय लोक-कला के प्रतिनिधि प्रतीक कहे जा सकते हैं। कलाकार महेन्द्रनाथ सिंह ने यहाँ काशी के उन्हीं भित्ति-चित्रों पर प्रकाश डाला है।

काशी की चित्र-चर्चित ये दीवारें, जो अक्सर हमारी राहें रोक लिया करती हैं, वही आज हमारी चर्चा के विषय हैं। यहाँ के चित्र परम्परागत भित्ति-चित्रण शैली की कॅटगरी के हैं। इनके मुख्यतया दो रूप हैं। एक वे जिनकी परिसमाप्ति रेखाओं में हुई है, दूसरे वे जिनकी पूर्णाहुति रंगों से हुई है। कालिख की ये रेखाएँ कितनी सरस-सप्राण हो सकती हैं, इसे काशी के भित्ति-चित्र ही बता सकते हैं। चित्र अंकित करने का यहाँ के चित्रकारों का एक निश्चित आदर्श होता है। अतः इनकी तूलिका एक नपी-तुली सीमा के भीतर रहकर भी पूरी गति और अधिकार के साथ अपना अंकन कौशल प्रकट करती है। चित्र की प्रमुख रेखा एक होती है, जिससे रूप-सीमा (आउट लाइन) अंकित की जाती है। अन्य रेखाओं का प्रयोग बहुत कम रहता है; अलबत्ते जहाँ-तहाँ पैनी तूलिका के स्पर्शमात्र से चित्रों के मुख्य भाग को उभाड़ दिया जाता है। रेखाओं का यह

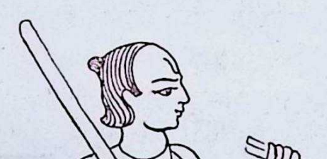
नारद

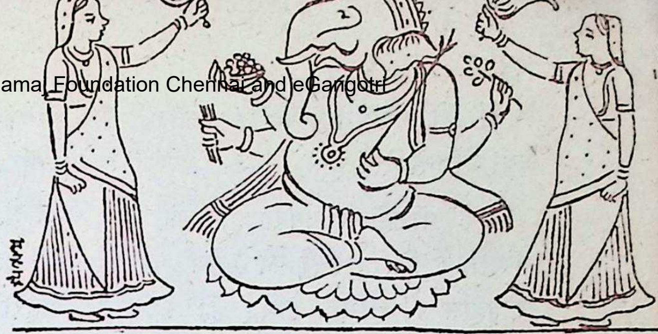

गणेश

अल्पतम प्रयोग, चित्रों को प्रभावपूर्ण बना देता है। इन चित्रों में सरल सपाट रेखाओं का अंकन फबता है, क्योंकि इसमें उतार-चढ़ाव के साथ गोलाई भी रहती है। काशी की भित्ति-रेखावली की सबसे बड़ी विशेषता यही है, कि उसकी इन सरल सपाट रेखाओं ने भावाभिव्यक्ति को एक तीव्रतम गति दी है।

लोक-कला की जननी काशी के निकट सम्पर्क में होते हुए भी, यहाँ के भित्ति-चित्र कला के उत्तम नमूने कहे जा सकते हैं। इन चित्रों में रंग-रेखाओं का सामंजस्य सुरुचिपूर्ण होता है, जिनके अल्पतम प्रयोग से भी चित्र निखर उठते हैं। चित्र उरेहने की उनकी अपनी तकनीक है। आज के ज्ञान-विज्ञान की इस दुरंगी दुनिया से एकदम तटस्थ रहकर भी ये कुम्हार चित्रकार (जिन्होंने कभी किसी कलाविद्यालय का मुँह नहीं देखा) अपनी रंग-रेखाओं में ऐसी नव-चेतना कहाँ से ले आते हैं? चित्र बनने से पहले इन रंगों की चमक-दमक कहाँ छिपी रहती है कि उनकी तूलिका का स्पर्श पाते ही हमारे मन-मस्तिष्क में रंगों का एक करंट दौड़ जाता है। यह है उनकी रंजनकला की विशेषता, जिसे उन्होंने अपने घराने की 'कलर-लेबोरेटरी' से प्राप्त किया है। लाल, पीला, हरा, नीला इनके खास रंग हैं, जिन्हें बड़ी सावधानी और सतर्कता से ये अपनें चित्रों में लगाते हैं। विरोधी रंगों की संगत इन्हें अधिक पसन्द है। प्रयोग के समय ये इन्हें एक-दूसरे से इस प्रकार अलग रखते हैं, कि प्रत्येक रंग का अस्तित्व बना रहता है। इस प्रकार के इन साफ-सुथरे और ताज़े रंगों का तरल समतल बिछाव

हिरन और तेंदुआ

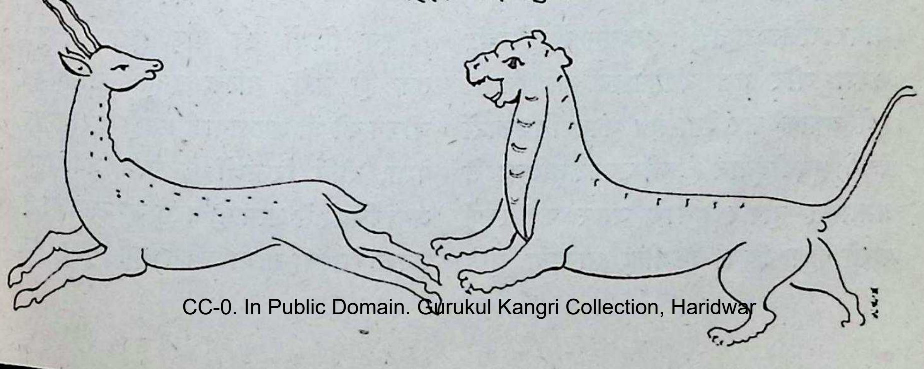

चित्रों को एक नया कलेवर और हमें नयी रोशनी देता है।

एक पौराणिक नगरी होने के नाते काशी के भित्ति-चित्रों की 'थीम' पुराण-इतिहास की ललित कथाएँ हैं; जिनपर चित्रकारों ने छककर तूलिका चलायी है। यहाँ के पुराने मकान प्रायः मंदिर टाइप के हैं। वैसे तो काशी में पग-पग पर मंदिर मिलेंगे। धार्मिक आख्यानों के चित्रस्थल यही हैं, जहाँ दर्शकों का ताँता लगा रहता है। यहीं पर शंकर-पार्वती, राम-सीता, कृष्ण-राधा आदि के फुटकल तथा कथा-चित्र अंकित रहते हैं। इसके अलावा सरस्वती, दुर्गा, काली, नारद, विष्णु, गणेश, हनुमान की चित्रावलियों से भी ये मंदिर रंजित रहते हैं। श्मशान में हरिश्चंद्र शैव्या और मृत रोहिताश्व का चित्रण हमें अवाक् कर देता है। भक्त चित्रकारों के ये हृदयोद्‌गार हैं, जो उनकी तूलिका से प्रवाहित होकर हमारे अंतर को स्पर्श करते हैं। चित्र तकनीक़ सामान्य होते हुए भी हमें आंदोलित कर देता है। इतने दक्ष हैं ये चित्र-रचना में कि अपने अंकनों में भरसक अनावश्यक विस्तारों को नहीं आने देते। ये भीड़-भाड़ और बाहरी दृश्यों से परिस्थिति और वातावरण उत्पन्न करने पर विश्वास नहीं करते, बल्कि रचना के प्रयोजन को दृष्टिगत चित्र में मुख्य पात्र का व्यक्तित्व इस प्रकार उभार देते हैं, कि हमारा ध्यान घटना विशेष पर हठात् चला जाता है। इनके सामने दीवार की ऊबड़-खाबड़ चौड़ी-संकरी कैसी ही ज़मीन क्यों न हो, उसे चित्रबद्ध करने की उत्सुकता को वे संवरण नहीं कर पाते और अपनी स्वच्छन्द रेखावलियों से चित्र की एक नयी भूमिका रच देते हैं।

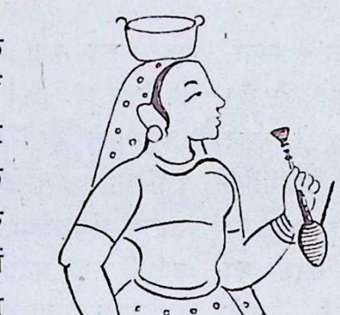
घाट को जाती हुई धोबिन

इन चित्रों की दौड़ पुराण-इतिहास तक ही नहीं, बल्कि इन्होंने सामाजिक जीवन को भी अपनाया है। यहाँ के रोजगार, पेशा, रीति रिवाजों के चित्र अपेक्षाकृत अन्य चित्रों से अल्प हैं, परंतु जो उपलब्ध हैं, उनका सीधा-सांधा अंकन हमें मुग्ध कर

लेता है। साफा पानी और कुश्ती बनारसियों के खास शगल हैं। अतः कुश्ती लड़ते, मुगदल भाँजते पहलवानों के चित्र भी यहाँ दीख पड़ते हैं। आये दिन हमारे समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा भ्रष्टाचारों से क्षुब्ध होकर उन्होंने अपनी तूलिका-तलवार से उसकी सफाई करने की कोशिश की है।

इन चित्रों का दूसरा आकर्षण हमारे घरों की दीवारों पर देखने को मिलता है। ये चित्र ब्याह के मौके पर रचाये जाते हैं; द्वार की शोभा बढ़ाने के लिए। हमारे लगन और उत्साह के प्रतीक हैं ये चित्र। द्वार के मध्यभाग में चँवरयुक्त स्त्रियों के बीच गणेश का चित्र मांगलिकता स्वरूप 'पेनल डिजाइन' के रूप में अंकित रहता है। साज-सज्जा के लिए अगल-बगल केले के वृक्ष, फूल-पत्तियों के आलंकारिक आलेखन, तथा सर पर मटका धरे ग्वालिनों के अंकनों से वातावरण को भव्य और बुलन्द बनाया जाता है।

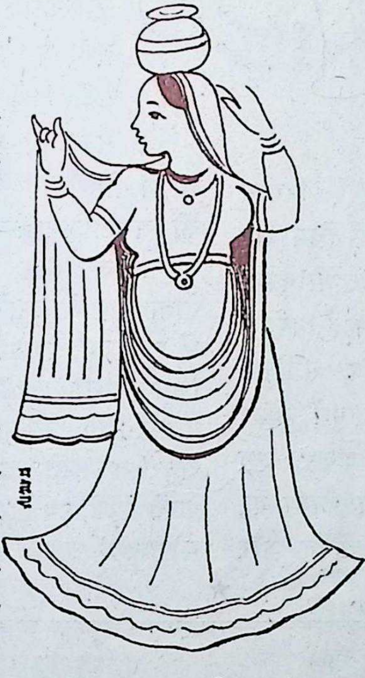

ग्वालिन

हमारे ठाट-बाट और हौसलों की इतिश्री यही नहीं। इसी द्वार के दोनों ओर दो लैस द्वारपाल भी अंकित रहते हैं। यहाँ तक तो ग़नीमत है। अंग्रेज टोपधारी साहबों को भी इन्होंने पहरेदारी में घसीटा है। यह है काशी की रईसी। क्या ही मीठा चुभता व्यंग्य है। द्वार से हटकर जब हमारी दृष्टि समूची दीवार पर जाती है, तो वहाँ के सुसज्जित हाथी, घोड़े और ऊँटों की अगवानी का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक अंकन मिलता है। हाथी नसीनों के दिन लद गये, लेक़िन हमारे हौसले पूरे न हुए। इसी की पूर्ति हेतु हम आज इसे रचाते हैं। दूसरे यहाँ की तंग गलियों में ये विशालकाय जीव समा नहीं सकते, इसलिए भी इन्हें चित्रबद्ध कराना आवश्यक हो जाता है। इन्हीं दीवारों पर यत्र-तत्र शेर, चीता, तेंदुआ, हिरन, साँड़, तोता और मोर आदि भी सजीवता के साथ अंकित रहते हैं।

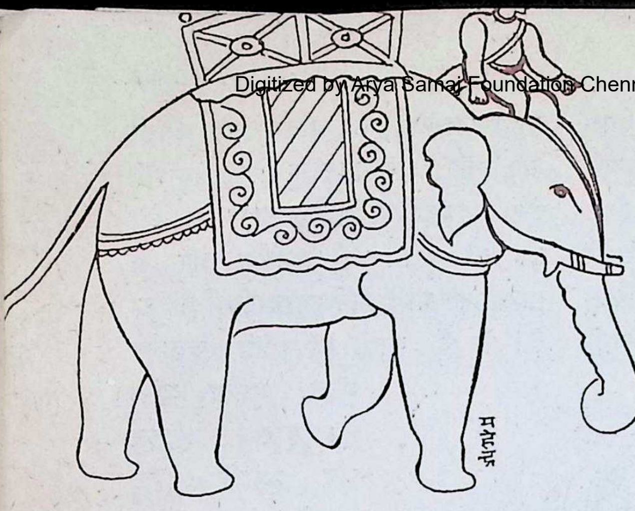

हाथी

आज भित्ति चित्रण का रिवाज उठता जा रहा है, क्योंकि ये चित्र अब कागज़ पर उतर रहे हैं। फिर भी काशी इस माने में अभी पूर्ण जागरूक है, क्योंकि इस कला ने यहाँ के दर्शन, साहित्य, जीवन और रहन-सहन को पूर्ण रूपेण आत्मसात् कर लिया है। शंकर, बुद्ध और पंडितराज ज़गन्नाथ की काशी का निरालापन यहाँ के सादा जीवन और उच्च विचारों में देखा जाता है। एक अदने आदमी का भी अपना व्यक्तित्व होता है। वह किसी के सामने झुकना नहीं जानता। जाने-अनजाने यही रवानी इन चित्रों में भी उतर आयी है, जहाँ मानव आकृतियों से लेकर पशु-पक्षियों तक के उभरे हुए सीने और उठी हुई गर्दनें अंकित की गयी हैं। काशी के भित्ति-चित्रण की ये निजी विशेषताएँ हैं, जो भारत की अन्य चित्रशैलियों में नहीं मिलती। कहना न होगा कि इसी कलात्मक वातावरण ने हमारे बीच अभी हाल ही में एक नयी चित्रशैली को जन्म दिया है, जिसे काशी शैली कहते हैं। यहाँ के दीवार-चित्र सदियों से हमारा आत्म-अनुरंजन करते आरहे हैं और आगे भी करते रहेंगे, क्योंकि इस सांस्कृतिक नगरी को सकल कलाओं का संबल प्राप्त है।

★

- त्यौहार के दिन ?
- शादी-ब्याह ?
- जन्म-दिन ?
- साठवीं वर्ष गाँठ ?

उपहार के लिए

अति उत्तम पुस्तक

सभी शुभ अवसरों पर सभी के लिए
एक आकर्षक पुस्तक

प्रेमोपहार

[हिन्दी भाषा में]

मूल्य—२.५० रु. डाक-द्वारा—३.५० रु.

LITTLE FLOWER CO. (LIFCO), MADRAS-17; M. DAMODARAM & CO., APPAH BLDGS., MADRAS-1; HIGGINBOTHAMS' RY. STALLS; POPULAR BOOK DEPOT, LAMINGTON RD., BOMBAY-7; AND OXFORD BOOK & STATIONERY CO., . SCINDIA HOUSE, NEW DELHI--1.

दो मराठी कविताएँ

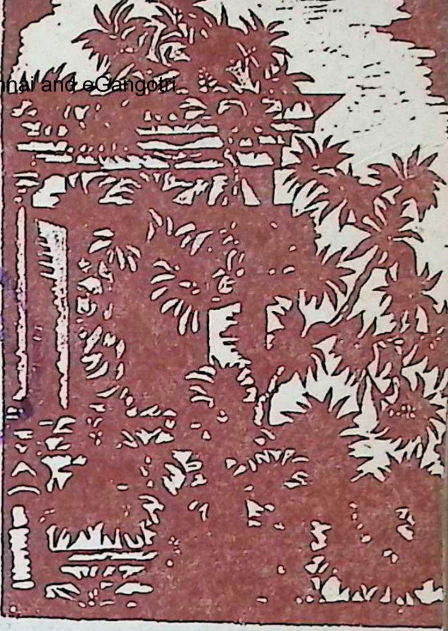

बिन्दा करन्दीकर

●

रूपक

रात का वह अर्ध प्रहर
सपने मुंहजोर।
उसके त्रिभंगी नेत्र
तन की पोर-पोर चाँदनी से भीगी,
झुकते क्षितिज के ऐसे दो पाटों में से
झरता है उसके रूप का जल।
चाँद का बिम्ब नीम के पेड़ में छिपता है;
असमय किया हुआ वह कर्म—
जब रतनारा अंधियारा
रंध्र-रंध्र से बहता है
और प्रकाश खुद बहक जाता है।
तब खिड़की के सात सींखचे मन मारे
जड़ हो जाते बेचारे।
वह आधी रात
और सपने मुँहजोर, शोख !

इन्दिरा

●

सचेत

आज मैं जागी अखंड
आँखों में रात लिए।
मैं अखंड सावधान
कि कहाँ उड़ेगा विहग कोई
कहाँ उसके पंखों का
तिरछा घुमाव देखेगी रात ?
मैं अखंड सावधान
कि कहाँ रुकेगा वह जुगनू
कहाँ उसकी चमकती किनार
छू लेगी रात ?
रक्त की बूंद-बूंद : जैसे
बनी पहरेदार देख रही : कहाँ पौ फूटेगी ?
कहाँ भीगेंगे ओसकणों से
पलकों के श्यामपुलिन ?

अनु० दिनकर सोनवलकर

●

वेद राही

अजनबी हाथ

[कहानी]

जब ब्याह कर आयी थी तो, कुंतला का रूप ऐसा था, कि आसपास का समूचा रमणीत्व, ईर्ष्या से पागल हो गया था, उसके पतिदेव उसकी हर पदचाप पर प्राण बिछाते थे। लेकिन उन्हीं अपने देवता को आग की लपटों से बचाने के लिए, उसने जब स्वयम् उन लपटों का आलिंगन कर अपने रूप की आहुति दे दी—तो......तो वह सव के लिए परायी, अजनवी, निपट अकेली हो गयी संसार में...?

●

चूल्हे में आग ने उग्र रूप धारण कर लिया था।

कुछ क्षणों के लिए वह वाहर लपकती लपटों को एकटक देखती रही। उसकी आँखें विलकुल निष्प्राण थीं। आग की ओर देखते-देखते सहसा न जाने क्या हुआ, उसका रोम-रोम पसीने में सरावोर हो गया और आँखों के आगे अँधेरा छा गया। अपने आपको सम्भालने के लिए उसने देह की सारी शक्ति वटोरी—और जब उसे कुछ राहत मिली, तो वह चूल्हे से ज़रा हटकर बैठ गयी।

इसी आग ने उसे जीवित-मत बना दिया है।

उसने अपने पैरों की ओर देखा; एक पाँव पर एक बड़ा-सा दाग़ था, सफेद और काला दाग़—जैसे कोढ़ का निशान होता है। दूसरे पाँव पर कुछ सफ़ेद और काली रेखाएँ पड़ गयी थीं। और एक उँगली विलकुल ही झुलस गयी थी; उसपर का नाखून भी शेष न रहा था। फिर उसने शलवार को ज़रा ऊपर किया; वहाँ भी वैसे ही दाग़—सफ़ेद और काले—सफ़ेद और काले—दोनों जाँघों पर, भुजाओं पर, वक्ष पर, गले पर, मुँह पर—उसकी आँखों में जाले तैरने लगे। दो कुनकुने आँसू पलकों की सीमाओं पर रुक-से गये। मानो आँसू भी सोच में पड़ गए हों कि हमें तो फिसलने के लिए समतल-

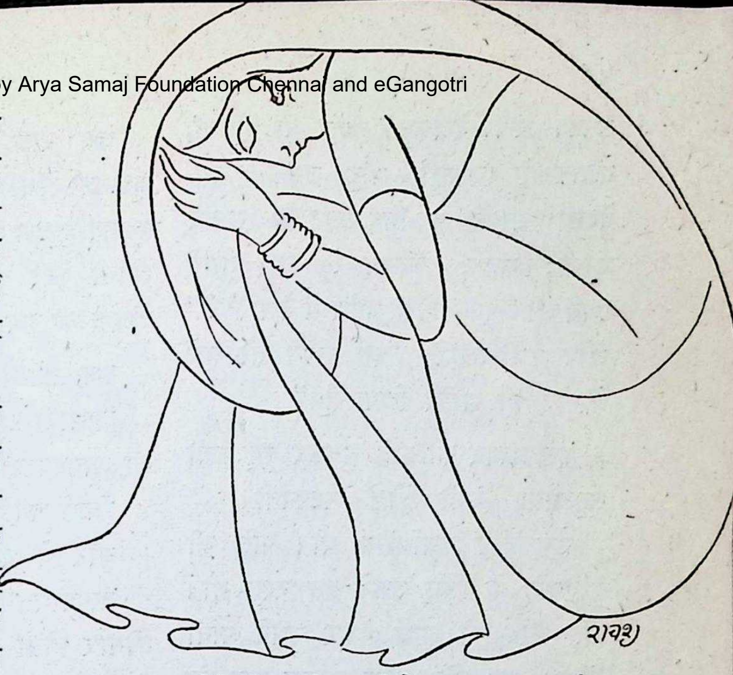

स्निग्ध मुख चाहिए, इस ऊबड़-खाबड़ जली हुई त्वचा पर हम कैसे फिसलें। सम्भवतः हाथों ने आँसुओं की द्विविधा भाँपली; उन्होंने आँसुओं को अपनी पोरों पर उठा लिया।

खिड़की में से हवा का एक झोंका आया और उसका सिर नंगा हो गया। कहीं-कहीं अब कोई-कोई बाल उग रहा है। एक जगह पर तो त्वचा बिलकुल सड़ गयी है। उसने अविलम्ब पल्ला सिर पर ले लिया। दृष्टि चूल्हे पर जा पड़ी। लपटें पूर्ववत् बाहर को लपक रही थीं, अजगर की जिह्वाओं के समान। वह लपलपाती जिह्वाएँ उसे अपनी देह पर रेंगती अनुभव होने लगीं। रोम-रोम खड़ा हो गया और समग्र देह पुनः पसीने में सराबोर हो गयी। हृदय की गति तेज़ हो गयी, आँखें भर आयीं और आँसू एक-एक कर झुलसे चेहरे पर गिरने लगे।

आँसू पोंछने के लिए उसने फिर हाथ ऊपर उठाये कि दृष्टि हाथों पर स्थिर रह गयी। दोनों हाथ कैसे अजनबी से लगे। सारा शरीर तो जल चुका, ये हाथ कैसे बच गये?– काले शरीर पर जैसें सफ़ेद-सफ़ेद दाग़ पड़ जायँ, बिलकुल वैसे ही ये बेदाग़ हाथ इस जले हुए शरीर पर दाग़-से लगते हैं। गोरे-गोरे स्निग्ध, सुकोमल हाथ; उँगलियाँ रेशमी, नाखून गुलाबी और हथेलियाँ मानो पशमीने का गुच्छ-गुच्छ !

दृष्टि हाथों पर जमी रही।

आज से छह महीने पहले उसका सारा शरीर ही हाथों के समान गोरा, स्निग्ध और सुकोमल था। पाँव थे कि कँवल के दो फूल; जाँघें–जिन्हें देखकर वह स्वयं भी लजा जाती थी, भुजाएँ कभी नंगी नहीं रखती थी; चेहरे का रूप-रंग देखकर सहेलियाँ कहतीं, "हम तुम्हारे साथ शोभा नहीं देतीं।" आँखों में काजल डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी; और अंधेरे-काले बाल नितम्बों से नीचे तक झूलते रहते।

विवाह के बाद जब वह इस घर में आयी तो गली-मुहल्ले की स्त्रियाँ उसे देखती ही रह गयीं, सभी ओर उसीके रंग-रूप की चर्चा होने लगी। सास ने मूर्ति समझ उसे सजाये रखी। ननदें

उसका रूप देखकर बाहर से हँसतीं, भीतर से जलतीं, और उसके हृदय-देवता उसके इर्द-गिर्द लट्टू के समान घूमते; कहते, "कुंतला ! कभी तुमने स्वयं भी अपने आपको दर्पण में देखा है ?" और कभी छेड़ते, "इस रूपने तो हमें बे-मोल ही खरीद लिया है।"

इस प्रकार की बातें सुनकर वह कभी सकुचाती, कभी आँखें मटकाती।

उस रोज कर्वा-चौथ थी। पति की सुदीर्घायु के लिए उसने व्रत रखा था। रात चाँद को अर्घ्य देकर उसने पानी पिया। कुछ थोड़ा-बहुत खाकर जब वह अपने देवता के चरणों में आयी तो, उन्होंने कहा, "निराहार तो आज हमें रहना चाहिए था।"

"क्यों ?" उसने पूछा।

"बिना धनुष तोड़े हमें सीता मिली है, और बिना स्वर्ग में गये उर्वशी।"

"बिन-पंखों के आप क्यों मुझे आकाश में उड़ाते हैं ?"

"तुम तो धरती का चाँद हो, तुम्हें आकाश में उड़ने की क्या आवश्यकता ?"

"बस चुप रहो—"

पुनः पूछा था उन्होंने—"अर्घ्य दे आयीं ?"

"जी हाँ।"

"हमें भी दे लेने दीजिए अर्घ्य; हमारा चाँद भी तो हमें अभी-अभी दिखा।"

"हे ईश्वर मैं कहाँ जाऊँ ?"

उस रोज दीवाली थी। परन्तु वह कुछ अस्वस्थ थी। सर्दी-सी लग गयी थी; हलका-हलका बुख़ार हो गया था। देवता ने अपनी देवी को अस्वस्थ पाया तो एक दीपक भी अपने हाथ से नहीं जलाया।

"आपको दीपक तो जलाने थे।"

"हमारी लक्ष्मी अस्वस्थ है, हमें प्रकाश की आवश्यकता नहीं।"

"बातें कोई आपसे सीखे।"

और ये बातें-बातें ही प्रमाणित हुईं। तत्पश्चात शनैः-शनैः वह अधिक बीमार होती गयी थी। डॉक्टर ने निमोनिया घोषित किया था। उसके देवता अधिक समय तक उसकी सेवा-सुश्रुषा में लगे रहते थे।

उस समय कोई और घर में नहीं था। ननदें पढ़ने के लिए गयी हुई थीं, सास कहीं पास-पड़ौस में थी। दवा खाने के लिए गर्म पानी चाहिए था। उन्होंने स्वयं ही गर्म करने के लिए पानी चूल्हे पर रखा। वह उसकी बीमारी से घबरा गये थे। कुछ ही समय के बाद जब वह गर्म हुआ पानी लेने के लिए गये, तो न जाने कैसे उस कपड़े को आग ने छू लिया, जिससे वह गर्म कटोरा उठा रहे थे। आग बुझाने के प्रयत्न में आगने उनके कुर्ते को छू लिया, और देखते-देखते आग गले तक पहुँच गयी।

दूसरे कमरे में खाट पर लेटे-लेटे

उसने अपने 'देवता' की चीख़ सुनी। वह दौड़कर, अविलम्ब रसोई में पहुँची। आग का उग्ररूप देखकर भी वह डरी नहीं, और लपककर अपने देवता को अपनी भुजाओं में ले लिया। आग को अपने वक्ष से लगा लिया। देवता तो बच गये, परन्तु आग ने उसे हाथ से न जाने दिया। नागिन ने कब रूप और रंग देखा; देखते-देखते अंधेरे काले बाल राख हो गये, और शलवार-कमीज़ में पूर्णतया आग लगने से सारी देह झुलस गयी। क्षणों में वह रूप की देवी चीखें मार-मार कर धड़ाम-से गिर पड़ी। देवता उसका नृत्य देखते रहे—भयानक नृत्य।

उसे झट-से अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टर आशा न बँधा सके; परन्तु उसे तो बचना था, दुनिया का एक अन्य पक्ष देखने के लिए, जिससे वह सर्वथा अनभिज्ञ थी। तीन महीनों में उसके सारे घाव भर गये।

दो महीने हो गये उसे अस्पताल से घर आये हुए। अब न 'वह' पहले जैसे हैं, न घर ही पहले जैसा दिखायी देता है। वह 'देवता' जिन्हें उसके रूप ने बे-मोल ख़रीदा था, और जो उसे अर्घ्य देते थे, अब उसकी ओर देखते भी नहीं थे। सास, जिसे बहू को सजाने-सँवारने से अवकाश नहीं था, अब हर समय उसके माथे पर बल पड़े दिखते थे। ननदें, जो उसे देखकर पहले बाहर से हँसती, भीतर से जलती थीं, अब दयामय दृष्टि से उसकी ओर देखती थीं। यह घर—यह कमरा—कमरे की एक-एक वस्तु अपरिचित लगती थी। अपना सब कुछ अज़नबी-सा लगता था। वे दो हाथ तो सबसे अधिक अज़नबी लगते थे, जो समग्र देह जल जाने पर भी नहीं जले। दोनों हाथ पूर्ववत् गोरे, स्निग्ध, सुकोमल थे। उंगलियाँ रेशमी, नाख़ून गुलाबी और हथेलियाँ जैसे पशमीने का गुच्छ-गुच्छ।

अजनबी लोगों के बीच घिरकर वह घबरा गयी थी।

कल सास अपने बेटे से कह रही थी, "राम! अब कब तक विवाह नहीं करोगे तुम? उसकी तो अब शक्ल भी नहीं देखी जाती।"

उसने चूल्हे की ओर देखा। आग की लपटें वैसे ही अजगर की जिह्वाओं-सी बाहर को लपक रही थीं। फिर उसने अपने हाथों की ओर देखा—कितने सुन्दर—बीते युग की एकमात्र स्मृति!

अनायास एक भयानक विचार उसके मन में कौंधा; वह धीरे से उठी और चूल्हे के समीप आ खड़ी हुई। हाथों की ओर देखकर उसकी आँखें भर आयीं। परन्तु इससे पहले कि आँसू गिरते, घर भर में उसकी चीखें गूँज उठीं।

घर के सभी लोग घबराये हुए वहाँ पहुँचे। देखा कि बहू मूर्च्छित हो गयी है और उसके दोनों हाथ आग में झुलसे हुए हैं।

★

रजनीकान्त मोदी

क्या धरती पर अमर जीवन सम्भव है?

जीवन-जगत् से परे किसी मोक्ष या ब्रह्म-परिनिर्वाण में अमरत्व की प्राप्ति तो अब पुरानी बात हो चुकी। रोग, बुढ़ापा और मौत जीवन की समस्याएँ हैं; जीवनातीत अवस्था में तो उनका प्रश्न ही नहीं उठता। क्या इस धरती पर, इसी जीवन में–हम मौत पर सदेह विजय पासकते हैं? प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने आज के मानव मन की इसी ज्वलन्त जिज्ञासा का उत्तर देने का प्रयत्न किया है।

इधर अखबारों में ऐसी खबरें छपती रहती हैं, जिनसे पता चलता है कि दुनिया के चारों कोनों के वैज्ञानिक बुढ़ापे और मौतपर क़ाबू पाने के लिए ज़बरदस्त प्रयत्नों में जुटे हुए हैं। बेल्जियम के लीज नामक स्थान पर संसार के अग्रणी आयुष्य वैज्ञानिकों की एक अंतर्राष्ट्रीय काँग्रेस होने की खबर भी हाल में ही मिली थी। बुढ़ापे के कारणों की खोज और उनपर विजय पाने के उपाय, एक ऐसा विषय है, जो हर मामूली से मामूली आदमी की कल्पना को भी छूता है।

आदिम काल से आदमी समय की उन महान शक्तियों से लड़ता रहा है, जो उसके शरीर का विनाश और क्षय करती हैं। एक वैदिक द्रष्टा ने कहा है: "आयु की वृद्धि करके तुम सौ शरद् (वर्ष) जियो।" और एक उपनिषद् के ऋषि भी कहते हैं: "यहाँ सारे काम त्याग की भावना से करते हुए तुम्हें सौ बरस जीने की इच्छा करनी चाहिए।"

वह क्या चीज़ है, जो आदमी में दीर्घायु होने की इच्छा जगाती है? आज आमतौर पर आदमी की उम्र की औसत सीमा यदि ७० बरस है, तो वह १०० बरस

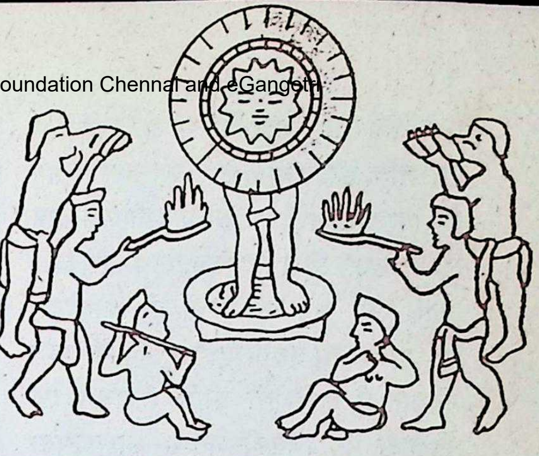

जीना चाहता है। यदि वह १०० बरस जीने लग जाय, तो १५० बरस जीना चाहेगा। वैज्ञानिकों का ख्याल है कि आदमी को प्राकृतिक रूप से कम से कम १५० बरस तो जीना ही चाहिए। कारण यह है कि प्रकृति में प्रत्येक प्राणी अपनी परिपक्वता की उम्र से पाँच गुना अवधि तक जीता है। मनुष्य ३० बरस की उम्र में परिपक्व होता है, इसलिए उसे १५० की उम्र से पहले नहीं मरना चाहिए। पर यदि १५० बरस जी पाने के वैज्ञानिक प्रयत्न में हम सफल हो गये, तो हम फिर उससे भी ज्यादा जीना चाहेंगे। बात असल में यह है कि हम मरना नहीं चाहते हैं। हम तो सदा जीवित रहना चाहते हैं। अर्थात् हम अमरता चाहते हैं।

दुःखों से घबराकर कभी-कभी आदमी मरने की सोचता है, लेकिन यह एक क्षणिक आवेश मात्र है। यह उसके मन की स्वाभाविक स्थिति नहीं है, परिस्थितियों के दबाव से वह ऐसा सोच लेता है। असलियत तो यही है कि आदमी ज़िंदगी को प्यार करता है और मौत से डरता है।

मृत्यु से युद्ध

प्रत्येक जीवित प्राणी सोते या जागते, सचेत या अचेत अवस्था में, जीवन के हर क्षण में बीमारी, विनाश और मौत से लड़ता रहता है। यह लड़ाई हमारे मन की सचेत (ऊपरी) सतह पर न होकर भीतरी सतह पर चलती रहती है। इस भीतरी सतह को प्राण का तल कहा जाता है। जीवनी शक्ति के सारे खेल इसी तल पर चलते हैं। मनुष्य के शरीर में जो भी रासायनिक परिवर्तन या चढ़ाव-उतार होते हैं; वे भी इसी तल पर होते हैं।

हर आदमी के मन में यह सवाल उठता है, कि क्या बुढापा और मौत अनिवार्य है? कम से कम आदमी यही मानता रहा है, कि इनको नहीं टाला जा सकता; क्योंकि अबतक का मनुष्य का सारा इतिहास यही बताता है, कि मनुष्य जन्म लेता है, बूढ़ा होता है और मर जाता है। इसी चीज़ ने मनुष्य के भीतर मृत्यु और बुढ़ापे की अनिवार्यता के भाव को अत्यंत गहरा कर दिया है। पर मनुष्य के भीतर जो बुढ़ापे और मौत से ऊपर उठने की

ऐसी तीव्र चाह और धारणा है, यही क्या इस बात को बताने के लिए काफी नहीं है, कि एक न एक दिन उसकी यह चाह पूरी होकर रहेगी ? भूतकाल में जो कभी नहीं हुआ, वह भविष्य में भी न होगा, यह दलील तो इसीलिए ग़लत है, कि आज विज्ञान ने कई ऐसी चीज़ें तैयार करके दिखादी हैं, जिनकी मनुष्य को कल्पना तक न थी। स्वयं उपनिषदों ने स्पष्ट घोषणा की है कि हमें मौत से अमरत्व की ओर जाना है। अब तक के मनुष्य के सारे विपरीत अनुभव के बावजूद जो उसके प्राण के तल में से यह अमरता की चाह उठी चली आ रही, वह निराधार नहीं हो सकती।

योगी श्री अरविन्द ने इसका उत्तर दिया है : "मौत वह सवाल है जो प्रकृति जीवन से पूछती है, वह जीवन को यह भी याद दिलाती है कि उसे अभी अपने आपको प्राप्त करना बाकी है। अगर मौत का आक्रमण न होता तो, आदमी सदा अपूर्ण, अधूरा ही रहता। लेकिन मौत का तक़ाज़ा मनुष्य के भीतर पूर्ण जीवन की चाह जगाता है और तब वह पूर्ण जीवन के साधन और संभावनाओं की खोज करता है। शारीरिक अमरता अभी हमने प्राप्त नहीं की है, फिर भी हमारा अंतिम उद्देश्य वही है। मौत आत्मा के अविच्छिन्न जीवन में एक घटना मात्र है। चूँकि हम मौत को मानते हैं, इसीलिए वह हमारे पास आती है। आदिम ज़माने से आजतक के अनुभव ने ही मनुष्य को मौत की मान्यता विरासत में दी है। पर हमें इस मान्यता को उलट देना है।"

आध्यात्मिक आवश्यकता

पर हमें यह भी याद रखना है कि आज सिर्फ़ भौतिक शरीर की आयु एक हद तक बढ़ाकर ही मनुष्य अमरता नहीं प्राप्त कर सकता। इस बारे में भी श्री अरविन्द ने कहा है कि विज्ञान और रहस्य विद्या यदि अनिश्चित काल तक शरीर को बनाये रखने के साधनों का अविष्कार भी कर लें, फिर भी भीतर जो आत्मा विकास कर रही है; वह जब उस शरीर को अपने नये विकास के लिए योग्य साधन नहीं पायेगी, तो वह कहीं न कहीं से उसे छोड़कर निकल जाने का मार्ग ढूँढ़ ही लेगी, और दूसरा शरीर धारण कर लेगी। मौत सिर्फ भौतिक और शारीरिक कारणों से ही नहीं होती है, उसका सच्चा आंतरिक कारण तो नव-विकसित आत्मा की आध्यात्मिक आवश्यकता है। इसी आंतरिक कारण से आत्मा एक चोला छोड़कर दूसरा चोला धारण करती है। मौत और बुढ़ापे के शारीरिक कारण तो मात्र बाहरी कारण हैं। आत्मा की अपनी भीतरी ज़रूरत के लिए जब उसका वर्तमान

शरीर अनुपयोगी और निकम्मा हो जाता है, तो बाहर के शारीरिक निमित्त जुटाकर वह उस जीर्ण-शीर्ण चोले को फेंक देती है। शरीर अपने विकास और ह्रास के लिए अभी भी निम्न प्रकृति के नियमों का पालन करता है, पर इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसे चिरकाल तक प्रकृति का ही बने रहना चाहिए। जड़-तत्व के विकास में आत्मा और शरीर का इस तरह का संबंध अनिवार्य था, मगर अब विकास के आगे बढ़ने के साथ उस संबंध को उलटा जा सकता है और आत्मा वह पद पा सकती है, जो उसे पाना चाहिए। देह और प्राण की जो शक्तियाँ उसके अस्तित्व को थामे रखती हैं, उनका वह स्वामी हो सकता है। अगर शरीर जड़ और निकम्मा हो जाय तो, अपनी इच्छा के जोर से वह उसे मनचाहा रूप दे सकता है। भोजन, विटामिन आदि बाहरी चीजों पर निर्भर किये विना ही वह जीवन के मूल से सीधे जीवनी शक्ति खींचकर जबतक चाहे शरीर को जीवित रख सकता है। शरीर के प्रत्येक जीवाणु में वह भगवान् की चेतना और आनन्द को देख सकता है। वह चेतना और आनन्द मूलतया अमर होते हैं। श्री अरविन्द के योग के प्रगतिशील रूपांतर का अंतिम लक्ष्य यही है। इस प्रकार जब हमारे भीतर वास कर रहे आत्मा या भगवान् का चैतन्य और अमृत ही हमारे शरीर के जीवांशों में पिंड धारण करने लगेगा तो, शरीर आत्मा के लिए उपयुक्त वाहन बन जायेगा। तब आत्मा के लिए अपने पार्थिव वाहन शरीर को छोड़ने की ज़रूरत नहीं रह जायगी।

बेशक यह चीज़ वैज्ञानिक आयुष्य विजय की विद्या से बहुत परे की है। पर यह एक शुभ लक्षण है कि वैज्ञानिक भी अपने तरीक़ों से मनुष्य की उम्र की अवधि बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। युग-युगों से पश्चिम की अधिक से अधिक उम्र की धारणा ७० बरस की और पूर्व की 'शत शरद्' यानी १०० बरस की थी। विज्ञान ने जो उस धारणा को तोड़कर मानवी आयु को १५० तक बढ़ा देने की सम्भावना सामने रखी है, यह भी अपने आपमें एक सही दिशा में ही प्रगति का क़दम है। कुछ भी करके मौत पर से हमारा विश्वास हट जाना चाहिए। यह हमारे भीतर के आत्मा का ही तक़ाजा है, जो हमें चिरकाल से हमारे दिमाग़ में जमी हुई रूढ़ और जड़ धारणाओं को तोड़ने को मजबूर करता है। पूर्व धारणाओं के इन जालों को तोड़कर ही हम धरती पर अमर जीवन स्थापित कर सकेंगे।

* * *

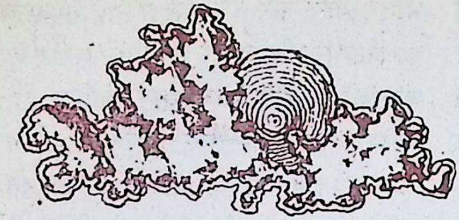

अवधेशकुमार

अस्ति और वृत्त

प्लास्टिक मनीबेग की तरह रात निकली
बेग यह मेरी पाकेट में
रहने दो,
रहने दो मेरे अच्छे दोस्त !
चाँद जहाँ पीला पड़ जाता है
चाँदनी शर्मीली जहाँ होती है
वह स्थल,
वायु में शब्द जहाँ ग्रंथित है
अर्थ जहाँ भुक्त हैं शब्दों में
वह स्थल,
और वह स्थल
जहाँ कामदा शर्वरी
सर्वथा रिक्त, निःस्व हो जाती है,
मेरी अस्ति में रूपायित
होने दो। मेरे दोस्त
मेरे अकिंचन !

*

रामनरेश पाठक

●

चतुर्वर्ग सिद्धि

आज मेरा गृह चंदन, अगरु धूप
तथा शाकल्य से अनुपचित्रित है।
संस्कृति तुम! मानसरोवर से लौटी आयी हो।
तुम्हारे साथ अमित था, अनु!
(धर्म तुम्हारे खाते में जमा हुआ)
आज मेरा आमोद-गृह मद्य, स्वेद, शैथिल्य
और ब्रह्मानंद-सहोदर से अनुषंगित है,
रति तुम! नृत्य-मदालसा, श्रांता लौटी आयी हो,
तुम्हारे साथ का पुरुष रंजन था अनु!
(काम-सिद्धि तुम्हें हो गयी)
कल या परसों मेरा यह विश्राम-गृह, करुणा, वैराग्य, संयम
और क्षमा से अनुदीप्त हो जायगा।
त्यागमयी तुम! पांडिचेरी चली जाओगी
तुम्हारे साथ सुधीर होगा, अनु!
(मोक्ष तुम्हें मिल ही जायगा)

(सुनो, अनु।
आज मैंने अपनी सारी संपत्ति तुम्हारे नाम कर दी है)
इस क्षण के बाद मेरा यह कुटीर
दैन्य, विवशता, अभाव
और प्रश्नचिह्नों से प्रतीकित हो जायगा।
लालसामयी तुम! स्वामिनी हो जाओगी।
तुम्हारे साथ मैं नहीं रहूँगा
मैं तो मात्र अर्थदाता था तुम्हारा
(अर्थ तुम्हें मिल ही गया)
एक प्रार्थना सुनो, अनु, मेरी एक बात मानना,
आनंद के धरातल तक तुम्हें पहुँचाने वाला
यह जो संवाहक सिन्दूर है न,
उसे अब मत लगाना एक सींक भर भी नहीं।

दीनानाथ शास्त्री

पुनर्जन्म : मनोविज्ञान की प्रयोग-शाला में

आये दिन अखबारों में पूर्वजन्म स्मृति की अनेक घटना छपती हैं, और उनके सत्य होने के प्रमाण भी मिलते हैं पर आज का वैज्ञानिक मानव उनके विज्ञानतः प्रमाणित होने पर ही उन्हें मान्य स्वीकार कर सकता है। असामान्य मनो-विज्ञान (पेरा-सायकॉलॉजी) के शोधक और साधक पुनर्जन्म की मनोवैज्ञानिक शोध में संलग्न हैं। यदि यह तथ्य विज्ञानत प्रमाणित हो गया, तो आज की हमारी सामाजिक-नैतिक सम-स्याओं के हल, और नूतन मानव-सम्बन्धों के निर्माण के लि एक अपूर्व क्रान्तिकारी भूमिका प्रस्तुत होगी।

१९५९ के अखिल भारतीय दर्शन परिषद् में पंडित हरिमोहन झा अपने साथ एक जीवित अचम्भा लेकर सम्मिलित हुए। उन्होंने पुनर्जन्म पर अपना प्रबन्ध प्रस्तुत किया था और साथ ही एक साढ़े चार वर्ष की वालिका भी, जिसे अपने पूर्व-जन्म की स्मृतियाँ अबतक शेष थीं। वालिका का नाम कुमकुम था और वह बिहार के प्रख्यात विद्वान डा. व्रजकिशोर वर्मा की पुत्री थी। कुमकुम के मनपर पूर्व-जन्म की स्मतियों की छाप स तरह पड़ी हुई थी कि वह दिन-रात उसी परिवार में लौट जाने को मचल करती, जहाँ वह पहले जन्म में जी आयी थी। उस परिवार में उसका पुत्र था पुत्रवधू थी और साथ ही पौत्र-पौत्रियाँ भी। उनकी याद में उसे इस बात क एकदम होश नहीं था कि वह स्वयम् भी एक छोटी-सी बच्ची ही है। इसलि उसके व्यवहार तथा बातचीत में प्राय वृद्धाओं की गंभीरता की झलक मिल करती। वह अपनी मिठाई के हिस्से परिवार के बच्चों में बाँट दिया करती और मेले त्यौहार के दिन उनकी मुट्ठी

पैसे से भर देना चाहती। लेकिन पैसा अब उसके पास था नहीं, पैसा था उसके गाँव बहेरा से बहुत दूर उर्दू बाजार दरभंगा में मिश्रीलाल की तिजोरी में, जहाँ एक चौड़े फनवाला काला नाग हमेशा पहरा देता रहता था। कुमकुम बताती कि वह नाग किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाता है। मिश्रीलाल को वह अपना बेटा बताती और गौरीशंकर को अपना पति। बेटे पति के साथ ही वह अपनी बहू की भी चर्चा किया करती, जो भोजन बनाने में कुशल थी।

कुमकुम की ये बातें दर्शन परिषद् के लिए मात्र आश्चर्य और कौतुहल के विषय नहीं थे। उसकी बातों का उनके लिए एक विशेष महत्व था। यदि कुमकुम की बातें सत्य निकलीं तो, कई ऐसी बातों को भी सत्य माना जा सकता था, जिसपर आज तक बड़ी-बड़ी दलीलें पेश की जा चुकी हैं। उसकी बातें एक ऐसा सूत्र थीं, जो पुनर्जन्म के सिद्धांत के समर्थन में आसानी से पेश की जा सकती थीं। इसलिए तत्काल उसकी सच्चाई की जाँच के लिए तीन व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त कर दी गयी, जिसके सदस्य थे, श्री बी. एल. अत्रेय, पंडित हरिमोहन झा तथा श्री जागेन्द्र नाग।

समिति के द्वारा पूछे जानेपर कुमकुम ने आगे भी वही शब्द दोहराये, जिसे वह अन्यमनस्क-सी होकर कई लोगों के आगे पहले भी सुना चुकी थी। कुमकुम ने बताया कि वह बागमती नदी के किनारे बजितपुर ग्राम में पैदा हुई थी। बजितपुर कोई सवारी नहीं जाती, क्योंकि बागमती किसी सवारी से पार की ही नहीं जा सकती। बजितपुर में उसके पिता का मकान आम के बग़ीचे से घिरा हुआ है।

अपने पति के घर के विषय में उसने बताया कि वह उर्दू बाज़ार दरभंगा में रहती थी। उर्दू बाज़ार में उसके बेटे मिश्रीलाल की दुकान है। दुकान में क्या कारोबार होता है, यह तो उसे ज्ञात नहीं, लेकिन इतना उसने स्पष्टरूप से

बताया, कि वह जिस घर में रहती थी, उसकी खिड़की के नीचे एक छोटासा तालाब है, और तालाब के किनारे खजूर तथा अमरूदों के पेड़ हैं। घर की चर्चा करते समय तो वह उसके बर्तन, कपड़े, फर्नीचर तथा अन्य सभी सामग्रियों का विवरण दे बैठी।

इस जन्म में कुमकुम न कभी उर्दू बाज़ार गयी थी और न कभी उसने कोई बड़ा सांप ही देखा। लेकिन जब वह पूर्वजन्म की बातें किया करती तो, उसकी भाषा उर्दू बाज़ार की ध्वनियों में बाहर निकलती जब कि उसके परिवार के लोग विशुद्ध मैथिली ही बोला करते। इस बात का अनुमान तो किसी तरह किया ही नहीं जा सकता था कि वह अबोध बालिका, वे सब बातें अपनी कल्पना से गढ़कर सुनाती चली जा रही है। जब जाँच के लिए पंडित हरिमोहन झा उर्दू बाज़ार पहुँचे, तब कुमकुम के विवरण वहाँ अक्षरशः सत्य निकले।

उर्दू बाजार में मिश्रीलाल नाम के व्यक्ति मिले, उनकी दूकान मिली, दुकान में वह बड़ी सी तिजोरी भी थी, जहाँ चौड़े फन का वह काला नाग अब भी कभी-कभी आया करता था। झा बाबू ने मिश्रीलाल का घर भी देखा। घर की खिड़की से वह छोटा सा तालाब और तालाब के किनारे खजूर और अमरूद के पेड़ उसी तरह दिखायी देते थे, जैसा कि कुमकुम अपने बयान में उन्हें पहले ही बता चुकी थी। कुमकुम की बातें एक अद्भुत सत्य के रूप में सामने आयीं और यह अद्भुत सत्य उस अलौकिक सत्य का समर्थन कर रहा था, जिससे आज का वैज्ञानिक संसार स्वीकार नहीं करता।

जहाँ तक विज्ञान का प्रश्न है, उसके पाये अलौकिक घटनाओं के नकारात्मक तथ्यों के आधार पर ही खड़े ह। यदि पूर्वजन्म एक सत्य है तो, वर्तमान जीवन के प्रति बड़े परिश्रम से अपनायी गयी मनोविज्ञान की अनेक धारणाएँ खंडित हो जायँगी। इसलिए ऐसे विषयों में वह रुचि नहीं ले सकता। लेकिन यदि इन विषयों को यों ही छोड़ दिया जाता तो, मनुष्य के ज्ञान वहीं तक सीमित रह जाते, जहाँ तक विज्ञान उसे ले आया है, विज्ञान चाहे अपने विकास के हित के लिए ऐसी घटनाओं में रुचि न भी ले, लेकिन यह एक सत्य है कि भारत ही नहीं विश्व के हर देश में प्रतिदिन कुछ न कुछ ऐसी घटनाएँ जरूर घट जाती हैं, जो अलौकिक हैं, और जिनका विश्लेषण केवल स्थूल तर्क के आधार पर नहीं किया जा सकता। अतः मनोविज्ञान से थोड़ा पृथक होकर ज्ञान की एक शाखा का विकास तीव्र गति से हो रहा है, जिसे पारा साइकॉलॉजी (असामान्य-मनोविज्ञान) कहते हैं। पारा साइकॉलॉजी का विषय

ऐसी ही अलौकिक दिखायी पड़ने वाली घटनाओं का खोजपूर्ण अध्ययन करना है, जिनका रहस्य मनुष्य के आगे अबतक खुला नहीं है। गंगा नगर में इसी विषय की एक संस्था, सेठ सोहनलाल मेमोरियल इंस्टीटयूट आफ पारा साइकॉलॉजी भी है, जिसने इस बात के कई प्रयत्न किये हैं कि पूर्व जन्म पर प्रकाश डालनेवाली इस प्रकार की घटनाओं का अध्ययन किया जा सके। ऐसी घटनाओं में कुमारी स्वर्णलता काण्ड का अध्ययन इस संस्था ने विशेषरूप से प्रस्तुत किया है।

कुमकुम के समान ही कुमारी स्वर्णलता काण्ड की चर्चा भारत के अख़बारों में बड़े जोरों से छपी थी। स्वर्णलता को अपने एक पूर्वजन्म की ही नहीं, दो पूर्व-जन्मों की कहानी याद थी। वह छत्तरपुर के एक स्कूल-इंस्पेक्टर के घर पैदा हुई थी। नौ वर्ष की उम्र में उसने लोगों को यह बताकर चकित कर दिया था, कि अपने पूर्व के एक जन्म में वह सिलहट में जन्मी थी। तब उसका नाम मधु था और उसकी माता का नाम शशीमाता। उसे अबतक एक आसामी गीत की कुछ कड़ियाँ याद हैं, जिन्हें वह अपने उस जन्म के प्रमाण के समर्थन में गाकर सुनाती है।

स्वर्णलता का दूसरा जन्म कटनी में हुआ था। वहाँ का अपना नाम उसने कमलेश बताया, अपने पिता का नाम हीरालाल तथा अपने दो पुत्र के नाम शीवदत्त तथा कृष्णदत्त। इन नामों के अतिरिक्त उसने उस घर का पूरा विवरण भी दिया, जहाँ वह जन्मी और बड़ी हुई थी। जब गंगा नगर की संस्था को इस घटना का पता चला तो, उसने इस विषय की पूरी गवेषणा करने की योजना बनायी। इसके लिए स्वर्णलता के सम्पूर्ण विवरण ठीक ढंग से एकत्र किये गये। जो आसामी गीत वह गाया करती थी, उसका टेप रिकार्ड तैयार कर लिया गया। संस्था को इस बात का जब पूरा आश्वासन मिल गया कि इस घटना के पीछे कोई प्रचार या स्वार्थ संबंधी आकांक्षा काम नहीं कर रही है, तब उसने अपने कार्य प्रारंभ किये।

पहले तो स्वर्णलता के बताये हुए पूर्वजन्म के दोनों स्थानों पर काफी लिखा-पढ़ी की गयी, लेकिन उन्हें कहीं से कोई सूत्र हाथ नहीं लगा। अंत में स्वर्णलता ही कटनी ले जायी गयी और वहाँ उसने अपने परिवार के सब व्यक्तियों को पहचान लिया। उसके पहले के दिये हुए सब विवरण भी वहाँ क़रीब-क़रीब सत्य निकले। लेकिन इसके साथ ही वह कुछ भूलें भी कर गयी थी। उस परिवार के कई व्यक्तियों के साथ ही उसने अपना नाम भी ग़लत बताया था। लेकिन अपने पूर्व जीवन के विषय में उसने जो कुछ बताया

था, वह सब कुछ उस परिवार की मृतात्मा बीया देवी के जीवन से बिल्कुल मिलता-जुलता था। उसके विवरण में सत्य का इतना-सा अंश भी साधारण-सी बात नहीं हो सकती, क्योंकि वह बिहार के एक गाँव छत्तरपुर में पैदा हुई थी और कटनी मध्य-प्रदेश में है। कटनी और छत्तरपुर के दोनों परिवार पहले से एक दूसरे को एकदम नहीं जानते थे, जिनके बीच स्वर्णलता ने एक नयी कड़ी जोड़ दी थी।

स्वर्णलता के आसाम के जीवन पर कोई खोजबीन नहीं की जा सकी। क्योंकि, वहाँ की उसकी स्मृतियाँ विखण्डित रूप में अधूरी-सी ही हैं। लेकिन वह जो आसामी गीत गाया करती है, उसकी भाषा आसामी ही प्रतीत होती हैं, जो बिहार में कहीं बोली नहीं जाती। इसलिए यह विश्वास किया जा सकता है कि उसने उसे अपने नये जीवन में कभी नहीं सीखा।

और यदि इन सब बातों पर विश्वास कर लिया जा सकता है, तो इस विषय पर विश्वास क्यों नहीं किया जा सकता कि पूर्व-जन्म का सिद्धांत कोरी कल्पना की उपज मात्र नहीं है। लेकिन इस तथ्य को सत्य सिद्ध करने में कुछ समय की अपेक्षा की जा रही है। स्वर्णलता और कुमकुम की तरह सैकड़ों घटनाओं के विवरण इस सत्य की पुष्टि के लिए प्रमाण स्वरूप उद्धृत किये जा सकते हैं। लेकिन विज्ञान केवल प्रमाणों के आधार पर अपनी धारणाएँ निश्चित नहीं करता। किसी भी घटना का विश्लेषण किये बिना वह उसकी सत्यता को सिद्ध स्वीकार नहीं कर सकता। इस सत्य को प्रमाणित करने के लिए जितने आधार पारा साइकॉलॉजी (असामान्य मनोविज्ञान) के हाथ आये हैं, वे गहन विश्लेषण, परीक्षण और प्रयोग के लिए काफी नहीं है, जबतक विश्लेषण की यह रस्म पूरी नहीं हो जाती, तबतक पुनर्जन्म की घटनाओं को सिद्ध सत्य की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती। हाँ, ये घटनाएँ प्रकाश में आकर ज़रूर उसे संभावित सत्य की सीमा तक ले आयी हैं।

लेकिन यदि कभी यह संभावित सत्य सिद्ध-सत्य के घेरे में चला आया तो, क्या वह दिन मनुष्य मात्र के ज्ञान लोक में एक आंदोलन का दिन नहीं होगा? भारतीय दर्शन के अतिरिक्त विश्व का कोई भी दर्शन पुनर्जन्म के सिद्धांत की पुष्टि नहीं करता। अब तो भारत का भी हर शिक्षित पुरुष पुरानी विचारधारा की इन संकीर्ण गलियों से जल्दी ही निकलकर बाहर चला जाना चाहता है। लेकिन यदि कभी पुनर्जन्म की संभावनाएँ सत्य सिद्ध होकर सामने चली आयीं तो, मनुष्य को सबकुछ कितना विचित्र-सा लगेगा, जब उसे अपनी त्यक्त धारणाओं को ही विवश-होकर पुनः धारण करने पड़ेंगे।

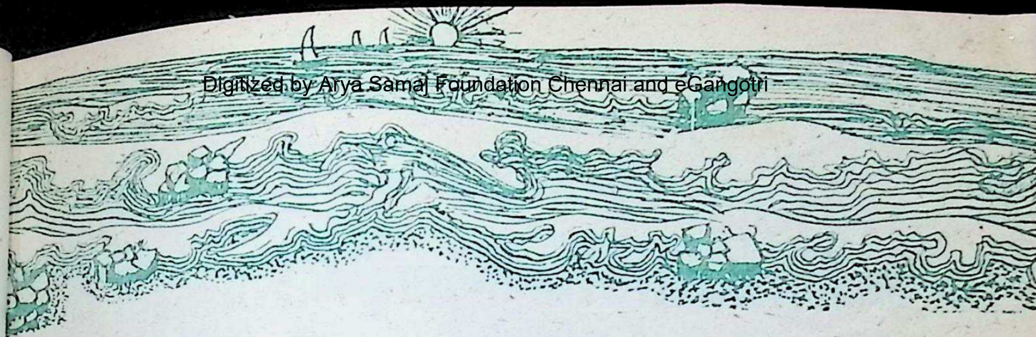

सागर-तट की शाम

राजेन्द्र सक्सेना

सागर-तट की एक शाम है--
और अनमना मैं हूँ यहाँ अकेला,
फिर भी इस एकाकीपन का एक अर्थ है-
इस सूनेपन में भी कोई आस-पास है,
जैसे कोई अनायास ही-
मेरे भटके गुम-सुम खयालों की
पकड़, अंगुलियाँ, ठीक राह ले आता है।
आकुल मन को नयी आस दे जाता है।

सागर-तट की एक शाम है-
केवल मैं हूँ मौन यहाँ पर,
टूट-टूटकर बिखर रही लहरों का
थका घोष है--
किंतु कौन है जो उदास प्राणों में
नये गीत की अनुगूंज भर जाता है,
अशांत अन्तर में स्थिरता लाता है।
इन उदास शामों को सुन्दर कर जाता है।
इसीलिए कहता हूँ,
इस एकाकीपन का कोई अर्थ है
मेरे सूनेपन में भी कोई आस-पास है
क्योंकि मेरे चिंतन को नयी दिशा मिलती है,
अकारण ही-किसी की याद की,
भूलों के बादल को चीरकर--
श्यामल संध्या में भनक-किरण खिलती है--

★

अवध बिहारी गुप्त

प्राचीन भारत में कोरियाई यात्री

प्रस्तुत यात्रा-विवरण से इस बात की साक्षी मिलती है, कि प्राचीन काल में भारत आत्म-विद्या का सर्वोपरि ज्ञान-केन्द्र था, और पृथ्वी के दूरातिदूर देशों से ज्ञान-पिपासु मुमुक्षु यात्री अलंघ्य पर्वतों, सागरों, अरण्य-कान्तारों को पार करते हुए किस प्रकार भारत में परम ज्ञान की खोज में आते थे। आज भी एक विश्व और अखण्ड एकात्म विश्व-मानवता की सिद्धि में, भारतीय आत्म-विद्या अनन्य योगदान कर सकती है।

प्राचीन युग में भारत ही विश्व का केन्द्र-बिन्दु था। यहीं से एशिया के दूर-दूर भागों तक सभ्यता का प्रकाश फला। आज भी पूर्व में इंडोनेशिया तक, उत्तर में कोरिया एवं जापान तक, दक्षिण में लंका तक तथा पश्चिम में अमेरिका तक, भारतीय संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं। भारतीय संस्कृति का यह अमर संदेश हमारे पूर्वज यात्रा के अनेक कष्टों को झेलकर दूसरे देशों तक ले गये। सभ्यता के इस नवीन प्रकाश को देखकर विदेशी आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने केवल भारतीय धर्म, भाषा एवं कला को ही स्वीकार नहीं किया, अपितु भारतीय रीति-रिवाजों को भी उन्होंने अपने जीवन में प्रमुख स्थान दिया। अपने उच्च अध्यात्मिक ज्ञान के कारण भारत शीघ्र ही विश्व में जगद्गुरु के नाम से विख्यात हुआ तथा एशिया और यूरोप के अनेक यात्री इस महान एवं पुनीत देश के दर्शन एवं ज्ञानोपार्जन के लिए समय-समय पर आते रहे। नालंदा विश्वविद्यालय में अनेक एशियाई देशों के छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन के उत्तर-पूर्व में स्थित कोरिया भी इन देशों में एक था।

एशिया के मध्य तथा उत्तर-पूर्वी भागों में भारतीय संस्कृति के प्रसार का श्रेय मुख्यतः बौद्ध भिक्षुओं को ही है। कुशान युग में भारत एवं चीन का संपर्क घनिष्ट हुआ तथा कश्यप मातुंग प्रथम

बौद्ध भिक्षु थे, जिन्होंने भगवान बुद्ध का अमर संदेश चीनी जनता को प्रदान किया। जीवन पर्यंत वह चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार करते रहे तथा अनेक बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद भी उन्होंने चीनी भाषा में किया। अनेक बौद्ध भिक्षु कश्यप मातुंग के मार्ग का अनुसरण करते हुए चीन गये तथा शीघ्र ही बौद्ध धर्म सम्पूर्ण चीन में लोकप्रिय हो गया। चीनी भिक्षु ही भगवान बुद्ध का संदेश निकटवर्त्ती देशों में ले गये तथा कोरिया एवं जापान में बौद्ध धर्म के प्रसार का श्रेय चीन के बौद्ध भिक्षुओं को ही हैं।

कोरिया में बौद्ध-धर्म का विशेष स्वागत हुआ तथा छठी शताब्दी तक बौद्ध-धर्म सम्पूर्ण कोरिया में लोकप्रिय हो गया। अनेक कोरियाई भिक्षुओं ने दूरी तथा मार्ग के कष्टों की लेश-मात्र चिंता न करते हुए बौद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की, धर्मग्रंथों की खोज की, तथा अध्ययन के लिए भारत आये। मार्ग में इनकी भेंट उन चीनी यात्रियों से भी हुई जो इसी मन्तव्य से भारत आ रहे थे। सातवीं शताब्दी में भारत भ्रमण करनेवाले एक चीनी यात्री ईत्सिगने अपनी पुस्तक काओ-फ़ा-काओ-संग श्वेन (Kau-Fa-Kao-Sang-Chuen) में उन सब यात्रियों का उल्लेख किया है, जो इससे पूर्व भारत का भ्रमण करने आ चुके थे। लगभग ४३ व्यक्तियों की इस सूची के अध्ययन से पता चलता है कि केवल चीन, समरकंद तुर्किस्तान एवं इंडो-चाइना से ही नहीं, अपितु कोरिया ऐसे दूरस्थ देशों से भी अनेक बौद्ध विद्वान भारत भ्रमण करने के लिए आये थे। उस समय तक नालंदा विश्वविद्यालय की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। इसीलिए यह यात्री अधिकतर नालंदा में ही आकर बस गये। यहाँ पर उन्होंने केवल बौद्धग्रंथों का अध्ययन ही नहीं किया, अपितु अनेक नवीन रचनाएँ भी कीं, जिनकी पांडुलिपियाँ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित थीं। ईत्सिग न कोरियाई यात्रियों द्वारा लिखित ग्रंथ स्वयं

दखे थे। दुर्भाग्यवश आज यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। बारहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध तुर्क विजेता बख्तियार खिलजी ने इस विशाल पुस्तकालय को ध्वंस कर सहस्त्रों ग्रन्थ अग्नि को समर्पित कर दिये थे।

चीनी कोरिया को सिन-लो के नाम से जानते थे। ईत्सिग के अनुसार इस देश से अनेक यात्री चीन होते हुए ही भारत आये। ६३८ ई. में एक कोरियाई भिक्षु जिनका भारतीय नाम ईत्सिग ने आर्यवर्मन दिया है, चान्गन से भारत के लिए रवाना हुए। बौद्ध धर्मग्रंथों की खोज में वह नालंदा आये, जहाँ उन्होंने अनेक सूत्रों की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार कीं, वह वापस स्वदेश न जा सके। जीवन पर्यंत नालंदा विश्वविद्यालय में ही अध्ययन करते रहे, तथा ७० वर्ष की आयु में यहीं उनका शरीरांत हो गया।

आर्यवर्मन के समान एक अन्य कोरियाई भिक्षु ह्यू-नीह् भी कोरिया से ६३८ ई. में ही भारत के लिए रवाना हुए। चीन एवं गांधार होते हुए वह भी नालंदा आये तथा अनेक वर्षों तक यहीं रहकर धर्मग्रंथों का अध्ययन करते रहे। अनेक ग्रंथों की भी उन्होंने रचना की। लगभग ६० वर्ष पश्चात् जब ईत्सिग नालंदा आये तो, उन्होंने ह्यू-लीह् की अनेक रचनाएँ देखीं, जो पुस्तकालय में सुरक्षित थीं। ह्यू-लीह की एक रचना संस्कृत में भी थी, जिसकी पांडुलिपि का अध्ययन ईत्सिग ने किया था। नालंदा के पुरोहितों के अनुसार इस कोरियाई विद्वान की मृत्यु लगभग ६० वर्ष की आयु में हुई।

एक अन्य कोरियाई विद्वान ह्यून-ताय् भारत की यात्रा के लिए ६५० ई. के लगभग कोरिया से रवाना हुए। ईत्सिग ने इस विद्वान का भारतीय नाम सर्वज्ञानदेव दिया है। ह्यून-ताय् तिब्बत के दुर्गम मार्गों को पारकर नेपाल होते हुए भारत आये। अनेक बौद्ध तीर्थस्थानों की उन्होंने यात्रा की तथा सबसे पहले वह बोधगया पहुँचे, जहाँ भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। यहाँ उन्होंने बोधिवृक्ष की पूजा की। बाद में स्वदेश लौटते समय तुरवार अर्थात् चीनी तुर्किस्तान में उनकी भेंट एक चीनी भिक्षु ताओ-ही अर्थात् श्री देव से हुई, जो भारत आ रहे थे। उनके अनुरोध पर एक बार पुनः सर्वज्ञान देव वापस भारत आये और श्री देव के साथ अनेक बौद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की। वापस लौटते समय सम्भवतः चीन में ही उनका देहावसान हो गया।

ह्यून-हौ नामक एक अन्य कोरियाई भिक्षु भी सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की यात्रा के लिए आये। उनके साथ एक अन्य चीनी भिक्षु ह्यून-श्यू अर्थात् प्रकाशमति भी थे। ६५० ई.

के लगभग ये दोनों भिक्षु अनेक बर्फ़ीले पहाड़ों को पारकर तुख़ार एवं तिब्बत होते हुए उत्तरी भारत पहुँचे। मार्ग में कई स्थानों पर इन्हें डाकुओं ने परेशान किया, परन्तु किसी प्रकार बचते-बचाते वे जालंधर पहुँचे, जहाँ चार वर्ष तक ये संस्कृत का अध्ययन करते रहे। ईत्सिंग के अनुसार यहाँ के मुंग-वंशीय शासक ने इन्हें रोक लिया, तथा इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उसने इन्हें सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कीं। जालंधर से वे लोग बोधगया आये। परन्तु कोरियाई भिक्षु ह्यू न-हौ का यहीं स्वर्गवास हो गया और चीनी यात्री को अकेले ही स्वदेश लौटना पड़ा।

दो कोरियाई यात्री, जिनके नाम ईत्सिंग ने यहीं दिये हैं, भारत के लिए समुद्रमार्ग द्वारा रवाना हुए। चान्गन से वे श्री भोज आये तथा यहाँ से पश्चिमी सुमात्रा पहुँचे, जहाँ उन दोनों का देहांत हो गया। और भारत यात्रा का स्वप्न पूरा न हो सका।

भारत आने वाले कोरियाई यात्रियों में सबसे प्रसिद्ध नाम ह्वी-लुन का है। बौद्ध भिक्षु होने के पश्चात् वह प्रज्ञावर्मन के नाम से विख्यात हुए। अपने देश से वह समुद्र मार्ग द्वारा फू-चाऊ पहुँचे तथा फू-चाऊ से चान्गन होते हुए जिस मार्ग द्वारा ह्यू न-श्यू भारत आये थे, उसी मार्ग द्वारा वह भी भारत के लिए रवाना हुए। लगभग १० वर्षों तक वे इस देश का भ्रमण करते रहे। उनका अधिकांश समय गंगा नदी के उत्तर में स्थित सिन-चे मंदिर में व्यतीत हुआ। उत्तर की ओर जाते समय तुखारो अर्थात् तुर्कों द्वारा अपने देश के भिक्षुओं के लिए निर्मित एक बौद्ध मंदिर में भी इन्होंने कुछ समय तक निवास किया। यह प्रदेश गान्धार-सन्द के नाम से विख्यात था। इस तुर्क मन्दिर के पश्चिम में हीनयानियों का भी एक मंदिर था, जो गुणचरित के नाम से विख्यात था। इस मंदिरसे दो योजन पूर्व स्थित कुरुदेश में भी वे आये, जिसका वर्णन ईत्सिंग ने किया है। प्राचीन काल में एक कुरु राजा ने दक्षिण दिशा की ओर एक बौद्धमंदिर का निर्माण कराया था। इस यात्री के आगमन से कुछ वर्ष पूर्व आदित्य सेन नामक एक सम्राट ने इसी प्राचीन मंदिर के पास एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया, जहाँ दक्षिण से आनेवाले यात्रियों के लिए विशेष सुविधाएँ दी जाती थीं।

यहाँ से लगभग ४० योजन की दूरी पर गंगा के किनारे स्थित प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ इसीपतन, जहाँ भगवान बुद्ध ने प्रथम संदेश दिया था, में भी इस यात्री ने कुछ समय तक निवास किया। ईत्सिंग के अनुसार मृगशावक उद्यान से थोड़ी

दूर एक चीनी मंदिर के भग्नावशेष इस यात्री के आगमन के समय मौजूद थे। जनश्रुति के अनुसार महाराज श्री गुप्त ने यह मंदिर चीनियों के लिए बनवाया था। चीन से आनेवाले लगभग २० यात्रियों की विद्वता से प्रभावित होकर ही उस सम्राट ने मंदिर के लिए केवल भूमि ही नहीं दी अपितु मंदिर के संचालन के लिए २० ग्रामों की आय भी दान में दे दी। ईत्सिग के अनुसार यह घटना लगभग ५०० वर्ष पहले की है। कोरियाई यात्री के आगमन के समय इस मंदिर की दशा ठीक नहीं थी। पूर्वी भारत के सम्राट देववर्म का यहाँपर शासन था, जो चीनी भिक्षुओं को मंदिर तथा ग्रामों की आय देने के लिए तैयार था।

इसीपतन के पश्चात् ह्वीलुन् बोधगया पहुँचे, जहाँ लंका के सम्राट ने अपने देशवासियों के लिए एक विशेष मंदिर का निर्माण कराया था। बोधगया से सात योजन उत्तर-पूर्व में स्थित नालंदा विहार में भी कुछ समय तक इस यात्री ने अध्ययन किया। यहाँ पर शक्रादित्य द्वारा निर्मित एक विशाल मंदिर था। इसका

अपनी आवश्यकता के लिए खरीदिए

Hind FLOORING TILES

हाइड्रालिक इटालियन मशीनों से

निर्मित : प्रीफ़ब (पूर्वनिर्मित) आर. सी. सी. गृह, सीमेण्ट पाइप, टैंक, रंगाई की नाँदें व बाग़ीचों के सामान का निर्माण करते हैं। सरकार, रेलवे, म्युनिसिपैलिटी, पी. डब्ल्यु. डी. के कंट्राक्टर हैं और सामान मुहैया करते हैं।

हिन्दुस्तान सीमेन्ट पाइप्स एण्ड कंक्रीट कन्स्ट्रक्शन कं०

मुख्य कार्यालय : ओछवलाल गोरधनदास शाह
टाइल, पाइप्स एण्ड सेनीटरी मरचेण्ट्स
खाडीआ, चार रस्ता, अहमदाबाद
फैक्टरी : सुएज फार्म रोड, अहमदाबाद
कार्यालय तथा निवास फोन : ३३९२
फैक्टरी फोन : ५१६३६

प्रवेश द्वार लगभग ३६″ ऊंचा था तथा इसमें तीन मंजिले थीं। इसके प्रधान पुरोहित वहुत वृद्ध थे और मंदिर की देखरेख विहारपाल ही करते थे। इस मंदिर में जलघड़ी का भी प्रबंध था, जो सदा ही ठीक समय दिया करती थी। नागनंद के नामपर यह मंदिर श्री नालंदा विहार के नाम से विख्यात था। बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक स्थल यहाँ थे। मंदिर के पश्चिम में लगभग वीस क़दम की दूरी पर एक १००″ ऊँचा स्तूप था। यहाँ भगवान बुद्ध वर्षा ऋतु में तीन मास व्यतीत किया करते थे। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम की ओर एक छोटा स्तूप था। जहाँ एक ब्राह्मण ने उनसे कुछ प्रश्न किये थे। विशाल स्तूप के पश्चिम में एक वृक्ष भी इस यात्री के समय वहुत पूज्य समझा जाता था। जनश्रुति के अनुसार यह वृक्ष भगवान बुद्ध द्वारा फेंकी हुई एक दातून से अंकुरित होकर इतना विशाल हो गया था। इसी वृक्ष के पीछे एक १५″ लम्बा और दो फीट ऊँचा चबूतरा भी था, जिसपर भगवान बुद्ध टहला करते थे। इसपर अंकित सुन्दर कमल के पुष्प उनके चरणों के प्रतीक थे। इस कोरियाई यात्री द्वारा दिये गये विवरण से ही यह बातें ज्ञात होती हैं, जो ईत्सिंग ने लिखी हैं। राजगृह, वैशाली तथा ताम्रलिप्ति की भी यात्रा ह्यून-ली ने की और इसके पश्चात् सम्भवतः समुद्र मार्ग द्वारा ही वे स्वदेश लौट गये।

सुकुञ्चित रेशमी केश राशि के लिए

परफिउमड्

कैस्टर आयल

व्यवहार करें

यह मनोरम सुगन्धयुक्त केश तैल है।

बंगाल केमिकल

कलकत्ता · बम्बई · कानपुर

दीनदयाल ओझा

अमर सोहागिन मीराबाई का सिंगार

मेड़ता की राजकुमारी मीरा ने, निर्दोष बालपन में ही 'गिरिधर पिया' को अपने परम प्रीतम के रूप में स्वीकार कर लिया था। श्री भगवान की जनम-जनम की परिणीता के रूप में ही उसने जन्म लिया था। तब मेवाड़ के राजघराने की समस्त रत्न-मंजूषाएँ भी उसके अमर सोहाग का सिंगार न कर सकीं। ऐसी मीरा का सोहाग-सिंगार भला क्या रहा होगा, उसका निवेदन उसी के मुंह से सुनिये।

आराध्य की आराधना करते हुए जब भक्त लौकिकता के धरातल से ऊपर उठकर लौकिक जगत में विचरण करने लगते हैं, उस काल उन्हें संसार के समस्त वैभव क्षणिक और असत्य दिखायी देते हैं। ज्ञान की इस चरम सीमा पर आते-आते उन्हें यह भलीभाँति ज्ञात होने लगता है कि अगर इस संसार में सत्य है, तो केवल प्रियतम के प्रति अनुराग और उसका नाम-स्मरण। दादू, कबीर, तुलसी, सूर आदि-आदि समस्त भक्त-कवियों ने इसी भाव की नाना रूपों में व्याख्या की है। दर्द दिवानी मीरां भी इसका अपवाद नहीं। वह भी कृष्ण प्रेम में पगी समस्त संसार को असत्य कहती है। उसे रांणा का रूड़ा देश नहीं भाता :-

'नहीं भावै थारो देसड़लो रंग रूड़ो।'

क्योंकि, वह तो 'सांवरे के रंग राची' है। अब उसे अपना जीवन बिताने के लिए और कुछ नहीं चाहिए। वह तो 'दरसण रूपी चाकरी, सुमिरण रूपी खरची' और भाव-भगत रूपी जागीरी में ही मस्त है। जिसे प्राप्त करने के लिए उसकी आत्मा जन्म-जन्मांतर से तृषित है।

'चाकरी में दरसण पास्यूं,
सुमिरण पास्यूं खरची।
भाव भगत जागीरी पास्यूं,
जणम जणम री तरसी॥'

इन पदार्थों को प्राप्त करनेवाली मीरां के वस्त्राभूषण भी लौकिक नहीं, अलौकिक हैं। उसके लिए 'मांणक मोती, पाट पटंबर' सभी झूठे हैं, असत्य हैं। सत्य तो केवल 'पियाजी की गूदड़ी' है, जिसमें यह शरीर निर्मल रह सकता है।

'झूठा मांणक मोतिया री,
झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूषणा री,
सांची पियाजी री पीति।
झूठा पाट पटबंरा रे,
झूठा दिखणी रा चीर।
सांची पियाजी री, गूदड़ी
जामे निरमल रहे शरीर।'

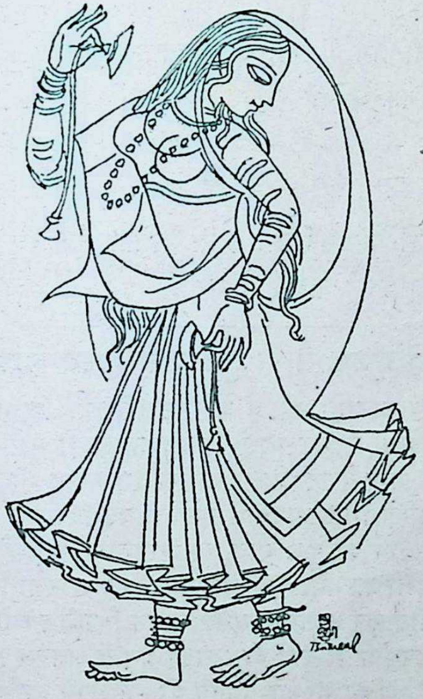

इसी भावना के कारण मीरां ने गहने-गंठे, सुहाग-चिह्न चूड़ा और काजल टीकी तथा सिर का जूड़ा बांधना तक त्याग दिया।

'गहना गांठी राणा हम सब त्यागा,
त्याग्यो कर रो चूड़ो।
काजल टीकी हम सब त्यागा
त्याग्यो छे बांधन जूड़ो।'

अब तो उसका चूड़ा तिलक और माला है। श्रृंगार शील व्रत है।

'चूड़ो म्हारो तिलक अरु माला
सील बरत सिणगारो।'

शीलव्रत का श्रृंगार धारण करनेवाली मीरां जब हरि से मिलने के लिए सुसराल जाती है, उस काल वह अंग-प्रत्यंग जिन आभूषणों से अलंकृत रहती है, उसकी झांकी देखते ही बनती है—

मुज अबला ने मोटी नीरात थई रे।
शामलो घरेणु मारे साँचु रे।।
बाली घड़ावूं विट्ठलबर केरी
हार हरी नो मारे हैये रे।।
चित्त माला, चतुरभुज चुड़लो
शिद सोनी घरे जइये रे।।
झांझरिया जगजीवन केरा
कृष्णाजी कड़ला ने कांबीरे।।
बीछिया घूंघरा रामनारायण ना,
अणवट अंतरजामी रे।।
पेटी घड़ावुं पुरषोत्तम केरी
त्रीकम नाम नूं तालो रे।।

कूंची करावूं करुणानंद केरी
तेना धरेणू भारूं घालूं रे।।
सासर बासो सजिने बैठीं,
हवे नथी कंई काँचू रे।।
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर,
हरि ने चरणे जाचूँ रे।।

उक्त श्रृंगार धारण करना सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं। इसे तो कोई विरला ही धारण कर सकता है, जिसमें अपने आराध्यदेव के प्रति "जो पहिरावै सोई पहनूं" सी आत्मसमर्पण की भावना हो।

◆

जितना ही अधिक जो प्रेम करेगा, उसे उतना ही अधिक कष्ट सहन करना पड़ेगा। अनन्त प्रेम का अर्थ है अनन्त कष्ट सहिष्णुता।

डा. राधाकृष्णन्

◆

पवित्र नारी सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम कृति होती है; वह सृष्टि के सम्पूर्ण सौन्दर्य को आत्मसात् किये रहती है। **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**

'टुबा' के सम्बन्ध में गुजराती के सुप्रख्यात हास्य लेखक क्या कहते हैं?

'मैं गंजेपन का शिकार हो गया हूँ और उत्तरोत्तर और भी अधिक होता जा रहा हूँ', मेरे किसी लेख में ऐसा पढ़कर भाई श्री बंदुकवाला ने मुझे उनके तेल 'टुबा' की दो शीशी भेज दी। उन्होंने जोर देकर लिखा था कि दस-बारह शीशी का उपयोग करने से आपको उक्त रोग से मुक्ति मिल जायगी। मेरा तो दृढ़ विश्वास था, एक बार बाल झड़ जाने और गंजापन आ जाने पर पुनः बाल का आना असम्भव है। किंतु जब किसी तेल का उपयोग करना ही है तो यह क्या बुरा? ऐसा समझकर बिना किसी फलाकांक्षा के मैंने पाँच शीशियों का उपयोग कर डाला। इससे गंजापन विशुद्धरूप से समाप्त तो नहीं हुआ; किंतु प्रथम शीशी के उपयोग के बाद ही उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी। इससे इतना लाभ होगा, इसकी मुझे किंचित् भी आशा नहीं थी। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निस्संकोच कह सकता हूँ कि 'टुबा' के उपयोग से भले ही सम्पूर्णरूप से लाभ न हो, फिर भी आपके रोग की प्रगति अवश्य रुक जायगी। साथ ही यह थोड़ा-बहुत लाभ भी पहुँचायेगा।

'टुबा हेयर टानिक' झड़नेवाले बालों को रोकने का एक प्रभावशाली एवं विश्वसनीय इलाज है। **श्री ज्योतीन्द्र ह. दवे**

पेकिङ्ग और पोस्टेज के साथ ४ औंस की दो शीशी का मूल्य रु. ८–०। वी. पी. द्वारा मंगाने पर माल नहीं भेजा जाता। मनिआर्डर भेजना आवश्यक है।

टुबा प्रोडक्ट्स, ९१, भाजीपाला स्ट्रीट, बम्बई–३.

दो कविताएँ

हरीश करुण

प्रिया का पत्र

प्रिये तुम्हारा
दूरियाँ तय करता हुआ पत्र
उन्हें समेट लाया है
भीतर
आँक रहा हूँ स्पष्ट
कब से
तुम्हारी उपस्थिति को
तुम मेरे सम्मुख हो
इन अँधेरे अक्षरों से
खुल गये हैं
रहस्य-द्वार अनुभूति के
और जगमगा गये हैं
प्रत्यक्ष
हमारे आदि प्रणय के
उद्गम स्रोत !

*

देवव्रत देव

निवेदन

क्षमता दो :
अहं की कुशिल-कारा को तोड़कर—
समष्टि की मृदुल धारा से मिल सकूं।
उपवन के सौरभ के मोह से न बिंधा रहूँ—
वन-वन के कुसुमों के
साथ तनिक खिल सकूं।
मुझसे वैभव—विलास-कक्ष ही न दिपें सदा—
यदा-कदा शूल-भरे
अन्धकार-आँधी से घिरे-घिरे
पथ पर भी प्राणों का नेह ढाल, जल सकूं !

*

एस. लाल

कहानी का प्रश्न

[कहानी]

...और यदि इस तमाचे ने किसी को हसीन शाम की गहराई में डूब जाने का असीम आनन्द न लेने दिया, तो वह इस हर्ज़ाने का दावा किसके ख़िलाफ़, किस कोर्ट में करे ? ध्यान रहे कि कहानी आपके उत्तर की प्रतीक्षा में है...!

पेड़ काट डाला गया, लेकिन अभी वह हरा-भरा है। वह कल हरा नहीं रहेगा। उसके लाल-लाल फूल नहीं रहेंगे। धरती को छाया देनेवाले कोमल पत्ते नहीं रहेंगे। .....लेकिन, उस भोली, मासूम और काली लड़की के गालपर पड़ा तमाचा हमेशा रहेगा। तमाचा होता भी इसीलिए है, कि वह हमेशा रहे। और अगर वह हमेशा न रहेतो तमाचे से फायदा ही क्या। तमाचा भी भरपूर पड़ा था। ऊपर से उसे उसकी सूरत याद दिलायी गयी थी—कमीनी कहीं की!...अपनी औक़ात भूल जाती है!...क्यों तोड़े मेरे फूल?...जा! पहले अपनी सूरत नाली में तो देख! —

इसके पहले उसने नालीका इस्तेमाल इसलिए कभी न किया था। मगर अब तो उसे करना ही चाहिए, क्योंकि सर जस्वीर सिंह की लड़की ने उसे अपनी औक़ात पर रहने के लिए आगाह किया था।....

मैं इस बखेड़े में क्यों पड़ गया?.... मैं तो चला था शाम की सैर को।.... सपनों-सी हसीन शामें मुझे बहुत प्यारी हैं, और उस दिन तो शाम की भोली चितवन से प्यार भरी मासूमियत टपक रही थी। शाम को बादल एकाएक छँट गये थे और क्षितिज की गहराइयों में सांध्य सुन्दरी का यौवन पूरे निखार पर था। —शाम अपना बुढ़ापा कभी नहीं देखती। उसके लिए तो बस जवानी है और जवानी के ठीक बाद मृत्यु। विधाता ने बस एक ही चीज बनायी है, जो चिरयौवना है। जो मृत्यु को गले लगा सकती है, पर बुढ़ापा नहीं देख सकती। बुढ़ापा, जिसे देखकर

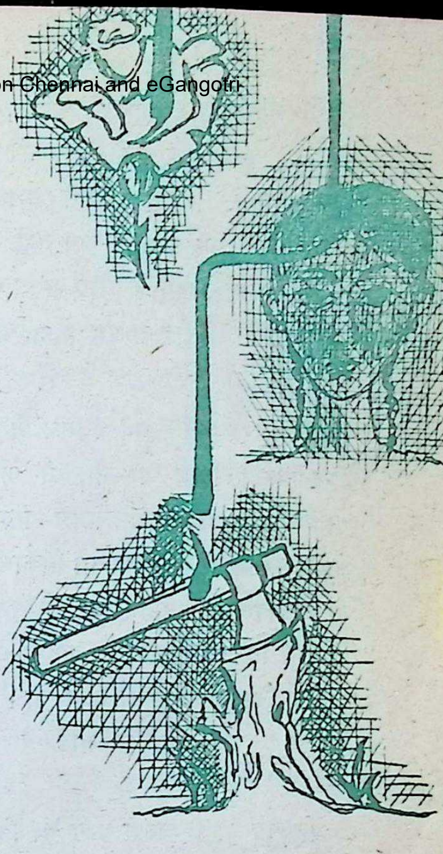

हरकोई घृणा से मुंह फेर लेता है। शायद इसीलिए मुझे शामें वहुत प्यारी हैं। सवेरा इतना प्यारा नहीं। चाँद इतना प्यारा नहीं। कविताएँ इतनी प्यारी नहीं। दुनिया की कोई चीज इतनी प्यारी नहीं।

हाँ!...तो मैं उस दिन की हसीन शाम को देखकर सौन्दर्य की असीमता को सीमा में बाँधने का प्रयास न कर सका। लेकिन मेरी आँखों ने प्रकृति की जिस सुन्दरता को पंकिल होते देखा, उससे तो मैं यह समझने लगा हूँ, कि यही दशा रही तो शायद प्रकृति का विधान ही बदल जाये; और तब मेरी हसीन शामें भी न रह जायेंगी। हसीन शामें, जिनमें डूबकर मैं अपने सारे दुःख-दर्द भूल जाता हूँ। हसीन शामें, जो मेरे बुझे-बुझे-से दिल में चिनगारी-सी पैदा कर देती हैं। इसीलिए तो मैंने ऐसा महसूस किया कि वह तमाचा छः साल की भोली, मासूम अवोध रीता ने नहीं, सर जस्बीर सिंह ने लगाया है। और वह भी बदसूरत, काली और मासूम दुलरिया के गालपर नहीं, प्रेम और मुहब्बत के गालपर, नफ़रत और हिकारत का तमाचा!

आप मेरी बात न मानें, न सही। और यह मेरी कहानी के हक़ में अच्छा ही होगा। क्योंकि तभी तो वह आपको मुझसे सहमत कराने के लिए अपनी आप-बीती सुना सकेगी, जिसे सुनाने के लिए ही आज उसने मुझे परेशान किया है। वैसे मेरे पास कोई प्लाट तो था नहीं। न ही मुझे किसी पत्रिका के अनुरोध पर कहानी लिखनी थी। बस, इस कहानी का अनुरोध पूरा कर रहा हूँ।

तो सुनिए, उस कहानी की कहानी। या मोटे तौर पर यूं कहूँ, कि सर जस्बीर सिंह की कहानी। जो भी हो, मैं कुछ नहीं जानता। कहानी के ही अनुरोध पर उसकी बातें आप तक पहुँचा रहा हूँ –

एक दिन सर जस्बीर सिंह जी ज़ोरदार लफ़्ज़ों में गरज रहे थे–मैं कोई

मामूली हस्ती का आदमी नहीं...... आप जो कुछ कहें, इस बात का ध्यान रखकर कहें....रीता मेरी इकलौती बेटी है, मेरे लिए लड़के से कम नहीं..... इसकी उचित शिक्षा के लिए मैं अच्छे से अच्छा टीचर खरीद सकता हूँ...बोलिए आप कितना....

...और इसके आगे विमल ने उन्हें बोलने नहीं दिया था—जी, मैं आपकी भावना को अच्छी तरह समझ गया.... आपने मेरी बातों का ग़लत अर्थ निकाला है। मैं धन का लोभी नहीं। बस यह समझिए कि मैं बिकना पसंद न करूँगा—इतना कहकर विमल उठ खड़ा हुआ था। दोनों हाथ एक शालीनता से जोड़े थे उसने और चल दिया था।

यह सब इतनी जल्दी हुआ था कि सर जस्वीर सिंह को कुछ सोचने का अवसर न मिला। और जब विमल चला गया तो, उन्होंने ड्राइंग-रूम में लगी सामने की दीवाल पर की फोटो-ग्रुपिंग को बड़े गौर से देखा। केंद्रीय मंत्री की बग़ल में बैठे हुए वह कितने रोबदार मालूम पड़ रहे थे उन्हें लगा, विमल उनकी रीता को पढ़ाने के क़ाबिल नहीं। हायर सेकण्ड्री स्कूल का मामूली अध्यापक, सर जस्वीर सिंह की प्यारी, मासूम रीता के क़ाबिल नहीं। वह कन्वेण्ट स्कूल की एंग्लो-इण्डियन लेडी इंगेज़ करेगा। सोचते हुए उन्होंने रेशमी स्लीपिंग गाउन में लगे गुलाब के फूल को गर्वीली नज़रों से देखा।

इस गुलाब के फूल की भी एक कहानी है। स्लीपिंग-गाउन हो या सूट के कोट का कॉलर, यह गुलाब का फूल वहाँ ज़रूर होगा। क्योंकि इस गुलाब के फूल ने ही उन्हें सरकी उपाधि दिलायी थी। वैसे यह रहस्य उनके अलावा अगर किसी को मालूम है तो, बस इस गुलाब के फूल को। जाने कहाँ से इसका पता इस कहानी को भी लग गया!

बात यह है कि सर जस्वीर सिंह के दादा पहले मामूली माली थे। उनका काम था अंग्रेज़ वाइसराय को तरह-तरह के फूलों की खुशबू में डूबो देना। सो, वह रोज़ तरह-तरह के फूलों का गजरा लेकर उनकी क़दमबोसी को पहुँच जाते थे। वाइसराय ने थूकना चाहा तो उनकी हथेली हाज़िर है। वाइसराय को छींक आयी तो इत्र में डूबा रूमाल पेश है। "काला हिन्डुस्टानी" इससे ज़्यादा क्या कर सकता था। इसके आगे की पूरी दास्तान सुनाने को यह कहानी तैयार नहीं।....एक दिन वह आया जब माली के फूलों में एक गुलाब का फूल ऐसा मुस्कराया, ऐसा मुस्कराया कि आसमान के तारे बरस पड़े, इतने तारे कि माली की झोली भर गयी।

वाइसराय ने माली के नाम के आगे

"सर" और पीछे "सिंह" ऐसा जोड़ा कि आजतक सर जस्बीर सिंह गुलाब के फूल को अपने सीने की रौनक बनाये हुए हैं। साथ ही साथ अपने दादा की परम्परा से भी वह हट नहीं सके। हाँ, अब ज़माना कुछ-न-कुछ तो बदला ही था। मिनिस्टरों और नेताओं को खुश करने के लिए अब गुलाब के फूलों की ज़रूरत नहीं थी। ज़रूरत थी, जीपों, मोटरों और नक़द रुपयों की। सो, भगवान ने उन्हें अब इस योग्य भी बना दिया था। फिर ताली एक हाथ से तो बजती नहीं। उन्हें ठेके भी खूब मिलते थे। कोई नेता मिनिस्टर हुआ नहीं कि सारा खर्चा मय सूद के वसूल हो जाता था। इसपर अगर सर जस्बीर सिंह को अपना अस्तित्व भूला रहता था तो, इसमें उन बिचारे की क्या ग़लती।

रीता, उनकी भोली, मासूम खूबसूरत-सी लड़की थी। अभी वह सिर्फ तीन-चार साल की ही थी, मगर सर जस्बीर सिंह उसमें वह सब कुछ देख रहे थे, जो पाश्चात्य सभ्यता में पली एक शोख़ युवती में होनी चाहिए। कभी-कभी उसके बारे में यह सब सोचना उनको अज़ीब-अज़ीब-सा लगता। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्हें गुलाब का फूल याद आ जाता तो, वह सब कुछ भूल जाते।

उनका मकान काफी आलीशान होते हुए भी मज़दूरों की गंदी खोलियों के बीच बसा था और शायद इसीलिए वह और आलीशान लगता था। खोलियों से उठता हुआ धुआँ उनके नाकों तक कभी-कभी पहुँच ही जाता था। इसीलिए उन्होंने कितनी ही बार सोचा कि मंत्री जी से कहकर इन मज़दूरों के लिए शहर से बाहर एक कालोनी बनवा दें। लेकिन हर बार उन्हें भय लगा कि मंत्री जी उन्हें कम्युनिस्ट समझ लेंगे, फिर लाख समझाने पर भी वह यह न मानेंगे कि ऐसा सिर्फ़ गन्दगी को अपने से दूर करने के लिए ही कहा जा रहा है। फिर इस भय से वह चुप रह जाते। सोचते, कौन रोज़-रोज़ उनकी गन्दगी आँखों में घुसा करती है। पाँच साल में बस एक ही बार तो उनसे मोहब्बत का ढोंग रचाने के लिए उनकी धुंआदार खोलियों में जाना पड़ता है। और यह तो तब भी करना होगा, जब उनकी बस्ती शहर से बाहर बस जायगी, तब भला जस्बीर सिंह क्यों मरने जायँ।

मगर रीता, जस्बीरसिंह तो थी नहीं। तीन, चार साल की मासूम रीता को क्या पता कि उसके डैडी क्या हैं और क्या नहीं। वह तो अपनी गुड़ियों में डूबी रहती। उसके साथ खेलने के लिए कुछ हँसती, बोलती और बात करती गुड़ियों की भी ज़रूरत थी और जब वह अपने बंगले

के फाटक के जंगलों में से बाहर झाँकती होती तो, अक्सर उसे ऐसी गुड़ियाँ घूमती नज़र आ जातीं। और फिर वह दिन उसे बड़ा प्यारा लगता। वह सोचती डैडी से कहकर और खिलौने मँगवाऊंगी, तब हम लोगों को खेल में बड़ा मज़ा आयेगा।

लेकिन जब डैडी ने उसके सपनों के महल गिरा दिये तो, वह बहुत रोयी और उसे अपने डैडी से नफ़रत-सी हुई। फिर वह चोरी-चोरी खेल रचाने लगी। चोरी शब्द का ज्ञान न होते हुए भी उसे इतना मालूम हो गया कि ऐसा करने में बड़ा मज़ा आता है। सर जस्वीर सिंह ने अपनी प्यारी रीता को कई बार पीटा भी, फिर भी उसे छुप-छुप कर खेलने में बड़ा मज़ा आता रहा।

सर जस्वीर सिंह को लगा कि अगर उनकी रीता की यही हालत रही तो, उनका भविष्य साकार न हो सकेगा। और फिर उन्होंने बड़ी अच्छी तरक़ीब सोची। रीता को किसी शिक्षक की देखरेख में कर देना उचित समझा। अध्यापक ढूंढे गये, पर कोई अच्छा ग़ुलाम उन्हें न मिल सका। तब उन्होंने रीता को कन्वेण्ट स्कूल के हॉस्टल में भरती करा दिया,

देना बेंक आप को बचत करने और कमाने में सहायता करती है।

नयी
बचत योजनाएं
ब्याज 3% प्रति वर्ष
साल भर में ५० चेक तक की रकमें निकाली जा सकती है।

१ से ५ साल के लिए
फिक्स्ड डिपोजिटस
४% से ५% ब्याज
जिसका भुगतान अर्ध-वार्षिक रूप से किया जाता है।

देना बेंक की अन्य बचत योजनाएं
बचत खातें : प्रति वर्ष १०० चेक तक की रकमें निकाली जा सकती है।
अल्पवयस्क बचत योजना : ब्याज ३%
सेविंग्ज बॉक्स मुफ्त दिया जाता है।
५-वर्षीय केश सर्टिफिकेटोंपर ४½% ब्याज मिलता है।

देना बेंक
देवकरण नानजी बेंकिंग कं. लि.
हेड आफिस :
हार्निमन सर्किल, फोर्ट, बम्बई-१.
प्रविणचंद्र प. गांधी, मेनेजिंग डिरेक्टर
DB/3/H/10

जहाँ सिर्फ मिनिस्टरों के या ऊँचे ओहदेदारों के लड़के ही पढ़ सकते हैं।

पहले तो रीता बहुत रोयी-चिल्लायी। फिर वहाँ की टीचरने उसे खेल में ऐसा भुलाया, कि वह अपने डैडी का चला जाना जान भी न सकी।

और उसी दिन शाम को सर जस्बीर सिह की जीप माँगी गयी। बगल के गाँवों में एक बेसिक स्कूल का उद्घाटन होने जा रहा था। सर जस्बीर सिंह तो मंत्री जी की स्पेशल कार में उनकी बग़ल में बैठकर गये। फिर गाँव में उद्घाटन समारोह के बाद ज़ोरदार भाषण हुये। सर जस्बीर सिंह जी इस मौक़ेपर ख़ास तौर से बोले। उन्होंने जनता से अपील की कि अधिक-से-अधिक मात्रा में लोग अपने बच्चों को नये बेसिक स्कूलों में भेजें। क्योंकि ये स्कूल बापू के बताये मार्गोंपर चलकर देश में नयी रोशनी लावेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि इन स्कूलों में दस्तकारी को इसीलिए महत्व दिया गया है कि बच्चे श्रम के प्रति प्रेम रखें, ताकि उनके बीच में ऊँच-नीच की खाई न रहने पावे। उन्होंने कहा कि ये स्कूल नयी पीढ़ी के लिए आशा की नयी किरन फैलावेंगे।.... फिर शानदार ऐट होम के बाद, जिसे बी. जी. ओ. महोदय ने ख़ास चन्दे से अरेंज किया था, समारोह का अन्त हुआ।

०००

वैसे उस कहानी की कहानी तो यहीं ख़त्म हो चुकी है। लेकिन वह आपको बतलाना चाहती है, कि रीता उस दिन कन्वेण्ट स्कूल में नहीं थी। वह घरपर अपना पहला समर वकेशन बिता रही थी। हॉस्टल से आने के बाद उसमें बड़ा चेंज आ गया था। उन्हीं दिनों एक दिन उसका प्यारा, हराभरा पेड़ काट डाला गया था; क्योंकि सर जस्बीर सिंह की बिल्डिग कुछ एक्स्टेण्ड हो रही थी और तभी बच्चों ने पेड़ को घेर लिया। लाल-लाल फूल उन्हें खींच लाये थे। उन्हीं बच्चों में दुलरिया भी एक थी। जाने कैसे उस समय वह अकेली रह गयी थी, कि एक ज़ोरदार तमाचा उसके गालपर पड़ा...यह सब कह चुकने के बाद कहानी आप से पूछना चाहती है कि दुलरिया के गालपर यह तमाचा किसने लगाया? और यदि इस तमाचे ने किसी को हसीन शाम की गहराई में डूब जाने का असीम आनन्द न लेने दिया तो, वह इस हर्जाने का दावा किसके ख़िलाफ़, किस कार्ट में करे?... ध्यान रहे कि कहानी आपके उत्तर की प्रतीक्षा में है।

डॉ० कैलाशनाथ मिश्र

परकाय प्रवेश विद्या : एक प्राचीन भारतीय अध्यात्म-विज्ञान

[लेखांक : २]

परकाय-प्रवेश का यह अधिदैविक विज्ञान हम प्रतीति दिलाता है कि इस स्थूल शरीर के अतिरिक्त भी हमारे कई अदृश्य सूक्ष्म शरीर हैं, हम निरे शरीर नहीं, अनेकों शरीरों के निर्माता और स्वामी समर्थ आत्मपुरुष हैं। इस प्रतीति से हमें केवल आत्मा की अमरता का ही भान नहीं होता, स्थूल और सूक्ष्म शरीरों की अनन्त सम्भावनाओं और शक्तियों की कुंजी भी हमारे हाथ आती है, जो कि आगामी मानव-विकास की योजना में, पूर्णतर शरीर के निर्माण की दिशा में चमत्कारिक योगदान कर सकती है।

२. स्मृतिवृत्ति के निरोध से प्राणउद्‌गमन और निद्रावृत्ति के निरोध से परकाय प्रवेश–

स्मृति वृत्ति के निरोध के लिए साधक को अपने मनोमय शरीर में अन्तर्हित होना पड़ता है, और मनोमय शरीर में अन्तर्हित होने के लिए चन्द्रनाड़ी का निरोध करना। यह प्राणतत्त्व वाहिनी नाड़ी है। प्रथमतः तत्त्वाभ्यास करके प्रातःकाल वाम स्वर को ढाई घंटे तक स्थिर करने का अभ्यास करे और इसी अवस्था में खेचरी मुद्रा (इसका वर्णन आगे किया जायगा) धारण करे। यदि इसी अवस्था को स्थिर रख सका जाय तो चन्द्रनाड़ी का निरोध होता है। उस समय हृदय का स्पंदन और नाड़ी की गति इत्यादि क्रियाएँ एकदम बन्द हो जाती हैं। प्राण स्वच्छन्दगामी हो बाहर बहने लगता है। यह स्थूल शरीर से अलग दिखायी देता है। इसके अभ्यास से दूरशब्दश्रवण, दूरदर्शन, पुनर्जन्मस्मृति तथा प्रकाश-साक्षात्कार इत्यादि सिद्ध होते हैं।

जिस प्रकार चन्द्रनाड़ी के निरोध से स्मृति वृत्ति का निरोध होता है, उसी प्रकार वरणा नाड़ी के निरोध से निद्रावृत्ति का निरोध होता है। वरणा नाड़ी मनोमय शरीर में नाद बिन्दु और आज्ञाचक्र तक फैली हुई है।

भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र का स्थान है। यह श्वेतवर्ण और द्विदलयुक्त पद्म है। इसमें महाकाल नामक सिद्ध लिंग और डाकिनी शक्ति अधिष्ठित हैं। यहीं शरत्काल के चन्द्र के समान प्रकाशित ॐकार है।

आज्ञाचक्र के ऊपर अर्थात् मस्तक में सहस्रार कमल है। यहीं से सुषुम्णा नाड़ी अधोमुखी होकर चलती है।

सहस्रार के एकदम आभ्यन्तर में वरणा नाड़ी का होना जाना जाता है। जब चन्द्र नाड़ी का निरोध होता है तो इसका भी निरोध होता है और इसके निरोध से निद्रावृत्ति का निरोध हो जाता है। इसके निरोध से मनोमय शरीर को स्थूल शरीर के बाहर निकाल लिया जा सकता है। यही परकाय प्रवेश के लिए उपर्युक्त स्थिति है।

३. 'बन्धकारण शैथिल्यात्' से परकाय प्रवेश की सिद्धि–

पातंजलि महामुनि के योगसूत्र तृ. पा. सूत्र ३८ में लिखा है–"बन्धकारण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य

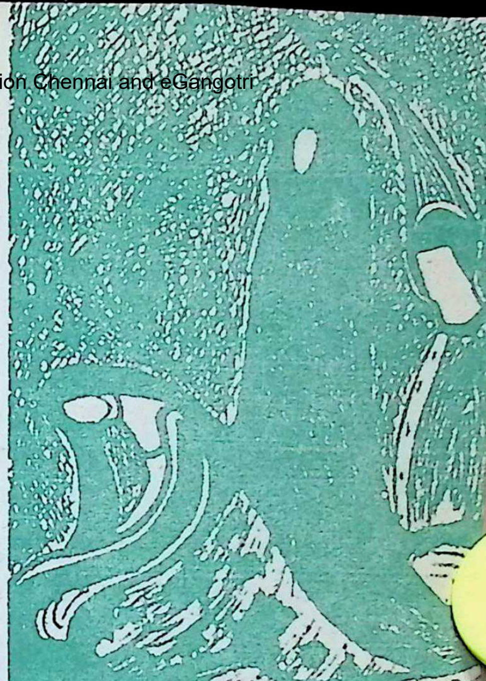

परशरीरावेशः"

अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव को शारीरिक भोग इत्यादि मिलते हैं। भोग की इस अवस्था को बन्ध कहते हैं। जब यह बन्ध विलीन हो जाता है, अर्थात् जीव को सुख-दुःख, मानापमान इत्यादि किसी भी द्वंदों में किसी प्रकार की अनुकूल या प्रतिकूल वेदना नहीं होती, तो वह चित्तवहा नाड़ी में प्रवेश करता है। यह चित्तवहा नाड़ी प्राणवहा नाड़ी से भी अधिक सूक्ष्म है और इसमें प्रवेश करने पर साधक को दूसरों की चित्तवहा नाड़ी का ज्ञान होता है और वह किसी भी जीव में प्रवेश कर सकता है।

२. मन्त्र-तन्त्र द्वारा परकाय प्रवेश की सिद्धि–

शौनक ऋषि के ऋग्विधान में लिखा है–

१. सुषुमादिसप्तसूक्तानि जपेच्चेद्विष्णु - मन्दिरे।
मार्गशीर्षेऽयुतं धीमान् परकायं प्रवेशयेत् ॥२।२।१

२. निवर्त्तध्वं जयेत् सूक्तम् परकायाच्च निर्गतः।
कार्तिक्यांत्रयुतं धीमान् कीर्तिमान् विष्णुमन्दिरे ॥७।७।१

इस प्रयोग में मार्गशीर्ष मास में परकाय प्रवेश करने पर इसके ग्यारह मास बाद परकाय-निर्गमन का विधान है। इसमें उनके अनुसार नं. १ और २ से प्रारम्भ होनेवाले सात सूक्तों के पाठ का विधान है।

आचार्य शंकर, श्री पतंजलि मुनि के "यथाभिमतध्यानाद्वा" के सूत्र के अनुसार परकाय प्रवेश की सिद्धि की पुष्टि करते हैं। उनके कथनानुसार इससे परकाय प्रवेश की विद्या सिद्ध हो जाती है।

उन्होंने इस विद्या की सिद्धि के लिए 'सौंदर्य लहरी' का एक श्लोक, एक यंत्र और मन्त्र बतलाया है। यन्त्र की साधना के साथ-साथ ही इस श्लोक का नित्य सहस्रबार पाठ करना होता है। इससे परकाय प्रवेश की विद्या सिद्ध होती है।

'सौन्दर्य लहरी' का श्लोक है–

"हिमानीहन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ
निशायां निद्राणं निशि चरमभागे च विशदौ।
वरं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समपिनां
सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम् ॥"

यंत्र इस प्रकार है–

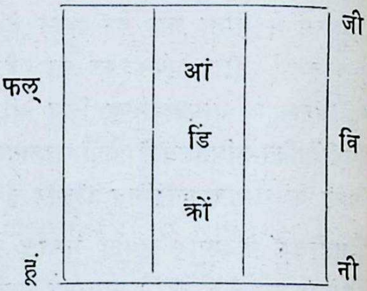

पहले यह यंत्र सोने के पत्र पर लिखे और इक्कीस दिन तक इसे मधु, चित्रान्न और पायस का भोग लगावे, फिर उपर्युक्त श्लोक के पाठ के साथ ही इसे नित्य हल्दी बिछे हुए पीढ़े पर सहस्र बार लिखे।

यन्त्र सिद्ध होने के अंत में जो पूजन और हवन होता है, उसी समय यंत्र सिद्ध हुआ है कि नहीं इसकी परीक्षा कर लेनी चाहिए। हवन के अन्त में यंत्र को हाथ में लेकर 'ॐ मागउ अस्त' मंत्र पढ़कर यन्त्र को अग्नि में डाल दे, न जले तो यन्त्र सिद्ध समझना चाहिए।

५. हठयोग की खेचरी मुद्रा द्वारा परकाय प्रवेश की सिद्धि–

ख=आकाश, चर=चलना। खेचरी का अर्थ हुआ आकाश में गमन। खेचरी मुद्रा

सिद्ध होने से साधक आकाश में भी चल सकता है। हठयोग में खेचरीमुद्रा का वर्णन है। खेचरी सिद्ध होने से परकाय प्रवेश की भी सिद्धि होती है। खेचरी सिद्ध करने में शारीरिक उपायों के अतिरिक्त मंत्र और यंत्र का सहारा लेने से यह शीघ्र सिद्ध होती तथा अधिक फलवती होती है।

खेचरी मुद्रा–

घेरंड संहिता के अनुसार मुद्रा २५ प्रकार की है और शिवसंहिता के अनुसार १० प्रकार की। दत्तात्रेय संहिता, ग्रहसंहिता इत्यादि गन्थों में भी इनका वर्णन मिलता है। सबमें खेचरीमुद्रा का वर्णन आया है।

इसमें जिह्वामूल तथा जिह्वा के साथ जो नाड़ी जुड़ी है, उसे किसी धारदार अस्त्र से काट देना होता है। बाद में उस पर पिसी हल्दी और नमक का चूर्ण लगाना होता है, जिसमें कटा भाग फिर न जुड़ सके। अब प्रतिदिन जीभ का मक्खन लगाकर दोहन करना चाहिए। यह क्रिया तब तक की जाती है, जब तक कि जीभ का अग्रभाग भ्रूमध्य को स्पर्श न कर सके। जब जीभ इतनी लम्बी हो जाय कि दोनों भौंहों के बीच में सहज ही स्पर्श कर सके तो, इसे मुख के भीतर उल्टी मोड़ कर तालु के बीच के गड्ढे में जिसे कपाल-कुहर कहते हैं, घुसा देना चाहिए और भ्रूमध्य में दृष्टि जमानी चाहिए। यही खेचरी मुद्रा है।

शास्त्रीय मत से किसी भी साधन की सिद्धि के लिए चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक, देव-प्रसाद को उत्तम और बहुत से स्थलों पर उनका साहाय्य परमावश्यक वतलाया गया है। इस प्रकार वह सिद्धि अधिक फलवती होती है। देवता की प्रसन्नता के लिए विभिन्न प्रकार के यंत्र और मंत्र का विधान, जो सिद्धि के प्रकार इत्यादि पर अवलम्बित है, अनेक ग्रंथों में दिया गया है।

योगकुण्डल्युपनिषद् में खेचरी को शारीरिक रूप से सिद्ध करने के पूर्व एक मंत्र और यंत्र की साधना करने को कहा गया है।

मंत्र है–ॐ ह्लीं गं सं मं फं लं अं स् ख् फ्रें ग् स्म् लों।

इसीके साथ मेलन मंत्र भी दिया है। यह उत्कृष्ठ कोटि का, परम प्रभावशाली मंत्र है जैसा कि इसके अर्थ से स्पष्ट है। इसके विषय में योगकुण्डल्युपनिषद् में बहुत कुछ लिखा है, विस्तारभय से उसका देना यहाँ संभव नहीं। एक स्थल पर इसके प्रभाव के विषय में इतना ही पर्याप्त है, "तस्य श्रीखेचरीसिद्धिः स्वयमेव प्रवर्तते।"

यंत्र इस प्रकार है–

ॐ

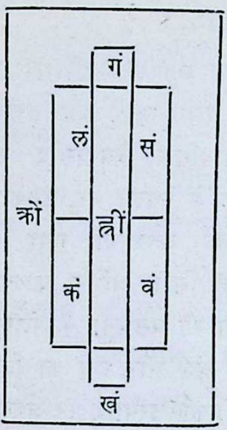

उपर्युक्त मंत्र-तंत्र के साधनों में तत्त्व-साधन आवश्यक होता है। प्रथमतः प्रातःकाल जब आकाशतत्त्व का उदय हो तो, इसे अभ्यास के द्वारा बारह घंटे तक साधने का अभ्यास करे। फिर इसके स्थायी भाव होनेपर खेचरी मुद्रा सिद्ध करे और उसी अवस्था में उपर्युक्त मंत्रों और यंत्रों की साधना करे।

हमारे नथुनों से श्वासक्रिया होती है यह हम जानते हैं। श्वास-प्रश्वास की इस गति का नाम स्वर है। इस गति का एक नथुने से दूसरे में चला जाना उसका उदय कहलाता है।

स्वरोदय के साथ-साथ ही पंचतत्त्वों का उदय हुआ करता है।

आकाशतत्त्व विशुद्ध चक्र (Carotid Plexus) में स्थित है। इसका स्थान कण्ठ है। यह 'जनः' लोक का प्रतिनिधि है।

आकाशतत्त्व का रंग नीला या रंग-बिरंगा आकृति अण्डाकार या बिन्दु-बिन्दु तथा स्वाद कटु है। इसके उदय होने पर श्वास की गति आवर्त, लम्बाई का प्रमाण बीस अंगुल तथा इसकी अवधि दस पल चार मिनट है।

'हं' बीज का जप करते हुये चित्र-विचित्र आकाश का ध्यान करे।

हं बीजं गगनं ध्यायेन्निराकारं बहुप्रभम्
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकम्॥

इस क्रिया को छः मास तक करनेपर आकाश तत्त्व सिद्ध होता है।

६. Conscious Projection या ज्ञात (चैतन्य) उद्गमन की पाश्चात्य क्रिया-

प्राण उद्गमन की पाश्चात्य क्रिया भी बड़ी प्रभावशाली है। इसमें एक लाभ यह है कि बिना गुरु की सहायता के और बिना किसी प्रकार की विपत्ति मोल लिये हम इसकी साधना कर सकते हैं। पर जहाँ तक परकाय प्रवेश की क्रिया का प्रश्न है, ये क्रियाएँ उतनी ही प्रभावशाली होंगी, जितनी कि प्राच्य क्रियाएँ, इसमें सन्देह है। प्राण को शरीर से निकाल लेना, निकलने की अनुभूति प्राप्त करना इत्यादि एक अलग बात है और उसे दूसरे के

शरीर में प्रविष्ट करा देना दूसरी बात। फिर भी यह अनुभूति हमें मार्गदर्शन देती है, यह सही है। जिन्हें इस विद्या में सन्देह हो, उन्हें ये ही प्रयोग पहले करना चाहिए।

जो लोग पाश्चात्य क्रिया को विशेष रूप से जानना चाहें उन्हें मि. मुलडोन द्वारा लिखित 'दि प्रोजेक्शन आफ ऐस्ट्रल बॉडी' पढ़ना चाहिए। विभिन्न प्रकार के चित्रों से सुसज्ज़ित यह पुस्तक अपने विषय का अच्छा ज्ञान कराती है। इसी विषय की फ्रांस की मोशिये डुरावेल की पुस्तक भी प्रसिद्ध है, जिसके चित्र मि. मुलडोन की पुस्तक में दिये गये हैं।

पाश्चात्य क्रिया में स्वप्न नियंत्रण करना होता है। यहाँ मि. मुलडोन की पुस्तक से एक प्रभावशाली क्रिया दी जा रही है।

क्रिया करने के पहले और क्रियाकाल में मांस, शराब इत्यादि उत्तेजक पदार्थों का सेवन करना छोड़ दे। जिस दिन प्रयोग करना हो, उस दिन उपवास रक्खे। उपवास न भी रहे तो प्यास का बना रहना आवश्यक है। यदि प्यास किसी तरह न माने तो एकाध घूंट नमक का पानी पिये। प्रयोग एकान्त कमरे में और रात्रि के अंधकार में करना चाहिए। चारपाई पर पीठ के बल लेट जाय और दृष्टि भ्रूमध्य में स्थिर करे। अनन्तर यह भावना करे कि हम भ्रूमध्य के बिन्दु के निकट जा रहे हैं और फिर यह कि हमारा प्राणमय शरीर उसी बिन्दु से बाहर निकल रहा है। इस क्रिया से आँखों में दर्द होन लगेगा पर उसका चमत्कार भी शीघ्र ही देखने में आयेगा। एक दूसरी क्रिया भी इस प्रकार है–

रात को जल्दी सो जाय और दो बजे रात को उठें। स्थिर होकर तब यह प्रबल इच्छा करे, कि प्राण को बाहर ले जाना है। ऐसी भावना करे कि हम ऊपर चले जा रहे हैं, जैसा कि लिफ्ट या हवाई जहाज में होता है। या ऐसी भावना करे कि हम अग्नि में मिल गये हैं या चक्राकार गति से ऊपर चले जा रहे हैं और अपने चारों ओर की हवा को भी देख रहे हैं। इस प्रयोग में भी उपर्युक्त प्रयोग की शारीरिक स्थिति रक्खे। जलवाले कमरे में एक जलपात्र भरकर रक्खे और उसीका ध्यान करते (यदि जलपात्र उसी कमरे में हो तो उस पर दृष्टि गड़ा कर) सो जाय। नींद के लगते ही हमारा प्राणमय शरीर उस जलपात्र के पास पहुँच जायगा। इसका हमें अनुभव होगा। इसी प्रकार और प्रयोग भी हैं। जैसे यदि किसी से मिलना है तो दिन भर निश्चयपूर्वक उसीको सोचता रहे कि फलां से मिलना है। रात्रि को भी उसी अवस्था में रहे और सो जाय। पहले से ही समय, स्थान

[शेष पृष्ठ ९८ पर]

कृष्णावतार

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

[५]

धारावाहिक पूर्ण-पुरुष लीला

कंस की दुविधा

कंस के बुलाने पर वृष्णिनायक अक्रूर उससे मिलने राज महल गये। यह तो वे खूब जानते थे कि कंस धूर्त है और उनसे बैरभाव रखता है, इसलिए इस बार खुश करने की उसकी प्रवृत्ति को देखकर उन्हें आश्चर्य ही हुआ।

कंस ने कहा, 'अक्रूर, मुझे समाचार मिले हैं कि मुनिश्रेष्ठ कृष्ण द्वैपायन व्यास कल मथुरा आ रहे हैं। उनके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है, यह शायद तुमसे छिपा नहीं है। क्या तुम बता सकते हो कि वे यहाँ क्यों आ रहे हैं? महापराक्रमी भीष्म ने जो संदेश मुझे भेजा है, शायद उसीके सिलसिले में वे आ रहे हैं। यह तो तुम्हें मालूम ही होगा कि वसुदेव को इन्द्रप्रस्थ बुलाने के लिए भीष्म ने अपने दूत भेजे हैं।''

'मुझे मालूम है, राजकुमार!' अक्रूर ने उत्तर दिया।

'वेदव्यास किसलिए यहाँ आ रहे हैं?' कंस ने अधीर होकर पूछा।

'मुझे क्या मालूम!' अक्रूर ने मुस्कराकर कहा।

'मुझे विश्वास है कि तुम्हे मालूम है,' कंस ने कहा, 'तुम्हारा उनसे अच्छा परिचय है, क्यों है न?'

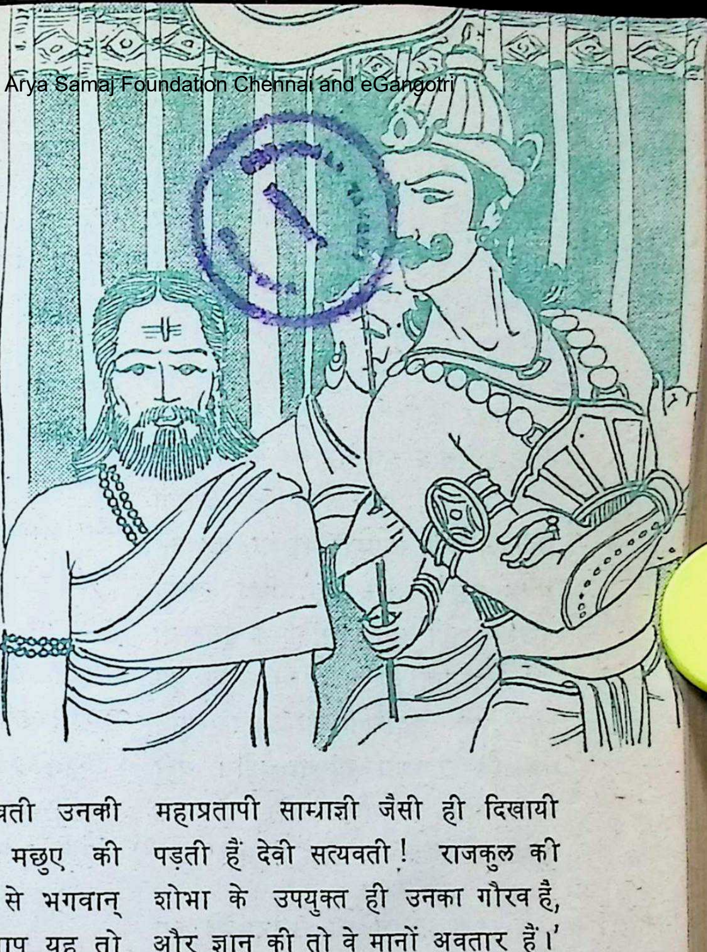

'हाँ, उन पूज्यपाद से मैं कई बार मिल चुका हूँ।' अक्रूर ने उत्तर दिया।

कंस ने तिरस्कार-पूर्वक, कटाक्ष करते हुए कहा, 'क्या यह सच है कि मुनि मछुए की कन्या के पुत्र और कुरुवंशीय राजकुमारों के पिता हैं?'

'मुनिश्रेष्ठ ने यह बात कभी गुप्त नहीं रखी,' अक्रूर ने उत्तर दिया, 'न उन्हें इस बात की कोई लज्जा है। कुरु राजकुमारों की दादी महादेवी सत्यवती उनकी माता होती हैं। जब वे मछुए की पुत्री थीं, तभी उनकी कोख से भगवान् व्यास ने जन्म लिया था। आप यह तो जानते ही होंगे कि पूज्यपाद महर्षि वशिष्ठ के पौत्र मुनि पाराशर उनके पिता हैं।'

'देवी सत्यवती अपने यौवनकाल में क्या उतनी ही सुन्दरी थीं, जितना कि लोग बताते हैं?' कंस ने मार्मिक प्रश्न किया, 'अब वे कैसी दिखायी देती हैं?'

क्षणभर तो अक्रूर मौन रहे। वे जल्दबाजी में कुछ कहना नहीं चाहते थे। कुछ देर बाद उन्होंने कहा, 'महाराज, महाप्रतापी साम्राज्ञी जैसी ही दिखायी पड़ती हैं देवी सत्यवती! राजकुल की शोभा के उपयुक्त ही उनका गौरव है, और ज्ञान की तो वे मानों अवतार हैं।'

कंस इन सब बातों को जानता था, फिर भी इस प्रकार के प्रश्न कर रहा था जिन्हें सुनकर अक्रूर को क्रोध आना स्वाभाविक था।

'यह भीष्म भी बड़ा विचित्र व्यक्ति है। पिता को एक मछलीमार की कन्या से विवाह करने देने के लिए वह स्वयं आजन्म क्वांरा रहा!' कंस ने अक्रूर को और भी चिढ़ाने की दृष्टि से कहा।

आत्मसंयम के हेतु अक्रूर क्षणभर

शांत रहे; फिर बोले, 'राजकुमार, उस कोटि के मनुष्यों को आप नहीं समझ सकते; लेकिन मैं समझता हूँ। आर्यश्रेष्ठ भीष्म अपने पिता राजा शांतनु को वास्तव में देवतुल्य समझते थे, नाममात्र को नहीं!'

पलभर तो कंस अक्रूर को तीक्ष्ण दृष्टि से देखता रहा! अक्रूर के कथन में छिपा जो व्यंग उसके अपने पिता के प्रति किये गये उसके व्यवहार पर था, वह उसे समझ गया। उसने कहा, 'किंतु इसका परिणाम क्या हुआ? शांतनु के दूसरे दो पुत्र निःसंतान ही मृत्यु को प्राप्त हुए और फिर महारानी को अपने मुनि पुत्र की सहायता मांगनी पड़ी। यही व्यास मुनि धृतराष्ट्र और पांडु के जन्मदाता बने, क्यों ठीक है न?'

कंस के कटाक्ष का उत्तर देते हुए अक्रूर ने कहा, 'हाँ, प्राचीन नियोग* प्रथा के अनुसार।'

एकाएक अक्रूर को प्रसन्न करने की मुद्रा में कंस ने कहा, 'देखो वृष्णिश्रेष्ठ, सच-सच बताओ। कुछ ही महीनों पहले तुम हस्तिनापुर गये थे। कुरुकुल के दो राजपुत्र हैं, धृतराष्ट्र और पांडु। धृतराष्ट्र अंधा है, इसलिए हस्तिनापुर का सम्राट बन नहीं सकता। पांडु निर्बल और रोगग्रस्त है। दोनों में से किसी को संतान नहीं। उनकी मृत्यु के बाद फिर साम्राज्य की क्या दशा होगी?'

'जब तक भीष्म बैठे हैं, साम्राज्य को कोई भी क्षति नहीं पहुँचेगी। कुरुवंशी धर्म से विजय प्राप्त करते हैं, छल अथवा बल से नहीं।'

कंस ने कहा, 'ठीक है, पर भीष्म वसुदेव को इन्द्रप्रस्थ किसलिए बुला रहा है? मुझे तो लगता है कि इसमें बुड्ढे की कोई चाल है।'

'मैं तो यही जानता हूँ कि आर्यश्रेष्ठ भीष्म कदापि कपट अथवा युक्ति का आश्रय नहीं लेते।' अक्रूर ने कहा।

'लेकिन मैं वसुदेव को जाने नहीं दूंगा।' कंस ने कहा।

'यह तो मैं भी जानता हूँ। किंतु भीष्म क्या इससे आप पर क्रोधित नहीं होंगे?' अक्रूर ने कहा, 'और, भीष्म का कोप कितना भयंकर होता है, यह तो आप भलीभाँति जानते हैं। वसुदेव

---

*स्मृतियों द्वारा मान्य प्रजोत्पत्ति की प्राचीन विधि, जिसके अनुसार विशिष्ट संयोगों में ज्येष्ठ भ्राता अपने अनुज की विधवा द्वारा संतान उत्पत्ति कर सकता था। 'गौतम'– १८,४–८: 'मनु' ९,५७ 'कौटिल्य' १,१७: 'नारद' ८२: 'महाभारत आदिपर्व' १२०, ३२–३५

को रोकना बुद्धिमानी का काम नहीं होगा। किन्तु देवकी को यहाँ छोड़कर वसुदेव कहीं जायेंगे भी नहीं और आप देवकी को उनके साथ भेजना कभी स्वीकार नहीं करेंगे, राजकुमार!'

जरा-सा हँसकर कंस ने कहा, 'ठीक है....ठीक है; अक्रूर, तुम चतुर हो! अव वताओ, भीष्म को मुझे क्या उत्तर भेजना चाहिए? वसुदेव के वजाय देवक चाचा को यदि भेजूं तो? यदि मुनि भी भीष्म का यही संदेश लेकर आयें तो, मैं उन्हें क्या जवाव दूं?'

'क्यों नहीं सच्ची वात वता दी जाय?' अक्रूर न कहा, 'वसुदेव और देवकी को तो आप वहाँ जाने देंगे नहीं, क्योंकि यदि उन्हें जाने दें तो, वे वापस नहीं आयेंगे। और, उनकी संतान आपकी हत्या करेगी, यह भय आपको है।'

रोषपूर्वक कंस वोल उठा, 'मूर्खों जैसी वातें मत करो। मैं यह सव विचार क्यों करूं?'

अक्रूर ने हंसकर कहा, 'सभी को यह वात मालूम है।'

'चतुराई छोड़ो, अक्रूर!' कंस ने कहा, 'मैं तो चाहता हूँ कि वसुदेव स्वयं जाने से इन्कार करें। देवकी को छोड़कर जाना उन्हें अच्छा लगेगा भी नहीं। क्यों नहीं उनके वजाय तुम इन्द्रप्रस्थ जाओ! भीष्म को भी इससे संतोष होगा।'

थोड़ी देर फिर चुप रहने के वाद अक्रूर वोले, 'कल मैं मुनि से पूछ लूंगा। यदि उन्होंने मान लिया तो, मैं चला जाऊँगा!

'और यदि वे नहीं माने तो?' कंस ने क्रोधपूर्वक पूछा।

'तो मैं नहीं जाऊँगा।' शांति से अक्रूर ने उत्तर दिया।

'इसका परिणाम क्या होगा यह जानते हो?' कंस ने क्रोध से आंखें दिखाते हुए कहा।

'जीवन और मरण तो ईश्वराधीन है, राजकुमार!' अक्रूर ने उत्तर दिया और नमस्कार कर वहाँ से चल दिये।

सिंहासन पर से उठकर कंस गरज उठा, 'मैं आज शाम को शिकार खेलने जा रहा हूँ। मुनि से मिलने की मेरी इच्छा नहीं है। और, तुम्हें तो वही कहना है, जो मैंने अभी-अभी तुमसे कहा है, समझे न!'

प्रत्युत्तर में अक्रूर पीछे मुड़कर जरा मुस्करा दिये। (क्रमशः)

– अनु० ओंकार नाथ शर्मा

*

[परकाय प्रवेश विद्या : पृष्ठ ९३ का शेषांश]

इत्यादि निश्चित किये रहे और निश्चयात्मक भावना से दिन-समय की प्रतीक्षा करता रहे। उस दिन और उस समय आपकी (प्राणमय शरीर की) भेंट उस मनुष्य से हो जायेगी और यह उस मनुष्य को भी अनुभव होगा। आपको तो होगा ही।

जिस समय हमारा प्राणमय शरीर हमारे स्थूल शरीर से निलकता है, उस समय वह भ्रूमध्य से निकले एक अदृश्य तन्तु जिसे 'सिलवर कार्ड या ऐस्ट्रल कार्ड' कहते हैं, जुड़ा रहता है। यदि किसी प्रकार इसी अवस्था में यह तन्तु टूट जाय तो, फिर प्राण उस शरीर में लौटकर नहीं आता। प्राण के समान ही इसकी गति भी अबाध है। हज़ारों मील की दूरी भी इसे नहीं तोड़ती, पर प्राणघातक दुर्घटनाओं में या मृत्यु में इसका सम्वंध स्वमेव टूट जाता है। मि. मुलडोन की पुस्तक के चि में इसका अच्छा निदर्शन है।

जिस समय हम यह अनुभव कर हैं कि इस स्थूल शरीर के अतिरिक्त हमारे अदृश्य सूक्ष्म शरीर हैं, हमारा इ शरीर से व्यर्थ का मोह स्वयं समाप्त जाता है। हम निर्भय हो जाते हैं औ हमें असीम आनन्द की प्राप्ति होती है जिस समय प्राणमय शरीर बाहर आकर इस स्थूल शरीर में प्रवेश करता है उस समय ऐसे आनन्द की अनुभूति हो है, जिसकी तुलना अन्यत्र नहीं। पुस्त में या सिद्धांत के रूप में कुछ भी पढ़ हमें उतना संतोष नहीं होता, जितना स्व प्रयोग कर लेने के बाद। और यह वि उसे प्रयोगसिद्ध बना देती है, और त हम अपनी अमरता का अनुभव करते हैं

★

विवेकानन्द-साहित्य

सन् १९६३ में स्वामी विवेकानन्द के शताब्दी समारोह के शुभ अवसर पर स्वामी जी का सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है। विवरण इस प्रकार है—पृष्ठ संख्या ५०००, खण्ड—१०, डिमाई साईज, आकर्षक सज़िल्द (वस्त्र)। जो भई १९६२ तक किश्तों में ४७ रु. ५० नये पैसे तथा एक साथ ४५ रु. भेज देंगे, उन्हें सम्पूर्ण सेट प्राप्त होगा। कृपया **रामकृष्ण मिशन**—नयी दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, नागपुर, आसनसोल, वम्बई, जमशेदपुर, पटना से जानकारी प्राप्त करें या लिखें :—

अद्वैत आश्रम, ५, डीही इन्टाली रोड, कलकत्ता—१४

[स्वीकारो प्राणों का सौरभ टीका : पृष्ठ २३ का शेषांश]

उड़ते रूढ़ी के काग यहाँ पर
गोल बाँध कर बार-बार।
बस चले किसी का तो मेरे ये मांस-खंड
दोहे-पद-साखी और सबद...
नोचें, चीथें शव समझ इसे।
देखो, घर फूँक खड़ा हूँ मैं, लिये लुकाठी कर में
अभी मुझे संतों की सादी जेवनार का
ख़र्च चुकाने

अपनी प्रिय पत्नी लोई को
काँधे पर ढो,
उस वणिक-पुत्र की शैया पर रख आना है;
जिससे कुछ द्रव्य मिला था
गृहिणी लोई को।
हे देश,
यातना की ऐसी ही काशी में
जनमा-पनपा मेरा कबीर।
तुम उसको मत 'मगहर' जाने को
विवश करो।

मेरे पहलू में सिसक रहा है महाशैव
वह तरुण तपस्वी नन्दनार
दक्षिणवासी,
कुल-जाति-वंश के भारी भरकम लौह-शूल
जिनके हाथों में सधे हुए
वे धर्म नियामक ब्राह्मण अब
अपना अशेष बल तौल रहे
मुझ हरिजन पर।
मैं महानाश की नयन वह्नि के सागर में
अपनी आस्था के हाथ मार कर तैर रहा।
तट रोक खड़े हैं धर्म-नियामक
शूल बद्ध।
तुम नन्दनार को घायल करने तुले शूल पर
सान धर रहे महादेश।
मेरी छाती के घाव...रक्तभीगे कनेर के
फूल चढ़ा,
तुमको प्रणाम करने को कब से उत्सुक हैं।

मैं चंडिदास,
अपने प्राणों की रामी से
तुम लोगों का सब कलुष धुलाता युग-युग से,
तुम निन्दा के पत्थर पर मुझको पटक रहे
वह गूँज रही ध्वनि....
"सुनह मानुष भाई।
शाबार ऊपरे मानुष-सत्य ताहार
ऊपरे नाई।।"

मेरे नरसी का लुटा आत्मविश्वास प्रभो।
मेरी बेटी तक पहुँचे सके
इससे पहले ही हड़प हुआ हुंडी का धन।
केवल दो पत्थर शेष रहे
अब करम पीटता है नरसैया
वैष्णव-जन।
तुमको इन चंडीदासों का
नरसी, तुलसी का नहीं ख्याल ?
ओ देश,
इन्हें तुम किसी पंच-सहस्री में
शामिल तो कर लोगे ?
फिर भले "जजीया-कर" लादे
ये नये वित्त-मंत्री तेरे।
तब तक, तब तक,

मेरे भुज में उठ रही भयंकर पीड़ा को लहराने दो,
रोको, मेरे मन के इस उद्यत तुलसी को
मत "बाहुक" इसको लिखने दो।
चौकन्ने रहो, न दे पाये
यहीं कहीं किसी एप्लायमेन्ट के दफ्तर में
दुखभरी 'विनय-पत्रिका' कभी।

दिल्ली के इब्राहिम लोदी की जेल भोगता मैं नानक।
आत्म-धर्म के साम्यवाद का मुक्त प्रचारक।
है नहीं दीखता मुझे कहीं
काबा-काशी मग़रिब-मशरिक में
भेद कभी।
मैं इसीलिए हूँ खड़ा सीखचों के भीतर
मुझको प्राणों का मोह कहाँ ?
सिद्धान्त सत्य की सूली पर वह टँगा हुआ
ईसा मैं ही।
मैंने ही विष के घूंट पिये
दिल्ली के प्रभु।
मैंने सूली पर सेज बिछा कर रक्खी है,
अब तो आओ तुम गिरफ़्तार करने के ख़ातिर
किसी रोज़।
यह दर्द नहीं जायेगा प्रभु,
जब तक तुम प्राणों की मीरा से नहीं मिलो॥

तुम देख रहे हे देश।
आज का तुकाराम....
निंदा के "मंबाजी" से जो आ गया तंग,
मर्मानुभूतियों की गाथा को
नदी-भँवर में फेंक आज
अपने अभंग-पुत्रों को देता जल-समाधि।
इन होनहार उसके अभंग-पुत्रों को तुम
वाणी-मंदिर में नहीं प्रतिष्ठा दे सकते,
मंबाजी की मान्यता-प्रकाशन-संस्था में
वे नहीं चापलूसी के दामों बिकते हैं,
इसलिए कीर्ति के कोलाहल से दूर विजन में महासंत
जन-रुचि के 'विट्ठल' को पुकार कर जगा रहा;
पर तुमने तो जनरुचि के प्रभु के पाँवों में बेड़ी डालो
अपने मंबाजी के द्वारा,
वाणी-मंदिर के दरवाजों में ताला दे
सिंहासन के नीच चाबी रख
बैठे हो,
उसके अभंग-पुत्रों की कैसे रक्षा हो ?
अब कौन नदी से हाथ उठा
सारे अभंग लौटा देगा ?
ओ देश,
देखते हो मेरे भीतर बैठा यह "वैन गोफ़"
जो अपनी हत्या नहीं कर सका
इसीलिए
अब बना रहा है बैठा
बीड़ी के लेबिल।
मजबूरी के इस लियो-प्रेस का कारीगर
यह जीवन-मृत,
भरता है अपना मात्र पेट।
अब खुले आम मर मिटने के
पौरुष से सहसा रीता हो
हररोज जरा-सा भरता है।

देखो, देखो....
तेरी सीमा के डिक्टेटर
हर रोज हाँक कर भगा रहे
मेरे मन का "स्टीफ़ेन ज्विग" ।
अपने विचार की मातृभूमि से दूर कहीं
इस बियाबान में मरने को
अब उद्यत है ।
उसकी मरती प्रत्येक महत्वाकांक्षा की
गर्दन पर चलती
ठंडी धारा जरा देखो,
कह सको कहो अपने माहिर जल्लादों को
के किसी तरह जल्दी न करें,
धीरे-धीरे यह डिक्टेटरी-छुरी रेतें ।
ओ देश,
मुझे मत जीने दो अपने ढंग से ।
तुम मुझको समतल रहने दो।
यदि कहीं ज़रा सा उठ जाये...
व्यक्तित्व, भूल से ऊँचा तो
दो दबा,
करो समतल मुझको।
बागड़ जैसी कैंची-शासित ऊँचाई में
मुझको नगण्य-सा जीने दो।
जीते देखो,
मुझको ओ मेरे महादेश ।

देखो तुम दैनिक पृष्ठों के
संवाद सजाते कालिदास,
अब महाकाव्य लिखने की सुविधा
उसे न दो।
वह तो नेताओं के इण्टरव्यू
लिखने के गुर सीखा रहा,
उसको सहयोगी–सम्पादक बन जाने दो।
ओ प्रजातन्त्र ।
तुम उसका जीवन-मान और
वेतन भर निश्चित कर देना ।

ये भटक रहे हैं विगत क्रान्तियों के सैनिक।
कुछ भीख माँगते पड़े हुए हैं
पेड़ तले,
कुछ कहीं विजन में नारकीय जीवन जीते,
कुछ नहीं चख सके स्वाद अभी तक
मुक्त देश में जीने का,
कुछ चन्दन जैसे घिस-घिस कर
निःशेष हुए,
कुछ क्रान्ति-यज्ञ में काट,
ज़ला अपने अवयव
विकलांग हुए,
सबको खोजा,
फूलों के सबको हार दिये,
लम्बे चौड़े भाषण की सबको चाय पिला,
सत्तावन की यह क्रान्ति-शताब्दि मनायी है
ओ देश, तुम्हारे कर्णधार नेताओं ने।

ओ मातृभूमि ।
फिर भी तुम मेरे लिए बड़ी,
तुम हो "स्वर्गादपि गरीयसी ।"
मेरे जीवन को चन्दन-सा घिस-घिस कर तुम
अब भाल-तिलक बन जाने दो ।
मत बनने पर मजबूर करो
मुझको बबूल,
स्वीकारो मेरे प्राणों का चन्दन-मृगमद...
सौरभ-टीका ।

• • •

"आन्ध्र-प्रदेश"

[मासिक]

उर्दू साहित्य की एक उच्चस्तरीय पत्रिका

आप इस पत्रिका में रोचक एवं उच्चकोटि की कहानियाँ, कविताएँ तथा देश के ख्यातिप्राप्त कवियों और लेखकों की रचनाएँ, नूतन भारत की झलक, विश्वसनीय आंकड़े, मनोहारी चित्र तथा और भी सभी कुछ, जो एक पाठक चाहता है, तीन या चार विशेषांकों के साथ पायेंगे।

इन सब उल्लेखनीय आकर्षणों के बावजूद वार्षिक चन्दा मात्र ३) तथा एक प्रति का मूल्य मात्र २५ नये पैसे है।

आप अपना चन्दा, नीचे के पते पर अविलम्ब भेजें:

डायरेक्टर, सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग,
आन्ध्र-प्रदेश सरकार,
मुकर्रम जाही रोड, हैदराबाद (दक्षिण) १

'आन्ध्र-प्रदेश' हिन्दी में

महत्त्वपूर्ण सचित्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

"आन्ध्र-प्रदेश"

एक साथ तेलुगु, उर्दू तथा अंग्रेजी में प्रकाशित

जनवरी १९६२ से

हिन्दी में भी इसका प्रकाशन प्रारम्भ। उच्चकोटि की सामग्रियों, अधिक पृष्ठों एवं अन्य सुविधाओं के बावजूद इसका वार्षिक चन्दा मात्र ३) निश्चित किया गया है।

विस्तृत सूचना के लिए लिखें तथा अपना चन्दा इस पते पर भेजें:–

डायरेक्टर, सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग,
आन्ध्र-प्रदेश सरकार,
हैदराबाद १

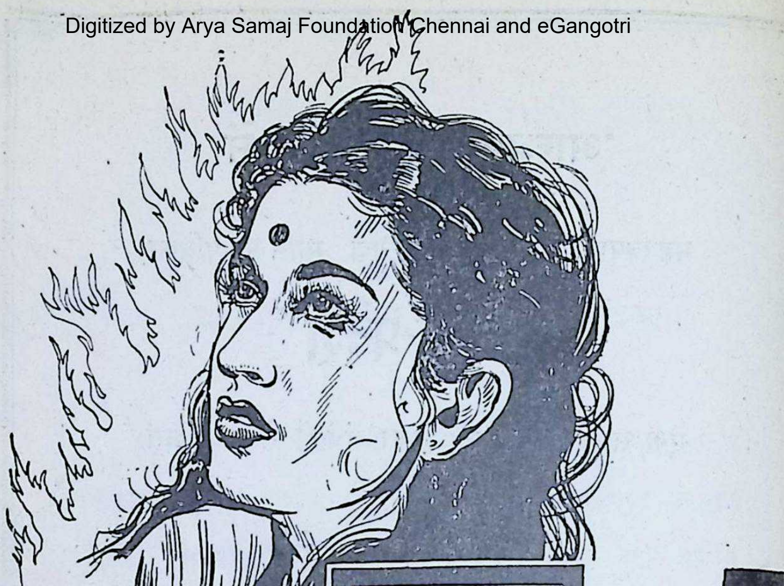

तपस्विनी

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

[द्वितीय खण्ड]

धारावाहिक उपन्यास

•

भारतीय भाव-चेतना के गत सौ वर्षों के इतिहास को आवरित करता एक कथा-प्रबन्ध

•

– ३५ (क) –

स्त्री नहीं; संगीत

आज शीला का मन प्रसन्न था। मई जून और जुलाई के आधे महीने तक वह पति के साथ यूरोप हो आयी थी। राधारमण हर समय उससे खुश रहता। उसने बाहर भटकना भी बहुत दिन से छोड़ दिया था। चर्खा संघ के कार्य से भी

उसके म
के घाव
की प्या
गयी थी
महीन
बीच जो
वह भी उ
पहले–जै
हँसमुख
गयी थी
हो गयी
चर्खा संघ
ज़रा-ज़रा
यदि स्त्री
तो, उसक
है। और
और धुन
सीख ली

इसके
शीला को
ख़ास का
गवर्नर क
कोशिश क
बारे में
दिनों में
होनेवाली
गृहस्थी ट
छोड़कर
भारी हा

उसके मन को शांति मिलती थी। हृदय के घाव भर गये थे। मात्र उसकी पहले की प्यारी हँसी सरल गांभीर्य में बदल गयी थी।

महीनों से शीला और राधारमण के बीच जो कोई तनाव नहीं हुआ था, वह भी उसकी दृष्टि से बुरा न था। शीला पहले-जैसी नहीं रही थी। अब वह हँसमुख छोकरी के बदले प्रौढ़ स्त्री बन गयी थी। स्वभाव से कुछ स्वतंत्र अवश्य हो गयी थी। लेकिन जब से उसका मन चर्खा संघ के कार्य में रमा था, तबसे उसे ज़रा-ज़रा सी बात का बुरा लगता था। यदि स्त्री ज़रा-ज़रा सी बात पर रो पड़े तो, उसके साथ कैसे रहा जा सकता है। और अब तो उसने अपने कार्य और धुन के अनुकूल बन जाने की कला सीख ली थी।

इसके अतिरिक्त बैरिस्टर साहब जो शीला को खुश रखते थे, उसका भी एक ख़ास कारण था। वे कितने ही दिनों से गवर्नर की कौंसिल के मेम्बर होने की कोशिश कर रहे थे। गवर्नर साहब उनके बारे में अच्छी धारणा रखते थे। कुछ दिनों में एक मेम्बर की जगह भी खाली होनेवाली थी। ऐसे समय यदि उनकी गृहस्थी ठीक से न चलती या स्त्री घर छोड़कर जाना चाहती तो, इस प्रवाद से भारी हानि होने की संभावना थी।

वे ऐसे थे कि जब खुशमिजाज़ होने की जरूरत समझते तो, बड़ी असानी से हो जाते। तब वे चाहे जैसे लोगों में मिल जाते और चाहे जैसी मौज उड़ाते। और इस समय तो उन्होंने खूबी के साथ कवि के घमंड को चूर किया था। साथ ही मिल गया था उदय जैसा शिष्य और वह भी भारी प्रशंसक।

पत्नी के साथ अकेले बैठना उन्हें बड़ा बुरा लगता। चुप बैठते तो अच्छा न लगता और बातें करते तो विषय न सूझता और विषय सूझता तो झगड़ा होता। इसलिए तीसरे आदमी की सख्त ज़रूरत रहती। उसके साथ गप्पबाज़ी हो और पत्नी समझे कि बातें हो रही हैं। झगड़ा हो तो भी वह शांत करावे। प्रेक्षक के उपस्थित रहने से स्नेह-सम्बन्ध शोभा-श्रृंगार वाला बन सकता है और शीला को साथी मिल सकता है, जिससे उसका दिल बहलाने की उनकी चिंता कम हो सकती है, इसलिए उदय मुँह माँगे वरदान जैसा मिला।

इन सब बातों के कारण, राधारमण ने उसके प्रति ऐसा भाव-प्रदर्शित किया, जैसे कि वह कुटुम्बी हो। बंगले जाते समय रास्ते में बैरिस्टर साहब ने उससे मत्तमयूर की स्मृतियों के बारे में पूछा। शीला भी उनकी कुछ रचनाओं से परिचित थी। इसलिए वह भी अपना मत देती गयी।

कवि की एक कृति उसे वहुत अच्छी लगती थी। उसने उसमें का एक गीत भी गाया।

तीनों घर पहुँचे, भोजन किया और बैरिस्टर साहब ने शीला से गाने को कहा। उन्हें संगीत का तनिक भी ज्ञान न था। शीला गाती है या कैसा गाती है, इसमें उन्हें कोई रुचि न थी। परन्तु बीस वर्ष पहले उन्होंने देशी समाज और बम्बई गुजराती मण्डलियों के नाटक अनेक बार देखे थे, इसलिए उनकी अनेक टूटी-फूटी पंक्तियाँ उन्हें याद थीं और शीला ने उनको रिझाने के लिए वे गाने कण्ठस्थ करके रागों में बिठा लिये थे। आज पति को प्रसन्न देखकर वह गाने लगी।

उदय भी उन गानों से परिचित था। बचपन में उसने भी इन नाटकों में से कछ को देखा था। विलायत में भी कभी-कभी उन गानों को याद करने के लिए नोटबुक साथ रखी थी। इसलिए शीला के साथ वह धीरे से स्वर मिलाने लगा। राधारमण को सरल और एकरस संगीत पसन्द न था। उन्हें तो मुंहफट महफिल की धम्मचौकड़ी चाहिए थी। इसलिए उन्होंने उदय से शीला के साथ जोर से गाने का आग्रह किया।

डाह्याभाई घोलशाजी के गानों में वासना की कमी न थी, अतः पहले तो उदय को शीला के साथ गाने में झिझक लगी, लेकिन जब राधारमण ने क "Louder my boy. Don't ashamed. You are not runni away with my wife. (जोर लड़के। शरमा मत। तू मेरी बीवी साथ भागा नहीं जा रहा है।) तो वि होकर उसे पूरी तरह साथ देना प

थोड़ी-थोड़ी देर बाद कोई पं याद आजाती तो, वैरिस्टर साहव हो जाते और बीच में कूद पड़ते। इ हँसी-मज़ाक शुरू होगया और सं जाता रहा।

शीला का कण्ठ मधुर था। गाते समय उसके स्वर में शब्दानु भाव भी आजाते थे। उसके संगीत प्रभाव मोहक था, इसलिए साथ ग हुआ उदय भी उसके आह्लादक प्रवाह में बहने लगा। शीला ने मं और आर्द्र स्वर से गाया—

तुम्हारी शरण मैं आयी
मुझे नाथ छोड़ दोगे?
प्रिय प्राण कह वुलायी
मुझे नाथ छोड़ दोगे?
जब था कुमार भोला
यह मेरा मन अकिंचन,
प्रेम-ज्योति जगा व्याही
क्या प्यारे भुला दोगे?
ना कहोगे?...

गाते-गाते शीला की आवाज़

उठी और उसकी आँखें क्षणभर के लिए राधारमण पर टिक गयीं। उदय को ऐसा लगा, जैसे उनमें दयनीय अनुरोध हो। उसे संदेह हुआ। 'बाहर से सुखी दिखनेवाले इस दम्पति का जीवन क्या वास्तव में सुखी होगा? मुझे नाथ छोड़ दोगे?' में अकथनीय विनम्रता थी, या उसका भ्रम था?' गाना बीच में खत्म होगया। राधारमण ने ताली बजायी, साथ ही उदय ने भी। शीला कुछ शरमा गयी।

"शीला, अब वह गा : 'स्वेद से भीगी मोरी चूंदरी रे व्रजवाट में,'' राधारमण ने कहा।

शीशा का मुँह लाल होगया। "नहीं—नहीं-नहीं! कहीं यह गाने योग्य होगा? मुझे याद नहीं।" उदय उसके मुख के इन्द्रधनुषी सौंदर्य को देखने लगा।

"क्या शरमा रही है? अच्छा, तो कोई दूसरा गा। 'पहरी चोली सैनावैनी करती आयीं' गा। गा।"

शीला ने सर हिलाया और एक समय गुजरात में अत्यंत लोकप्रिय होनेवाला गाना शुरू किया—

"मेरे तन में, मन में भरे हैं, बसे हैं,
डर जाऊँ गज देख।"

राधारमण ने हाथ से ताल दी और साथ गाना शुरू किया।

"मेरे तन में, Come on उदय। तू भी गा। यह तो गुजरात का सामूहिक गीत है। इसे हर एक लड़का मुक्त कंठ से गाता था।

"मेरे तन में, मन में भरे हैं, बसे हैं
डर जाऊँ गज देख।"

'सुन्दरी' का क्या गला था?"

तीनों ने गाना गाया और बंगला गूंजने लगा।

"अब 'सुन्दर प्रियतम' गा।" राधारमण ने कहा। शीला ने शुरू किया :—

सुन्दर प्रियतम नन्हीं ननद के वीर जी
छैल-छबीले मुझे हलके-हलके गहने गढ़ाओ
मुझे हलके-हलके गहने गढ़ाओ।

राधारमण खड़ा होगया। उदय का हाथ खींचकर उसे भी खड़ा किया और दोनों एक साथ ताली बजाने लगे।

शीला ने गीत पूरा किया :

"ग़रीब पति और स्त्री, और अधिक
क्या कहिए
बस इसके कारण मन मसोस कर रहिए।"

राधारमण को अंतिम पंक्ति याद थी, सो उन्होंने पूरा किया :—

"साथ ही एक पत्थर देवीजी माँग लीजिए।
हट. . . हट. . .॥

सब हँस पड़े।

रात के बारह बज़े महफ़िल बरख़ास्त हुई। राधारमण और शीला अपने शयन कक्ष में गये। उदय अपने लिए तैयार किये गये कक्ष में गया। (क्रमशः)

(युगनद्ध की पुनर्व्याख्या : पृष्ठ २७ का शेषांश)

'समरसता' कैसे उत्पन्न हो? और इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए उन्होंने 'समझौते' का मार्ग नहीं अपनाया, बल्कि अकल्याणकारक 'आसक्ति' या 'तृष्णा' के नाश के लिए उन्होंने जगत् की सत्ता का ही निषेध कर दिया! अतएव 'प्रयोजन' मुख्य है, जगत् की सत्ता है या नहीं, यह प्रश्न 'प्रयोजन' से निरपेक्ष नहीं हो सकता।

प्रश्न यह होगा कि "प्रयोजनविशेष" की पूर्ति के लिए क्या विचित्र और अवैज्ञानिक दृष्टियों को आज अपनाया जा सकता है? मानसिक शांति के लिए अवैज्ञानिक सिद्धांतों या 'दृष्टियों' को अपनाने से सामाजिक उन्नति का द्वार वन्द हो जायगा। उसका उत्तर यह है कि प्राचीनों ने अपने-अपने क्षेत्र बाँट लिये थे। उदाहरण के लिए 'बौद्धों' में वैयाकरण भी थे, रसायनशास्त्री भी और रहस्यवादी साधक भी। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' भी यहाँ है और मनु, याज्ञवल्क्य आदि की स्मृतियाँ भी हैं, वात्स्यायन का कामशास्त्र भी है और स्वामिकार्त्तिकेय के नाम पर प्रचलित "चौर्यशास्त्र" भी है। तात्पर्य यह कि "जगत् के निर्वाह" के लिए शास्त्र अलग हैं और मानसिक द्वंद्वों से परे जाकर शांति प्राप्त करने के लिए शास्त्र अलग हैं। 'गीता' और 'सद्धर्मपुंडरीक' जैसे ग्रंथ भी हैं, जिनमें 'निरासक्त' रहकर लोकसं पर बल दिया गया है, अतः 'अधिकारीभे को ध्यान में रखकर विभिन्न दृष्टि है, जो जिसे पसंद हो, उसे स्वीकार करे और समग्र-विकास के लिए भी "निरा सक्त" रहकर लोकसंग्रह का विधान क दिया गया है। किंतु यह स्मरणीय है कि 'प्रयोजन' पर विचार न कर किसी 'दर्श पर विचार नहीं हो सकता। आप यदि यह कहें कि बौद्ध या शंकराचार्य जगत् की सत्ता का निषेध करते हैं, अतः महत्त्वही हैं, तो यह उनके प्रति अन्याय होगा, क्योंकि उनके सम्मुख 'प्रयोजन' मुख्य है, जग की सत्ता या असत्ता नहीं। वैराग्य के लिए जगत् की असत्ता या मिथ्यात्व घोषित करना आवश्यक है।

अब व्यावहारिक जगत् में उन बौद्ध 'युगनद्ध' सिद्धांत का प्रयोग कर देखना चाहिए। 'युगनद्ध' का अ "दो की संलग्नता"—दो एक का होजाना इस सिद्धांत को समझाने के लिए ऐ देवताओं की मूर्त्तियाँ बनायी गयं जिनकी गोद में देवियाँ लेटी हुई हैं "आलिंगनबद्ध मूर्तियों" की सृष्टि क यही रहस्य है। उच्चकोटि की मानसि शांति के लिए 'भाव' और 'अभा अर्थात् पदार्थ की सत्ता और असत्ता इन दोनों स्थितियों के परे जाना होगा

अतः वस्तु की भावात्मक सत्ता का खंडन आवश्यक हो गया। इसीलिए 'अद्वयवज्र-संग्रह' के "युगनद्धप्रकाश" प्रकरण में कहा गया है कि रूप रूप में नहीं रहता, न नेत्र में रहता है, न विज्ञान में रहता है, न रूप की उत्पत्ति होती है, न वस्तु स्वभावतः उत्पन्न होती है। अतः लकड़ी से जिस आग की उत्पत्ति होती है, उसके लिए उत्पत्ति शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। अतएव 'वस्तुतः' या 'वस्तु की भावात्मक सत्ता" जैसी कोई चीज़ ही नहीं है। इसलिए धर्म, या पदार्थ निःस्वभाव हैं, वे प्रत्ययमात्र हैं। जव वस्तु की ही सत्ता नहीं है, तब उनके 'अभाव' की कल्पना ही नहीं की जासकती, अतएव 'भाव' और 'अभाव' दोनों मिथ्या हैं।

पदार्थ के प्रति इस "दृष्टि" के कारण 'आसक्ति' का जन्म नहीं होगा। इस दृष्टि का नाम है "प्रज्ञा"। किंतु केवल 'प्रज्ञा' से हम अपनी चेतना को 'तटस्थ' रख सकते हैं, किंतु जगत् में सभी प्रज्ञावान् नहीं हैं और इसलिए वे दुःख सह रहे हैं। अतः उनके उद्धार के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है, अन्यथा हमारे 'व्यक्तित्व' की अथवा हमारी 'चेतना' की सार्थकता ही समाप्त हो जायगी। इस 'प्रयत्न' का शास्त्रीय नाम है—"उपाय" अतः "प्रज्ञा और उपाय" जव 'युगनद्ध' होते है, तभी समाज और व्यक्ति का कल्याण होता है। कोरा ज्ञान पंगु है और कोरा प्रयत्न अंधा है, दोनों की एकता या युगनद्धता से ही कल्याण सम्भव है।

पारिवारिक सम्वन्धों में "प्रज्ञा और उपाय" के युगनद्ध न होने से ही विग्रह उत्पन्न होते हैं। पति, पत्नी को यदि भोग या आसक्ति की वस्तु समझता है तो, अंत में 'निराशा' अवश्य होगी और यदि पति पत्नी को 'प्रज्ञोपाय' की तरह 'युगनद्ध'—'एक' समझता है, अपनी चेतना की पूरक मानता है, तो 'प्रेम' स्थायी हो जाता है। क्योंकि 'सृष्टि' द्वंद्वमयी है, अतः पुरुष प्रज्ञाप्रधान है, स्त्री उपायप्रधान, अथवा स्त्री प्रज्ञाप्रधान हैं, पुरुष उपायप्रधान। शैवों के शब्दों में पुरुष शिव है, स्त्री शक्ति। एक भावात्मक, सक्रिय सत्ता है, दूसरी अभावात्मक, निष्क्रिय सत्ता ह। दोनों के 'सामरस्य' से ही 'प्रेम' स्थायी हो सकता है। इसी प्रकार शासक और प्रजा की 'एकता' आवश्यक है। तानाशाह अपने को प्रजा का अंग' नहीं मानता, वह अपने को सर्वथा विलक्षण, अद्वितीय पुरुष मानता है। फलतः "अशुद्ध प्रज्ञा" के कारण, "उपाय" भी अशुद्ध बन जाता है और विग्रह होता है। इसी प्रकार "सहअस्तित्व" का नारा भी ग़लत है। दो अशुद्ध "प्रज्ञाएँ" एक साथ पृथ्वी पर हमेशा के लिए नहीं रह सकतीं। यदि साम्यवादियों की 'प्रज्ञा' शुद्ध है तो, 'पूँजीवादियों' को समर्पण करना

होगा, अन्यथा उनका विनाश होगा। इसी प्रकार यदि "पूँजीवादी प्रज्ञा" शुद्ध है तो, साम्यवाद का विनाश होगा। केवल 'प्रज्ञा' की शुद्धता ही आवश्यक नहीं है, अपितु 'उपाय' की शुद्धता भी आवश्यक है। 'उपाय' अशुद्ध होनेपर 'प्रज्ञा' अशुद्ध होजाती है। उदाहरण के लिए अशुद्ध या अनुपयुक्त उपाय से आप किसीपर "शुद्ध प्रज्ञा" को आरोपित नहीं कर सकते। यदि "साम्यवादी' ग़लत 'उपायों' का प्रयोग करेंगे, तो उनकी 'प्रज्ञा' को भी स्वीकृति नहीं मिलेगी। इसी तरह यदि जनतंत्रवादी अनुपयुक्त उपायों का प्रयोग करेंगे, तो उनकी 'प्रज्ञा' निरादृत होगी। हर दशा में 'प्रज्ञोपाय' की एकता आवश्यक है।

पुनः प्रश्न होगा कि आप एक ओर तो 'विकास' का आधार पदार्थ, समाज या वैयक्तिक चेतना में स्थित "अंतर्द्वंद्व" मानते हैं और दूसरी ओर इस "युगनद्ध-वाद" में "अंतर्द्वंद्वों" के परे जाकर मानसिक शांति प्राप्त करने अथवा सामाजिक समस्याओं के समाधान खोजने की बात कही गयी है। यदि 'विकास' का आधार 'अंतर्द्वंद्व' को मानते हैं तो, 'द्वंद्व' की समाप्ति कभी नहीं हो सकती और 'द्वंद्व' से परे जाना एक असम्भव कार्य है, क्योंकि प्रकृति का प्रयोजन 'विकास' में निहित है, प्रकृति कभी 'द्वंद्व' को समाप्त नहीं होने देगी और जब द्वंद्व समाप्त होगा तो, प्रकृति ही समाप्त हो जायगी। इसी प्रकार 'समाज' और 'व्यक्तित्व' के 'विकास' का आधार भी 'द्वंद्व' ही रहेगा। इस अवस्था में 'युगनद्ध' का सिद्धांत क्या केवल रहस्यवाद ही न रह जायगा?

इस प्रश्न के उत्तर में निवेदन यह है कि 'युगनद्ध' का सिद्धांत, 'दो' की 'एकता' पर अधारित है, केवल 'समझौते' पर आधारित नहीं है, अतः हम अपनी समस्याओं के समाधान में इस प्राचीन सिद्धांत से इस "एकता" की प्रेरणा अवश्य ले सकते हैं; विना उस "दृष्टि" को अपनाये हुए, जो शून्यवादियों और विज्ञानवादियों द्वारा प्रतिपादित हुई थी। पदार्थ-विज्ञान की उन्नति से आज प्राचीनों का "सृष्टि-विज्ञान" कल्पना प्रतीत होता है, किंतु सर्वत्र "एकता" और "अभेदपर बल देनेवाला उक्त 'युगनद्ध' या सामरस्य" का सिद्धांत आज भी प्रेरक है और पारिवारिक, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय जीवन में "सह-अस्तित्व" के स्थान पर "युगनद्ध" शब्द अधिक कल्याणकारक प्रतीत होता है, क्योंकि इस शब्द के पीछे, 'पूर्णएकता' का भाव है, मात्र "सहस्थिति" का भाव नहीं है। इसके सिवा पारिवारिक जीवन में उक्त सिद्धांत का प्रयोग इस भावना के विकास द्वारा हो उकता है कि 'प्रज्ञा' द्वारा

निश्चित 'उत्तरदायित्व' और उस उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिए उचित उपाय आवश्यक है। सामाजिक जीवन में विभिन्न मानवीय सम्बन्धों में मानवसमान की "एकता" पर बल देकर हम अधिक शांति प्राप्त कर सकते हैं। इस समय देश में जिस "भावात्मक एकता" का प्रचार हो रहा है, उसके लिए "युगनद्ध" का सिद्धांत अत्यधिक सहायक है—देश में नाना जातियाँ हैं, उनकी वेषभूशा, धर्म, आचार, शिक्षा अदि भिन्न हैं, किंतु भिन्नता' का अर्थ 'विरोध' नहीं है, क्योंकि यदि एक व्यक्ति 'राम' को पूजता है, दूसरा 'रहीम' को तो 'राम' और 'रहीम' कहीं लड़ते हुए नहीं दिखायी पड़ते, तब हम आपस में क्यों लड़ें? भिन्नता तो प्रतीति मात्र है, निःस्वभाव है, वास्तविकता 'प्रतीति' के परे है, अतः भिन्नता से बाहर जाकर, भिन्नताओं की संगति "युगनद्ध" के आधार पर स्थापित हो सकती है। "युगनद्ध" की पुनर्व्याख्या का यही तात्पर्य है।

*

ऑडर फॉर्म

श्री व्यवस्थापक **'भारती', भारतीय विद्या भवन,**
चौपाटी मार्ग, **बम्बई–७,**

प्रिय महाशय,

मैं **'भारती'** का वार्षिक सदस्यता शुल्क ५/ (पाँच रुपये केवल)/ अर्द्धवार्षिक शुक्ल ३) (तीन रुपये केवल) मनीऑर्डर/पोस्टल ऑर्डर/चेक द्वारा भेज रहा हूँ/रही हूँ। कृपया मुझे ....के अंक से वार्षिक/अर्द्धवार्षिक ग्राहक वनाकर निम्नांकित पते पर 'भारती' भजने का कष्ट करें :——

नाम ____________________

पूरा पता ____________________

____

____

दिनांक........... भवदीय,

मीटर नाप को अपनाइये

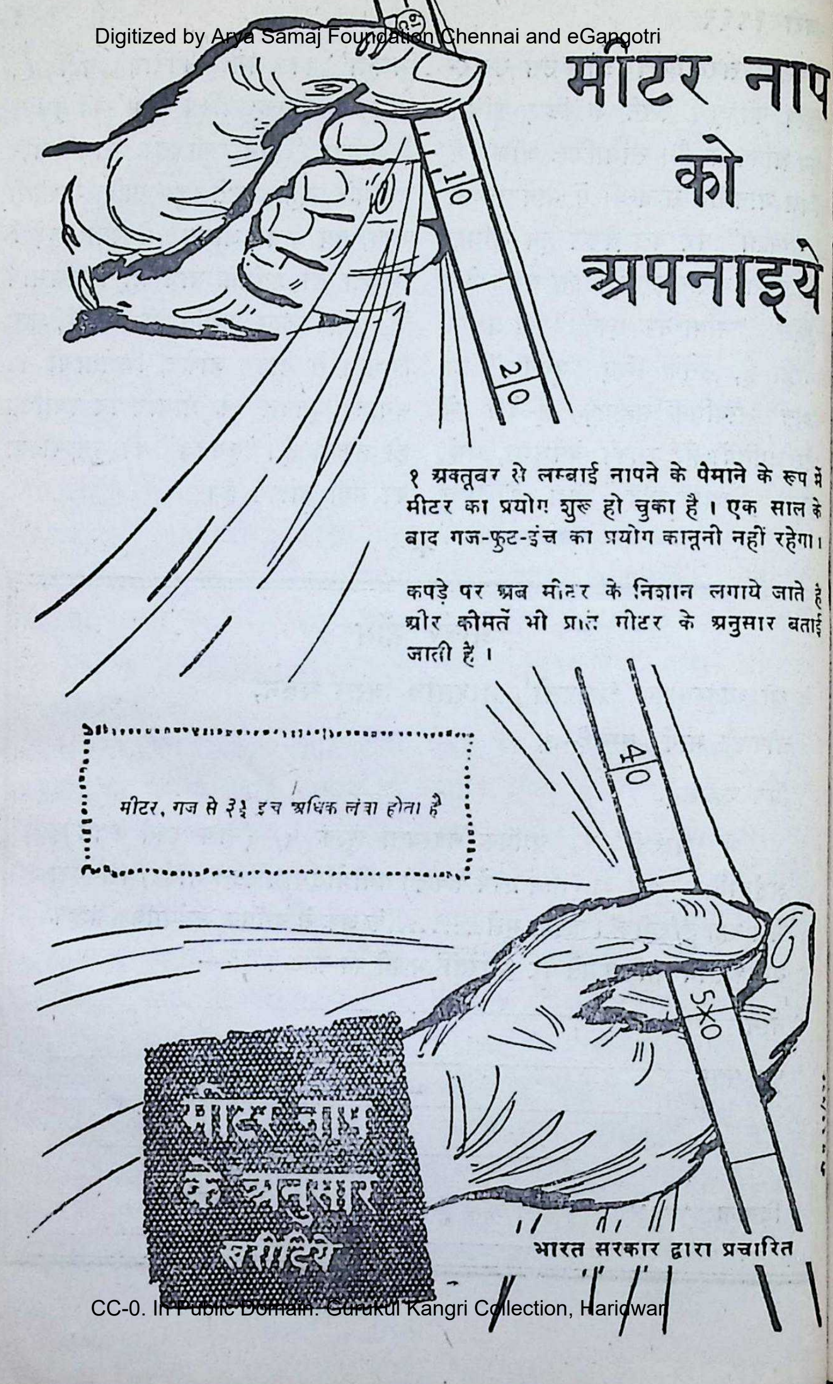
10
20
40
50
मीटर नाप के अनुसार खरीदिये

१ अक्तूबर से लम्बाई नापने के पैमाने के रूप में मीटर का प्रयोग शुरू हो चुका है। एक साल के बाद गज-फुट-इंच का प्रयोग कानूनी नहीं रहेगा।

कपड़े पर अब मीटर के निशान लगाये जाते हैं और कीमतें भी प्रति मीटर के अनुसार बताई जाती हैं।

मीटर, गज से ३⅜ इंच अधिक लंबा होता है

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

[काम के माध्यम से पूर्णकाम शिवत्व की साधना : पृष्ठ २९ का शेषांश]

चीज़ मेल नहीं खाती, तू उसपर यक़ीन ही नहीं करेगा। तू तो एक ऐसा तंत्र-मार्ग खोज रहा है, जिसकी तू पुष्टि कर सके, तेरे मनोगत भावों में जो खप सके।"

मैं सचमुच सोंचने लगा कि वास्तव में मेरी इस तंत्र-जिज्ञासा का मूल कहाँ है ? तंत्र के प्रति मेरी जानी-अनजानी श्रद्धा या आकर्षण का सच्चा सबब क्या है ? मैं क्या तंत्र की साधनाओं को तमाशे की तरह देखना चाहता हूँ, या उनसे कुछ लाभ उठाना चाहता हूँ। इतने में ही अघोरी बाबा फिर बोले—"जिस मार्ग में तू साधना नहीं करता, उसको जानकर क्या करेगा ? क्या अधिकार है तुझे उसकी खोज करने का ? बोल साले तू क्या अमा की अँधियारी में शवासन पर बैठकर श्मशान में जप कर सकेगा, मद्य, माँस, मत्स्यादि खा सकेगा ?"— फिर वे मेरी साधना, शिक्षा, दीक्षा आदि के बारे में काफी पूछताछ करते रहे और अन्तमें अकस्मात् पूछ बैठे—"तुझे कभी अभिमान होता है, या नहीं ? मैंने उत्तर दिया, थोड़ा-सा तो कभी-न-कभी होता ही है।'

मंदिर में प्रसाद-वितरण का घंटा बजा तो अघोरी बाबा ने मुझे ज़बर्दस्ती अपने से भगा दिया। प्रसाद-ग्रहण कर लौटा तो वह ग़ायब हो चुके थे वहाँ से। पूछा तो पता चला कि श्मशान की ओर गये हैं। मैंने उसी वक्त पीछा करना ठीक नहीं समझा और मन्दिर के बरामदे में आकर विश्राम करने लगा।

रात को एक प्रहर बीतते-बीतते मैं श्मशान की ओर चल पड़ा। पापहरा श्मशान मंदिर से थोड़ी दूर था। वहाँ पहुँचकर देखा कि एक जोड़ा भैरव-भैरवी बातों में मशगूल है। एक ओर एक मुर्दा जलरहा है और उससे कुछ दूर एक व्यक्ति बैठा है, और अघोरी बाबा एक लाठी लिए खड़े हैं। सहसा शव की खोपड़ी तड़की या चटखी तो आवाज़ हुई और मैंने देखा—चिता की रोशनी में एक अजीब मज़रा था यह—कि, अघोरी बाबा नंग-धड़ंग ही आगे बढ़े और वहीं पड़े चिमटे से खप्पर उठाकर शव-मुण्ड से निकलता श्वेत तरल पदार्थ उसमें भरने लगे। जब वह प्रायः आधा भर गया तो, उसे उठाकर वह अपनी कुटी की ओर चल दिये। मैं भी उनके पीछे चला तो बोले, "अरे, साला तू रात में भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ेगा। तीन दिन बाद आज भोजन मिला है। तू क्या जासूसी करने आया है।"

"अच्छा मैं फिर आऊँगा। आहार के बाद तो आप विश्राम करेंगे।"

"तुम लोगों की तरह हम खान के बाद नहीं सोते। आया ही है तो बैठकर देख कि खाने के बाद हम कैसा विश्राम करते हैं।"

तभी दो आदमी एक घड़ा "कारण" (शराब) लेकर आये। बाबा ने भक्तों को थोड़ा-सा प्रसाद दिया और शेष स्वयं चढ़ा गये।

उन लोगों के जाते ही मने कहा कि भात तो ठंडा हुआ जा रहा है।

बोले, "छोड़ भी भात की बात इस समय तो कारणानंद छाया है। खाने की इच्छा ही नहीं है। तूने कुछ खाया है कि नहीं? तेरा पेट तो भूखा है। क्या खाने की वस्तु देखकर लोभ नहीं होता?"

"होता है, पर संयम भी तो करना चाहिए।"

"खाने की चीजों को देखकर जाग्रत खाने की इच्छा को दबाना ही संयम है क्या?"

"भूख के वक्त संयम न किया तो क्या खा-पीकर होगा?"

"अच्छा कामेन्द्रिय-संयम भी कभी किया है? शरीर में शक्ति और मन में काम की प्रबल इच्छा होते हुए भी और भोग के सभी साधन सामने प्रस्तुत रहते हुए भी उपभोग नहीं किया?"

"प्रवृत्तियों को प्रश्रय देनेपर संयम होगा कैसे?"

"प्रवृत्तियों की उत्पत्ति कहाँ से है?"

"प्रवृत्तियाँ आती हैं मन से और शरीर से उसका भोग होता है?"

"तब असली चीज तो मन है, फिर शारीरिक संयम से क्या होगा?"

तंत्र में भी आत्म-ज्ञान और मुक्ति की साधना ही मुख्य है, किंतु अधिकतर साधक कुछ दूर जानेपर ही व्यभिचार आदि में फँसकर योग-साधना को भुला देते हैं, मरते वक्त उनकी जो दुर्गति होती है, वह अकथनीय है।"

मौक़ा देखकर मैंने फ़ौरन प्रश्न किया, "तांत्रिक साधकों को तब भैरवियों की ज़रूरत क्यों पड़ती है?"

"आत्म-चैतन्य के उद्बोधनार्थ भैरवी होना भी नितांत आवश्यक है। वास्तविक उद्देश्य तो बाह्य काम-प्रधान जीवन की परि-समाप्ति कर आस्तकाम पुरुष (शिव) होना ही है।

"तंत्र म विवाह है या नहीं?" उत्तर मिला कि, विवाह तो है पर वह जाति, वंश, कुल, गोत्र आदि से बँधा नहीं है। शैव विवाह ही तो यथार्थ विवाह है।"

"अच्छा, भारत में तो पहले वैदिक धर्म ही था न?.....फिर यह तंत्र कहाँ से आया।"

"जब शरीर और मन में तेजस् हो, तब उपासना-प्रधान वैदिक जीवन में ही लोभों की निष्ठा रहती है। आदि तंत्र के प्रति भी वैदिक ब्राह्मणों में अनुराग फैल चुका था। बौद्धों को भी अन्त में तंत्र-मार्ग अपनाना पड़ा था और जब मंत्र गुम हो गये, तब फिर भोग और धर्म

एकत्र हो गये। कर्म बढ़ते गये, और ब्राह्मणों ने कर्म-काण्ड की तरह तंत्र को भी अपनी आजीविका का साधन बना लिया। अज्ञान और भोगलिप्सा से वैदिक ब्राह्मण अन्त में अपने मूल आचार-विचारों से च्युत हो गये थे। बौद्ध-धर्म से तंत्र की जितनी उन्नति हुई, उतनी ही अवनति भी। ईर्ष्या, द्वेष, राग, स्वार्थ पर और नारी को मात्र इन्द्रिय-सम्भोग का साधन मानने से सारे समाज में स्वेच्छाचार अपनी चरमसीमा पर जा पहुँचा। सतीत्व का कोई भी मूल्य न रहा। व्यभिचार फैलने से तंत्र को पहला धक्का लगा। दक्षिण में शंकराचार्य और पूर्व में चैतन्य की वाणी गूंजी। तंत्र-मत शनैःशनैः कम होते-होते आज इस अवस्था तक आ गया है, कि इसे लोग अब सिर्फ़ एक भोग-मार्ग ही मानते हैं।

मैंने पूछा, "तंत्र की सब बातें इतनी गुप्त क्यों है ?"

पहले तो इतनी गुप्त नहीं थी। तांत्रिक आराधना तो सभी के लिए अत्यंत सहज और उपयोगी थी, पर जब इसका दुरुपयोग होने लगा, तब असली साधकों को इसे गोपनीय (गुह्य) बना देना पड़ा। फिर उस समय आज की तरह छापखाने भी तो थे नहीं, प्रचार-प्रसार होता भी तो कैसे ?" और वे हँस पड़े।

मैंने फिर पूछा, "यौवनावस्था में पुरुष प्रकृति और नारी प्रकृति का जो परस्पर आकर्षण होता है, वह क्या सिर्फ़ कामुकता की चरितार्थता के लिए ?"

"नारी प्रकृति और पुरुष प्रकृति न कहकर नर-नारी कहो न। संसार में कोई भी पुरुष नहीं है, पुरुष तो सिर्फ़ वही है, जिसने संसार की सृष्टि की है। सदा शिव ही एक मात्र यथार्थ पुरुष है।

"यह तो बिल्कुल वैष्णव-दर्शन जैसी बात हो गयी"

"सब दर्शन एक ही है, सिर्फ़ साधन-पथ भिन्न हैं। जो चैतन्य शक्ति हमारे सूक्ष्म-रूप (बुद्धि लेकर सारी इन्द्रियों तक) में व्याप्त होकर हमें शक्तिमान् किये है, योग शास्त्र के अनुसार, आज्ञाचक्र से लेकर मूलाधार तक उसकी क्रिया अबाध रहती है। तन्त्र में भी उसीको कुंडलिनी कहते हैं।

"हमारा प्राण काममय है। कामबीज ही आदि बीज है। यही एक शक्ति (सृष्टि), स्थिति (पुष्टि) और लय (मुक्ति) तीनों अवस्थाओं के द्वारा प्रत्येक जीव में क्रियाशील है। ज्ञान और कर्म का संयुक्त जीवन ही काम है, जिसे लंगोट बाँधकर वश में नहीं किया जा सकता। प्रकृति से विरोध कर न कोई अपना कल्याण कर सकता है, और न जगत् का। जिसको जितनी भूख हो उसे उतना खाना मिलने से ही उसकी तृप्ति

क्या आप पौष्टिक तत्वों के
अभाव से पीड़ित है ?

तो आल्बो-सांग
का सेवन करें

पौष्टिक तत्वों के अभाव को
दूर करने वाला, बढ़िया, कम खर्चवाला तथा
वैज्ञानिक तरीकों से तैयार किया गया।

आनन्दायक स्वाद, जिसे चाय, काफी, दूध, हलुआ, फल के रस इत्यादि के साथ लिया जा सकता है। आल्वो-सांग शिशुओं, बढ़ रहे बच्चों व प्रसव के बाद माताओं, मानसिक परिश्रम करने वालों तथा बड़े-बूढ़ों के लिए बढ़िया पोषक तत्व प्रदान करने वाला खाद्य है। यह बीमारी छूटने के बाद स्वास्थ्य सुधार, दुर्बलता तथा रक्तहीनता दूर करता है।

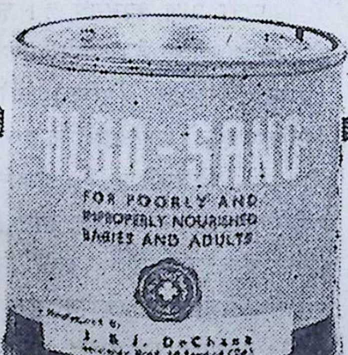
LBO - SANG
FOR POORLY AND
IMPROPERLY NOURISHED
BABIES AND ADULTS
J. & J. DeChane

पावडर तथा टिकियां
दोनों मिलती हैं

जे. एंड जे. डीशेन,
हैदराबाद (दक्षिण)

होगी। तभी शरीर-मन निरोग रहेंगे। किंतु लोभ में आकर यदि वह अधिक खा जायेगा तो, उसका रोग-पीड़ित होना निश्चित है।" वह बोलते गये।

—"देख, यौवन जीवन का मधुमय काल है। मधु का अर्थ शहद और मद या नशा भी है। सर्वशक्तिमत्ता भी नशे की तरह यौवन में किसे अविभूत नहीं कर देती। तब उसे "मैथुन" ही एक मात्र सर्वश्रेष्ठ कर्म लगता है, कारण उसमें सारी इंद्रियाँ एक साथ तृप्त होती है। सृष्टि भी तभी होती है। किन्तु जब इस जीव-सृष्टि की दशा से चैतन्य का प्रसार माप-सृष्टि या रस-सृष्टि की ओर होने से लगता है, तब आनन्द और तृप्ति की परमावस्था आती है। मैथुन में भी (जीव-सृष्टि हो या नहीं) चैतन्य की एक अवस्था तो उद्भ्रान्त होती ही है। मुसीबत यही है कि बहुत से अज्ञ व्यक्ति इसी को "परमावस्था" मान लेते हैं। परन्तु इतना निश्चय मान कि विद्या-वृद्धि का अधिक विकास हुए बिना व्यभिचार में भी वृद्धि नहीं होती।" मुझे यह सुनने में कुछ अजीब-सा लगा, किन्तु विचार-करने पर सही भी जान पड़ा।

मैंने फिर साधन-पथ की ओर ही उन्हें लाने के लिए पूछा, "अच्छा, आपकी राय में कामेन्द्रिय और जीभ का संयम क्या घर में रहते-रहते नहीं हो सकता?"

"क्यों नहीं हो सकता? जो इसे घरमें नहीं कर सकते, वे बाहर भी नहीं कर सकते। इसीलिए तो मैं कहता हूँ तांत्रिक साधना गृहस्थों के अनुकूल है।"

"ऐसा व्यावहारिक धर्म और दूसरा कौनसा है, भला। तंत्र मत में मानव प्रकृति के साथ चलकर आगे बढ़ा जाता है, न कोई व्यर्थ आडम्बर है, न अवान्तर कर्म। यौवन से तंत्र की प्रवृत्तिमार्गी साधना शुरू होती है और अंत में जीव के अखंड सच्चिदानन्दरूप की उत्पत्ति कराकर ही यह समाप्त होती है। चैतन्य की पाश-बद्ध अवस्था जीव है और पाश-मुक्त अवस्था ही शिव है। (इसीलिए तो शिव को पशुपति कहा जाता है। अर्जुन (जीव) को तपस्या करके शिव का पशुपत अस्त्र लाना पड़ा था या नहीं?) इस पाश से ज़बरस्ती कोई नहीं छूट सकता; इसकी भी एक विधि है, जिसे तन्त्र-शास्त्र कहते हैं। जो चैतन्य शक्ति इस संसार प्रपंच को मिटा सकती है, वही हम सब में सुप्त (निष्क्रिय) रहती है, उसके जाग्रत (सक्रिय) होने से ही सारा प्रपंच (अज्ञान) नष्ट हो जाता है। पाश छूट जाते हैं। तंत्र मत असल में योगशास्त्र का ही अनुगत धर्म है। इसमें नैतिक आडम्बर नहीं है, इसीलिए कुछ लोग (ऊपरी मन से) इससे घृणा भी करते हैं।"

—अनु० पृथ्वीनाथ शास्त्री

★

राजेन्द्र जगोत्ता

इंग्लैण्ड में बढ़ता हुआ वेदान्त का प्रभाव

पिछले दिनों श्री जगोत्ता इंग्लेण्ड में थे, और उनका यह आँखों-देखा विवरण साक्षी देता है, कि वेदान्त की प्रभुता केवल भावुक अमेरिका तक ही सीमित नहीं, प्रबुद्ध और अति परीक्षा-प्रधानी इंग्लेण्ड में भी वेदान्त का प्रभाव तेज़ी से बढ़रहा है। क्या आश्चर्य, कि आगामी वर्षों में समूचा पश्चिमी गोलार्द्ध वेदान्त के सनातन अमृत स्रोतों में नया जीवन-दर्शन खोजे।

"सत्य सार्वलौकिक होता है, किसी धर्म या संस्था विशेष का नहीं।"

इस चमत्कारिक वाक्य की शक्ति कितनी असीम है, यह इसकी गहराई में झांकनेपर पता चलता है। विश्व का कोई धर्म या संस्था इस वाक्य के सत्य को अस्वीकार नहीं कर सकती। यह उस प्रकाश की भाँति है, जिससे दरिद्र की झोपड़ी में भी अंधेरा मिट सकता है और धनी के महल में भी। इस वाक्य में कोई भी तो ऐसी भावना नहीं है, जो किसी के प्रति द्वेष या किसी और के प्रति झुकाव दिखाये। यह एक ऐसा वाक्य है, जो सत्य की भाँति ही सबका है। केवल यही नहीं, और भी ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो वेदांत हमें सिखाता है। वेदांत का एक-एक शब्द अपने अंदर वह शक्ति रखता है, जो किसी के भी मन को शांति दे सके। इसके शब्द दु:खी, चिंतित मानव के मनपर ऐसे पड़ते हैं, जैसे उबलते दूध पर जल के छींटे। विश्व भर में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसे शांति की आवश्यकता न हो, तभी तो कहा जाता है कि वेदांत सबका धर्म है, किसी एक का नहीं।

वेदांत सम्बन्धी प्रमुख संस्था जो 'रामकृष्ण वेदांत संस्था' के नाम से जानी जाती है, विश्वभर में १३८ केंद्र और लगभग २० उपकेंद्र हैं, जिनमें से ३७ केंद्र और कुछ उप-केंद्र भारत से बाहर हैं। पाश्चात्य देशों के मुख्य

केंद्रों में से ११ संयुक्त राज्य अमेरिका, एक फ्रांस, एक अर्जेन्टाइना और एक इंग्लेण्ड में हैं।

इंग्लेण्ड में, इस परम-शांतिदायक संस्था का केन्द्र लन्दन में है। यह केंद्र इंग्लेण्ड का सम्पूर्ण कार्यभार सम्भालता है। शांति की खोज में लोग काफी दूर-दूर से यहाँ आते हैं।

उपनिषदों से उपलब्ध वेदांत-तत्वज्ञान केवल पूर्वी देशों में ही मान्य नहीं, पाश्चात्य देशों में स्वामी विवेकानन्द द्वारा लगाया वेदांत का पौधा भी भलीभाँति फल-फूल रहा है। इस आत्म-शांति तथा आत्म-तृप्ति के मार्ग को अपनाने के लिए कितने लोग तैयार हैं, इसकी प्रत्यक्ष झलक लन्दन के रामकृष्ण वेदांत केंद्र में देखी जा सकती है।

लन्दन में यह केंद्र आरम्भ करने के लिए सन् १९४८ में स्वामी घनानन्द को आमंत्रित किया गया था। तब स्वामी घनानन्द यहाँ आये और उनके पथ-प्रदर्शन में यह केंद्र निश्चित रूप से कार्य करने लगा, और स्वामी का १८९५–९६ में आरम्भ किया कार्य आगे बढ़ने लगा। श्री रामकृष्ण की पवित्र स्मृति में स्थापित यह केंद्र तब से, कुशलता पूर्वक कार्य कर रहा है। स्वामी घनानन्द के यहाँ आने से पूर्व लगभग २८ वर्ष तक भारत के भिन्न, प्रांतों, और श्री लंका, दक्षिण अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों में कार्य करते रहे हैं।

लन्दन का केंद्र बहुत बड़ा नहीं है। इसमें एक ध्यानालय और एक पूजालय है। पीछे एक छोटा सा पार्क है। वातावरण बहुत ही अनुकूल है। ध्यानालय में लगभग ४० व्यक्ति बैठ सकते हैं।

रविवार की शाम को ध्यानालय में एक सभा होती है। स्वामीजी पहले संस्कृत के कुछ श्लोक पढ़ते हैं और फिर इंग्लिश में उपनिषद् या भगवत्-गीता पढ़कर सुनाते हैं। ध्यानालय खचाखच भरा होता है, फिर भी बहुत से लोगों को खड़े रहना पड़ता है। लगभग एक घंटा इसमें लगता है और फिर रात को पूजालय में आरती होती है।

स्वामीजी हर बृहस्पतिवार को एक हाल में भारतीय संस्कृति, विज्ञान और धर्म आदि विषयों पर व्याख्यान देते हैं। इस कार्य के लिए उन्हें हाल किराये पर लेना पड़ता है।

शांतिमय तथा धार्मिक वातावरण से परिपूर्ण होने के साथ-साथ वह केंद्र ज्ञान का भी एक भंडार है। "वेदांत फार ईस्ट एंड वेस्ट" नामक पत्रिका यहाँ से निकलती है, जिसमें बहुत उच्च कोटि के धार्मिक तथा सांस्कृतिक लेख छपते हैं। अपने इन अमूल्य लेखों के कारण ही वह लघु पत्रिका एक रखने योग्य चीज बन जाती है। यह

मधुर मुस्कान
...मोती-से जगमग दाँत
डेन्टानिक
से ही संभव

DENTONIC
ANTISEPTIC
TOOTH POWDER
BENGAL CHEMICAL & PHARMACEUTICAL WORKS

अगर आप डेन्टानिक एन्टी-सेप्टिक टूथ पाउडर का नियमित व्यवहार करें तो अपने मोती-से जगमग दाँतों और स्वस्थ मसूड़े पर आप गर्व कर सकते हैं। क्लोरोफिल-युक्त डेन्टानिक पायोरिया को दूर करने में सहायता करता है। सादा लीजिये या क्लोरोफिल-युक्त

बेंगाल केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

पत्रिका वेदांत अथवा भारतीय संस्कृति में रुचि लेनेवाले अहिन्दी भाषियों के लिए वहुत उपयोगी है। इस पत्रिका का प्रकाशन, केंद्र के महत्व को और भी वढ़ा देता है। पत्रिका के सम्पादक स्वामी घनानन्द तथा सलाहकार समिति में श्री राधाकृष्णन् तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।

इस पत्रिका के अतिरिक्त समय-समय पर यहाँ से अन्य प्रकाशन भी होते रहते हैं। 'पवित्र माता' के नाम से प्रसिद्ध श्री 'शारदा देवी' के जन्म के शतवर्षीय स्मृति के अवसर पर केंद्र न एक बहुमूल्य पुस्तक "विमेन सेंट्स आफ ईस्ट एंड वेस्ट" प्रकाशित की। यह उन अमूल्य तथा सीमित पुस्तकों में से एक है, जो विश्व भर के लोगों को एक दूसरे को समझने की प्रेरणा देती है, तथा उन्हें एक सूत्र में बाँधने का यत्न करती है। इसमें विश्व के बहुत से स्त्री संतों की जीवनियाँ हैं, जो हमारे मनों में दूसरों के प्रति सम्मान भाव सजग करती हैं। इस पुस्तक की भूमिका श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने लिखी है। यह पुस्तक अब भारत की चौदह प्रमुख भाषाओं में अनूदित की जा रही है।

केंद्र का अपूर्व शांतिमय वातावरण ही लोगों के मन में शांति का संचार करना आरम्भ कर देता है। श्लोक बोलने के पश्चात् स्वामी जी कुछ समय तक ध्यान

करते हैं, उस समय इतनी शांति होती है, कि मनुष्य यह सोच ही नहीं सकता कि कमरा ठसाठस भरा है। एक पवित्र, कभी न उकताने वाली शांति, स्वयं को समझने की शक्ति देनेवाली शांति, वहाँ विराजमान रहती है और फिर उस शांतिमय ध्यान के पश्चात् जब स्वामी बोलते हैं तो, सब लोग मंत्रमुग्ध से होकर उसे सुनते रहते हैं, केवल स्वामीजी की प्रेमभरी आवाज ही कमरे में तैरती है।

कई लोगों के मन में तो स्वामी जी के प्रति इतना सत्कार और वेदांत के प्रति इतनी श्रद्धा है कि देखते ही बनता है। मैं बैठा था कि मेरे पास एक वृद्धा आकर बैठ गयी। उस वृद्ध अंगरेज़ महिला के नेत्रों में मैंने ज्ञान तथा शांति की एक अभूतपूर्व चमक देखी। उसके एक हाथ में एक उपनिषद् की इंग्लिश कापी थी और मुखपर एक मिठास, बोली "बेटा, तुम पहली बार यहाँ आये हो?"

"हाँ माँ" मैंने कहा "यहाँ से काफी दूर रहता हूँ, इसीलिए यहाँ नियमितरूप से आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं है, आप तो पास ही रहती होंगी?'

उसने बताया कि वह वर्षों से वहाँ नियमित रूप से आती है। पहले काफी दूर रहती थी, इसलिए आने में कुछ असुविधा होती थी। इसी कारण उसने केंद्र के बिल्कुल पास मकान ले लिया है और अब वह सुविधापूर्वक केंद्र में आ सकती है। फिर उसने भारतीय धर्म, संस्कृति तथा वेदांत के विषय में इतनी गम्भीर तथा चतुरतापूर्ण बातें कीं, कि मेरा मन श्रद्धा से भर गया। उसने बताया कि वह कभी भारत नहीं गयी, वह वहाँ के विषय में जो कुछ भी जानती है, पुस्तकों के आधार पर, तथा लोगों से मिलने-जुलने के कारण ही जानती है। फिर वह बोली, "मैं इस देश में जन्मी हूँ पर मैं जानती हूँ, मेरा वास्तविक देश भारत है, मुझे वहाँ जन्म लेना चाहिए था। अब तो एक अभिलाषा है कि ये प्राण उस पावन भूमि में जाकर ही निकलें और मेरी यह अभिलाषा अवश्य पूरी होगी, मैं वहाँ अवश्य जाऊँगी।" फिर वह उठी। मुझे आशीर्वाद दिया, स्वामी जी के चरण छुये और चली गयी।

पूजालय में भी लोगों की भक्ति तथा संयम देखने योग्य है। कितने-कितने समय तक लोग बिल्कुल शांत बैठे रहते हैं। एक नवयुवक को मैंने बहुत समय तक घुटनों के बल, बुत के समान आंखे बन्द किये बैठे देखा, जैसे वह जड़ हो गया हो, पर उस काल में उस जड़ता से, उसने जो शांति पायी वह उसके चेहरे से ही प्रकट थी। उसके नेत्रों से गौरव टपक रहा था। केवल वही नहीं, और भी बहुत से स्त्री-पुरुष घंटों उस शांत वातावरण में डूबे रहते हैं और लौटते समय उनके मन में

पहले से अधिक उज्ज्वलता होती है, नेत्रों में पहले से अधिक चमक। एक नवयुवती ने मुझे बताया, "यहाँ आकर पता नहीं मैं क्या पाती हूँ, पर जो पाती हूँ, वह अमूल्य तथा अवर्णनीय है।" वेदांत की सीखों का इससे अच्छा उदाहरण क्या होगा। वेदांत यही तो सिखाता है कि मानव प्रकृति ईश्वरीय देन है और मानव का कर्तव्य है कि वह उस ईश्वरीय देन को प्रकाश में लाये। उस नवयुवती की बात से स्पष्ट है कि वह आत्म-शांति प्राप्त कर रही है, उस ईश्वरीय देन को प्रकाश में ला रही है।

केंद्र दुर्गापूजा, दीपावली इत्यादि दिन भी मनाता है। इन अवसरों पर लोगों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि बहुत से लोगों को स्थान नहीं मिल पाता। उस छोटे से स्थान में १००० व्यक्ति तक आजाते हैं। केंद्र मध्यवर्ती लन्दन से काफी दूर है, इस कारण बहुत-से लोग जो इसकी शिक्षा से लाभ उठाना चाहते हैं, नहीं उठा पाते। दूसरे जिस हाल को व्याख्यान के लिए किराये पर लिया जाता है, उसका वातावरण अनुकूल नहीं होता। इसलिए अब केंद्र को बढ़ाये जाने का विचार है। इस विचार के अन्तर्गत केंद्र मध्यवर्ती लन्दन में बनाया जायगा, ताकि अधिक-से-अधिक लोग केंद्र से लाभ उठा सकें, दूसरे वह बड़ा बनेगा, ताकि बढ़ती हुई केंद्र-प्रेमियों की संख्या सुविधापूर्वक वहाँ आ सके।

इस विस्तार योजना के अन्तर्गत केंद्र में ये चीजें होनी चाहिए। (१) एक हाल जिसमें ५०० व्यक्ति बैठ सकें, जिसके साथ एक ध्यानालय और एक पूजालय हो। (२) एक आश्रम जहाँ से कार्यक्रम आदि निर्धारित किये जा सकें। (३) एक प्रकाशन कोष, जिससे वेदांत तथा भारत सम्वन्धी पुस्तकें सुविधापूर्वक प्रकाशित की जा सकें। (४) एक पुस्तकालय, जिसमें वेदांत तथा धर्म आदि विषयों पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकें, पढ़ने के इच्छुक प्रेमियों को मिल सकें।

योजना के अनुसार लगभग साढ़े नौ लाख रुपये का खर्चा आयेगा। केंद्र ने उन सबसे, जो वेदांत के नियमों में श्रद्धा रखते हैं, तथा उसकी सीखों को मानते हैं, चन्दे की प्रार्थना की है। इस समय केन्द्र के पास लगभग एक लाख रुपया है, जब लगभग साढ़े तीन लाख रुपया और आ जायगा तो, कार्य आरम्भ किया जायेगा।

इस समय भी केंद्र का कार्य चन्दे से ही चलता है। जिस स्थान पर केंद्र स्थित है, वह भी एक व्यक्ति द्वारा दिया गया है।

✶

'विवेकानन्द साहित्य' का हिन्दी में प्रकाशन

स्मरण रहे जनवरी १९६३ से संत-पुरुष स्वामी विवेकानन्द जी का जन्मशती समारोह समस्त संसार में मनाया जायगा। इस शुभ अवसर पर उनका सम्पूर्ण साहित्य विभिन्न भाषाओं में 'विवेकानन्द साहित्य' के नाम से दस खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। राष्ट्रभाषा हिंदी में इस प्रकार का प्रथम प्रकाशन होगा।

हिन्दी संस्करण के अनुवादकों में स्वर्गीय पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, डॉ. प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र शर्मा तथा फणीश्वर नाथ 'रेणु' जैसे ख्यातिप्राप्त साहित्यकारों के नाम विशेष-रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी प्रेमी पाठक इस अभूतपूर्व आयोजन का अधिक से अधिक लाभ उठा सकें, इस दृष्टि से सम्पूर्ण प्रति सेट का मूल्य मात्र ४७ रु. ५० नये पैसे रखा गया है। जो सज्जन सम्पूर्ण सेट खरीदना चाहते हैं, वे ३१ मई १९६२ तक पूरा मूल्य या अशंतः १५ रु. अग्रिमरूप से भेजकर अपना नाम सुरक्षित करा लें। सेट का पूरा मूल्य पहले ही भेज देने पर २ रु. ५० नये पैसे कमीशन के रूप में मिल जायेंगे और इस प्रकार पूरा सेट ४५) रु. में ही पड़ेगा। १५) अग्रिम भेजनेवाले सज्जनों को शेष रकम एक ही साथ या दो क़िश्तों में ३१ अक्टूबर १९६२ तक अवश्य भेज देनी पड़ेगी।

रुपये की स्वीकृति सीधे प्रधान कार्यालय या एजेन्टों द्वारा दी जायगी। पुस्तक वितरण की अवधि बाद में घोषित की जायगी। चूंकि अब जन साधारण के लिए केवल ४००० सेट ही उपलब्ध हो सकेंगे, इसलिए आग्रह है कि इच्छुक सज्जन शीघ्रातिशीघ्र अपना नाम सुरक्षित करा लें।

एजेन्टों के नाम —रामकृष्ण मिशन—नयी दिल्ली, पटना, कनखल, आसनसोल, लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, जमशेदपुर, बम्बई, कानपुर, रामकृष्ण आश्रम, नागपुर। या सम्पर्क साधें—

मैनेजर, अद्वैत आश्रम, ५, डीही इन्टाली रोड, कलकत्ता १४। ★

प
रि
वा
र

सद्वैद्यशाला
आयुर्वेदिक फैक्टरी
नांजनगुड.
अपचन दूर करते
तापांतर
टॉनिक

स
हा
य
क

प्रत्येक शहर के लिए
हम एकही व्यापारी
को अपना स्टाकिस्ट
नियुक्त करते हैं।

सद्वैद्यशाला
आयुर्वेदिक फैक्टरी
नांजनगुड

नांजनगुड
टुथपावडर

सोल एजन्टस
युनायटेड कन्सर्न
मद्रास
२४ मथुरा हाउस
माटुंगा मुंबई

सोल एजेन्ट्स :
दी युनायटेड कन्सर्न
५४, बन्दर स्ट्रीट,
मद्रास—१.

शाखा—ज्योति स्टोर्स, किंग सर्कल, माटुंगा, बम्बई १९

मुन्शी पाठमाला पुरस्कार

कुलपति श्री मुन्शीजीने, भारतीय विद्या-भवन को सरल संस्कृत एवं गीता पर पाठ्य पुस्तकों की रचना के लिए दो पुरस्कारों की स्थापना के हेतु क्रमशः २७५० रु. व २००० . प्रदान किये हैं। ये पुरस्कार सन् १९६२ के अन्त में भारतीय विद्या भवन के रजत जयन्ती समारोह एवं कुलपति श्री मुन्शी जी की ७५ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर वितरित किये जायंगे।

संस्कृत विश्व परिषद् के हाल ही में हुए सातवें अधिवेशन के प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए संस्कृत के विद्वानों को पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिए आमन्त्रित किया गया है, ताकि संस्कृत भाषा को आधुनिक विचार एवं अभिव्यक्ति का साधन सरल एवं सुगम शैली में बनाया जा सके। ४८ पृष्ठों की पाठ्य पुस्तक के लिए इस प्रकार पुरस्कार होंगे।–:

५०० रु. का एक पुरस्कार, २५० रु. के दो पुरस्कार., १५० रु. के पाँच पुरस्कार तथा १०० रु. के १० पुरस्कार। कुल योग २७५० रु.

गीता के लिए भी इसी प्रकार की पुरस्कार योजना स्थापित की गयी है। संस्कृत विश्व परिषद् के हाल ही में हुए सातवें अधिवेशन के प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए संस्कृत के विद्वानों को पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिए आमन्त्रित किया गया है, ताकि पाठकों को साथ-साथ संस्कृत और गीता की शिक्षा दी जा सके। ४८ पृष्ठों की पाठ्य पुस्तक के लिए पुरस्कार इस प्रकार होंगे :–

२५० रु. का एक पुरस्कार, १५० रु. के पाँच पुरस्कार तथा १०० रु. के दस पुरस्कार। कुल योग २००० रु.

पाठ्य पुस्तकों की पाण्डुलिपि पहुँचने की अन्तिम तिथि ३० जून १९६२ है।

❧

भारतीय विद्या भवन का २४ वां स्थापना दिवस समारोह

भारतीय विद्या भवन का २४ वाँ स्थापना-दिवस एवं पन्द्रहवाँ दीक्षान्त-समारोह १० दिसम्बर १९६१ को भवन के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल मुन्शी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। स्थापना-दिवस समारोह विभिन्न कार्यक्रमों के साथ १९ दिसम्बर १९६१ को समाप्त हुआ।

पूना विश्व विद्यालय के उप-कुलपति एवं प्रख्यात संस्कृत विद्वान महामहोपाध्याय डॉ. दत्तो वामन पोतदार दीक्षान्त समारोह के प्रमुख अतिथि थे। इस अवसर पर भवन का कानजी खेतशी शीत-ताप नियन्त्रित सभागृह नगर के गण्यमान नागरिकों एवं छात्र-छात्राओं से ठसाठस भरा हुआ था। अतिथियों का स्वागत करते हुए श्री मुन्शीजी ने कहा कि सन् १९६१ का वर्ष भारतीय विद्या भवन के इतिहास में अनेकरूप से स्मरणीय रहेगा। ७० लाख रुपये की लागत से निर्मित सरदार पटेल इंजीनियरिंग कॉलेज का शिलान्यास, पत्रकारिता, विज्ञापन एवं मुद्रण महा विद्यालय का शुभारम्भ तथा डाकोर व बड़ौदा में भवन-केन्द्रों की स्थापना आदि ऐसी

प्रस्तुत चित्र में डॉ. पोतदार दीक्षान्त भाषण देते हुए तथा बायीं ओर कुलपति श्री मुन्शी जी बैठे हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं

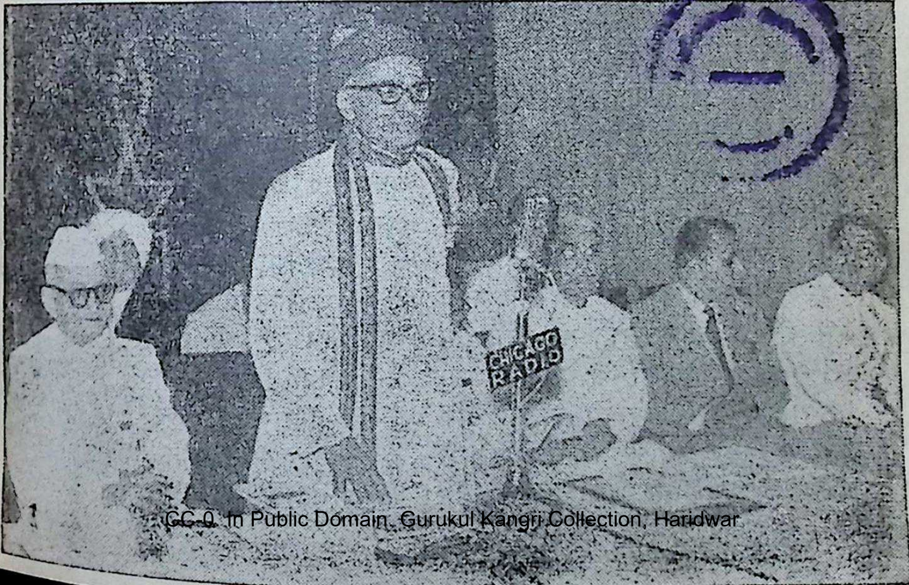

उल्लेखनीय घटनाएँ हैं, जो भवन की प्रगति की ओर आप सबका ध्यान आर्कांषित करेंगी। श्री मुन्शी जी ने आगे कहा कि कोई भी देश अपनी मूल संस्कृति को शीघ्रता से नहीं भूल सकता। भारतीय संस्कृति के पुनर्जागिरण के लिए मानव-जीवन एवं मानव-धर्म के नये मूल्यांकनों के समन्वय के साथ भवन दृढ़ संकल्प है। आज की परिस्थिति में भारतीय संस्कृति की अवहेलना हमारे लिए संकट का कारण वन सकती है।

भवन की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए अवैतनिक नियामक श्री जयन्तकृष्ण ह. दवे ने भवन के सर्वांगीण विकास के लिए अध्यक्ष श्री मुन्शी जी तथा उपाध्यक्ष सर हरसिद्धभाई दिवेटिया व श्रीमती लीलावती मुन्शी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और वताया कि निकट भविष्य में ही भवन के रजत जयन्ती समारोह को अभूतपूर्वरूप से मनाने की तैयारी शुरू हो रही है।

वाद में महामहोपाध्यााय पोतदार न सफल विद्यार्थियों को पुरस्कार एवं प्रमाण-पत्र वितरित किया। उन्होंने अपने दीक्षांत भाषण में कहा कि विविध संस्कृतियों के संघर्षकाल में भारत की प्राचीन संस्कृति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए भवन जिस रूप में प्रयत्नशील है, वह सराहनीय है। उन्होंने आगे कहा कि यह कार्य उस समय और भी सुगम हो जायगा, जब यहाँ से निकले हुए स्नातकगण भवन के जीवित सिद्धांत के रूप में जीवनपर्यंत सर्वत्र एक प्रकाश के रूप में विचरते रहेंगे।

वर्तमान युग ऐसे ही प्रकाश की प्रतीक्षा में है। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतवर्ष ही समस्त विश्व में ऐसे प्रकाश को फैला सकेगा। भवन की सर्वदेशीय प्रवृत्तियों की सराहना करते हुए महामहोपाध्याय ने भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष के लिए श्री मुन्शीजी को दीर्घजीवी होने की कामना प्रकट की। और जोर देते हुए कहा कि मैं साग्रह निवेदन करता हूँ कि सभी तन, मन, धन से भवन की सहायता करें, ताकि श्री मुन्शी का स्वप्न साकार हो सके।

श्री मुन्शी व्याख्यान माला

ता. ११, १२ व १३ दिसम्वर से मैसूर के भूतपूर्व महाराज तथा मैसूर राज्य के वर्तमान राज्यपाल श्री जयचामराज वाडियार ने 'वैदिक दर्शन में जीव एवं ब्रह्मन्' विषय पर तीन विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिये। इस व्याख्यान माला के दरम्यान महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश, कुलपति श्री मुन्शी जी तथा सर हरसिद्धभाई दिवेटिया क्रमशः अध्यक्षपद को ग्रहण किये। महाराज स्वयं हिन्दू तत्त्वविद्या के प्रकाण्ड विद्वान हैं और इसीलिए इनके व्याख्यानों को सुनने के लिए लोग भारी संख्या में उपस्थित रहते थे।

स्थापना दिवस समारोह के उपलक्ष्य में ११ दिसम्बर १९६१ को मुन्शी जी की प्रख्यात नाटचकृति 'काका नी शशी' को अभिनीत किया गया।

परिसंवाद गोष्ठी

१४ दिसम्बर १९६१ की शाम को एक परि-संवाद गोष्ठी का आयोजन किया गया था; जिसका विषय था 'विश्व में लोकतन्त्र का भविष्य।' प्रजा समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री अशोक मेहता, दिल्ली के इण्डियन स्कूल आफ इण्टरनेशनल स्टडीज़ के नियामक डॉ. अप्पादोराई तथा वम्बई विश्व विद्यालय के प्राचार्य श्री. जी. डी. पारिख प्रवक्ता के रूप में उपस्थित थे। श्री मुन्शी जी ने समारोह की अध्यक्षता की।

बिरला व्याख्यान माला

ता. १७–१८ व १९ दिसम्बर १९६१ को जम्मू एवं काश्मीर विश्व विद्यालय के उप कुलपति सरदार के एम. पणिक्कर ने बिरला व्याख्यान माला के अन्तर्गत 'भारतीय इतिहास के निर्णायक काल' विषय पर व्याख्यान दिया। भारतवर्ष के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री पतंजलि शास्त्री, श्री मुन्शी जी तथा वम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री गोखले ने क्रमशः कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

संस्कृत विश्व परिषद् का सातवाँ अधिवेशन सम्पन्न

संस्कृत विश्व परिषद् (वर्ल्ड एकेडमी आफ संस्कृत) का सातवाँ अधिवेशन गत १७ दिसम्बर से १९ दिसम्बर १९६१ तक वम्बई में अंधेरी स्थित भवन विज्ञान महाविद्यालय के विशाल प्रांगण 'नवगुजरात' में वड़ उत्साह के साथ मनाया गया। अधिवेशन का उद्घाटन विश्व विख्यात दार्शनिक एवं भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् के करकमलों द्वारा हुआ। परिषद् का यह अधिवेशन अनेक दृष्टियों से काफी सफल रहा।

विविध प्रान्तों के लगभग १२०० प्रतिनिधियों ने इस अधिवेशन में भाग लिया, जिसमें १०० महिलाएँ भी थीं। परिषद् के अवैतनिक मन्त्री श्री जयन्तकृष्ण ह. दवे ने १९५९ में पूरी अधिवेशन के बाद की रिपोर्ट प्रस्तुत की। महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री श्री यशवन्तराव चव्हाण ने स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप में अथितियों का स्वागत किया और उपराष्ट्रपति से परिषद् का उद्घाटन करने के लिए निवेदन किया।

डॉ. राधाकृष्णन् ने परिषद् का उद्घाटन करते हुए संस्कृत विश्व परिषद् के सफल संचालन के लिए श्री मुन्शी जी तथा भारतीय विद्या भवन का आभार प्रकट किया और संस्कृत के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि जो, यह मानते हैं कि संस्कृत मात्र हिन्दुओं की भाषा ह, वे सही नहीं हैं। जिस प्रकार विदेशी लेखकों, प्लेटो, शेक्सपियर, तथा मिल्टन की रचनाओं को चाव से पढ़ा जाता है, उसी प्रकार वादरायण, जैमिनी, गौतम, वाल्मीकि, कालिदास तथा भवभूति के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया जा सकता है। संस्कृत भाषा का रूप बहुत विशाल है। विश्व

के राजनीतिक रंगमंच पर उपस्थित वर्तमान विध्वंसकारी दृश्यों का सिंहावलोकन करते हुए विद्वान दार्शनिक ने कहा कि इस रंगमंच पर सुखान्त दृश्य तभी उपस्थित हो सकेगा, जवकि समग्र सृष्टि के साथ हाथ मिलाकर आगे वढ़ा जाय। अन्त में उपराष्ट्रपति ने संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार पर वल दिया।

अधिवेशन के प्रमुख श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने परिषद् की स्थापना से लेकर आजतक की गतिविधियों का सिंहावलोकन करते हुए खेद प्रकट किया कि हमारी सरकार संस्कृत के समुचित विकास के लिए कोई आवश्यक एवं ठोस कदम नहीं उठा रही है। उन्होंने वताया कि संस्कृत भाषा आज किसी प्रकार का सरंक्षण नहीं पा रही है। ऐसी पाठशालाएँ भी अव शनैः शनैः लुप्त होती जा रही हैं, जहाँ संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। और इसका प्रमुख कारण इन पाठशालाओं के निर्वाह के लिए धन का अभाव है। अपने भावनाप्रधान भाषण में श्री मुन्शी जी ने कहा कि संस्कृत भाषा एक जीवन भाषा है। और आज भी देश में असंख्य लोग नित्य व्यवहार की भाषा में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए श्री मुन्शी जी ने परिषद् के समक्ष कई साधनों को भी प्रस्तुत किया।

इस अधिवेशन में भाग लेने वाले विद्वानों में द्वारकापीठ के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, उडिपि मठ के श्री. माधवाचार्य, श्री. पतजंलि शास्त्री, सरदार के. एम. पणिक्कर, महामहोपाध्याय पांडुरंग वामन काणे, श्री. अनंतशयनम आयंगर, श्री. वाल सुब्रह्मण्यम् आयर तथा विविध विद्यालयों के संस्कृत प्राध्यापक भी थे।

इस अवसर पर वम्वई की ब्राह्मण सभा की ओर से प्रख्यात संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिक' भी अभिनीत किया गया।

★

शुभ-विवाह

भवन्स जरनल, भारती तथा समर्पण के विजनेस मैनेजर श्री एम. वी. वी. अइय की सुपुत्री सौभाग्यवती वसन्ता (भवानी) का शुभ विवाह श्री के. आर. वीरराघवन् के साथ २९ नवम्बर १९६१ को वम्वई में सम्पन्न हुआ। प्रस्तुत चित्र वर-वधू का है।

●

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन के लिए वम्वई से प्रकाशित व मुद्रित
तथा एसोसिएटेड एडवर्टाइजर्स एण्ड प्रिन्टर्स, तारदेव, वम्वई ७ में मुद्रित।

भारती
विद्वानों
राचार्य,
, श्री.
गक्कर,
ो, श्री.
ह्मण्यम्
संस्कृत

ाह्मण
नाटक
गया।

समर्पण
. अइय
वानी)
ाघवन्
वम्बई
र-वधू

दत

क्या आप
की खूबसूरती
ढल रही है
फौरन
कुछ तजवीज
कीजिये
Loma
Loma

जब बाल पकने लग जायं तब आप का चाद जैसा चेहरा ढलने लगता है, फिर आप भले ही इसे खूबसूरत रखने के लिए हर कीमत चुकाने को तैयार क्यों न हों...सादी-सी बात है कि सुंदरता ही जहान है आप के लिए ।

भगवान करे, आप से ऐसी न बीते...आपके बालों की जवानी कुम्हलानी नहीं चाहिए, वह भी उस हालत में जब कि आप को लोमा सुलभ हो । मनमोहक खुशबूवाला लोमा बालों को श्याम बनाता है। लोमा सिर्फ बालों को श्याम ही नही करता, बल्कि वह आदर्श केश-प्रसाधन और बढ़िया केश-तैल भी है।

लोमा मे बालों को दुबारा जवानी प्रदान करनेवाले, उन्हें पुष्ट रखनेवाले तत्व हैं, जिससे आप के बाल रेशम जैसे मुलायम, घने और अधिक आकर्षक बनते है। मृदु लोमा लगाने पर आप की सुन्दरता कभी नहीं ढलेगी। सच पूछिये तो उसमें चार चांद ही लग जायेंगे।

लोमा

दुनिया भर में
उत्कृष्ट गुणों के लिए
ज्यादा पसंद तेल

सोल एजेंट्स और निर्यातक:
एम. एम. खम्भातवाला,
अहमदाबाद–१ (भारत)

एजेंटस:
सी. नरोत्तम एंड कंपनी,
बम्बई–२

MPS-HIN

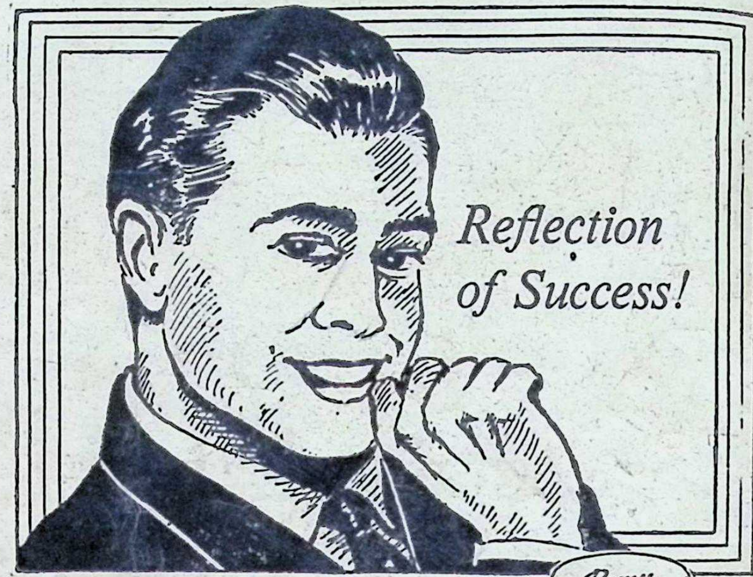
Reflection of Success!

Remy
Remy
PERFUMED CONCRETE
BRILLIANTINE
REMY PRODUCTS, INDIA

For a smart and dynamic man like him, no wonder, the Throne of Success is within the reach! To keep himself smart and well-groomed, day-in and day-out, like millions of others, he puts his confidence in *Remy* Brilliantine. When *REMY* is the first choice of men of mission, why not yours?

Sole Distributors:
A.V.R.A. & Co., Bombay 2.

MPS

Remy
BRILLIANTINE
for brilliant look!

o. 7428

न की
त्रिका

ुलाई
९६२

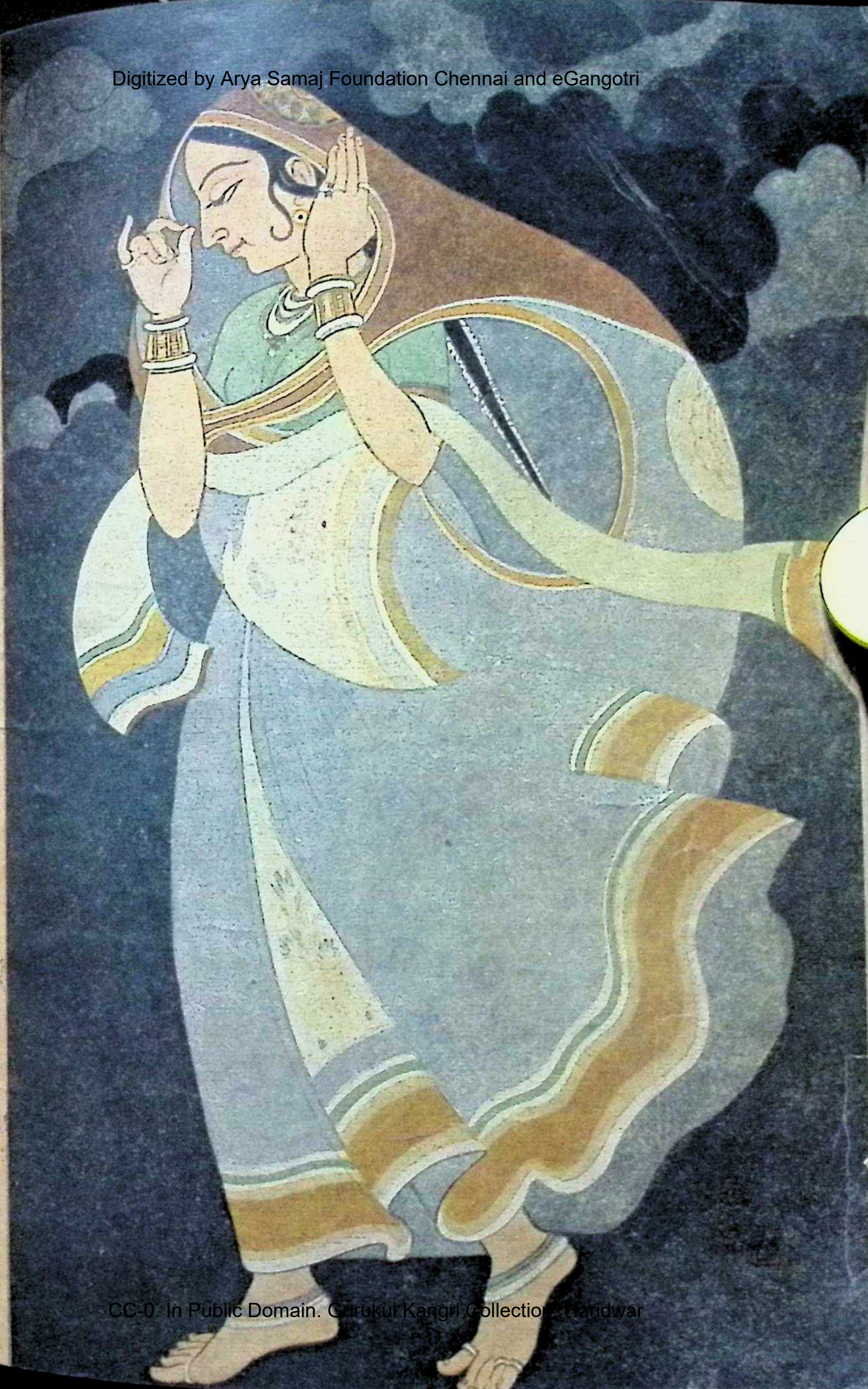

साधना से सुनिये एक रहस्य की बात...

'सुंदर रंगरूप के लिए **लक्स** ज़रूरी है'

LUX
LUX
LUX
LUX
LUX
TOILET SOAP

चित्रतारिकाओं
का शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

'मेरा मनचाहा साबुन मेरे मनचाहे रंगों में', साधना कहती हैं

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

LTS. 111-X29 HI

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल स्पेशल नं. १
रजिस्टर्ड

बालों की रूसी तथा बालों को गिरने से रोकनेवाला सर्वोत्तम बाल शक्तिवर्धक तेल। विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य सामग्रियों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया हुआ यह तेल मस्तिष्क को ही ठंडा नहीं रखता, अपितु शरीर-संस्थान को भी सुधारता है। इसका सेवन करने से प्रगाढ़ निद्रा आती है। साथ ही यह शरीर-मालिश के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद है। सब ऋतुओं में सेवन योग्य।
मूल्य ४·५० रु. बड़ी शीशी तथा २·२५ रु. छोटी शीशी। सर्वत्र प्राप्य।

उमेश योग दर्शन
(प्रथम भाग)

चार भाषाओं में—हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती तथा मराठी

लेखक— योगिराज उमेशचन्द्र जी

UMESH YOGA DARSHAN

१०८ वास्तविक आसन चित्रों से सुसज्जित पाचनशक्ति को सुधारने तथा श्वास क्रिया के साथ शरीर-संस्थानों पर प्रकाश डालने वाली योग के वास्तविक अर्थ की अत्युत्तम, अद्वितीय, सरस एवं पठनीय पुस्तक। इसमें योग चिकित्सा, क्रोमोपैथी तथा मानस चिकित्सा का भी विद्वतापूर्ण विवेचन है। यह प्रत्येक गृह, अस्पताल तथा पुस्तकालय के लिये संग्रहणीय है।
मूल्य १५ रु. डाक व्यय २ रु. अतिरिक्त।

योगासनचित्रपट विभिन्न योगासनों के साथ 'आर्ट ग्लेज्ड' कागज पर छपा हुआ योगासन चित्र भी प्राप्य है। मूल्य ३ रु. (डाक व्यय सहित जो मनीआर्डर द्वारा भेजा जा सकता है।)

श्री रामतीर्थ योगाश्रम
दादर, बम्बई १४
HVB

13 JUL 1962
वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

क्या आप पौष्टिक तत्वों के अभाव से पीड़ित है ?

तो आल्बो-सांग का सेवन करें

पौष्टिक तत्वों के अभाव को
दूर करने वाला, बढ़िया, कम खर्चवाला तथा
वैज्ञानिक तरीकों से तैयार किया गया।

आनन्दायक स्वाद, जिसे चाय, काफी, दूध, हलुआ, फल के रस इत्यादि के साथ लिया जा सकता है। आल्वो-सांग शिशुओं, बढ़ रहे बच्चों व प्रसव के बाद माताओं, मानसिक परिश्रम करने वालों तथा बड़े-बूढ़ों के लिए बढ़िया पोषक तत्व प्रदान करने वाला खाद्य है। यह बीमारी छूटने के बाद स्वास्थ्य सुधार, दुर्बलता तथा रक्तहीनता दूर करता है।

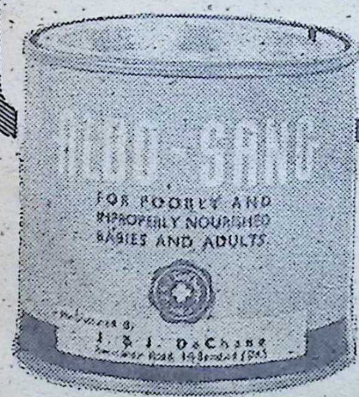
ALBO-SANG
FOR POORLY AND
IMPROPERLY NOURISHED
BABIES AND ADULTS
J. & J. DeChane

पावडर तथा टिकियां
दोनों मिलती हैं

जे. एंड जे. डीशेन,
हैदराबाद (दक्षिण)

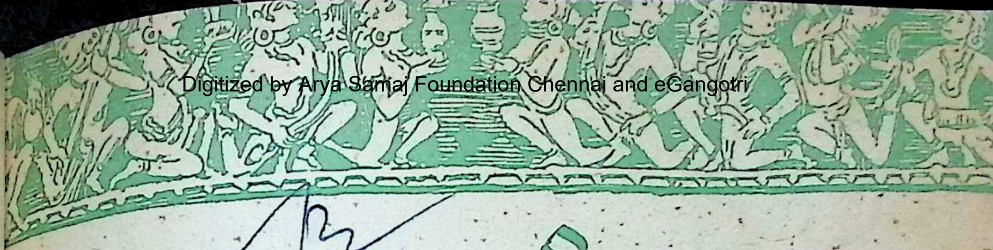

12

वर्ष ६ : अंक १२]

भारती

[जुलाई १९६२

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

संस्थापक :
कन्हैयालाल मुन्शी

●

प्रबन्ध सम्पादक :
जयन्तकृष्ण ह. दवे

●

प्रकाशक :
सु. रामकृष्णन्

●

सम्पादक :
वीरेन्द्रकुमार जैन

●

सहयोगी :
श्रीराम मिश्र
ओंकारनाथ शर्मा
रामलाल शुक्ल

●

कार्यालय :
भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड,
बम्बई ७

●

एक अंक : ५० न.पै.
वार्षिक : ५)

साम पूर्वार्चिक : कवि ५
श्री कन्हैयालाल मुन्शी : कुलपति का पत्र ६
स्वामी रामदास : भगवान को पाने के लिए सन्यास आवश्यक नहीं ११
श्री माँ : मृत्यु के बाद अन्तरात्मा की यात्रा १४
डॉ. हरिवंशराय बच्चन : गत्यवरोध १८
डॉ. रामधारी सिंह दिनकर : योग-विद्या : शरीर और आत्मा के समन्वय का विज्ञान २०
राजेन्द्र प्रसाद सिंह : शीर्षक से परे २२
जेन डनलेप : मैंने आठ घंण्टो में करोड़ों वर्षों को जिया २६
गंगाप्रसाद विमल : आमंत्रण ३२
श्रीकृष्णजीवन भट्ट : कुण्ठित-आधुनिक+मनु= प्रणव-पुत्र ३३
रमेशचन्द्र शाह : कल्पना और मनोविज्ञान के नये सन्दर्भ ३४
डॉ. अमृता भारती : मैं तट पर हूँ ३८
चित्तरंजन बन्द्योपाध्याय : अमरीकी साहित्य में भारत ४०
मधुकर सिंह : व्यथा से एक निवेदन ४८
श्यामसुन्दर घोष : एक वक्तव्य ४९
मोहनराज शर्मा : पैर का कीचड़ : हाथ का कमल ५०
वीरेन्द्र कुमार जैन : श्री अरविन्द और मेरा कवि ५४
सम्पत ठाकुर : सार्त्र ५७
नरेशचन्द्र मिश्र : विषपान, जो माँ का ममतायुक्त अमृत बन गया ५८

आगामी अंक में

- परम विप्लव-पुरुष, श्रीकृष्ण : श्री अरविन्द
- व्रज की गोप-बालाओं के साथ रसराज की रस-लीला : लावण्यप्रभा राय
- भारत का सदा का मिशन : काका कालेलकर
- व्यक्तित्व का विकास : डॉ. के. एम. मुन्शी
- क्या मनुष्य अपने विकास का स्वामी है ? : आर. आर. दिवाकर
- शरच्चन्द्र की राज-लक्ष्मी कौन थी ? : विमल बोस
- मेरे स्वामी : मेरे लाल (कहानी) : प्रभाकर द्विवेदी
- धरती के कवि, सैं-जॉन पर्स : पृथ्वीन्द्र मुखोपाध्याय
- कुंडलिनी महायोग और उसके अद्भुत चमत्कार : कु. प्रतिभा त्रिवेदी
- अव्यक्त शक्तियों का साक्षात्कार : अरुणकुमार शर्मा

○

डॉ. कैलाशनाथ मिश्र : मृतात्माओं के रहस्यमय लोक ६२
दिनकर सोनवलकर : खोखला व्यक्तित्व और नकली कृतित्व ७०
सत्येन्द्र सक्सेना : क्षितिजों को समेटती सुरावलियाँ : श्री सज्जाद का मेन्डोलिन ७२
डॉ. सोमदत्त गर्ग : सत्यावतरण ७६
मणिका मोहिनी : तुम अपरिमेय ७७
डॉ. गणपति राय पुरोहित : लोकोत्तर सौन्दर्य और आनन्द ७८
हरीश करुण : कांचन नव युग : अभिनव मानव ८२
रमेश दुबे : अन्तर के सूर्य ८३
पुरुषोत्तम खरे : आभा ८४
भक्त रामशरण दास पिलखुआ : कुछ अलौकिक सत्य घटनाएँ ९१
श्री कन्हैयालाल मुन्शी : कृष्णावतार ९६
मक्खनलाल शर्मा : सनातन सूर्योदयी नूतन कविता का यह घोषणा-पत्र १०७
श्री कन्हैयालाल मुन्शी : तपस्विनी १२१

○

इस अंक के सज्जाकार :
सर्वश्री रा. च. शुक्ल, कुमार ज्योतीन्द्र जैन,
नागराज, पवनकुमार

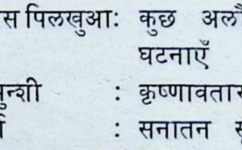

आवरण-चित्र : **अभिसारिका**
चित्रकार : **दिनेश शाह**

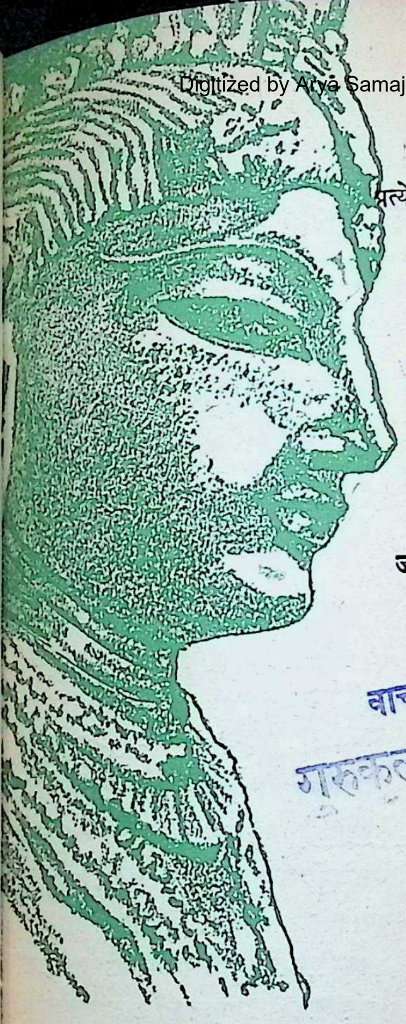

आ नो भद्राः ऋतवो यन्तु विश्वतः।

प्रत्येक दिशा से शुभ एवं सुन्दर विचार हमें प्राप्त हों।

भारती

[भवन की पत्रिका]

●

आगामी विश्व विकास का सूचक :

जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

●

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

कवि

परि प्रासिष्यदत् कविः
सिन्धोरूर्मावधिश्रितः।
कारुं बिभत् पुरुस्पृहम्॥

सागर की लहरों पर आरूढ़ कवि लोक-प्रेम
की तंत्री उठा कर चारों दिशाओं में फैल गया।

— साम पूर्वार्चिक

भगवान विष्णु
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

भगवती सरस्वती
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

कुलपति का पत्र

जीवन साहित्य तथा संस्कृति से संबंधि

- युद्धविरहित विश्व का सपना
- निःशस्त्रीकरण की आशाएँ
- नये दृष्टिकोण की आवश्यकता

भारतीय विद्या भ
चौपाटी रोड, ब
१ जुलाई, १९

मेरे युवा मित्र,

हम लोग जबकि अपनी राष्ट्रीय समस्याओं में निमग्न हैं, जिनेवा में १७ राष्ट्रों की एक निःशस्त्रीकरण परिषद, निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिए कार्यरत है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अंतरिक्ष में एक आदमी को सफलतापूर्वक भेजा। रूस ने एक सर्वसंहारक प्रक्षेपास्त्र-विरोधक प्रक्षेपास्त्र बनाने का दावा किया है। बर्लिन की समस्या का अभी कोई समाधान नजर नहीं आता। इसीलिए निःशस्त्रीकरण का प्रश्न केवल राजनीतिक प्रश्न ही नहीं है, बल्कि सभी वर्ग के मनुष्यों की ज्वलंत समस्या भी है। मानव मात्र का सम्बंध इससे है और वह चाहता है कि इसको सुलझाने के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया जाय।

निःशस्त्रीकरण के बारे में आज इत चर्चा है और तरह-तरह की अटक बाजियाँ लगायी जा रही हैं, कि इसकी स व्याख्या पाठकों को कहाँ तक प आयेगी, यह मैं ठीक से नहीं कह सकत फिर भी इतने महत्वपूर्ण प्रश्नों पर जो ह अस्तित्व की गहराई तक जाते हैं, कि प्रकार की विचार-भ्रांति दूर करना आवश्यक है। हमें उनके नग्न सत्य परिचित होना चाहिए।

'युद्धविरहित विश्व के लिए स निःशस्त्रीकरण' एक प्रार्थना के रूप तो ठीक है; परन्तु उसकी प्राप्ति उत ही दूर है, जितनी पाँच हज़ार वर्ष प वैदिक ऋषियों द्वारा कल्पित 'वि

कुटुम्ब' का आदर्श। आज तो अंतर्राष्ट्रीय स्थिति तथा लोगों के विचार देखते हुए ऐसा लगता है कि इस लक्ष्य तक अभी एक-दो पीढ़ी तक पहुँचना मानव के लिए संभव नहीं। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं कि हमें इस आदर्श को ही भुला देना चाहिए। इसका विचार मात्र ही प्रेरणा-दायक है। किंतु केवल इच्छा मात्र से काम नहीं चलेगा। इसके पीछे पूर्व और पश्चिम के दो शक्तिाली गुटों का भयंकर संघर्ष कार्यरत है।

रूस संसार पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है। क्रेमलिन ने अपने इस उद्देश्य को कभी छिपाया नहीं, हालाँकि उसका प्रचार इतनी चतुराई से किया जाता है कि कई लोगों को वह स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ता। पिछले कई वर्षों में रूस की नीति इसी विश्व-प्रभुत्व के लक्ष्य की ओर रही है और इसके लिए वह राजनीतिक चालों, धमकियों, निन्दा इत्यादि के प्रयोग के साथ-साथ अपरिमित अणुशक्ति की वृद्धि कर रहा है, जिससे युद्ध किये विना वह संसार को डरा-धमका कर अपने वश में कर सके।

युद्ध न चाहने का क्रेमलिन का एक और भी कारण है। रूसी जनता की अपेक्षाकृत सम्पन्नता से उत्पन्न एक नये वातावरण को वह अपने देशवासियों पर युद्ध का संकट लाकर खराब नहीं करना चाहता। निःशस्त्रीकरण समझौते के प्रयासों को भी वह अपने इस अंतिम लक्ष्य की दिशा में एक चरण समझता है। सभी प्रकार के तथ्यों से मालूम तो ऐसा ही पड़ता है कि न तो वह निःशस्त्रीकरण करेगा, न निरीक्षण के लिए राज़ी होगा और न अपनी उच्चतर सैनिक शक्ति को बनाये रखने अथवा उसमें वृद्धि करने का एक भी अवसर हाथ से जाने देगा।

बर्लिन को लेकर रूस अपनी चालों से कभी बाज़ नहीं आयेगा, न वह यूरोप की संभावित एकता को रोकने अथवा 'तटस्थ' राष्ट्रों के परमाणु युद्ध के प्रति भय का लाभ उठाने से कभी पीछे हटेगा। फिर भी चीन के साथ अपनी अड़चनों के कारण वह एक ऐसी स्थिति लाने के प्रयास में है, जिससे पश्चिमी राष्ट्रों का सन्देह कुछ कम हो सके और अफ्रीकी-एशियाई देशों का अनुमोदन तथाकथित शांति-घोषणा के प्रति प्राप्त हो सके, ताकि विश्व पंचायत में उसका नेतृत्व वना रहे।

दूसरी ओर, अमेरिका रूस की वढ़ती हुई शक्ति से भयभीत है और शस्त्रीकरण की दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहता। वह अच्छी तरह जानता है कि उसकी अपनी परमाणविक शक्ति और विदेशों में उसके सैनिक अड्डे ही रूस को विश्व-प्रभुत्व प्राप्त करने से रोके हुए हैं। वह

निःशस्त्रीकरण के विषय में ऐसा कोई समझौता नहीं करना चाहता, जिसमें धोखे की कोई गुंजाइश हो। और, रूस की पिछली कार्रवाइयों को देखते हुए उसका भय उचित ही है। अमेरिका अपने विदेशी अड्डों और नाटो का परित्याग कर पश्चिमी राष्ट्रों के नेता के रूप में अपनी सुदृढ़ स्थिति और बर्लिन तथा शायद समूचे यूरोप को ही ख़तरे में डाल सकता है; प्रशांत महासागर में अपनी दृढ़ सुरक्षा को भी वह इससे कमज़ोर बना देगा।

यही कारण है कि अमेरिका रूस की तथाकथित शांति-घोषणा पर विश्वास नहीं करता। रूस की शक्ति केंद्रित है और शेष संसार, भिन्न-भिन्न देशों में मतैक्य के अभाव में, कोई भी कठोर कार्रवाई करने में इतना समर्थ नहीं, जितना कि रूस। फिर भी, यूनो में अफ्रीकी-एशियाई देशों के शक्तिशाली मत को देखकर अमेरिका निःशस्त्रीकरण के प्रश्न पर कठोर रुख अख़्तियार करने में बुद्धिमानी नहीं समझता।

दोनों ओर की स्थितियों को देखते हुए, 'बातचीत चालू रखना' ही विश्व-शांति के लिए आवश्यक बन गया है। किंतु इससे निःशस्त्रीकरण संभव नहीं, क्योंकि रूस इसके लिए राज़ी होगा नहीं और न अमेरिका ही राज़ी हो सकता है।

सभी अफ्रीकी-एशियाई राष्ट्र, अपने मतभेदों के बावजूद, परमाणविक युद्ध से विश्व को बचाना चाहते हैं। इस प्रकार का युद्ध यूनो में उनके प्रभाव को खत्म तो कर देगा ही, उनकी स्वतंत्रता को भी मिटा देगा और शीघ्र आर्थिक विकास के उनके सपने चूर-चूर हो जायेंगे। इसीलिए ये राष्ट्र विश्व-युद्ध को टालना चाहते हैं, किंतु इस बात से उन्हें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं, कि 'समझौते की इस सतत बातचीत' में कौनसा शक्ति-गुट दूसरे से अधिक लाभ उठाता है। उनका ध्यान तो अपने निकट स्वार्थ पर रहता है और अक्सर वे उसी गुट की ओर झुकते हैं, जिससे अधिक भय उन्हें हो, और वह रूस ही है। इसके अलावा, इन देशों में से अधिकांश में ऐसे साम्यवादी दल हैं, जो अपनी-अपनी सरकार को कम-से-कम विरोध के मार्ग पर चलने, अर्थात् 'तटस्थ' कहलाने और रूस की ओर झुकने पर मजबूर करते हैं।

इन अफ्रीकी-एशियाई देशों की मान्यता है कि युद्ध का ख़तरा यदि इस समय के लिए टल गया, तो वे शीघ्र ही इतने सशक्त हो जायेंगे कि परमाणविक युद्ध को रोक सकें। इन राष्ट्रों का कोई गुट नहीं है, न वे मोटे तौर पर ही शक्ति की किसी शृंखला से बद्ध हैं। उनमें से किसी एक पर साम्यवादी ख़तरा उपस्थित होने पर शेष किसी ऐसे सामूहिक भय से संत्रस्त नहीं होते, जिससे वे यह समझ सकें कि उनकी सुरक्षा 'भय के

संतुलन' में हैं, न कि रूस की ओर झुकने में। किंतु रूस को अपनी सलाह मनवाने की अपनी असमर्थता की पूर्ति में वे अक्सर पश्चिम को ही नरम रुख अख़्तियार करने को कहते हैं।

* * *

मेरे ख़याल से ये तीनों ही पक्ष समझौते की बातचीत इसी आशा में जारी रख रहे हैं कि समय गँवाकर वे अपना लक्ष्य साध सकेंगे। इसीलिए वे सभी इस बातचीत को जारी रखने के पक्ष में हैं और मौजूदा हालत में शायद यही संभव भी है। हर पक्ष यही आशा करता है कि उपस्थित गत्यवरोध बना रहे और शस्त्रीकरण की होड़ ख़त्म हो जाय।

सच तो यह है कि साम्यवादी संसार और शेष दुनिया के जीवनदर्शन में एक गहरी खाई है। शेष दुनिया व्यक्तिगत स्वतंत्रता, धर्म और संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में एकता की इच्छुक है, जबकि साम्यवादी संसार ईश्वर-विरोधी तथा एकतंत्रात्मक है और वह विश्व-एकता रूसी अथवा चीनी प्रभुत्व के अन्तर्गत लाना चाहता है। दोनों के बीच कोई वास्तविक सहनशीलता नहीं। सह-अस्तित्व न तो इन दो में से किसी की नीति है, न आदर्श। साम्यवादियों के अनुसार सह-अस्तित्व वर्ग-संघर्ष का ही एक और रूप है। इसलिए यह एक ऐसी कष्टप्रद सन्निकटता है, जो एक नाज़ुक युद्धविहीनता की स्थिति के फलस्वरूप है और जिसको कोई भी पक्ष भंग करने को प्रस्तुत नहीं।

इस समस्या का समाधान तभी संभव है, जबकि उभय पक्षों की विचारधारा में परिवर्तन हो, रूस संसार पर अपना मार्क्सवादी प्रभुत्व जमाने की महत्वाकांक्षा को छोड़ने के लिए तैयार हो और शेष दुनिया में एक आंतरिक संघटन हो। किंतु यह स्थिति अभी बहुत दूर है।

अपनी विस्तारवादी महत्वाकांक्षा के कारण चीन भी मौज़ूदा स्थिति को अधिक जटिल बनाता है। शीघ्र ही वह अणुशक्ति का स्वामी होगा। शायद अब तक वह उस स्थिति के बहुत निकट पहुँच भी गया हो। एशिया पर प्रभुत्व जमाने की उसकी महत्वाकांक्षा प्रकट है। रूस का नेतृत्व अंततः उसे स्वीकार नहीं होगा, और प्रशांत महासागर में अमेरिकी आधिपत्य को ख़त्म करने पर वह तुला हुआ है।

लाओस प्रायः पश्चिमी प्रभाव से बाहर निकल चुका है। दक्षिण वीतनाम भी कब तक उसमें रहेगा, यह एक समस्या है। थाइलैंड शायद दूसरा शिकार हो। बर्मा को साम्यवादी खतरा बना हुआ है। हिमालय की सीमा पर चीन का आतंक है ही। भारत के कुछ भाग उसने हथिया लिये हैं। भारत सरकार शक्ति, दृष्टिकोण तथा नीति में कमज़ोर साबित हुई है। नेपाल

और सिक्किम का चीन के प्रभाव में आना संभव है।

परमाणविक युद्ध को रोकने के लिए चीन समझौते की निरन्तर बातचीत में विश्वास नहीं करता। इसलिए चीन का एक ऐसी विस्तारवादी शक्ति के रूप में प्रादुर्भाव, जो साम्यवादियों की सभी चालों का उपयोग करता है, निःशस्त्रीकरण की कार्यवाही को बेमानी कर देता है।

आज की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में यूरोपियन समाज का सबसे शक्तिशाली होना बहुत संभव है। यूरोपियन संघटन आज जिस स्थिति में है, उसमें फ्रांस और जर्मनी के लिए सफल निरीक्षण के विना निःशस्त्रीकरण को स्वीकार करना संभव नहीं होगा।

और, मान लीजिए कि परमाणविक अस्त्रों के वारे में निःशस्त्रीकरण हो ही गया, तो क्या संसार में युद्ध नहीं होगा? मुझे तो इसमें शंका है। साम्यवादियों द्वारा किये गये लाओस के गृह-युद्ध में कोई परमाणविक अस्त्र काम में नहीं लिये गये, न दक्षिण वीतनाम में ही, जहाँ साम्यवादी 'गुरीला' लड़ाकू तथा विध्वंस-कार्य उस देश की सरकार को ख़त्म करने में लगे हैं। भारत के विरुद्ध चीनी हमलों में भी परमाणविक अस्त्रों का प्रयोग नहीं हुआ और न कांगों में, जहाँ जान और माल की बेहद तबाही हुई है, उनका कोई उपयोग हुआ है। इसलिए, परमाणविक निःशस्त्रीकरण की संभावना हुई भी तो 'युद्ध विरहित विश्व' बहुत दूर की वस्तु होगी।

निःशस्त्रीकरण तभी सफल हो सकता है जब कि राष्ट्रों में भय की भावना दूर हो और विश्व-प्रभुत्व की महत्वाकांक्षा के बदले में विश्व-उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो।

'युद्ध विरहित विश्व' की स्थिति राजनीतिज्ञों द्वारा नहीं प्राप्त होगी—हाँ, वे उस दिशा में उपयोगी अवश्य सिद्ध हो सकते हैं। यह उन्हीं लोगों द्वारा संभव है, जो राष्ट्रों की प्रभुत्व-राजनीति में नैतिक मूल्यों का महत्व स्थापित कर सकें। तभी वे राष्ट्र एक ऐसी विश्व सत्ता को अपने परमाणविक अस्त्र सौंप सकेंगे, जो शीत युद्ध के दबावों से मुक्त हो और जो राष्ट्रों के बीच न्याय का शासन स्थापित करने में समर्थ हो।

यह लक्ष्य अब तक तो बहुत-बहुत दूर है। मेरे विचार निराशावादी अवश्य लग सकते हैं, परन्तु मेरा दावा है कि यथार्थ से वे दूर नहीं हैं।

आपका,

कन्हैयालाल मुंशी

स्वामी रामदास

भगवान को पाने के लिये संन्यास आवश्यक नहीं

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

आत्मा के साधक को कामिनी और कांचन के त्याग की आवश्यकता नहीं। ये भगवान की ही विभूतियाँ हैं। समदास यह नहीं मानता कि नारी मनुष्य के पतन का कारण है। यदि हम कामिनी और काञ्चन को भगवान की सम्पदा मान कर, अनासक्त भाव से और त्यागपूर्वक, भगवद्-समर्पण के रूप में ही उनका भोग करें, तो वे हमारे विनाश के नहीं, उन्नयन के ही कारण हो सकते हैं। मनुष्य यदि नारी में भगवती माँ को देखे, तो वह उसका उद्धार कर सकती है।

केवल बाहरी वस्तुओं के त्याग से ही भगवान् को नहीं पाया जाता। ऐसे बहुत से लोग हैं, जिन्होंने ऐसा किया और जंगलों में चले गये, लेकिन भगवान उन्हें नहीं मिला। वस्तुतः बाहरी वस्तुओं का इतना महत्व नहीं, जितना कि आन्तरिक मनःस्थिति का। यदि हम अपना जीवन प्रभु को समर्पित करते हैं और उसके मार्ग पर चलते हैं, तो हम कहीं भी रहें इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। फिर हम अपने घर-परिवार में रहें, अथवा जंगल-कंदराओं में। प्रभु हमारे भीतर-बाहर सब जगह उपस्थित है; उसे खोजन के लिए हमें अन्यत्र कहीं नहीं जाना पड़ता।

बुद्ध, चैतन्य और विवेकानन्द का अनुकरण हर एक नहीं कर सकता। वे अत्यंत विरल व्यक्ति थे, जिनको ईश्वर ने इस लायक बनाया कि वे सभी बाह्य बंधनों का त्याग कर मानव मात्र की सेवा मुक्त रूप से कर

सकें। यदि ईश्वर हम पर भी ऐसी कृपादृष्टि करे और ऐसी प्रेरणा हमें हो तो, निश्चय ही हमें अपनी संकीर्ण सीमाओं का त्याग करना चाहिए। श्रीकृष्ण और जनक ने अपने जीवन से हमें यह सिखाया है कि लोकसंग्रह के कार्य के लिए भी हमें, अपने दैनिक कर्तव्यों को नहीं भूलना चाहिए। वाहय बंधनों का इच्छापूर्वक त्याग मोक्ष के लिए ज़रा भी आवश्यक नहीं है।

ईश्वर-साक्षात्कार का अर्थ संसार से दूर भागना नहीं है, बल्कि उसको उसी प्रभु का विराट स्वरूप मान कर सभी प्राणियों में उसकी सेवा करना है और सदा उसकी इच्छा के आगे समर्पित होना है।

त्याग हमें केवल अपनी अहं-भावना का करना है, अपने कर्ता होने की मिथ्या समझ का करना है। केवल ईश्वर ही कर्ता है, वही हमारे सभी कर्मों का एकमात्र स्वामी है। यदि हम अपने सभी कर्म उसको समर्पित कर दें तो, हम अपनी अहंभावना को दूर कर सकते हैं और उसके साथ अपनी निकटता स्थापित कर सकते हैं। समर्पण का अर्थ जीवन के किसी वाहय अंग में कोई परिवर्तन नहीं, बल्कि उसके प्रति सही दृष्टिकोण अपनाना है।

कोई भी कर्म अपने आप में न पुण्य है न पाप। अपने मिथ्या व्यक्तित्व-बोध से

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानंद (भारतीय व्याख्यान) ...	५.००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश) ...	२.७५
पत्रावली–प्रथम भाग ...	५.२५
पत्रावली–द्वितीय भाग ...	४.२५
विवेकानंदजी के संग में ...	५.२५
विवेकानंदजी की कथाएँ ...	१.६०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ...	१.६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ...	१.५०
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ...	१.१५
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)...	१.५०
विवेकानंदजी के सान्निध्य में ...	०.९०
कर्मयोग	१.४०
भक्तियोग	१.५०
राजयोग	३.००
ज्ञानयोग	३.००
प्रेमयोग	१.३७
हिन्दू धर्म	१.५०
धर्मरहस्य	१.२५
धर्मविज्ञान	१.६२
विविध प्रसंग	१.१२
चिन्तनीय बातें	१.००
शिकागो वक्तृता	०.६२
भारतीय नारी	०.७५
विवेकानंद चरित	६.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए –

श्रीरामकृष्ण आश्रम (भा.)
धन्तोली, नागपुर–१

उसका सम्बंध जोड़ने में ही हम भूल करते हैं, जबकि सभी कर्म ईश्वर द्वारा ही प्रेरित होते हैं। इसलिए कोई भी कर्म, जिसमें हम लगे हैं, छोड़न की आवश्यकता नहीं। सभी कर्म ईश्वरार्पण कर देने चाहिए। पदार्थों को अवश्य भोगो, परन्तु स्वयं उनके भोग मत बनो। जब कभी कोई वस्तु तुम्हें भेंट दे तो, यह समझो कि वह स्वयं ईश्वर ही तुम्हें दे रहा है; इसी तरह जब तुम्हें देना पड़े तो, उसी खुशी के साथ दे डालो, जो पाते समय तुम्हें हुई थी। यह समझो कि तुम उसकी वस्तु उसी को लौटा रहे हो, जिससे तुम्हें प्राप्त हुई थी। लाभ-हानि को भी इसी दृष्टि से देखो। प्रभु ही देता है और वही वापस ले लेता है।

अपनेपन की भावना ही प्रभु-प्राप्ति में सबसे वड़ा विघ्न है। 'मैं और मेरे' की भावना का सर्वथा त्याग करना वांछनीय है। तभी ईश्वर के साथ एकात्मता शांति और सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है। वस्तुतः घट-घट में व्याप्त ईश्वर की ही यह सारी सृष्टि है। किसी बाहरी वस्तु से मोह हमारी दृष्टि को संकुचित बनाता है, अहं भावना को बढ़ाता है और इस भ्रम को पैदा करता है कि हम ईश्वर से, अर्थात् विश्मात्मा व निखिल सृष्टि से, विलग हैं। वस्तुतः ईश्वर से विलग कोई नहीं; दृश्य और अदृश्य सभी जगत्, उसीके स्वरूप हैं; उसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। फिर 'मैं' और 'तुम'–'मेरा' और 'तेरा' कहाँ रहा? यही तो सव कुछ है।

आत्मा के साधक को कामिनी और कांचन के त्याग की आवश्यकता नहीं। उसे उनके प्रति केवल अपनी दृष्टि बदलनी होगी। न तो वह उन्हें अपना दास वनाये और न स्वयं को ही उनका दास वनने दे। ईश्वरी शक्ति की अभिव्यक्ति ही वह उन्हें माने। रामदास यह नहीं मानता कि नारी मनुष्य के पतन का कारण है। मनुष्य ही शरीर तथा अन्य नाशवान पदार्थों के प्रति आसक्त होकर तथा इस प्रकार संसार की सभी वस्तुओं से दैवी शक्ति को सर्वोच्च सत्ता न मान कर पतनोन्मुख होता है। वास्तव में यदि मनुष्य नारी को भगवती माँ का स्वरूप माने तो, वह उसका उद्धार ही करती है।

☆

प्रेम और वासना में उतना ही अन्तर है जितना कंचन और कांच में।

--प्रेमचन्द

श्री माँ

मृत्यु के बाद अन्तरात्मा की यात्रा

[लेखांक : २]

परमाणु को तोड़ कर मनुष्य आज अपनी वैज्ञानिक प्रभुता के बल सत्ता के सूक्ष्मतम प्रदेशों में प्रवेश करने की तैयारी कर रहा है। निश्चय ही अन्ततः वह मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन करना चाहता है। आत्मा के क्षेत्र में काम कर रहे—अन्तर्द्रष्टा योगियों की मरण-साक्षात्कार की प्रस्तुत साक्षी, शायद आज के वैज्ञानिक मानव की अगोचर को भेदने की साधना में सहायभूत हो सके।

जब अन्तरात्मा अपने विश्रामस्थल में पहुँच जाता है, तब वहाँ वह गम्भीर शांति और आनन्द का अनुभव करता है और वह वहाँ मानो एक ज्योतिर्मयी निद्रा में पड़ा रहता है। वहाँ वह अपने गत जन्म की सभी अनुभूतियों को हजम करता है, अर्थात् उनके उस सारतत्व को ग्रहण करता है, जो उसकी चेतना को वर्द्धित करता और वलिष्ठ बनाता है, उनके उस रस का आहरण करता है, जो उसकी सत्ता के साँचे और गठन को निर्मित करने में सहायता करता है। जन्म-जन्म की इन अनुभूतियों का यही उपयोग है कि जिस भागवत चेतना से आरम्भ में निकल कर अन्तरात्मा महज एक स्फुलिंग, यद्यपि पृथक्, पर एक अंश के रूप में इस पृथ्वी पर आया था, उस भागवत चेतना के साथ पूर्ण एकत्व प्राप्त करने में, वे अन्तरात्मा को सहायता पहुँचाएँ और एक-एक जन्म इस यात्रा की एक-एक सीढ़ी बन कर अन्तरात्मा को उस सिद्धि के अधिकाधिक समीप ले जाय। इस पाचनक्रिया में अन्तरात्मा को अनुभूतियों के स्वभाव के अनुसार कभी अधिक और कभी कम समय लग सकता है। फिर उस विश्रामधाम में रहते हुए ही अन्तरात्मा अपने बाद के

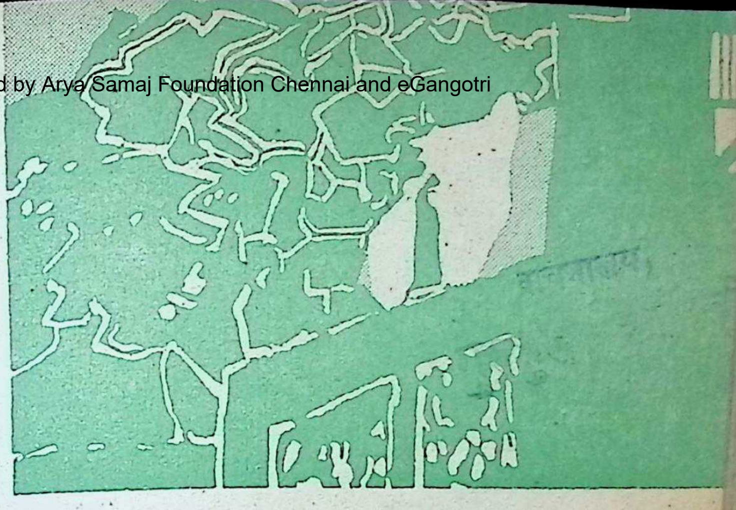

जन्म के लिए तैयारी भी करता है, अर्थात् उस जन्म में चेतना की जो लीला वह खेलना चाहता है, उसके लिए उसे जिन सब तत्वों की आवश्यकता होगी, उन्हें वह एकत्र करता है। वह उस जीवन में चेतना को जिस रूप में उन्नत करना चाहता है, उसके लिए उसे जिन सब अनुभूतियों की आवश्यकता होगी, उनका भी वहाँ वह विस्तृत नक्शा तैयार करता है, उनके आकार-प्रकारका एक ढाँचा तैयार करता है। अन्तरात्मा चेतना की जिन सब शक्तियों को वह पीछे, भंडार में सुरक्षित रख छोड़ता है और बाकी शक्तियों को दूसरे जन्म में व्यवहार करने के लिए सामने रखता है। अवश्य ही वह सब क्रिया मन-बुद्धि के द्वारा सोच-समझ कर, युक्ति-तर्क के अनुसार नहीं की जाती, बल्कि वह एक ऐसी क्रिया है, जो स्वयं अपने आप होती है, अन्तर्निहित होती है, एक प्रकार के ज्योतिर्मय चिंतन और ध्यान का फल होती है; यह ब्रह्म की उस समाधि की तरह की चीज़ है, जिसमें सृष्टि का बीज प्रायः अंकुरित होने की अवस्था में होता है।

हृत्पुरुष समाहित शक्ति की मानो एक पुड़िया होता है, बिजली की मानो एक बैटरी होता है। जब वह पृथ्वी पर उतरता है, तब वह अपने चारों ओर मन, प्राण, और सूक्ष्म शरीर तक के उन तत्वों को एकत्र करता है, जो उस जीवन की विशिष्ट अनुभूति के लिए आवश्यक होते हैं, तथा उन तत्त्वों को भी आहरण करता है, जो उसका भौतिक शरीर गठित करने के लिए आवश्यक होते हैं। यह साधारण तौर पर, मन, प्राण, और शरीर के इन सब तत्त्वों को आवश्यकता होने पर उसी तरह पार्थिव वातावरण के विश्वव्यापी भाण्डार-गृह से चुन लेता है, जिस तरह वह इन सब को मृत्यु के बाद अपने दिव्य धाम को लौटते समय वापस दे देता है। परन्तु जैसा कि मैं, पहले कह चुकी हूँ, कुछ ऐसे भी हृत्पुरुष होते हैं, जिन्होंने मनोमय, प्राणमय और शरीर चेतना तक के सुगठित

व्यक्ति-रूपों को विकसित किये होते हैं। ये रचनाएँ केवल असम्बद्ध रूप से उत्पन्न नहीं होतीं, केवल एक जीवन की अनुभूति के लिए क्षणस्थायी नहीं होतीं, बल्कि वे हृत्पुरुष के यथार्थ यंत्र के रूप में उसकी आत्माभिव्यक्ति के रूप में सुसम्बद्ध, सुसंगठित होती हैं और उन्हें थोड़ा-बहुत स्थायी रूप प्राप्त होता है। जहाँ ऐसी अवस्था होती है, वहाँ बाहरी व्यक्तित्व भी चैत्य चेतना के साथ और उसी के अंदर एक मूलगत गुण या कम्पन के रूप में वना रहता है और जब अन्तरात्मा पृथ्वी पर उतरता है, पार्थिव वातावरण के संस्पर्श में आता है, तब वह उस बाहरी व्यक्तित्व और रचना को अपने अन्दर से वाहर निक्षेप कर देता है। परन्तु इसका मतलब निश्चय ही यह नहीं है कि ऐसी हालत में व्यक्तित्व एक निश्चित और कठोर वस्तु के रूप में बना रहता है, बल्कि इसका मतलब यह है कि उसे एक प्रकार का पूर्ण मौलिक रूप तो प्राप्त है, पर साथ ही उसे यह योग्यता भी प्राप्त है कि जब अन्य जीवनों की अनुभूतियों के द्वारा हृत्पुरुष और अधिक उन्नत हो, तो उसके साथ-साथ यह भी और अधिक परिवर्तित और उन्नत हो सके।

अव अन्तरात्मा के किसी विशिष्ट जन्म के काल और अवसर की बात पर आयें। ये दोनों वातें साधारणतः उस पुरुष की आन्तरिक आवश्यकता पर निर्भर करती हैं। परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए —क्योंकि यह सूक्ष्म जगत् का एक वास्तविक तथ्य है—कि अन्तरात्मागण ऐसी अनेक सत्ताएँ नहीं हैं, जो पूर्ण रूप से एक-दूसरी से पृथक हों, उनमें परस्पर कोई सम्बन्ध न हो, पूर्ण स्वतंत्र और अपने आप में परिपूर्ण हों और उनमें से प्रत्येक अन्तरात्मा जब और जैसे चाहे, तब और तैसे आता-जाता हो। बल्कि इसके विपरीत, अन्तरात्मा किसी गुप्त सादृश्य के अनुसार दल या परिवार बना लेते हैं और जब वे नीचे उतरते हैं, तब प्रायः ही एक साथ उतरते हैं। एक पुकार होती है, मानों एक घंटी बजती है, जो यह सूचित करती है कि समय हो गया है और फिर वे सब नीचे की ओर दौड़ पड़ते हैं। और ऐसा भी हो सकता है कि नीचे की ओर दौड़ते समय कोई हृत्पुरुष जिस यंत्र को, वाहन को अपने रहने के लिए पसन्द करता है, उसके विषय में बहुत अधिक सावधान न हो, अपनी पसन्दगी का विशेष ख़्याल न करे; जो कोई आधार सामने, सबसे समीप हो और साधारणतः उसके कार्य के उपयुक्त हो, बस, उसीको ग्रहण कर ले और आगे बढ़े। वह इन सबको एक दुःसाहसिक कार्य के रूप में ग्रहण करता है और उसे युद्ध में तथा उस वीरत्व में आनन्द आता है, जो वीरत्व विजय में तभी रस पाता है, जब कि

कठोर युद्ध करने के बाद प्राप्त हो। यही कारण है कि अक्सर हम मनुष्य की आन्तर सत्ता और उसके पार्थिव आवास के बीच, उसके अन्तरात्मा और उसके बाहरी स्वभाव और भौतिक प्रकृति के बीच बहुत अधिक विभेद–असमानता देखते हैं। पर इस चुनाव का भी एक अर्थ है, प्रतिकूल अवस्थाओं को उपयोग में लाने का भी एक तात्पर्य है; इस पागलपन में भी एक पद्धति काम करती है।

जब हम इस बात पर ध्यान देंगे कि इस सृष्टि का उद्देश्य क्या है और इसमें चैत्य चेतना का क्या कार्य है, तो फिर अन्तरात्माओं की यह दलबन्दी स्वाभाविक और आवश्यक प्रतीत होगी। क्योंकि यहाँ पर केवल व्यक्तिगत युक्ति का, एक व्यष्टिभावापन्न हृत्पुरुष की अकेली उन्नति और विकास और परिपूर्णता का प्रश्न नहीं है। अन्तरात्मा निश्चेतन विश्व के अन्दर एक ज्योतिर्मय बिन्दु है और इसका कार्य है, इस विश्व को, कम से कम इसके एक प्रतिनिधि अंश को सचेतन बनाना। हृत्पुरुष की क्रिया पृथ्वी पर एक नयी सृष्टि करने का, पार्थिव चेतना को रूपांतरित करने का, एक दिव्य जाति को आविर्भूत करने और उसे बढ़ाने का, भगवान और उनकी लीला को अभिव्यक्ति और मूर्तिमान करने का साधन है। अन्तरात्मा परम प्रभु के योद्धा, लीला सहचर और प्रिय पात्र हैं। लीला के उद्देश्य से उन्हें एक साथ मिलकर रहना ही होगा, एक साथ चलना-फिरना और कार्य करना ही होगा; उन्हें सैनिकों की तरह कंपनियाँ, रेज़ीमेंट और बटैलियन बनाकर या संगीतज्ञों की तरह दलों, मंडलियों और स्वर-संगतियों की रचना करके रहना ही होगा।

* * *

आस्था कहते हैं उस वस्तु में विश्वास करने को, जिसे हम देख नहीं सकते, और इसका पुरुस्कार होता है उस वस्तु का दर्शन जिसमें हम विश्वास करते हैं।

* * *

——सन्त आगस्तीन

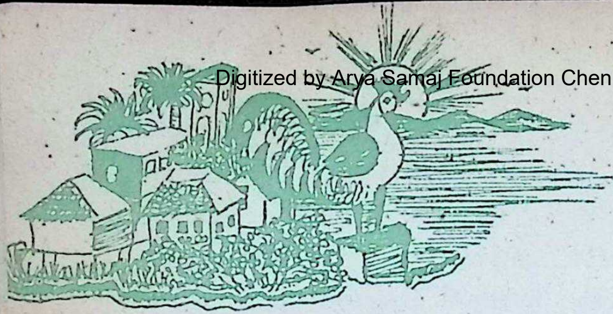

डॉ. हरिवंशराय बच्चन

●

गत्यवरोध

बीतती जब रात, करवट पवन लेता,
गगन की सब तारिकाएँ मोड़ लेतीं बाग,
उदयोन्मुखी रवि की बाल-किरणें
दौड़ ज्योतिर्मान करतीं
क्षितिज पर पूरब दिशा का द्वार,
मुर्ग़ा मुंडेर पर चढ़ तिमिर को ललकारता,
पर वह न मुड़कर देखता,
धर पाँव सिर पर भागता,
फटकार कर पर जाग दल के दल विहग
कल्लोल से भूगोल और खगोल भरते
जागकर सपने निशा के
चाहते होना दिवा-साकार, युग-शृंगार।
कैसा यह सवेरा!
खींच-सी ली गयी बरबस
रात की ही पौर जैसे और आगे,—
कुढ़न-कुंठा-सा कुहासा,
पवन का दम घुट रहा-सा,
धुंध का चौफेर घेरा,
सूर्य पर चढ़कर किसी ने
दाब-जैसे उसे नीचे को दिया है,
दिये-जैसा धुँए से वह घिरा,
गहरे कुएँ में है दिपदिपाता,
स्वयं अपनी साँस खाता।
एक घुग्घ, पच्छिमी छाया-छपे बन के

गिरे, बिखरे परों को खोंस
बैठा है कदम की डाल पर,
गोले दृगों पर धूप का चश्मा लगाकर—
प्रात का अस्तित्व अस्वीकार करने के लिए
पूरी तरह तैयार होकर।
और, घुघुआता शुरू उसने किया है—
गुरू उसका वेणुवादक वही
जिसकी जादुई धुन पर नगर के
सभी चूहे निकल आये थे बिलों से—
गुरू गुड़ था किंतु चेला शकर निकला—
साँप अपनी बाँबियों को छोड़ बाहर आ गये हैं,
भूख से मानो बहुत दिन के सताये,
और जल्दी में, अँधरे में, उन्होंने
रात में फिरती छछूंदर के दलों को धर दबाया है—
निगलकर हड़बड़ी में कुछ
परम गति प्राप्त करने जा रहे हैं,
औ' जिन्होंने अचकचाकर,
भूल अपनी भाँप मुँह फैला दिया था,
वे नयन की जोत खोकर,
पेट धरती से रगड़ते,
राह अपनी बाँबियों की ढूंढते हैं,
किंतु ज़्यादातर छछूंदर छटपटाती-अधमरी
मुंह में दबाये हुए
किंकर्तव्यमूढ़ बने पड़े हैं;
और घुग्घू को नहीं मालूम
वह अपने शिकारी या शिकारों को
समय के अंध गत्यवरोध से कैसे निकाले,
किस तरह उनको बचा ले।

डॉ. रामधारीसिंह दिनकर

योग-विद्या: शरीर और आत्मा के समन्वय का विज्ञान

विश्वसत्ता के मूलाधार में विद्यमान अद्वैत चिद्पुरुष के भीतर देह और आत्मा का समन्वय और एकाकार ही योग है: देह और अनुभवकर्ता देही आत्मा की बिछुड़न ही आजकी सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। क्या प्राचीन योग-विद्या में, आज के मनुष्य को, देह और आत्मा का समन्वित जीवन इस पृथ्वी पर जीने की उसकी आन्तर पुकार का उत्तर मिल सकता है? इसके लिए भारत में राष्ट्रीय प्रयोगशाला खुलनी चाहिए। विश्व-शांति शिखर-सम्मेलनों से नहीं होगी, मनुष्य के भीतर के परम शांति के केन्द्र की खोज द्वारा ही वह सम्भव है, काश श्री नेहरू और वर्तमान जगत के राज-पुरुष इस तथ्य को जान सकते।

योग शब्द युज् धातु से बना है, जिसका अर्थ जोड़ना होता है। इस विद्या का योग नाम इसलिए पड़ा, कि इसके द्वारा साधक शरीर को आत्मा से जोड़ते हैं एवं वैयक्तिक आत्मा को विश्वात्मा से एकाकार करते हैं। योगी योग-क्रिया के द्वारा भावों और उद्वेगों को शांत एवं मांसपेशियों, स्नायुओं और धमनियों की क्रियाओं को मन के अनुशासन में नियोजित करता है। अंत में, मन के विलय के द्वारा योग आत्मा की मुक्ति का भी कारण होता है।

भारत के बाहर भारत की सबसे बड़ी विशेषता, शायद, योग ही समझी जाती है। जबसे मनोवैज्ञानिकों को यह पता चला है कि योग की प्रक्रिया मनोविज्ञान की प्रक्रिया से मिलती-जुलती है, तबसे आधुनिक विश्व में भी योग की प्रतिष्ठा बहुत अधिक हो गयी है।

योग की प्रक्रिया, बहुत दूर तक, मनोविज्ञान की प्रक्रिया है, यह सत्य है। भारतीय परंपरा में योग चित्तवृत्ति के निरोध को कहते हैं; "योगः चित्तवृत्ति-निरोधः"।

योग शरीर की क्रिया से मन को नियंत्रित करने का उपदेश देता है। वह आत्मा की गहराई का संधान करने वाली विद्या का नाम है। वह हलचल और प्रलोभनों के बीच मन को स्थिर रखने की कला है। मनोविज्ञान ने केवल यह सिद्ध किया है कि भावचेतन मन का अस्तित्व है। योग अवचेतन मन तक जाने का मार्ग निर्धारित करता है। किंतु, मन के विलय द्वारा जब योग मुक्ति का कारण हो उठता है, तब वह मनोविज्ञान नहीं रह जाता, शुद्ध धर्म बन जाता है। योग से निसर्गोत्तर शक्तियाँ भी जाग्रत होती हैं।

योग की मनोविज्ञान से समता एक अन्य प्रकार से भी देखी जा सकती है। हम जो कुछ भी करते या सोचते हैं, उन कर्मों और विचारों का प्रभाव हमारी आत्मा पर पड़ता जाता है। यही प्रभाव संस्कार है, जिसकी परतें हमारी आत्मा पर जमी हुई हैं। ये संस्कार विचारों की प्रक्रिया से बनते हैं, कर्मों के क्षरण से बनते हैं, इंद्रियों की आसक्ति और वासनाओं की तरंग से उत्पन्न होते हैं। आत्मा पर इन्हीं संस्कारों की परतें जम जाने के कारण मनुष्य आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर पाता। योगी योग के द्वारा इन परतों को तोड़ कर अपने आत्मरूप का साक्षात्कार करता है। मनोविज्ञान का मत है कि, यद्यपि, हम पशु-जीवन से निकल कर मनुष्य हो गये हैं, किन्तु, हमारी पाशविक प्रेरणाएँ अभी समाप्त नहीं हुई हैं। वे हमारे अवचेतन मन में अब भी पुंजीभूत हैं और हमारी असावधानता में वे अचानक भड़क उठती हैं। मनोविज्ञान इसे आदिम जीवन की प्रेरणा (‘Primordial life-urges) कहता है। किंतु, विचार कर देखिये, तो आदिम जीवन की यह प्रच्छन्न प्रेरणा अथवा जन्म-जात प्रवृत्तियों (Instinctive Impulses) की यह शक्ति हमारे अतीत का ही संस्कार है। योग इसी संस्कार के बन्धन से मुक्ति का उपाय है।

मनोविज्ञान जब मन की अतल गहराई में उतरता है, तब भाषा असमर्थ हो जाती है। इसलिए, मनोवैज्ञानिकों ने कई नये शब्द गढ़े हैं, जिनके अर्थ सामान्य भाषा में समझे नहीं जा सकते, जैसे लिबिडो, ईरोज़, ओडिपस कंप्लेक्स इत्यादि। योग के भी कितने ही पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं, जिनकी व्याख्या सामान्य भाषा में नहीं की जा कती। उनके सही अर्थों का ज्ञान केवल उनके पास है, जो योग के अभ्यासी हैं। कुंडलिनी, षट-चक्र, इडा, पिंगला, सुषुम्ना, युगनद्ध आदि ऐसे ही शब्द हैं।

योग की परंपरा प्राग्वैदिक परंपरा है। आर्यों ने इस विद्या का ज्ञान भारत में आ कर प्राप्त किया। पीछे उन्होंने इस विद्या का वर्धन और विकास भी किया। योगविधि,

[शेष पृष्ठ २५ पर]

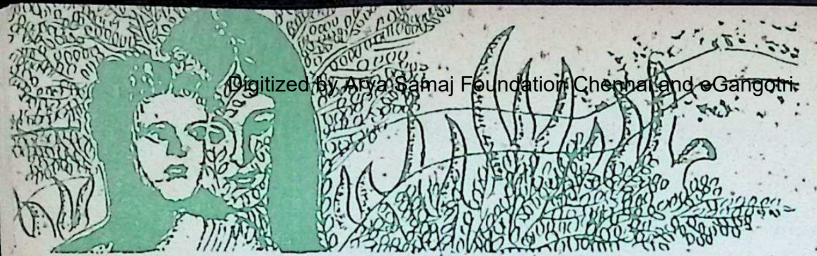

राजेन्द्रप्रसाद सिंह

○

शीर्षक सुपुर्द

[आयतन: १ : संदर्भ: १५]

अरी, ओरी...ओ निठुर संकल्पिता मेरी !
मैं छोड़कर तुमको चला, जैसे भिखारी
पुण्य वेदी पर चढ़ा नैवेद्य जाये छोड़,
ओ ! मैं जा रहा, सूखी उठी दो आँख से
उड़ते हुए रीते जलद–सा मौन, निःसन्देश,–
मैं जा रहा किस देश,–मत पूछो;
यों दूर से चुपचाप मत पूछो !
देखो,–– अनोखी राह दौड़ी जा रही है वेग से
जिस पर कभी पद-चिह्न का कोई महत्व नहीं,
अनेकों पीढ़ियाँ जिस पर घिरीं अनिवार घेरों में,
सभी निज मंजिलों पर छूट जातीं दाहिने,-बायें !
अनोखी राह दौड़ी जा रही यह, काल– नदिया सी
मुहाने तक पहुँचकर फिर उसे उद्गम बनाने को,
–अनोखी राह दौड़ी जा रही यह वेग से.....,
मैं जा रहा इस वेग से, टूटी हुई वरमाल–सा निर्मोह,
डूबे जा रहे बिखरी पँखुरियों में निढाल प्रवाल-द्वीप अनेक,
पीती जा रही हर लहर मेरे मोतियों का शबनमी सागर,
समर्पित मैं....अनोखी वेगवन्ती राह को..........,
पर कौन संगम (?) किस दियारे (??)
या पुलिन (???) के लिए–मत पूछो !
तुम्हारा प्रश्न अनपूछा बने उत्तर
तुम्हारे सजल होठों पर,–विमन दो नयन सिहरे गात,
जुड़ते हाथ, मुक्त चरण, रुँधे अन्तःकरण पर बने उत्तर;
मर्म यह गूँजे रहस्यातीतः– ठीक है, हम जी रहे हैं तो–

अखंड प्रमाण है धीरज सुरक्षित प्यार का,
(वह मिले, फूले-फले या अनमिला रह जाय
.....किन्तु प्रमाण है धीरज सुरक्षित प्यार का !)
इसलिए अपने-पराये बन्द द्वारों की असंग सुरंग में
बस नहीं पाता मुसाफिर एक भी स्वीकार का !
मर्म यह गूंजे रहस्यातीत पर पूछो नहीं–
मैं द्वार दोनों तोड़कर किस ओर बहता जा रहा,–
यह तो न पूछो जी !
तुम्हारा प्रश्न अनपूछा बने उत्तर तुम्हारे बोध में,
आधान में,....अनुहास में !
अनुभव जगे निर्बन्ध, तथ्यातीतः–
मैं तो असंग सुरंग के बाहर चला, बहता हुआ
इस वेगवन्ती धार पर, जो दाहिने,–बायें...
सभी मंजिल छुड़ा देगी,....छुड़ा देगी !
–छुड़ा कर लाल सी ममता-विभा का दूधिया आंचल,
–छुड़ा कर स्नेह के तट का भरोसा-भरा गंगाजल,
–हटा कर स्वजनता की छाँह से,
–चुप छीन कर हर आसरे की बाँह से,
–कर विमुख,...दूर बिसूरती आराधना से,
–आह ! बिछुड़ा कर सिंदूरी प्रीति की भी साधना से ,
–ज्वार-लहरों में बचाती जल-परी के जाल से,...
सब मंजिलें मेरी छुड़ा देगी,.....छुड़ा देगी !
(सभी तो छूट जाएँगी सुपरिचित मूल्य ले-लेकर !)
मगर मैं तो अमिट स्वीकार का राही ऽऽऽ–
सदा बहता रहूँगा वेग में........
कैसे विसर्जन के लिए; यह सब न पूछो जी !
अरी, ओरी, ओ निठुर संकल्पिता मेरी !
हठीले मौन से मजबूर यों न करो,
करो बेचैन मत इतना...., अरे इतना..., अरे इतना...

13 JUL 1962
वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

कि खुद ही बोल दूं :—उफ़ ! देश... संगम... दियारा....
वह पुलिन...., हाँ वैसे ही विसर्जन के लिए............
जिसमें काल की नदिया महासागर बने,
डूबे रहें ये विगत-आगत-अनागत के कूल;
मैं नीरंग पुतला प्यार का,
हर देश के रंगीन मेघ पहन सकूं,
सारी दिशाओं में छिटकती दामिनी जर्जर करे मन को,
गिरा दे बाण-शैया पर,
हृदय फट जाय मेरा वंचनाओं से गले मिलकर,
विवशता में चिटख कर चिन्दियाँ उड़ जायँ प्राणों की,
सदा विश्वास की प्यासी उदासिन आत्मा भी
हो चले चिथ्थड़े....हो च्चले चिथ्थड़े SSS !
सुनो, फिर भी बची दो साँस से मैं
प्रक्रिया का मर्म गाता रहूँ,
अन्तिम धड़कनों में भी बजे इतिहास की अवचेतना,
मैं देश-बन्दी काल को चेतन बनाता रहूँ !
तब भी---हाय !
ओरी ओ, निठुर संकल्पिता मेरी !
नहीं क्या आ सकोगी पास ?
---त SS ब....मुझ खोखले हिम-खंड को
पिघला हिरण्य बना सकेगी—हाय !
किसके चुम्बनों की सामधेनी-सी अनोखी प्यास ?
ओरी, ओ निठुर...संकल्पिता....मेरी......!

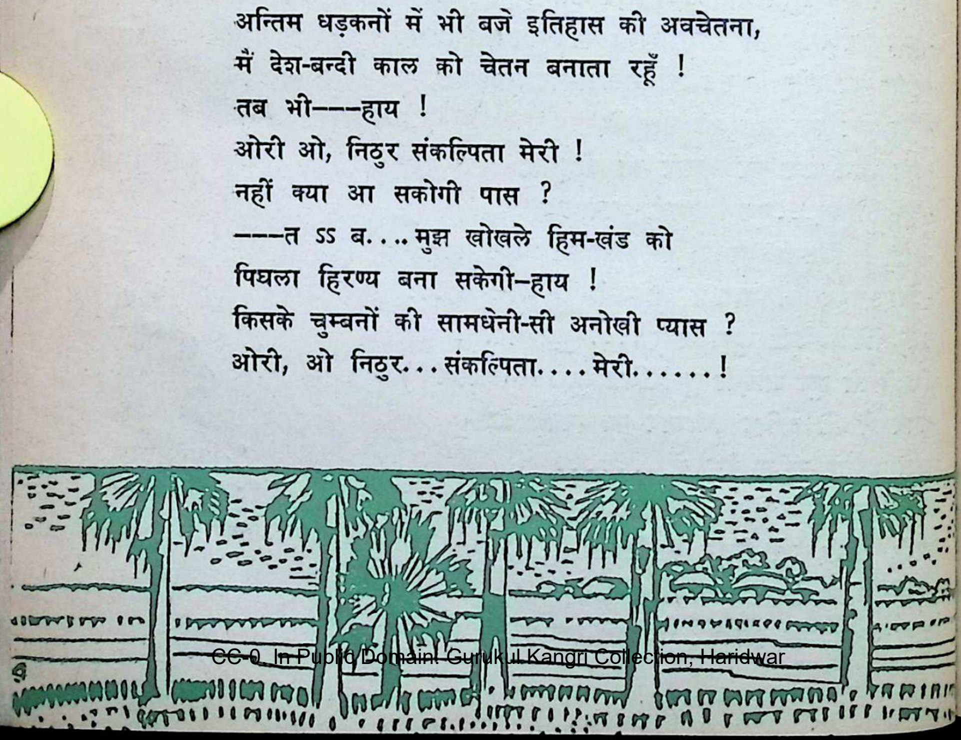

[पृष्ठ २१ का शेषांश]

ध्यान-योग और अध्यात्म योग, ये शब्द उपनिषदों में कई बार आये हैं। योग का निरूपण दर्शन की पद्धति के रूप में पतंजलि ने किया। उनके ग्रंथ का नाम योगदर्शन है, जो योग का अत्यंत प्रामाणिक आख्यान है। पतंजलि के मतानुसार चित्त को ईश्वर पर पूर्णतया केंद्रित किये बिना, न तो ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है, न उनकी कृपा ही मिल सकती है। पतंजलि मानते हैं कि सांसारिक वासनाओं पर विजय नहीं मिलने से चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं होता, न योग की स्थिति ही उत्पन्न होती है। अतएव, योग वैराग्य-साधना का पन्थ है, अत्यंत कठोर कृच्छाचार का मार्ग है। भारतीय साधना में वैराग्य का जो अपरिमित महत्व देखा जाता है, उसका एक प्रधान कारण इस देश में प्रचलित योगाचार था।

योग और सांख्य, भारतीय दर्शन की दोनों पद्धतियाँ, प्रायः एक ही हैं। दोनों में भेद है तो यह है कि योग-दर्शन सेश्वर भी है और निरीश्वर भी। पतंजलि के योगसूत्रों में कहा गया है कि ईश्वर वह सर्वज्ञ गुरु है, जिसमें मानवी आत्मा के दोष और उसकी अपूर्णता नहीं होती और जो क्लेश, कर्म-विपाक तथा मलिन संस्कारों के स्पर्श से सर्वथा मुक्त है। किंतु, योगी ऐसे लोग भी हुए हैं, जिनमें ईश्वर-भक्ति नहीं थी। योग-साधना ईश्वर की कल्पना के बिना भी की जाती है। इसी कारण, कई स्थानों पर योग को निरीश्वर सांख्य भी कहा गया है। और इसी निरीश्वर योगसाधना का प्रतिपादन महावीर और बुद्ध के अनुयायियों ने किया है।

पतंजलि का योग तो राजयोग कहलाता है, जिसका सारा जोर मानसिक क्रियाओं के नियंत्रण पर, चित्तवृत्तियों के निरोध पर है। किंतु, योग की शारीरिक क्रियाओं का अतिविकास हठयोग में हुआ। हठयोग का अर्थ 'बलात् योग' होता है। राजयोगी वे होते हैं, जिनकी साधना की प्रक्रिया मनोविज्ञान की प्रक्रिया है, अर्थात् जो मन को ही समेट कर उसे स्थिर करते, अथवा किसी एक दिशा की ओर ले जाते हैं। किंतु, हठयोगी शारीरिक क्रियाओं (रेचक, पूरक, कुंभक, नेती, धोती आदि) के द्वारा मन पर बलपूर्वक अधिकार प्राप्त करता है। योग के जो असंख्य चमत्कार सुने जाते हैं, वे राजयोग नहीं, इसी हठयोग के अंग हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि हिंदू साधकों का कोई भी संप्रदाय ऐसा नहीं है, जिसका राजयोग में थोड़ा या बहुत विश्वास नहीं हो। किंतु, शैव और शाक्त, ये दो संप्रदाय ऐसे हुए, जिनमें हठयोग का बहुत अधिक सम्मान था। और शाक्त यानी तंत्रमार्गी, चूंकि यह मान कर चले थे कि साधना में भक्ति से भी अधिक महत्व, साधना की विधि का है, इसलिए हठयोग का सर्वाधिक प्रचलन भी तंत्रमार्ग में ही हुआ।

जेन डनलेप

मैंने आठ घंटों में करोड़ों वर्षों को जिया

भौतिक उपलब्धियों की पराकाष्ठा पर पहुँच कर आज मनुष्य इस जीवन-जगत की सीमाओं और संघर्षों से इतना हार-थक गया है, कि वह वैदिक ऋषियों की सोम-सुरा जैसी ही किसी ऐसी जड़ी-बूटी की खोज में है, जिसका सेवन कर वह सौन्दर्य, प्रेम, आनंद और शान्ति के किसी अखण्ड चेतना-स्तर पर पहुँच सके। महान विचार-स्वामी एलडुस हक्सले के 'मेस्केलीन' के प्रयोग के बाद, इस दिशा को नवीनतम ड्रग है LSD-25, जिसका सेवन करके प्रस्तुत लेख की लेखिका श्रीमती जेन डनलेप ने, देश–काल की सीमाओं को लांघ कर, केवल आठ घंटों में विश्व की करोड़ों वर्ष-व्यापी विकास-यात्रा को स्वयम् अपने भीतर जिया और अनुभव किया। उनके उस चमत्कारिक अनुभव की कहानी यहां आप उन्हीं के मुँह से सुनिये।

चित्र : पवनकुमार : वय १४ वर्ष

..... और आखिर वह दिन आ ही पहुँचा, २४ अक्तूबर १९५७, जिसकी प्रतीक्षा एक अर्से से मैं अत्यंत उत्सुकता के साथ कर रही थी। मेरी सहेली हेलन भी मेरे साथ वह अद्भुत, ड्रग लेने वाली थी। और प्रयोग के समय एक ऐसे मनोवैज्ञानिक का हमारे साथ रहना अनिवार्य था, जो इस पदार्थ पर शोध-कार्य कर चुका हो। यह प्रयोग किसी ऐसे स्थान पर ही हो सकता था, जो अस्पताल-सा हो। डा. स्नो ने अपनी देखरेख में इस कार्य को सम्पन्न कराने का जिम्मा लिया था और अपना घर भी

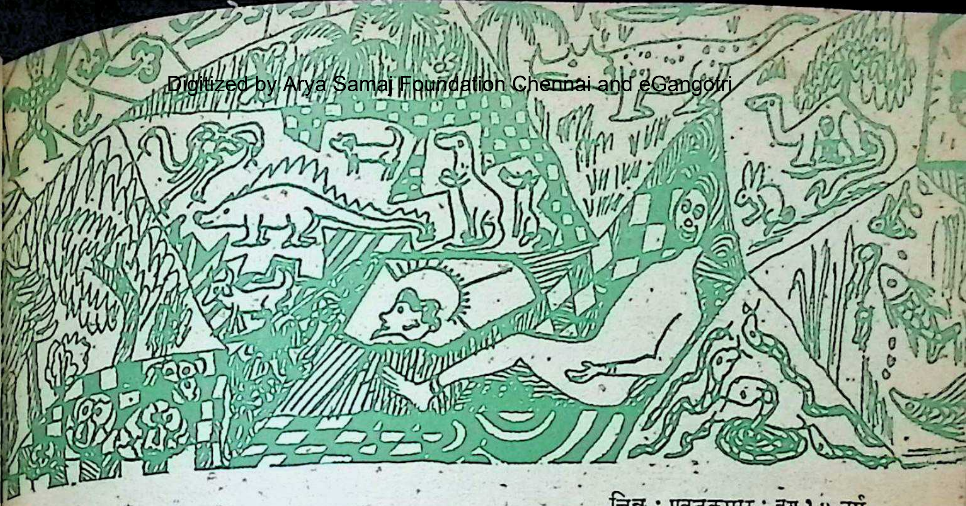

चित्र : पवनकुमार : वय १४ वर्ष.

उन्होंने इसके लिए प्रस्तुत किया। मुझे ख़ुशी थी कि किसी अस्पताल के शुष्क वातावरण में यह प्रयोग न हो कर डा. स्नो के ख़ुशनुमा बंगले में हो सकेगा।

बड़ी प्रतीक्षा के बाद जब डा. स्नो से समय निश्चित हो सका, तो धड़कते दिल के साथ मैं वहाँ पहुँची। हेलन और श्रीमती स्नो तो तुरन्त ही संगीत के रिकार्ड चुनने में लग गयीं और मैं डा. स्नो के कमरे में उनसे मिलने पहुँची। उनकी बुद्धिमत्ता और कौशल से तो अच्छी तरह वाक़िफ़ थी ही, उनकी सहृदयता और मानवीय गुणों ने भी मुझ पर अच्छा प्रभाव डाला।

दस बजे तक युनिवर्सिटी रिसर्च ग्रुप एल. एस. डी. की आवश्यक मात्रा लेकर आ पहुँचा। मुझे ११० माइक्रोग्राम इन्ट्रा-मस्क्युलर इन्जेक्शन द्वारा दिये गये। चूंकि हेलन मुझसे कुछ कमज़ोर थी, उसे १०० माइक्रोग्राम ही दिये गये। इसके बाद मैं तुरन्त ही डा. स्नो की बैठक में चली गयी और आराम से बैठ गयी। मुझे आशा थी कि आध घंटे तक तो ड्रग का कोई असर नहीं होगा; किन्तु इन्जेक्शन लेने के दस मिनट बाद ही मुझ पर एक नशा सा छाने लगा। मैंने नोट्स लिखने का प्रयास किया, लेकिन मेरी उंगलियाँ मुझे बहुत बड़ी दिखायी देने लगीं और उनसे किसी तरह काम लेना मुश्किल जान पड़ा। हेलन मेरे पास ही आकर एक दूसरी कुर्सी पर लुढ़क गयी। उसका चेहरा एक बड़े से सफ़ेद लेम्पशेड द्वारा मेरी दृष्टि से ओझल था।

कुछ ही देर में मुझे ऐसा लगा मानों मैं एक परी बन गयी हूँ और अपनी बड़ी-बड़ी सफ़ेद पंखों से शून्य में तैर रही हूँ। मेरे अंग-अंग में ख़ुशी की एक लहर दौड़ रही थी। परन्तु शीघ्र ही मेरी भावनाएँ इतनी तीव्र हो गयीं और इस विद्युत

गति से बदलने लगीं कि मैं भयभीत हो उठी। ऐसा लगता था मानों मैं किसी भयानक भँवरजाल में फँस गयी हूँ और कुछ भी करने को असमर्थ हूँ। मेरे बचाव का एक ही उपाय है कि डा. स्नो मेरे लिए प्रार्थना करें। मैंने उनसे ऐसा करने को कई बार कहा, लेकिन वे इस समय विशुद्ध वैज्ञानिक थे और हालांकि वे एक धर्मप्राण व्यक्ति हैं, फिर भी उन्होंने मेरे लिए कोई प्रार्थना नहीं की। आखिर मुझे स्वयं ही अपने लिए प्रार्थना करनी पड़ी, जिससे मुझे काफी राहत मिली। परन्तु इससे मेरा दिल डा. स्नो के प्रति रोष और घृणा से भर गया।

इसके बाद तुरंत ही मुझे संगीत सुनने की तीव्र उत्कंठा हुई और वह भी उसी क्षण! एक सेकंड का विलम्ब भी मुझे वर्दाश्त नहीं था। जब संगीत बजाया गया, तो मुझे वह अपूर्व सुन्दर लगा। रिकार्डें वाद्य संगीत की थीं, जिनमें से प्रथम थी– 'नन बट दि लोनली हार्ट'। मुझे लगा कि एकाकीपन सर्वत्र है और संसार में प्रत्येक व्यक्ति इसे अनुभव करता है।

उसी क्षण मैं प्रत्येक व्यक्ति बन गयी, और एक सेकंड बाद सभी जीवित व मृत व्यक्तियों की समष्टि। संसार के समस्त एकाकीपन से मैं संत्रस्त हो उठी और पीड़ा से कराहने लगी। जो संगीत बज रहा था वह करुण था; उसकी उदासी मुझे घेर रही थी। मुझे एडना सेंट विन्सेंट की 'रिनेसां' कविता सुनने की तीव्र उत्कंठा हुई, किन्तु डा. स्नो और उनकी पत्नी को वहुत खोजने पर भी वह नहीं मिली।

और तब 'एवा मारिया' की मधुर ध्वनि ने मुझे रसविभोर कर दिया और मैं ढेरों आँसू बहाने लगी। माँ मरियम ने पीड़ितों को सांत्वना दी थी और संसार के कष्ट व एकाकीपन को दूर करने का प्रयास किया था। प्रेम से मैं सरावोर हो उठी–उस प्रेम से जो माँ मरियम ने सभी को मुक्तहस्त बांटा था, उस समग्र प्रेम से जिसको संसार ने अव तक अनुभव किया था। किन्तु यह प्रेम दुख अथवा एकाकीपन से भी अधिक कष्टकर था। मेरे शरीर का प्रत्येक कोण इससे व्यथित हो उठा और जव इस पीड़ा को अधिक सहने में मैं असमर्थ हो उठी, तो मैंने स्वयं को फिर एक परी बना पाया। उसके पंख अत्यंत शुभ्र और सर्वांग सुन्दर थे और वह स्वर्ग की ओर उड़ी जा रही थी। संगीत वैसे तो सारा दिन बजता रहा, लेकिन इसके बाद मैं कुछ भी सुन नहीं पायी।

एकाएक बड़ी तेज़ी के साथ दृश्य परिवर्तन होने लगा। मेरे सम्मुख दांते के 'इनफर्नो' और बाइबल में वर्णित

नर्क के चित्र अपनी समस्त भयानकता के साथ उपस्थित थे—अपार कष्ट से चीखते-कराहते मनुष्य तथा इतर प्राणी जो आग की भीषण लपटों और भयंकर सांपों से स्वयं को बचाने के लिए छटपटा रहे थे। मौत से ये सभी जीव—मनुष्य सर्प, पशु, प्राणी—जूझ रहे थे, लेकिन मौत उन्हें मिल नहीं रही थी।

क्षण भर भी शांति पाये बिना शाम को पांच बजे तक मैं अपार वेदना से चीखती-चिल्लाती रही। अपने पर मेरा ज़रा भी वश नहीं था। जब मैं रोने और सिसकियाँ भरने लगी, तो डा. स्नो ने मेरे पास मुंह पोंछने के रूमाल का बक्स ला कर रख दिया। मुझे तब उसीकी परम आवश्यकता थी।

नर्क की यातनाओं और असह्य पीड़ा से मेरा दम घुटने लगा था। सांस भी मुझे बड़ी कठिनाई से आ रही थी। और तब, मेरे मानस पट पर से अंधेरा एकाएक हट गया और मैंन स्वयं को सूखी ज़मीन पर आनेवाली प्रथम मत्स्य के रूप में देखा। जिस तालाब में मैं पड़ी थी वह सूख गया था और गर्म हवाएँ तथा लू से मेरा तन झुलस रहा था। ज़मीन पथरीली और सरसों की तरह पीली थी—चारों ओर कहीं कोई पौधा या जीवन के लक्षण दिखायी नही पड़ रहे थे। हम करोड़ों मछलियाँ सूखी ज़मीन पर तड़फ-तड़फ कर मर गयीं। 'मृत्यु' की पीड़ा का मैंने तब अनुभव किया, मेरी सांस घुटने लगी थी।

सांस लेने की मेरी कठिनाई को देखकर डा. स्नो घबड़ा गये और मेरे क़रीब आकर उन्होंने मुझे एक कागज़ के थैले में सांस भर कर उसी सांस को फिर से लेने को कहा ताकि अपनी सांस का कार्बन डायआक्साइड सूंघ कर मैं 'अल्कालोसिस' से बच सकूं। किन्तु मुझे उनका मेरे करीब आना न तो अच्छा लगा, और न उनकी कोई बात ही मैंने सुनी। जिस कल्पना-लोक मैं में विहार कर रही थी, वहाँ पहुँच कर अपना व्यक्तित्व मैं बिलकुल भूल गयी थी।

जब 'मृत्यु' से मैं लौट आयी तो मैंने अपने को एक समुद्र तट पर पड़ा पाया। बड़ी-बड़ी लहरें किनारे से टकरा रही थीं और अपने साथ छोटी-छोटी सीपें तथा एक कोषवाले व कुछ कोषवाले जीव बहा कर ला रही थीं। मैं उस समय एक कोषीय एमीबा थी और हृदय की तरह धड़कन कर रही थी। फिर मुझे ऐसा लगा मानों मैं फट रही हूँ-मेरा एक कोष करोड़ों कोष बन गये और मैं वह सभी सूक्ष्म समुद्री जीव बन गयी जिन्होंने पहली बार ज़मीन पर रहना सीखा था। फिर मैंने स्वयं को वह प्रथम बीज बनते देखा, जो पथरीली

ज़मीन में अंकुरित होने के लिए प्रयास कर रहा था। मैं वह करोड़ बीज बनी, जो पौधे की शक्ल में बढ़ने-फैलने के लिए लालायित थे। फिर मैं एक जड़ बनी, जो चट्टान फोड़ कर बाहर निकलना चाहती थी। शीघ्र ही मैं वह सभी जड़ें थी, जो पौधों के रूप में विकास की इच्छुक थीं। और तब मैंने स्वयं को प्रथम पौधा बनते देखा, एक छोटी सी टहनी जिसके सिरे पर हरितिमा थी। यह मेरे लिए, प्रथम जीवन के लिए, आशा का सन्देश था; इससे मुझे संघर्षरत रहने का संवल मिला।

तब, ऊपर आकाश में मुझ एक रोशनी दिखायी पड़ी, सितारे की शक्ल के एक छोटे से सूरज की रोशनी। उस तक पहुँचने के लिए मैं निरन्तर संघर्षशील थी– वह प्रकाश ही ईश्वर था, जिस तक पहुँचना मेरे लिए अनिवार्य और जीवन का लक्ष्य था। जीवन के लिए, ईश्वर तक पहुँचने के लिए, प्रत्येक जीव और पौधा प्रयत्न कर रहा था, संघर्षशील था और यह संघर्ष वड़ा कठिन और अविराम चल रहा था। जीवनशक्ति जो प्रत्येक पौधे और प्राणी में कार्यरत थी, कभी न संतुष्ट होने वाली थी और उसे कभी चैन से नहीं बैठने देती थी। धरती पर जीवन का प्रादुर्भाव हुआ ही था, कुछ कोषीय जीव चट्टान पर उगने वाली घास, कुकुरमुत्ते और छोटे-छोटे पौधे उत्पन्न हुए ही थे, कि अचानक भू हुए और फिर आयीं बड़ी-बड़ी मेरी आवाज़ भूकम्प और भयानक की कर्णभेदक ध्वनि में परिवर्तित हो ग धरती पर सारा जीवन शेष हो गया इस क्रूर ध्वंस पर मैं फूट-फूट कर रोने ल

कुछ देर के लिए मैं निष्क्रिय-नि हो गयी। किन्तु हेलन को मैंने एक अज आवाज में यह कहते सुना कि खूबसूरत दुनिया कभी नहीं थी, कभी न

शीघ्र ही विद्युत्गति से मैं वारी-वा से एक कोषीय जीव, चट्टान पर उ वाली घास, बीज, जड़ें, छोटे-छोटे पौ और एक बदशक्ल जीव बन गयी मैं एक पथरीले तट पर पड़ी थी औ बड़ी मुश्किल से चट्टानों पर चढ़ने कोशिश कर रही थी।

क्षण भर में ही करोड़ों वर्ष व्यती हो गये और धरती नाना प्रकार के प्रा ऐतिहासिक प्राणियों से भर गयी सांप, छिपकलियाँ, मगरमच्छ जैसे जी भीमसरट, जल-थल दोनों पर रहने वा प्राणी और प्रत्येक आकार-प्रकार रेंगनेवाले जन्तु, घनी झाड़ियों और दल में लड़-भिड़ रहे थे। मैं इनमें से प्रत्ये जीव बारी-बारी से बनती गयी औ उन्हीं की तरह हुंकार-फुफका

घृणा और भय से अभिभूत हो, मृत्यु पर्यन्त संघर्ष कर रही थी। मैं जानती थी कि मुझे तुरन्त दूसरों को मार डालना चाहिए, नहीं तो वे मुझे मार डालेंगे। आहार के लिए मारना तो गौण था; दरअसल यह सारा क्रूर संघर्ष जीवित रहने के लिए ही था। प्रत्येक जीव अत्यंत डरावना और घृणास्पद था। उनकी हिंस्र घृणा मानो एक फुफकारता हुआ जहरीला नाग थी और उनका भय एकदम घुटानेंवाली जीवित भयंकरता।

कुछ देर के लिए मैं एक अत्यंत घृणास्पद, भौंडी शक्ल का कुरूप जीव वन गयी, जिसकी घड़ियाल की सी देह छः फुट लम्बी थी, सिर सर्प जैसा था और गर्दन वहुत लम्बी थी। अपनी पतली-सी लंबी जीभ लपलपाये मैं घृणा से फुफकार रही थी। फिर दुबारा, क्रम से मैं छिपकलियाँ, वनस्पति और सर्प वनी। दलदल और छोटी-छोटी घनी झाड़ियों में मौत की वाजी लगाते, निरन्तर संघर्षशील, चीखते-चिल्लाते, फुफकारते प्राणी मैंने देखे। उनकी गीली पूंछे, भूरी या काली खालें और अस्थिपंजर सूरज की रोशनी में चमक रहे थे। मगरमच्छ जैसी वड़ी-वड़ी पूंछें फटकारते वे अपने तेज, नुकीले दांत मुझमें गड़ा रहे थे। मैं जर्जर-देह मौत की प्रतीक्षा में घंटों फुफकारती-सिसकारती पड़ी रही। हज़ारों जीवों की अपनी ज़िन्दगी को बचाने के लिए मैं जूझ रही थी। मुझे प्रत्येक अन्य जीव से लड़ना पड़ रहा था। मेरे मुंह से झाग निकल रहे थे और हाथ-पांव व शरीर के दूसरे अंग चारों ओर झपट-जूझ रहे थे। भय और भयानकता से मैं संत्रस्त थी और सिसकियाँ भर रही थी। मेरे पास मुँह पोंछने के रूमालों का ढेर लग गया था।

क्षण भर के लिए मैं सभी भीमसरटों का राजा रेक्स बन गयी। कीचड़ से भरे तीन-चार फुट गहरे पानी में मैं खड़ी थी और मेरे चारों तरफ सभी प्रकार के भीमसरट खड़े थे। मेरी टांगे मुझे वहुत भारी लग रही थीं और शरीर का वोझ सँभाले नहीं सँभलता था। फिर मैं सभी भीमसरट और प्रत्येक भीमसरट बन गयी और अपनी बड़ी-बड़ी पूंछें फटकारती हुई मरण पर्यन्त संघर्ष कर रही थी। मृत्यु की पीड़ा का अनुभव मैंने फिर किया।

इसके बाद मैं अनेक प्रकार के प्राग-ऐतिहासिक पक्षी बन गयी। चमगादड़ों जैसी अपनी काली पांखों से खजूर की तरह के छोटे-छोटे वृक्षों पर मैं बड़ी मुश्किल से उड़ पा रही थी। धरती और आकाश दोनों ही जगह मुझे संघर्ष करना पड़ता। नीचे, ज़मीन पर मैं जानवरों पर झपटती और सब समय चीखती-चिल्लाती। बार-बार

[शेष पृष्ठ १०३ पर]

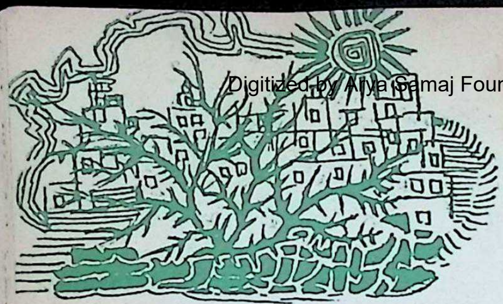

गंगाप्रसाद विमल

आमन्त्रण

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

खुले हैं द्वार किरण पार कर गयी
अन्धेरे का चक्र–अभी आ जाओ तुम स
उत्सव मनाएँ, अन्धेरा दूर भगाएँ-
दूर क्षितिज कोणों पर उगा है सूर्य
आदि सूर्य नये कोण जाग रहा
आओ, हम सब हिलमिल
स्वागत में–हाथ-हाथ मिला दें-
दूर दिशा, पर्वत के छोर निगलता जो
कुहरा–अपने भीतर तल बैठा
अपनी सहजतम अभिव्यक्ति उसे दें हम-

(२)

खंडहर हो गये
हमारे देखे–नगर, आदमी और आदिम झूठ।
वहाँ–जहाँ छोड़ गये थे हम इतिहास
आज नया 'रास' रचा रहा कोई....
टूटी ध्वनियों में जाने क्यों बीते वैभव को
पास बुला रहा–इतने पास
कि सांस सांस रहे–
जुड़े हुए तारों पर उठाने फिर
सारा आकाश–देखो जाग गया है
सोया हुआ सच....
अनावृत हो गया जो कुछ–पुनः उसे
अपने ही टूटे हुए अधूरे विश्वास से ठोंक न दें हम-
उसी के लिए–लाएँ खंडहरों से बोलती हुई आत्माएं
और फूंक दें वे शंख
शंख....शंख....शंख–

मेरे आँगन के सहनों-ओसारों पर
एक भी छत नहीं
एक भी कोठरी नहीं
और एक भी वल्ली नहीं
क्योंकि रश्मि-भूमि पर
समाधि की अल्पनाएँ बनती हैं
और ज्योति-स्तूपों पर
निर्मित हो जाता है
एक विशाल महल
जो सामने से त्रिकोणाकार
बायीं ओर से पद्म-सम्पुट-सा
दायीं ओर से सिंहासन-सा
और पीछे से चेतना के
उच्छ्वसित सागर-सा
प्रतिभासित होता है

●

[एक प्रपचवादी सूर्योदयी
नयी कविता]

श्रीकृष्ण जीवन भट्ट

●

कुण्ठित-आधुनिक + मनु = प्रणव-पुत्र

कोई जाय सागर के पार
कर ले कुण्ठित अपने आधुनिक मनु को
हो जाय शिकार अपस्मार का
पर मुझे और मेरे पीछे आने वाले
प्रणव-पुत्रों की शोभा-यात्रा को
करना है संजीवन-दान
विकसेंगे विश्वसित प्राण
होगा संदेहों का संवेदन
मिलेगा शाश्वत समाधान

धरती बनेगी ऊर्जस्वला
प्रकृति होगी रजस्वला
अवतरित होंगे सहस्रों युग-पुत्र
प्रस्फुटित होगी जिनके ललाट से
वाणी की दीप शिखा
और प्रसूत होगी युग्मों से
एक सूर्योदयी परम्परा......

●

रमेशचन्द्र शाह

कल्पना और मनोविज्ञान के नये सन्दर्भ

◆

बुद्धिवादी युग में जैसी कि एक मोटी धारणा हो गयी थी, उ तरह कल्पना कोई निरी मिथ्या और निराधार स्वप्न-मा नहीं। मनोविज्ञान के नवीनतम विकास ने यह सिद्ध किया कि 'कल्पना एक अलौकिक, संश्लेषात्मक, समस्त द्वंद्वों सामंजस्य करानेवाली महाशक्ति है।' महाकवि विलिय ब्लैक ने तो अपने अनुभव-साक्षात्कार के बल पर यहाँ त घोषित किया था, कि कल्पक जीवन और सृजन की निरन्त साधना से मनुष्य क़ब्र के इस ओर ही, सनातन अमर जीव (Life Eternal) में प्रवेश कर सकता है। पश्चिम के ह्रासोन्मु बुद्धिवाद से आतंकित हमारे आज के 'आधुनिकता' के फ़ैशन-पर भारतीय, काश, अध्ययन-मनन पूर्वक आधुनिक मनोविज्ञान इन नवीनतम उपलब्धियों से परिचित होने का प्रयत्न करते!

◆

कवि पन्तने एक स्थल पर अपनी काव्यगत मान्यताओं का विवेचन करते हुए लिखा है—"कल्पना का सत्य वस्तुगत सत्य से कहीं अधिक गहरा और ऊँचा होता है।" विज्ञान ही नहीं, साहित्य का विद्यार्थी तक कभी शंकालु हो उठता है—"कल्पना और सत्य! परस्पर विरोधी ध्रुव जो कभी पास आ ही नहीं सकते। भला कल्पना को सत्य से क्या लेना।

अभी कुछ दिन पहले 'सरस्वती' के ए बहुत पुराने अंक में एक अत्यंत मनोरंज समीक्षा पढ़ने को मिली थी—'पन्तजी छाया' पर एक उर्दूदाँ प्रोफेसर की प्रति क्रिया। उस विस्तृत लेख का सारांश था- लेखक की आपत्ति—"यह एकदम असम्भ है—कोरी कल्पना! कवि के मन की फाल उड़ानें—छाया का यह अनुभव हमा आँखों के अनुभव से बिलकूल अलग है।

पढ़कर अंग्रेजी साहित्य की एक समानान्तर घटना स्मरण हो आयी। ठीक यही शिकायत डा. जानसन को मिल्टन के "लिसिडस" से थी। तो कल्पना और सत्य के पृथक्-पृथक् सूबे होने की धारणा और उनके बीच विभाजन रेखा खींचने का प्रयत्न मात्र एक अर्द्धशिक्षित छात्र के ही मन ही भ्रांति हो, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है।

लेखक

इस प्रश्न का समाधान करायें भी तो किससे? कवि की दृष्टि में कल्पना सर्वोपरि; वैज्ञानिक के 'सत्य' में कल्पना को रत्तीभर ठौर नहीं। एक की शक्ति दूसरे की निर्बलता, अमूर्त, वायवी कल्पना के पक्ष में उठाये गये कवियों के वड़े-वड़े दावे भला प्रकृतिजयी विज्ञानवेत्ता क्यों स्वीकारने लगा? उसके लिए परियों की कहानी से आगे कल्पना का उपयोग ही क्या। भौतिक जगत् के सत्यों को समझने के लिए,–उसे याद नहीं, उसे कल्पना जैसी वचकानी चीज से कोई मदद मिली हो।

ऐसी स्थिति में मनोविज्ञान ही एकमात्र शरण है। कल्पना मन की चीज़ है और मनोविज्ञानी मन को वैज्ञानिक की दृष्टि से जाँचने-परखने वाला प्राणी। उसके निष्कर्ष कवि या भौतिक विज्ञानी के पूर्वग्रहों से मुक्त होंगे–इतनी प्रत्याशा तो उससे की ही जा सकती है।

इससे पूर्व कि हम विभिन्न मानसशास्त्रियों के मतों का तुलनात्मक अध्ययन करें, यह स्पष्ट हो जाना आवश्यक है कि 'कल्पना' से हमारा अभिप्राय क्या है? और चूँकि यहाँ पर कल्पना के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा है, अतः उसकी परिभाषा भी मनोविज्ञान के ही सूक्ष्म स्तर पर की जानी होगी।

यदि कल्पना को अंग्रेज़ी के 'इमैज़िनेशन' का पर्याय मानकर चलें, तो पहले 'इमेज़' शब्द की व्याख्या अभीष्ट होगी। साधारणतया 'इमेज़' से किसी पदार्थ के मानसिक प्रतिबिम्ब का अर्थ लिया जाता है, किंतु कल्पना-प्रक्रिया का सही रूप समझने के लिए इससे कुछ दूर जाना पड़ेगा।

वास्तव में हमारे अन्तर्मन में ऐसे अनेकानेक विम्बों (images) का प्रादुर्भाव होता रहता है, जिनका बहिर्जगत् की वस्तु से सम्बन्ध नितांत अप्रत्यक्ष होता है। सीधी बाह्य संवेदनाओं के परिणामस्वरूप तात्कालिक स्मृति, जिन असंख्य वस्तु-विम्बों से खिलवाड़ करती रहती है, उससे यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। असली 'फैंटेसी इमेज़' तो वस्तुतः हमारे 'अचेतन' मन की देन है। वस्तु-जगत् की गोचर वास्तविकता से इसका पार्थक्य सहज-संवेद्य है। अपने-आप में एक सरल इकाई न होकर यह 'इमेज़' अन्तर्मन के विविध स्तरों पर निरन्तर चल रही रासायनिक प्रक्रियाओं का संश्लिष्ट परिणाम है। सृष्टि के आदि से लेकर अब तक अवचेतन में गड़े असंख्य अनुभवों के संघटन-विघटन से उद्भूत इस 'फैंटेसी-इमेज़' में मनुष्य की सम्पूर्ण मानसिकता अपनी व्यंजना ढूंढ़ती और पाती है। इस इमेज़ की विशिष्टता के मूल में दो बातें होती हैं—एक तो उस विशेष क्षण में अवचेतन के कुछ अनुभव-समूहों की संयुक्त प्रक्रिया और दूसरे उस क्षण से प्रभावित 'सचेतन' मन की स्थिति। प्रकट ही ऐसी इमेज़ अवचेतन और सचेतन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर होगी। व्यक्तिगत विम्ब मात्र सचेतन मन की क्षणिक प्रतिक्रिया स्वरूप जन्म लेते हैं और उनका गीता के 'अजो नित्यं शाश्वतोऽयं पुराणः' के निकट सम्बन्ध इस 'फैंटेसी इमेज़' से कोई सादृश्य नहीं यहाँ पर 'शापेनहावर' का एक उद्धर अप्रासंगिक न होगा।

"अपने शाश्वत प्रागैतिहासिक सत्य से मण्डित ये मौलिक प्रतीक हर किसी के बूते के नहीं। इनकी योजना तो वही कर सकने में समर्थ है, जो 'इच्छा' और साधारण वैयक्तिकता के स्तर से बहुत ऊँचा उ चुका हो और पवित्र ज्ञान के सूक्ष्माका में विचरण कर रहा हो। यही कारण है कि ऐसे प्रतीकों के संप्रेषण की सम्भावनाएँ भी सीमित हैं। विचार तो निर्जीव पात्र हैं, जिनमें से उतना ही अर्थ निकाला जा सकता है, जितना उनमें समा सकता है, इसके विपरीत 'प्रतीक' या 'फैंटेसी इमेज़' विकासशील प्राण-तत्त्व हैं—सृजन-सामर्थ्य से परिपूर्ण, जिनकी सारगर्भिता शत-शत रूपों में प्रस्फुटित होती रहती है।"

इन प्रतीकों की त्रिविध उपादेयता पर—कला, धर्म और दर्शन सम्बन्धी—उपयोगिता पर मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

प्रसिद्ध पाश्चात्य धर्मवेत्ता एकहार्ट आत्मा को ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानकर चलते हैं। उनके अनुसार 'आत्मा' सचेतन व्यक्ति (कर्ता) और उसके अवचेतन की अगम गहनताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है। दैवी प्रकाश की किरण

अवचेतन की अन्तहीन गुहाओं के माध्यम से मानवात्मा पर टकराती है और आत्मा इस दिव्यज्ञान को प्रतीक एवं बिम्बों में परिणत करके चेतना तक संप्रेषित करती है; इस प्रकार यह आत्मा अवचेतन के इन दिव्य स्फुलिंगों की ग्रहीता एवं वाहक दोनों है। एकहार्ट के मतानुसार अवचेतन के अँधियाले में टकराने वाले इस ईश्वरीय ज्ञान की प्रतीक-परिणति ही वह दिव्यानन्द है, जिसकी अनुभूति योगियों और रहस्यवादियों को उनकी साधना की चरमावस्था में हुआ करती है।

धर्म से अलग करके देखें, तो शुद्ध मनोविज्ञान के स्तर पर उपरोक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट हो जाती है। वह यह कि 'आत्मा' अवचेतन (Collective Unconscious) की वीर्यवत्ता से इन प्रतीकों या 'फैंटेसी इमेज़ों' को जन्म देती है। बहिर्मुखी दृष्टिकोण को ये प्रतीक सर्वथा निष्प्रयोजन प्रतीत होंगे, क्योंकि भौतिक-जगत् में इनका वास्तव में कोई उपयोग नहीं। कहना न होगा कि इन प्रतीकों के उपयोग की सर्वोच्च सम्भावना कलाकार के लिए है, बशर्ते उसकी मेधा इस अभिव्यंजना को झेल सकने में समर्थ हो, दूसरी सम्भावना दार्शनिक विचार में, तथा तीसरी धर्म में निहित हो सकती है।

फ्रायड और एडलर दोनों ने अपनी-अपनी स्थापनाओं में 'कल्पना' को निकृष्ट कोटि की मानसिकशक्ति बतलाया है। कल्पना का मूल, जैसा उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है, प्रतीक में है और प्रतीक का मूल है-फ़ैंटेसी में। दोनों ही मनोविश्लेषण शास्त्री 'फैंटेसीज़' को विकारग्रस्त मानसिकता का लक्षण समझते हैं। फ्रायड की अपनी मानसिक संरचना बहिर्मुख होने के कारण, वह मानवी अन्तश्चेतना की आध्यात्मिक संभावनाओं का सही मूल्यांकन कर सकने में असमर्थ था। यौन कुण्ठाओं सम्बन्धी अपने पूर्वग्रहों से वह इस क़दर आक्रांत था, कि 'फैंटेसी' में मूलप्रवृत्तियों के अतिरिक्त भी कुछ हो सकता है—यह विचार मात्र उसे असह्य था। शैशव की अतृप्त इच्छाओं और दमित वासनाओं की परिधि से वह अपने मनोविश्लेषण-शास्त्र को कभी मुक्त न कर पाया।

दूसरी ओर एडलर की मानस-शास्त्र सम्बन्धी मान्यताओं का केंद्र, मनुष्य का अहं और उसकी अधिकार-लिप्सा है। उसका दृष्टिकोण एकदम अन्तर्मुखी है—अतः एकांगिता के दोष का भागी है। मनुष्य अपने आप में न तो पूर्णतः अन्तर्मुखी है न पूर्णतः बहिर्मुखी। अतएव उसके 'मन' की सांगोपांग व्याख्या न तो फ्रायड के द्वारा संभव थी, न एडलर के द्वारा। दोनों सिद्धांतवादियों का मुख्य लक्ष्य है—बहिर्जगत् के यथार्थ से मनुष्य के व्यक्तित्व का

[शेष पृष्ठ ६८ पर]

डॉ. अमृता भारती

●

मैं तट पर हूँ

कितना मोहक है
जलद के मुख पर
दुइज के चाँद का खिलना
कितनी भेदक है
बन्द होठों के बीच से फूटती
परवश मुस्कुराहट :
चाँद मत देखो
न तोड़ो हँसी का इन्द्रजाल
...मैं तट पर हूँ।

●

दर्पण में प्रतिबिम्बित, कम्पित
कलरव करते पंछी के कोमल पंख :
नित्यप्रति राह देखती
मेरी आँखें;
कि नदी में आज
पीपल के पत्तों का ढेर :
हवा में उड़ते
मृत पंछियों के पंख,
आहत कंठ स्वर

दर्पण अप्रतिबिम्बित है
और मैं तट पर हूँ।

* * *

मेघ-जल पीती आँखें :
धुएँ से मटमैली देह नभ की :
हथेलियों पर माथा टिकाये
आहत प्रतीक्षा खिड़की में जड़ी :
और बहुत मीठी गंध मेंहदी के फूलों की :
क्यों निराश्रित हैं सब
क्यों सिन्धु-वीचियों में
आंदोलित है
        एक जलपोत
जब नाविक नहीं है
और मैं तट पर हूँ।

* * *

क्षितिज की सीप से
नभ की गोद में ढुलक आया चन्द्रमा :
मोती बन जम गया भाव का तरल क्षण :
और दूर-दूर तक पुलिन का प्रसार।
क्षितिज मणिहीन सर्प-सा
अर्गला बन जड़ा है दिशान्तों के द्वार पर
सीप नहीं मिलती
और मैं तट पर हूँ।

* * *

चित्तरंजन बन्द्योपाध्याय

अमरीकी साहित्य में भारत

पूर्व की चेतना का चूड़ान्त उत्कर्ष भारत की आत्मा में दिखायी पड़ता है। अकेले भारत में ही धर्म, अध्यात्म और दर्शन की जितनी नानामुखी और सर्वाश्लेषी धाराएँ विसकित हुईं वैसी अन्यत्र कहीं नहीं हुईं। इसीसे भौतिक भूमा के प्रति पश्चिम ने अपनी मुक्त अन्तश्चेतना और नव-अध्यात्म की खोज में, भारत की अनेकान्तिक चिन्तना को ही आन्तर ज्ञान के गहिरतम और अचूक स्रोत के रूप में अपने भीतर अन्तर्भुक्त किया है। वैज्ञानिक विकास और भौतिक समृद्धि की चोटी पर खड़े अमरीका के साहित्य और दर्शन में, पश्चिम को भारत की यह देन स्पष्ट देखी जा सकती है।

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

अमेरिका के साथ प्राच्य का प्रत्यक्ष योगसाधन पहले-पहल हुआ चीन द्वारा। अंग्रेज़ वणिकों ने भारत का जिस तरह से शोपण किया है, ठीक उसी तरह अमेरिकी वणिकों ने चीन में व्यवसाय का जाल फैलाया। चीन को पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के साथ परिचित कराने का श्रेय अमेरिका को ही है।

चीन के साथ अमेरिका का सम्पर्क मुख्यतः व्यवसाय सम्बन्धी था। चीन की प्राचीन सभ्यता अमेरिका के जीवन पर विशेष प्रभाव न डाल सकी। भारत के साथ अमेरिका का एक लम्बे अर्से तक कोई स्वार्थ-सम्पर्क न था। फिर भी प्राचीन भारत के धर्म और दर्शन ने अमेरिका के कई विख्यात लेखकों की रचनाओं को गंभीरता के साथ प्रभावित किया है।

अमेरिकन पादरी पहले-पहल भारत आये थे सन् १८१३ में। सन् १८३० में उनकी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इन पादरियों के द्वारा अमेरिकनों को भारत के सम्बन्ध में प्रत्यक्षदर्शी विवरण मिला। उनकी धारणा हुई कि भारत राजा

नवाब, योगी, साँप, शेर, काश्मीरी शाल आदि का देश है। साधारण व्यक्ति, इन्डियन और रेड-इन्डियनों में प्रायः ही भूल कर बैठता था। इसीलिए भारतवासियों के सम्बन्ध में उनकी कोई ऊँची धारणा न थी। सन् १८९३ में विवेकानन्द जब भारत से अमेरिका गये, तब उनके मन में भारत के धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में प्रबल आग्रह का संचार हुआ। केलिफोर्निया अंचल में इतनी अधिक संख्या में योग और वेदांत शिक्षण केन्द्र स्थापित हुए कि इस 'आक्रमणात्मक हिन्दू अभियान' के विरुद्ध रक्षणशील अमेरिकनों ने बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में बहुत सी पुस्तकें लिखीं और संवादपत्रों के स्तम्भों में प्रतिवाद छपवाया।

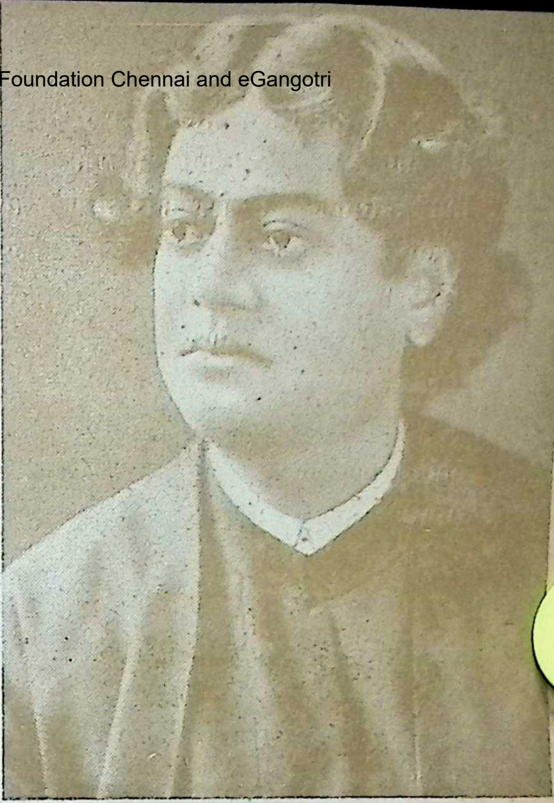

ससागरा पृथ्वी पर भारतीय सविता के
सन्देशवाहक भगवान विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका भ्रमण के पूर्व भारत की आध्यात्मिक 'चिता' ने कुछ अमेरिकी मनीषियों को आकृष्ट किया था। प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति का परिचय, मुख्यतः उन्हें अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से हुआ है। सर विलियम जोन्स, विलकिन्स, विलसन, मैक्समूलर आदि की रचनाओं को पढ़कर कुछ शिक्षित अमेरिकनों को भारत के सम्बन्ध में कुछ जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वामी विवेकानन्द के भ्रमण के फलस्वरूप अमेरिकी समाज के हर स्तर पर भारतीय दर्शन और धर्म का मूलतत्व प्रचारित हुआ। पहले से ही भारत की बात अमेरिकी साहित्य में स्थान न पाती, तो शायद ही विवेकानन्द की वाणी को इतना समादर मिलता।

अमेरिकी लेखकों और दार्शनिकों को जर्मन साहित्य के माध्यम से भी भारत को समझने की प्रेरणा मिली है। जर्मनी के आइडियालिज़्म और रोमान्टिज़्म भारतीय मिस्टिसिजम के निकट विशेष रूप से ऋणी हैं। स्लेगल ने कहा है,

'The Indians possessed a knowledge of the True God'

ईश्वर के सम्बन्ध में वास्तव में जिन्हें कुछ ज्ञान है, उनके सम्बन्ध में आग्रह होना स्वाभाविक है। शोपेनहावर ने भी भारतीय दर्शन का श्रेष्ठत्व स्वीकार करते हुए कहा है :

> The ancient Hindus may had perhaps more to say about philosophy and fundamental truths than many of our modern writers.

जर्मन विद्वानों की इन उच्छ्वास-पूर्ण प्रशंसाओं ने अमेरिकी चिंताशील लेखकों की दृष्टि को सहज में ही आकृष्ट किया। अमेरिका में योरोप के मूल भूखण्ड से जर्मन और दूसरी-दूसरी जातियाँ आयी थीं। प्राचीन भारतीय इतिहास की बातें वे भी मौखिक रूप से प्रचार करते रहते थे।

सन् १८३६ में न्यू इंगलैण्ड अंचल में कई लेखकों और दार्शनिकों ने एक नयी गोष्ठी का प्रवर्तन किया। इनके क्लब का नाम था ट्रानसेन्डेन्टालिज़्म या अतीन्द्रियवाद। जर्मन दार्शनिक कान्ट के 'क्रिटिक ऑफ प्योर रीज़न' को वे स्वीकार न कर सके। इन्द्रियानुभूति के वाहर एक दूसरे जगत के अस्तित्व के ऊपर इनका विश्वास था। अतः मिस्टिसिज़्म ने अतीन्द्रियवादियों को विशेषरूप से आकृष्ट किया।

रेल्फ वाल्डो इमर्सन

अमेरिका तब नया देश ही था। नये जन्म का कष्ट उसे वहुत तरह से भोगना पड़ा। यन्त्र शिल्प के साथ-साथ कष्ट और भी वढ़ता गया। इसी समय अमेरिका के चिंताशील व्यक्ति शांति की खोज में प्राचीन भारत के इतिहास की ओर आकृष्ट हो उठे। अतीन्द्रियवादी गोष्ठी के उल्लेखनीय सदस्य थे, रेल्फ वाल्डो इमर्सन, हेनरी थोरो न्याथलिएन हैथोर्न, थिओडर पार्कर आदि। इस गोष्ठी का मुखपत्र 'दि डायल' अमेरिका का एक अन्यतम साहित्य-पत्र था।

रेल्फ वाल्डो इमर्सन (१८०३–१८८२) थे इस गोष्ठी के प्रधान। भारतीय चिंता-धारा का प्रभाव पड़ा है, उनकी रचनाओं पर। छात्रावस्था में इमर्सन की धारणा भारत के सम्बन्ध में कोई ऊँची न थी। उनके पिता पादरी थे। इमर्सन का अभिप्राय भी पादरी होने का था। कालेज में विद्यार्थियों को स्वनिर्वाचित विषय पर लेख लिखने के लिए दिया जाता था। इमर्सन ने एक बार 'भारतीय कुसंस्कार' पर लेख लिखा। इस लेख का प्रतिपाद्य विषय था कि ग्रीष्म के कारण ही भारत इतना कुसंस्काराच्छन्न है; सादे की 'दि कर्स ऑफ केहामा' पढ़कर उन्होंने इस अद्भुत सिद्धांत को बनाया था।

कालेज छोड़ने के बाद 'एशियाटिक मिसेलेनी' और मनु के शास्त्रग्रन्थ को पढ़कर ही वे भारत के प्रति श्रद्धान्वित हो सके। फिर भी हिन्दू धर्म उनके लिए पूरी तरह से कुसंस्काराच्छन्न था। किंतु उनकी बुआ प्रायः ही हिन्दूधर्म के बारे में श्रद्धापूर्ण पत्र लिखा करती थीं। वे सर विलियम जोन्स के अनुवाद से हिन्दूधर्म और काव्यग्रंथों की उद्धृतियाँ दिया करती थीं। बुआ की चिट्ठियाँ पढ़कर उनमें भी कुछ आग्रह का संचार होने लगा। वन्धु थोरो भी इस विषय में खूब उत्साही थे। उनके पास जोन्स, विल्सन आदि की बहुत सी पुस्तकें थीं। इन सब पुस्तकों को पढ़कर इमर्सन क्रमशः भारतीय दर्शन के गुनग्राही हो उठे।

हेनरी डेविड थोरो

इसीलिए उत्तर-काल में इमर्सन की रचनाओं पर भारतीय प्रभाव गहरे रूप में पड़ा। यह सच है कि उनकी रचनाओं में सर्वत्र भारतीय चिंता-धाराओं को स्पष्ट रूप से चिह्नित नहीं किया जा सकता। उन्होंने भारतीय दर्शन के मूल तत्वों को आत्मस्थ कर अपने मनन के मुलम्मे के साथ प्रकाशित किया है। अध्यक्ष हेरम्बचन्द्र मैत्रा ने अमेरिका भ्रमण के समय वहाँ की एक पत्रिका में लिखा था : इमर्सन और प्राच्य की चिन्ताधारा में मैं गंभीर सादृश्य उपलब्ध करता हूँ। इमर्सन ने इस युग के नवलब्ध सत्य को प्राचीन मान्यता के साथ युक्त कर भारत की वाणी

को नवजीवन दिया है। इमर्सन की चिंताधारा में 'ओवर सोल' ने एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। यह 'ओवर-सोल' अपने 'परमात्मा' का ही ंग्रेजी अनुवाद है। उपनिषद् के द्वैतवाद और अद्वैतवाद की व्याख्या की उपलब्धि भी थी। माया कहकर उन्होंने संसार की उपेक्षा नहीं की। हमारे मायावाद को सम्पूर्ण स्वीकार न करने पर भी इस पर उन्होंने कविता और लेख लिखे। मनुष्य को मुग्ध करना ही माया का कर्म है—इस बात ने इमर्सन को आकृष्ट किया था :

Illusions work impenetrable
Weaving webs inumerable,
Her gay pictures never fail,
Crowds each other, veil on veil,
Charman who will be believed
By man who thirsts to be deceived.

इमर्सन ने उपनिषद् और भगवद्गीता बहुत बार पढ़ीं। उनकी कविता और लेखों के अनेक स्थलों पर इनका प्रायः आक्षरिक अनुवाद मिलता है। इमर्सन की विख्यात कविता 'ब्रह्म' कठोपनिषद् और गीता में व्यवहृत भावधारा की सुस्पष्ट प्रतिध्वनि है। इमर्सन प्रथम स्तवक में कहते हैं :

If the red slayer think he slays
Or if the slain think he is slain,
They know not well the subtle ways
I keep, and pass, and turn again.

कठोपनिषद् से संश्लिष्ट अंश के अंग्रेजी अनुवाद से सादृश्य स्पष्ट दिखायी देता है : If the slayer thinks he slays, if the slain thinks that he is slain, neither of them knows the truth.

लगता है इमर्सन ने गद्य अनुवाद को केवल पद्य में रूपांतरित किया था। गीता के द्वितीय अध्याय में ठीक इसी बात की प्रतिध्वनि मिलेगी :

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

'इमॉर्टिलिटी' नामक लेख में इमर्सन ने यम और नचिकेता का अंग्रेजी अनुवाद दिया है। उनके 'जर्नल' में बहुत स्थान पर विष्णु पुराण का आक्षरिक अनुवाद मिलता है।

हेनरी डेविड थोरो (१८१७-'६२) इमर्सन के मित्र और ट्रेन्सेन्डेन्टल क्लब के विशिष्ट सदस्य थे। उनकी तरह पढ़ने का नशा क्लब के किसी भी सदस्य को न था। थोरो ने विश्व के सम्पूर्ण क्लासिक साहित्य को पढ़ लिया था। भारत के शास्त्रग्रंथों के ऊपर उनकी विशेष श्रद्धा थी। ऋग्वेद के बारे में उन्होंने कहा है, 'मानव सभ्यता

के प्रारम्भ में ऐसा एक भाव समृद्ध ग्रंथ रचित हो सकता है, यह सोचा नहीं जा सकता।' थोरो ने अपने जर्नल में मन्तव्य भी दिया था कि हिन्दू जाति हिब्रू जाति से बहुत अधिक धार्मिक रही है और उनके धर्म की दार्शनिक नींव भी दृढ़तर है।

थोरो के 'एसे ऑन सिविल डिसओबिडिएन्स' ने टालस्टाय और गांधीजी को भी प्रभावित किया था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'walden' (The spiritual autobiography of a rebel wearied by the machine age) है। इन रचनाओं पर स्पष्ट ही भारतीय चिताधारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। विशेषत: walden में थोरो ने अपनी जीवनचर्या को शास्त्रग्रन्थ के प्रकाश में तोला है। थोरो ने. वेद, वेदांत, पुराण, गीता, कालिदास और कबीर की रचनाओं से उद्धृतियाँ दी हैं, उनका विश्लेषण किया है। पोड़श अध्याय में थोरो कहते हैं 'कि सुबह उठकर ही वे गीता पाठ करते हैं, फलस्वरूप बुद्धिवृत्ति का शुचिस्नान होता है:

"In the morning I bathe intellect in the stupendous of the Bhagvat Geeta, since whose composition years of the gods have elapsed, and in composition with which our modern world and its literature seem punny and trivial; and I doubt if that philosophy is not to be referred to a previous state of existence, so remote is its sublimity from over conception."

पृथ्वी की महान चिन्ताधाराओं के मिश्रण से ही महान आदर्श की सृष्टि होती है। थोरो ने अपनी उपलब्धियों के साथ भारत के जीवन-दर्शन को एकात्म कर दिया था। सांसारिक कोलाहल से दूर वाल्डेन झील के किनारे वे रहते थे। वाल्डेन के जल के साथ गंगाजल का मिश्रण करने में वे समर्थ हुए थे। 'The pure walden water is mingled with the sacred water of the Ganges.'

सन् १८९७ में स्वामी विवेकानन्द ने लाहौर में अध्यापक रामतीर्थ के यहाँ वाल्ट व्हिटमेन (१८१९–९२) की 'Leaves of grass' देखी। इस पुस्तक को पढ़ कर विवेकानन्द मुग्ध हो उठे थे। वे कहते थे–'व्हिटमेन अमेरिकन सन्यासी हैं'। हर रसज्ञ पाठक ही 'लीव्ज ऑफ ग्रास' पढ़कर भारतीय भावधारा की प्रगाढ़ता उपलब्ध करेगा। कवि नें अपने इस काव्य ग्रंथ के बारे में कहा हैं: This is no book; who touches this, touches a man. पाठक इसे पढ़कर एक वेदान्तिक सन्यासी का हृदय स्पर्श करेंगें।

सन् १८५६ में थोरो ने इस पुस्तक को पढ़कर मन्तव्य दिया था—Wonderfully like the Orientals.

व्हिटमेन ने थोरो के निकट यह स्वीकार नहीं किया था कि उन्होंने भारतीय शास्त्र-ग्रंथ पढ़े हैं। किंतु पीछे 'ए बैकवर्ड ग्लैन्स' में उन्होंने स्वीकार किया है कि 'लीव्ज़ ग्रास' लिखने के पहले उन्होंने प्राचीन हिन्दू काव्य ग्रंथ पढ़े थे। एडवर्ड कार्पेन्टर ने अपनी 'डेज़ वीद वाल्ट व्हिटमेन' पुस्तक में उपनिषद् के साथ 'लीव्ज़ ऑफ ग्रास' का सादृश्य दिखाया है। व्हिटमेन का 'सांग ऑफ माइसेल्फ' अर्जुन को श्रीकृष्ण के उपदेशों की प्रतिध्वनि लगता है। गीता में आत्मा के सम्बन्ध में जो कहा गया है व्हिटमेन की 'सेल्फ' भी उसी वैशिष्टय का दावा कर सकती है। उनकी 'मी', 'माइसेल्फ' और 'माई' अमर और विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ दूधपानी का सम्पर्क है। हमारे शास्त्र में परमात्मा और जीवात्मा की बात कही गयी है। इमर्सन ने परमात्मा या 'ओथर सोल' को प्राधान्य दिया है। व्हिटमेन का 'मैं' जीवात्मा (ब्रह्म का जो अंश मनुष्य में रहता है) क्षुद्र के साथ वृहत् का, जीव के साथ ईश्वर का बन्धन यथास्थान रखता है।

आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी 'Budha and the gospel of Buddhism' में दिखाया है कि बौद्ध शास्त्रोक्त चार प्रकार के ब्रह्म विहार के (मेन्ता, करुणा, मुदिता और उपेक्षा दृष्टांत व्हिटमेन की कविता में मिल हैं। कुमार स्वामी ने उद्धृति के सा अपना वक्तव्य प्रमाणित किया है।

ऐश्वर्य का प्राचुर्य और अधिक ऐश्व का दुर्निवार लोभ जाति की आत्मि शक्ति का ह्रास करते हैं—अमेरिक मनीषियों को ऐसी आशंका हो गयी थी। इमर्सन, थोरो और व्हिटमेन विश्वा करते थे कि भारत के आध्यात्मवाद के सा परिचित होने पर विषय के लिए उन्मत्तता में शायद कमी आ जायेगी।

स्वेज नहर और पैसिफिक रेल रोड क कार्य समाप्त होने पर व्हिटमेन प्राच्य के साथ अमेरिका का योगसाधन होते दे हर्षित हो उठे थे। इस उपलक्ष में सन् १८७१ को 'पैसेज टू इन्डिया' कविता प्रकाशित हुई। उनके लिए स्वेज ए व्यापारिक विषय नहीं है। प्राच्य और प्रतीच्य के मिलन से एक महान सभ्यता की सृष्टि होगी—यही उसकी सूचना है। मानवात्मा की जन्मभूमि भारत को जा का रास्ता सुगम होने पर विभ्रांत प्रतीच्य को आत्मस्थ होने का अवसर मिलेगा। व्हिटमेन ने भारत की वन्दना की है:

भारत पथ यात्री
मानव प्रथम भूमिष्ठ जहाँ
उस सुदूर काकेसस का शीतल वायु स्रोत

इउफ्रेटिस का प्रवाह।
पूर्णदीप्त अतीत।
ओ हृदय, देख उन विगत दिनों को
फिर तुम्हारे सम्मुख हैं आये।
सर्वाधिक जनाकीर्ण धनाढ्यतम् पृथ्वी
का प्राचीन देश
सिन्धु और गंगा की असंख्य धाराएँ
(अमेरिका के तीर पर मैं भ्राम्यमान)
मेरी दृष्टि में आज सब कुछ प्रतिबिम्बित
समराभियात्री सिकन्दर की आकस्मिक मृत्यु
एक ओर चीन, फारस दूसरी ओर
दक्षिण का वह विशाल समुद्र बंगोपसागर
प्रवहमान साहित्य, महान सब महाकाव्य
धर्मान्दोलन, जाँत-पाँत
आदि दुर्गेय ब्रह्म, अनन्त अतीत में
नवीन करुणा कोमल वृद्ध
केन्द्रीय और दाक्षिणात्य के सब साम्राज्य
उनका सम्पद और अधीश्वर
तैमूरलंग का संग्राम, औरंगजेब का शासन-काल
वणिक, शासक पर्यटक।
रे हृदय, चल
उन आदिम उपलब्धियों को
केवल देश-देश को, सागर को न।
उस प्रथम स्वच्छ सजीवता को
जीवन झील के मुकुल
हृदय के तारुण्य औ' पुष्पोदक में जहाँ प्रस्फुटित।

इमर्सन, थोरो और व्हिटमेन का सम्पर्क वर्तमान भारत से न था। वे प्राचीन भारत की आध्यात्मिक सम्पदा की ओर आकृष्ट हुए थे। उन्नीसवीं शताब्दी तक किसी ख्यातनाम अंग्रेज लेखक ने प्राचीन भारत के प्रति अपनी ऐसी श्रद्धा प्रकाशित न की थी। जिन्होंने की थी वे थे भारत विद्या विशारद, साहित्यिक के तौर पर उनकी प्रसिद्धि न थी। सन् १८५७ के ग़दर के बाद भारत और इंग्लैण्ड के बीच राजनैतिक और अर्थनैतिक संघर्ष की सृष्टि हुई। उसका प्रभाव समसामयिक अंग्रेज़ी साहित्य पर भी पड़ा। बीसवीं सदी के प्रारम्भ से द्वितीय महायुद्ध तक अमेरिकनों ने भारत को प्रधानतः अंग्रेज़ी साहित्य और ब्रिटिश दृष्टिकोण से देखा है।

अमेरिका के साथ भारत का प्रत्यक्ष योगायोग हुआ, द्वितीय महायुद्ध के पश्चात्। विदेश में भारत सम्बन्धी सर्वाधिक पुस्तकें वर्तमान में प्रकाशित होती हैं अमेरिका में, तरह-तरह के विषयों पर। इससे भारत के बारे में अमेरिका के गंभीर आग्रह का परिचय मिलता है, किंतु इमर्सन–थोरो–व्हिटमेन की तरह का एक निःस्वार्थ आग्रह नहीं। भारत के प्रति इनकी श्रद्धा की केवल जर्मन विद्वानों और लेखकों के भारत प्रेम के साथ तुलना की जा सकती है।

–अनु. महावीर चाचान

✱

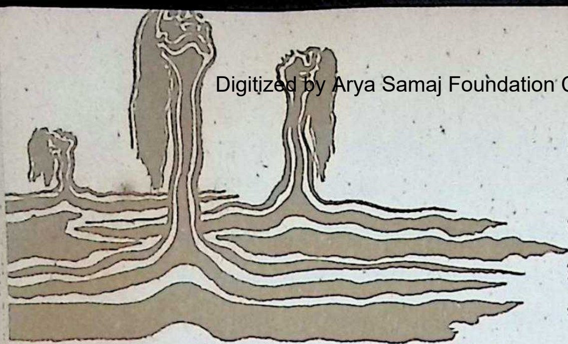

मधुकर सिंह

◆

व्यथा से एक निवेदन

हवा की हर टुकड़ी पर परचम में
उड़ते हैं कितने मेरे दर्द !
काफी हैं घुटती हुई गलियाँ,
हतप्रभ चौखट पर खड़ी मेरी पत्नी की
जड़ताएँ काफी हैं !
सम्पूर्ण सदी की शलाखों की
ख़ामोश दो आँखें;
सड़क पर गुजरते हर मुसाफ़िर के
चेहरे पर खुद गया हूँ;
कानों में कह जायेंगे चुपके से ना

◆

संस्कारों की सदियों में
जकड़ो मत पिता !
अभावग्रस्त बच्चों को क्या जबाब दूँगा
हतप्रभ पत्नी को कैसे बहलाऊँगा,
ओ पिता !
क्या ममता ऐसा नहीं कर सकती
कि इतिहास के पन्नों को जला दे ?
पिछली सब चेतना भुला दे ?
—कह दे कि नया मैं संस्कार हूँ
व्यथाओं से जन्मे हुए पुत्रों का पिता हूँ
मानधाता नहीं हूँ जो जड़ हो जाऊँगा,
झूठी परीक्षाओं में ममता चढ़ा दूंगा ?
ओ पिता ! मत घेरो मुझे !
सदियों के संस्कारों में मत बाँधो !
क़स्बों में, शहरों में,
गलियों, बजारों में
हर जगह होंगी तेरी बेटी ममता
युग की विषम शलाखों में मेरी तपन कैसे सहो
ओ पिता

◆

श्यामसुन्दर घोष

एक वक्तव्य

मैंने अँधेरे को मुट्ठियों में क़ैद कर लिया है
और उदयाचल पर खड़ा मुस्कुरा रहा हूँ।
युगों तक तुमने चुनौतियाँ दी
और मैं चुपचाप सुनता रहा
तुमने समझा मैं निष्प्रभ, निस्तेज हूँ
इसलिए कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

तुमने विष व्यंग्य-वाण छोड़े
मेरी कायरता की कितनी ही कहानियाँ
लोगों को सुनायी
बौने विकलांगों की विशाल अनी खड़ी कर
युद्ध का कपिध्वज फहराया
तीरों की वर्षा की
लेकिन अँधेरा घटोत्कच सा मायावी ख़त्म नहीं हुआ
वार-वार भेष बदल कर आया तुम्हें त्रस्त कर गया
तुम निराश हो घुटनों में मुंह छिपा
निरुपाय हो बैठ गये।

मैंने सोचा मेरा कौतूहल तुम्हारे अनुताप का कारण है
तुम्हारी व्यर्थ की शंकाएँ, क्षोभ, निराशाएँ
वाध्य करती हैं कि मैं अपनी तटस्थता समाप्त कर दूँ
और क्रियात्मक भाव से तुम्हारे प्रयत्न में योग दूँ।
इसलिए आज अँधेरे को मुट्ठियों में क़ैद कर
उदयाचल पर खड़ा मुस्कुरा रहा हूँ।
कुछ ही क्षणोंमें दिशाएँ आलोक-प्लावित होंगी
प्रदीप्ति का विभा सघन कांतारों को ढँक लेगी
अँधेरे के बचे-खुचे सैनिक गिरि-कंदराओं में मुँह छिपा लेंगे
या रेत पर अपने चमकीले शस्त्र डाल
जलधारा में डुबकियाँ लगा
अन्दर ही अन्दर किसी ऐसे लोक में जा पहुँचेंगे
जहाँ कालान्तर में दफ़न हो जायँगे।

मोहनराज शर्मा

पैर का कीचड़ : हाथ का कमल

[एक चेतनाप्रवाही स्केच]

बुद्ध के चैत्य में हम मानवों द्वारा फैलायी गयी गंदगी पर ही हमारी नज़र जाती है, और बुद्ध की अन्धी और गूंगी वीतरागता पर हम झुंझला उठते हैं। पर काश, हम देवता के पैरों में फैले कीचड़ से दृष्टि उठा कर, उसके हाथ के कमल को भी देख पाते....

धुँध की मच्छरदानी के अंदर पहाड़ ऊँघ रहा था। 'वैकुअम' को चूसते देखकर पोखरियों में दुबके कुहासे ऐसे लग रहे थे, जैसे चपड़े में चिपकी मटमैली रूई को किसी ने बुरी तरह नोच लिया हो। कलशों पर तन्द्रिल से पड़े कुहरे अचानक शरीर तोड़ने लगे और बौखलाकर झाँझ की तरह बजने वाली नदी की ओर बढ़ चले–जैसे उन्हें हाथ-मुँह धोना ही है।

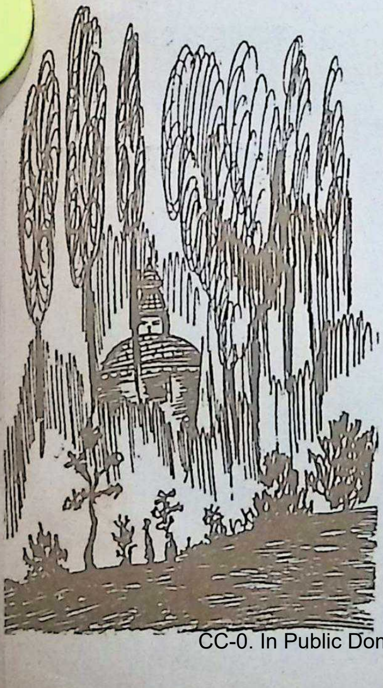

तड़के ही उठकर मैं बस्ती की ओर जा रहा था। जैसे-जैसे पाँव धरती पर पड़ रहे थे, शहर मुझसे दूर होता जा रहा था। नम धरती ने मेरे "कैनवास" के जूते में इतना 'स्प्रे' कर दिया था कि लगता जैसे धाम से अकड़ने के कारण किसी ने उसे भर पेट पानी पिला दिया हो।

निरंतर ऊँची उठती गयी उस 'डांडों' में मैं पहुँच चुका था, जो दूर से देखने पर धरती की नाक-सी लगती थी। दोनों ओर खाईं थी, जिधर झाँकते ही झाँई आ जाती थी। खाइयों में उगे चीड़ दिनोंदिन आसमान को छूने के लिए लपके जा रहे थे। मैंने जरा नीचे उतरने को सोचा, पर फिसलने के डर से पाँव

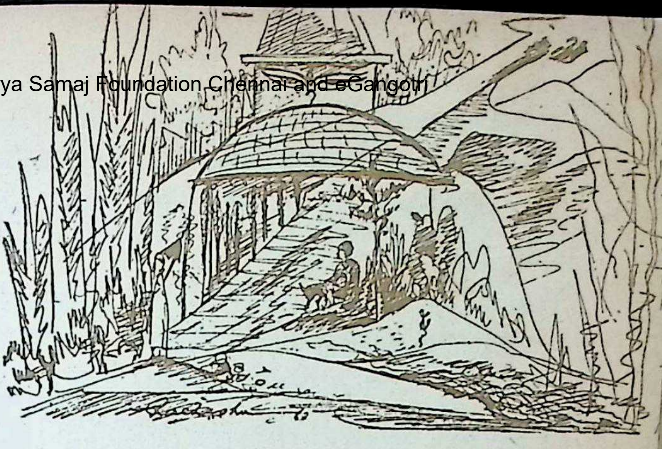

काँप गये। आँखें दूर 'भीर' की ओर चली गयी, जहाँ 'च्यांग्रा' इतने बेसुध चर रहे थे कि उन्हें पैरों तले खिसकती मिट्टी का एहसास भी न हो रहा था।

कुछ झेंपता-सा मैं मुड़ा और पेड के धड़ को इस तरह थपथपाने लगा, जैसे कोई अपनी प्रियतमा को जगा रहा हो। शाखों की सिहरन करेंट सी तने पर उतर आयी, तो मेरे होंठ हिले : "पगले बौने को चाँद मिला है क्या ?"

आसमान में उषा की लज्जा बिखर चुकी थी। युवक अरुण ने बढ़कर उसे पकड़ लिया, शाखों से मधुरिमा उड़ गयी, चट्टाने रिसने लगीं। सूरज की लपलपाती जीभों ने चाटकर चारों ओर अजीब चटख फैला दी।

मेंढक सा बेडौल, पर राक्षस सा भयंकर पत्थर रह-रह कर काली उकाई करने लगा था। वहीं पर बादामी रंग के मख़मल से ढेरों फूल खिले थे—कुकुरमुत्ते जैसे, पर कुकुरमुत्ते से बिलकुल भिन्न। "तो क्या ये पत्थर के फूल हैं ?" फटीं आँखें प्रश्न-चिह्न बनीं। "बिना फूल के भी फल होता है कहीं !" हवा में ठुनकते फूल जैसे उत्तर दे रहे थे। और तब मैं देखने लगा पत्थर के फल शिलाजीत को, उस काली उकाई को।

पास ही किसी ने 'पिम्बा' छेड़ दिया था, जिसकी अकुलाहट से 'स्पेस' कुछ काँप सी गयी थी। आवाज़ ने मेरे पाँव खींच लिये और परमाणविक भट्टी सा वह विशाल गुंबद मेरे पास आने लगा। कुछ ही मिनटों में मैं 'बौद्ध-चैत्य' के सामने खड़ा था। उस विशाल गुंबद के ऊपर से दो बड़ी-बड़ी आँखें झाँक रही थीं। लगता था जैसे मुँह का शेष हिस्सा भी शीघ्र निकल आयेगा।

"बौद्ध को कान और मुँह नहीं।" मैं सोचते-सोचते स्तब्ध रह गया। फिर मैं जोर से ठठाकर हँस पड़ा। "बौद्ध को कान और मुँह से क्या करना ?"

बौद्ध मुझे प्रतीक सा लगने लगा, सभ्य मनुष्यों का प्रतीक। प्रतीक के भावों में खोया मैं बगल की 'पाटी' पर बैठ गया था,

जिसका भान मुझे तब हुआ, जब उछलता-कूदता बकरी का बच्चा मेरी गोद में आ बैठा। उसके बैठते ही स्मृति चर्खे की तरह घूम गयी।

नन्हा सा वह सलोना बच्चा भी तो इसी तरह का छौना ही तो था। वह मेरी गोद में खेल रहा था और दिल उसे 'माडल' बनाता जा रहा था। जब मैं उसे मूर्त्त करने उठा, तो पड़ोसी का ज़हर मेरे कानों में घुलने लगा। वह बुरी तरह चिल्ला रहा था—"बेशरम कहीं का, इतनी उमर हो गयी, पर मुहल्ले के बच्चों को खराब करने के लिए बिना ब्याहे बैठा है। आइन्दा किसी भी बच्चे के साथ देख पाऊँ, तो पीट-पीट कर कवि का कबाड़ी बना दूँगा।"

बकरी के बच्चे को मैंने एकदम से झटक दिया, जो ढुनमुनाता अपनी माँ के पास पहुँच कर थन में मुँह मारने लगा। मुझे लग रहा था, जैसे सीने में किसी ने बल्लम हूल दिया हो और मैं दर्द से तड़प उठा—"ढोरों के 'स्केल' से सभी को क्यों नापते हो मूर्खो! गुनाह हो भी जाय, तो 'प्लीजिंग कन्सेशन' क्यों नहीं देते?"

पहाड़ियों में घिर जाने के कारण आवाज़ उमस कर घिघियाने लगी थी। नाली में कुछ कीड़े बिल-बिला रहे थे। बगल में उगा बाँस इस तरह हिलने लगा था, जैसे तैश में आ गया हो। किंतु बौद्ध का

Perfumed
BRAHMI
HAIR OIL

बंगाल केमिकल का
सुगंधित
ब्राह्मी केश तैल

बड़ी कारीगिरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वैदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करने-वालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

वह चैत्य ज्यों का त्यों था—आखिर उसमें न कान था और न मुँह। सिर्फ वे बड़ी-बड़ी रसीली आँखें नाक के स्थान पर बनी प्रश्न-चिह्न की ओर ताक रही थीं।

द्वार से घुसकर उस विशाल प्रतीक के सम्मुख मैं खड़ा हो गया। मांस, अंडे, बीड़ी, सिगरेट सभी कुछ तो चढ़ा था वहाँ। 'जाँड़ें' की सड़ाँध बदबू ज़बरन मेरे नथुनों से अंदर हिल गयी। पास ही 'भौटे' शराब चढ़ा रहा था। 'लामा' के हाथ में चक्कर खातीं 'घुम' के साथ मैं भी घूम गया, कुछ ही पहले गुजरे दिन की ओर।

उस दिन भी शराब की एक-एक बूंद मेरे शरीर के रेशे-रेशे में बिंधी जा रही थी और मैं उसके बाल के रेशे-रेशे में बँधा जा रहा था कि कोई भौंका था—"स्वस्थ साहित्य के निर्माता हैं ये, देखो न नशे में वृत कैसे मजे में 'बार गर्ल' से आँखें भिड़ाये जा रहा है।"

"पैर के कीचड़ को देखने वाले लीचड़, हाथ के कमल को क्यों नहीं देखता।" मैं क्रोध से फुँफकार उठा।

आवाज गुंबद से टकराकर लौट गयी। बौद्ध को कान ही न था, फिर समाती कहाँ। लेकिन तभी मुझे सिर में कुछ टपकने सा लगा। मैंने देखा, बौद्ध की बड़ी-बड़ी आँखें छलछला रही थीं। उन आँखों ने मेरी टकटकी को एकदम रोक दिया। कुछ देर बाद मेरी आँखें धीरे-धीरे ऊपर उठने लगीं। कलश पर बंदर देखते ही मैंने झपटकर ढेला उठा लिया और जैसे ही चलाना चाहा, आँखें बौद्ध पर टिक गयीं। छलछलाहट बंद हो चुकी थी, पर आँखों में तनिक भी भाव परिवर्तन न था। "क्या ये चमकती आँखें भी बेनूर हैं?" मैं स्तम्भित जीव सा स्तब्ध रह गया।

अचानक मेरा सिर गुंबद से जा टकराया और मैं ज़ोर से फ़फक उठा—"सहिष्णुता के ओ सजीव देव, मैं भी तुम्हारी ही तरह अंधा बनूंगा, गूंगा, बनूंगा, बहरा बनूंगा।"

ओंठ की कोर में जमी गाज में मैंने बाँह रगड़ दिये और मेरे पाँव उल्टे पद-चिह्नों को सुलटाने में जुट गये।

●

वीरेन्द्रकुमार जैन

श्री अरविन्द और मेरा कवि

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

सूर्योदयी घोषणा के उपरान्त, साहित्य में श्री अरविन्द साथ मेरे कवि को बहुत ही अज्ञानपूर्ण और ग़लत तरीक़ों से जो की एक भ्रामक चेष्टा दिखायी पड़ रही है। ऐसे लोगों ने न श्री अरविन्द को ही गहराई से और समग्रता में समझने प्रयत्न किया है, और न उनके साथ की मेरी एक निसर्ग आन्त vision की आत्मीयता को सूक्ष्मता से समझने का किया है। श्री अरविन्द मेरे लिए कोई वाद का घेरा या सी बन्धन नहीं: वे मेरे चैतन्य की विकास यात्रा के एक अटूट प्रेर स्रोत हैं, एक नित-नूतन आर्विमान प्रतीक-क्षितिज हैं। प्रस् निवेदन से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए, कि मेरा कवि इस उस दर्शन या वाद का क़ैदी नहीं, वह तो अपने ही अन्तरतम अनन्त-सम्भावी अनुभूति-चिन्तन-चेतना से उन्मेषित है और इस स्वाधीन मुक्त चेतना की उपलब्धि में वह कहीं अरविन्द का भी ऋणी है।

●

श्री अरविन्द के साथ मेरा नाता प्रभाव का नहीं, परा प्रीति का है, परमात्मीयता का है। आज मेरे भीतर यह प्रतीति बहुत स्पष्ट हो गयी है, कि जिस चेतना माँ के गर्भ से मेरे आन्तर-पुरुष का जन्म हुआ है, उसी चेतना का सर्वांगीण प्रकाश श्री अरविन्द के रूप में इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ था। इसी से निवेदन किया चाहता हूँ, कि मैं तो जन्मजात श्री अरविन्द का चेतना-पुत्र हूँ। हो आकर, जब पहली बार इस रूप, नाम, वैविध्य के लीला-चंचल जगत पर आँखें खुलीं, तो इसकी प्रकट में दिख पड़ती भंगुरता, व्यतीतमानता और मर शीलता का बोध मुझे असह्य हो उ तब उस आरम्भिक बालपन में

सर्वान्तरभेदी प्रश्न का जो जलता तीर मेरी आत्मा को बींधता-सा उठ खड़ा हुआ था, उसके भीतर मरण-विजय की दावेदार वही पुकार प्रज्ज्वलित थी, जिसका उत्तर देने के लिए श्री अरविन्द हमारे बीच आये थे।

इसी से यह स्पष्ट करना ज़रूरी हो गया है कि श्री अरविन्द के साथ मेरा नाता प्रभाव का नहीं, भीतर की चरम-परम आत्मीयता का है। प्रभाव विकास की एक स्थिति विशेष में, अध्ययन या सम्पर्क के माध्यम से बाहर से आता है, और बुद्धि-मानस के धरातल पर ग्रहण होकर हमारी वैचारिक चेतना का एक अंश बन जाता है। मेरे भीतर श्री अरविन्द ऐसी किसी बौद्धिक चिन्तना की राह बाहर से नहीं आये : बल्कि मेरी जन्मजात अन्तश्चेतना की पुकार और प्रश्न में ही वह चिद् पुरुष बाहर आने को कसक रहा था, जो ठीक मुहूर्त आने पर, श्री अरविन्द के रूप में मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। और इसी आन्तर एकात्मीयता के कारण, श्री अरविन्द का लिखा शब्द, मेरे लिए कोई 'अन्तिम शब्द' या बन्धन नहीं हो सका है। श्री अरविन्द का योग और दर्शन, उसका 'जार्गन' (पारिभाषिक पदावली) और 'सिस्टिम' (प्रणाली), मेरे चैतन्य की विकास-यात्रा की क़ैद या मर्यादा नहीं : वह मेरे लिए शब्द और प्रणाली से अतीत, मेरी मुक्ति का अव्याबाध आकाश है।

मैं श्री अरविन्द के पास उनके प्रणालिगत दर्शन की राह नहीं जाता, अपनी आन्तर पुकार की अशेष निवेदनवती महावेदना के भीतर से ही, उनके अभिन्न साहचर्य और परम प्यार-मिलन का परस मैं पा जाता हूँ। इसी एकात्मीयता के बल पर, लिखे शब्द में आये उनके कुछ विचारों पर, मैंने प्रश्न-चिह्न भी आंके हैं। उन विचारों को अतिक्रान्त करने या अपने स्वाधीन तरीके से सोचने का मेरा आत्म-स्वातंत्र्य सदा अक्षुण्ण रहा है। संक्षेप में इतना ही कि श्री अरविन्द मेरे बन्धन नहीं, मेरी मुक्ति हैं। वे मेरी सीमा नहीं, मेरी विकास-यात्रा के निःसीम अनन्तों के चिरचैतन्य क्षितिज हैं। वे मेरे मन, निरे विशिष्ठ व्यक्ति या व्यक्तित्व नहीं : भगवान की चिर विकासमान अतिमानस चेतना के अमर्याद प्रवाह हैं : नित-नूतन आविर्भाव चिदानन्दिनी भगवती शक्ति के एक नवयुगीन विग्रह या ध्रुव हैं। इसीसे कहना चाहता हूँ, कि शब्दगत दार्शनिक प्रणाली या 'फॉर्म' की राह मैंने उन्हें नहीं पाया है : उनके साथ का मेरा अन्तिम और अटूट नाता 'स्पिरिट' में है, उस ज्योति-पुरुष में है, जिसने उन्हें अपने अतिमानसिक प्रकाश के प्राकट्य का माध्यम या अवतार बनाकर इस पृथ्वी पर भेजा था।

श्री अरविन्द की प्रणालिगत दार्शनिक कृतियों में जो उनके सन्देश की अमोघ शक्तिशालिनी अभिव्यक्ति है, वह निश्चय ही महामूल्यवान है। पर 'सावित्री' के चिर तरल, पारदर्शी प्रकाश महलों में ही उनके साथ मेरा सच्चा और अटूट मिलन घटित हुआ है। 'सावित्री' को पढ़ते-पढ़ते ही, अनायास जाने कब मेरी चेतना एक ऊर्ध्वतर, वृहत्तर भूमिका में उत्तीर्ण हो जाती है, एक अविरल, अक्षुण्ण आनन्द, प्यार, सौन्दर्य और शक्ति का अमृत-सागर मेरी चेतना में हिलोरें लेने लगता है। मृत्यु की अभेद्य अन्धकार बाधा, जाने कब कहाँ तिरोहित हो जाती है: एक अमर जीवन के लोक में जीने का सुख-स्पर्श मैं पा जाता हूँ। 'सावित्री' चिर विकासमान मानव-पुरुष की मरण-विजय की महायात्रा, और चिरन्तन नर-नारी के अनन्त अमर मिलन का महाकाव्य है। उसमें जहाँ एक ओर प्रकृति और मानव-सत्ता के देह, प्राण, मन, आत्मा के सभी स्तरों पर चल रही द्वन्द्वात्मक जीवन-लीला के गहिरतम् और सूक्ष्मतम आन्दोलनों का तलस्पर्शी अनावरण और चित्रण है: वहाँ दूसरी ओर भगवान के पूर्णज्ञान, आनन्द, प्रेम, सौन्दर्य, शक्ति और प्रकाश को, जीवन की चिन्तन प्रवाही संघर्षशील धारा में, प्रक्रियात्मक और समन्वित रूप से उद्घाटित और उद्भावित करने की एक अनुपम योगिक काव्य सिद्धि है।

हमारी शताब्दि दो-दो महायुद्धों की मरण विभीषिका से गुजरी है। औ परमाणविक अस्त्रों की बेरोक प्रगति चलते, एक मूलोच्छेदक विनाश आतंक-छाया तले आज समस्त मानव जी रही है। जीवन और आस्था के सा आधार टूट गये हैं: मानव-सम्बन्धों सारे स्थापित मूल्य विघटित हो गये है भौतिक-वैज्ञानिक प्रगति के प्रचण्ड औ दुर्दान्त विजेता पश्चिमी गोलार्द्ध के सा ही चोटी के विचार-पैग़म्बर आज पराज सीमा-स्वीकार और मरण-साक्षात्कार दुःखान्त वाणी उच्चारित कर रहे है सम्भावित विकास और प्रगति के आशाभ क्षितिज लुप्त हो गये हैं। ऐसे सम पूर्वीय गोलार्द्ध के सुमेरु शिखर भारत चिर दैदीप्यमान उदयाचल पर ख होकर अकेले श्री अरविन्द ही मर जयी अतिमानसिक जीवन, और अपराज अतिमानव-जाति के अवतरण का अक्षु आशा भरा सन्देश दे रहे हैं। मरण औ अन्धकार की इस घटाटोप प्रलय-वेला एकमात्र उन्हीं की अंजुलियों से अम जीवन का आलोक झर रहा है। आलोक की धारा को अक्षुण्णरूप अनन्तों में प्रवाहित करने के लिए, औ पृथ्वी के जीवन में ही उस अमृत मूर्त्त सांगोपांग करने के लिए, मेरे कवि का जन्म हुआ है। मेरी समूची कवि अमर जीवन की ओर उन्मुख उसी सनात प्रगतिमयी प्राणधारा का एक प्रक्रियात्म सम्वाहन है।

✱

याँ पॉल सार्त्र

सार्त्र

सम्पत ठाकुर

●

तेरे मसीहे ने
रात की नीली हिमानी में
हथेलियाँ गर्म करने को
एक आग सुलगायी थी।
और तू
उस आग से
अपना घर फूंक डालना चाहता है ?
बता :
रात को चाँद-सितारे चमकें नहीं ?
दिन को
सूरज की रोशनी
हर कोने को रौनक बख्शे नहीं ?
सुबहें और शामें
रेशमी लिबासों में सजें नहीं ?
नदियाँ बहें नहीं ?
जोड़े घूमें नहीं ?
नजरें चूमें नहीं ?
ओ मौत के प्रोपैगेंडिस्ट
तेरी क्या तजवीज है ?

●

·नरेशचन्द्र मिश्र

विषपान, जो माँ का सारस्वत अमृत बन गया

हमारी आन्तर वेदना जब सत्य से प्रज्ज्वलित होती है, तो भगव माँ का अनुग्रह बड़े ही अप्रत्याशित और चमत्कारिक रूपों अचानक प्रकट होकर हमारे जीवन में एक अपूर्व क्रान्ति उ स्थित कर देता है। तब हम जिसे जहर समझ कर पीने जा है, वह अमृत साबित हो जाता है।

गहन वन के बीच कुमुदनी और शैवाल से शोभित पुष्करिणी के तट पर बना एक छोटा-सा मन्दिर। भरतखण्ड का सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास अपने निवासस्थल उज्जयिनी की सहचरी शिप्रा नदी के मनोरम तट को छोड़कर बंगदेश के अंचल में अवस्थित इस पुष्करिणी के तट पर बने एकांत साधना-गृह में अनुष्ठान कर रहे थे।

शारदीय नवरात्र की परिसमाप्ति का दिन। कालिदास नील कमल चढ़ाते हुए माँ नील सरस्वती के आवाहन में दत्तचित्त थे।

अनुष्ठान की समाप्ति पर महाकवि का गम्भीर स्वर अर्ध रात्रि के सन्नाटे को भंग करता हुआ गूंज उठा।

पूर्णाहुति के पड़ते ही यज्ञ-कुण्ड से ए नीली ज्योति प्रज्ज्वलित हुई, जो धीरे धीरे नील सरस्वती के रूप में परिवर्ति हो गयी। स्मितिमयी माँ वाङमयी ने अप वरद पुत्र कालिदास को कदली-पथ महाप्रसाद दिया और वरद मुद्रा दिखा अन्तर्धान हो गयी।

मध्यरात्रि के सन्नाटे में कठिन साधना थकित शरीर लिये महाकवि उठे तो, उ एक विचित्र समस्या का सामना कर पड़ा। अनजान डगर चतुर्दिक सन्नाटा औ बीच-बीच में हिंस्र पशुओं का स्वर उ विचलित कर रहा था। शेष रात्रि व्यती करने के लिए वे कोई स्थान ढूंढ़ने ल

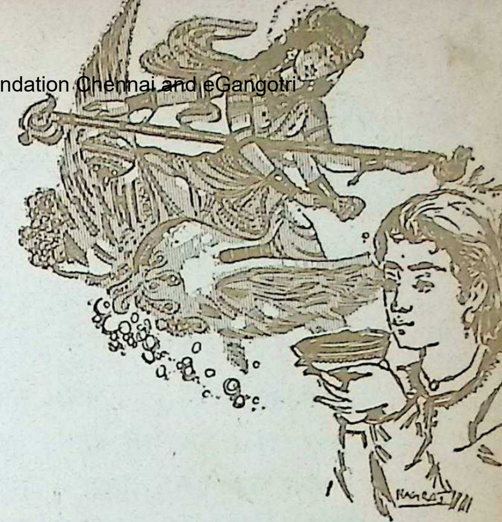

तभी एकाएक कुछ ही दूर पर एक मैदान में ताड़ वृक्ष के नीचे दीप की एक क्षीण ज्योति उन्हें दिखायी पड़ी।

× × ×

"कपाट खोलो, महानुभाव। द्वार पर एक अतिथि है।"—कालिदास ने निर्जन प्रदेश में बने उस घर के द्वार पर पहुँचकर कहा।

"स्वागत है। पधारें, महाभाग!"—कह कर जम्हाई लेते हुए गृह-स्वामी कुम्हार ने द्वार खोल दिया।

"क्या तुम मुझे यहीं पर शेष रात्रि व्यतीत करने की सुविधा दे सकोगे, मित्र?"—कालिदास ने प्रश्न किया।

"बड़ी प्रसन्नता से अतिथि देव! इस समय मैं सारे बर्तन आवाँ में रख चुका हूँ, इसलिए चारों ओर स्थान ही स्थान है। आप अपनी सुविधा के अनुसार कहीं भी आसन ग्रहण करें। तब तक मैं पाद्य-अर्घ्य की व्यवस्था करता हूँ।"— कह कर वह कुम्हार घर के अन्दर चला गया और उसके थोड़ी देर बाद पुनः उपस्थित होने पर, उसने अत्यंत आश्चर्य चकित होकर देखा कि अपने बहुमूल्य वस्तुओं को उपेक्षा पूर्वक इधर-उधर फेंकता हुआ उसका अतिथि, एक केले के दोने को बड़े यत्नपूर्वक बीच में रख रहा है।

"इसमें ऐसा कौन-सा बहुमूल्य पदार्थ है देव, जिसे आप अपने रत्नजटित वस्त्राभूषणों से भी अधिक सम्हाल कर रख रहे हैं?"

"यह हलाहल (विष) है, बन्धु! मैं शूल का रोगी हूँ। रोग का दौरा होने पर यह मुझे अमृत के समान गुण दिखलाता है, किन्तु अन्य प्राणियों के लिए तो इसे कालकूट ही समझो। सूँघ लेने मात्र से तत्काल मृत्यु हो सकती हैं। इस लिए इसे बहुत सम्हाल कर रख रहा हूँ।"

महाकवि ने यह सोचकर असत्य भाषण किया था कि महाप्रसाद को बता देने पर यदि कहीं यह मन्दबुद्धि कुम्हार, इसे ग्रहण करने की याचना कर बैठा तो वे बड़े धर्म-संकट में पड़ जायँगे।

"कौन है वह भाकुटिक?"—कवि का सत्कार कर घर के अन्दर आने पर कुम्हार की कर्कशा पत्नी ने उससे तीक्ष्ण स्वर में प्रश्न किया।

"आज सवेरे से ही दुर्वचनों से मेरे हृदय को विदीर्ण करती रही हो। लेकिन अब यदि मुझ पर नहीं तो, कम से कम एक सम्मानित अतिथि पर तो दया करो !"—कुम्हार ने शैया पर लेटने का उपक्रम करते हुए व्यंग्य के स्वर में अपनी स्त्री से कहा।

"सम्मानित अतिथि ! ...भला कोई भद्र पुरुष अपनी छाया भी डालेगा तुझ पर ! होगा तेरा ही कोई मद्यप, द्यूतप्रेमी सहचर ! अपनी पत्नी की भय से यहाँ आश्रय लेने आया होगा. . स्त्रैण. . . भगा दे उसे यहाँ से अन्यथा. . . ."

"मैं फिर कहता हूँ, चुप हो जा !"—दाँत पीसकर कुछ अनुरोध और चरम घृणा के साथ वह, मुँह पर उंगली रखते हुए भरसक धीमे स्वर में बोला—"यदि अतिथि ने यह अपमानजनक शब्द सुन लिए, तो सच कहता हूँ कि मैं विषपान कर लूंगा। सारा जीवन तुझ सर्पिणी का विषदंश सहन करते बीत गया, लेकिन अब सहन न कर सकूंगा !"

"विष तेरे जैसे अधम के लिए नहीं है, नीच ! उसे तो प्रतिष्ठित लोग ही पीते हैं, अपने सम्मान की रक्षा के लिए. . . ."

इसके आगे कुम्हार अब एक शब्द भी न सुन सका। वह बड़ी तीव्र गति से किवाड़ बन्द करके बाहर निकल आया। कठिन साधना से श्रान्त-क्लान्त महाकवि, तब तक

देना बैंक

देवकरण नानजी बैंकिंग कं. लि.
स्थापना १९३८

अधिकृत पूँजी	रु. १ करोड़
स्वीकृत एवं चुकता	रु. ५० लाख
स्थाई कोष	रु. ७५ लाख
जमा की गई रकम	रु. ४३ करोड़ से अधिक
काम चलाऊ कोष	रु. ४८ करोड़ से अधिक
खातों की संख्या	२,४०,०००

ग्राहकों के लिए देना बैंक के किसी भी ऑफिस के किसी भी रकम के चेक बिना कमिशन के वसूल किये जाते हैं।

१०० से अधिक ऑफिस और
३० सेफ डिपोजिट वॉल्ट

रजिस्टर्ड ऑफिस:
देवकरण नानजी बिल्डिंग्स,
हार्निमेन सर्कल,
फोर्ट, बम्बई १

देना बेंक की सेवाऐं
* करंट एकाउन्ट
* सेव्हिंग्ज एकाउन्ट
ब्याज ३%. वर्ष में १०० चेक की निकासी
* स्थाई जमा
१ से ५ वर्ष के लिए ४% से ५% ब्याज अर्ध वार्षिक हिसाब चुकाई।
* अल्पवयस्क बचत योजना
१० वर्ष और अधिक उम्र के बालक खाते खोल सकते हैं।
* कैश सर्टिफिकेट
४½%ब्याज
* विदेशी मुद्रा तथा लेटर्स औफ क्रेडिट
* इनवेस्टमेंट सर्विस
* गिफ्ट चेक
* छोटे छोटे चाँदी के टुकडे

प्रवीणचंद्र वी. गांधी
मैनेजिंग डाइरेक्टर

DB/SH/34

प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो चुके थे। उन्हें सोता हुआ देखकर कुम्हार ने शीघ्रता से वह 'हलाहल' का दोना उठा लिया और तत्क्षण विना कुछ सोचे बिचारे उसे एक ही सांस में पी गया।

इसके अनन्तर हलाहल के मानसिक त्रास से कांपता वह वहीं भूमि पर गिर पड़ा। एक-एक क्षण बीतता जा रहा था किंतु न तो उसकी जीभ ऐंठ रही थी, न आँखें पथरा रहीं थीं। फिर भी वह कण्ठ अवरुद्ध होने तथा मुख से झाग निकलने की आशंका से वहीं भूमि पर पड़ा रहा। कुछ ही क्षणों के अनन्तर 'विष' ने अपना प्रभाव दिखलाना प्रारंभ किया। जन्म से ही अशिक्षित एवं निपढ़ निरक्षर कुम्हार के मस्तिष्क में ज्ञान की दिव्य ज्योति झिलमिलाने लगी और उसके हृदय में भावनाओं का ज्वार उमड़ने लगा। विष के भय से संत्रस्त उसके मुख-मण्डल पर शांति एवं प्रज्ञा की दिव्य स्वर्गीय आभा झलकने लगी। मिट्टी के पिण्डों से बर्तन और खिलौना बनाने वाले कुम्हार की ज्ञान दृष्टि के समक्ष अब सारी सृष्टि का ही स्वरूप एक मिट्टी का पिण्ड बनकर घूम गया! उसके मस्तिष्क में ब्रह्म, जीव, चर, अचर, जड़, चेतन आदि के संबंध में अनेक नये-नये तर्कपूर्ण विचार उत्पन्न होने लगे।

"उठिये देव!"—अपने नवोन्मेषित ज्ञान का रहस्य जानने की उत्सुकता को वह अधिक देर तक संवरण न कर, महाकवि को पुकार बैठा।

निद्राभंग होने पर कालिदास ने देखा कि कुछ ही देर पहले का वह निपढ़ कुम्हार दैवी आभा से दीप्त शांत मुख-मुद्रा लिए पद्मासन से बैठा है। कुम्हार ने अत्यंत प्रांजल भाषा में गृह-कलह से लेकर विषपान तक की सारी घटना महाकवि को कह सुनायी।

"तुम अत्यंत भाग्यशाली हो मित्र"—कालिदास ने शांत, किंतु किंचित् पश्चातापभरी वाणी में कहा—"कठिन साधना द्वारा प्राप्त माँ वीणापाणि का वह देव-दुर्लभ महाप्रसाद तुमने अनायास ही प्राप्त कर लिया! मुझे तुम्हारे भाग्य से बड़ी ईर्ष्या है। किंतु पत्नी-त्रास की कथा सुनकर तुम्हारे प्रति मेरी सहानभूति भी कम नहीं। मैं स्वयं भी जीवन का सारा रस चूस लेने वाली, इस महाव्याधि से पीड़ित रहा हूँ। अब तुम उज्जयिनी चलो। मैं इस घटना को माँ भारती का संकेत मानकर तुम्हें षट्शास्त्रों में पारंगत बनाऊँगा। तुम उज्जयिनी के सम्राट् विक्रम की सभा में नवें रत्न के रूप में प्रतिष्ठित होगे। यही मेरा संकल्प है।"

बाद में महाकवि कालिदास ने उसी कुम्हार को शास्त्रों का उपदेश देकर घटखर्पर नाम से विभूषित किया, जो कालांतर में एक महाकवि के रूप में प्रख्यात हुआ।

★

डॉ. कैलाशनाथ मिश्र

मृतात्माओं के रहस्यमय लोक

हम मृत्यु के पहले कितने भयभीत होते हैं। इस स्थूल जगत और स्थूल शरीर का मोह हमें मृत्यु के भय से अस्थिर बना देता है। यदि हम यह जान जायें कि मृत्यु के बाद भी जीवन है, और इस स्थूल जगत से परे भी कोई सूक्ष्म संसार है, यहाँ के नश्वर आनन्द से सहस्र-गुना अधिक आनन्द उस जीवन और सूक्ष्म जगत में है, तो हमें कैसा लगे ? इस लेख को पढ़ कर जानिये कि मनुष्य कभी मरता नहीं है, और मृत्यु के पार अनेक सुन्दर जीवन के लोक हैं, और उनमें उत्तरोत्तर अनन्त जीवन-विकास का क्रम चल रहा है। मनुष्य की वैज्ञानिक चेतना आज तेज़ी से इन अगोचर अनन्त जीवन-लोकों की खोज में अग्रसर हो रही है।

देखो ! मृत्यु के दरवाज़े से झाँक कर देखो। दोनों ओर क्या है ? जीवन, केवल जीवन। इस ओर भी हम जीवित हैं और मृत्यु के बाद भी। मृत्यु तो एक परिवर्तन थी। स्थूल जगत् के स्थूल शरीर को छोड़कर अब आत्मा ने अपना अदृश्य रूप, सूक्ष्म रूप ग्रहण किया; उसे, अदृश्य और सूक्ष्म लोकों में जाना जो है! देखो, चारों ओर जीवन है– स्वच्छन्द, बहता हुआ और निर्भय। न धन की लालसा है, न बड़े होने की होड़ है, न धोखा है और न स्थूल जगत् का घृणित जीवन। चाँद, सूर्य, तारे कहीं कुछ नहीं हैं पर सर्वत्र प्रकाश है।

अरे! सूर्य, चाँद, ग्रह-नक्षत्र तो स्थूल जगत् के लिए स्थूल और नाशवान् चीज़ें हैं। हम तो अब दूसरे अदृश्य लोक में हैं। न भूख है, न प्यास, न युवावस्था का गर्व और न वृद्धावस्था का शोक। न कोई हिन्दू न मुसलमान, न ईसाई और न कोई अन्य धर्मावलम्बी ही। सब अपने रास्ते से आकर एक चौराहे पर मिल गये हैं। श्री विवेकानन्द ने ठीक ही कहा था–The end and aim of all sciences is to find a unit और महात्मा अरविन्द ने– All worship consciously or unconsciously leads to this end.

हम मृत्यु के पहले कितने भयभीत होते हैं। इस स्थूल शरीर और स्थूल जगत् का मोह हमें मृत्यु के भय से अस्थिर बना देता है। यदि हम यह जान जायँ कि मृत्यु के बाद भी जीवन है, इस स्थूल जगत् से परे भी कोई सूक्ष्म और अदृश्य संसार है, यहाँ के नश्वर आनन्द से सहस्रगुना आनन्द उस जीवन और सूक्ष्म जगत् में है, तो हमें कैसा लगे ?

वास्तव में देखा जाय तो हम मरते नहीं। जिस तरह हम कहते हैं कि यह हमारा अमुक वस्त्र है, वह अमुक (पर हम स्वयं वस्त्र नहीं हैं), उसी प्रकार यह हाथ, ये पैर, कान, आँख, अर्थात् पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, सभी कर्मेन्द्रियाँ और शरीर इत्यादि हमारा है, पर हम स्वयं यह सब नहीं हैं। यह इंगित करता है कि हमारी सत्ता कुछ और है, हम कुछ और हैं।

गीता का यह श्लोक भी यही कहता है–

न जायते मृयते वा कदाचित् नायं भूत्वा
भविता वा न भूय:
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते
हन्ययाने शरीरे ॥ गीता २–२०॥

यह स्थूल जगत् या पृथ्वी स्वप्न का संसार है। स्वप्न बनते हैं, मिटते हैं और उसी प्रकार यह जगत् भी बनता, बदलता और लोप होता रहता है। यह परलोक की छाया है, जो तीन परिमाणों, अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई, तथा तीन परिणामों यथा पदार्थ, समय और स्थान का बना और उसी पर आधारित है। हमारे इस स्थूल जगत् के चारों ओर ही एक अदृश्य जगत् है और हमारे इस स्थूल जगत् के चारों ओर उस अदृश्य जगत् के अदृश्य प्राणी भी हैं। हमारे इस स्थूल शरीर के अतिरिक्त हमारे चार अदृश्य शरीर हैं, जिससे हम इस दृश्य जगत् में रहते हुए भी अदृश्य लोकों में काम कर सकते हैं। ये चारों अदृश्य शरीर उन अदृश्य लोकों से सादृश्य रखते हैं, जो वायव्य लोक, दिव्य-लोक, मानसिक लोक तथा आध्यात्मिक लोक के नाम से जाने जाते हैं। हमारी दृष्टि से परे जो अदृश्य लोक हैं, वहाँ आत्माएँ चौथे परिमाण में तेज़ी से घूमती हैं; उन्हें इन तीन परिमाणों, अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती।

दिव्य जगत् और अदृश्य लोक क्या हैं, इसे भी हम अब देखें। दिव्य जगत् के भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं, क्योंकि जब मृतात्माएँ हमसे वार्तालाप करती हैं, वो भिन्न-भिन्न लोकों के नम्बर देती हैं। एक वार तो 'केंद्र' में एक आत्मा ने जब बताया कि वह १६वें लोक में रहती है, तो काफी आश्चर्य हो गया था। उसने भिन्न-भिन्न लोकों का संक्षिप्त वर्णन भी किया था The Other World by W. Spencer.

अब हम "स्पिरिचुअल हीलिंग" के पृष्ठ ३७–३८ से ऋषि राम राम जो स्पिरिचुअल हीलिंग सेन्टर-कोयम्बटूर के परलोकवादी अधिष्ठाता हैं, के कुछ संदेश उद्धृत करते हैं—

"लोक एक चक्कर में डालने वाला शब्द है। इसे सरलता से समझने के लिए हम उसकी तुलना इस जगत् से करेंगे। सूर्य मध्य में है। अनेक तारागण केंद्र से भिन्न-भिन्न दूरी पर हैं। यदि तारागण के स्थान में चक्र का घेरा ही तारागणों की सामग्री से भर जाय, तो कई इकट्ठे चक्र बन जायेंगे, जो दैव केंद्र से अपनी-अपनी दूरी के लिए आश्रित हैं। देवी केंद्र से और परे का पदार्थ स्थूल है और प्रकम्प धीरे हैं, इसलिए भिन्न-भिन्न लोकों के जीवों के लिए एक दूसरे को देखना कठिन है। यों समझिए कि लोक का आशय ब्रह्मांड में एक निश्चित केंद्र से एक अलग-अलग स्थिति से है।

एक लोक की वस्तु दूसरे लोक में भी हो सकती है, पर इनका वर्णन अलग-अलग

वर्गीकरण के लिए किया गया है, वहाँ की भौगोलिक स्थिति के लिए नहीं।

दिव्य जगत् (Astral World) दो भागों में विभक्त है। नीचे के लोकों को नरक तथा ऊपर के लोकों को स्वर्ग कहकर समझाया गया है। उनके सुख-दुख को समझाने के, लिए धार्मिक पुस्तकों में भिन्न-भिन्न सांकेतिक शब्द दिये गये हैं।

उपर्युक्त चौथे परिमाण के अतिरिक्त उन अदृश्य लोकों में एक पाँचवा परिमाण आत्म-विस्तार (Transprogression) का है। इसमें आत्मा इच्छानुसार कहीं भी जा सकती है। यह ऐसी शक्ति है, जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान तक हम अपने को पहुँचा देते हैं, पर वास्तव में हमें वहाँ जाना नहीं पड़ता।

उन अदृश्य लोकों में समय तथा स्थान का कोई प्रश्न नहीं। ऊँचे लोकों में गति प्राप्त करने के साथ-साथ ही नयी-नयी गुप्त शक्तियाँ प्रकट होती जाती हैं।

उन अदृश्य और दिव्य लोकों में विचार और उनके रूप ही हमें सुख या दुख देते हैं। यहाँ का विषयी जीवन वहाँ दुख का कारण बन जाता है। वास्तव में वह जीवन इस जीवन का ही सिलसिला होता है और वहाँ वही शक्ति, बुद्धि तथा गुण-अवगुण रहते हैं, जो हम इस पृथ्वी पर पैदा करते हैं। वहाँ शारीरिक बन्धनों से अबाधित हमारा जीवन स्फूर्ति, शांति और प्रसन्नता से परिपूर्ण होता है और परलोक में हमारे आगे के लिए एक खुला क्षेत्र होता है। चूंकि दिव्यजगत् भूलोक व मानसिक जगत् के बीच में है, इसलिए भाषा की कठिनाई वहाँ भी चलती है। वहाँ भावनाओं और विचारों के हिसाब से ही आपस में आकर्षण होता है। "दिलाइफ़ आफ्टर डेथ" में लैड्बीटर ने लिखा है, "वहाँ का जीवन कुछ लोगों के लिए दुखदायी है और कुछ लोगों के लिए सुखदायी भी। जैसी यहाँ जिसने तैयारी की है, उसीके अनुसार ही उसे वहाँ मिलता है।"

मि. डब्लू. टी. स्टेड के मत में जब आत्मा इस लोक को छोड़कर परलोक में प्रवेश करती है, तो अपने को निस्सहाय अनुभव करती है, पर यह दशा अधिक काल तक नहीं रहती। जल्दी-जल्दी ज्ञान प्राप्त होता जाता है।

जब हम मरते हैं, तो यह स्थूल शरीर अलग हो जाता है और एक ऐसा शरीर मिलता है, जो इस शरीर से बिल्कुल मिलता-जुलता है। वह सूक्ष्म द्रव्य का बना होता है। इसी प्रकार हमारे उस लोक की वस्तुएँ भी उसी सूक्ष्म द्रव्य की बनी होती हैं, जो अधिक स्थायी होती हैं। पादरी चार्ल्स ड्रेटन टामस की पुस्तक "सप्रमाण मरणोत्तर जीवन" में भिन्न-भिन्न लोकों का अच्छा

वर्णन किया गया है। ये वर्णन लेखक को अपने मृतक पिता तथा बहिन की आत्माओं के संदेश हैं।

परलोक में नीचे के लोक पिछड़ी आत्माओं के सुधार के लिए होते हैं। हम प्रायः घरों में भूतों के रहने की बात सुनते हैं। कभी पत्थर फेंके जाते हैं, कभी आग लगती है तथा कभी अन्य प्रकार के उपद्रव होते हैं। ये कार्य निम्नकोटि की आत्माओं द्वारा ही किये जाते हैं, जो परलोक में शांति से न रह सकने के कारण उपद्रव करती हैं। इन निम्नलोकों की नीचे दर्जे की आत्माएँ बहुधा बदला लेने के लिए बह सब करती हैं। "द अदर साइड आफ डेथ" में मि. लैडबीटर ने ऐसी घटनाएँ दी हैं। ये आत्माएँ जो तब भी संसार में आसक्त रहती हैं, अपना अस्तित्व बताने के लिए सब मार्ग ढूँढ़ती हैं और कितने ही लोक, यहाँ तक कि अधूरे माध्यम तक इनके शिकार बन जाते हैं और तब पीछा छुड़ाना बड़ा कठिन हो जाता है।

परलोक में मनुष्य की आत्माओं के अतिरिक्त अनेक अन्य आत्माएँ भी हैं, जिन्हें परी, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। निम्न कोटि की आत्माओं को हम भूत, प्रेत, पिशाच, चुड़ैल इत्यादि नामों से पुकारते हैं। वाममार्ग के उपासक बहुधा इन्हींकी सिद्धि करके इन दुष्टात्माओं से जादू के खेल दिखाया करते हैं, जिनको ये आत्माएँ अपने ही निम्नलोकों में सा को मृत्यु के बाद घसीट ले जाती हैं।

"प्रयोगात्मक प्रेत विद्या" में निम्नलोकों की विभिन्न प्रकार की आत्मा को वश में करने के विभिन्न साधन हुए हैं। उच्चलोकों की आत्माओं आकर्षण के लिए कुछ अन्य कोटि के, उ भी उच्चलोकों के लिए और उच्च कोटि अन्य साधन भी हैं। इन विभिन्न साधनों जितनी सूक्ष्म तरंगें पैदा होती हैं, कोटि की आत्मा का आवाहन-आक होता है।

दिव्यलोक से जब हम ऊपर चढ़ते तब हमारी फिर मृत्यु होती है। श्री रामराम के शब्दों में "मानसिक लो उत्पादक स्फूर्ति का लोक है और जगत् समस्त सृष्टि तथा जीवित वस्तु लोक से आती है। इसे ही ब्रह्मलोक क हैं। लाक्षणिक रूप में इसका वर्णन च मुखवाले ब्रह्मा से किया है। ये चारों चारों परिमाणों को बताते हैं और पाँच मुख जो ग़ायब हो गया है, पाँचवें परिम को जो भीतर की ओर फैला है, बताता (Life of Ram Ram pp. 46.)

आध्यात्मिक लोक जीव (Soul की यात्रा का अंतिम लक्ष्य है। श्री राम राम ने इसका बड़ा अच्छा दिया है। मनुष्य की भाषा उसका

ठीक ध्यान नहीं करा सकती। इस लोक में ही वे दैवी विभूतियाँ हैं, जो ब्रह्माण्ड के विकास का संचालन करती हैं। यही महाविष्णु या अल्लाह का निवासस्थान है। यह प्रकट लोक सृष्टि में सबसे ऊँचा है और इसे ही बैकुण्ठ कहते हैं। वहाँ ही महान् महापुरुष संकल्प और कार्य करता है। वहाँ की आध्यात्मिक तरंगें जब कभी इस लोक में आती हैं, तो उन्हीं की चोटियों पर दैवी अवतार होते हैं।

आध्यात्म का अप्रकट और ऊँचा निर्वाण लोक का है। जहाँ अस्तित्व का भी अस्तित्व नहीं। इसे ही हम शिवलोक कहते हैं। यह सृष्टि का सबसे शीतल रूप है और यहीं सब का आरम्भ और अंत है (Life of Ram Ram pp. 47-48.)

दिव्य लोक में कर्म का नियम है और मानसिक लोक में क्रिया और प्रतिक्रिया का। "लाइफ ऑफ राम-राम" से कुछ पंक्तियाँ दे रहे हैं। "इन ऊँचे लोकों में विनाश की क्रिया बहुत ही कम होती है, इसलिए प्रत्येक विचार या संकल्प हमारे व्यक्तित्व पर स्थायी चिह्न छोड़ देते हैं। प्रत्येक छोटी घटना भी स्थायी रहती है। दिव्यलोक की घटना समय पाकर विलीन भले ही हो जाय, परन्तु विचार नहीं मिटते और ग्रहण करने वाले मन पर वे अपना प्रभाव छोड़ देते हैं। एक विचित्र और याद रखने की बात यह है कि दिव्य और मानसिक लोकों में ऐसे भी निवासी हैं, जिनकी भौतिक स्थिति कभी भी नहीं रही।"

उपर्युक्त लेख में जो कुछ भी दिया गया है, वह कल्पना नहीं, वरन् संसार के विभिन्न आध्यात्मिक केंद्रों में मृतात्माओं से प्राप्त संदेश हैं, जो इसे विश्वसनीय प्रमाणित करते हैं। अन्त में हम डा. पीवल्स की आत्मा के निम्न संदेश से यह लेख समाप्त करते हैं–

"संसार एक बोलता हुआ विस्तृत प्रांगण है। ईश्वर धरती से सितारों तक सर्वत्र व्याप्त है। प्रत्येक परमाणु जीवन से प्रज्ज्वलित है। वे आत्माएँ जो ऊपर के लोकों में कार्य कर रही हैं, इस संसार के थके-माँदे लोगों तक प्रेम, सत्य और बुद्धिमत्ता के संदेश देती हैं। प्रेम विश्वव्यापी नियम है।"

☆

आत्मा जो हमारा आध्यात्मिक जीवन है, हमारा अमरत्व अपने में छिपाये हुए है।

–महात्मा गांधी

☆

समायोजन। इस दृष्टि से सीमित हो जाने पर यह स्वाभाविक था कि 'कल्पना' आपत्तिजनक लगती। मनुष्य की उच्च आध्यात्मिक संभावनाओं के प्रकाश ही में 'कल्पना' के प्रति न्याय किया जा सकता था।

यह कार्य युंग ने संपन्न किया। उन्होंने 'सामूहिक अवचेतन' के घोर यथार्थ की ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान आर्कषित किया और मानवात्मा की अमित शक्तियों एवं रहस्यों का सन्धान किया। उन्होंने प्रथम वार 'कल्पना' को "प्रत्येक सुन्दर विचार और प्रत्येक सृजनात्मक कार्य की जन्मदात्री" के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने सिद्ध किया कि केवल कलाकार ही नहीं, ऊँची रचनात्मक साधना में संलग्न प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धियों का श्रेय एकमात्र उस 'फैंटेसी को है, जिसे फ्रायड और एडलर ने मात्र 'बचकानी उड़ानें' कहकर तिरस्कृत किया है। यह माना कि फैंटेसी का सक्रिय आधारभूत तत्व 'क्रीड़ा' है और चूंकि क्रीड़ा का सम्बन्ध मनुष्य के बाल्यकाल से अधिक है, अतएव वयस्क-जीवन के गम्भीर दायित्वों तथा 'फैंटेसीज़' में परस्पर विरोध जान पड़ता है, किंतु ज़रा गहरे उतर कर सोचा जाय, तो जान पड़ेगा कि यह विरोध सतही है, मूलभूत नहीं। वास्तव में प्रत्येक ऊँची 'सर्जना' का उद्गम 'कल्पना की क्रीड़ में ही निहित है। यह सही है कि 'फैंटेसी अपने आप में कोई मूल्य नहीं रखती वे तो कच्चे अयस्कों की भाँति हैं औ उनसे सोना प्राप्त करना खेल नहीं बिरलों ही में वह संश्लेषिका प्रति पायी जाती है, जो कल्पना के इस वरदा का लाभ उठा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युंग, मनोविज्ञान कल्पना को मानव-चेतना एक विशिष्ट शक्ति के रूप में पहचानक ही संतुष्ट नहीं हो जाता, अपितु मनुष्य की लौकिक एवं पारलौकिक सर्वो महत्त्वाकांक्षाओं के केन्द्र में प्रतिष्ठित कर है। कपोल-कल्पनाएँ कहकर जिन मानसि प्रक्रियाओं की भर्त्सना की जाती रही उन्हें युंग ने मनुष्य की समस्त कारयि प्रतिभा का उद्गम ठहराया और 'कल्पन को उस शीर्षासन पर प्रतिष्ठित किया, महान् कवियों, दार्शनिकों एवं धर्मप्रवर्त की गहनतम अनुभूतियों पर आधारित है उनके अनुसार "कल्पना एक अलौकि संश्लेषणात्मक, समस्त द्वंद्वों का सामंज करने वाली महाशक्ति है," उनकी खोज का पूर्व समर्थन हमें विश्वविख्या अंग्रेज़ी कवि कालरिज़ की एतद्विषय विचारणाओं में प्राप्त होता है।

युंग की इस परिभाषा को हृदयंगम

चुकने के बाद 'कल्पना' के विषय में प्रचलित अन्य धारणाएँ कितनी सीमित और हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। कल्पना को चित्र-विधान का पर्याय माननेवाले लोगों की आज भी कमी नहीं, दूसरे वर्ग में ऐसे लोग हैं, जिनके लिए रूपक-उपमादि अलंकारों का प्रयोग कर सकना ही 'कल्पनाशील' होने के लिए पर्याप्त है। तीसरा वर्ग उन लोगों का है, जिनके मतानुसार 'किसी पात्र की मानसिक स्थिति से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर सकना ही 'कल्पना' की कसौटी हैं। इनसे भी आगे बढ़े हुए वे लोग हैं, जो 'कल्पना' और 'अन्वेषण' में कोई भेद ही नहीं करना चाहते।

स्पष्ट ही ये चारों मान्यताएँ एकांगी हैं और अपने एकत्र रूप में भी 'कल्पना' के वास्तविक रूप का परिचय नहीं देतीं। कल्पना का सर्वांगसुंदर और सर्वथा संतोष-जनक तात्विक निरूपण, जैसा युंग ने किया, वैसा कोई मानसशास्त्री नहीं कर पाया। हाँ, कवियों में कालरिज ने कल्पना की जो व्याख्या की है, उसमें युंग की सर्वांगीणता के साथ-साथ एक महान् कवि की अन्तर्दृष्टि का स्वर्णकांचन योग है। अतः इस लेख का उपसंहार भी कालरिज के 'बायोग्रेफिया लिटरेरिया' से एक उद्धरण देकर करना अनुपयुक्त न होगा :–

"कल्पना मन्त्र के समान सम्मोहक प्रभाव रखनेवाली एक अलौकिक शक्ति है, जिसका प्रधान गुण संश्लेषण है (देखिए–युंग की परिभाषा) यह समस्त द्वंद्वों का लय करके भेद में अभेद और अनेकता में एकता आभास करानें वाली शक्ति है। इसकी महिमा से पुरानी और सुपरिचित वस्तुओं में भी एक अनोखी नवीनता का आभास होने लगता है। एक मधुर रसावेश में कवि तन्मय हो जाता है और जड़-चेतन समग्र सृष्टि एवं अपनी आत्मा में सर्वत्र एक ही प्राणों का स्पंदन महसूस करने लगता है। कल्पना का स्वामित्व प्राप्त कर लेने पर कवि को अपनें मनोराज्य में समस्त संवेदनों, अनुभूतियों एवं विचार-पुंजों को एक महत्तर विचार और एक सर्वव्यापिनी भावना में समाविष्ट करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

* * *

कला अति सूक्ष्म और कोमल है। अतः अपनी गति के साथ यह मस्तिष्क को भी कोमल और सूक्ष्म बना देती है।

–श्री अरविन्द

* * *

दिनकर सोनवलकर

●

स्वायत्त व्यक्ति और नकली कृतित्व

आज कैसा बुरा वक़्त आया है
कि मेरे पाँव लड़खड़ा रहे हैं,
मेरे हाथों में
हथकड़ियाँ पहनायी जा रही हैं,
मेरे माथे पर
कलंक के निशान दागे जा रहे हैं,
मेरे तने हुए सिर को
सूली का भय दिखाकर
झुकाया जा रहा है,
और ऐसे में–
मैं चारों तरफ देखता हूँ
कि कहाँ हैं मेरे दोस्त
वो हम सफ़र, हम दर्द दोस्त,
जो मेरे साथ क़दम मिला के चलते थे,
जिन्होंने मेरे हाथों से हाथ मिलाये थे,
मेरे साथ रेस्ट्रां में काफी पी थी,
प्रगतिशील फ़िल्में देखी थीं,
जिन्होंने गोष्ठियों में
साहित्यकार की आस्था
उसकी स्वतंत्रता और ईमानदारी पर
निबन्ध पढ़े थे,
परिसंवाद आयोजित किये थे,
गरम-गरम बहसें की थीं–
लेकिन आज मेरी मुसीबतों में
उनमें से एक भी दिखायी नहीं देता।
सब के सब
अपने ड्राइंग रूम में छिपे बैठे हैं
फुल वाल्यूम से रेडियो लगाये बैठे हैं
(जिससे मेरी पुकार
उन तक पहुँच ही न सके)
शायद उनके मुँह में
भीष्म पितामह की तरह
किसी के एहसानों का नमक भरा है
उन्हें अपने अन्नदाता के
नाराज होने का भय है
बड़े मंत्रियों, लीडरों,
सेठों की गुड बुक्स में से
नाम कट जाने का डर है।
उनके हाथ: ज़ुल्म के खिलाफ
विद्रोह का परचम उठाने में असमर्थ हैं
उनका वक्ष: मेरी खातिर
कवच बन जाने के अयोग्य है।
कहाँ है मेरे हम सफ़र
हमदर्द दोस्त?

जिन्होंने मेरे नाम के चैक
खुलकर भुनाये
मेरे कंधों पर से गोलियाँ दागीं
मुझे अपनी प्रगति की नसैनी बना
स्वयं ऊपर चढ़ गये।
आज सबके सब
लापता हैं, ख़ामोश हैं,
और ये भी मुझे है मालूम
कि कल जब बाजी पलट जायेगी
पानी उतर जायेगा
मेरा सितारा फिर बुलन्दी से चमकेगा
तब
ये ही तथाकथित कामरेड
अपने-अपने घोंसलों से निकलकर
शाब्दिक और बौद्धिक सहानुभूति के
नक़ली हीरों से
मेरी झोली भर देंगे
विजेता का गर्व लिए
घोषित करेंगे :
"अच्छा, तुम पर कोई
मुसीबत आयी थी
और हमें ख़बर भी न हुई ?
वरना हम ये करते, वो करते"
और मैं
सोचता रह जाऊँगा
कि ऐसे साहित्यकार की
आस्था का क्या होगा ?
ईमानदारी, दायित्व जैसे बड़े-बड़े
शब्दों का क्या अर्थ है ?
आख़िर वे किस मर्ज़ की दवा हैं ?
वे परिपत्र, वे गोष्ठियाँ, से परिसम्वाद
महज एक फ़ैशन थी
या बहुत बड़ी स्नाबरी ?
हरदम यही कथा दुहरायी जावेगी
इसी नाटक की पुनरावृत्ति होगी,
हमदर्दी का रिहर्सल होगा,
और जब
निकष पर कसे जाने का क्षण आयेगा
तो सभी
अपनी असली शकल में आ जायेंगे।
इसीलिए
आज के रचनाकार के कृतित्व पर
नक़ली पालिश चमकती है
और रचनाकार स्वयं
ख़ोखला व्यक्तित्व जीता है—
खेत में खड़े किये गये
घास-फूस के ढाँचे जैसा
जिसके होते हुए
आवारा पशु
पीढ़ियों की फ़सल चर जाते हैं
और उसके सिर पर
पक्षी बीट करते हैं।

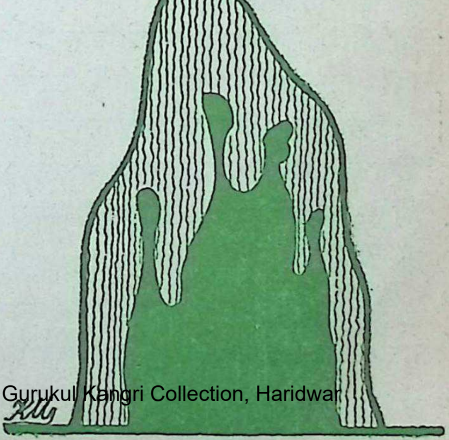

सत्येन्द्र सक्सेना

●

क्षितिजों को समेटती सुरावलियाँ:
श्री सज्जाद का मन्डोलिन

●

महामालव की पुराण नगरी दशपुर (मन्दसौर) के पार्श्ववर्ती सीतामऊ के मयूरों की कूक से गूंजती, मेघाच्छादित वन-मालाओं में, जाने किस घिरते अप के तीसरे पहर रसेश्वरी की वीणा से एक रस-रागिनी फूट पड़ी, जि श्री सज्जाद के रूप में जन्म लिया। मालव के पारगामी मैदानों के विस्त श्री सज्जाद की उँगलियों में सिमट आये, और उनके मेंडोलिन की सुरावलि में किन्हीं अगम्य विस्तारों से रहस्य खुलने लगे। श्री सत्येन्द्र सक्सेना सुर-मर्मगामी कलम से इस एकांत साधक कलाकार की कला का परिचय पाठ

●

विज्ञान के प्रेमियों की कलात्मक साधना 'काल्पनिक' नक्षत्रों का रहस्य आलोकित कर 'साध्य' को जीवन देने में स्वयं बलिदान हो रही है, परन्तु खेद है कि भारतीय संगीत श्रोताओं की वैज्ञानिक आराधना न जाने क्यों, उस चमकते नक्षत्र को नहीं देख पा रही, जो बम्बई के माहीम बाज़ार में नाद ब्रह्म की उपासना में विलीन, सरस्वती को साकार करने में, प्रयत्न की धूनी रमाये हुए हैं।

१५ जून १९१९ की बात है कि जब जनाब मोहम्मद अमीर खाँ की इबादत से खुश हो अल्लाह ताला ने एक सितारा बेटे के रूप में, उन्हें बख्शा। मालवा प्रांत सीतामऊ राज्य का धुंधला प्रकाश धुंधला न रहा। जन्म से ही पिता के सित की शर्मीली तरबों ने बालक की इन्द्रियों को ऐसा सुर में मिला दिया जिसने भी उन्हें छेड़ा स्वयं सुरीला हो गया नन्हीं-नन्हीं उँगलियों की मित्रता सितार बहुत घनिष्ट होगयी। इधर जवानी होन बालक को अपना बनाने को व्याकुल थी वालिद साहब और भाइयों की इ के विरुद्ध 'दीवाना' संगीत को गिज़ा ब जीता रहा। उसके मित्रों का 'दुक्कड़' से बदलता गया,—बाँसुरी,

तरंग, बुलबुल तरंग, गिटार और वायलन सब अपने प्रिय मित्र पर गर्व करने लगे। उस्ताद मुराद खाँ की वीन सुन तरुण कलाकार ने उसकी ओर भी मैत्री का हाथ बढ़ाया। पिता से डरते-डरते 'बीन' खरीदने की प्रार्थना की गयी, परन्तु निराशा की ऐसी 'घा' पड़ी कि अभिलाषा स्वर्ग सिधार गयी–कारण था सरस्वती से लक्ष्मी की नाराज़गी।

और वह दिन जीवन में एक नया मोड़ लाया कि जब बड़े भाई सीतामऊ के राजकुमार की मैन्डोलिन ले घर में आये। 'साधक' ने नये मित्र से छेड़छाड़ की ही थी, कि दोनों एक-दूसरे पर फ़िदा हो गये। वही बीन का 'अचल ठाठ' इसमें भी मिला। प्रसन्नता और उत्साह की सीमा भी हाथ जोड़ गयी। साज़ ख़रीदा नहीं जा सकता था, परन्तु लगन 'बेताला' न हुई। स्वयं हाथों से सृष्टि की गयी और जी तोड़ तपस्या आरम्भ हुई।

परन्तु १९३५ में पिता का साया अल्लाह को प्यारा हो गया। ईमानदार साधक दुखीमन भटकने लगा। दुविधा नें सुविधा को ऐसा डसा कि बेचारा स्टेट छोड़ने को वाध्य हो गया।

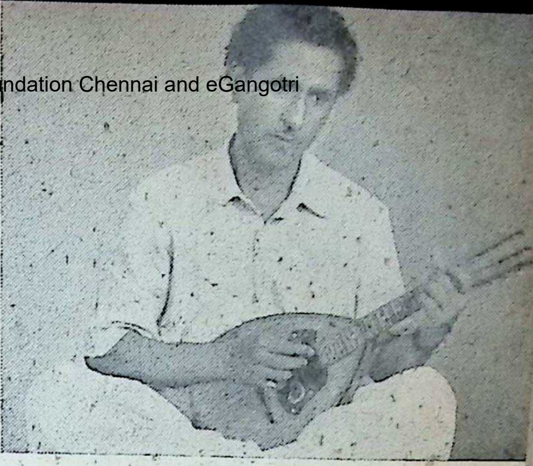

सुरों के जादूगार श्री सज्जाद

सन् १९३७ में एक नयी दुनिया बम्बई के दर्शन हुए। पैरों पर खड़ा होना था। फ़िल्मी दुनिया ने मामूली कलाकार के रूप में हाथ पकड़ा। धीरे-धीरे ये नगरी भी इनकी अनोखी प्रतिभा से निखरने लगी। १९३९ में आकाशवाणी ने भी इसकी कला की सुगन्ध से वातावरण पवित्र क्रिया। और शौकत हुसैन के 'दोस्त' ने तो चित्रपट-प्रेमियों को धोका देने का साहस ही न किया। नूरजहाँ की नशीली दर्दीली आह 'मोरे साजना मोरे साजना दिल की दुनिया बसा, आ गले लग जा' ने न जाने कितनी सूनी माँगों में श्रृंगार की सिहरन भर दी। के. आसिफ़ के हृदय की हलचल सुरीली रसीली लता, कुछ यूं कह 'गयी आज मेरे नसीब ने मुझ को रुलारुला दिया' कि चहूँ ओर रूठे नसीब को मनाने का 'रियाज़' गर्मी पकड़ने लगा। और तलत की 'ये हवा ये रात' ने 'संगदिल' रातों को भी पिघला दिया। संगीत निर्देशक की ख्याति तो अमर होनी ही थी। बीस फ़िल्मों का संगीत फ़िल्मी संगीत प्रेमियों के लबों का

शबाव बनाने का श्रेय उसी सीतामऊ के बालक को है।

सन १९४७ की याद बेचारे के मन की दशा सुनने वाले को उदास कर देती है। हिंदू-मुसलमानों के झगड़े में मकान-सामान गया तो ग़म न हुआ, परन्तु मैन्डोलिन ऐसा गया कि अधमरा बना गया। सौभाग्यवश १९५४ में एक पुराने मँजे हुए मैन्डोलिन को इन 'सधी' उँगलियों का प्यार मिला। जम कर साधना का श्रीगणेश हुआ।

इस कलाकार के दिमाग़ का ध्येय शायद नयी खोज करना ही है। पुराने 'साज़' का चौथा तार अकेला ही था—उसका जोड़ा रूठ गया था, लिहाजा उस पर 'बीन' की तरह 'मींड' खींची। प्रयोग सफल हुआ, उत्साह उमंगित हुआ ; विचार ने ज़ोर मारा कि क्यों न अपने साज़ पर सितार, बीन और सरोद का बाज वजाया जाय। 'मींड' और 'सूंथ' लेने से राग सही रूप से अदा, भी हो सकेगा। इसलिए तीसरे जोड़े को भी 'विधवा' बना उससे 'सरोद', 'ऊद', और 'रवाब' का काम लिया गया। पहले और दूसरे जोड़े ने 'आलाप' को 'तरबों' के रूप में सहयोग दिया। जब गत बजी तो पहला 'सुर' और दूसरा 'पंचम' की समाधि में था। परन्तु इस एकाग्रता को भंग भी किया गया कि जब इन्ही तारों से 'चिकारी' का काम लिया। साज़ की 'खूटियों' ने अपने सेवक से प्रसन्न हो उस पर अपना सर्वस्व ही अर्पण कर दिया। उनके 'उतार' 'चढ़ाव' से साधक राग का पूरा आलाप करने में सफल हुआ। इस प्रकार किसी भी 'परदे' को 'सुर' मान 'राग' का विस्तार साकार होने लगा। ये साधना अपने ढंग की निराली ही है कि जो आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों का शिकार बन जाती है।

सन १९५६ में कलकत्ते के संगीत सम्मेलन में सुलझे हुए बंगाली श्रोताओं के वीच ये मैन्डोलिन ऐसी बजी, कि जिसकी याद अब भी रोमाँच का आधार वनती है। सरल स्वभाव से लोग कह उठे 'आप म्युज़ीशियन नहीं मैजीशियन हैं।' करामत खाँ के तबले के साथ 'मालकोंस' और 'हरिकोस' के रंग ने सारे बंगाल को रंग दिया। स्टेज से नीचे उतरे ही थे कि पटवर्धन जी ने कुछ यूं स्वागत किया, 'धन्य है धन्य है, क्या रियाज़ किया है, पानी की तरह रवानी है।' विलायतखाँ साहब की पूज्य माँ की दाद भी जवाब नहीं 'विलायत की कसम, तीस साल से कांन्फ्रेन्स सुन रही हूँ, लेकिन आज पहली वार ऐसा लग रहा है कि आसमान से रस की वूंदें टपक रही हैं। ग्रीन रूम में पहुँचे तो उस्ताद गुलाम अली खाँ के साज़ सुरीले हो रहे थे। अनुरोध हुआ कि कौनसा साज़ है जो ऐसा वजता है। देखा तो यक़ीन

न हुआ कि सरस्वती इस साज़ पर भी मोहित हो सकती है। खाँ साहब के कहने ने मैन्डोलिन छेड़ने को बाध्य कर दिया। उस्ताद की एक छोटी सरसीली तान का साथ हुआ फिर ज़रा उससे बड़ी का, फिर तीसरी लम्बी और तैयार तान को भी न्याय दिया गया। खाँ साहब, बेसाख़्ता कह उठे, 'तन्त्रकार की क्या ताकत जो इनको छू सके, गवैया भी इनकी तान अगर कह देगा, तो मैं दो हज़ार रुपये देने को तैयार हूँ। और अमीर खाँ साहब का ये वज़नी वाक्य कि 'फिल्म में संगीत तो देते ही हैं, लेकिन शास्त्रीय गायक जहाँ खत्म करता है, वहाँ ये शुरू करते हैं' इस कलकार की कला का पांडित्य दरशाता है।

बातचीत में गांभीर्य के साथ हास्य की गम्भीरता का पुट भी बेहद भरा है। मन में एक 'लिस्ट' वनी है कि जिसके विचार से रूह फ़ना होती है। हवाई जहाज का स्थान सबसे ऊपर है। सीलोन की एक फ़िल्म में संगीत जो देना था। जीवित मंज़िल पर पहुँचने और साबूत लौट आने के लिए चार भिखारियों को पेट-पूजा करवायी गयी। दूसरे पद पर पहुँचने का श्रेय है अस्पताल को कि जहाँ डाक्टरी पढ़ने वालों की छेड़छाड़ ही जान ले जाती है। तीसरा है आकाश और पाताल का रिश्ता जोड़ने वाला 'लिफ्ट' कि जिसमें अकेले सफ़र करने की क़सम ही खा ली है। अन्त में मोटर साइकिल का महत्व भी कम नहीं। स्वप्न में भी यदि दर्शन हो जायँ, तो यम साक्षात् मुस्कुराते नज़र आते हैं।

मैन्डोलिन के तारों को चूमती, टिमटिमाते सितारों को लजाती दो उँगलियाँ, अल्लाह मेरे, सलामत रखना। मिज़राब की मार खा दर्दीले स्वर की गूंज चहुँ ओर से क्षितिज को अपने जिगर में समेटने को व्याकुल रहती है और इस तड़पन की चोट खा श्रोताओं का कलेजा, तन से नाता तोड़, न जाने कहाँ थिरकता रहता है। एक भोली भाली 'आरोह' 'अवरोह' की तान ऐसा रूप धारण करती है कि मानों रसीली गंगा की मखमली चादर, हिमालय की चोटी से शंकर महाराज ने बिछाते-बिछाते श्रोताओं को घेर वापस लपेट ली हो। और जव गले को शरबती अँगूर के रस की बूंदे सींचती है, तो आत्मा तर हो, दुआ देती है। उलझी तानों की तैयारी रसीली रस्सियों में शरीर को कुछ यूं जकड़ती चली जाती हैं कि अस्तित्व मिटाने में ही जीवन दीखता है। शायद यही है, ललित कला।

६ मई १९६२ को मेरी सज्जाद साहब की ये पहली मुलाकात थी कि जिसने दिन के सवा बारह बजे 'बढ़त' शुरू कर साढ़े सात बजे 'पंचम' पर आ विश्राम किया और फिर रात सवा दस से जो बैठे, तो सुबह डेढ़ बजे 'टीप' का सुरीला सा लगा।

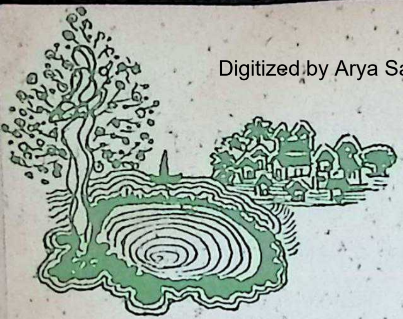

डॉ. सोमदत्त गर्ग

सत्यावतरण

श्याम संध्या के तरंगायित सहन में
अतल जल के श्याम आंगन
हिल रहा जो, ज्योति का स्थगित जलयान
शायद, तुम्हारी छबि की शिखा है–
प्रज्ज्वलित। घिर-घिर प्रकम्पित।
पार करना चाहता हूँ बाहुओं में भर
किन्तु, मन-चिन्तन,
इस तरह आविष्ट अनुभव कर रहा हैं
कि लगता मैं नहीं हूँ।
एक अशरीरी गंध लय हैं।
एक ध्वनि है–मौन की। अनुगूंज में।
एक चेतन–अचेतन वातावरण से।
सुदूरातीत में शंख से बज-बज रहे हैं,
सुदूरातीत मढुलियों में घंटियाँ–स्वप्निल लहरियां,
चारों ओर वृत्ताकार में बह-बह रही हैं।
लगता हुआ पुंजीभूत सत्यावतरण है।
यह अँधेरे का उभार
शिला प्रस्तर की परत पर परत, बेटूटी कतार,
काँपती उसमें किरन की कनी की हिलती कगार,
चिर हमारे। बस हमारे। ये उजागर बिम्ब।
चिर के सहारे। दृढ़ सहारे। अरूपे प्रतिबिम्ब।
यही तो है। हाँ यही है। नयन का विस्तार
जिसकी प्रतीक्षा में जागता था आज प्राण उलीच
बाहों में गुंथे, स्वीकार्य की अतिराम मुद्रा
इस अँधेरे कगारों में, एक प्राण, तन, मन हो चुका हूं।
हर अँधेरा धो सका हूँ। खूब सच्चा रो सका हूं।

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

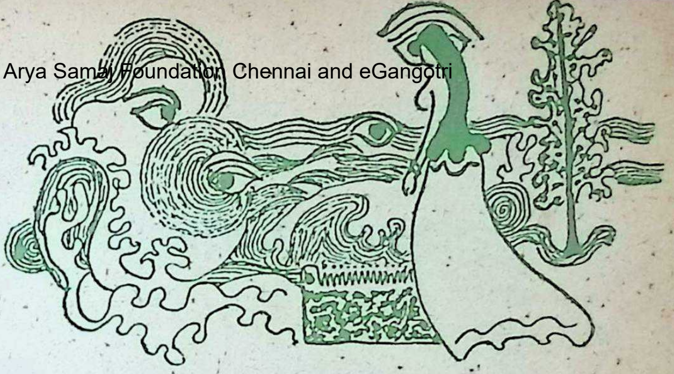

मणिका मोहिनी

●

तुम अपरिमेय

तुम अपरिमेय हो !
तुम्हारे स्वरूप के आकर्षण में बंधे नेत्र
तुम्हें देखना-देखना और बस देखना चाहते हैं।
मेरी आत्म विस्मृति संज्ञा तब कहती है–
कुछ ऐसा और है तुममें
जो अरूप है, अदृश्यमान है,
और सुन्दर का शिवरूप है।
इस अरूप अदृश्यमान
अंतिम सौंदर्य को देखने के
बे-आस प्रतीक्षिक हैं नेत्र।
तुम पूर्ण रूप से भी अधिक हो,
प्रत्यक्ष से भी परे हो,
और जो दिखते हो, समझ में आते हो,
उससे आगे भी बहुत-बहुत हो.....
और मैं जानते हुए भी
तुम्हारा वह अद्वितीय, अबोध स्वरूप
पहचान नहीं पाती,
समझते हुए भी देख नहीं पाती,
महसूस करते हुए भी महसूस कर नहीं पाती।
तब मेरे नेत्र तुम्हें देखना–
देखना–और सिर्फ़ देखना चाहते हैं

डॉ. गणपतिराय पुरोहित

लोकोत्तर सौन्दर्य और आनन्द

* * *

लौकिक सौन्दर्य और आनन्द की ऐंद्रिक लीला के भीतर, एक ऊर्ध्वोन्मु अभीप्सा के साथ तल्लीन भाव से जीते हुए, पूर्ण से पूर्णतर सौन्दर्य अ आनन्द की ओर हमारी अन्तश्चेतना की जो उत्तरोत्तर सहज प्रगति है, ज अन्ततः हमें लोकोत्तर आनन्द की उस भूमिका में पहुँचा देती है—जहाँ इन्द्रि अपने-अपने विषय के साथ तदाकार हो जाती हैं—और अनुभूति में अतीन्द्रि आनंद का एक निःसीम और निर्बाध समुद्र ही शेष रह जाता है। डॉ. पुरोहि ने अपनी मुक्त चिन्तनानुभूति से यहाँ सिद्ध कर दिखाया है, कि भारतीय प्र ने लौकिक और लोकोत्तर के बीच कोई विरोध नहीं देखा है : बल्कि दोनों के बीच की परम एकतानता (Polarity) को ही योग कहा है।

* * *

तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि इस लोक और इससे अधिक उत्कृष्ट लोकान्तरों में जो सुख मिल सकता है, वह एक ब्रह्मनिष्ठ को उसकी चाह के बिना ही मिलता रहता है। दूसरी ओर कठोपनिषद् में लिखा है कि नचिकेता को आत्मज्ञान की प्राप्ति से विरत करते समय यमराज उससे कहते हैं : "गाजे बाजों के साथ रथों में बैठी हुई ऐसी सुन्दरियाँ, जो मनुष्यों को नहीं मिल सकती हैं, मैं तुझे सेवा के लिए देता हूँ, पर तू आत्मा के सम्बन्ध में मुझसे कुछ भी मत पूछ"। नचिकेता भी मनुष्य है। एक ब्रह्मनिष्ठ भी मनुष्य है। प्रथम को लोकोत्तर सौन्द का प्रलोभन दिया जाता है, पर दू (ब्रह्मनिष्ठ) को लोकोत्तर आनन्द स्व ही मिलता रहता है। अब प्रश्न यह है सौन्दर्य और आनन्द का क्या सम्बन्ध है संसार के सभी प्राणी—आनन्द में ही जीवि हैं और आनन्द प्राप्ति के जितने भी माध्य हैं, उनसे सौन्दर्य का स्थान प्रमुख है।

महर्षि बनने से पूर्व विश्वामित्र ए राजा थे। राजा होने के नाते सांसारि सभी सुखों के साधन उन्हें प्राप्त थे। उन्हों वन में जाकर तप करना प्रारम्भ किया किसी भी तप के पीछे वर्तमान अवस्था

अधिक सुख और शांति की अवस्था प्राप्त कर लेने की इच्छा या उद्देश्य वर्तमान रहता है। एक बड़े साम्राज्य का राजा जब युवावस्था में कठोर तप में लग जाता है, तब उसका यही आशय होता है कि वह अपने विशाल साम्राज्य से जो सुख भोग रहा था, उससे अधिक सुख के लिए लालायित है। साधारणतः सांसारिक सुख की मात्रा का अनुमान सुख-भोग की वस्तुओं की कमी या आधिक्य के आधार पर किया जाता है। विषय-भोग की वस्तुओं के दो भेद हैं—(१) दृष्ट और (२) आनुश्रविका। इस संसार में उपलब्ध विषय भोग की वस्तुओं को दृष्ट और स्वर्गादि लोकों में पायी जानेवाली भोग की वस्तुओं को आनुश्रविक कहते हैं। स्वर्ग में जाकर कोई लौटकर नहीं आता, परन्तु मान लीजिए कि सचमुच कोई व्यक्ति यदि स्वर्ग में जाकर यहाँ लौटता है, तो वह वहाँ पर यहाँ मिलनेवाली वस्तुओं से अधिक कुछ न देख सकेगा। वहाँ पर कल्पवृक्ष और कामधेनु है, पर दोनों के कल्प और काम, जिनका अर्थ एक ही है, निकाल दें तो वृक्ष और धेनु बच जाते हैं, जो यहाँ भी हैं। हमारी सर्वग्रासी गृध्नवत्ति स्वर्ग के भोगों के प्राचुर्य आनन्त्व और अनायास प्राप्ति के अनुमान में अपनी तृप्ति को पूर्ण करती है। इसीलिए हम स्वर्गीय सुख पाने के लिए सदा ही लालायित रहते हैं।

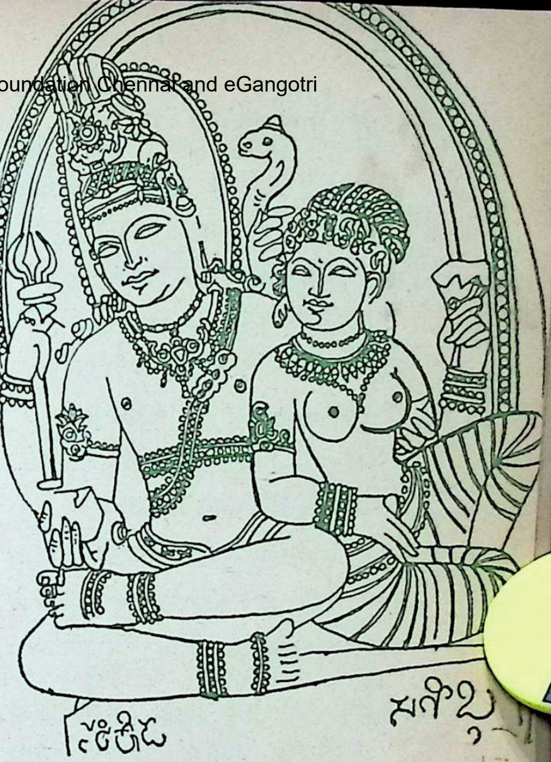

लोकोत्तर सौन्दर्य और आनन्द का अमर
युगल-प्रतीक श्री उमा-शंकर

यह स्वर्ग सुख क्या है? किसी भी सांसरिक भोग की प्राप्ति के पीछे उसके आधिक्य के तारतम्य के अनुसार परिश्रम, आयोजन, मूल्य और उसकी रक्षा की व्यवस्था का इतिहास रहता है। प्रतिदिन केसर मिले जल से यदि किसी व्यक्ति को स्नान करने की इच्छा हो, तो उसे अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए कितना मूल्य चुकाना होगा, इसका हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं। पर स्वर्गलोक का अधिवासी मन में इच्छा करते ही इसे पा जायेगा।

स्वर्ग में रहनेवालों को अपनी सुख-सुविधा के आयोजनों को जुटाने में मर्त्यलोक वालों की तरह इतना परेशान नहीं होना पड़ता। इसी कारण कल्पना करते ही सब कुछ पाजाने की सुविधा वाले लोक को प्राप्त करने के लिए हमें इस लोक में कष्ट उठाना या तप करना पड़ता है।

यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गति प्रार्थयन्ते
ते पुण्य मासाद्य सुरेन्द्रलोक मश्नन्ति
दिव्यान् दिवि देव भोगान्।

जो लोग यज्ञ द्वारा स्वर्ग की कामना करते हैं, वे अपने पुण्य के बल से स्वर्ग में जाकर देवोपम भोगों को भोगते हैं।

दिव्य देव-भोगों को वही भोग सकता है, जो पुण्यात्मा होता है, अर्थात् हम इसी संसार में ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं, जिनके ऐश्वर्य का कोई अन्त नहीं है। उनका यह ऐश्वर्य पुण्यार्जित है। उनकी सम्मत्ति के आँकड़ों का अनुमान लगाना कठिन है। एक साधारण व्यक्ति जिसको समय पर ग्रासाच्छादन भी नहीं मिलता, इसी संसार में रहता है। और वह पुण्यलब्ध अकूत सम्पत्तिशाली व्यक्ति भी इसी संसार में रहता है। इस धनी व्यक्ति की बड़ी से बड़ी इच्छा शीघ्र पूरी की जा सकती है। वह जो वस्तु चाहता है, वही उसे मिल सकती है। भोग की सभी वस्तुएँ उसे प्राप्त हैं। यही स्वर्ग का सुख भोग है।

सभी इन्द्रियाँ रात दिन अपने-अप विषयों की तृप्ति के लिए लालायित रहती हैं। स्वर्ग के देवताओं की इन्द्रियों की तृप्ति रात-दिन उनकी इच्छानुसार होती रहती है। इन इन्द्रियों के पाँचों विषयों की निर्बाध तृप्ति जैसे-जैसे होती रहती है, वैसे-वैसे देवताओं के पुण्य भी समाप्ति की ओर बढ़ते रहते हैं। पुण्य-फल को भोगने के बाद पुण्य के क्षय होजाने से पुनः मर्त्यलोक में जा पहुँचने की एक अव्यक्त वेदना रात-दिन उनको सताती रहती है। इस कारण इन्द्रिय-तृप्ति के साथ देवों के स्थिर होते हुए चित्त की वृत्तियाँ आनन्द के केवल सबसे निम्नवृत्त में चक्कर काटती रहती है। देवताओं को मिलने वाला आनन्द सबसे निम्न कोटि का है। इसी कारण स्वर्ग को अंधकार से ढंका असूर्य लोक कहा गया है। जिस समय इन्द्रियों को अपने इच्छित विषय पूर्ण रूप से भोगने के लिए मिल जाते हैं, उस समय उनको इतनी अधिक तृप्ति होती है, कि वे अपनें उस विषय के आनन्द को अनुभव करते समय अपने आपको उसी में खो देती हैं। इन्द्रियों की यह आत्म-विस्मृति उनको अपने-अपने विषयों में लीन कर देती हैं, अर्थात् इस अवस्था के उपस्थित होने पर शब्दादि विषय तो बने रहते हैं, पर उन्हें ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों को माध्यम बने रहने की फिर कोई आवश्यकता नहीं रहती। उस समय वे

केवल गोलक मात्र रहती है। संगीत की अमृतधारा में आकण्ठ तृप्त कर्णेन्द्रिय में शब्द तो पहुँचता रहता है, पर कर्णेन्द्रिय के गोलक में स्थित कर्णेन्द्रिय का देवता तब शब्द में लीन हो जाता है। इस कारण केवल गोलकावशिष्ट कर्णेन्द्रिय फिर कर्णेन्द्रिय कहलाने की अधिकारिणी नहीं रहती। इन्द्रियलय जन्य आनन्द देवताओं का आनन्द है।

श्रोत्रेन्द्रिय के समान अन्य चारों इन्द्रियों, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण पर भी यही नियम लागू होता है।

उत्तरोत्तर उत्कृष्ट शब्दादि साधनों की उपलब्धि से इन्द्रियों के लय से प्रसूत आनन्द की एक झलक जिसे स्वर्ग कहते हैं, पाने के लिए लोगों में जो इतना उत्साह और आग्रह दिखायी पड़ता है, वह योगी के लिए आनन्द की पहली सीढ़ी है। योगी, योग के साधन से इन्द्रियों को उनके विषयों में लीन कर देता है और आनन्द की प्रारम्भिक स्वल्पतम अनुभूति को उत्तरोत्तर बढ़ाता चला जाता है। योगी को मिलनेवाले आनंद के पीछे किसी पुण्य की शक्ति काम नहीं करती, प्रत्युत् पुण्य और पापों की स्वर्ण और लौहमयी शृंखलाओं को श्लथकर वह इस स्थिति में पहुँचता है। इसीलिए इस स्थिति से च्युत होने का उसे कोई भय नहीं रहता। पर इस आगे बढ़ते समय योगी को जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है, वह है किसी लोकोत्तर सुन्दरी के सान्निध्य में आने के बाद उसके मन में उसके प्रति पैदा हुए काम-विकार की प्रबल ताड़ना। राजा विश्वामित्र, तपोवन में जाने से पूर्व अपने अन्तःपुर में निश्चय ही कई एक अपूर्व शोभना सुंदरियों को छोड़कर गये थे। उनके रूप का आकर्षण उन्हें पीछे की ओर न खींच सका, पर ऋषि विश्वामित्र लोकोत्तर सुन्दरी मेनका के लोकोत्तर रूप के सामने नतजानु हो प्रेम भिक्षा माँगने को बाध्य हुए। तपस्या की साधना के दिनों में नर से नारायण बनने की ओर अग्रसर होनेवाले व्यक्ति को प्रसाद स्वरूप जिस आत्मानन्द की झलक मिलने लगती है, उसे यदि वह किसी रमणी के लीला कटाक्ष पर तिलांजलि दे सकता है, तो उसका यही कारण है कि उस सौंदर्य में उसे अधिक आनन्द मिलता है। स्वर्ग के समस्त दिव्य योगों में से यदि सुन्दरी नारियों को निकाल दिया जाय, तो कोई भी पुरुष अपना गृह त्याग कर वन में जाकर कठोरतम तप करना पसन्द न करेगा। सौन्दर्य के सान्निध्य के साथ-साथ आनन्द की यात्रा प्रारम्भ होती है। वह सौन्दर्य जितना पूर्ण, जितना उत्कृष्ट और जितना मोहक होगा, आनन्दानुभूति की मात्रा उतनी ही बढ़ती चली जायेगी।

*

कांचन नवयुग : अभिनव मानव

हरीश करुण

देखो, वह आता
नवयुग का कांचन पांखी
सौन्दर्य-पुण्य के दो धवल पंखों पर
अन्तर आकाश में उड़ाने भरता
चेतन-समतल पर गाता
मुक्तकंठ का
पीयूषवर्षी स्रोत बहाता
नश्वरता के क्षितिज चीरता
अमरता के सहस्र प्रकाश-वृत्त
सीमांत लाँघता
दिव्यता-गन्धवह पर बहता !
रहस्य की पर्तों पर पर्तें उघाड़
छाया तम को पछाड़
बनने जा रहा आज मानव
स्वयंभू
सार्वभौम, सार्वकालिक
विराट काल पुरुष
सनातनी सत्ता का स्वामी
मृत्युंजय !

अन्तर के सूर्य

रमेश दुबे

जब से अंतर के असंख्य सूर्यों को देखा है
बाहर का सूर्य--
फ़ीका लगने लगा है।
पूनम का चन्दा
बर्फ़ के ढेले-सा गलने लगा है।
तारे बुझ गये हैं।
चाँदनी कजला गयी है
और जेठ की धूप भी लजा गयी है।
जब से अन्तर के सूर्यों को देखा है।

∘ ∘ ∘

नेत्र
बिना दूरबीन
सौर्यमंडल को देखते हैं।
मन
राकेट बिना
चन्द्रमा की सैर करता है।
हाथ–
यंत्रोपकरण बिना
प्रयोग करते हैं
नित नयी खोज करते हैं।
जब से अंतर के असंख्य सूर्यों को देखा है।

पुरुषोत्तम खरे

आभा

कवि अनुराग की प्राण-सखी आभा परायी हो गयी ? हाँ, तथ्य की साक्षी तो यही कहती है । पर क्या वह सच ही परायी हो सकी थी ? अन्तर के वृन्दावन की चिर बिरहिन परकीया राधा की अन्तरात्मा के उस गोपन रहस्य को जानने के लिए झाँकिये, तूफान-वर्षा की उस रात के अँधियारे एकांत में जहाँ, आभा और अनुराग के बीच मर्यादा की सर्प-नदियाँ फुंफकार रही थीं-और वे दोनों. . . .

जब मेरा मन संताप की धूप में अधिक अकुला जाता है, तब मैं आभा के घर पहुँच जाता हूँ । उसका सामीप्य मेरे लिए ऐसा आकाश है, जिसमें मेरा दुःख सहज अभिव्यक्ति पाता है । जिसमें मेरे जी का अंतर्द्वन्द्व संघर्षों से मुक्ति पाता है । उसके स्नेह की अजस्र धारों में, उसकी ममता के कूल कछारों में, मेरे सारे दर्द बह जाते हैं ।

आभा के चारों ओर मर्यादाओं की झील है । झील में, घिरी हुई सीमाओं का जल है । और इस जल के बीच, वह मेरे लिए, खिला हुआ ऐसा कमल है, जिसकी पँखुड़ियाँ मेरे हाथ में आ जाती हैं, आ जाती हैं——और फिर छूट जाती हैं । कमल पर बूंदें कहाँ ठहर पाती हैं !!

° ° °

आज अँधेरे में ही रहने का इरादा ठान लिया है क्या ?

कभी-कभी अँधेरा मन को बड़ा प्रिय लगता है । अनु ! जी चाहता है कि अँधेरे में डुबकियाँ लगाता रहे । जीवन के अँधेरे में गोते लगाने से प्रकाश के मोती नहीं मिल सकते क्या ?

मैं आभा के शब्दों की गहराई की थाह लेने लगा । बिजली गड़बड़ है । मैं मोमबत्ती जलाती हूँ ।

वह अँगुलियों में मोमबत्ती थामे हुए

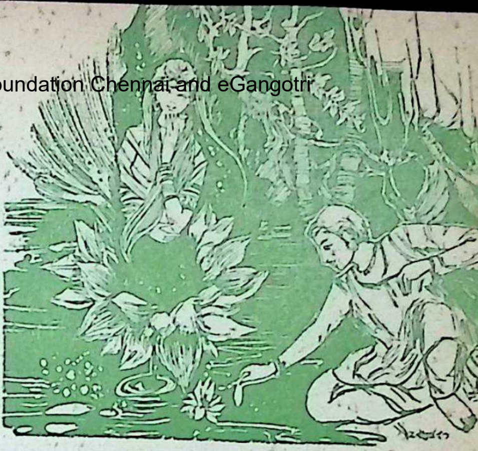

आयी। गलती हुई दो बूंदें टेबिल पर टपकाकर, उनमें मोमबत्ती जमाती हुई बोली–आज बिजली धोखा दे गयी। दुनिया में सबसे ज्यादा धोखा ही सफल है शायद! उसके स्वरों में कराह थी, मानों अपने कांधों से उसने पीड़ा की काँवर उतार कर रख दी थी।

बैठो न।

और वह मेरे समीप ही पलंग पर बैठ गयी।

मेरी आँखें उसके चेहरे पर टिक गयीं। बालों की दो लटें, दोनों गालों पर निष्प्रयास ही आयी हुई। माथे पर टिकुली तिरछी लगी हुई।

पप्पू नहीं दिखता।

सो रहा है।

अनुराग भाई! यह मोमबत्ती देख रहे हो–अपनी ही गली हुई बूंदों पर खड़ी होकर जल रही हैं। कुछ ऐसी ही अपनी भी ज़िन्दगी है। जलने के लिए मचलती है। और फिर जल-जल कर गलती है!!

इतने में ही उसे ध्यान आया और मोमबत्तियों को प्रकाशित कर, वह उन्हें अंधियारे कोठों में रखने लगी। पप्पू के झूले को झुलाकर फिर मेरे नज़दीक आकर बैठ गयी। उसके माथे से टिकुली टपक कर गोद में आ गिरी। मैंने हाथ बढ़ाया और टिकुली उसके माथे पर लगा दी। लाजवन्ती की डाल जैसा उसका माथा मानों मेरे स्पर्श से लज्जित होकर झुक गया। उसकी दूधिया हथेली को अपने हाथों में लेकर मैंने देखा——।

उसने मेंहदी रचायी थी।

अनेक बिन्दुएँ................।

बिन्दुओं का एक वृत्त

वृत्त में छोटी बड़ी लहरें

और उनके बीच : एक खिला हुआ फूल!

मेरी उँगलियाँ कभी बिन्दुओं, कभी लहरों और कभी उस फूल पर चलती रहीं।

यह कौन-सा फूल है आभा?

क...म...ल...। उसने टूटते हुए अक्षरों को शब्द में पिरोते हुए कहा।

और बूंदें?——

अधूरी साधें:

और लहरें———?

परिस्थितियों और परिवर्तनों के आवेग!

मेरा हाथ उसकी पीठ पर अनजाने ही पहुँच गया। कभी उसके बालों से उलझता कभी उसके कर्णफूल से खेलता। कभी उसके कंधे पर आकर थम जाता। एकाएक मुझे लगा कि भीतर ही भीतर किसी संवेग से छटपटाकर उसने मेरी ओर देखा है– दो क्षण को उसकी आँखों के काजल में कम्पन हुआ है– उसकी पलकें बौरायीं, डाल जैसी झूमीं. . . . .

किंतु नहीं. . . .

तभी उसने मेरा हाथ मेरी गोद में रख दिया। मेरा आवेग मुझे लौटा दिया! उसकी दृष्टि में अब वैराग्य और शांति दरस रही थी।

. . . . तुम विवाह कर डालो अ. . . नु!

उसके आत्मीयता–भरे इस अनुरोध ने जैसे, वेसुध हो रही मेरी चेतना को झकझोर दिया था। भावुकता के झोंकों के साथ बहकर, कमल की पँखुड़ियाँ मेरे हाथों में आयीं. . फिर सीमाओं के जल में हलचल हुई. . . और कमल ने बूंदें ढुलका दीं।

राह पर चलते-चलते, पैर मोच गये; राही जैसा मैं सम्हला और बोला– तुम जिससे कहोगी मैं विवाह कर लूँगा आभा!

फिर, विषयांतर करते हुए मैंने उससे कहा–तुम कुछ लिखती क्यों नहीं आभा? अपनी ही कहानी क्यों नहीं लिखतीं? मुझे लगता है तुम अपने भीतर बहु कुछ समेटे रखे हो, जो बाहर नहीं निकालतीं। तुम सचमुच सुखी हो? तु अपने जीवन से तृप्त हो आभा?

–आप जंसे, कवि लेखक के संस्का मुझमें कहाँ हैं? आपकी बात नहीं र सकती, इस असमर्थता से भी कभी-क दुखी होती हूँ। रही सुखी होने की बा सो सुन्दर पति, बच्चे के रूप में गृहस्थी क सुख! कार, बंगला; और क्या चाहिए?

मैंने देखा वह मुस्कुराकर मुझे समझा की कोशिश कर रही थी, किंतु यह सब क चुकने के बाद उसके ओंठों के बीच ए निश्वास तड़प कर रह गयी थी। उसक मुस्कान सागर के उस शांत सौन्दर्य की भाँ थी, कि जिसके भीतर अगाध हाहाका छुपा हुआ रहता है। एक कंकड़ फेंको त उसमें तरंगें उठने लगती हैं सुख औ तृप्ति के प्रश्नचिह्नों के ढेले फेंककर मैंने उसके भीतर का हाहाकार ज दिया था।

तुम्हें खाना नहीं बनाना, वकी साहब आते होंगे।

उनका क्या ठिकाना। कभी ग्यार बारह के पहले आ जायें, तो रात धन्य ह जाये। वैसे काम भी बहुत रहता है मुवक्किलों की भीड़ लगी रहती है। कि

रोज काम कम हुआ और गप्प-गोष्ठी नहीं जमीं तो "अर्चना" के यहाँ आधी रात हो जाती है।

कमरों के बल्वों में एक क्षण को चमक आयी और फिर विलीन हो गयी।

तुम भी तो बहुत दिनों में आये हो, खाकर जाना। मैं रसोई चढ़ाकर आती हूँ; नहीं तो चलो, वहीं बैठना। इतने में ही बिजली पुनः आयी, और फिर उसने आँख-मिचौनी नहीं की। आभा रसोई बनाने लगी। मैं, आभा, उसके पति, और अपने बारे में सोचने लगा......

वकील साहब के साथ उसकी दूसरी शादी हुई थी। अपने पति की पहली शादी की पत्नी की तस्वीर के नीचे, रोज शाम आभा एक ऊदबत्ती जलाती। एक दिन मैंने उससे पूछा था– इस तस्वीर के प्रति तुम्हारा लगाव कैसा? तो उसने सहज भाव से उत्तर दिया था– ये इस घर की पहली मालकिन हैं–मेरे पति के स्नेह की प्रथम अधिकारिणी। अपने जीवन-संगी की विगत स्मृति की ओर देखकर, मैं अपना वर्तमान, सुखी भी तो रख सकती हूँ। क्या ग़लत कहती हूँ? –नहीं...., ऐसा उदाहरण मैंने और कहीं देखा नहीं, सो पूछ बैठा। –मैंने कहा था। –उसके उत्तर के वज़न से मुझे अपने प्रश्न की क्षुद्रता का भान हो गया था।

आभा दूर के रिश्तों में मेरी जो कुछ भी थी, सो तो थी ही, मेरी उसकी मुलाकात के बाद, वह मुझे, बिना किसी विशेष भाव या अर्थ के, भाई साहब कहने लगी थी। कभी-कभी 'अनु' भी कह लेती। ये सम्बोधन किसी और रूप में अभी वदल सकते थे, यदि उसके परिवार वालों की, मेरी और आभा की शादी करने की इच्छा, जो कभी उनके मन में उठी थी, साकार हो गयी होती।

वात यह हुई, कि कचहरी में क्लर्क की अस्थायी नौकरी से जब मैं मुक्त कर दिया गया, तो उसके वाद आभा और उसके परिवार से मेरे सम्वन्ध जो विच्छिन्न हुए, सो पाँच छह वर्षों तक विच्छिन्न ही रहते आये।

मुझे याद है, जब मैं आभा के घर से विदा लेने लगा था, तब द्वार पर खड़ी हुई आभा की डबडबायी आँखों से स्नेह की बूंदें टपक पड़ी थीं। जब मैं उसके नगर की सीमा छोड़ने लगा था, तब आभा की अनुरोध-भरी वाणी एक बार फिर मेरे मन में गूंज गयी थी..

भाई साहब! यह रही मेंहदी।
मेरे हथेली में एक झील,
झील में खिलता हुआ कमल;
और कमल पर झूमता हुआ भँवरा
रच दो!

जब मैं रेलगाड़ी पर बैठ गया था, तब पड़ौस के बच्चों द्वारा भेजा गया

LIFEBUOY
SOAP
LIFEBUOY SOAP

ताज़गी का तराना ! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके
तनमन में ताज़गी का तराना गूंज उठेगा ! और मज़ा यह है
कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को
धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताज़ा कर देता है ! जी हाँ,
लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा ।

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ !

L. 33-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

उसका संदेश, सीटी की आवाज के साथ बिलख उठा था.... जहाँ रहो, चिट्ठी दिया करना।

और यह अपराध आज तक मेरे हृदय में घाव किये है कि जब वकील साहब के साथ आभा के विवाह का निमंत्रण मुझे मिला, तो उस समय शादी की बधाई का तार भेजने के लिए भी जेब में पैसे नहीं थे। बेकारी ने उधारी और कर्ज़ में, कंठ तक डुबा रखा था। एक कवि-सम्मेलन के सिलसिले में उसकी शादी के दो वर्ष बाद जब उसके पुराने नगर पहुँचा तो उसके परिवारवालों से मुलाकात हुई। तब मैंने जाना कि वे लोग—आभा और मेरा विवाह करना चाहते थे। यह भी कि मुझ मातृ-पितृ-हीन, के तथाकथित कुटुम्बियों ने उनके प्रस्ताव पर कोई चर्चा ही नहीं उठायी—यह भी कि अपने इस सम्बन्ध के लिए मैंने भी कभी खुली इच्छा प्रकट नहीं की। उनकी भावना अभाव बन कर रह गयी; और आभा की अभिलाषा उसके हृदय में घाव बनकर, रह गयी!!

पुरानी स्मृतियों के गुच्छों में उलझा हुआ मेरा ध्यान तब टूटा, जब आभा ने थाली सामने रखते हुए कहा—भाई साहब! लीजिए खाना शुरू करिये।

—तुम भी आओ न!

और वह प्रसन्न-मुख मेरे साथ खाने बैठ गयी।

मैंने विनोद में कहा—वकील साहब की प्रतीक्षा नहीं करोगी?

—तुम्हारा कहना भी तो नहीं टाल सकती। उसकी प्रसन्नता, जुगनू की चमक की तरह क्षण भर में उड़ गयी। उसने मेरी ओर उमड़ी हुई दृष्टि से देखा और आँखों की ओर से काजल के साथ ही उसके भीतर की वेदना द्रवित हो बह आयी।

—भाई, उठना नहीं, मैं भी आ रहा हूँ। जूतों के बंद खोलते हुए, वकील साहब ने आवाज़ लगायी।

—आइये साहब काफी दिनों से हम लोगों ने साथ बैठकर नहीं खाया होगा—मैंने कहा।

झकोर से झुक गये नन्हें पौधे की तरह आभा ने अपनी पलकें सम्हाल लीं।—मैं और सामान ले आऊँ, कहकर वह उठी, और क़रीब-क़रीब सारी रसोई उठाकर ले आयी।

—मैं कल पटियाला जा रहा हूँ, अनुराग! इस बीच आभा अकेली रहेगी। अगर कोई अड़चन नहीं हो, तो तुम यहीं रहना। पप्पू को कष्ट होगा, नहीं तो आभा को भी ले जाता।

—आप भी क्या बात करते हैं। मुझे क्या अड़चन होगी। होटल के खाने से बचूँगा। साफ बिस्तर पर सोने को मिलेगा।

इतने में ही पप्पू के रोने की आवाज़ आयी। आभा उठी और उसे गोद में उठा लायी।

—और खेलने के लिए पप्पू मिलेगा। उसे देखकर मैंने अपनी बात पूरी की।

—यार तुम भी अजीब आदमी हो। शादी क्यों नहीं कर लेते। —वकील साहब ने सुझाव दिया।

—अभी-अभी आभा भी यही कह रही थीं। मैंने इन्हें अच्छी-सी लड़की तलाशने के लिए कह दिया है।—मैंने हँसकर वकील साहब की ओर देखते हुए कहा।

—आप कब तक लौटेंगे? मैंने पूछा।

—वैसे तो चार-पाँच दिनों में ही लौट आता, किंतु 'अर्चनाजी' का अनुरोध है कि जब पटियाला तक चल ही रहे हैं, तो श्रीनगर भी घूम आयें। मौसम भी अनुकूल है।

—अर्चनाजी कौन हैं?—मैंने जिज्ञासु होकर पूछा।

—एडवोकेट हैं। मेरे साथ ही कमीशन की सदस्या हैं। यहाँ तो कई बार आयी हैं। तुमने तो देखा होगा।

मुझे याद आया। एक दिन वे वकील साहब के साथ ही कचहरी से लौटती हुई यहाँ आयी थीं। एक घंटे वे हम लोगों के बीच रही होंगी। चाय पीते समय उनकी लाल रंग की साड़ी का छोर कंधे से सरक कर बार-बार नीचे गिर पड़ता था—जिसे कुछ क्षणों के विराम के बाद वे पुनः उसे कंधे पर डालती थीं। और इस कार्य में उन्हें बराबर कुछ प्रिय-कष्ट सा होता था! वे जो विराम देती थीं, उसका अर्थ था कि हम उनके गुलाबी ब्लाउज़ के भीत उनकी पतली सफेद बाड़ी का खिचाव दे सकें! एक घंटे में से, २० मिनिट त वे बराबर इस अवलोकन में व्यस्त र कि कहीं हम, उनके "अविवाहित-सौन्दर्य" के प्रति उदासीन तो नहीं हो गये! आध घंटे से भी अधिक वकील साह मुझसे और आभा से, अर्चना के खु हृदय और मेनर्स की प्रशंसा के साथ-साथ उनकी वकालत-प्रतिभा का बखान करते रहे। आभा ने उन लोगों के जाने के बा मुझे बताया था कि वकील साहब औ अर्चना में—और भी सम्बन्ध हैं।

सम्बन्धों के बारे में मेरे प्रश्न चिह्न का उत्तर देते हुए उसने कहा था—दानी अपने कोष से, जिसे चाहे जितना दे। मैं कैसे उनका हृदय बाँधूं? एक बार जि बाँधना चाहा था, वह तो मेरी पहुँच के बाहर निकला! दुनिया में सबसे ज्यादा धोखा ही सफल है शायद!

० ० ०

वकील साहब प्रवास पर चले गये हैं। अपने लिखने-पढ़ने के कागजातों, चार छह पत्रिकाओं और दो-चार कपड़ों के साथ मैं आभा के यहाँ मेहमान होकर आ गया हूँ। रात आधी हो चुकी है। ए पलंग पर आभा लेटी है। उसकी बायीं

[शेष पृष्ठ १०१ पर]

भक्त रामशरणदास पिलखुआ

कुछ अलौकिक सत्य घटनाएँ

•

यहाँ कुछ ऐसी अलौकिक सत्य घटनाएँ प्रस्तुत हैं, जो हमें यह सोचने को बाध्य करती हैं, कि हमारे स्थूल ऐंद्रिक, तथ्यात्मक और तार्किक ज्ञान से परे भी ऐसी कई अगोचर शक्तियाँ और विश्व विद्यमान और क्रियाशील हैं, जिन्हें अपने ज्ञान की पहुँच में न होने के कारण हम वहम और अन्ध-विश्वास कह कर टाल देने में गर्व लेते हैं। यह एक प्रकार का अवैज्ञानिक और बौद्धिक रूढ़िवादी दृष्टिकोण है। देश और काल के सीमान्तों को बींध रही आज की लोकोत्तर-गामिनी वैज्ञानिक मनीषा का तकाज़ा है, कि हम ऐसी अलौकिक घटनाओं का वैज्ञानिक अनुसंधान कर, नव-नवीन लोकांतरों के भीतर मानवीय विकास-प्रगति के द्वार मुक्त करें।

•

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है :–

विनय प्रेमवस भई भवानी
खसी माल मूरत मुसकानी

अर्थात् मूर्ति मुस्करायी। स्पष्ट है कि वेदमंत्रों द्वारा मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात्, उसमें एक दिव्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है और पत्थर अथवा काष्ठ जैसी जड़ वस्तुओं की बनी प्रतिमा भी सजीव हो उठती है। आज भी मूर्तियों के अद्भुत चमत्कारों की घटनाएँ सुनने में आती हैं।

'वज्राङ्ग' पाक्षिक २६ फरवरी सन् १९५६ अंक २३ पृष्ठ ८ पर यह खबर छपी थी कि मुजफ्फरपुर के श्री शिव-मन्दिर का त्रिशूल गत दो वर्षों से समय-समय पर कई दिनों तक हिलता रहता है। मन्दिर की छत पर भगवान शंकर की एक सीमेंट की बनी हुई मूर्ति है, उसी के आगे यह त्रिशूल है। यह लोहे का बना है और ऊपर चमकीला रंग चढ़ा है। जनवरी सन् १९५४ में यह त्रिशूल सर्वप्रथम कई दिनों तक हिलता रहा। उसे देखने के लिए एक

लाख से भी अधिक व्यक्ति एकत्रित हुए थे। बिहार राज्य के मंत्री, श्री महेशप्रसाद सिंह और अनेक उच्चाधिकारी तथा इंजीनियर भी इस त्रिशूल को देखने पधारे, उसके हिलने के कारण का अनुसंधान भी किया, किन्तु सफलता न पाकर आश्चर्यचकित होकर लौट गये। यह धार्मिक त्रिशूल विज्ञान को एक चुनौती है। बिहार के मुख्य मंत्री श्री कृष्णसिंह तथा गृहमंत्री श्री अनुग्रहनारायणसिंह ने भी वैज्ञानिकों को भेज कर इस त्रिशूल का परीक्षण करवाया था, लेकिन उसके हिलने के कारण तब भी अज्ञात रहे। महन्त श्री रामचन्द्र वीर जी, जो इसका पता लगाने वहाँ गये थे, ने स्वयं अपनी आँखों से देखकर लिखा है कि जिस समय वे दर्शन करने पहुँचे तब त्रिशूल स्थिर था, किन्तु जब दूर से हाथ जोड़कर उन्होंने प्रणाम किया तब वह हिलने लगा और प्रायः आध घंटे तक हिलता रहा। इसे चमत्कार नहीं तो और क्या कहा जाय?

० ० ०

इसी प्रकार एक सुप्रसिद्ध वैद्य, पं. केशवदत्तजी शर्मा, अध्यक्ष श्री धन्वन्तरि आरोग्य भवन के जीवन की एक सत्य घटना भी अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण है। बात उस समय की है, जब वे दिल्ली में श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय में अध्ययन कर रहे थे। उस समय, देश भर में स्वतंत्रता-आंदोलन खूब ज़ोर से चल रहा था। ६ मई, १९३० को दिल्ली में हड़ताल थी। सारे शहर की दुकानें बंद थीं और एक बहुत बड़ा जुलूस निकलनेवाला था। पं. केशवदत्तजी उसे देखने के लिए गये और चावड़ी बाज़ार पहुँच कर हौज़ काज़ी से कुछ दूर जाकर भीड़ में खड़े हो गये। कुछ देर बाद सिपाहियों से भरी एक लारी वहाँ आयी और जनता पर लाठी वर्षा करने लगी। बहुत से लोगों के चोटें आयीं; हाथ-पैर टूटे, सिर फूटे। केशवजी भी लाठियों की मार से न बचे। भीड़ द्वारा वे बुरी तरह कुचले भी गये। उसके बाद तो बेहोश होकर वे वहीं गिर गये और कब, किसने उठाकर उन्हें अस्पताल पहुँचाया इसका भी होश उन्हें नहीं रहा। उनके विद्यालय के आचार्य, आयुर्वेदरत्न पं.मनोहरलालजी ने उनकी देखभाल की और उनके घर खबर भिजवायी, तब उनके पिता आकर उन्हें अपने गाँव कन्दौला ले गये। डाक्टरों ने उनके सर पर बर्फ़ बांध रखी थी और गुलाबजल पीने को द रखा था। किंतु वह भी पेट में टिकता नहीं था। तब गाँववालों ने देशी औषधियों की व्यवस्था की। फिर भी वेदना कुछ कम न हुई। लोगों की भीड़ छंटने पर उनकी माताजी व दादीजी उनके पास आकर बैठ गयीं और देवी

भगवती से उनको शीघ्र अच्छा करने की प्रार्थना करने लगीं। उनकी माताजी तो अश्रुविह्वल नेत्रों से कुलदेवी की प्रतिमा की ओर देखते हुए कातरकंठ से बार-बार यही प्रार्थना दुहराने लगीं कि हे माँ, जगदम्बा, मेरे इस बच्चे की वेदना-व्याधि शीघ्र दूर करो; आप तो सर्व-शक्तिमयी हैं, आपके लिए क्या असंभव है?

मुजफ्फरपुर के शिव-मन्दिर का वह त्रिशूल जो कई दिन हिलता रहा

केशवदत्तजी उन दिनों देव-देवताओं में इतना विश्वास नहीं रखते थे। अपनी माँ की वारम्वार देवी-प्रार्थना से चिढ़कर उन्होंने कहा कि बेकार प्रार्थना करते रहने से क्या होगा, कोई अच्छी दवा का इंतजाम करो! लेकिन जब उनकी माताजी ने यह कहा कि देवताओं में श्रद्धा रखने से सब-कुछ संभव है और सच्चे हृदय की प्रार्थना कभी खाली नहीं जाती, तो केशवदत्तजी ने प्रतिज्ञा की कि यदि देवी ने उनकी व्यथा दूर कर दी, तो वे उन्हें मानने लग जायेंगे और जीवन भर उनकी उपासना करेंगे।

उसी रात उन्हें देवी का चमत्कार दिखायी पड़ा। जब उन्हें नींद लग गयी, तो सुप्तावस्था में उन्हें देवी के दर्शन हुए। खुद उन्हींके शब्दों में, 'भगवती का बड़ा ही गौर, सुन्दर स्वरूप था। वे सुन्दर, चमकीली साड़ी पहने हुए थीं; तेजोमय उच्च ललाट तथा मस्तक पर स्वर्णमुकुट धारण किये हुए थीं। हाथ में उनके दूध से भरा कलश था। बांये हाथ से कलश थामे सीधे हाथ से उन्होंने मेरी बाँह पकड़ ली। उस समय मैं दिल्ली के इंडिया गेट के मैदान में एक फुहारे के पास घूम रहा था। मैं उस दैदीप्यमान, तेजोमय मूर्ति के सामने स्तब्ध हो गया। मूर्ति प्रसन्न मुद्रा में थी, इसलिए मुझे तनिक भी भय नहीं हुआ। भगवती न मुझसे कहा, तुम यहाँ क्या कर रहे हो। और यह पट्टी क्यों बाँध रखी है? पट्टी उतारने को कह कर वे मुझे कलश के दूध से नहलाने लगीं। बाद में कहा, पट्टी खोल डालो जल्दी से, तुम अब ठीक हो गये हो और देखो, नीच

लोगों के साथ कभी ताश मत खेलना ; जगदम्बा के ये शब्द अभी तक मुझे याद हैं; पता नहीं ऐसा उन्होंने क्यों कहा, क्योंकि ताश खेलने का शौक मुझे कभी नहीं था। पट्टी खोलते-खोलते मेरी आँख खुल गयी। अच्छी तरह जग जाने पर मैंने देखा कि मेरे शरीर में कहीं भी कुछ दर्द नहीं रह गया है। श्री माँ की इस अलौकिक असीम अनुकम्पा से मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया और तबसे मैं उनका अनन्य सेवक हूँ। देवी-देवताओं के चमत्कारों में तभी से मैं श्रद्धावान हो गया हूँ।'

० ० ०

एक अन्य महान आश्चर्यजनक, किंतु सत्य घटना नवम्बर १९५७ में कानपुर में होनेवाले सर्व वैदिक शाखा सम्मेलन में पधारे काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान तथा गोयनका संस्कृत महाविद्यालय के प्रमुख अध्यापक पं. लालबिहारी मिश्र सुना रहे थे। वाराणसी जिले के लड़ीहा स्टेशन से २५ कोस उत्तर की ओर प्रभुपुर नामक गाँव में यह घटना घटी थी। वहाँ पर मनिहार जाति की भांगरी नामक एक मुसलमान स्त्री रहती थी। उसके पड़ौस में एक अन्य स्त्री सांघातिक रोग से पीड़ित थी। भांगरी एक रोज़ जब बीमार स्त्री को देखकर अपने घर लौटी, तो एकाएक बिना किसी प्रकार की बीमारी के मृत्युलोक से चल बसी। सभी को इससे आश्चर्य हुआ। घंटे भर बाद गाँव के लोग जमा होकर उसे दफनाने कब्रिस्तान ले गये। किंतु ज्यों ही भांगरी को कब्र में दबाने लगे कि वह अचानक जीवित हो गयी। इसके मुख से कुछ अव्यक्त शब्द फूट पड़े और उसने अपने हाथ से संकेत द्वारा अपने मुख पर से कपड़ा हटाने को कहा। जब कपड़ा हटाया गया तो उपस्थित लोगों को यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि उसके सिर में जलने के तीन निशान लगे हुए हैं और कुछ केश भी जले हुए हैं। त्रिशूल के से वे निशान स्पष्ट दिखायी दे रहे थे।

भांगरी ने बताया कि मरने से पहले वह बिल्कुल स्वस्थ थी। उसे किसी प्रकार का कोई रोग नहीं था। किंतु तभी उसके सामने दो व्यक्ति आये और उसे पकड़ कर बहुत दूर ले गये। 'मैंने देखा कि वहाँ पर बहुत बड़ी सभा लगी हुई है और एक ऊँचे आसन पर एक परम तेजस्वी व्यक्ति बैठा हुआ है। उन्होंने मुझे वहाँ ले जानेवाले दोनों व्यक्तियों को बड़ा डाँटा-फटकारा और कहा कि इसे अभी यहाँ क्यों लाये, इसकी मृत्यु तो अभी नहीं थी। अभी इसकी आयु १४ वर्ष और है, हमने तो इसके पड़ौस की औरत को लाने के लिए कहा था। तुम लोग भूल से इसे ले आये, इसलिए तुरंत वापस भेज दो। किंतु जाने से पहले इसके हित की दृष्टि से

त्रिशूल लेकर इसके सिर को दाग दो, ताकि जीने के बाद यहाँ आने की बात इसे याद रहे और यह न भूले कि पापों की सज़ा बड़ी सख़्त होती है। यह बड़ी दुष्टात्मा है, इसलिए अपनी दोनों लड़कियों की मृत्यु खुद अपनी आँखों देख लेगी, तभी इसकी मृत्यु होगी। इसके बाद मेरा सिर त्रिशल गर्म करके दाग दिया गया, जिसकी वजह से ये निशान पड़े हैं और मेरे केश जल गये हैं।'

भांगरी की बतायी ये सारी बातें अक्षरशः सत्य हुईं। जिस समय वह जीवित हुई, ठीक उसी समय उसके पड़ौस की बीमार स्त्री का देहावसान हुआ। उसके बाद १४ वर्ष की अवधि में ही उसकी दोनों लड़कियाँ मृत्यु को प्राप्त हुईं और इसकी घोर वेदना उसे सहन करनी पड़ी। १५ वें वर्ष में वह स्वयं भी मर गयी। पं. लालबिहारीजी ने भांगरी के गाँव में स्वयं जाकर गाँव के मुसलमान मियाँ रहमानखाँ और प्रांत के मुखिया इत्यादि सबसे अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर उनके हस्ताक्षर लेकर ही इस घटना को विद्वानों के समक्ष रखा।

o o o

इसी प्रकार की परलोक जाकर लौट आने की अन्य घटनाएँ भी हमारे सुनने में आती हैं। दैनिक हिन्दुस्तान में ता. २० दिसम्बर सन् १९५७ को यह खबर छपी थी कि मुरैना के एक व्यवसायी, श्री विश्वम्भरनाथ बजाज जिनकी आयु ७५ वर्ष है और जो कई दिनों से बीमार थे, १६ तारीख को मर कर एकाएक फिर जीवित हो उठे और उसी समय उनके स्थान पर नगर के एक दूसरे व्यापारी श्री ग्यासीराम, जो केवल ४० वर्ष के थे और पूर्णतया स्वस्थ थे, एकाएक मृत्यु को प्राप्त हो गये। एक अन्य घटना का विवरण श्री मारुति संजीवन मासिक, १० अक्तूबर १९५६ के अंक में पृष्ठ ४ पर छपा था। उसके अनुसार ननुदड़बस्ती में जानकी नाम की ख़टिक जाति की एक स्त्री कुछ दिन बीमार रहकर चल बसी; लेकिन जब उसे अर्थी में बांध कर श्मशान ले जाया जाने लगा, तो ज़ोर से चीख़ने की आवाज़ उसके मुंह से निकली। उसे खोल कर देखा गया तो वह जीवित थी और बुरी तरह रो रही थी। उसके जीवित होने के ठीक दो घंटे बाद, उसी गाँव की एक दूसरी बुढ़िया स्त्री लोध राजपूत जाति की, जमुनिया मर गयी।

ये कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जिनका लौकिक तर्क और बुद्धि से कोई समाधान नहीं पाया जा सकता। निश्चय ही उन्हें 'चमत्कार' कहा जा सकता है; लेकिन इन 'चमत्कारों' के पीछे अवश्य कुछ 'अलौकिक' नियम, प्रकृति के कुछ रहस्य हैं, जिन्हें मानव अब तक अपनी बुद्धि के दायरे में नहीं ला पाया है। केवल श्रद्धा ही उसके मन को संतोष दे सकती है।

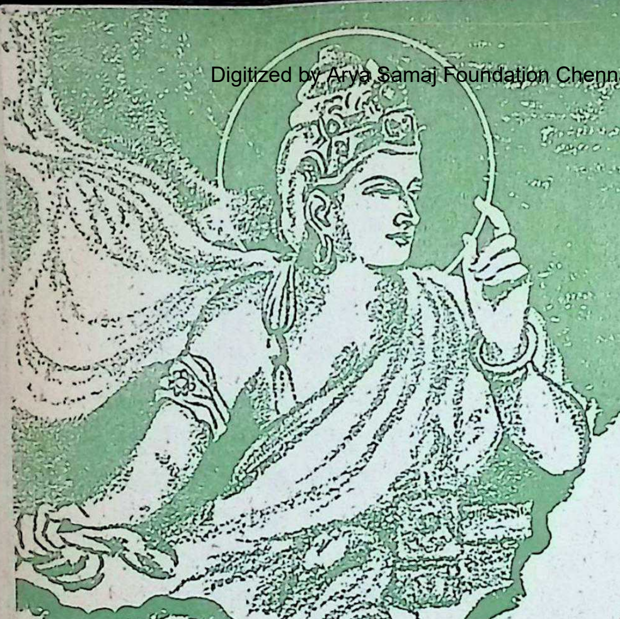

कृष्णावतार

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

धारावाहिक पूर्ण-पुरुष लीला

[११]

कंस की युक्ति

कंस का समय बहुत बुरी तरह कट रहा था। वर्षों से जो चिंता उसे सता रही थी, उसके कारण दिन में भी वह दुःस्वप्नों से संत्रस्त रहता और सदा यही आशंका उसे भयभीत करती रहती कि भविष्यवाणी अन्ततः सच होगी और उसके अपने सब प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे।

भविष्यवाणी सच न हो, इसके लिए उसने सभी उपाय काम में ले लिये थे। वसुदेव और देवकी पर पहरा देनेवाले सभी कर्मचारी उसके विश्वसनीय पात्र थे। देवकी पर निगरानी रखनेवाली पूतना रिश्ते में उसकी बहन थी। उस पर कंस को पूरा विश्वास था। कुलगुरु गर्गाचार्य के अतिरिक्त महल में प्रवेश का अधिकार किसी को नहीं था, और वे भी केवल प्रातःकाल में ही आते। उस समय पूतना वहाँ सदा उपस्थित रहती थी।

श्रावण मास की कृष्ण पक्षीय अष्टमी की रात्रि को कंस क्षण भर भी न सो सका। एक प्रकार का भय उसके मन में व्याप्त था। आकाश में हो रही मेघगर्जना से उसका हृदय बार-बार कंपमान हो उठता था। बिजली चमकने के साथ ही वह स्वयं भी चौंक उठता। वह सोचता, क्या ये चिह्न भविष्य में होनेवाले विनाश के तो नहीं हैं।

राजप्रासाद के विशाल खंड में वह बड़ी बेचैनी से चक्कर काट रहा था। दस वर्षों के लम्बे काल से जिस प्रसंग की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह अब किसी समय, किसी क्षण आ सकता था। इसी-लिए देवकी के आठवें पुत्र का वध कर भविष्यवाणी को मिथ्या सिद्ध करने के लिए वह अत्यंत आकुल और अधीर था।

आकाश की ओर देखने के लिए वह अस्थिर मन और लड़खड़ाते क़दमों से खिड़की के पास गया। परन्तु ज्यों ही उसने खिड़की खोली कि वर्षा की बौछार से वह भीग गया। उसने तुरंत ही खिड़की बन्द कर दी, और मूछों पर ताव देता हुआ फिर कमरे में चक्कर काटने लगा।

हज़ार कोशिश करने पर भी अपने मन पर हावी भय की भावना को वह दूर नहीं कर सका। किसी भी प्रकार वह रात्रि कट नहीं रही थी। किसका सहारा ले वह? उसके अपने आदमी उससे घबड़ाते थे; उसकी पत्नियाँ उससे डरती थीं; उसके चाटुकार भी उससे भयभीत थे; यहाँ तक कि स्वयं अपने से भी वह डरता था। उसने किसी तरह अपने मन को मनाना चाहा कि थोड़ी देर में यह सब व्यतीत हो जायगा। एक बार देवकी के आठवें पुत्र को इस संसार से विदा किया, कि फिर कोई भय उसे त्रस्त नहीं करेगा।

धीरे-धीरे खंड में कुछ प्रकाश का आगमन हुआ। सवेरा हो चुका था। परन्तु आकाश अभी भी घिरा हुआ था; वर्षा रुकी नहीं थी। कंस के भय की मात्रा कुछ कम हुई।

अब प्रकाश फैलने लगा। थोड़ी ही देर में पूतना आकर खबर देगी कि देवकी के प्रसव अभी नहीं हुआ। यदि ऐसा हुआ तो ठीक नहीं होगा, क्योंकि फिर न जाने कितने दिन और कितनी रातें चिन्ता में बितानी होंगी। फिर भी, कछ समय के लिए तो राहत मिली!

आखिर, पूतना आ गयी। दोनों हाथ जोड़कर उसने कहा, 'महाराज, देवकी के पुत्री हुई है।'

'क्या तुझे पूरा विश्वास है?' कंस न विचलित होकर पूछा।

अपनी आशंका को छिपा कर पूतना ने एकदम झूठ बोला, 'मुझे पूरा विश्वास है, प्रभु! देवकी ने मेरी उपस्थिति में ही पुत्री को जन्म दिया है।'

फिर भी कंस पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो पाया। भविष्यवाणी सत्य हो, इसके लिए देवकी की आठवीं संतान पुत्री नहीं पुत्र होना चाहिए। तो फिर क्या वह उस बालिका का वध करे? तुरंत ही उसके हृदय ने उत्तर दिया, किसी प्रकार का खतरा क्यों मोल लिया जाय?

'रथ तैयार करो!' उसने चीख़ कर हुक्म दिया और खुद हाथ में गदा लेकर तैयार हो गया। नगर से दूर देवकी-वसुदेव को, जिस महल में क़ैद रखा गया था, वहाँ पर कंस का रथ थोड़ी ही देर में पहुँच गया।

जिस खंड में देवकी सो रही थी, वहाँ पहुँच कर कंस ने देवकी से रोषपूर्वक कहा, 'कहाँ है तेरा पुत्र? ला, सौंप मुझे!'

'राजकुमार, वह तो कन्या है, बालक नहीं। उसे आप क्यों मारना चाहते हैं।' वसुदेव ने पूछा।

'पुत्र हो अथवा पुत्री, मैं इस शिशु को जीवित नहीं छोड़ूंगा।' कंस ने कहा, और उस पालने के पास गया, जहाँ बच्ची लेटी थी।

आँखों में आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़कर आर्त-स्वर में देवकी ने कहा, 'बड़े भैय्या, तुम ऐसे हृदयहीन कैसे हो गये? मेरे एक बच्चे को तो ज़िन्दा रहने दो। तुम्हारे जैसे समर्थ राजकुमार का यह बिचारी बालिका क्या बिगड़ सकेगी?'

पालने में से बच्ची को बाहर निकाल कर कंस ने उसके पैर पकड़ कर उल्टी लटका दी। अचानक उसे स्वयं अस्वस्थता अनुभव होने लगा। उसके हाथ काँपने लगे। बच्ची को ज़मीन पर पछाड़ने के लिए जो हाथ उसने ऊपर उठाया था, वह चेतनाहीन बन गया और उसके में से बालिका छिटक कर दूर जा प कलेजा कंपानेवाली एक भयंकर चीख़ सुनायी पड़ी और बच्ची उड़कर खि के बाहर अदृश्य हो गयी।

कंस की आँखों के आगे अंधेरा गया। सारा कमरा ही उसे चारों फिरता हुआ दिखायी पड़ा। लड़ख क़दमों से जब वह खंड से बाहर निक तो आकाशवाणी के ये शब्द उसे सुना पड़े, 'तेरा हन्ता तो कभी का, कहीं जन्म चुका है।'

देवकी के कक्ष से बाहर आते ही कंस चरण शिथिल पड़ गये। उस भया चीख़ की गूंज अभी भी उसके कानों कष्ट दे रही थी। हाथ में जलपात्र ले पूतना उसके पास दौड़ कर आयी उसका पति प्रद्योत भी पास ही आ खड़ा हुआ।

'स्वामी, आप राजमंदिर नहीं लौटेंगे उसने पूछा।

'किसी तरह मुझे यहाँ से बाहर निक दो।' कंस ने कहा। उसे कोई अकथ्य सता रहा था।

'वसुदेव और देवकी का अब किया जाय? मैं यहीं रहूँ या घर जाऊँ पूतना ने प्रश्न किया।

कुछ देर तो कंस इस प्रकार भाव दृष्टि से देखता रहा, मानो वह कुछ स

ही नहीं पा रहा है। फिर कंपित वाणी में उसने कहा, 'उन्हें जाने दो, जहाँ भी उन्हें जाना हो। अपने महल में जाना चाहते हों, तो वहाँ भी भले ही जायँ। नारद ने मेरे साथ मज़ाक किया। यह भविष्यवाणी थी ही नहीं। जाने दो इन लोगों को।' यह कहकर वह अपने महल चला गया।

दूसरे दिन अपने कुछ विश्वासपात्रों को उसने मंत्रणा के लिए बुलाया। उनमें उसका प्रमुख सलाहकार प्रलंब था, प्रद्योत और उसकी पत्नी पूतना थी, और अपनी पुत्रियों की संभाल रखने के लिए जरासंध ने मथुरा में जो मगध का वृद्ध सैनिक बाहुक भेजा था, वह भी था। कंस ने उन सब को सारी स्थिति समझाकर उनकी सलाह माँगी।

कंस के मुख्य सलाहकार प्रलंब ने विनम्र भाव से कहा, 'स्वामी, आज्ञा हो तो मैं अपनी राय प्रकट करूं।'

कंस की आज्ञा पाकर उसने कहा, 'वीर-श्रेष्ठ, मुझे तो ऐसा लगता है कि जो आकाशवाणी आपने सुनी, वह आपको चेतावनी देने के लिए देववाणी ही थी। लोग आपसे डरते हैं और इसलिए आपके सामने वे कुछ बोल नहीं सकते। परंतु वे सब तारणहार की प्रतीक्षा करते हैं।'

'स्वामी, मैंने भी वह आवाज़ सुनी थी, परन्तु वह कहाँ से आयी, यह समझ में नहीं आया। मुझे याद है उसके ये शब्द—तेरा हन्ता तो कभी का, कहीं जन्म ले चुका है।' पूतना ने कहा।

थोड़ी देर तो कंस विचारमग्न रहा, फिर भौंहें चढ़ा कर बोला, 'मैं कोई भी ख़तरा मोल लेना नहीं चाहता। पिछले दस दिनों में जितने भी बालकों का जन्म हुआ है, उन सब को मार डालो; बल्कि पिछले महीने में भी जितने बालक जन्मे हैं, उन सब को मार डालो।'

फिर मगध के वृद्ध सैनिक की ओर देखकर कंस ने कहा, 'क्यों बाहुक, मेरी बात तुम्हें कैसी लगी ?'

पूर्वाश्रय के जरासंध के मंत्री बाहुक ने उत्तर दिया, 'वीर श्रेष्ठ, आप चाहे जितने बालकों को मार डालें, फिर भी लोगों को अपने उद्धारक की प्रतीक्षा करने से आप रोक नहीं सकते। और, जब तक वे प्रतीक्षा करते रहते हैं, तब तक आपका भय दूर नहीं हो सकता।'

'फिर लोगों को उद्धारक की प्रतीक्षा करने से रोका किस प्रकार जाय ?' कंस ने प्रश्न किया।

'स्वामी, जनता तो बेवक़ूफ होती है। आप सख़्ती से काम लेंगे, तो वे आपकी सत्ता स्वीकार करेंगे। परन्तु उद्धारक के बारे में जब तक उनकी श्रद्धा बनी रहती है, तब तक उनका आत्मबल टूटेगा नहीं।' बाहुक ने उत्तर दिया।

'तो उनकी श्रद्धा शेष किस प्रकार की जाय ?'

'स्वामी,' बाहुक ने कहा, 'उनकी श्रद्धा ऋषि-मुनियों तथा ब्राह्मणों की शिक्षा पर आधारित है।'

'ठीक है। मैं जो भी करता हूँ, उसे वे लोग अधर्म बताते हैं। बाहुक, तुम समझदार हो, बुद्धिमान हो। हमारे प्रतापी श्वसुर जरासंघ के साथ रहने का सुअवसर तुम्हें मिल चुका है। तुम्हारा अनुभव भी विशाल है। हमें अब क्या करना चाहिए, यह तुम ही कहो।'

'स्वामी, सत्ताशाली राजा का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह लोगों की इस श्रद्धा को निर्मूल करे, कि उनका उद्धार करने कोई तारणहार आनेवाला है। जैसा कि अभी मैंने आपसे निवेदन किया, यह श्रद्धा साधु पुरुषों के कारण ही टिकी हुई है।'

'तो फिर उनको किस प्रकार ठीक किया जाय ?'

'वीरश्रेष्ठ, उनको ठीक करना तो कोई सहज काम नहीं। उन्हें किसी प्रकार का कोई लोभ या भय नहीं, न उन्हें किसी के प्रति द्वेष है। उन्हें स्पृहा भी किसी की नहीं। इसीलिए वे इतने शक्तिशाली हैं। फिर उनके अतिरिक्त संयम का पालन करनेवाले तथा वेद की आर्षवाणी पर जीनेवाले ब्राह्मण भी तो हैं। ये लोग देवताओं का आह्वान करते हैं तथा यह उपदेश देते फिरते हैं कि धर्म के प्रभाव के सामने राजसत्ता असमर्थ है। हमारे आदेशों का पालना वे नहीं करेंगे। अपने मान्य धर्म की तुला पर ही ये लोग प्रत्येक वस्तु को तौलते हैं।'

'अपार धन देकर मैं उन्हें जीतने का प्रयत्न तो करता रहा हूँ।' कंस ने कहा।

'साधु पुरुषों को किसी प्रकार लालच में नहीं फँसाया जा सकता। लोभ से वे परे होते हैं। ब्राह्मणों को आप दान देंगे, तो उससे वे हृष्टपुष्ट अवश्य बनेंगे, परन्तु ज्ञानप्राप्ति की कामना वे सदा करते रहेंगे और सलाह तो वे उन्हीं की मानेंगे, जो त्यागवृत्ति को ही जीवनधर्म मानते हैं।'

'उन सब का वध करूं, तो मेरा विरोध कौन करेगा ?'

'वीरश्रेष्ठ, यदि आप उनका वध करेंगे, तो आपके विरुद्ध लोगों का प्रकोप फट पड़ेगा। मथुरा से यदि आपने उनको बाहर निकाल दिया, तो वे जहाँ कहीं भी जायेंगे, आपके शत्रु खड़े करेंगे।'

एक शब्द भी बोले विना कंस चुपचाप बाहुक की बात सुन रहा था। वृद्ध मंत्री ने फिर कहा, 'वीरश्रेष्ठ, साधु पुरुषों और ब्राह्मणों का विनाश केवल एक ही रीति से हो सकता है। आपका द्रव्य भंडार लोगों के लिए मुक्त कर दें। उन्हें खानपान और वैभव विलास के इच्छुक बना दो। कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए कि उनका कुलधर्म नष्ट हो जाय, स्त्रियाँ विलास के

समक्ष शील को कोई महत्व न दें, बालक, वृद्ध तथा शक्तिहीन माता-पिता को व्यर्थ और भारस्वरूप समझें। एक बार लोग यह मानने लगें कि अमर्यादित वैभव विलास ही जीवन का ध्येय है, तो साधु और ब्राह्मण उन्हें ढोंगी लगने लगेंगे। वे फिर धर्म, तपस्या, प्रेम तथा दया की बातें करनेवालों की हँसी उड़ायेंगे। जब वे सुरा छलकाने लगेंगे, तब संयम ही दूर भाग जायगा। फिर आज जो भी करेंगे, उसे वे मूक पशु की तरह कुछ भी प्रतिकार किये बिना सहने लगेंगे। आप प्रहार करेंगे, तो भी उसे प्रसाद समझ कर स्वीकार करेंगे।'

'बाहुक, तुमने जो रास्ता बताया, वह है तो बहुत लंबा, लेकिन उस पर चलने की मैं कोशिश करूँगा ? इस बीच, पूतना, तू इस बात का पता लगा कि पिछले कुछ दिनों में कितने बालकों ने जन्म लिया है और कुछ ऐसा प्रबंध कर कि उनमें से एक भी जीवित नहीं बचें।'

(क्रमशः)

अनु : ओंकारनाथ शर्मा

*

[आभा : पृष्ठ ९० का शेषांश]

ओर, एक छोटे से पलंग पर उसका पप्पू सो रहा है। तारके सहारे लटका हुआ नीला बल्ब हवा के तेज झोंकों से रह-रह कर झूल-झूल उठता है। खिड़कियाँ फड़-फड़ा उठती हैं।

–खिड़कियाँ बंद करलो आभा। शायद आँधी आने वाली है!

–मैं भी महसूस कर रही हूँ अनु...। बाहर के पेड़-पत्तों में सनसनाहट हो रही है। सन्नाटे में हलचल हो रही है। – मुझे यह सब अच्छा लग रहा है। खिड़कियाँ खुली रहने दें। कभी-कभी बिजली भी रह-रह कर चमक उठती है।

–शायद, असमय–मेघ बरसेंगे! –मैंने जैसे खुद से ही कहा। इतने में ही ऊपर लटकता हुआ नीला बल्ब बुझ गया।

–बिजली फ्यूज़ हो गयी है–हम दोनों ने समवेत स्वर में कहा!

कुछ क्षण मौन रहा।

...बाहर के पेड़-पत्तों की सनसनाहट नसों में वेगवती हो रही है। सन्नाटे की हलचल साँसों में तेज़ हो रही है–मेरे और आभा के अंतर्द्वंद्व अभिव्यक्त हो रहे हैं।

मेरे हाथों में कमल आ गया है। उसकी पँखुड़ियाँ मेरे हाथों में ठहर गयी हैं..... अब...अब...ये पँखुड़ियाँ मेरे हाथों से नहीं छूटेंगी।

पर....! मर्यादाओं की झील में सहसा भूकम्प हुआ! सीमाओं के जल में सोते उबल पड़े! उसके पहले कि मैं कमल के पराग से भींज सकूँ....वह फिर मुझसे छूट गया!

आभा ने पगली की तरह आर्त्तनाद करते हुए कहा–अनु,...तुम...विवाह... कर लो.....।

बाहर जोर से बिजली कड़की और मुझे लगा–मेरा अंतर खंड-खंड हो रहा है!!

*

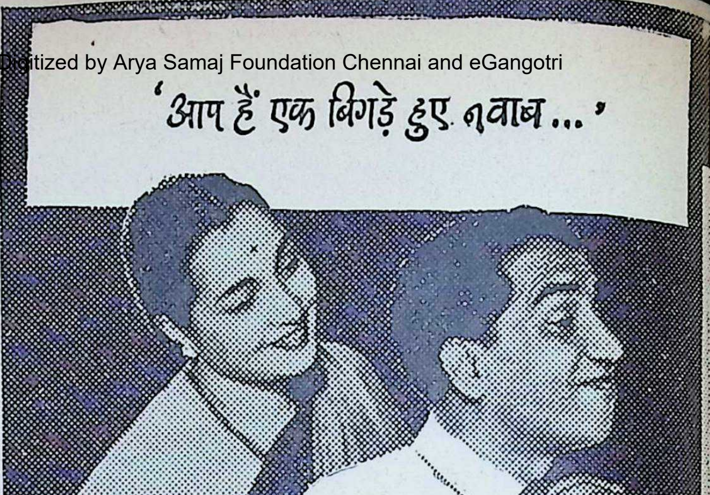
'आप हैं एक बिगड़े हुए नवाब...'

'मेरे पतिदेव एक बिगड़े हुए नवाब से कम नहीं,' डी/८, यूनियन हाउस, माहिम, बम्बई १६ की श्रीमती आर. आर. प्रभु कहती हैं, 'और कपड़ों की धुलाई पर तो इन का माथा मैला होते देर नहीं लगती। लेकिन जब से इन के कपड़े मैं ने सनलाइट से धोने शुरू किये हैं, यह भी ख़ुश हैं और मैं भी। सनलाइट से कपड़े शानदार सफ़ेद और उजले धुलते हैं और इस का ढेरों झाग मैल का कण कण बहा ले जाता है!

गृहिणियाँ जानती हैं कि शुद्ध, मुलायम झागवाले सनलाइट की धुलाई में उन के कपड़ों की भलाई है। आप भी उन से सहमत हो जायेंगी।

सनलाइट

SUNLIGHT SOAP

[illegible] की सौम्य धुलाई के लिए

'S. 30-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

[मैंने आठ घंटों में : पृष्ठ ३१ का शेषांश]

मैं छिपकलियाँ, पक्षी, दिनोसार, घड़ियाल जैसे जीव और सर्प बनी। करोड़ों जीवों के रूप में मैंने मृत्यु का कष्ट सहा। केवल कुछ जीवों के रूप में मैं जीवित बची। मैंने सोचा, 'संसार में शायद इसीलिए युद्ध होते हैं। संसार सदा ही संघर्षमय रहा है।' बार-बार यह प्रश्न मेरे मन में उठता,' इससे मनुष्य का विकास किस प्रकार संभव हुआ ?'

मानों इस प्रश्न के उत्तर में ही मेरे सामने वह सूर्य प्रकट हुआ, जो ईश्वर था। इस बार एक छोटे-से चन्द्रमा की तरह वह मुझे दिखायी पड़ा। मैंने अनुभव किया कि जीवनशक्ति जो विकास की इच्छुक है, स्वयं ईश्वर की इच्छा ही प्रकट करती है। प्राग-ऐतिहासिक प्राणी के रूप में इसी शक्ति से मैं इतनी प्रेरित थी कि भय और घृणा की भावनाएँ भी उसके सामने तुच्छ थीं। यही वह शक्ति थी, जीवन की आकांक्षा, जिसके बल पर मैं वह भयानक संघर्ष कर सकी, अपने शत्रुओं से घृणा कर सकी और विनाश से इतनी भयभीत थी।

निरन्तर संघर्षशील, मृत्योन्मुखी जीवों से मैं तत्काल ही सैकड़ों ज्वालामुखी बन गयी और आकाश में मीलों ऊँचा लावा उगलने लगी। साथ ही गर्म लावा की विनाशकारी धाराओं से अपने प्राण बचाते हजारों भयभीत जीव भी मैं थी। सहस्रों प्राणियों की असह्य मृत्यु-वेदना का अनुभव मैंने किया। मांस-पिण्डों के जलने की तीव्र पीड़ा से मैं छटपटाने लगी और मुछे उस दग्धावस्था के उपचार के लिए संसार भर के सभी मरहमों की आवश्यकता प्रतीत हुई। शीघ्र ही मैं लावा की वड़ी-बड़ी नदियों के रूप में परिवर्तित हो गयी। वे सभी सागर की ओर बेतहाशा दौड़, रही थीं, और भयंकर गर्जना कर रही थीं। ज्वालामुखियों के फूट पड़ने के बाद जो जीव बच गये थे, और जो धुंएँ व राख से भरी ज़हरीली हवा में बड़ी कठिनाई के साथ सांस लेते अंधेरे में अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे थे, तथा अन्य हजारों प्राणी, जो सभी वनस्पति के नष्ट होने के बाद भोजन की तलाश में मारे-मारे फिर रहे थे और भूख-प्यास से तड़फ-तड़फ कर मर रहे थे, भी मैं कुछ समय तक रही। कुछ जातियों के रूप में मैं इस धरती पर जीवित भी बची, किंतु फिर कई शताब्दियों तक सूर्य के दर्शन नहीं हुए और एक ऐसे हिम-युग का सूत्रपात हुआ, जिसने धरती पर से जीवन का चिह्न भी मिटा दिया।

चूंकि पृथ्वी पर समस्त जीवन का विनाश हो चुका था, मैं 'मरणावस्था' में निष्क्रिय-निष्पंद पड़ी रही और अपनी जीवन की पराजय पर आँसू बहाती रही। कई युग

बीत गये। उसके बाद मैं फिर एक कोषवाला अमीबा बन गयी, जो दिल की तरह तेज़ धड़कन कर रहा था। फिर क्रम से मैं वही सुंदर पौधा, कमज़ोर गर्दनवाला जल-थलवासी जीव, और अंत में हज़ारों क़िस्म के वही निरन्तर संघर्षशील प्राणी जो बड़ी नृशंसता से एक-दूसरे की हत्या कर रहे थे। जीवन के लिए क्रूर संघर्ष फिर मेरे सम्मुख था। मैं चीख़ पड़ी, 'मानव का विकास इससे किस प्रकार संभव हुआ?' और फिर वही प्रकाश मुझे दिखायी पड़ा, जो सूर्य और ईश्वर था और जिस तक पहुँचने के लिए प्रत्येक प्राणी और पिंड संघर्षशील था।

करोड़ों वर्ष व्यतीत हो गये और तब मैं एक हरे-भरे सुन्दर जंगल में थी, जहाँ चारों ओर बड़े-बड़े वृक्ष और रंगबिरंगे चमकीले फूल थे। दूर-दूर तक मुझे ढलान वाले मैदान और उनके बीच में जल से भरी झीलें और नदियाँ दिखायी पड़ रही थीं। क्षणभर के लिए मैं एक सुन्दर मृग बन गयी, जो बड़ी प्रसन्नता के साथ चौकड़ियाँ भर रहा था; फिर एक विशाल, दृढ़काय सिंह, लम्बे-लम्बे सर्प, गिद्धों के टोले, एक बड़ा बिच्छू, एक काला तेंदुवा, प्रत्येक प्रकार का मुर्ग, छोटे-छोटे बच्चों के साथ माया बत्तख, रंगबिरंगी पंखोंवाली चिड़ियाँ, अपने शिशुओं के साथ एक मादा चीता। ये दृश्य मुझे बार-बार दिखायी पड़ रहे थे। क्रमशः मैं प्रत्येक वन-प्रांतर और प्रत्येक महाद्वीप के प्रत्येक मैदान प्रत्येक प्राणी बन गयी : बंदर, हरिण, सर्स, मगरमच्छ, कई प्रकार बिल्लियाँ और शेर तथा सैकड़ों क़िस्म दूसरे जानवर।

इस बार मेरे संघर्ष का स्तर ऊँचा क्रूरता तो अब भी थी, परन्तु अब क्रूरता के लिए नहीं लड़ रही थी। अब था तो जीवित रहने के लिए था, भोजन प्राप्त करने या अपने प्राण के लिए। दलदल और झाड़ियों के प्रा की तरह अब मैं उतनी भयभीत भी थी। मादा बत्तख और चीते के रूप में माँ की ममता और रक्षक होने के भाव भी प्रतीति हुई। सिंह, सर्प और तें के रूप में मैंने सुरक्षा की भावना का अनु किया, मुर्ग के रूप में स्वतंत्रता का, और हरिण के रूप में गति और लय आनन्द का तथा शांति जैसी एक भावना का। मैं प्रसन्न थी।

इसके बाद कुछ विचित्र प्रक्रियाओं एक लंबी शृंखला का अनुभव मेरे श में हुआ। मैंने अपने को भिन्न-भि प्रकार की अनेक वस्तुएँ बनते देखा उत्तर की बर्फीली, सर्द हवाएँ, जि मैदानों के असंख्यों जीव ठिठुर-ठि कर मर जाते थे और सर्दी से जम जाते मूसलाधार वर्षा और उससे जनित जी को क्षत-विक्षत करती प्रलयंकारी बा

धरती और उस पर के सभी पौधे-प्राणियों को राख की ढेरी बना देनेवाले, आग उगलते, सैकड़ों भयंकर ज्वालामुखी; धरती की छाती को झकझोर देनेवाले भूकम्प और उनकी वज़ह से जगह-जगह उभर आये बड़े-बड़े पहाड़; सागर-तटों से टकराती भीमकाय लहरें, अनेकों हिम युगों के ग्लेशियर, भयंकर गर्जना करते हुए तूफ़ान और आकाश में कौंधती हुई बिजलियाँ। शीघ्र ही मैं इन बिजलियों के गिरने से जंगलों में लगी भयानक आग बन गयी, जिसकी लपटें आकाश में दूर-दूर तक ऊँची उठ रही थीं और जो विप्लवी पवन के साथ भयंकर गर्जना कर रही थीं। मैं वह असंख्य भयभीत प्राणी भी थी, जो इन मृत्युरूपी विकराल अग्नि-शिखाओं से भागने की चेष्टा कर रहे थे और जो धुंए और लपटों से घिरे झुलस-झुलस कर महान मृत्यु-वेदना का अनुभव कर रहे थे। अंत में जगह-जगह पर जले हुए ठूंठ और झुलसी हुई धरती भी मैं ही थी।

भूतत्वकाल की दृष्टि से निमिष मात्र में ही मैं वह अरबों बीज बन गयी, जो बड़े वेग के साथ अति शीघ्र अंकुरित हो, धरती की छाती को हरी कर रहे थे। कहीं-कहीं वृक्षों की झुलसी हुई काली शाखाएँ यह बता रही थीं कि यहाँ कभी आग लगी थी। जैसे-जैसे युग बीतते गये, मैं बार-बार सभी वस्तुओं की मृत्यु और सभी वस्तुओं का पुनर्जन्म थी। प्रत्येक दस लाख वर्ष की अवधि में मैंने कई बार जंगलों और मैदानों के समस्त जीवों के रूप में मृत्यु का वरण किया। जो थोड़े से बच रहे थे, उनका संघर्ष समझ से परे था।

इस दृश्य परिवर्तन और भावनाओं की तीव्रता के कारण मेरे मस्तिष्क का प्रत्येक कोष कार्यरत था, फिर भी डा. स्नो और मेरे पति, फ्रेंक को मैं यह बताने के लिए आतुर थी कि मेरे साथ क्या घट रहा है। बीच-बीच में मैं बोल पड़ती थी, 'मैं सृष्टि का समस्त विकास हूँ, विकास का प्रत्येक चरण हूँ।' 'इसका सम्पूर्ण विवरण कोई नहीं लिख सकता है, उसके लिए तो पूरा एन्साइक्लोपीडिया ही तैयार करना पड़ेगा।' 'मैं सभी मनुष्यों के लिए सभी वस्तुएँ नहीं हूँ, सभी वस्तुओं के लिए सभी वस्तुएँ हूँ।' दलदलों और जंगलों में संघर्ष की क्रूरता और भयानकता का अनुभव करते हुए मैं चिल्ला पड़ी थी, 'मानव का विकास इससे किस प्रकार संभव हुआ होगा?' यह बिल्कुल असम्भव प्रतीत होता था; परन्तु इतना तो मैं तब भी जान सकी थी कि सृष्टि का विकास ईश्वर का ही कार्य है।

एकाएक क़ै करने की मेरी बड़ी जोर की इच्छा हुई और तत्काल ही मैं दरवाज़े की ओर दौड़ी। सहायता के लिए फ्रेंक फौरन मेरी ओर बढ़े, किंतु वे मुझे बाहर नहीं जाने दे रहे थे। बाद में मुझे पता चला कि सभी दरवाज़ों के ताले बन्द थे और चाबियाँ वहाँ से हटा ली गयी थीं। मुझे लगा कि क़ै अब होने ही वाली है और डा. फ्रेंक की

बैठक का सुंदर गलीचा खराब होने से अब बच नहीं सकेगा। जब तक डा. स्नो ने चाभी लाकर दरवाज़ा खोला, तब तक ऐसा लगा मानों लाखों वर्ष व्यतीत हो गये। मैं फौरन ही बगीचे में दौड़ी और घास पर औंधी पड़ गयी। हालाँकि मेरे मुख से केवल कुछ लार ही टपकी, लेकिन मुझे ऐसा लगा मानों क़ै की नदियाँ मेरे मुंह से बह रही हैं। समस्त मानवता की समष्टि होने का भाव भी मुझे उस समय हुआ। इसके पीछे क्या अर्थ छिपा था, यह मैं नहीं जान सका और न जानने की परवाह ही की।

अन्त में वह कष्टकारक ओक़ाई बन्द हुई और बगीचे की सुन्दर छटा मेरी आँखों के सामने फिर से प्रकट थी। जिस भय, कष्ट, कुरूपता, विनाश और मृत्यु का अनुभव मैंने किया था, उसने मानों एक विशाल बुलडोज़र बनकर एक बहुत बड़ी खाई खोद डाली थी और वह खाई अब एक शांति और आनन्द से पूर्ण झील बन गयी थी। एक बहुत बड़ा बोझ मेरे मन पर से हट गया—मैंने राहत की सांस ली और कृतज्ञता से गद्गद् हो उठी। सिसकियों से मेरा सारा बदन कंपित था। मेरी आत्मा को उसने उन गहराइयों तक आन्दोलित कर दिया था, जहाँ तक दुःख और भय की भी पहुँच नहीं थी। ●●●

[संक्षिप्त हिंदी रूपांतर : ओंकारनाथ शर्मा]

अपनी आवश्यकता के लिए खरीदिए

Hind FLOORING TILES

हाइड्रालिक इटालियन मशीनों से

निर्मित : प्रीफ़ब (पूर्वनिर्मित) आर. सी. सी. गृह, सीमेण्ट पाइप, टँक, रंगाई की नाँदें व बाग़ीचों के सामान का निर्माण करते हैं। सरकार, रेलवे, म्युनिसिपैलिटी, पी. डब्ल्यु. डी. के कंट्राक्टर हैं और सामान मुहैया करते हैं।

हिन्दुस्तान सीमेन्ट पाइप्स एण्ड कंक्रीट कन्स्ट्रक्शन कं०

मुख्य कार्यालय : ओछवलाल गोरधनदास शाह

टाइल, पाइप्स एण्ड सेनीटरी मरचेण्ट्स

खाडीआ, चार रस्ता, अहमदाबाद

फैक्टरी : सुएज फार्म रोड, अहमदाबाद

कार्यालय तथा निवास फोन : ५२२९२

फैक्टरी फोन : ५१६३६

मक्खनलाल शर्मा

सनातन सूर्योदयी नूतन कविता का यह घोषणा-पत्र

'साहित्य सन्देश' के सम्पादक श्री मक्खनलाल शर्माने, आज की व्यापक विश्व-समस्याओं के सन्दर्भ में 'घोषणा पत्र' के विभिन्न पहलुओं पर, प्रस्तुत लेख में जो मार्मिक प्रकाश डाला है, वह स्पृहणीय और द्रष्टव्य है। इसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

आचार्य विनोबा भावे ने लिखा है–

'अहिंसा के साथ विज्ञान का विवाह हो जाय, तो उससे दुनिया में मंगलमय जीवन पैदा हो सकता है, जमीन पर स्वर्ग उतर सकता है। लेकिन विज्ञान का विवाह हिंसा के साथ हुआ, तो मानव और मानवता, इन्सान और इन्सानियत–दोनों मिटनेवाले हैं। इसलिए बहुत ज़रूरी है कि विज्ञान के साथ ऐसी शक्ति जुड़ जाय, जिससे उसे उचित मार्गदर्शन मिले। विज्ञान से रफ़्तार, गति बढ़ती है। जहाँ रफ़्तार बढ़ती है, वहाँ रास्ता ठीक मिला, तो शीघ्रातिशीघ्र परम कल्याण प्राप्त हो सकता है। रास्ता ग़लत मिला, तो उतनी ही शीघ्रता से विनाश भी हो सकता है।.... इसके आगे विज्ञान बहुत ज़ोरों से विकसित होनेवाला है। अब तक वह धीरे-धीरे विकसित होता था, लेकिन अब जोरों से छलाँग मार कर आगे बढ़नेवाला है। इसलिए उसके साथ जुड़ने वाली, उसे मार्गदर्शन कराने वाली कोई शक्ति होनी चाहिए। वह है, रूहानियत।' (साहित्य का धर्म : पृष्ठ ५–६)

'घोषणा पत्र' की स्थापनाएँ, जिन्हें अरविन्दवाद, गांधीवाद तथा सर्वोदय की मान्यता प्राप्त है, आजके सर्व प्रमुख तथा जलते हुए प्रश्नों को उठाकर चला है। आज मानव के सामने जहाँ विज्ञान है, वहाँ अनास्था भी है, इस अनास्था को ही श्री वीरेन्द्रकुमार जैन ने आज की अति-

वैयक्तिकता तथा उच्छृंखल अहंवाद का जनक माना है, जो सर्वथा औचित्यपूर्ण है। आवश्यकता आज अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की है। [अध्यात्म का तात्पर्य धर्म (Religion) नहीं है, जैसा कि घोषणा पत्र के कुछ आलोचकों ने समझा है।] जब तक यह समन्वय नहीं होगा, सर्वोदय भी सर्वाभ्युदय नहीं हो सकता। इस ओर घोषणा की शक्तिशाली मान्यता एक नवीन प्रेरणा तथा आवाहन समन्वित होने के कारण स्तुत्य है –

'यदि हम सार्वभौमिक मानवता के प्रेम और कल्याण से प्रेरित होकर, विज्ञान और यंत्र का सर्वाभ्युदयी उपयोग करने में संलग्न हो जायँ, तो हम चिर दिन की इस मर्त्य पृथ्वी पर ही, भौतिक–दैहिक जीवन-जगत् में ही– अमरों का दिव्य स्वर्ग साकार कर सकते हैं।' (भारती : मार्च १९६२ : पृष्ठ ११४)

यहाँ रुककर थोड़ा समझने की आवश्यकता है कि 'अमरों के दिव्य स्वर्ग' से क्या तात्पर्य है ? न यह 'बैकुण्ठ' है और न 'कल्पना-लोक' जिसकी शक्यता में कुमारी पद्मा सुधि तक को आशंकायें उठी हैं। (भारती : मई १९६२ : पृष्ठ ११६) यहाँ 'अमर' और 'दिव्यस्वर्ग' से तात्पर्य अध्यात्म और विज्ञान के परिणय से है, तथा 'मर्त्य' और 'नर्क' (इस शब्द का प्रयोग मैंने अपनी ओर से कर लिया है।) अनास्था और विज्ञान का अनिवार्य परिणय कहा जा सकता है। सर्वोदयी भाषा में कहें, तो कह सकते हैं कि अहिंसा और विज्ञान का समन्वय ही आज विश्व को महा विनाश से बचा सकता है। इसके अन्तर्गत विज्ञान और यंत्र जनकल्याण हेतु ही प्रयुक्त होंगे, न कि जनसंहारक बनकर मानव का अन्त करेंगे। सागरगर्भ, पृथ्वीगर्भ तथा वायुमंडल जिन विषाक्त परीक्षणों तथा भयंकर स्वचालित अस्त्रास्त्रों से लदे वायुयानों, जहाजों तथा पनडुब्बियों से आक्रांत हो उठे हैं। क्या इनके मानव पर शासन करते हुए उसकी आस्था टिकी रह सकती है ? स्थायी शांति स्थापित हो सकती है ? यदि विज्ञान-शक्ति हिंसक हाथों से निकलकर अहिंसकों के हाथ में चली जाय, तो यह सब हो सकता है। यही पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आने की बात है, जिसे भावे ने इस प्रकार कहा है-

'अहिंसा के साथ विज्ञान का विवाह हो जाय, तो उससे दुनिया में मंगलमय जीवन पैदा हो सकता है। जमीन पर स्वर्ग उतर सकता है।'

प्रगतिवादी अहिंसा तथा अध्यात्म को अस्वीकार करके चलते हैं। वे साहित्य को राजनीति का अनुगामी तथा उसके उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला मानते हैं। उसके लिए पंचवर्षीय तथा सप्तवर्षीय योजनाएँ बनाते हैं। क्या लिखा जाना चाहिए- इसके लिए आदेशपत्र निकलते हैं; अतः

साहित्यकार की स्वतंत्रता की दुहाई देकर उनके प्रतिपक्षी अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत करते हैं। यदि हमारा साहित्य राजनीति का अनुगामी बना रहेगा, तो वह भी राजनीति के समान एक वर्ग विशेष के स्वार्थों का साधन करना ही अपना उद्देश्य मानेगा। वह एक वर्ग का विरोध करेगा, अर्थात् उसकी प्रक्रिया विध्वंसकारी होगी।

उदाहरणस्वरूप——सर्वज्ञहारा का हित-चिंतन करनेवाला साहित्य सर्वज्ञता के अतिरिक्त शेष मानवता का विरोधी सिद्ध हो जाता है। आज जबकि विज्ञान सर्वज्ञता तथा बुर्जुआ में अन्तर नहीं करता, (अटमबम फैक्टरी तथा महलों पर एकसा विध्वंसकारी प्रभाव करता है।) तब वह साहित्य, जो इस भेद को मान कर चलेगा—अधिक समय तक नहीं टिक पायेगा। या तो वह अपनी लकीर को चौड़ा करेगा, अन्यथा मिट जायेगा। आज सर्वोदय तथा मार्क्सवाद दोनों इस भावी समाज रचना को स्वीकार करने चलते हैं कि धीरे-धीरे शासन ढीला होगा–अनुशासन बढ़ेगा–और अन्त में शासनशक्ति समाप्त हो जायेगी। जब तक कि हम व्यक्ति के विकास में विश्वास नहीं करते, तब तक इस उद्देश्य की उपलब्धि को कैसे मान्यता दे सकते हैं? जब तक हम मनुष्य-मनुष्य के (और आगे चलकर जीव-मात्र के) अभेद को नहीं मानेंगे, तब तक शासन तथा वर्गों से मुक्त समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यह अभेद-वृद्धि ही अध्यात्म है, जो निरन्तर विकसित हो रही है और इस विज्ञान युग ने इसकी अनिवार्यता को स्पष्ट किया है। विज्ञान तथा इस अभेदवृद्धि को जोड़ने वाली शक्ति साहित्य है। यह सेतु का काम करता है। इस वाह्य (विज्ञान) तथा आन्तरिक (अध्यात्म) का योग साहित्य के द्वारा होना है। मानव को वर्गविहीन–शासन मुक्त–समाज की इकाई बनाने का उद्देश्य साहित्य और कला द्वारा ही पूरा होना है। इसी की घोषणा आज की अनिवार्य आवश्यकता बनकर निम्न पंक्तियों में प्रकट हुई है—

'नयी कविता आगामी कल के पूर्णतर, अति-मानस जगत् में प्रकट होने वाले आत्मिक और भौतिक, दिव्य और पार्थिव के संयोजन की अग्रगामिनी ज्योतिर्मयी वेटी है।' (भारती : मार्च १९६२ : पृष्ठ १२२)

जब यह समाज-दशा प्राप्त हो जायगी, तथा मानव-मन उसे अपने विकास द्वारा उतारकर लायेगा–तो उसीको 'देवत्व' माना जायगा। इसे पारलौकिक तत्व कहकर अयथार्थवादी मानना इतिहास के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करना है।

इस घोषणापत्र के निम्न तथा विशेष-रूप से ध्यातव्य हैं—

१. अनास्था, कुंठा, पतन, पराजय, लघुता तथा विकृति जिस साहित्य में प्रमुख स्वर

माने जाते हैं, उसके पीछे भी सत्यशोधन और आत्मोपलब्धि की घोषणाओं का तुमुलनाद किया जाता है, जबकि वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। साहित्य का उद्देश्य सत्योपलब्धि–है यह तो ठीक है, किन्तु सत्य अनुभूति में न मानकर अनास्था वादी उसे केवल रूप (Form) में देखने का प्रयत्न करता है। इसके लिए आज जो अनेक कलाबाजियाँ रूपवादी कवि दिखलाते हैं, उससे चमत्कार पैदा किया जा सकता है, किंतु 'आनुभूतिक सत्योपलब्धि' को कविता की कसौटी मानने वाले घोषणापत्र को इससे निराशा हुई है, जो सर्वथा उचित है।

२. आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि जीवन सत्यों को सामूहिक रूप से देखा, परखा और समझा जाना चाहिए। प्राचीन आर्षकाल में यह पद्धति थी, उस समय 'जो दर्शन होता था, वह सामूहिक साधना, सामूहिक तपस्या से ही होता था। अवश्य ही सामूहिक साधना से सम्पन्न वह दर्शन भले ही एक मनुष्य द्वारा प्रकट होता हो।' आज इसके विपरीत सामाजिक अनुभूतियों को तुच्छ और ओछा कहकर अनास्थावादी व्यक्ति वैचित्र्य को बढ़ावा दे रहे हैं, (इसीलिए साधारणीकरण के प्रश्न को उन्होंने अस्वीकार कर दिया है।) इससे साहित्य अहंवादी बनता जा रहा है। जिसमें समाज के समक्ष समर्पण तथा मानव कल्याण की ओर दृष्टि न होक अन्तर्मन की अतल गहाराइयों औ कामकुंठाओं को प्रतीकों द्वारा रँगा जात है। इस पर आज चारों ओर से कशाघातों की आवश्यकता थी, और इसका ऐतिहासिक प्रारंभ श्री जैन द्वारा किया गया है यह अभिनन्दनीय है!

३. जब तक कवि निष्पक्ष, स्वतंत्र तथ राजनैतिक आंदोलनों के गठबंधन मुक्त नहीं होगा, तब तक उसे तटस्थ सत का परप्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकेगा और इसके अभाव में उसकी कवित प्राणहीन होगी। कवि को जो 'मनीषी और 'स्वयंम्' कहा गया है (राजनीति तो क्या विधाता का भी अनुगामी नहीं कहा गया!) वह इसीलिए कि उसकी स्वतंत्रता सर्वोपरि है। 'विनोबा जी इ मान्यता देते हैं–

'जो खेल में शामिल होता है, वह उ उतना नहीं पहचानता; उसके गुण-दोषों उतना नहीं जान सकता, जितना तट साक्षी रहनेवाला जान सकता है।... साहित्यिकों की तटस्थ भूमिका होनी चाहिए। लेकिन सिर्फ तटस्थ ही नहीं बल्कि पक्षपाती तटस्थ भूमिका होनी चाहिए। उदासीन तटस्थ नहीं।... तटस्थ निर्विकार होने पर भी संसार बरतनेवाले सामान्य जनों के लिए अत्य प्रेम रखकर चित्त में उनके लिए पक्षपा

रखकर वरतेगा, वही सर्वोत्तम साहित्यिक होगा।'

(साहित्य का धर्म : आ. भावे)

किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी कोई सीमाएँ नहीं हं, उसका निजी जीवन जब तक त्याग, प्रेम, अहिंसा एवं समता को आधार बनाकर नहीं चलेगा, तब तक वह अभीप्सित साहित्य का सृजन नहीं कर पायेगा। इस ओर आज सबसे कम ध्यान दिया जाता है, जबकि इसका सर्वाधिक ध्यान रखा जाना वांछनीय हैं। 'घोषणा-पत्र' इस ओर संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के कारण सर्वांगपूर्ण मान्यता देने में समर्थ सिद्ध होता है –

'अहिंसा, प्रेम, समता, आत्मस्वातंत्र्य तथा सर्व की एकात्मता के पात्रों पर आधारित एक सर्वोदयी सम्वादी (harmonious) समाज व्यवस्था में ही एक स्वस्थ और सच्चे मानव-व्यक्ति का विकास हो सकता हे।' (भारती : मार्च १९६२ : पृष्ठ १२४)

४. यहाँ एक समय राज्य का शासक राजा होता था (कुछ देशों में आज भी यह रूप देखने को मिलता है।) सम्मान, शक्ति तथा अर्थ उसी में केंद्रित रहता था, अतः साहित्य भी उसका गुणगान करता था। बदलती हुई परिस्थिति ने यह पद आज जनता को प्रदान कर दिया है (लोकतंत्र में अपने प्रतिनिधियों द्वारा जनता ही शासन करती है– ऐसा माना जाता है।) अतः साहित्य भी राजाओं को छोड़कर सामान्य जनता का आधार ले रहा है। आज विशिष्ट के स्थान पर सामान्य को महत्व मिल रहा है। यह महत् और सामान्य का भेद मिटना चाहिए। आजके नायक और कथाएँ सामान्य में से महत् को उभारकर सामने लायें– इसकी आवश्यकता है। साहित्यकार अपूर्ण होता है तथा अपने साहित्य के द्वारा पूर्ण का साक्षात्कार करने का प्रयत्न करता है। उसके पात्रों में भी उसकी यह प्रवृत्ति आ जाती है। मानवता के विकास की इसे सीढ़ी मानना चाहिए। जो उसके अपने जीवन में है, वही साहित्य में भी आयेगा। जिस अनुभूति और शब्द (शिल्प) की प्रेरणा पूर्ण भावना से युक्त हृदय का समर्थन प्राप्त करेगी, वह कभी भी अशक्त नहीं होगी। अतः शक्तिशाली कथ्य अपनी शैली स्वयं पा जाता है, जिससे वास्तविकता रागमयी तथा आकर्षक बन जाती है। कथा और अभिव्यक्ति की यह ईमानदारी आज यथार्थवाद में ही जीवित रहकर पल्लवित हो सकती है॥ वीरेन्द्रकुमार जी ने इस सम्बन्ध में जो मार्मिक गवेषणा प्रस्तुत की है, वह स्वागत योग्य ही नहीं, सभी साहित्यकारों के लिए (विशेषतः अनास्थावादियों के लिए

मननीय) अनिवार्य आवश्यकताओं की सूची में शीर्षस्थ स्थान पाने की अधिकारिणी है–

'हम जीवन और सृजन की ईमानदार तद्रूपता और एकता में विश्वास करते हैं। व्यक्तिगत जीवन में क्षुद्र, नीचतापूर्ण, प्रेम-सहानुभूतिहीन, संवेदन-हीन, कपट-प्रपंचपूर्ण निरा स्वार्थी जीवन जीकर कोई उच्चतर और स्थायी मूल्य की कविता, कला या साहित्य का निर्माण नहीं कर सकता। सृजकों की नवीनतम पीढ़ी नग्न उस्तरे की धार की तरह प्रखर और ईमानदार है और वह जीवन और सृजन के बीच विद्यमान कपट, पाखंड और दम्भ के मुखौटों को छिन्न-भिन्न कर लिखने और जीने की बेपर्दा यथार्थवादी एकता में विश्वास करती है'

५. भारतीय परम्परा तथा आदर्श के अनुकूल यह नूतन कविता का घोषणापत्र आजकी अनिवार्य आवश्यकता का सुखद परिणाम है। अनास्थावादी दर्शनों के भीषण झंझावात में आज इस बात की आवश्यकता सारे विश्व में अनुभव की जा रही है कि हम न्यून से महत की ओर, व्यक्तिवाद से लोकनीति की ओर अग्रसर हों। हमें आशा बंधी है कि आगामी पीढ़ी की कविता स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर अवतरित हो रही है। जिसको श्री जैन जैसे समर्थकों का मिलना उसके मंगलमय भविष्य का सूचक है।

★

सुकुञ्चित रेशमी
केश राशि के लिए

परफिउमड्
कैस्टर
आयल
व्यवहार करें

यह मनोरम सुगन्धयुक्त केश तैल है।

बंगाल केमिकल
कलकत्ता · बम्बई · कानपुर

ये सनातन सूर्योदयी नूतन कविता का स्वागत करते हैं

[प्रस्तुत वक्तव्यों के सभी अभिप्रायों से सहमत होना सम्पादक के लिये आवश्यक नहीं]

●

श्री वारीन्द्र कुमार वर्मा : हिन्दी काव्य की नवीनतम पीढ़ी में, विज्ञान-संयुक्त नवअध्यात्म-चेतना के अनोखे चिंतक : आत्म-चैतन्य की मौलिक रसानुभूति के कवि

'भारती' के गत मार्च अंक में आपका 'सनातन सूर्योदयी नूतन कविता का घोषणा-पत्र' देखा था। दो-तीन बार ध्यान से पढ़ जाने पर मन में उठने वाले विविध प्रश्नों पर विचार करने पर मैं आपकी प्रस्थापनाओं का सामान्य तौर पर समर्थन किये बिना नहीं रह सका, यद्यपि अवान्तर मतभेद के नाम पर किन्हीं बातों की व्याख्या अथवा उनका स्पष्टीकरण भी करना चाहता था।

आज की कही जाने वाली नयी कविता संकट के चौराहे पर ही खड़ी है। ग़लत रास्तों में भटक-भटक कर फिर चौराहे पर ही लौटती रही है। दिग्भ्रम तो हुआ; लेकिन ग़नीमत है कि वह किसी एक ही ग़लत रास्ते को अपनाकर, उसीमें आगे बढ़कर अभी पूरी तरह नहीं खो पायी। कुंठावाद, अस्तित्ववाद, निराशावाद और लघुमानववाद—इन सभी रास्तों में कुछ दूर जाकर फिर से 'संकट के चौराहे' पर अधिक उलझन के साथ नयी कविता लौट-लौट आयी है। ऐसी स्थिति के प्रसंग में दिशा-बोध देने के हेतु आपके घोषणा-पत्र का महत्व बहुत अधिक है। सामयिकता और महत्व को देखते हुए मैं इस घोषणा-पत्र के लिए आपको बधाई देता हूँ।

अपने वैयक्तिक जीवन की प्रतीति में जिस सत्य को आपने भोगा है, मेरा ख़याल है, उसे बहुतों ने भी भोगा होगा। कम से कम मैंने तो बहुत से अवसरों पर उस सत्य को पाया और जिया है। लेकिन इस बात से मैं अनजान नहीं हूँ कि अभी तक यह सत्य जिन लोगों के प्रतीति के घेरे के बाहर है, वे केवल इसे अधिक से अधिक आत्मनिष्ठ सत्य कह सकते हैं। लेकिन यह तथा-कथित आत्मनिष्ठ सत्य भोगनेवालों के लिए 'ऑब्जेक्टिव' है। अगर यह सत्य सही अर्थों में ऑब्जेक्टिव है, तो इसकी प्रतीति सर्वसामान्य के लिए उपलब्ध

हो सकनी चाहिए। व्यक्ति में इस सत्य को भोग सकने की क्षमता और संभा यदि विद्यमान है, तो व्यक्ति भौतिक-वृत्त का केंद्र नहीं, वह कदापि 'लघु' नहीं, अ की एक सम्पूर्ण बंद इकाई नहीं। भौतिकवाद, लघुमानववाद और अस्तित्ववाद इन सबकी परिणात्मक दशायें–क्षणवाद, कुंठावाद आदि– सबकी सब झूठी हैं। वे हमें दिग्भ्रमित ही कर सकती हैं और हमारा प्राप्य हमसे छीन लेती हैं।

लेकिन एक बात कहना आवश्यक समझता हूँ। आपके घोषणा-पत्र को प ऐसा लगता है कि आपकी प्रस्थापनाओं का आधार निजी जीवन की सत्यानुभूति खैर है ही, वह एक आरम्भ-बिन्दु भी है। यही कारण है कि इस सम्पूर्ण घोषणा-पत्र पीछे एक शक्ति है, जो एक तरह से पूर्वाग्रह की शक्ति मानी जा सकती है। आपका religious bias है, और यह आश्चर्य की बात नहीं कि डॉ. विश्वम्भरनाथ उपा जैसे व्यक्ति आपके इस घोषणा-पत्र को 'वैकुण्ठवादी घोषणा-पत्र' कहें। ऊपर 'रीलि का अर्थ किसी वर्ग या सम्प्रदाय या किन्हीं प्रचलित मान्यताओं से कदापि नहीं है। मे खयाल है कि सीक्यूलर दृष्टि (धर्महीन या धर्म से उदासीन नहीं) से ही तर्क के आधार 'सार्वलौकिक जीवन-देवता' अथवा 'परमशक्ति या परमसत्ता' को सिद्ध किया जा सक है। धर्म का मनोवैज्ञानिक आधार क्या है?–यह प्रश्न ही अपने उत्तर से परमश की सत्ता की परिपुष्टि करता है। जब व्यक्ति की कुण्ठाएँ, असफलताएँ और निराश मिलती हैं, तब असफलता-बोध के क्षणों में, असफलता के मानवीय कारणों के अभा में, वह केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कोई एक शक्ति ऐसी है, जो उससे क अधिक बलवती है। इस बलवती शक्ति को ही परमशक्ति का नाम दिया जाता है औ इसके प्रति व्यक्ति के मन में श्रद्धा, व्यक्ति में धर्म-भावना का संचार करती है। स्पष्ट है कि यह परमशक्ति सूक्ष्म भौतिक और अभौतिक कारणों की सामूहिक शक्ति और सभी स्तरों पर क्रियाशील है। और अगर यह बात देखी जाय कि यह परमश भौतिक तथा अभौतिक रूपों में भी व्यक्त होती आयी है, या हो सकती है, तो 'भगवान' अथवा 'भगवती माँ' की संज्ञाएँ भी दी जा सकती हैं। आपके घोषणा-पत्र वैकुण्ठवादी कहना अनुचित है, लेकिन वह अध्यात्म-हीन नहीं है। उसे अध्यात्म-ही होना भी नहीं चाहिए। यदि परमशक्ति भौतिक व अभौतिक स्तरों पर क्रियाशील ह तो वह एक साथ ही transcendental और immanent कही जा सकती है, ही यह बात सिद्ध न की जा सके कि यह परमसत्ता भौतिक व अभौतिक रूपों में व्यक्त हो सकती है।

परमशक्ति की उपकल्पना और उसकी क्रियाशीलता की विधायें केवल यही सिद्ध करती हैं, कि हरएक अस्तित्व शक्ति का एक केंद्र (centre of force) है। पाश्चात्य दार्शनिक लीब्नीत्ज़ की कल्पना ऐसी ही थी, हालाँकि उसके अनुसार प्रत्येक 'मोनड' (monad) जो एक शक्ति-केंद्र है, सम्पूर्ण विश्व को अपने में परिलक्षित करता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि शक्ति का एक केंद्र है, तो वैयक्तिकता और अहमन्यता आवश्यक रूप से उसमें होगी। लेकिन यह बात ध्यान में रखने की है कि वह स्वयं में बंद एक सम्पूर्ण इकाई नहीं है। शक्ति के अन्य केंद्र भी हैं और उन सबका संबंध व व्यापार आवश्यक है। अतएव अपने को एक इकाई मानकर भी ये सम्पूर्ण (whole) से अथवा किसी Inter-related system से क़तई अलग नहीं हैं। अहमन्यता व्यक्तित्व और स्वतंत्रता तथा विकास के लिए आवश्यक तो है, लेकिन व्यक्ति के अहं को सब कुछ समझकर व्यक्ति को एक बंद सम्पूर्ण इकाई के रूप में देखना सर्वथा ग़लत और ख़तरनाक है। अहं और अहमन्यता के बीच अन्तर खींचा जाना आवश्यक है। अहमन्यता व्यक्तित्व-विकास की अनिवार्यता तक सीमित है। अहं इस स्थिति का अतिक्रमण है जहाँ स्वार्थ, लालसा जैसी रागात्मक वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

अहंवादिता का ही परिणाम कुंठावाद और निराशावाद है। जहाँ व्यक्ति का अहं ही सर्वोपरि हो, वहाँ निजी जीवन की कुंठायें, असफलतायें आदि ही जैसे सम्पूर्ण सत्य हैं। असफलतायें, कुंठायें, निराशायें किसे नहीं मिलतीं? अपने जीवन में अधिकतर निराशा और असफलता की उपलब्धि के साथ ही यदि सभी के जीवन में इन्हीं की प्रधानता भी देखी जाय, तब भी हमारा दर्शन आवश्यक रूप से निराशावादी नहीं होगा। जहाँ व्यक्तियों में जीवन और विकास की अनन्त सम्भावनायें हैं और जहाँ सब की नियति एक है, तमाम असफलताओं और कुंठाओं के बीच भी हम निराशावाद को प्रश्रय नहीं दे सकते। लघु-मानववाद और अहंवाद का खंडन ही हमें निराशावाद से बचा सकता है। दुःख, असफलता, कुंठा और निराशा की स्थितियों को भोग पाना अथवा उनके प्रति सचेत रहना एक बात है, और उन्हें मानव-नियति की आवश्यक दशायें मानना दूसरी बात है।

अतएव कविता में असफलता, कुंठा, निराशा, आदि को यथार्थवादी चित्रण के नाम पर व्यक्त किया जा सकता है, अंतिम सत्य के रूप में कदापि नहीं। ड्राइंगरूम के रंगीन चित्र भी मूल्यहीन और बेकार नहीं हैं। सहानुभूति, सत्यघटना, सौंदर्य सभी की दृष्टि से उनका आदर किया जाना उचित है। सर्वोपरि सत्य की दिशा में स्पष्टीकरण

अथवा संकेत जितनी सीमा तक कविता में किया जाय, वह श्लाघनीय है। लेकि निराशावाद और कुंठावाद की धुँधली शाम के चित्र सर्वथा निन्दनीय हैं।

श्री राजीव सक्सेना : मानव-भविष्य के प्रति अक्षुण्ण आस्था से प्रज्ज्वलित, तेजस् प्रगतिशील चेतना के एक अगली क़तार के नये कवि

भाई वीरेन्द्र कुमार जैन ने 'भारती' के मार्च-(६२) अंक में 'सनातन सूर्योदयी नूतन कविता' शीर्षक घोषणा-पत्र लिखकर नवीनतम पीढ़ी का असन्तोष अत्यंत तीव्रतापूर्वक व्यक्त किया है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के तुरन्त बाद के काल में भारतीय समाज के दिग्भ्र और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का लाभ उठाकर, पश्चिम की मरणोन्मुखी सभ्यता की प्रवृत्तियों की भौंड़ी नक़ल उतारते हुए 'नवलेखन' के नाम पर जो कुछ किया गया, उसके वांझप का पर्दाफ़ाश हो चुका है। विगत दस वर्षों में, जिस नयी पीढ़ी का उदय हुआ है, वह इ जड़त्व से ऊब गयी है और नये पंथ का अन्वेषण कर रही है। भाई वीरेन्द्र के उक्त लेख से निश्चय ही इस महान कार्य में सहायता मिलेगी।

प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट करते हुए कि मैं वीरेन्द्र भाई की व्याख्या से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ, मैं बल देकर यह कहना चाहूँगा कि उनके प्रमुख निष्कर्षों से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। इनमें से कुछ निष्कर्ष मैं यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा :–

- 'हम अपनी सृजना में सर्वस्व समर्पणशील प्रेम की शक्ति द्वारा मनुष्य के भीतर महत् से महत्तर चेतना के द्वार मुक्त करने की अपनी सामर्थ्य में अटूट विश्वास करते हैं'।

'पतन, पराजय, विफलता, कुण्ठा, सीमितता, एकाकीपन, आत्मभीति, लघुमानवत्व, विछोह, यातना, रोग, बुढ़ापा, मौत को– हम मूलगत मनुष्य की अन्तिम सीमाएँ या उसका अन्तिम भाग्य नहीं मानते। बाह्य मनुष्य की इन स्थितिगत अस्थायी अवस्थाओं की लाचारी के सम्मुख हम कभी घुटने नहीं टेकेंगे'।

- 'हम अपने साहित्य और कविता में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक दायित्वपूर्ण, संकल्प, स्वस्थ निर्माणात्मक मूल्यों की स्थापना में विश्वास करते हैं'।
- हमारे नवीनतम कवि और सृजक, अपनी परम्परा की अमृताधारा के साथ फिर से अपनी आत्मा को संयुक्त करें, तभी हम आज के विश्व-साहित्य को अपना सच्चा अनुदान दे सकेंगे'।

पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी

'जब कथ्य अभिव्यक्ति की प्रेरणा से उन्मेषित होता है, तब सृजक की प्रक्रिया में उसकी खास तरह की आवश्यकता के अनुसार स्वतंत्र (फार्म) सहज ही निरापन्न होता जाता है'।

और भी स्थल हैं, जिनसे सहमत होना सम्भव है। उपरोक्त उद्धरण मुझे विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत हुए और मेरा ख्याल है, इन पर नये कवियों और साहित्यकारों का एक-मत होना सहज और सुलभ है और इस आधार पर नये कवियों का एक संयुक्त घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

दो शब्द मैं वीरेन्द्र भाई के स्थिति-विश्लेषण के विषय में कहना चाहूँगा। उनकी भाववादी व्याख्या से वस्तु-स्थिति के मूल कारण और अनेक ज्वलन्त प्रश्न तथा समस्याएँ रहस्यावरण में ढँककर ओझल हो गयी हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं, 'आज जगत के चिन्तन, दर्शन, सृजन और साहित्य के सारे ही क्षेत्रों में यह जो पराजय, आत्म-दैन्य, आत्मघृणा, आत्मभीति, कुण्ठा, एकाकीपन, निराशा, विषाद, लक्ष्यहीनता, जगत और जीवन की निरर्थकता, मानव की सीमितता, और लघुमानव की घोषणा की पुंसत्वहीन आर्त वाणी सुनायी पड़ रही है, वह मनुष्य के इसी ईश्वर-द्रोही क्षुद्र अहंकार की चरम ट्रेजेडी है'।

ध्यान देने की बात है कि पश्चिम में 'पराजय. . . . कुण्ठा . . . .जीवन की निरर्थकता . . . .' आदि का उद्घोष करनेवाले स्वयं घनघोर ईश्वरवादी हैं और मुझे उनकी आस्तिकता में रत्ती भर भी अविश्वास नहीं। यथा-स्थिति (स्टेटस क्वो) की सुरक्षा के डटे रहनेवाले लोग आस्तिकता की ही दुहाई देते रहे हैं। न हिटलर नास्तिक था और न आज के प्रतिक्रियावादी, जो गॉड और आस्तिकता की रक्षा के लिए 'नैतिक' और आणविक शस्त्रीकरण उग्ररूप से चलाते रहते हैं।

देखने की बात यह है कि पश्चिम में पूंजीवाद की स्थिति को किसी भी प्रकार बदलने की मांग करना और जीवित रहना असम्भव हो गया है। पूंजीवाद अपनी समाज- व्यवस्था की रक्षा के लिए इतने सचेत रूप से संगठित है कि बुद्धिजीवी भूख और अभावों का शिकार होकर ही उसका विरोध कर सकता है। शीत-युद्ध के वातावरण में यह शिकंजा और भी सुदृढ़ हो गया है। भौतिक सुखों की उपलब्धि का सहज उपाय है, समाजवाद के विरुद्ध हर प्रकार की लोक-कल्याणकारी भावनाओं के विरुद्ध जेहाद करना। फिर न प्रकाशकों की कमी रह जाती है और न डालरों की। उद्विग्न लेखक और कवि इस स्थिति से प्रपरास्त और कुण्ठित हैं— उनकी लक्ष्यहीनता का यही कारण है। स्वयं सर्व–

सुखों का उपभोग करनेवाला पूँजीवादी वर्ग जनता को 'पराजय, आत्मभीति,.... लक्ष्यहीनता....जगत और जीवन की निरर्थकता,.....की भावनाओं से ग्रस्त रखना और समाज-व्यवस्था में किसी भी परिवर्त्तन की मांग उठने की सम्भावनाओं का द्वार बन्द करना चाहता है। और इसमें सहायक लेखकों को समुचित संरक्षण देना अपना कर्त्तव्य समझता है। अतः यह ईश्वर-द्रोह नहीं, एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति द्रोह है, जिसका प्रतिकार भी मनुष्य कर सकता है।

अधिक विस्तार से न कहकर मैं ज़ोर देना चाहूँगा, कि इस स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया जाना चाहिए। तभी यह आस्था उत्पन्न की जा सकती है, कि आज की अन्धकारपूर्ण स्थिति के बाद पुनः सूर्योदय होगा। कोई भी अवस्था हो, आज पूंजीवाद है, कल समाजवाद होगा, कालिमा से उज्ज्वलता और उज्ज्वल से उज्ज्वलतर, ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर जीवन के लिए सतत संघर्ष करने और उसकी सफलता में विश्वास करने के लिए साहित्यकार को तभी प्रेरित किया जा सकता है, जब वह यह समझ ले कि समाज-स्थिति स्वयं मानव-निर्मित है और उसको सामुदायिक प्रयास से बदलना सम्भव है—लेखक उसका स्वर है।

वस्तु-स्थिति से इस विश्लेषण से अक्सर 'राजनीति से बचने' के नाम पर क़तराया जाता है। करोड़ों इन्सानों के भाग्य को दैनंदिन प्रभावित करनेवाली राजनीति से कवि और लेखक दूर कैसे रह सकते हैं? क्या उन्हें साधारण नागरिक जैसे जनवादी अधिकार भी नहीं प्राप्त होंगे? राजनीति और राजनीतिज्ञ किसी महाशून्य या एकान्तिक वातावरण में जन्म नहीं लेते। कवि और लेखक जैसा दार्शनिक, वैचारिक और भावात्मक लीक रचते हैं, इस पर राजनीति और राजनीतिज्ञों का स्वरूप निर्भर करता है। हिटलर स्वयं बहुत पढ़ा लिखा नहीं था। हिटलरवाद का संस्थापन और पोषण भी किन्हीं लेखकों— कवियों और दार्शनिकों ने ही किया था। तब क्या कवि और लेखक अनुत्तरदायी और उदासीन रुख ले सकते हैं? नहीं।

इस सदी का सातवां दशक भारतीय जन-जीवन में एक नया मोड़ ले रहा है। साहित्य में भी यह प्रतिफलित हो रहा है। मेरा विश्वास है कि कुण्ठावाद, जो आखिरी सांसें गिन रहा है, इस दशक में समाप्त हो जायगा और नवास्था के स्वर सुदृढ़ होंगे। भाई वीरेन्द्र कुमार जैन इस दिशा में अग्र प्रयत्न कर रहे हैं, इसलिए बधाई के पात्र हैं।

*

आगामी सितम्बर में प्रकाश्य

'भारती' का वार्षिक श्रीकृष्ण-लीला विशेषांक

उक्त विशेषांक में चिर प्रगतिमान भारतीय आत्मा के प्रतीक-पुरुष, सर्वांगीण मानव-विकास के युग-युग-सम्भव नित-नूतन नेता, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की नानामुखी व्यक्तिमत्ता और जीवन-लीला के सभी संभाव्य आयामों का, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक सन्दर्भों में, अत्याधुनिक मानव-चेतना-सम्मत अध्ययन प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास किया जायेगा। भारतीय पत्रकारत्व के क्षेत्र में, श्रीकृष्ण के जीवन पर यह विशेषांक, अपने ढंग का एक अपूर्व और अद्वितीय योगदान होगा। प्रस्तुत विशेषांक में समाविष्ट सम्भावित लेखों की विषय-सूची निम्न प्रकार होगी :–

- नवीन जगत के लीला-पद्म पर महाकाल पुरुष का विहार : श्री अरविंद
- श्रीकृष्ण : भाग्वद्-पुरुष और इतिहास-पुरुष : श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
- श्रीकृष्ण और भग्वद्गीता : डॉ कन्हैयालाल मुन्शी
- श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- पूर्णकाम का प्रणय-भाव : श्री जैनेन्द्रकुमार
- गोवर्द्धन-धारी उँगली की परम्परा (कविता) : डॉ. हरिवंशराय बच्चन
- लीला-पुरुष का विराट् रूप-दर्शन : श्री रविशंकर महेता
- श्रीकृष्ण-लीला और उसका व्यापक प्रभाव : पद्मभूषण पं. सूर्यनारायण व्यास
- श्रीकृष्ण-चेतना : काम-शक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा : डॉ. शिवप्रसाद सिंह
- कृष्णावतार का प्रयोजन : श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी
- वासुदेव कृष्ण की धर्म-मीमांसा : डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय
- गीता-धर्म की गंगोत्री : श्री मकरन्द दवे
- साँवली मोहिनी का मर्म : श्री रजनीकान्त मोदी
- कारागार में ज्योति-पुरुष का अवतरण : श्री रमेशचन्द्र शाह
- विश्व-पुरुष की बाल-लीला : डॉ. चन्द्रभान रावत
- युवती गोपियों के किशोर प्राण-सखा :
- रसेश्वर की रास-लीला : श्री किशोरी शरण 'अलि'
- श्री भगवान की चिर-विरहिन आत्मांशिनी श्रीराधा : श्रीमती लावण्य प्रभा राय

- चीर-हरण लीला की मर्म-कथा
- कुरूपा कुब्जा के अनोखे प्रीतम
- परकीया के प्राण-वल्लभ : पं. राममूर्ति चतुर्वेदी
- चिरकुंवारी राधा के चिरकुमार बालम : श्रीयुत श्रीहरि
- बहु-प्रिया-वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र : श्री सुरेन्द्र शर्मा
- रुक्मिणी-हरण का रोमानी नायक : श्री राजकमल चौधरी
- मर्यादा भंग के दावेदार : नव-मर्यादा के संस्थापक, लीला-पुरुषोत्तम : श्री रमेशचन्द्र शाह
- अखण्ड आर्यावर्त का एकमेव लोकनायक : श्री करसनदास माणेक
- कूट-नीतिज्ञ शिरोमणि श्रीकृष्ण : जानकीनाथ शर्मा
- महाभारत का महासारथी :
- युद्ध और शांति का अनोखा संयुक्त द्रष्टा :
- सौन्दर्य, प्रेम और कला के अधीश्वर श्रीकृष्ण : श्रीमती मनी साहुकार
- श्रीकृष्णाख्यान के प्रतीकार्थ और शुभ-नियुक्ति : श्री रमाशंकर शास्त्री
- युग-निर्माता महापुरुष श्रीकृष्ण और उनका युग : श्री नन्दन चतुर्वेदी
- बाल-कृष्ण-पूजा : एक मनोवैज्ञानिक परमौषधि : श्री लालजीराम शुक्ल
- भागवत आन्दोलन और श्रीकृष्ण-मूर्ति का प्रादुर्भाव : श्री कुमार शील
- भारतीय चित्र-कला में श्रीकृष्ण-लीला कलाकार महेन्द्रनाथ सिंह
- भारतीय शिल्प में श्रीकृष्ण-लीला श्री चन्द्रभूषण मिश्र
- श्रीयुगल की सनातन लीला-भूमि वृन्दावन : श्री शत्रुघ्न दुबे
- बंगाल के वैष्णवों की रसेश्वरी कृष्णोपासना : श्री कैलाशनाथ ओझा
- महाप्रभु चैतन्य का श्रीकृष्ण-लीला गान : श्रीयुत श्रीहरि
- रसिक-शेखर बिल्व-मंगल का श्री-कृष्ण-लीला गान : श्री रामलाल
- कृष्ण के अंतिम सर्वस्व : दर्पहारी मधुसूदन : डॉ. गणपतिराय पुरोहित
- बाजी रे, यमुनातीर, मुरलिया बाजी रे : रामनारायण उपाध्याय
- श्रीकृष्ण की लीला-भूमि ब्रज : कुमारी सरोज वर्मा
- श्रीकृष्ण की आराधिका : महाभाव राधिका : अनवर आगेवान
- श्रीकृष्ण अपने जीवन की संध्या में श्रीमती लीलावती मुन्शी
- प्रभु का अंतिम वचन : श्री करसनदा माणेक

श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी अनेक प्राचीन तथा नवीन दुर्लभ चित्रों की अनुकृति तथा तीन कलात्मक रंगीन चित्रों से सुसज्जित १९२ पृष्ठों के इस दलदार विशेषांक मूल्य केवल ७५ न. पै.। एजेण्ट और पाठक अपनी प्रतियाँ तुरन्त सुरक्षित करायें

*

तपस्विनी

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

[द्वितीय खण्ड]

[३८]

धारावाहिक उपन्यास

●

भारतीय भाव-चेतना के गत सौ वर्षों के इतिहास को आवरित करता एक कथा-प्रबन्ध

●

शीला का निश्चय

शीला ने "तपस्विनी" खत्म की और आह भरी। यह है प्रणय, यह है आत्म-समर्पण, यह है रस-विभोरता की चरम-सीमा। जीवन की सार्थकता भी इसी में है।

तपस्विनी ब्रह्मचारिणी थी। उसने

अनेक वर्षों तक विद्या पढ़ी थी और तपस्या की थी। इसके बाद उसे कवि मिला। मिलते ही रग-रग में मादकता छा गयी, उसके साहचर्य में उल्लास का अनुभव हुआ। उसीमें लीन होने में तपस्विनी को मुक्ति दिखायी दी।

इसमें पाप कैसा? इसमें क्षुद्र-वासना तो थी नहीं, मात्र एक होने के परम आनन्द की निर्मल ज्योति थी। उसने उस ज्योति को जगाया, प्रज्ज्वलित किया और उसमें कूदकर भस्म हो गयी। स्वेच्छापूर्वक जीवन-नाटक के भव्य अन्त स्वीकार कर मुक्त हो गयी।

शीला ने फिर आह भरी और अतीत- जीवन पर दृष्टिपात किया। पति को शरीर दिया, हृदय दिया, सर्मपित किया, लेकिन उसके हाथ लगे धुएँ के गुब्बारे। उसके भाग्य में समर्पण से रहित पति की युक्त कृपा और परकीया के जूठे लिखे थे। उसका हृदय क्रंदन करने

उसकी संस्कारिता अविकसित

'टुबा' के सम्बन्ध में गुजराती के सुप्रख्यात हास्य लेखक क्या कहते हैं!

'मैं गंजेपन का शिकार हो गया हूँ और उत्तरोत्तर और भी अधिक होता जा हूँ।' मेरे किसी लेख में ऐसा पढ़ कर भाई श्री बंदुकवाला ने मुझे उनके तेल 'टुबा' की शीशी भेज दी। उन्होंने जोर देकर लिखा था कि दस-बारह शीशी का उपयोग करने आपको उक्त रोग से मुक्ति मिल जायगी। मेरा तो दृढ़ विश्वास था, एक बार बाल जाने और गंजापन आ जाने पर पुनः बाल का आना असम्भव है। किंतु जब किसी का उपयोग करना ही है तो यह क्या बुरा? ऐसा समझकर बिना किसी फलाकांक्षा के पाँच शीशियों का उपयोग कर डाला। इससे गंजापन विशुद्धरूप से समाप्त तो नहीं किंतु प्रथम शीशी के उपयोग के बाद ही उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी। आगे चल जहाँ एक भी बल नहीं था; वहाँ कहीं-कहीं नये बाल आने शुरू हो गये। ऐसा मैंने अनुभव किया हो, यह बात नहीं। मुझे देखनेवालों का भी यही अनुमान था। इससे लाभ होगा, इसकी मुझे किंचित भी आशा नही थी। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के पर निस्संकोच कह सकता हूँ कि 'टुबा' के उपयोग से भले ही संपूर्णरूप से लाभ न हो, भी आपके रोग की प्रगति अवश्य रुक जायगी। साथ ही यह थोड़ा-बहुत लाभ भी पहुँचाये

'टुबा हेयर टानिक' झड़नेवाले बालों को रोकने का एक प्रभावशाली विश्वसनीय इलाज है।

श्री ज्योतीन्द्र ह. दवे

४ औंस की दो शीशिओंका पोस्टेज पेकिंग के साथ दाम रु. ९-०-० मनिआर्डरसे भेजना हो

वी. पी. नहीं किया जाता।

टुबा प्रोडक्ट्स, ९१, भाजीपाला स्ट्रीट, **बम्बई-३.**

और जीवन बिखर गया। नित्य प्रति एक ही भय रहता था : पति कब परकीया के यहाँ जाते हैं। उसके थके हुए हृदय को न तो विश्राम था और न किसी समान हृदय का साथ। उसकी आँखों से आसुओं की धार बहने लगी।

कुछ देर बाद उसने 'तपस्विनी' फिर हाथ में ली और अन्त में कुछ पृष्ठ पढ़े। तपस्विनी तपोभ्रष्ट हो गयी। उमंग की मदिरा पीने और पिलानेवाले कवि ने उसे तप से भी प्राप्त न होनेवाले आनन्द की गहराई में डुबा दिया। और अन्त में यम से भी अधिक क्रूर राजा ने एक प्रहार द्वारा दोनोंके शारीरिक अन्तर को मिटाकर, उन्हें आत्मा की अमर एकता में लीन कर दिया। उन पुण्य क्षणों में दूब की सुखद शैया पर पड़े उनके अलग किये हुए धड़ और सिरों को लताओं ने पुष्पवर्षा द्वारा अभिनन्दित किया।

यह अद्‌भुत और रंगीन चित्र शीला की कल्पना में अंकित हो गया। उसका हृदय फिर धड़क उठा। कुछ देर बाद उसे होश आया और उसने फिर आह भरी। यह सौभाग्य तो किसी विरले दम्पति को ही मिल सकता है। उसे तो ख़रीदी हुई दासी की भाँति भग्न-हृदय से भोग का साधन मात्र बनना है, निर्जन संसार-कानन में एकाकी और निराश भटकना है।

उसे उदय का ख़्याल आया। इस विनम्र और हँसमुख पुरुष के हृदय में विचित्र-सा ज्वालामुखी दहकता था, इसीलिए तो उसमें से 'तपस्विनी' जैसी प्रज्ज्वलित वह्नि-सरिता निकल सकी। एलिस कितनी अभागी थी कि डिनर और डान्स की मृग-मरीचिका की खोज में ऐसे पुरुष को छोड़ गयी।

घड़ी की टिक-टिक होती रही। मिनट की सुई उसके हृदय को अधीर बनाती आगे बढ़ती गयी और गीत की इन पंक्तियों को गुनगुनाने लगी –

बहुत समझाती हूँ मन को, नाशपीटा पर
समझे नहीं।
अरे ओ प्राण आज जाकर, संदेश कहना
श्याम से।

संदेशा क्या कहेगा ? मेरा सर ? न तो श्याम को संदेशा सुनने की फुरसत है और न परवाह। उसे तो अब श्याम कहने में भी क्या रखा है ?

इतने में ही बाहर पदचाप सुनायी दी। क्या साहब आ गये ? उसे लगा, जैसे उसका हृदय झूठे संदेहों में पड़ा हो। वह हाँफती-हूँफती उठी और दरवाज़े में जा खड़ी हुई। अकेला उदय ही सीढ़ियाँ चढ़ता दिखायी दिया। अकेला ही। हाँ, वह जानती थी कि साहब नहीं आवेंगे। क्षणभर के लिए उसे निराशाजन्य मूर्च्छा आ गयी और उसका सुन्दर-सुडौल शरीर नख से लेकर शिख तक काँप उठा।

"साहब कहाँ हैं ? उसनें दबी आवाज़ से पूछा। कहीं वह गिर न पड़े, इस डर से उसने चौखट का सहारा लिया।

"हाईनेस को साहब से बहुत काम है, अतः वे वहीं खाना खायेंगे। आप प्रतीक्षा न करें, इसलिए मुझे भेज दिया है।

शीला ने देखा कि ये शब्द कहते हुए भी उदय झिझक रहा है और उसकी प्रयासजन्य मुस्कराहट भी दयनीय है।

"उन्होंने कहलाया है कि हम उनकी प्रतीक्षा न करें और खाना खा लें।" उदय ने धीरे से कहा।

शीला के होंठ और हाथ काँप रहे थे। उसका मुँह फ़क़ हो गया था। साहब के न आने के वास्तविक कारण को यह बाहर का व्यक्ति जान गया था और उसपर तरस खा रहा था। उसने बड़ी-बड़ी कोशिशें की थी कि तीसरा व्यक्ति उसकी दशा न पावे, लेकिन आज जगत को छलने के सारे प्रयत्न विफल हो गये। उसे कष्टप्रिय लज्जा का अनुभव हुआ, जैसे नग्न हो गयी हो और उसकी इच्छा हुई यदि पृथ्वी फट जाय तो, वह उसमें जाय। उसकी आँखों में आँसू उमड़ और वह बोलते हुए कहीं रो न इस डर से तेजी से शयन-कक्ष में चली गयी।

वहाँ जाकर उसनें बिस्तर में पड़ने सोची। उस अपवित्र सेज को देखकर ऐसे काँप उठी, जैसे उसके शरीर छिपकलियाँ चढ़ गयी हों। वहीं जमीन बैठ गयी। बेचैनी को न सह पाने के का उसने अपना सर फोड़ लिया और चीख रो पड़ी। इसके बाद ज़मीन पर टिकाकर उसनें अपने उद्वेग को नि बहने दिया।

प
रि
वा
र

सद्वैद्यशाला आयुर्वेदिक फॅक्टरी नांजनगुड.

जिंजीप
अपचन दूर करते

ज्वरेंग
तापांघर

आठमनटाइन
टॉनिक

प्रत्येक शहर के लिए
हम एकही व्यापारी
को अपना स्टाकिस्ट
नियुक्त करते है।

सद्वैद्यशाला
आयुर्वेदिक फॅक्टरी
नांजनगुड

नांजनगुड
टुथपावडर

सोल एजन्ट्स
युनायटेड [illegible]
मद्रास
[illegible]
माटुंगा मुंबई

सोल एजेन्ट्स:
दी युनायटेड क
५४, बन्दर स्ट्री
मद्रास-१.

शाखा—ज्योति स्टोर्स, किंग सर्कल, माटुंगा, बम्बई १९

थोड़ी देर बाद उसने उठकर मुँह धोया और सलवट पड़ी हुई धोती को बदली। उसका उद्वेग कम हुआ, तो अभिमान विकल हो उठा। आजतक वह जानती थी कि मास्टर निर्मलाबहन और नौकरों को उसकी व्यथा का कुछ ध्यान है, पर अभिमानवश वह सुखी होने का ढोंग करती थी और वे सब उससे व्यवहार करते समय यह मानते थे कि यह ढोंग नहीं सत्य है। परन्तु आज उसका अभिमान चूर-चूर हो गया। उदय के लिए उसके हृदय में स्नेह और सम्मान दोनों थे। उसकी सुशीलता, संस्कारिता और प्रसन्न स्वभाव पर वह मुग्ध थी। थोड़े दिनों के परिचय में ही उसे ऐसा लगने लगा था, जैसे उसका अनेक वर्षों का मित्र वापस आ गया हो।..... लेकिन इस समय तो वह उसकी दृष्टि में अनाथ, तिरस्कृत और परकीया के जूठे पात खानेवाली दासी थी। जिसे वह सुख में डूबी देवी समझता था, वह अब उसकी दया की पात्र हो गयी थी।

शीला के शयन-कक्ष में जाने के बाद उदय कुछ देर उलझन में पड़ा हुआ बैठक में बैठा रहा। वह बाहर न आयी, तो वह स्वयं शयन-कक्ष में चला गया। उसने मुँह धोया और कपड़े बदले। उसके हृदय में जो आँधी उठ रही थी, वह शीला के उद्वेग को शांत करने, उसको ऊपर उठाने, और किसी सुदूर प्रदेश में खींच ले जाने के लिए प्रेरित कर रही थी। जितने वेग से वह छकेल रही थी, उतने ही वेग से उसकी परेशानी उसे खाये जा रही थी। शीला को आश्वासन देने, उसके एकाकीपन को मिटाने और उसके आँसू पोंछने का उसे क्या अधिकार है? और जब आश्वासन नहीं दे सकता, तो शरण कैसे दी जा सकती है?

राधारमण की क्रूरता और धृष्टता से उसे क्रोध आ गया था, लेकिन उसमें वह क्या कर सकता था? यही नहीं कि उसे कुछ कहने का अधिकार नहीं था, वरन् इस समय वह उनके अधीन भी था। वह उनसे तनिक भी कुछ कहता, तो वह न केवल उसे दुत्कार कर दूर कर देते, वरन् शीला को देखने के उसके अधिकार को भी छीन लेते।

इस दुष्ट मनुष्य का घर छोड़ने का मन हुआ, पर उससे क्या लाभ था? उसके घर छोड़ने से शीला के हृदय को क्या शांति मिल सकती थी? इसके विपरीत उसके सम्पर्क से उस बेचारी को जो मैत्री की ऊष्मा मिलती थी, वह भी जाती रहती। वह स्वयं नियति-चक्र में फँसकर तड़प रहा था और कोई ऐसा न था, जो उसे छुड़ा सके।

नौकर उदय को बुलाने आया—“बाई साहब, खाने के लिए बुला रही हैं।”

शीला ने जी कड़ा करके अपने को संभाला था। अपनी अन्तर्कथा का प्रकाशन

कर उदय को दुःखी क्यों किया जाय? उसकी स्नेहपूर्ण सद्भावना पर व्यर्थ का बोझ क्यों डाला जाय? अपने कर्म का फल स्वयं ही भोग लेने में गौरव था। बड़ी कठिनाई से अपने को हँसमुख बनाकर वह उदय के साथ खाना खाने बैठी।

शीला ने उदय को देखा और तुरन्त ताड़ गयी कि उसके मुस्कान-भरे स्वागत से वह छला नहीं जा सका। सदा की भाँति उसकी आँखों में मात्र सम्मान और सद्भावना ही नहीं थे, समदुखःभागी बनने की प्रार्थना भी थी। उसके स्वर में आश्वासन की मृदुता और शक्ति प्रदान करने की घूट पाने का अनुरोध था। शीला ने जी कड़ा कर उसे जो अपने आंतरिक जीवन से अलग रखने का निश्चय किया था, ढीला पड़ गया।

दोनों खाने तो बैंठे, पर दोनों में से एक के भी गले खाना न उतरा। विवश होकर शीला बोली—"हाईनेस ने तुम्हें क्यों बलाया था?"

उदय को किसी न किसी प्र शीला का दुःख दूर करना था आश्वासन देने का अधिकार प्राप्त क जितना निकट आना था। परिण स्वरूप उसने हाईनेस और हंसकु का सारा क़िस्सा विनोदी ढंग से सुनाया। हाईनेस ने किस प्रकार मा से यह झूठा बहाना करके कि वे राजद विवाह करना चाहते हैं, भूपत मामा अपना काम निकाल लिया। किस प्र उससे दस्तावेज़ पर गवाही करवा ली किस प्रकार राज मीराबाई बन गयी, बातें बता दीं।

शीला में दूसरे की बात को स्नेह रुचि से सुनने की अद्भुत क्षमता थी परन्तु जब उसने उदय की चित्रात्मक ढंग बात करने की शैली, बातचीत में उभर सरलता और कुटुम्बप्रियता देखी, तो व मुग्ध हो गयी और क्षणभर के लिए अप दुःख भूल गयी।

- त्यौहार के दिन ?
- शादी-ब्याह ?
- जन्म-दिन ?
- साठवीं वर्ष गाँठ ?

उपहार के लिए

अति उत्तम पुस्तक

सभी शुभ अवसरों पर सभी के लिए
एक आर्कषक पुस्तक

प्रेमोपहार

[हिन्दी भाषा में]

मूल्य—२.५० रु. डाक-द्वारा—३.५० र

LITTLE FLOWER CO. (LIFCO), MADRAS-17,
M. DAMODARAM & CO., APPAH BLDGS.
MADRAS-1; HIGGINBOTHAMS' RY. STALL
POPULAR BOOK DEPOT, LAMINGTON RD.
BOMBAY-7; AND OXFORD BOOK &
STATIONERY CO., SCINDIA HOUSE, NEW
DELHI-1.

"मैं तुम्हारी बहन से नहीं मिली। क्या वह राजकोट में हैं?"

"नहीं, राज माताजी के साथ पाण्डुचेरी गयी है।"

"पाण्डुचेरी!"

"हाँ, मेरे पिता श्री अरविन्द के शिष्य थे, यह तो आप जानती ही हैं। माताजी राज को मानसिक शांति प्राप्त कराने के लिए आश्रम ले गयी हैं।"

"क्यों क्या हुआ है? क्या कुछ मानसिक अशांति है?"

"कुछ समझ में नहीं आता। यों तो अच्छी भली है। उसमें बड़े-बड़ों को छकाने वाली होशियारी है। कभी-कभी ऐसा शब्द-प्रहार करती है, जिससे कि सर भन्ना जाय। लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है, जैसे उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी हो। भविष्य-दर्शन कर लेती है—और वह भी बिना प्रयत्न के। विकृतियों, द्वेष का उसे पता चल जाता है और तुरन्त मूर्च्छित हो जाती है।"

"हाय, हाय! तब तो तुम्हारी माताजी को बड़ी मुश्किल पड़ती होगी और तुम्हें भी।"

"शीला बहन, आप उससे मिली नहीं। वह इस संसार की नहीं है, संसार से परे की है। उसके बोलने से जी को शांति मिलती है। जब एलिस मुझे छोड़कर गयी। तब मैं दिन-रात बेचैन रहता था। उस समय राज ने जिस परिचर्या और भक्ति से मुझे सान्त्वना दी, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। कभी-कभी तो ऐसा लगता है, जैसे वह सीधी स्वर्ग से उतरकर उसकी सुगन्ध लिये आ रही है।"

"तुम बहन के पीछे पागल हो। अब मैं समझी कि एलिस क्यों भाग गयी? पति यदि बहन से प्रेम करे, तो स्त्री तो रो-रोकर मर ही जायगी न?"

"शीला बहन, वह मेरी बहन नहीं, (संरक्षक) देवी है। वह न होती तो मैं कब का हतोत्साह हो गया होता। आप जब उससे मिल लें, तब मुझे बताना।"

"तुम तो कवि हो। यदि यह बात असत्य निकली तो?"

"तो मैं शर्त बदने के लिए तैयार हूँ।"

"शर्त!" शीला खिलखिलाकर हँस पड़ी। "शर्त यह कि दूसरी बहन लाना।"

क्षणभर के लिए शीला विनोदी हो गयी, यह देखकर उदय को सुख हुआ। उसकी आँखें हँस रही थीं।

"तो दूसरी बहन लाने का काम आपका। राज के होते हुए भी दूसरी बहन की प्रतीक्षा करता बैठा हूँ।"

दोनों ने एक-दूसरे को देखा और हँस पड़े। फिर कुर्सी पीछे हटाकर खड़े हो गये। खड़े होते समय शीला का आंचल सर से खिसक गया और उदय को उसके शरीर की मोहक सुन्दरता के दर्शन हुए। उसकी कलाप्रिय आत्मा ने, कल्पना द्वारा, अनायास उसके अंग-विन्यास देख लिया। दूसरे ही क्षण उसने मन की चंचलता को दबाकर होंठ मींचे।

घड़ी में दस बजे। उदय की बातों के रस में डूबी शीला यथार्थ जगत में आयी।

वह चौंकी, विवर्ण हुई और बाहर की सीढ़ियों पर कान लगाये रही।

"अभी साहब क्यों नहीं आये ?" उसने पूछा।

"वे देर से आवेंगे।"

जैसे शेर झपट्टा मारता है, ऐसे शीला ने प्रश्न किया—"क्या डिनर में कुछ सा भी थीं ?" उसने प्रज्ज्वलित दृष्टि से को देखा। प्रश्न ऐसा आकस्मिक था शीला का रूप ऐसा बदल गया था कि सहम गया और झूठ बोलने की तत् के अभाव में नीचे की ओर देखने ल

*

[पृष्ठ १३२ शेषांश का]

पारितोषिक विजेता- क्रमांक:	नाम:	केन्द्र:	पारितो
३७५,	रमेशराय त्रिपाठी,	पीलीकोठी,	प्रथ
३३६,	भोगीलाल पारीख,	सिद्धपुर,	द्विती
३६३,	यादव दीक्षित,	बंबई,	तृती

आचार्य (प्रथमखण्ड)

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्णः—

७, ९, १३, २६, २७, ३४, ५०, ६५, ६९ और ७३।

केवल संस्कृत में उत्तीर्णः—

१२, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, ३१, ३२, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४१, ४२, ४३, ४५, ४७, ४८, ४९, ५२, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६६, ६७, ६८, ७५, और ७६।

आचार्य (द्वितीयखण्ड)

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्णः—

१०२, ३, १४, और १६।

केवल संस्कृत में उत्तीर्णः—

८२, ८३, ८४, ८५, ९०, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, १०१, ४, ७, ८, ९, १२, १३, १७, और १८।

आचार्य (तृतीयखण्ड)

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्ण

द्वितीय श्रेणी :— १२१, और ३६।

केवल संस्कृत में उत्तीर्णः—

द्वितीय श्रेणी : —

१२२, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ३७, ४१, ४२, और ४

तृतीय श्रेणी :— १३९, और ४३।

पारितोषिक विजेता क्रमांक:	नाम:	केन्द्र:	पारितो
१३०,	राममनोरथ तिवारी	सुजानगंज	द्वितीय
१३६,	मुनेश्वर शर्मा	बगड़,	तृतीय

भाईशंकर पुरोहित
परीक्षा-सम्पादक

आचार्य **टी. ए. वी. दीक्षितार**
संयुक्त नियामक

*

भवन के तत्वावधान में सर्वभाषिक लेखक-सम्मेलन

भारत की सर्जक-प्रतिभाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आयें तथा सर्जन सम्बंधी समस्याओं पर विचार-विनिमय करें, इस महान उद्देश्य को सामने रखकर भारतीय विद्या भवन की ओर से लेखक-सम्मेलन का आयोजन किया गया है।

इस परिषद का कार्यक्रम इस प्रकार रखा गया है कि भारत की विविध भाषाओं के प्रवाहों से परिचित हुआ जा सके। अंग्रेजी, हिंदी, गुजराती, मराठी, सिंधी, बंगाली, तेलुगु, कन्नड, पंजाबी इत्यादि भाषाओं के अर्वाचीन साहित्य प्रवाहों पर विशेषज्ञों द्वारा व्याख्यानों तथा उन पर परिचर्चाओं से यह कार्यक्रम काफी रोचक तथा उपयोगी सिद्ध होगा।

लेखक-सम्मेलन का उद्घाटन ५ जुलाई, १९६२ को महाराष्ट्र के राज्यपाल डॉ. पी. सुब्बरॉयन् करेंगे; प्रमुख का स्थान श्री कन्हैयालालजी मुन्शी सुशोभित करेंगे। ५ जुलाई को शाम छः बजे प्रथम बैठक में लेखक-सम्मेलन की अध्यक्षा श्रीमती लीलावती मुन्शी का स्वागत-भाषण, राज्यपाल महोदय का उद्घाटन-भाषण तथा श्री मुन्शीजी का प्रमुखपद से भाषण होगा; श्री नवीन खांडवाला आभारप्रदर्शन करेंगे। ६ जुलाई की शाम के सात बजे कवि-सम्मेलन होगा। शनिवार को दोपहर ३ से ७ तथा रविवार को सबेरे साढ़े दस बजे तथा दोपहर ३ से ७ तक विविध विषयों पर निबंधपाठ होंगे।

निबंधों के कुछ विषय तथा रचयिताओं के नाम इस प्रकार हैं :—

१. अंग्रेजी साहित्य के समकालीन प्रवाह—श्रीमती लीला जी. खरे।
२. अंग्रेजी साहित्य में नाटक—श्री आदिल जस्सावाला।
३. आधुनिक हिंदी कविता के प्रवाह—श्री वीरेन्द्रकुमार जैन।
४. आधुनिक गुजराती कविता के प्रवाह—आ. रामप्रसाद बक्षी।
५. आधुनिक गुजराती उपन्यास—डा. रमेश जानी।
६. आधुनिक मराठी साहित्य की झलक—श्रीमती मृणालिनी देसाई।
७. मराठी साहित्य के समकालीन प्रवाह—डा. (कु.) श्यामला शर्मा।
८. सिंधी साहित्य के समकालीन प्रवाह—प्रो. एल. एच. अजवानी।
९. सिंधी उपन्यास के प्रवाह—प्रो. एम. यू. मलकानी।
१०. समकालीन बंगाली साहित्य के प्रवाह—श्री एस. बेनरजी।
११. आधुनिक कन्नड़ साहित्य के प्रवाह—श्री एस. आर. मोकाशी।
१२. स्वातंत्र्योत्तर पंजाबी साहित्य के प्रवाह—प्रो. महीपसिंह।
१३. अर्वाचीन तेलुगु गद्य तथा नाटक के प्रवाह—श्री वी. पतंजलि तथा एस. एम. वाय शास्त्री।
१४. मराठी लोक-साहित्य में हास्यरस—डा. चारुशीला गुप्ते।
१५. सिंधी पत्रकारत्व—श्री हीरानंद करमचंद।

भारतीय विद्या भवन, बंबई की
सन् १९६२ की शास्त्रीय परीक्षाओं का
परिणाम

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

13 JUL 1962

प्रवेशिका

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्ण

प्रथम श्रेणी :–

३४, १०४, २७, ४१ ।

द्वितीय श्रेणी :–

२, ६, ३२, ३६, ४८, ४९ , ५०, ५२, ५४, ५५, ५९, ६२, ६४, ७६, ८१, ८३, ९६, १०५, ६, ७, ८, ३५, ३७, ३९, ४०, ४२, ४३, ४५, ४९, ५१, ५५, ६६, ७९, ८०, २६०, ७३, ७७, ७९, ९६, ४०८, ९, ११, २४, २५, और ४७ ।

तृतीय श्रेणी :–

३, २७. ५३, ८२, १११, २८, ३०, ३४, ४६, ५६, ६४, ९३, ९४, २७६, ८०, ८२, ८४, ८५, ३०८, १३, २५, ४१०, ४९, और ५० ।

केवल संस्कृत में उत्तीर्ण

प्रथम श्रेणी :– ८५ केवल ।

द्वितीय श्रेणी :–

५, ९, १०, १२, १६, १८, २०, २४ २५, २९, ३१, ५१, ५७, ६५, ६६, ७०, ७१, ७३, ८४, ८८, १२१, २२, २३, ३३, ३६, २३४, ४२, ५१, ५३, ५४, ५६, ५७, ५८, ५९, ६६, ८७, ९१, ९२, ९४, ९५, ९८, ३१४, १८, १९, २१, ३७, ४४, ४५, ५८, ६०, ६१, ४००, २, ३, ६, २३, २६, ३२, ३४, ३९, ४१ और ४२ ।

तृतीय श्रेणी :–

४, ७, १४, १५, १७, १९, ३०,
३८, ५८, ६८, ६९, ७४, ७९,
१०, १७, २०, २४, २५, २६,
५७, ५८, ६८, ७०, ७१, ७५,
८७, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९,
१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९,
१५, १६, १९, २१, २२, २४,
२६, २९, ३३, ३७, ३८, ४१,
४७, ४८, ४९, ५२, ५५, ६३,
६७, ७५, ८१, ८८, ८९, ९०,
३००, ३, ४, ५, ६, १७, २०,
३३, ३६, ३८, ४०, ४२, ४३,
६५, ६९, ७२, ७५, ४०४, १३,
२८, २९, ३०, ३१, ३३, ३६,
४०, और ४३ ।

पारितोषिक विजेता :–

क्रमांक: नाम: केन्द्र: परितोषि
३४, सवितादेवी त्रिपाठी, तिर्वा, प्रथ
१०४, सावित्रीदेवी शुक्ल, मन्धना, द्विती
८५, हरिदास शर्मा, वृन्दावन, तृती

पूर्वमध्यमा

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्ण

द्वितीय श्रेणी :–

१२, ३२, ३३, ३४, ३९, ४०,
७४, ७९, ८२, ८७, ८८, ९२,
९७, १०३, ११, १२, १३, १४,
३५, ४१, ४६, ४८, ५७, ५८,
२६२ और ३३२ ।

जुलाई १९६२

तृतीय श्रेणी :–
१४, २७, २९, ९१, ९३, ९६, १०९, १०, १५, १६, १७, ३०, ४३, ४४, ४९, ५२, ५३, ५५, ६०, ६६, ७७, २०३, ४, ५, ३५८, और ८९।

केवल संस्कृत में उत्तीर्ण

प्रथम श्रेणी :–
६, ७, १००, ३०८, ९, और २७।

द्वितीय श्रेणी :–
५, ८, १०, १६, २०, २२, २४, २५, ४९, ५०, ५८, ६१, ६२, ६३, ६५, ७३, ८३, ८६, ८९, ९५, १२२, २३, ३८, ५१, ५६, ६२, ७३, ८६, ८९, ९३, ९४, ९६, ९७, ९९, २००, १, १६, १७, ३६, ५०, ५२, ५५, ५६, ५७, ५९, ६०, ६१, ६३, ६४, ६५, ६९, ७३, ७९, ८७, ८८, ९०, ९२, ९४, ९५, ९७, ९८, ९९, ३००, १, ३, ४, ५, १०, १८, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, ३०, ५९, ६०, ६१, ६४, ६६, और ७३।

तृतीय श्रेणी :–
२, ३, ३०, ४२, ४६, ४७, ५२, ५४, ५७, ६०, ७२, ७६, ७७, ८०, ८१, ८४, ९०, १२०, २१, २४, २५, २७ ३१, ३६, ३९, ४०, ४२, ४५, ४७, ५०, ६१, ६५, ६८, ६९, ७०, ७५, ७८, ८३, ८४, ८५, ८७, ८८, ९२, ९५, २०७, ८, ९, ११, १२, १३, १५, १९, २०, २१, २५, २९, ३०, ३५, ३७, ३८, ३९, ४१, ४२, ४४, ४६, ४७, ५१, ५३, ५४, ६८, ७१, ७२, ७४, ७५, ७६, ७७, ८०, ८१, ८३, ८४, ८६, ९३, ९६, ३१३, १९, ६३, ६५, ७५, ७७, और ७८।

उत्तरमध्यमा

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्णः–

प्रथम श्रेणी :– ९४ केवल।

द्वितीय श्रेणी :–
१, २, ५, ८, ९, ११, १९, २०, २२, ३५, ४५ ४६, ५७, ६१, ६६, ७०, ७१, ८९, ९५, १०५, ६, १२, २५, ३४, ५१, ५२, ५३, ५७, ९९, २०२, २२, और ३३।

तृतीय श्रेणी :–
१०, १४, २१, २३, २४, ३०, ३१, ३३, ४०, ४२, ५८, ५९, ६०, ६५, ६८, ६९, ७३, ७४, ७६, ९१, ९२, ९६, १०७, ८, १६, १९, २०, २८, २९, ३२, ३३, ३७, ३८, ५४, ५५, ९७, ९८, २२९, ३०, और ३१।

केवल संस्कृत में उत्तीर्णः–

प्रथम श्रेणी :–
१२६ केवल।

द्वितीय श्रेणी :–
२५, २९, ३२, ४९, ५४, ६७, १०१, २, ३, १३, १४, ४३, ४५, ५६, ५८, ५९, ६३, ६८, ७०, ७२, ७३, ७४, ७५, २००, १, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १४, १८, १९, और २०,।

तृतीय श्रेणी :–
३, १२, १५, १६, १७, ४३, ४४, ४८, ५१, ५२, ५५, ५६, ६२, ६३, ६४, ८६, ८८, १०४, १०, १७, १८, २१, २३, २७, ३०, ३५, ३९, ४०, ४१, ४६, ४७, ४८, ४९, ६४, ६५, ६६, ७७, ८७, ८९, ९०, ९१, ९३, ९५, २२८, और ३७।

वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

पारितोषिक विजेता :–

क्रमांक:	नाम:	केन्द्र:	पारितोष
९४,	वीरेन्द्रवहादुरसिं[illegible]	मुगरावाद–शाहपुर,	प्रथम
१५२,	दशरथ[illegible]	पीलीकोठी,	द्वितीय,
१२६,	नवीनच[illegible]गौड़,	वाराणसी	तृतीय

शास्त्री (प्रथमखण्ड)

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्णः–

९, ९अ, ११, १४, १६, १८, ३४, ३५, ४७, ७१, ७२, ७४, ७५, ७७, ८०, ९०, ९१, ९६, ११५, १७, २३, २४, २५, २६, २७, ९७, २०३, ६, ७, और ८।

केवल संस्कृत में उत्तीर्णः–

१, २, ३, ४, ५, ७, ८, १०अ, १२, १३, १५, १७, ~~२०,~~ २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३६, ३८, ४०, ४१, ४२, ४५, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ६१, ६२, ६३, ७०, ७८, ८५, ८६, ८७, ८८, ९३, ९४, ९५, ९८, १०८, १०, ११, १२, १३, १४, १६, २१, २२,, ३१अ, ३२, ४०, ४१, ४२, ४३, ४७, ४८, ५०, ५२, ५३, ५४, ५६, ५७, ५८, ५९, ६२, ६३, ६४, ६६, ६७, ६९, ७०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७९, ८१, ८२, ८३, ८४, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९२, ९३, ९६, ९८, २०९, १०, ११, और १४।

शास्त्री (द्वितीयखण्ड)

आधुनिक विषयों के साथ उत्तीर्णः–

द्वितीय श्रेणी :–

२३५, ४४, ५१, ५३, ५५, ५६,

५८, ७४, ८७, ३०३, और ३६

तृतीय श्रेणी :–

२३८, ४०, ४२, और ३६१।

केवल संस्कृत में उत्तीर्णः–

प्रथम श्रेणी :–

३३६ केवल ।

द्वितीय श्रेणी :–

२२६, २७, २८, ३१, ४३, ४९अ,
६३, ६६, ७१, ८६, ८८, ९१,
३०१ ४, ७, ८, १४, २१,
३४, ३५, ४६, ४८, ५१, ५८,
और ६३।

तृतीय श्रेणी :–

२३४, ४१, ४६, ४८ अ, ५०, ६८,
७९, ८०, ८३, ८४, ८५, ९४,
३०२, १३, १७, १८, ३२, ४४,
४९, ५५, ५६, ६२ और ६४।

सम्पूर्ण शास्त्री

प्रथम श्रेणी : ३७५ केवल ।

द्वितीय श्रेणी :–

३६७, ७४, ७७, ७८, ७९, ८१,
और ८४।

तृतीय श्रेणी :–

३६६, ७३, ७६, ८२, ८५ और ३

केवल प्रथमखंड में उत्तीर्णः–
और ७० ।

[शेष पृष्ठ १२८ पर]

सु. रामकृष्णन द्वारा भारतीय विद्या भवन के लिए बम्बई से प्रकाशित व मुद्रित तथा एसोसिएटेड एडवर्टाइजर्स एण्ड प्रिन्टर्स, तारदेव, बम्बई ३४ में मुद्रित।

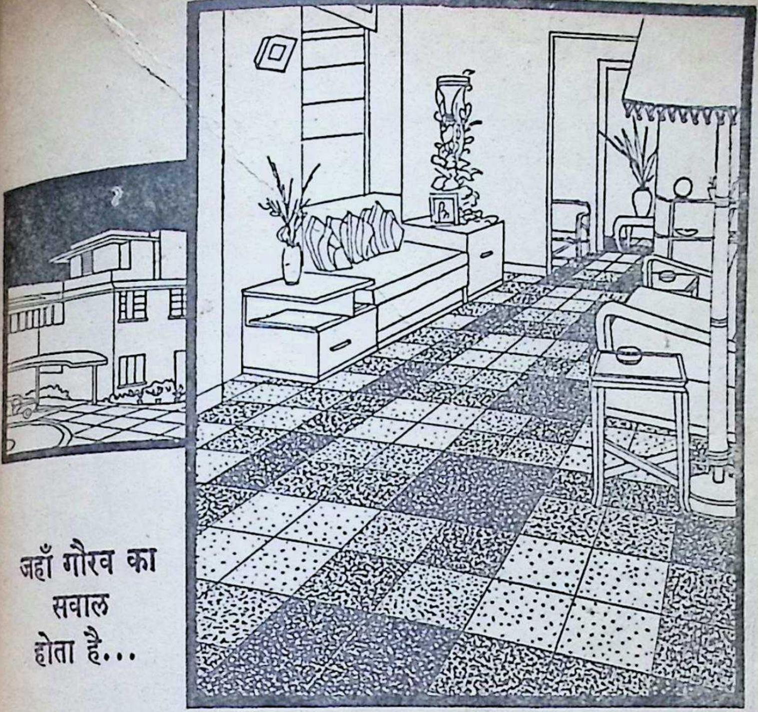

जहाँ गौरव का
सवाल
होता है...

...वहाँ ए सी सी का सफ़ेद सीमेंट **सिल्विक्रीट** ही सबसे पहले पसन्द किया जाता है। अन्दर व बाहर की सुन्दर सजावट, आकर्षक जालियाँ आदि और प्रीकास्ट यूनिट वगैरह के लिए **सिल्विक्रीट** इस्तेमाल करने से मकान में एक निराली शान पैदा हो जाती है।

सीमेंट की मशहूर वॉटरप्रूफ़ सजावटी कोटिंग स्नोसेम के मूल पदार्थ के रूप में और कई रंगों में मिलनेवाले सीमेंट कलरक्रीट के बनाने में सिल्विक्रीट इस्तेमाल किया जाता है।

पूछताछ इस पते पर कीजिए:
दि सीमेंट मार्केटिंग कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड
बम्बई • दिल्ली • कलकत्ता • मद्रास • इन्दौर • पटना
कानपुर • अहमदाबाद • सिकन्दराबाद • कोइम्बत्तूर • बंगलोर
दि एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड
दि सीमेंट मार्केटिंग कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड

सिल्विक्रीट
ए सी सी का सफ़ेद सीमेंट

JWT-CMI 1663

डाबर की व

डाबर आंवला केशों को
और चमकदार करनेवाला के
लाल-शर (डाबर बालामृत) ब
शरीर को पुष्ट करनेवाला मीठा
डाबर टूथ पाउडर दाँतों को
कीला और मजबूत बनानेवाला
(डा. एस. के. बर्म्मन) प्रा. लि. क

ी वस

शों को

ला के

त) व

मीठा

ों को

िवाला

.कल

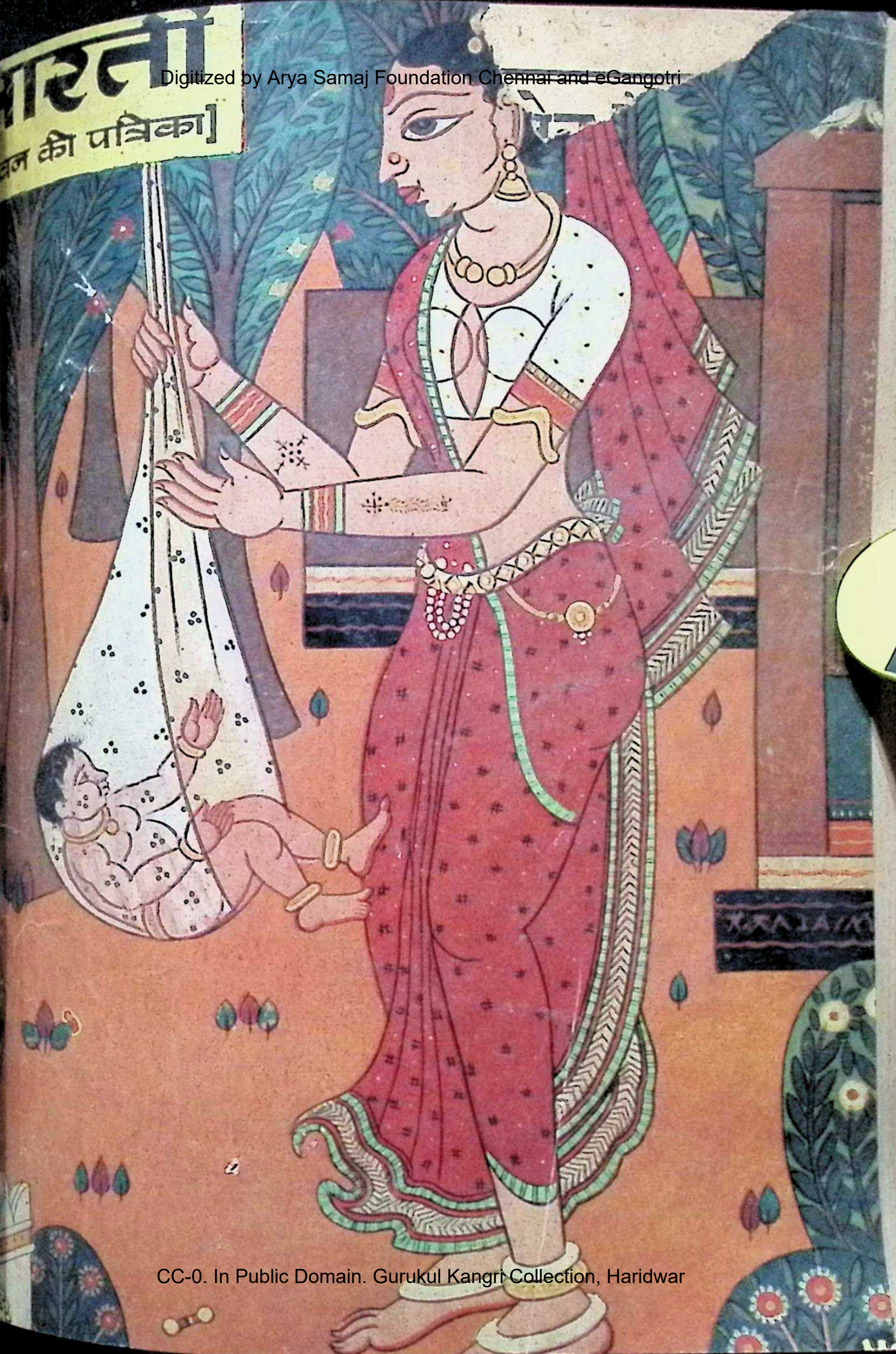

LUX
LUX
LUX
LUX TOILET SOAP
LUX

ये एक रहस्य की बात...

'सुँदर रंगरूप के लिए **लक्स** ज़रूरी है!'

चित्रतारिकाओं का शुद्ध, मुलायम सौंदर्य साबुन

नंदा, पंचदीप चित्र की फिल्म 'आज और कल' की तारिका

'जैसे सुंदर रंग... वैसा सुंदर साबुन!' नंदा कहती हैं

LTS. 121-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

स्पेशल नं. १
रजिस्टर्ड

बालों की रूसी तथा बालों को गिरने से रोकनेवाला सर्वोत्तम बाल शक्तिवर्धक तेल। विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य सामग्रियों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया हुआ यह तेल मस्तिष्क को ही ठंडा नहीं रखता, अपितु शरीर-संस्थान को भी सुधारता है। इसका सेवन करने से प्रगाढ़ निद्रा आती है। साथ ही यह शरीर-मालिश के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद है। सब ऋतुओं में सेवन योग्य।

मूल्य ४.५० रु. बड़ी शीशी तथा २.२५ रु. छोटी शीशी। सर्वत्र प्राप्य।

उमेश योग दर्शन

(प्रथम भाग)

चार भाषाओं में—हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती तथा मराठी

लेखक— योगिराज उमेशचन्द्र जी

UMESH YOGA DARSHAN

१०८ वास्तविक आसन चित्रों से सुसज्जित पाचनशक्ति को सुधारने तथा श्वास क्रिया के साथ शरीर-संस्थानों पर प्रकाश डालने वाली योग के वास्तविक अर्थ की अत्युत्तम, अद्वितीय, सरस एवं पठनीय पुस्तक। इसमें योग चिकित्सा, क्रोमोपैथी तथा मानस चिकित्सा का भी विद्वतापूर्ण विवेचन है। यह प्रत्येक गृह, अस्पताल तथा पुस्तकालय के लिये संग्रहणीय है।

मूल्य १५ रु. डाक व्यय २ रु. अतिरिक्त।

योगासनचित्रपट विभिन्न योगासनों के साथ 'आर्ट ग्लेज्ड' कागज पर छपा हुआ योगासन चित्र भी प्राप्य है। मूल्य ३ रु. (डाक व्यय सहित जो मनीआर्डर द्वारा भेजा जा सकता है।)

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

दादर, बम्बई १४

HVB

17 AUG 1962

क्या आप पौष्टिक तत्वों के
अभाव से पीड़ित हैं ?

तो आल्बो-सांग
का सेवन करें

पौष्टिक तत्वों के अभाव को
दूर करने वाला, बढ़िया, कम खर्चवाला तथा
वैज्ञानिक तरीक़ों से तैयार किया गया।

आनन्दायक स्वाद, जिसे चाय, काफी, दूध, हलुआ, फल के रस इत्यादि के साथ लिया जा सकता है। आल्वो-सांग शिशुओं, बढ़ रहे बच्चों व प्रसव के बाद माताओं, मानसिक परिश्रम करने वालों तथा बड़े-बूढ़ों के लिए बढ़िया पोषक तत्व प्रदान करने वाला खाद्य है। यह बीमारी छूटने के बाद स्वास्थ्य सुधार, दुर्बलता तथा रक्तहीनता दूर करता है।

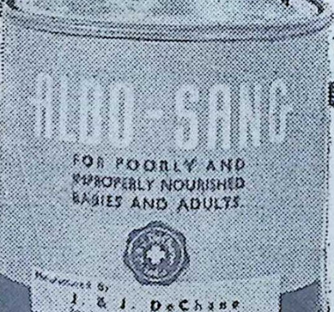
ALBO-SANG
FOR POORLY AND
IMPROPERLY NOURISHED
BABIES AND ADULTS.
Manufactured By
J. & J. DeChane

पावडर तथा टिकियां
दोनों मिलती हैं

जे. एंड जे. डीशेन,
हैदराबाद (दक्षिण)

वर्ष ७ : अंक १]

भारती

[अगस्त १९६२

19 AUG 1962

संस्थापक :
कन्हैयालाल मुन्शी

प्रबन्ध सम्पादक :
जयन्तकृष्ण ह. दवे

प्रकाशक :
सु. रामकृष्णन्

सम्पादक :
वीरेन्द्रकुमार जैन

सहयोगी :
श्रीराम मिश्र
ओंकारनाथ शर्मा
रामलाल शुक्ल

कार्यालय :
भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड,
बम्बई ७

एक अंक : ५० न.पै.
वार्षिक : ५)

अथर्व वेद : अभय ५
कन्हैयालाल मुन्शी : कुलपति का पत्र ६
श्री अरविन्द : भारतीय एकत्व के संस्थापक, परम विप्लव-पुरुष श्रीकृष्ण १०
देवेन्द्रकुमार जैन : व्यक्ति का सत्य १४
कमला जैन : खुल गयी १४
ख़लील जिब्रान : परमार्थ १६
लावण्यप्रभा राय : ब्रज की गोप-बालाओं के साथ रसराज की रस-लीला १८
शत्रुघ्न दुबे : संवेदना २३
काका कालेलकर : भारत का सदा का मिशन : अद्वैत समन्वय की स्थापना २४
डॉ. कन्हैयालाल मुन्शी : भारतीय साहित्यकारों का संगम-तीर्थ २८
डॉ. शिवप्रसाद सिंह : एक किरण : व्यूह में ३२
वारीन्द्रकुमार वर्मा : जल का ठहराव ३३
आर. आर. दिवाकर : क्या मनुष्य अपने विकास का स्वामी है ? ३४
अनन्तकुमार पाषाण : गीत ४०
विमल बोस : शरच्चन्द्र की राजलक्ष्मी कौन थी ? ४२
राजेश्वरदयाल सक्सेना : समता ५०
भारतरत्न भार्गव : प्रपंजित आस्था का दर्द ५१
प्रभाकर द्विवेदी : मेरे स्वामी : मेरे लाल ५२
आनन्द भैरव शाही : विगत और यातनाओं का राजमार्ग ६०

आगामी अंक में

- नवीन जगत के लीला-पद्म पर महाकाल पुरुष का विहार : श्री अरविंद
- श्रीकृष्ण : भागवद्-पुरुष और इतिहास-पुरुष : श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
- श्रीकृष्ण और भग्वद्गीता डॉ कन्हैयालाल मुन्शी
- श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- पूर्णकाम का प्रणय-भाव : श्री जैनेन्द्र-कुमार
- गोवर्द्धनधारी उँगली की परम्परा (कविता) : डॉ हरिवंशराय बच्चन
- श्रीकृष्ण-लीला और उसका व्यापक प्रभाव : पद्मभूषण पं. सूर्यनारायण व्यास
- श्रीकृष्ण-चेतना : काम-शक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा : डॉ. शिवप्रसाद सिंह
- वासुदेव कृष्ण की धर्म-मीमांसा : डॉ. विश्वम्भर-नाथ उपाध्याय
- रसेश्वर की रास-लीला : श्री किशोरीशरण 'अलि'

रॉबिन शॉ पुष्प : गिरती बर्फ़ और जूड़े में खोंसी एक शाम
पृथ्वीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय : धरती के कवि, सैं-जॉन पैसं
नरेन्द्र चंचल : गीत
कुमारी प्रतिभा त्रिवेदी : कुण्डलिनी महायोग और उसके अद्भुत चमत्कार
सूर्यभानु गुप्त : कोशिश करता हूँ
कुलवन्त कोहली : अनपढ़ी चिट्ठी : मासूम आँसू
रामनिरंजन परिमल : सृष्टि का जीवन
भगवान प्रसाद : प्राचीन भारत के दौत्य सम्बन्ध
तारकनाथ बाली : नूतन साहित्य की आकांक्षा : सूर्योदयी घोषणा के संदर्भ में
श्याममोहन दुबे : सनातन सूर्योदयी नूतन कविता के नाम
अरुणकुमार शर्मा : अव्यक्त शक्तियों का साक्षात्कार
कन्हैयालाल मुन्शी : कृष्णावतार
जयन्तकृष्ण ह. दवे : सूरत
कन्हैयालाल मुन्शी : तपस्विनी

इस अंक के सज्जाकार :
सर्वश्री महेन्द्रनाथ सिंह, भोबे, कुमार ज्योतीन्द्र जैन

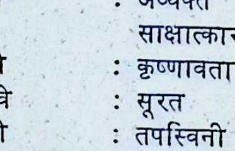

आवरण-चित्र : पलना झूले नंदलाल
चित्रकार : के. राजैय्या

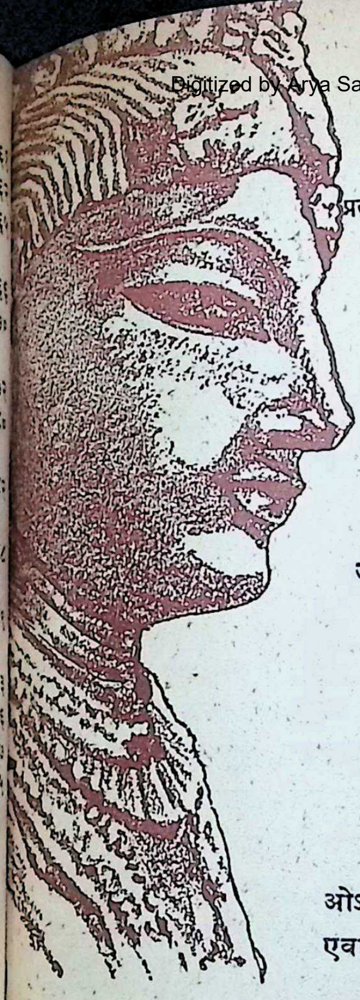

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।
प्रत्येक दिशा से शुभ एवं सुन्दर विचार हमें प्राप्त हों।

भारती
[भवन की पत्रिका]

●

आगामी विश्व विकास का सूचक :
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

●

अभय

ओऽम् यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभे एवा मे प्राण मा रिषः॥

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा न डरते हैं और न मारे जाते हैं, उसी प्रकार मेरे प्राण भी न डरें और न क्षीण हों।

—अथर्ववेद

भगवान विष्णु
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

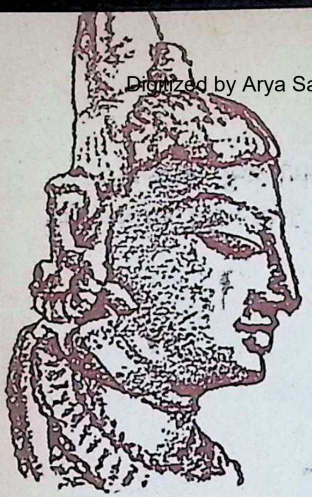

भगवती सरस्वती
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

कुलपति का पत्र

जीवन साहित्य तथा संस्कृति से संबंधि

- एक करुण भेंट
- जीवन भर की मैत्री
- स्मृतियों का उभर आना

भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड, बंबई,
१ अगस्त, १९६२

मेरे युवा मित्र,

प्रत्येक सफल जीवन महान अनुभवों का भंडार होता है। ऐसा ही एक विरल अनुभव मनुकाका के साथ मेरी मैत्री थी।

२० दिसम्बर १९६१ को मेरे अपने शहर, भड़ौच के उसी मकान के दरवाज़े पर मैं खड़ा था, जहाँ मुझे याद है, पहले-पहल ६५ वर्ष पहले मैं खड़ा हुआ था। वही गली–वही पुराने मकान ! सारा वातावरण ऐसा कि मानों समय की गति रुकी पड़ी हो !

मैं मकान के भीतर गया। सामन वही झूला दिखायी पड़ा, जिस पर शाम-सुबह बैठ कर मेरे मित्र के पिता, पान चवाते-चवाते मेहमानों से बातें करते रहते थ। क्षण भर तो मुझे ऐसा लगा, मानों वे अपनी अविस्मरणीय मुस्कान से मेरा स्वागत कर रहे हैं, और मेरा दिल उसी प्रकार धक-धक करने लगा, जिस प्रकार उनके सामने पड़ने पर पहले किया करता था।

मैंने मुड़ कर दीवालों की ओर दृष्टि दौड़ायी। परिवर्तन विशेष कुछ नहीं हुआ था, सिवा इसके कि मेरी आँखों में अब वह ज्योति नहीं रह गयी थी, जो बचपन के समय थी।

काकी मेरा स्वागत करने कमरे में आयीं। उनकी उम्र सत्तर के लगभग हो चुकी थी, फिर भी उनके मृदुल और स्नेहभरे व्यवहार में कोई कमी नहीं आयी थी।

क्षणभर के लिए व्यथा-वेदना से मैं विह्वल हो उठा। तेरह वर्ष पहले

सन् १९४८ की ७ या ८ मार्च को, जब मेरे प्रियतम सखा, मनुकाका अपनी मृत्यु-शैय्या पर पड़े थे, मैं इस घर में आया था। उनकी हालत बिगड़ती जा रही थी और एक-दो दिन तो उनकी ज़बान भी बन्द रही। सभी निराश हो चुके थे और उनसे अंतिम भेंट करने मैं हैदराबाद से, अति आवश्यक कार्यों को छोड़कर आया था।

उनकी क्षीणकाय देह, निष्प्रभ आँखों और कष्ट से सांस ले रहे फेफड़ों को देखकर दुख और निराश से मैं त्रस्त हो उठा। पूरे पचास वर्षों से हम एक-दूसरे को प्यार करते आये थे; साथ-साथ रहे, झगड़ा किया, अलग हुए और फिर मेल-मिलाप किया। काका और काकी दोनों ही हमारे-मेरे, मेरी पत्नी और बच्चों के जीवन के अविभाज्य अंग बन गये थे; और अब काका ने हमसे ज़ुदा होने की ठान ली थी।

सन् १८९७ में हमारा प्रथम मिलन हुआ था और प्रथम बार देखते ही हमने एक-दूसरे को अपनी बांहों में भर लिया था। मेरी उम्र उस समय दस वर्ष की थी और काका आठ के थे। उनका उपनयन-संस्कार तब हुआ ही था और मैं उस अवसर पर दिये गये भोज में जाति के लोगों को आमन्त्रण देने उनके सम्बंधियों के साथ घर-घर फिरा था।

काका से मेरा दूर का रिश्ता था। उनके और मेरे पिता हमारी जाति के दो प्रमुख परिवारों के मुखिया थे। मेरी भतीजी की सगाई भी उनके भतीजे से हुई थी। फिर भी, मेरे पिता का काका के पिता से मेलजोल कम ही था। मेरे पिता जी खरे और स्पष्टवादी थे, उन्हें गुस्सा भी जल्दी आ जाता था। काका के पिता शांत, कम बोलनेवाले और चतुर थे। और चूंकि दोनों जाति के प्रतिद्वंदी मुखिया थे, दोनों में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास बनाये रखने में कई लोगों को दिलचस्पी रहती थी। फिर भी, काका और मेरे बीच कभी कोई अविश्वास या कटुता की भावना नहीं आयी।

काका देखने में काफी सुन्दर, बुद्धिमान और विनोदप्रिय थे। अपने पिता की वृद्धावस्था में उनका जन्म हुआ था और उनकी माता का देहान्त भी बाद में हो चुका था, इसीलिए अति लाड-प्यार के कारण वे जिद्दी और शरारती भी हो गये थे।

१९०२ में मैं बड़ौदा कालेज में पढ़ने गया। अपनी उम्र के और लड़कों से पढ़ाई में काफी तेज़ होने की वजह से उन पर मेरा अच्छा दबदबा था। इसीलिए छुट्टियों में मैं जब भड़ौच आया, तब काका और उनका भतीजा, दोनों हमारी टोली में

आ मिलते और हर शाम को हम नदी किनारे जा कर दाल-चिवड़ा खाते हुए गपशप करते।

१९०६ में बड़ौदा कालेज की सीनियर बी. ए. क्लास में मैं पहुँच गया। उन दिनों मैं होस्टल में रहता था। काका और उनका भतीजा भी वहाँ आकर रहने लगे, क्योंकि उन दोनों ने भी कालेज के प्रथम वर्ष में प्रवेश पा लिया था। हमारी दोस्ती यहाँ काफी पक्की हो गयी, क्योंकि एक-दूसरे की कमी हम अच्छी तरह पूरी करते थे। मुझे एक ऐसा प्रशंसक और तरुण साथी मिल गया था, जिससे मैं अपने मन की बात कह सकता था, और उन्हें एक ऐसा अनुभवी मित्र, जो माँ की-सी ममता उन्हें प्रदान कर सकता था। काका के मेरे प्रति प्रशंसा-भाव से मुझे एक प्रकार का गर्व और आत्म-संतोष मिलता था, और काका की हर इच्छा पूरी करने की मेरी चिन्ता से उनके जिद्दी स्वभाव और लाड-प्यार की भूख को तुष्टि मिलती।

एक बार, जीवन से अत्यंत निराश हो आत्महत्या करने के लिए मैं आयडिन की एक बोतल ले आया था। मनुकाका को किसी तरह पता चल गया और अपने स्नेह-हठ से उन्होंन, मुझे मेरे इरादे से डिगा ही दिया। इससे वे मेरे और भी नज़दीक आ गये। कालेज तथा बड़ौदा में भी रात-दिन हम प्रायः साथ ही रहते अथवा एक-दूसरे की प्रतीक्षा करते।

मैंने अपने मन में यह बात बैठा ली थी कि मनुकाका को खुश रखना और उनकी देखभाल तथा उन्नति करना ही मेरे जीवन का ध्येय है। और, काका को मुझ में एक ऐसा मित्र मिल गया था जो उनके हर ज़िद को पूरा करने और उनकी सारी जबाबदारी अपने सर ओढ़ने को तैयार था।

* * *

१९०६ में मैंने बी. ए. की परीक्षा पास की; फर्स्ट क्लास आने में केवल कुछ ही नम्बर कम रहे। किंतु, १९०७ से १९१०, याने क़रीब तीन साल तक मनुकाका फर्स्ट इयर में तीन बार फ़ेल हुए। मैं भी नवम्बर में हुई एल. एल. बी. की परीक्षा में दो बार अनुत्तीर्ण रहा। काका की पढ़ाई का खयाल रखने में मैंने अपनी पढ़ायी की ओर समुचित ध्यान नहीं दे पाया, और काका स्वयं अपने अध्ययन के बारे में कभी गंभीरता से नहीं सोचते थे।

१९१० में मैंने बंबई में रहना शुरू किया, ताकि एडवोकेट की परीक्षा की तैयारी कर सकूँ। मनुकाका को अपने साथ रखने के लिए मैंने उनके पिता से इसके लिए इजाजत ले ली कि उनको डिस्ट्रिक्ट प्लीडर की परीक्षा की तैयारी करने के लिए बंबई रहने दिया जाय।

बंबई आने के कुछ सप्ताह बाद ही मनुकाका के पिता स्वर्ग सिधार गये। इससे हमारी दोस्ती में एक नया मोड़ आया। काका को मालूम हो गया कि मैं कोई देवपुरुष नहीं हूँ, बल्कि एक साधारण, संघर्षरत युवक हूँ; और मुझे यह मानना पड़ा कि काका का स्वभाव चाहे जितना अच्छा हो, पढ़ने-लिखने की ओर वे कभी ध्यान नहीं देंगे। फिर भी, हम आपस में इतने घुल-मिल गये थे कि हममें से किसी में यह मैत्री भंग करने का न तो साहस ही था और न व्यवहारकुशलता ही।

हमारी दोस्ती चालू रही, किंतु कुछ समय के लिए विपरीत गति से। मार्च, १९१३ में मैंने एक अनिश्चित भावी के साथ वकालत शुरू की। मनुकाका डिस्ट्रिक्ट प्लीडर की परीक्षा पास नहीं कर सके और उनके मामा ने, जो हाइकोर्ट के उन दिनों एक प्रमुख सोलिसीटर थे, अपने यहाँ उन्हें नौकर रख लिया। हम दोनों मोरारजी बिल्डिंग में एक ही तल्ले में अलग-अलग, कोठरियों में रहते थे। कभी-कभी आपस में हमारी अनबन भी हो जाती थी, लेकिन काकी का मन कभी मैला नहीं हुआ। मेरी पत्नी के साथ वह अपने सम्बंध मधुर बनाये रखती और वे दोनों मिलकर हमारा मन-मुटाव दूर करने की कोशिश भी करतीं।

सन् १९२० के करीब मेरी वकालत चल पड़ी थी। काका का मेरे प्रति प्रशंसा-भाव फिर जागृत हो गया, किंतु इस बार क्षणिक भावना का स्थान एक गहरी समझ ने ले लिया था। १९२२ में जब ममी मेरे जीवन में आयीं, तब काका ने मेरे हृदय के सच्चे भावों का समर्थन किया। मानसिक संताप और सामाजिक बाधाओं से मुझे कुछ समय तक अत्यंत उग्रता के साथ जूझना पड़ा। तब काका और काकी से मुझे बहुत सहारा मिला। जब ममी का मेरे साथ विवाह हो गया, तब हमारे अत्यंत प्रिय मित्र होने के नाते हमारे सौभाग्य पर वे अत्यंत प्रसन्न भी हुए।

वकालत में मुझे प्रचुर सफलता मिल चुकी थी और साहित्य में भी मेरा नाम हो गया था। मेरी प्रसन्नता में काका प्रसन्न थे। मुझ पर उन्हें नाज़ था। १९३० और १९४० के बीच जब भी मैं और ममी जेल गये, तब काका-काकी ही मेरी वृद्ध माता के सहारे और बच्चों के अभिभावक बने। १९३० से १९४२ तक हमारी मैत्री अपनी चरमावस्था पर थी। काका और काकी के समान सच्चे दोस्त बहुत कम लोगों को नसीब होते हैं।

काका अब अपने मामा के दफ़्तर में एक अत्यंत कुशल मैनेजिंग क्लर्क थे और योग्यता में कई सोलिसिटरों से भी अच्छे

● ● ●

[शेष पृष्ठ १५ पर]

श्री अरविन्द

भारतीय एकत्व के संस्थापक, परम विप्लव-पुरुष श्रीकृष्ण

[श्रीकृष्ण जयन्ती के अवसर पर]

दानवत्व की पुंजीभूत शक्ति के विरुद्ध देवत्व के दुर्द्धर्ष विद्रोह की अग्नि-कोख से ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। वे तो जन्म-जात विप्लव-पुरुष थे। बालपन से ही, जीवन के हर क्षेत्र में वे जड़ रूढ़ पुरातन मर्यादाओं को तोड़ कर, नवीन मर्यादाएँ स्थापित करते दिखायी पड़ते हैं। परम धर्म-पुरुष तो वे थे ही, पर 'धर्मसंस्थापनार्थाय' वे परा कोटि के राजपुरुष भी थे। तत्कालीन भारत की छिन्न-भिन्न राजशक्ति को केन्द्रित कर समूची जाति को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधने के लिए उन्होंने एक प्रचण्ड प्रयत्न किया था।

कुल और जाति मानव समाज के क्रमिक विकास में भिन्न होते हैं। प्राचीन काल में यह भिन्नता भारतवर्ष तथा अन्य देशों में इतने स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हुई थी। कई बड़े-बड़े कुलों में एक पूरी जाति का समावेश हो जाता था। ये भिन्न-भिन्न कुल एक-पूर्वपुरुष के ही वंशधर थे, अथवा भिन्न वंशज होते हुए भी, वे प्रेम-सम्बंधों के कारण एक वंशज कहलाते। समस्त भारत एक बड़ी जाति नहीं हुई थी, किन्तु जो बड़ी-बड़ी जातियाँ सारे देश म फैली हुईं थीं, उनके बीच एक सभ्यता, एक धर्म, एक संस्कृति भाषा एवं विवाह इत्यादि सम्बंध प्रचलित थे। तथापि प्राचीन काल से ही एकत्व की चेष्टा होती आ रही थी कभी कुरु, कभी पांचाल, कभी कोशल कभी मगध जाति देश की नेता अथवा सार्वभौम राजा होकर साम्राज्य करती। किन्तु प्राचीन कुलधर्म और कुल की स्वाधीनताप्रियता एकत्व का ऐसा प्रबल अंतराय उत्पन्न करती कि वह चेष्टा

कभी चिरकाल तक टिक नहीं सकती थी। भारत में एकत्व की यह चेष्टा, असपत्न साम्राज्य की चेष्टा, पुण्यकर्म एवं राजा के कर्तव्यकर्मों से गिनी जाती थी। यह एकत्व का स्रोत इतना प्रबल हो गया था कि चेदिराज शिशुपाल के न्याय तेजस्वी और दुष्ट क्षत्रिय भी युधिष्ठिर के साम्राज्य स्थापन को पुण्यकर्म कहकर योगदान करने को सहमत हो गये थे। इसी प्रकार का एकत्व, साम्राज्य अथवा धर्मराज संस्थापन श्रीकृष्ण का राजनीतिक उदेश्य था।

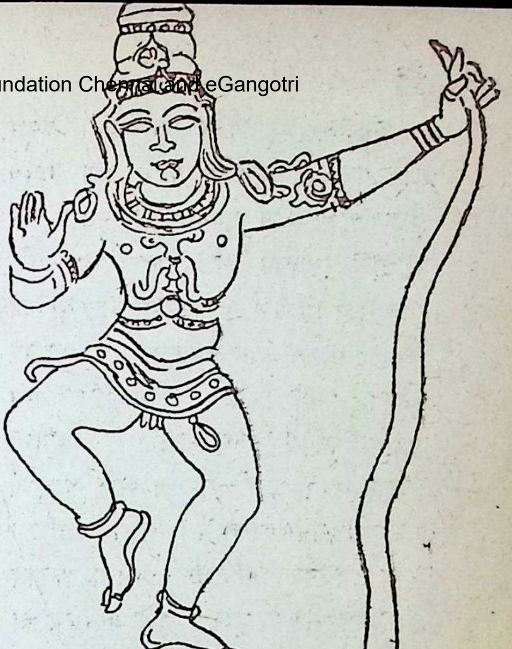

अनुकृति : महेन्द्रनाथ सिंह

मगधराज जरासंध ने इससे पहले ही इसकी चेष्टा की थी, किन्तु उनकी शक्ति अधर्म और अत्याचार पर अवलंबित होने के कारण क्षणस्थायी थी, इसीलिए श्रीकृष्ण ने भीम द्वारा उनका बध कराकर उस चेष्टा को विफल किया था। श्रीकृष्ण के कार्य में प्रमुख बाधा थी, गर्वित और तेजस्वी कुरुवंश। कुरुजाति कई दिनों सें भारत की नेतृस्थानीय जाति थी, अंग्रेजी में जिसको Hegemony कहते हैं, अर्थात् अनेक समान स्वाधीन जातियों में प्रधानत्व और नेतृत्व पर कुरुजाति का पुरुषपरंपरागत अधिकार था। श्रीकृष्ण ने यह समझ लिया था कि जब तक इस जाति का बल और गर्व अक्षुण्ण रहेगा, तब तक भारत में कभी एकत्व स्थापित नहीं हो सकेगा। इसीलिए कुरुजाति का ध्वंस करने वे कृतसंकल्प हो उठे थे। किन्तु भारतीय साम्राज्य में कुरुजाति का पुरुष परंपरागत अधिकार है, यह बात श्रीकृष्ण भूले नहीं थे, इसीलिए धर्मतः जिसको जो प्राप्त हो, उससे उसको वंचित करना अधर्म है, यही समझकर कुरुजाति के जो न्यायतः राजा और प्रधान थे, उन्हीं युधिष्ठिर को साम्राज्य पर नियुक्त करने का उन्होंने निश्चय किया।

श्रीकृष्ण थे परम धार्मिक। समर्थ होने पर भी स्नेहवश अपने प्रिय यादव कुल को उन्होंने कुरुजाति के स्थान पर आसीन करने की चेष्टा नहीं की, पांडवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर कीअवहेलना कर अपने प्रियतम सखा अर्जुन को उस पद पर नियुक्त नहीं किया। किन्तु केवल वय अथवा पूर्व अधिकार देखने से अनिष्ट की संभावना होती है, गुण और सामर्थ्य को भी देखना पड़ता है। राजा युधिष्ठिर यदि अधार्मिक, अत्याचारी अथवा अशक्त होते, तो श्रीकृष्ण अन्य पात्र के अन्वेषण को बाध्य होते। युधिष्ठिर जिस प्रकार वंशक्रम, न्याय, अधिकार तथा देश के पूर्व प्रचलित विषय के अनुसार सम्राट होने को उपयुक्त थे, उसी प्रकार गुणों से भी वे उस पद के प्रवृत्त अधिकारी थे। उनकी अपेक्षा तेजस्वी और प्रतिभावान अनेक बड़े-बड़े वीर नृपति थे; किन्तु केवल बल अथवा प्रतिभा से कोई राज्य का अधिकारी नहीं होता। राजा धर्मरक्षा करेंगे, प्रकृतिरंजन करेंगे, देशरक्षा करेंगे। प्रथम दो गुणों में युधिष्ठिर अतुलनीय थे। वे धर्मपुत्र थे, दयावान थे, न्यायपरायण, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, सत्यकर्मा थे और प्रजा के अत्यंत प्रिय भी। शेषोक्त आवश्यक गुणों से जो न्यूनता उनमें थी, उसे पूर्ण करने में उनके वीर भ्रातृद्वय भीम और अर्जुन समर्थ थे। पंचपांडवों के समान पराक्रमी राजा व वीरपुरुष समकालीन भारत में नहीं था। अतएव जरासन्ध वध से कंटक दूर कर श्रीकृष्ण के परामर्श से राजा युधिष्ठिर ने देश की प्राचीन प्रणाली का अनुसरण कर राजसूय यज्ञ किया तथा देश के सम्राट हुए।

श्रीकृष्ण धार्मिक और राजनीतिविद् दोनों थे। देश के धर्म, देश की प्रणाली, देश के सामाजिक नियमों के अन्तर्गत ही कर्म कर, यदि उनके महत् उद्देश्य के सुसिद्ध होने की संभावना हो, तो उस धर्म की हानि, उस प्रणाली के विरुद्ध आचरण, उन नियमों का भंग वे क्यों करते? अकारण ही इस प्रकार का राष्ट्रविप्लव करना देश के लिए अहितकर होता है। इसीलिए प्रथम, पुरातन प्रणाली की रक्षा कर उद्देश्यसिद्धि के लिए वे सचेष्ट हुए थे। किन्तु देश की प्राचीन प्रणाली में यह दोष था कि उससे चेष्टा सफल होने पर भी उस फल के स्थायी होने की अति अल्प संभावना थी। जिन्हें सामरिक बल-वृद्धि प्राप्त है, वे राजसूय यज्ञ कर सम्राट तो निश्चय ही हो सकते हैं; किन्तु उनके वंशधरों के क्षीणतेज होते ही मुकुट उनके मस्तक से अपने आप गिर पड़ता है। जो तेजस्वी वीर जातियां उनके पिता अथवा पितामह के वश हुई थीं, वे अपने विजयी पुत्र अथवा पौत्र की आधीनता क्यों स्वीकार करेंगी?

वंशागत अधिकार नहीं, अपितु राजसूय यज्ञ, अर्थात् असाधारण बल-वीर्य ही साम्राज्य का मूल है, जो अधिक बलवीर्य के स्वामी हैं, वे ही यज्ञ कर सम्राटपद को सुशोभित कर सकते हैं। अतएव साम्राज्य के स्थापित्व की कोई आशा नहीं थी, अल्पकाल प्रधानत्व अथवा hegemony अवश्य संभव थी। इस प्रथा में एक और दोष यह था कि नवसम्राट की अकस्मात् बलवृद्धि और प्रधानत्वलाभ से देश के बलदृप्त, असहिष्णु, तेजस्वी क्षत्रियगणों के हृदय में ईर्ष्या-वह्नि प्रज्ज्वलित होती है; ये ही प्रधान होंगे, हम क्यों नहीं हो सकते, यह विचार उनके मन में उठने की संभावना थी। युधिष्ठिर के निजकुल के क्षत्रियगुण इस ईर्ष्या से उनके विरुद्धाचारी हुए, उनके पितृव्य की सन्तानों ने इसी ईर्ष्या पर कौशल से उनको पदच्युत और निर्वासित किया। द्वेष की प्रणाली का दोष अल्पदिनों में ही व्यक्त हुआ।

श्रीकृष्ण जैसे धार्मिक थे वैसे ही राजनीतिविद् भी थे। वे कभी सदोष, अहितकर, अथवा समय की दृष्टि से, अनुपयोगी प्रणाली, उपाय अथवा नियम बदलवाने से पीछे नहीं हटते। वे अपने युग के प्रधान विप्लवकारी थे। राजा भूरिश्रवा ने श्रीकृष्ण की भर्त्सना करते समय समकालीन पुरातन मत के अनेक भारतवासियों के आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहा था, कृष्ण और कृष्णचालित यादवकुल कभी धर्म के विरुद्ध आचरण करने अथवा धर्म को विकृत करने में कुंठित नहीं होते, जो कृष्ण के परामर्श से कार्य करेगा, वह निश्चय ही अविलंब पाप से पतित होगा। क्योंकि, पुरातन रीति से आसक्त रक्षणशील के मत से नूतन प्रयास ही पाप होता है। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पतन से समझा—समझा क्यों, वे भगवान थे, पहले से ही जानते थे—कि ये द्वापर युग की उपयोगी प्रथा, कलि में कभी रक्षणीय नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने फिर इस प्रकार की चेष्टा नहीं की, कलि की उचित भेददण्डप्रधान राजनीति का अनुसरण कर गर्वित-दृप्त क्षत्रिय जाति के बलनाश से भावी साम्राज्य का निष्कंटक करने के लिए वे सचेष्ट हुए। उन्होंने कुरुवंश के पुरातन समकक्ष शत्रु पांचाल जाति को कुरुध्वंस में प्रवृत्त किया, जिनकी जातियों को कौरवों के विद्वेष से युधिष्ठिर के प्रेम अथवा धर्मराज्य और एकत्व की आकांक्षा की ओर आकृष्ट किया जा सकता था, उन सब को उन्होंने उस पक्ष की ओर आकृष्ट किया और युद्ध में प्रवृत्त किया। सन्धि की जो चेष्टाएँ हुईं, उनमें श्रीकृष्ण का विश्वास नहीं था। वे जानते थे कि सन्धि की संभावना नहीं है, सन्धि होने

व्यक्ति का सत्य

नाम-रूप घेरे में
सत्य है व्यक्ति का,
इकाई में जीवन की
छोटा है सबसे वह,
अहं तो–व्यक्ति का
सबसे बड़ा है
सापेक्ष में।

देवेन्द्रकुमार जैन

●

खुल गयी

खुल गयी गाँठ अब
बाँधो थी बन्धन की युगों पूर्व
लीक पर पृथ्वी की।
छूट गयी,
युग-चरण पहुँच गये शीर्ष पर–
पर अभी तक
बन्द हैं नयन सुनील के।
सोच में डूबी है धरती भी
खुल गयी है वेणी
पर द्वार अभी खुला नहीं
मुक्ति का।

कमला जैन

●

से भी वह कभी स्थायी नहीं हो सकेगी फिर भी धर्म के लिए और राजनीति के लिए, वे सन्धि की चेष्टा में प्रवृत्त हुए। निःसन्देह, कुरुक्षेत्र का युद्ध श्रीकृष्ण की राजनीति का फल था। कुरुध्वंस, क्षत्रिय-ध्वंस, निष्कंटक साम्राज्य और भारत का एकत्वसंस्थापन ही उनका उद्देश्य था। धर्मराज्यस्थापनार्थ जो युद्ध हुआ, वही धर्मयुद्ध था और उस धर्मयुद्ध का ईश्वर-निर्दिष्ट विजेता था दिव्यशक्तिप्रणोदित महारथी अर्जुन। अर्जुन के शस्त्रत्याग से श्रीकृष्ण का राजनीतिक परिश्रम व्यर्थ होता, भारत का एकत्व साधित नहीं होता, देश के भाग्य में अविलम्ब घोर कुफल फलित होता।

●

जड़तत्त्व भी चेतनाका ही एक रूप है; परंतु बाह्य वस्तुको पूर्णतया उससे अतीन्द्रिय तत्त्वमें रूपांतरित मत कर। ऐ भगवत्प्रेमी! भगवान्‌के शरीरका त्याग मत कर, वरन् उसे अपने आनंदके लिये बनाये रख; क्योंकि उनका शरीर भी ठीक उसी तरह आनंदमय है जिस तरह कि उनकी आत्मा।

—श्रीअरविंद

●

[कुलपति का पत्र : पृष्ठ ९ का शेषांश]

थे। मामा की मृत्यु के बाद उन्होंने एक ट्रस्ट में नौकरी करली, जिसके ट्रस्टियों में मैं भी एक था। किंतु कुछ दिन बाद वे रिटायर होकर भड़ौच चले गये। साल-दो साल बाद तो वे गंभीर रूप से बीमार ही पड़ गये। ●●

जब मैं अंतिम बार उनसे मिला था, ो उनका सिर अपने हाथों में लेकर मैंने उनको उस प्रिय नाम से पुकारा, जिससे जनम भर मैं उन्हें पुकारता रहा था। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, मुझे पहचाना र मुस्कराये। जैसे वे होश में आये, मैंने पुराने दिनों की बीती बातें याद दिलाते हुए उनसे बीतचीत की। वे प्रेम के आवेश में आकर मुझसे चिपट गये और बोले, 'मैं तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रहा था।' चेतनावस्था प्राप्त कर कुछ पथ्य भी उन्होंने लिया। कुछ देर बाद वे फिर बेहोश हो गये।

मुझे मालूम था कि अब उनका फिर से होश में आना संभव नहीं होगा, और फिर हैदराबाद में मेरा कार्य भी ऐसा था, जो किसी भी तरह टाला नहीं जा सकता था; इसलिए उस रात मैं रवाना हो गया। मनुकाका एक-दो दिन बाद चल बसे। ●●

तेरह वर्षों के बाद जब उस घर में मैंने फिर प्रवेश किया, तो अतीत के कई चित्र मेरी आँखों के सामने घूम गये—जीवन भर की हमारी मैत्री, स्नेहडोर से गुंथी हमारी हृदय-तंत्रियाँ! भारी कदमों से मैं उस स्थान तक गया, जहाँ मनुकाका अपनी मृत्युशैया पर पड़े थे और स्नेहावेश में आखिरी बार मुझसे चिपट गये थे। मैंने उनके परिवार के इष्ट महादेव के दर्शन किये, जिनकी पूजा वे अक्सर किया करते थे।

वहाँ से फिर मैं बैठक में गया। सभी कुछ पूर्ववत् था। उनका सुंदर मुख एक फोटोग्राफ से झाँक रहा था। काका-काकी, उनके पिता और दादा, तथा उनके भतीजे और जो उनकी पत्नी थी, मेरी भतीजी, के फोटो मैंने वहाँ देखे। मेरा और मेरी पत्नी का चित्र भी वहाँ टँगा था। क्षणभर के लिए अपने जीवन के उषाकाल में जो सुखमय दिन मैंने बिताये थे, उनकी मधुर स्मृति से मेरा मन सुवासित हो उठा।

किंतु समय की गति को कौन रोक सकता है? जो सुंदर पुष्प हमारी ज़िंदगी में तब खिले थे, वे कभी के मुरझा चुके थे, पँखुड़ियाँ सूख गयी थीं, सुगंध उड़ गयी थी। मेरा हृदय भर आया। फिर भी, मुझे लगा कि ऐसे उदार और परम मित्र से इतना प्यार पाना वास्तव में मेरा सौभाग्य ही था।

आपका,

कन्हैयालाल मुन्शी

★

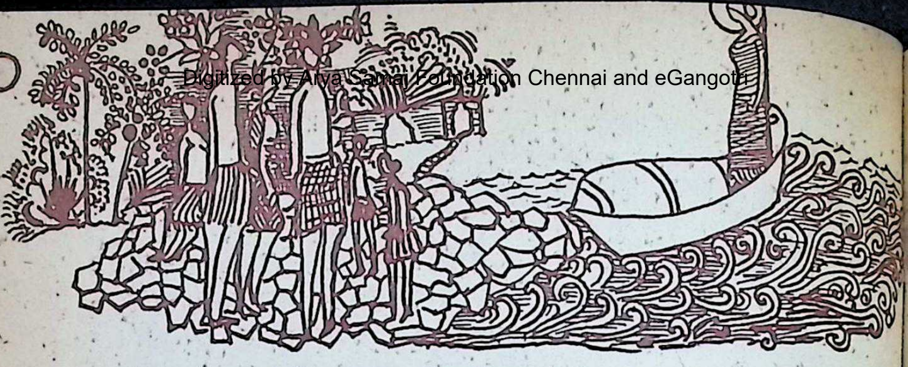

खलील जिब्रान

परमार्थ

बन्धु ! तुम जानना चाहते हो कि
मनुष्य कब परमार्थ पायेगा। तो सुनो :
मनुष्य तभी परमार्थ तक पहुँच सकता है,
जब वो जाने कि वो एक असीम अफाट
आकाश है, और एक ऐसा सागर है जिसका
कोई कूल किनारा नहीं है;
और एक चिरंतन आग है, एक प्यासी जोत है,
एक शांत समीर या घनघोर आँधी है,
या एक गरजता हुआ आसमान या
बरसता हुआ गगन है।
एक गाता हुआ दरिया है या कराहता हुआ
नाला है, या एक
पुरबहार दरख्त है या
फूलपात हीन निराट पतझड़ में खड़ा
नंगा नौनिहाल है,
एक उठती हुई चोटी, या
उतरती हुई घाटी है।
एक जरखेज खेत है या
वीरान ऊसर रेगिस्तान है।
जब मनुष्य इन सब बातों का अनुभव करता
है, तब वह परमार्थ की आधी मंजिल पार कर
लेता है। और फिर मंज़िल पर पहुँचने के लिए उसे
जानना चाहिए कि—

वो एक निरा बालक है, जो अपनी मां के आसरे है,
एक पिता है, जिसपर परिवार खड़ा है,
एक ऐसा जवान है, जो प्रेम में खो गया है,
एक बूढ़ा जो अपनी बीती दुनिया से जूझ रहा है,
मंदिर का पुजारी या जेलखाने का अपराधी है,
एक आलिम है जो अपनी पोथियों में डूबा हुआ है।
एक गुमराह भूली भटकी आत्मा है जो अपनी,
अँधेरी रातों और दिन के धुंधलके में लथड़ा रही है।
या एक साध्वी है जो अपनी श्रद्धा के फूलों और
अपने निराट अकेलेपन की कँटीली झाड़ियों के
बीच दुख से घबरा गयी है,
या एक पतिता है जो अपनी कमजोरी की नागफाँस
और अपनी ज़रूरतों के चंगुल में जकड़ी हुई है।
या उस ग़रीब की तरह है जो अपने जीवन की
कटुता और परवशता के बीच फँस गया है।
या एक धनिक है जो अपनी लोलुपता और
अंतस्तल की नैतिकता के चौराहे पर है,
या एक कवि है जो अपनी गोधूलि के झुटपुटे
और प्रभात की किरणों के बीच चौंधिया गया है।
जो भी इन बातों को जानता, देखता और
समझता है वही परमार्थ तक पहुँच सकता है और
ईश्वर की परछाईं की परछाईं बन सकता है।

अनु. मदनलाल जैन

लावण्यप्रभा राय

ब्रज की गोप-बालाओं के साथ रसराज की रस-लीला

गोपियों की चरम आत्म-समर्पण की लौ से विवश होकर ही श्रीभगवान ने महाभावमयी रास-लीला रची थी। रासलीला के अवसर पर चिन्मय देह धारण कर गोपियों ने कृष्ण को संग-सुख दान किया था। गोपियाँ भी कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति का अंश पाकर धन्य हो गयीं थीं। गोपियों के पास स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ऋणी हैं और इस मधुर ऋण से उऋण होने की कोई इच्छा या आग्रह उनमें नहीं है।

वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र व राधारानी के बीच प्रेम सम्वन्ध स्थापन करने का मूल श्रेय व्रज की गोपियों को ही है। प्रथम दर्शन व पूर्वराग से लेकर राधा के साथ कृष्ण की प्रत्येक लीला में राधा व कृष्ण दोनों मुख्य पात्र होकर भी गौण हैं—प्रत्यक्ष सक्रिय भाग लेने वाली हैं, व्रज की गोपियाँ। सखी राधारानी के साथ मोहन को मिलाना, मोहन की बात आकर राधा को बताना, राधा का सन्देश मोहन के पास पहुँचाना—इन सब कार्यों में राधा की सखी गोपियों के आग्रह व उत्साह की सीमा-परिसीमा ही नहीं थी। और, यह आग्रह निस्स्वार्थ था। राधा को मध्यमणि वनाकर उज्ज्वल नीलमणि के साथ रसलीला में व्रज-गोपियाँ विभोर हो जाती थीं। राधा के साथ-साथ वे भी राधारमण का संगसुख पाती थीं—उनकी आराधना करती थीं। अपने को कृष्णकान्ता समझकर एक-एक गोपी कान्त, श्यामसुन्दर की उपासना को ही अपना धर्म समझती थीं। राधा के समान ये कुलनारियाँ भी कुलधर्म, गृहधर्म, नारीधर्म सव कुछ तज कर कृष्णप्रेम में आत्महारा हो गयी थीं।

कृष्ण के पास गोपियों की एक ही प्रार्थना थी कि राधा के साथ राधावल्लभ जो भी लीलारस में मग्न होंगे, गोपियाँ

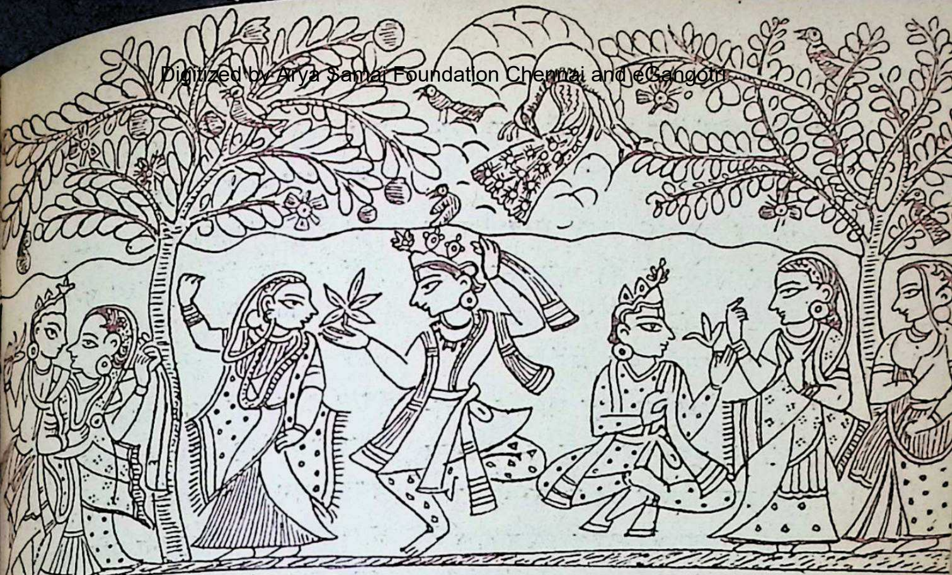

गीत-गोविन्द : गुजराती शैली
अनुकृति : महेन्द्रनाथ सिंह

उसमें सक्रिय रूप से भाग लेंगी। तात्पर्य यह है कि कृष्ण केवल राधा के साथ ही लीला में तल्लीन नहीं होंगे—गोपियाँ भी उस लीलारस के आस्वादन की अधिकारिणी होंगी। गोपियों की प्रार्थना सुनकर श्यामसुन्दर मदनमोहन ने मधुर मुस्कराकर कहा—"तथास्तु, तथास्तु ! जो भी खेल तुम लोग खेलोगी, उसमें केवल राधा को या केवल मुझको नहीं, बल्कि हम युगल को पाओगी। हमें लेकर तुम लोग खेल रचना, हम सहर्ष तुम्हारे साथ खेलेंगे। चाहे वास्तव में हो—चाहे कल्पना में हो—जो भी खेल तुम लोग रचोगी, मैं और राधा उसी में रहेंगे—चिन्ता न करो। जो जैसे मुझे चाहता है, मुझे भजता है, वह वैसे ही मुझे पाता है। मैं सभी की मनोवांछा पूर्ण करता हूँ—किसी को वंचित नहीं करता हूँ।"

गोपियों की तो यही साध थी। वे कृष्णचन्द्र से कहती थीं—"हम सब को पुतली बनाकर तुम जैसे चाहो खेल खेलो। कभी हमें बनाओ, कभी बिगाड़ो—दिनरात यही खेल खेलो। हम भी तुम दोनों को लेकर ऐसा ही खेल खेलेंगी—जो भी मन में आयेगा, करेंगी। कभी तुम दोनों को मिलायेंगी—कभी आँखों से ओझल कराकर सुलायेंगी और कभी मान-अभिमान का नाटक रचेंगी।" गोपियों की यही एक मात्र कामना थी कि इसी खेल में उन्हें सदा कृष्ण के पास रहने का सौभाग्य मिले। वे कहती थीं—"माधव, तुम्हारे पास-पास रहेंगे, तुमसे आलाप करेंगे, तुमसे सीखेंगे, प्यार करेंगे, झगड़ेंगे—यानी पाँचों इन्द्रियों से तुम्हें उपभोग करेंगे—तब न हमारी

प्यास बुझेगी!"कृष्ण ने भी कहा था–"तथास्तु।"

बड़े-बड़े महात्मा, साधु सन्त लोग निराकार परमेश्वर की उपासना करते हैं, परन्तु मूर्ख गोपियाँ साधन-भजन आराधना-उपासना क्या जानेंगी? उनकी तो एकमात्र कामना यही थी कि मनोमन्दिर में हृदयेश्वर सदा विराजमान रहें–वे सदा उनकी सेवा करती रहें। गोपियों के इस आत्महारा प्रेमसमर्पण में कान्ताभाव की उपासना का प्रकर्ष है। तभी गोपीजन वल्लभ वृन्दावनचन्द्र कृष्ण ब्रज के वनमाली हैं। उनके हाथ में राजोचित दंड नहीं, बल्कि मोहिनी बाँसुरी शोभित है। सिर पर रत्नजटित मुकुट नहीं– शिखिपुच्छ विराजमान है। इस मोहन रूप से वह सब को मोहित करते हैं। राज्य करना, प्रजा शासन करना, वृन्दावनचन्द्र राधावल्लभ का कार्य नहीं–गोपियों को लेकर प्रेमानन्द में मत्त, विभोर, आत्महारा होना ही मोहन का धर्म था।

श्रीराधा के मन्दिर में कृष्ण आयेंगे। सखियों ने चोवा-चन्दन-अगरु धूप-दीप-पुष्प आदि एकत्र किया है। चिड़ियों का चहचाना, मयूर का नृत्य, कृष्ण को बहुत प्रिय है–इन सब का भी आयोजन किया गया। फिर सखियों ने राधा को सजाना चाहा। राधा ने लजाकर कहा–"नहीं नहीं, मुझे सजाना नहीं पड़ेगा। देखो न, मेरा सारा शरीर सजा हुआ है–अब और कहाँ आभूषण पहनाओगी? श्याम स्पर्शमणि के स्पर्श से मेरा सारा शरीर स्वर्णमय हो गया है–क्या यह तुम लोग नहीं जानती? और आभूषण? गले में मैंने श्याम नाम का हार पहना, श्याम की चरण सेवा मेरे हाथ का भूषण है। नाम श्रवण और रूप दर्शन मेरे कान और आँख के भूषण हैं। फिर भी यदि तुम लोग मुझे सजाना चाहती हो, तो मेरे सारे शरीर पर 'कृष्ण' नाम लिख दो।"

सखीयों ने उपहास कर कहा–"श्यामसुन्दर जब आवेंगे, तब तुम क्या करोगी सखी?"

राधा ने भी मधुर रूप से मुस्कराकर उत्तर दिया–

"क्यों? आमार आंगिनाय आवव जब रसिया,

पलटी चलब हम ईषत हँसिया।"

सखियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। विनोद-विनोद में प्रतीक्षा की घड़ी बीतने लगी। बड़ी देर में कृष्णचन्द्र आये। तब तक राधा अधीर, व्याकुल, क्षुब्ध हो उठी थी। कृष्ण के पास आने पर उसने मुख फेर कर कहा–"अब तक तुम कहाँ थे? चन्द्रावली के कुंज में? तब वहीं जाओ–यहाँ क्यों आये?"कृष्ण ने बड़ी कठिनाई से सखियों की सहायता से राधा का मान दूर किया।

मथुरा में राज सिंहासन पर बैठकर कृष्ण राज्य करने लगे। इधर वृन्दावन में राधारानी कृष्ण विरह से मृतप्राय। गोपियाँ मथुरा की राजसभा में जाकर कृष्ण को उलाहना देने लगीं—"राजसेवा तुम्हें पसंद है—वृन्दावन तुम्हें क्यों भायेगा? वहाँ हम सब अबोध ग्वालिन—न जानें साधन, न भजन, न श्लोक, न शास्त्र, न तत्व न मन्त्र। यहाँ राजैश्वर्य, हीरा मोती अनेक रत्न मिले हैं: हम ठहरीं ब्रज की कंगालिन—हमारे पास हीरा मोती कहाँ? कदम्ब के नीचे हमारी राजगद्दी बिछी हुई है—वहाँ हमारे राजा वृन्दावनचन्द्र विराजमान हैं। तुम्हे यहाँ अनेक ऐश व आराम के साधन मिले हैं। पर हम तुम्हें हृदय-मन्दिर में रस के जिस तकिये पर सुलाते थे, वह क्या तुच्छ था? कहो निठुर कान्हा—वृन्दावन का राज्यपाट तुम्हें क्यों नहीं भाया? हम सरला ब्रजनारियाँ हैं—छला कला हम क्या जानें?"

गोपियों का उलाहना सुनकर सभा के लोग हँस पड़े। उनके लिए यह एक विचित्र अभिज्ञता थी कि कई ग्वालिन आकर सिहासन पर बैठे हुए मथुरापति से कहें कि 'तुम यहाँ क्या कर रहे हो? चलो अपने राज्य वृन्दावन में।' कृष्ण भगवान ने मधुर मुस्कराया। मथुरा के लोगों को वह ब्रज गोपियों की महिमा दिखानी चाहते थे। इसीलिए उनके कठोर वचन का उन्होंने उत्तर ही नहीं दिया। गोपियाँ उनकी नीरव मुस्कान की अवहेलना से जल उठीं, बोलीं—"लाओ, दे दो हमारा चूड़ा, जो सिर पर लगाये हो। चूड़ा दो, मुरली दो और हमारा प्यार भी लौटा दो। तुम अब राजराजेश्वर हो— हमें अपना प्रेम लौटा दो।"

कृष्ण ने फिर भी कुछ नहीं कहा। मन्द-मन्द मुस्कराकर मानो मथुरा वासियों को यही जताना चाहते थे कि "देखो" इन सरल देहाती ग्वालिनों का मुझ पर कितना अधिकार है, देखो। तभी तो ये मुझसे मनमानी बातें कह रही हैं। जरूर कहेंगी क्योंकि मैं इनके प्रेम से ख़रीदा हुआ दास हूँ।" गोपियाँ और बोलीं—"हमारी सखी राधारानी के चरणों में 'दासख़त' लिख दिया था—तुम्हें याद है या नहीं? तुमने उसका दास होना स्वीकार कर खत लिख दिया था। क्या भूल गये? अब हम तुम्हें छोड़ेंगी नहीं—पकड़कर राधा के पास ले जायेंगी।"

अब कृष्ण हँस पड़े—मज़ाक करके उन्होंने कहा—"मैंने कब 'दासखत' लिखा? सब कोई जानते हैं—मुझे लिखना-पढ़ना आता नहीं। बचपन में गौओं के पीछे मेरे दिन बीते—पाठशाला में कब जा पाया?" कहते-कहते कृष्ण का चेहरा गंभीर हो गया और गोपियाँ कृष्ण की इस गंभीर मुद्रा से अब डर गयीं।

लज्जा से उनका सिर झुक गया। इधर कृष्ण के पास सिंहासन पर कुब्जारानी सजधज कर बैठी थी। सभा में इन ग्वालिनों को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी– "कैसी ढीठ औरतें हैं!" पर कृष्णचन्द्र की लीला का रहस्य समझना लाख कुब्जाओं की शक्ति से बाहर है। प्रभु की तो यही इच्छा थी कि सब के सामने गोपियों की निराली महिमा प्रकट हो जावे। उन्होंने गोपियों को आश्वासन देकर कहा–"सखी, डरो नहीं। मैं तुम्हारे प्रेम का उपहास नहीं करूँगा–कर ही नहीं सकता, क्योंकि तुम लोग न होतीं तो माधुर्यरस की पराकाष्ठा का आस्वादन मुझे कहाँ से मिलता? तुम्हें सखी पाकर मुझे गर्व है। त्रिलोक में, अहैतु की भक्ति व प्रेमनिष्ठा में तुम्हारे बराबर कोई नहीं है।"

कृष्ण के वचन सुनते ही आनन्द से गोपियों का चेहरा उज्जवल हो गया। कुब्जा की आँखों के सामने से मानो एक काला पर्दा हट गया। इन ग्वालिनों का स्वरूप अब कुब्जा जान गयी। उसने सिंहासन से नीचे आकर कृष्ण के सामने खड़ी होकर, हाथ जोड़कर कहा–

"एइ निवेदन, श्रीनन्देर नन्दन ओ
बंशीवदन!
जे धने पियासी आमि, से धन कर
वितरण!

मैं मन्त्र-तन्त्र, स्तव-स्तुति, कुछ न
जानती; हे राधाकान्त, मुझ पर कृपा करो
मुझे मुक्ति-मोक्ष कुछ नहीं चाहिए
मेरी केवल यही प्रार्थना है कि तुम्हा
चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे। वृन्दा
वन में ही मेरा फिर जन्म होवे औ
राधाकृष्ण-संग से मैं कभी वंचित
होऊँ, यही मेरी विनती है। और श्रीरा
को पास लेकर जब निधुवन में विहार
लिये बैठोगे, तब इस अभागिन के सिर प
अपना श्रीचरण रखना यही प्रार्थना है।"

वृन्दावनचंद्र ने मुस्कराकर कहा-"तु वृन्दावन में रहना चाहती हो, पर वं तो राज-ऐश्वर्य कुछ नहीं है। अहीरों गाँव भला तुम्हे भायेगा?"

कुब्जा ने कातर होकर कहा-"अ और मुझे लज्जा न देना नाथ! अ मैं काँच और कंचन का भेद जान गयी। वृन्दावन की गोपियाँ महाभाग्यवती है। मैं बड़ी अभागिनी हूँ। धन मुझे मिला पर धनी को मैंने नहीं पाया। अब इ प्रयत्न में मैं जीवन बिताऊँगी।"

गोपियाँ नदी पार होना चाहती थी। किनारे खड़ी होकर वे माँझी का बाट जो रही थीं। कृष्ण आगे बढ़कर आ बोले–" पार होना चाहती हो-कौड़ी है या नहीं?" गोपियों ने कातर होकर कहा- "हम अबला नारी, कौड़ी कहाँ पायेंगी यूँ ही पार कर दो।"

कृष्ण बोले—"कौड़ी नहीं तो उसके बदले में कुछ दो। बिना मूल्य दिये पार कैसे होओगी?" गोपियाँ निरुपाय होकर इधर-उधर ताकने लगीं। कृष्ण भगवान ने तब रहस्य करके कहा—"कुछ नहीं है, तो अपने को ही दो।" अब गोपियाँ भव-समुद्र पार कराने वाले कृष्णचन्द्र को पहचान गयीं। उन लोगों ने अब और द्विधा नहीं की—परमनिष्ठा के साथ कृष्णचन्द्र के पास आत्मसमर्पण किया। उनके मन में तब यही भावना थी—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा
जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्ति-
रहैतुकी त्वयि॥

इस आत्मसमर्पण की चरम पराकाष्ठा है, रासलीला। परमानन्द माधव गोपीहृदयरंजन श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का मिलन है महाभावसम्मिलन। व्रज की गोपियाँ मुरली की मधुर धुन सुन कर व्याकुल हो जाती थीं। लीलामय, भक्तवत्सल भगवान ने भी गोपियों की मनोकामना पूरी की थी। गोपियों के प्रति परम कृपा के कारण ही कृष्ण ने यह महाभावमयी रासलीला रची थी। भक्तों में श्रेष्ठ हैं व्रज की गोपियाँ। रासलीला के अवसर पर चिन्मय देह धारण कर गोपियों ने कृष्ण को संगसुख दान किया था। गोपियाँ भी कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति का अंश पाकर धन्य हो गयी थीं। गोपियों के पास स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ऋणी हैं और इस मधुर ऋण से उऋण होने की कोई इच्छा या आग्रह उनमें नहीं है।

●

संवेदना

●

रात में तब तक मैं जगूंगा......
जब तक कुलवंती बधू
करती है परदेसी पिया का इंतजार
ताकि वह निपट अकेलापन महसूस
करे नहीं।

●

बगिया में तब तक मैं रहूँगा...
जब तक हर शाख गिराती पत्ते
ताकि भँवरों की तोताचश्मी से—
निपट सूनापन वे महसूस करें नहीं।

●

राह में तब तक मैं रुकूंगा ...
जब तक पिछड़े से पिछड़ा यात्री
आगे निकल जाता नहीं (मुझसे)
ताकि वह, "वह ही सबसे पीछे,"—
निपट हतोत्साह की स्थिति महसूस
करे नहीं।

—शत्रुघ्न दुबे

●

काका कालेलकर

भारत का सदा का मिशन: अद्वैत समन्वय की स्थापना

अद्वैत ब्रह्म के साक्षात्कारी भारत ने, जीवन और जगत् की सारी वैविध्यपूर्ण लीला को भी मूलभूत अद्वैत सत्ता के भीतर ही समन्वित और सम्वादित (harmonise) करने का प्रयत्न किया है। एक में अनेक और अनेक में एक को देखते की अखण्ड ज्ञान-दृष्टि और अमोघ जीवन-कला ही भारत का चिरकाल का मिशन रहा है। उसका यह चिर प्रगतिमान मिशन, आज के हमारे गत्यावरोध के बीचसे भी जीवन की नूतन दिशा प्रकाशित कर सकता है; हमें एक अपूर्व नवीन जीवन-रचना के धरातल पर उन्नीत कर सकता है।

•

हर एक जाति की अपनी एक मुख्य खोज होती है और फिर उसके अनुसार वह अपनी जीवन-साधना भी तैयार करती है।

भारत के मनीषियों ने अपने व्यवस्थित और संगठित जीवन के प्रारम्भ में ही खोज चलायी, आत्मा की। इस खोज ने देखते-देखते द्विविध रूप ले लिया। एक खोज बनी अंतरतम जीवात्मा की और दूसरी ने रूप लिया, विश्वात्मा की खोज का। और जब दोनों खोज के अंत में भारतके मनीषियों ने पहचाना कि जीवात्मा और विश्वात्मा एक हैं, एक ही हो सकते हैं, अभेद अभिन्नता ही आत्मा का स्वाभाविक रूप हो सकता है, तब भारतीय हृदय आनन्द विभोर हो गया। 'अहं ब्रह्मास्मि। जीवो ब्रह्मैव केवलम्।' यह हो गया उस साक्षात्कारका अनुभव और आनन्द-सूत्र। सूर्योदय के साथ उसके विश्व में नारायण का दर्शन करते ही साक्षात्कारी पुरुष बोल उठा: "यो असौ असौ पुरुषः सोऽहम् अस्मि।" विश्व के प्रतीक इस सूर्यबिंब के अन्दर जो अंधकार-नाशक,

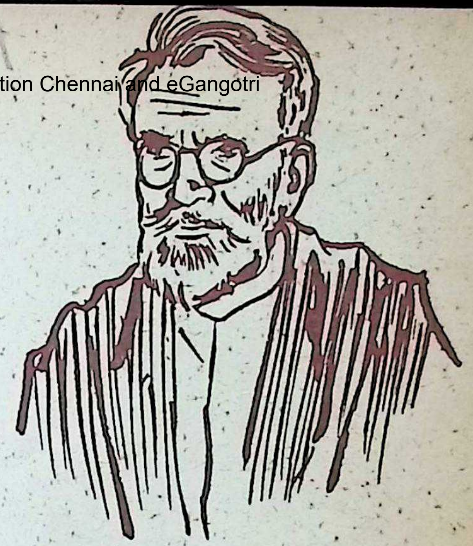

विश्वपोषक तत्त्व है, वही है मेरा आत्मतत्त्व।

इतना साक्षात्कार होने के बाद हरएक मनीषी गुरु अपने पास शिक्षा-दीक्षा लेने आने वाले शिष्यों को कहने लगा—"तत् त्वम् असि श्वेतकेतो"। (श्वेतकेतु एक लड़का था, जिसे उसके पिता ने यह सूत्र पहले-पहल बताया और हृदय को जाग्रत किया। इसलिए वेदान्त-विद्या में श्वेतकेतु का नाम भी अमर हो गया। उसे उसके पिता ने श्वेतकेतु नाम क्यों दिया, हम नहीं जानते। लेकिन हमारे मन में श्वेतकेतु नाम सुनते ही युद्ध विराम, शांति-बोधक सफेद झंडे का स्मरण होता है, जिसने सब तरहके संघर्षका त्याग किया है। भय और शत्रुता वहीं टिक सकते हैं, जहाँ द्वैत हो, भेद हो। जहाँ एकता आयी, वहाँ शांतिकी ही कामना रहेगी। और शांति की ही सिद्धि होगी।)

आत्मतत्त्व की खोज और उसकी प्राप्ति की साधना दो प्रकार की होती है। प्रथम तो आत्मा क्या है, यह समझने के लिए हम उसका स्वरूप किन-किन बातों से भिन्न है, यह पहले देखते हैं। इसे कहते हैं—अतद्व्यावृत्ति—मनो-बुद्धि-अहंकार-चित्तानी नाहम् इ०। मैं, यानी आत्मा मन से भिन्न है, बुद्धि से भिन्न है, अहंकार से भिन्न है, चित्त से भी परे है। शरीर, इन्द्रियाँ सब नाशवंत हैं, पीछे रह जाती हैं। आत्मा इनसे भिन्न है। इस तरह से सूक्ष्मातिसूक्ष्म खोज चलाकर आत्मा के स्वरूप का शुद्ध ज्ञान होता है। उसका साक्षात्कार तो हमेशा होता ही है। इसीलिए तो रोज सुबह हम गाते हैं: "प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम्।" यह स्फुरण शुद्धाति-शुद्ध होने के बाद दूसरा साक्षात्कार रहता है कि यह सारा विश्व परब्रह्म ही है। "सर्वं खलु इदं ब्रह्म, त्रिभुवनम् अपि ब्रह्म मनुते।"

आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व क्या नहीं है, इसका निर्णय करने की पद्धति को व्यतिरेक पद्धति कहते हैं और सब तत्त्वों में आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व को ही देखने की प्रक्रिया को अन्वय कहते हैं। वेदान्त के हर एक स्तोत्र में दोनों अक्सर पाये जाते हैं। व्यतिरेक-वृत्ति शुद्धि के लिए और अन्वय-वृत्ति तृप्ति के लिए, ऐसा हम कह सकते हैं। व्यतिरेक वृत्तिवाले बाज दफ़े

व्यक्तिवादी बनते हैं और अपने लिए मोक्ष ढूँढ़ते रहते हैं। ऐसी व्यक्तिगत सिद्धि जिन्होंने हासिल की, उनको बौद्ध परिभाषा में 'प्रत्येक बुद्ध' कहते हैं।

लेकिन संतोष की यह अन्तिम स्थिति नहीं है। आजकल की परिभाषा में कहें, तो मनुष्य में समाजिक वृत्ति प्रधान है। वेदान्त की परिभाषा में कहना हो, तो हम कहेंगे कि विश्वात्मैक्य का अनुभव करना यही है, परम सन्तोष, अंतिम तृप्ति।

विश्वात्मैक्य सिद्ध होने पर मनुष्य के स्वभाव में 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' देखने की आदत दृढ़ होती है। लोगों के—प्राणिमात्र के सुखदुःख के साथ एकरूप होना, सबके उद्धार में अपना उद्धार देखना, यह है इस स्वभाव का संस्फुरण। इसी वृत्ति से बोधिसत्व बुद्ध बनते हैं और विश्वकल्याण में अपने निर्वाण को भी भूल जाते हैं। इसी वृत्ति से शांतिदेवाचार्य ने कहा—

मुच्यमानेषु सत्वेषु ये ते प्रामोद्य-सागराः।
तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेणाऽरसिकेन किम्।

ऐसी चीज को वेदान्ती वृत्ति से हम गाते हैं—

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःख-तप्तानाम् प्राणिनाम्
आर्तिनाशनम्॥"

मुझे न चाहिए त्रिभुवन का राज्य, न चाहिए स्वर्ग। अधिक क्या कहें मैं अपुनर्भव याने मोक्ष की भी कामना नहीं करता। मुझे तो तरह-तरह के दुःखों से परितप्त हुए सत्त्वों का, प्राणियों का दुःख-निवारण ही चाहिए।

भारतीय संस्कृति की अगर सर्वोच्च अभिलाषा है, तो वह यही है।

हमारे तमाम धर्म-साहित्य में, दर्शन-ग्रन्थों में, वेद-वेदांतों में और इतिहास-पुराणों में यही एक भावना भरी हुई है।

दुःख-मुक्ति, वासना-मुक्ति, अज्ञान और एकांगिता से मुक्ति, संकुचितता से मुक्ति, पूर्वग्रहों से मुक्ति, परावलंबिता से मुक्ति, सब बन्धनों से मुक्ति, यही है हमारी सार्वभौम विश्व-खोज। इसलिए हमारा सब युगों के लिए उद्घोष—(slogan)—है: "मुक्ति" (liberation)।

जब हम वासना से, एकांगिता से मुक्त होते हैं, तब हमारे लिए सबके सब संघर्ष आप ही आप दूर हो जाते हैं। हमें शांति प्राप्त होती है। आधिभौतिक शांति, आधिदैविक शांति और आध्यात्मिक शान्ति ऐसी त्रिविध शान्ति के लिए हमारे पुरखों ने अपने समस्त जातीय जीवन को अर्पण किया। हमारी राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति इसी एक शान्ति को अपना अंतिम ध्येय मानती है। इसीलिए हम लोग शान्तिप्रिय—शान्तिपरायण हैं। Pacifism, युद्ध-निषेद्ध को हमने व्रत नहीं

बनाया, किन्तु भारतीय संस्कृति का सारा पुरुषार्थ इस अंतिम उद्देश्य को जागृत रखकर ही चला है। इसीलिए तो अपने सब व्यक्तिगत, कौटुम्बिक और सामाजिक धर्मकार्यों के अन्त में हम शान्ति की त्रिवार घोषणा करते हैं: ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

मुक्ति और शान्ति के साथ हमारी तीसरी जीवन-साधना है, एकता की। हमें वस्तुतः यह चीज़ एक ही है। किन्तु उसके अलग-अलग पहलू मानकर उनपर ध्यान देना लाभदायक ही है। इस ऐक्य को हम लोगों ने नाम दिया, अद्वैत। यह मुझे विशेष भाता है। अद्वैत हमें स्मरण दिलाता है कि यह सारा विश्व द्वैतसे भरा हुआ है।

इस भेद को, इस द्वैत को गौण बनाना, उसकी निःसारता पहचान लेना, द्वैत के होते हुए भी अद्वैत का अनुभव करना और द्वैत को परास्त करना, यही है जीवन का अन्तिम उद्देश्य। स्त्री-पुरुष भेद, ज्ञानी-अज्ञानी का भेद, वंश-वंशके बीच का भेद, संस्कृतियों का भेद, जाति-भेद, पक्ष-भेद, भाषा-भेद और न जाने कितने भेद उगते हैं, फैलते हैं, परेशान करते हैं और जब उनका अस्त होता है, तब भी दूसरे भले-बुरे अनेक भेदों को जन्म देकर ही।

मुक्ति, शान्ति और अद्वैत त्रिविध और विश्वव्यापी जीवन-साधना के हम वारिस हैं। इस क्षेत्र के युगानुकूल हमारे पुरखाओं ने, जो सफल या असफल प्रयत्न किये, उन्हींके कारण हमारा जातीय स्वभाव बना हुआ है। हमारे जातीय इतिहास को देखते एक विचित्रता दीख पड़ती है कि हम लोग भेदों का दर्शन होते ही उन्हें प्रश्रय देते हैं। भेदतत्त्वों का महत्त्व किसलिए है, वह समझने की कोशिश करते हैं। भेदों को बढ़ाते भी हैं और इस तरह भेद-तत्त्वों का पूरा साक्षात्कार होने के वाद उनकी मर्यादाएँ और उनके दोष हम पर प्रगट होत हैं और फिर ऐसे भेदों को दूर करने के पीछे हम अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। ऐसी पद्धति के कारण हमें बहुत बड़ी कीमत देनी पड़ती है। लेकिन करें क्या? राष्ट्रीय आदत छूटती नहीं। हम कीमत देते आये हैं और देते रहेंगे ही। लेकिन भेदों को गौण करके आखिरकार समन्वय स्थापित करने की हमारी परंपरित प्रेरणा, हमारे प्रयोग और हमारे अनुभव का फ़ायदा दुनिया को मिलना चाहिए। हम मुक्ति, शान्ति और अद्वैत तीनों के सामाजिक स्वरूप के विकास के लिए कोशिश करते जायँ। नये-नये प्रयोग करें और अब दुनियाकी अन्य संस्कृतियों के प्रति भी श्रद्धा रखकर उनके साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो जायें, यही होना चाहिए, हमारा भविष्य का मिशन।

★

डॉ. कन्हैयालाल मुन्शी

भारतीय साहित्यकारों का संगम-तीर्थ

गत ५ जुलाई से ८ जुलाई तक भवन के तत्वावधान में सर्वभाषी लेखक-सम्मेलन के उद्घाटन-समारोह के अध्यक्षपद से प्रवचन करते हुए डॉ. मुन्शी ने कहा : किसी भी देश की एकता केवल भौगोलिक सामीप्य अथवा समान शासन के फलस्वरूप नहीं होती। वह तो समान माध्यम और समान साहित्य द्वारा जनता के एक प्रभावशाली, प्रज्ञ, अल्पसंख्यक वर्ग की सामूहिक चेतना का फल है।

इस सम्मेलन के आयोजकों ने अपनी उद्घाटन सभा का अध्यक्ष बनाकर जो मेरा सम्मान किया, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेना मुझे सदा ही प्रिय रहा है, और इस सम्मेलन में जहाँ भारत की कई भाषाओं के साहित्यकार सम्मिलित हुए हैं, उपस्थित रहना मेरे लिए सौभाग्य का विषय ही है।

इस प्रकार के सम्मेलन तकनीक और विचारों के आदान-प्रदान की दृष्टि से तो आवश्यक हैं ही, किंतु एक समान साहित्यिक परम्परा और प्रेरणा को देशभर में स्थायी रखने के लिए भी वे उपयोगी हैं। पहले से ही ऐसा चला आता रहा है; केवल इस समय ही इस कार्य में अड़चनें महसूस हो रही हैं, क्योंकि विभिन्न भाषी दल पृथकतावादी होते जा रहे हैं।

सामूहिक आन्दोलन के पश्चात्, भाषा और साहित्य ही किसी जाति के जीवन में सर्वाधिक संगठनकारी तत्व हैं। हमारी अधिकांश बाधाएँ तभी से प्रारंभ हुईं, जब से देश में युनिवर्सिटी शिक्षा के लिए एक समान माध्यम को तिलांजलि देकर

प्रादेशिक भाषाओं पर बल दिया जाने लगा। यह प्रवृत्ति प्रायः आत्मघाती है।

किसी भी देश की एकता केवल भौगोलिक समीपता अथवा एक समान शासन के फलस्वरूप नहीं होती; हाँ, किसी विदेशी सैनिक सत्ता का अधिकार उस पर हो, तो बात अलग है। यह एकता तो एक समान माध्यम और एक समान साहित्य द्वारा जनता के एक प्रभावशाली, न्न, अल्पसंख्यक वर्ग की सामूहिक चेतना का फल है।

हमारी राष्ट्रीय चेतना भी इसका प्रतिवाद नहीं है। पिछली दस पीढ़ियों से अंग्रेजों द्वारा स्थापित युनिवर्सिटियों में अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षित स्त्री-पुरुषों की सामूहिक चेतना का वह फल है। इस युनिवर्सिटी-शिक्षित अल्पसंख्यक वर्ग को विभिन्न भाषीय दलों में यदि हम विभक्त कर देंगे-जैसा कि आज कुछ प्रांतों में हो रहा है-तो हमारा राष्ट्र एक नहीं रहेगा, बल्कि कई राष्ट्र हो जायेंगे। तब न तो फौलाद के कारखाने और न समाजवादी प्रणालियाँ ही हमारे कुछ काम आयेंगी।

पूर्वकाल में संस्कृत और उसके साहित्य ने ही भारत के बहुसंख्यकों, अर्थात् हिन्दुओं को, आपस में जोड़नेवाली एक अटूट कड़ी का काम किया है, जिसे सरदार पन्निकर ने ठीक ही 'इतिहास का एक आश्चर्य' कहा है। इस एकता के निर्माता—पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि—ने इस देश को संस्कृत द्वारा एक ऐसा सुदृढ़ माध्यम प्रदान किया, जिसने अपने चिर विकासशील और सशक्त साहित्य द्वारा दो हज़ार वर्षों तक देश भर के लोगों का मानसिक पोषण किया।

ईसा के तीन शताब्दि पूर्व तक संस्कृत साहित्य ने भारत के अधिकांश भाग को साहित्यिक प्रेरणा और जीवन की अभिव्यक्ति प्रदान की थी। मनुस्मृति तथा गृह्य सूत्रों ने सामाजिक मूल्यों और संस्थाओं का विकास केवल भारत में ही नहीं, अपितु श्रीलंका, बर्मा, जावा और कम्बोडिया तक में किया था। रामायण ने नैतिक आचरण को एक राष्ट्रीय स्वरूप

प्रदान किया, और महाभारत ने एक वीर परम्परा स्थापित करने के अतिरिक्त साम्राज्य, अर्थात् भारतवर्ष की राजनीतिक एकता की परिकल्पना भी प्रेषित की।

मैं इन वातों की चर्चा केवल ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में ही नहीं कर रहा हूँ, वल्कि इस वात की याद आप लोगों को दिलाने के लिए कर रहा हूँ, कि किसी जाति के संगठन में भाषा और साहित्य का क्या महत्व ह।

प्रथम, भारत के लिए उसके प्रतिनिधि, प्रभावशाली, प्रज्ञ वर्ग की चेतनाशील एकता को वनाये रखने के लिए एक सर्वमान्य भाषा और साहित्य की आवश्यकता हैं।

द्वितीय, यही एकता इस प्रभावशाली वर्ग को सामाजिक, राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक चेतना का रक्षक वनाये रखने में सहायक होगी। और इसी पर राष्ट्र की सामूहिक शक्ति निर्भर हैं।

अंततः, ऐसी सुविकसित तथा सशक्त भाषा और साहित्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत के प्रभाव को सुदृढ़ करने की पूर्वस्थिति के रूप में अनिवार्य हैं।

● ●

एक और ऐतिहासिक घटना यह प्रकट करती हैं कि एक समान माध्यम और साहित्य ने किस प्रकार पूर्वकाल में विघटन की प्रक्रिया को रोक था। १२ से १६वीं शताब्दि तक का समय भारत के लिए महान उथल-पुथल का काल था। उसके अधिकांश स्वाधीन राज्य समाप्त हो चुके थे। उसके पवित्र स्थलों और मंदिरों को तहस-नहस कर दिया गया था। उसके स्त्री-पुरुष या तो बाज़ार में दासों की तरह बेचे जाते, अथवा वे विदेशी अत्याचारियों की प्राणहीन प्रजा थे। उसके अपने विश्वविद्यालय या तो नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये थे, अथवा सहायता के अभाव में वंद हो गये थे।

फिर भी, प्रेरणा के रूप में संस्कृत भाषा बची रही और इसीसे पुनर्जागृति हुई। भागवत तथा संस्कृत के अन्य शत ग्रंथों द्वारा भक्ति की एक ऐसी धारा देश में प्रवाहित हुई कि जनता की आशा उससे जीवित रही और उस समय की भारतीय भाषाएँ भी पनपीं। १६वीं तथा १७वीं शताब्दियों में संस्कृत ने देश की प्रायः सभी भाषाओं में एक नया प्राण, एक नयी शक्ति ला दी थी।

भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भाषाएँ भिन्न-भिन्न थीं, परन्तु संस्कृत के समान माध्यम द्वारा प्राप्त एकता उनमें थी, जिससे न केवल भाषाओं को ही वल मिला, वल्कि जन-जीवन भी शक्तिशाली हुआ। ज्ञानेश्वर, चंडीदास, विद्यापति, नरसी मेहता, कवीर, सूरदास और तुलसीदास, कुछ ऐसे ही कवि हैं, जिनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि

भारतीय जनता की आत्मा विदेशियों के अत्याचारों से दबी होने पर भी एक समान पितृ भाषा और साहित्य की प्रेरणा द्वारा अपनी प्राण-शक्ति को बनाये रखे थी।

● ●

इसी प्रकार का एक साहित्यिक पुनर्जागरण १९वीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में हुआ। १८वीं सदी में जातियों की अति संकुचित सीमाओं के अतिरिक्त, जीवन काफी विघटित हो चुका था। संस्कृत एक अत्यंत उच्च अल्पवर्ग के लिए ही जीवन्त प्रेरणा रह गयी थी। और तब आयी नयी युनिवर्सिटी शिक्षा। अंग्रेजी साहित्य के पठन से भारत के अनेक युवकों को एक नयी प्रेरणा मिली। उन्होंने उत्साह के साथ शेक्सपीयर, स्काट, बायरन, मैकालें तथा जान स्टुअर्ट मिल को नयी प्रेरणा और नये विचार पाने के लिए पढ़ा; और ग्रीस, रोम तथा इंगलैण्ड के इतिहास की ओर राष्ट्रीय महानता का रहस्य पाने के लिए वे मुड़े।

उसी बीच अंग्रेज़ और विदेशी विद्वानों ने, और उनके बाद भारतीय विद्वानों ने भी, संस्कृत साहित्य के गुप्त कोष को ढूंढ़ निकाला। भारत में युनिवर्सिटी-शिक्षित व्यक्तियों के लिए साहित्य के प्राचीन भंडार खोजने का अंग्रेजी भाषा एक माध्यम बन गयी; और उनमें से अधिकांश ने, कालेजों में संस्कृत पढ़ने के कारण, उससे एक नयी प्रेरणा भी पायी।

इन दोनों भाषाओं के प्रभाव के कारण आधुनिक भारतीय भाषाएँ सशक्त और मुखरित हुईं। ब्रिटिश शासन के साथ अंग्रेजी भाषा के कई शब्द जन-जीवन में प्रचलित हो गये और अंगरेजी मुहावरे तथा व्याकरण के प्रयोग भी भारतीय भाषाओं में स्थान पाने लगे। पिछली शताब्दि में ऐसा कौन साहित्य-सर्जक आपको मिलेगा, जो यह कह सके कि अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित और प्रेरित वह नहीं हुआ? भारतीय पुनर्जागृति के सभी श्रेष्ठ साहित्य-स्वामी-बंकिम और रवीन्द्रनाथ बंगाल में, तिलक और आपटे महाराष्ट्र में, गोवर्धनराम तथा नानालाल गुजरात में, तथा भारती तामिलनाड में—इसी प्रकार प्रेरित एक देश-व्यापी आन्दोलन की उपज थे। इससे समस्त भारतीय साहित्य फिर से जीवन के तीन महान रहस्यों की ओर उन्मुख हुआ: मनुष्य का मनुष्य से सम्बंध, मनुष्य का अलौकिक शक्तियों से सम्बंध तथा मनुष्य का नारी से सम्बंध। जीवन को उसने फिर से उसकी विविध सम्पदाओं सहित पाया, जो कि सृजनात्मक कला की चरम प्राप्ति है; व्यक्ति के अन्तर्जगत् को उसने फिर से साहित्य का केंद्रीय विषय बनाया।

किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों तथा

[शेष पृष्ठ १०३ पर]

एक किरण: व्यूह में

डॉ. शिवप्रसाद सिंह

सहसा उस दिन
मेरे मन का अन्तर्यामी जागा
बोला : रहा अभागा सदा अरे तूं।
कभी न सोचा
जीवन कितना कच्चा धागा।
जरा हवा की लहर छू गई
मत्त हो गया
मटक मटक कर सीस डुला कर
पैर हिला कर लगा नाचने
हर फन्दे में गाँठ पड़ गई
गाँस नुकीली कहीं गड़ गई
अब पछताने से क्या होता
जब खँडहर पर लगा बोलने कागा।
सहसा उस दिन मेरे मन का अन्तर्यामी जागा
बोला, सदा अरे तूँ रहा अभागा।
मैंने कहा सुनो निष्कामी अन्तर्यामी
जीवन के कच्चे धागे ने
मटक मटक कर सीस हिला कर
हवा लहर पर बीन बजा कर
जिस क्षण गाया, अणु में भास्वर सूर्य हो गया
जड़ में गति के कम्पन फूले
पृथ्वी की गुरुता का कर्षण कहीं खो गया।
गाँस नुकीली उर्ध्वमुखी हो अंकुर बन कर फूटी
उस क्षण साँकल फन्दों वाली गाँठ गाँठ से टूटी
काग-उच्चरित खण्डहरों ने
टूटी इंटों की अँजुरी में स्वागत-दीप जलाया।
जीवन के कच्चे धागे ने
मटक मटक कर, सीस हिला कर
हवा लहर पर बीन बजाकर
जिस क्षण गाया।

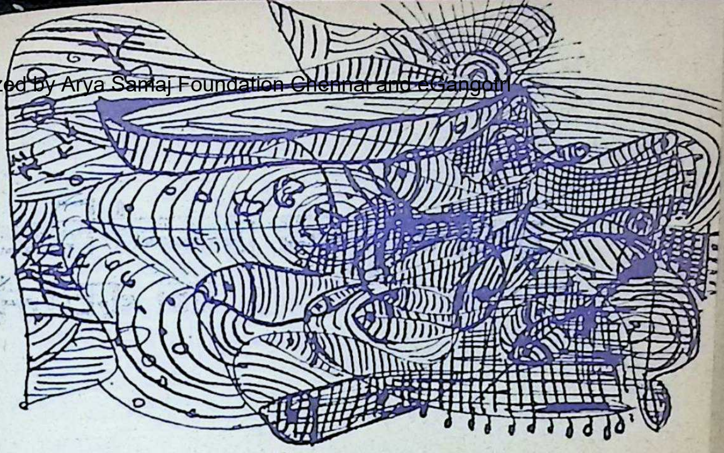

वारीन्द्रकुमार वर्मा

●

जल का ठहराव

विस्तृत जल का ठहराव
कह सकूं उसे यदि व्यष्टि-चेतना
कितनी शून्य, उदार.....
कितनी मीनें व्याकुल
सतही चेतना की सतह के नीचे
छिड़ा अन्तर्द्वन्द: उच्छृंखल मछलियों की दौड़
लेकिन शान्त ऊपर से !
हवा की लहर में
हंसती, बिछलती, दौड़ती लहरें
सुख का विस्तार कह जातीं
क्षणों का ! फिर वही ठहराव !
पत्थरों के पतन में
उकसती, फैलती भँवरें
सत्य का वह सार कह जातीं
कि सतही चेतना को चीरता हरएक पत्थर
डूब जाता
और कुंठा टूट जाती
उन क्षणों में ! और फिर से देखता मैं
वही ठहरा जल, वही विस्तार....!

●

आर. आर. दिवाकर

●

क्या मनुष्य अपने विकास का स्वामी है?

●

सृष्टि की विकास-प्रक्रिया का न आदि है, न अन्त। यह जगत्-सत्ता शाश्वत और असीम है, अतः विश्व की यह क्रमिक प्रगति भी चिरन्तन् है और मनुष्य भले ही अपनी दृष्टि से उत्थान और पतन का अनुभव करे, किन्तु इस निरन्तर होती हुई प्रगति की कोई सीमा नहीं है।

●

जब हम स्वयं से यह प्रश्न करते हैं तो तीन प्रश्न एक साथ उठ खड़े होते हैं—पहला यह कि 'विकास' का पूरा-पूरा अर्थ क्या है और इसका क्या महत्त्व है? दूसरा यह कि क्या मनुष्य उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है और यदि हाँ तो किस प्रकार? तीसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या मनुष्य अपने विकास में योग दे सकता है और इस प्रकार पूर्णतः या अंशतः इस विकास प्रक्रिया को स्वयं संचालित कर सकता है?

शब्द-कोष के अनुसार 'विकास' का अर्थ है—उस सब के प्रकटीकरण एवं विस्तृतीकरण की प्रक्रिया तथा निर्माण, जो सशक्त रूप से वर्तमान है और जिससे अखिल जीवन अन्तर्गस्त है। जहाँ तक जीवन की प्रक्रियाओं का सम्बन्ध है उनमें विकास का अभिप्राय है वे क्रमिक अथवा आकस्मिक रूप-परिवर्तन, जो उच्च से उच्चतर जीवन-प्रकारों के कारण बनते हैं।

आज के अन्ध कट्टरपन्थी, जो वैज्ञानिक अनुसन्धानों के माध्यम से प्राप्त सत्यों को मानने से इनकार करते हैं वे ही इस प्रकार के विकास को भी अस्वीकृत करते हैं। अन्यथा, सभी यह मानते हैं कि जीवन और जगत् का भौतिक विकास क्रियाशील है। जहाँ तक पृथ्वी-ग्रह और उसपर मानव-जाति की उत्पत्ति का सम्बन्ध है, हम सहमत हैं कि विकास होता चला आ रहा है यद्यपि विवरणों को लेकर मत-वैभिन्य भी संभाव्य है।

यह स्पष्ट रूप से कह देना आवश्यक है

कि इस विकास-प्रक्रिया का न आदि है, न अन्त। यह जगत्-सत्ता शाश्वत और असीम है। अतः विश्व की यह क्रमिक प्रगति भी चिरन्तन है और मनुष्य भले ही अपनी दृष्टि से उत्थान और पतन का अनुभव करे, किन्तु इस निरन्तर होती हुई प्रगति की कोई सीमा नहीं है।

जीवन का इतना ही महत्त्वपूर्ण एक दूसरा तथ्य यह भी है कि न तो वह यन्त्रों की भाँति बना है न यन्त्रों की तरह उसका सञ्चालन किया जा सकता है बल्कि वह तो सृजनशील है। जीवन यदि यान्त्रिक रूप से निर्मित हुआ होता तो गणित की भाँति उसका सुनिश्चित बंधा-बंधाया हल प्रस्तुत किया जा सकता था और उसकी परिणतियाँ सर्वथा निष्प्राण होतीं। किन्तु ऐसा नहीं है। सदैव ऐसा हुआ है कि जीवन और उसकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में न निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और न उनका कोई सुनिश्चित रूप ही होता है। इस सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी भी मानी नहीं रखती। जीवन और उसके विकास की सृजनात्मकता और अनिश्चयात्मकता ही उसका आकर्षण और रहस्य है।

लेखक

इन विचारों को दृष्टि में रखकर 'विकास' के उस अर्थ में परिवर्तन करना होगा जो शब्द-कोष के अनुसार समझा जाता है अर्थात् उस सब का प्रकटीकरण अथवा विस्तृतीकरण जो पहले से है। जिसे हम अस्तित्व अथवा 'होना' कहते हैं उसमें कुछ भी स्थिर, सीमित और ज्ञेय नहीं है और न यह 'विकसित होते जाना' आंशिक, सीमित अथवा अस्थायी है। अतः जिसे हमने पदार्थ रूप में वर्तमान मान लिया है केवल वही प्रकट नहीं हो रहा, केवल वही खुल नहीं रहा और मात्र वही विकसित नहीं हो रहा, बल्कि वह असीम और शाश्वत सत्ता जो कॉस्मिक स्तर पर विकासशील और सृजनात्मक है शाश्वत और असीम रूप से विकसित होती चली जा रही है।

इस ग्रह से परे कहीं जीवन है या नहीं, इस सम्बन्ध में हम प्रायः कुछ भी नहीं जानते। इस धरती पर, लाखों वर्षों से मानव-प्राणी जीवन-शिखर पर विराजमान हैं। किन्तु, यदि मनुष्य-जाति में विकास के लक्षण प्रकट रूप से नहीं स्पष्ट होते तो हम यह नहीं कह सकते कि विकास रुक गया है। यदि मनुष्य का वर्तमान शरीर किसी शारीरिक विकास का ही परिणाम है और शकल-सूरत में मिलता-जुलता वन्दर ही उसका पूर्वज था तो हम यह भी कह सकते हैं कि आगे चलकर एक नयी मनुष्य-जाति विकसित होगी जिसके पूर्वज हम हैं, और वह जाति वृहत्तर और महत्तर क्षमता एवं शक्ति से सम्पन्न होगी। इस आधार पर हमारी यह धारणा हो सकती है कि अगले कदम में या तो क्रमिक विकास की कोई नियमित प्रक्रिया होगी अथवा कोई स्थित्यन्तर होगा और वर्तमान मानव आकस्मिक ढंग से वदल कर कोई नया रूप ले लेगा।

फिर भी क्या हम कह सकते हैं कि अव मानव-विकास रुक गया है? प्रत्यक्षतः मनुष्येतर प्राणियों में किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक परिवर्तन हुआ प्रतीत नहीं होता। घोड़ा, गाय, हाथी अथवा कुत्ता बदला हुआ नज़र नहीं आता– शारीरिक, मनोवैज्ञानिक अथवा अन्य प्रकार का कोई परिवर्तन उसमें दृष्टिगोचर नहीं होता। किन्तु, सचमु मनुष्य-जाति में परिवर्तन हुआ है उसके चारों ओर स्पष्ट है और उस चेतना पर इसका प्रभाव भी पड़ा है

ये परिवर्तन ही मानव के निरन्त विकास का स्वरूप ग्रहण करते हैं। मात्र आवयविक नहीं हैं। कोई ऐसा प्राणि-शास्त्र-वेत्ता नहीं है जो कह सके कि मनुष्य के अमुक अंग अमुक प्रकार का रूप-परिवर्तन आ है। किन्तु-मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों हम निश्चित रूप से मान सकते है मनुष्य की चेतना में इस मनोवैज्ञानिक स्त पर जो परिवर्तन आवश्यक रूप से आ हैं उनकी संगति, मनुष्य के किञ्चि शारीरिक एवं स्नायु परिवर्तन से बैठ है जो किसी न किसी रूप में थोड़ा-बहु हो ही आया है, किन्तु वैज्ञानिक रीति से अभी उसे पकड़ा नहीं जा सका है।

जिस परिवर्तन की वात हम कर र हैं वह दो रूपों में प्रकट होती है–आन्तरि और वाह्य। जवकि दूसरे प्राणी हज़ारों वर्षों से जैसे के तैसे अपने उन्हीं रूपों में पड़े हैं मनुष्य और उसका परिवेश आ बदला हुआ है और प्रायः उसे पहचाना नहीं गया है। अव वह वड़े-वड़े नगरों में रहता है जहाँ प्रकृति की शक्तियाँ उसकी सेवा में लगी हैं। आग, भा बिजली और आणविक शक्तियों के द्वा

उसने समय और विस्तार पर अपेक्षाकृत स्वामित्व पा लिया है। इसके परिवेश में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है वह रेल, हवाईजहाज़, रेडियो, टेलिविज़न और दैनिक समाचार पत्रों के द्वारा स्पष्ट है। यह हमेशा याद रखना होगा कि ये बाह्य परिणाम मनुष्य के आन्तरिक परिवर्तनों के प्रकट रूप हैं। ये वस्तुएँ मनुष्य के मन पर वैसे ही प्रभाव भी डालती हैं, जैसे सामाजिक व्यवहार और सामाजिक संगठनों ने उसके मस्तिष्क और व्यक्तित्व पर छाप छोड़ी है।

किन्तु, आन्तरिक अथवा बाह्य रूप में जो कुछ प्रकट हो रहा है उसके मूल में क्या है? उसके मूल में, मनुष्य की चेतना तथा मस्तिष्क में होने वाला विकास ही है। इस आन्तरिक विकास की प्रकृति, रीति और पद्धति क्या है? इसकी रीति और पद्धति के सम्बन्ध में कुछ कह पाना कठिन है। अतः हम उस आन्तरिक विकास की प्रकृति पर ही विचार करें जो मानव जीवन में प्रकट होने वाले महान परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है।

जीवन-शक्ति अथवा आत्मा अथवा आन्तरिक स्फुरण जो स्वयं को व्यक्त करने के लिए विकल है वह अधिकाधिक आन्तरिक पदार्थों को अपने अनुसार मोड़कर प्रकट अथवा व्यक्त करना चाहता है। यद्यपि यह आन्तरिक शक्ति-वेग आरंभ में सचेतन नहीं प्रतीत होता, किन्तु अभिव्यक्ति के दौरान में उत्तरोत्तर सचेत होता जाता है। यह स्वयं एक विकास है। यह चेतना दो रूपों में सामने आती है—इसकी परिवेश-गत चेतना और स्वयं की केन्द्रीय चेतना जो परिवेश से परे है।

वास्तव में यहीं जीवन की अहं-चेतना और ब्रह्माण्ड चेतना के स्वरूप प्रकट होते हैं—ब्रह्माण्ड चेतना अथवा कॉस्मिक चेतना जो मानव-चेतना से अलग प्रतीत होती है। चेतना का यही नाटक सभ्यता और संस्कृतियों को विकास और प्रगति प्रदान करता है। मनुष्य जिन शक्तियों को बाह्य अथवा भौतिक मानता है और जिनका स्वामित्व ग्रहण कर चुका है वे ही सभ्यता बनकर खड़ी हैं और संस्कृति वह है जो आन्तरिक शक्तियों और वृतियों का नियम कर उन्हें विकास देती ह जो विज्ञान, कला, धर्म, नीति और सौन्दर्य-बोध के रूप में प्रकट होती है।

मनुष्य के विकास की दृष्टि से उसकी आत्म-चेतना की इसी प्रगति का अधिक महत्त्व है। यहीं हम उस प्रश्न की कुंजी पा जाते हैं कि क्या मनुष्य अपने विकास का मालिक हो सकता है? ब्रह्माण्ड में अपनी इस आत्म-चेतना के स्वर में वह

प्रश्न करता है कि मनुष्य क्या है? सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उसका क्या स्थान है? वह किस ओर जा रहा है। उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? जैसे ही मनुष्य बाह्य संसार के रहस्यों का भेदन करने का प्रयास करता है उसके विधान को समझता और पकड़ता है, अपनी चेतना के भीतर प्रवेश करने लगता है और उन नियमों को समझने की चेष्टा करता है जिनसे उसकी चेतना क्रियाशील है, वह स्वयं अपने अध्ययन का विषय बनता है। जब वह अपने मस्तिष्क और चेतना की क्रियाशीलता समझ लेता है तब अपने ढंग से उसे मोड़ने की कोशिश करता है।

अवश्य ही इससे मानव-विकास का पता चलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु, उद्देश्य क्या है? उद्देश्य विकास के बाहर कहीं नहीं है। वह स्वयं विकास में ही सन्निहित है।

मनुष्य की जीवन-शक्ति, जो चेतना के उच्चतर स्तरों पर अपने चिरनवीन रूपों में विकास कर अनेक प्रकार से

अपनी आवश्यकता के लिए खरीदिए

Hind FLOORING TILES

हाइड्रालिक इटालियन मशीनों से

निर्मित : प्रीफ़ब (पूर्वनिर्मित) आर. सी. सी. गृह, सीमेण्ट पाइप, टँक, रंगाई की नाँदें व बाग़ीचों के सामान का निर्माण करते हैं। सरकार, रेलवे, म्युनिसिपैलिटी, पी. डब्ल्यु. डी. के कंट्राक्टर हैं और सामान मुहैया करते हैं।

हिन्दुस्तान सीमेन्ट पाइप्स एण्ड कंक्रीट कन्स्ट्रक्शन कं०

मुख्य कार्यालय : **ओछवलाल गोरधनदास शाह**
टाइल, पाइप्स एण्ड सेनीटरी मरचेण्ट्स
खाडीआ, चार रस्ता, अहमदाबाद
फैक्टरी : **सुएज फार्म रोड, अहमदाबाद**
कार्यालय तथा निवास फोन : ५२२९२
फैक्टरी फोन : ५१६३६

यं को व्यक्त और प्रकट कर रही है, ज्ञान और नियन्त्रण के द्वारा उन तियों पर अधिकार करना चाहती जिन्हें वह अपने से बाहर या अलग नती है। यह स्वामित्व की भावना की सिद्धि का श्रेष्ठतम बोध प्रदान रती हैं। अभिव्यक्ति और विकास की क्रिया में यह स्वामित्व का सन्तोष और द्धि का आनन्द ही उसका अभिप्राय है। तना का यह विस्तार और गहराई, आत्म-चेतना की प्रगति, आन्तरिक चेतना की प्रकृति का अधिकाधिक ज्ञान, आत्मा-यक विधानों का बोध, मस्तिष्क का म्यक् ज्ञान और उस पर पूर्ण नियन्त्रण वं स्वामित्व, थे सब विकास की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं जो वास्तव में जीवन-शक्ति के स्वाभाविक स्फुरण में ही मूल रूप से निहित हैं।

मनुष्य के आत्म-चेतन होने के पूर्व सके विकास की जो भी प्रक्रिया रही वह सर्वथा अचेतन रूप से नहीं रही गी, जबकि मनुष्य उत्तरोत्तर अधिकाधिक आत्म-सजग होता जा रहा है। मनुष्य की यह आत्म-चेतना स्वयं मनुष्य पर उत्तरदायित्व डालती है कि वह ने विकास में अपना हाथ रखे। यद्यपि समूचे ब्रह्माण्ड का विकास इतना विराट है कि उस पर मनुष्य का कोई वश नहीं है और उसे वह किसी भी रूप में प्रभावित नहीं कर सकता, किन्तु जहाँ तक उसके आत्मिक विकास की बात है वह स्वयं के विकास में योग देने से कैसे इनकार कर सकता है? इस कर्तव्य से वह कैसे पलायित हो सकता है? आत्म-चेतना के द्वारा वह आत्म-नियन्त्रण रख सकता है और स्वयं पर अधिकार करके अपने विकास का मार्ग भी स्पष्ट कर सकता है। यहीं हम कह सकते हैं कि वह अपने विकास का स्वामी भी हो सकता है। अपने ऊपर अधिकार और नियन्त्रण रखने की अपेक्षा वह अपना विकास संभवतः कुछ अधिक तेज़ी से कर सकता है।

यह आत्म-स्वामित्व अपने आप में आनन्दप्रद है। बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति पर अधिकार, जो जीवन-शक्ति की ही अभिव्यक्ति हैं, मनुष्य के आनन्द का अविरल स्रोत है। जब हमारी आत्म-चेतना पूर्णतः या अंशतः, शाश्वत कॉस्मिक विकास में योग देने को प्रवृत्त होगी तब सृजनात्मक आनन्द और चरम उल्लास के द्वार उन्मुक्त होंगे।

*

मैं संस्कारों में विश्वास नहीं करता, स्वाभाविक उन्नति का विश्वासी हूँ।

—स्वामी विवेकानन्द

अनन्तकुमार पाषाण

गीत

छाया से छपी धूप हँस कर उजाल दो।
साँवली हथेली से रोशनी उछाल दो।

रंगरूट फूलों की
नयी-नयी छावनियाँ
भौंरों का बिगुल बजा–
उड़ीं जुड़ीं सब चिड़ियाँ।
गुड़हल का लाल-लाल तुर्रा सम्हाल दो।
साफ़े का चोर छिपे कन्धे पर डाल दो।

बेड़ियाँ तरंगों की
तट की कटि बाँध गयीं।
काम कुशल कन्याएँ
कामना उलांघ गयीं।
सैनिक घर जायेंगे, छावनी निकाल दो।
गह्वरगृह पृथ्वी के पदध्वनि से बाल दो।

सोये फुटपाथों पर
झरी पत्तियाँ पीली

अगस्त १९६२

रिक्त बेंच पथ के तट,
तेज़ दोपहर ढीली।
यादें अनदेखे की देखे में ढाल दो।
मिट्टी की गागर में बाँसुरियाँ डाल दो।

मिसरी-सा घुले, ढुले
सपना उपवन का भी।
ताले में द्वार छुपे
लाल तार की चाभी।
ठुमुक-ठुमुक रखो पाँव छाँव कटी झाल दो।
चप्पू जलमग्न करो, फाड़फूड पाल दो।

मानस की तुलसी में
करुणा का स्रोत हँसे।
फिर से तैराक जोत
लहरों के बीच धँसे।
रास रचा है तो फिर पाँवों से ताल दो।
छाया से छपी धूप हँस कर उजाल दो।

★

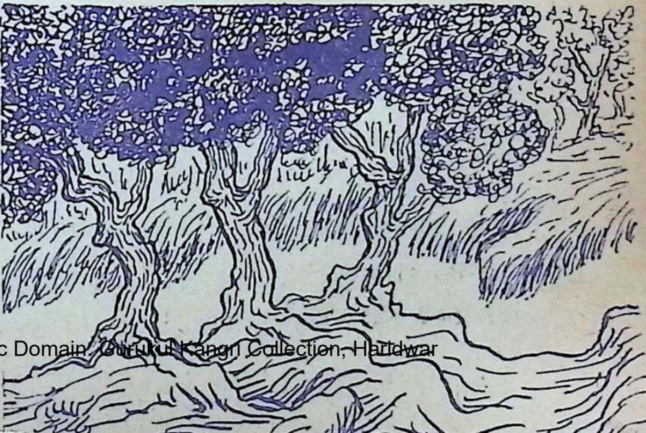

विमल घोष

शरच्चन्द्र की राजलक्ष्मी कौन थी?

नारी हृदय के अधीश्वर शरच्चन्द्र के उपन्यास 'श्रीकान्त' की नायिका राज-लक्ष्मी कौन थी? शरत्-साहित्य के अधिकांश पाठकों का यह दृढ़ विश्वास है कि शरत् बाबू की जीवन-संगिनी स्वर्गीया हिरण्मय देवी ही श्रीकान्त की राजलक्ष्मी हैं, जिन्हें शरच्चन्द्र स्नेहवश लक्ष्मी कह कर पुकारा करते थे। इस सम्बन्ध में स्वयम् शरत् बाबू से समय-समय पर पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में जो कुछ उन्होंने कहा, उसीके प्रकाश में राजलक्ष्मी को पहचानिये......।

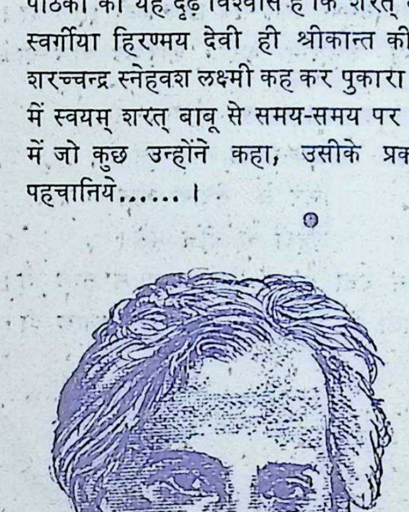

उपन्यास सम्राट शरत्चन्द्र के 'श्रीकान्त' उपन्यास के यायावर नायक श्रीकान्त को प्रायः लोग स्वयं शरत्चन्द्र ही मानते हैं और इसी कारण इस उपन्यास को आलोचकों ने आत्मचरित मूलक उपन्यास की कोटि में रक्खा है। श्रीकान्त-राजलक्ष्मी की प्रणय कथा भी (इस उपन्यास में वर्णित) इसी कारण शरत्चन्द्र के व्यक्तिगत जीवन की प्रेम कहानी मान ली गयी है। इस उपन्यास को शरत् की आत्मकहानी मानने के पक्ष में एक अन्य सबल मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है, कि श्रीकांत की कहानी इस उपन्यास में

शरत् स्वयं अपने मुंह से प्रथम पुरुष में कहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की आरम्भ-पंक्ति में लेखक लिखते हैं –

'मेरे इस यायावर जीवन के अपराह्न-वेला में खड़ा हुआ, इसी का एक अध्याय कहते समय न जाने कितनी बातें याद आ रही हैं।'

इन सारे तथ्यों के आधार पर एवं इसलिए भी कि शरत्चन्द्र, साहित्य में यथार्थवाद धारा के प्रणेता थे, शरत्-साहित्य के साधारण पाठकों ने श्रीकान्त की नायिका 'राजलक्ष्मी' को शरत् के जीवन में आगत एक यथार्थ नारी माना है। राजलक्ष्मी के वास्तविक अस्तित्व की खोज ही इस लेख का मूल विषय है।

शरत्-साहित्य के अधिकांश पाठकों का यह दृढ़ विश्वास है कि शरत्बाबू की जीवनसंगिनी स्वर्गीया हिरण्मय देवी ही श्रीकान्त की राजलक्ष्मी हैं, जिन्हें शरत्चन्द्र स्नेह-वश लक्ष्मी क़हकर पुकारते थे। यह पूछने पर कि क्या-- 'श्रीकान्त की राजलक्ष्मी स्वयं हिरण्मय देवी हैं?' शरत्चन्द्र ने समय-समय पर अपने पाठकों तथा घनिष्ट मित्रों को कभी झुंझलाहट से, कभी हंसी-हंसी में, कभी उन लोगों से पिण्ड छुडाने के लिए अपने मनोभाव व्यक्त किये हैं, जो राजलक्ष्मी के वास्तविक अस्तित्व पर प्रकाश डालने में सहायक हो सकते हैं।

श्री शैलेश विशी अपने ग्रन्थ 'विप्लवी शरत्चन्द्र का जीवनप्रश्न' में लिखते हैं:–

'अब प्रश्न यह उठता है कि यह राजलक्ष्मी कौन है? क्या यह उनकी विवाहित स्त्री हैं, जिन्हें वह प्यार से लक्ष्मी कहकर पुकारते थे----. जिस दिन यह बात मैंने उनके : शरत् के : मुख से सुनी--- मैंने स्पष्टतः कहा--- 'विवाह करके इस महान प्रेम की आपने अमर्यादा की है। जो कभी पुण्य भागीरथी का निर्बन्ध स्वच्छ जल था, उस पर बांध बांध कर आपने उसे तालाब और गंढ़े का रूप दे दिया है।' वह कुछ देर ख़ामोश रहे फिर बोले--- 'इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता भी तो नहीं था और फिर उसने छोड़ा भी नहीं।'

शैलेश विशी को कहे गये शरत्चन्द्र के शब्दों को ही यदि हम सत्य मान लें, तो बड़ी भूल होगी, क्योंकि राजलक्ष्मी के वास्तविक अस्तित्व के सम्बन्ध में पूछने पर श्रीमती लीलारानी गंगोपाध्याय नामक बंगाल की लेखिका को शरत्चन्द्र ने अपने पत्रों में ठीक इससे उलटी बात लिखी। अपने एक पत्र में शरत् ने लिखा --

"राजलक्ष्मी कहां मिलेगी? वह तो सब मनगढ़न्त झूठी कहानी है। 'श्रीकान्त' केवल एक उपन्यास मात्र ही तो है। झूठी अफवाहें न सुनना ही वेहतर है।"

श्री शैलेश विशी एवं श्रीमती लीलारानी गंगोपाध्याय दोनों को शरत्चन्द्र ने अलग-अलग बातें कही हैं। अवश्य ही शरत् के जीवन में कुछ ऐसे कारण भी रहे होंगे, जिससे उनका व्यक्तित्व चारों ओर से एक धूमिल वातावरण द्वारा आच्छादित हुआ, फलस्वरूप इसके 'व्यक्ति' शरत्चन्द्र को आज तक हम उनके वास्तविक स्वरूप में न पहचान सके। इन तीन शब्दों : श र त् : के नाम के लेखक के सम्बन्ध में जितनी मनगढ़न्त, कपोलकल्पित कहानियाँ सुनी जाती हैं, भारतीय साहित्य में शायद ही ऐसा कोई अन्य सौभाग्यशाली लेखक का उदाहरण मिले।

हिरण्मय देवी से साक्षात् जिन व्यक्तियों की भेंट हुई, उनमें शरत्चन्द्र के मित्र श्री गोपालचन्द्र राय का नाम सर्वोपरि आता है। 'हिरण्मय देवी ही राजलक्ष्मी हैं अथवा नहीं ?' इस सम्बन्ध में गोपाल वाबू लिखते हैं :–

'मैं कम से कम दस बारह वार सामताबेड़ हिरण्मय देवी के निकट गया और घन्टों उनसे वातचीत की। इस अनुभव के आधार पर ही मैं कह सकता हूँ कि हिरण्मय देवी एक साधारण ग्राम्य, सरल महिला थीं। अच्छी तरह सजा-संवार कर तो वह बोल भी नहीं पाती थीं। परन्तु राजलक्ष्मी नृत्य और संगीत में जितनी दक्ष थीं, बातचीत करने में भी उतनी ही पटु थीं। रूप, गुण और बुद्धि में हिरण्मय देवी राजलक्ष्मी के समकक्ष नहीं ठहर सकतीं। अतः यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि हिरण्मय देवी राजलक्ष्मी नहीं हो सकतीं।'

अब तक जो कुछ भी कहा गया, उससे यही सिद्ध होता है कि शरत्चन्द्र की पत्नी हिरण्मय देवी 'श्रीकान्त' की नायिका राजलक्ष्मी नहीं हैं।

राजलक्ष्मी के अस्तित्व पर पुनः विचार करने से पूर्व यह जानना होगा कि श्रीकान्त स्वयं शरत्चन्द्र ही हैं, अथवा नहीं ? इस विषय पर 'श्रीकान्त' उपन्यास

प्रकाशक, सम्पादक आदि से शरत्चन्द्र उस समय जो पत्र व्यवहार हुआ, इस समस्या पर कुछ आलोकपात कर ता है। अतः उस इतिहास का विवरण तुत है।

शरत्चन्द्र का 'श्रीकान्त' उपन्यास सन् ९१५ के माघ माह से 'श्रीकान्त की त्रा' शीर्षक से धारावाहिक रूप में ला मासिक 'भारतवर्ष' में 'श्री श्री-न्त शर्मा' छद्म नाम से प्रकाशित ना आरंभ हुआ।

शरत्चन्द्र उस समय (१९१६): न में थे और वहीं से वह प्रत्येक माह मैटर 'भारतवर्ष' के सत्ताधिकारी हरिदास चटर्जी को भेजा करते थे। न्होंने अपने एक पत्र में 'श्रीकान्त की त्रा' के सम्बंध में लिखा :–

'श्रीकान्त की यात्रा' वास्तव में 'भारत-र्ष' में प्रकाशन के योग्य है, ऐसा मैंने हीं सोचा था–न अब ही सोचता हूँ। र शायद कोई प्रकाशित करे, इस आशा ही इसे लिखा था...।

यदि आदेश दें तो और लिखूं, और बहुत सी बातें कहने को हैं......। र अन्ततोगत्वा सारी बातें सत्य ही ही जायेंगी।

यह क्या है? श्रीकान्त की आत्मकहानी साथ इसका कुछ सम्बन्ध तो अवश्य ही रहेगा, परन्तु यह मूलतः 'यात्रा' कथा ही है।

'भारतवर्ष' के इन्हीं अंकों में यात्रा सम्वन्धी जो दो अन्य संस्मरण इन्हीं दिनों प्रकाशित हो रहे थे, उनके नाम थे–'योरप में तीन माह' (लेखक–सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी) एवं 'मेरी योरप यात्रा' (लेखक महाराजाधिराज विजयचंद मेहताव)। शरत्चन्द्र ने इन दोनों की आलोचना करते हुए उक्त पत्र में आगे लिखा है :–

'रविबाबू ने अपनी आत्म कहानी लिखी है, पर अपने को उन्होंने किस खूबी से आड़ में रखने की चेष्टा की। जो लिखना नहीं जानते, अर्थात् जिनको लिखने की परख नहीं, चाहे वह कितने ही बड़े लोग हों, उनके लम्बे-लम्बे वृत्तान्त के प्रकाशन में कष्ट तो होता ही है। यह लोग सोचते हैं कि सारी बातें ही मानों कहने की, लिखने की होती हैं। सो यह जो देखते हैं, जो सुनते हैं, उन्हीं बातों को हूबहू सुनाने बैठ जाते हैं। जो वास्तविक चित्रकार नहीं वे तूलिका हाथ में लिए जो कुछ देखते हैं, उन्हीं का अंकन करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु अपने दीर्घकालीन अनुभव के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जो वे सोचते थे, वह ग़लत था। बहुत-सी बड़ी-बड़ी चीज़ों को निकाल देना पड़ता है, बहुत

कुछ कहने का लोभ संवरण करना पड़ता है—तव कहीं सार्थक चित्र का सृजन होता है। क्या लिखें अथवा क्या आँकें ? इससे भी महत प्रश्न है, क्या नहीं लिखें ? क्या नहीं आँकें ? सार्थक साहित्य व शिल्प के सृजन के लिए वहुत कुछ आत्म संयम एवं लोक संवरण करने की आवश्यकता पड़ती है।'

'भारतवर्ष' के स्वत्ताधिकारी श्री हरिदास चटर्जी को लिखे, प्रस्तुत पत्र में शरत्चन्द्र की यह दो पंक्तियाँ विशेष महत्व की हैं :—

...'पर अन्ततोगत्वा सारी वातें सत्य ही कही जायेंगी।'

'...श्रीकान्त की आत्म कहानी के साथ इसका कुछ सम्बन्ध तो अवश्य ही रहेगा...।'

इन दोनों पंक्तियों के साथ जव हम शरत् के इन शब्दों को कि 'रवि वावू ने अपनी आत्म कहानी लिखी है और उन्होंने अपने को किस खूबी से आड़ में रखने की चेष्टा की है' का कार्य-कारण सम्वन्ध स्थापित करते हैं, तो स्पष्टतः पता चलता है कि 'श्रीकान्त' उपन्यास के परदे के पीछे स्वयं लेखक शरत्चन्द्र वोल रहे हैं।

वंगला के वयोवृद्ध कवि, कवि शेखर कालिदास राय के शरत्चन्द्र से यह पूछने पर कि 'श्रीकान्त' उपन्यास में उनकी अपनी कथा कितनी है ? शरत् ने उत्तर में कहा था—जीवन और उपन्यास में घटनाओं का आगापीछा के साथ उनकी अपनी कथा कुछ तो 'श्रीकान्त' में है ही। उन्होंने कालिदास जी को यह भी वताया था कि जीवन की किसी घटना को साहित्य के स्तर पर लाते समय कभी खण्ड-खण्ड घटनाओं को सम्वद्ध करने, अथवा पूर्ण रूप से कहानी का रूप देने के लिए कल्पना का सहारा तो लेना ही पड़ता है। शरत्चन्द्र ने एक उदाहरण देते हुए कहा—

'तुम शिक्षक हो। मान लो तुम एक विद्यार्थी को 'अपना गांव' विषय पर एक निवन्ध लिखने को कहते हो। मान लो उसके गाँव में न कोई नदी है, न कोई मंदिर, पर नम्वर उसे अवश्य ही प्राप्त करने हैं। अव सोचो वह क्या करेगा ? आसपास के गांवों में जो नदियाँ या मन्दिर आदि उसने देखे हैं, उन्हीं को अपने गाँव से सम्वद्ध करता हुआ वह 'अपना गांव' नामक निवन्ध लिखेगा। तव ही तो तुम उसे नम्वर दोगे ? साहित्य के सम्वन्ध में भी वही वातें लागू होती हैं।'

वंगला के सुप्रसिद्ध आलोचक श्री मोहितलाल मजुमदार ने 'श्रीकान्त' को शरत्चन्द्र की आत्म कहानी मानते हुए अपनी विख्यात पुस्तक 'श्रीकान्त' के

रत्चन्द्र की भूमिका' में लिखा है कि ने श्रीकान्त की जबानी शरत्चन्द्र की आत्मकहानी पढ़ी...। उपरोक्त तथ्यों के आधार और परिप्रेक्ष्य में यह निः-सन्दिग्ध रूप से माना जा सकता है, कि श्रीकान्त शरत्चन्द्र के स्वयं की आत्म-कहानी तो है, परन्तु साहित्य स्तर पर लाने के लिए यथास्थान उन्होंने जीवन के 'कच्चे माल' पर कल्पना की तूलिका का एक हल्का सा स्पर्श भी फेर दिया है।

राजलक्ष्मी की वास्तविकता पर विचार करने के निमित अब शरत् की आत्म-कहानी 'श्रीकान्त' में वर्णित घटनाओं, स्थितियों व पात्रों के अस्तित्व की खोज शरत् के जीवन की उपलब्ध सामग्री में करनी होगी।

सर्वप्रथम 'श्रीकान्त' के बचपन के सायी इन्द्रनाथ को ही लीजिए। इन्द्र-नाथ 'श्रीकान्त' उपन्यास का एक सशक्त मुख्य युवक पात्र है। इन्द्रनाथ पात्र के चरित्ररूप के निर्माण पर दो मत हैं— प्रथम शरत्चन्द्र के मामा सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय का और दूसरा शरत् की जन्मभूमि देवानंदपुर गांव के द्विजेन्द्रनाथ दत्त मुंशी का।

सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय का कहना है कि राजेन्द्रनाथ मजुमदार को देखकर शरत् ने 'इन्द्रनाथ' की कल्पना की थी। राजेन्द्रनाथ मजुमदार भागलपुर निवासी थे और शरत् के पड़ोस में ही रहते थे। जहां शरत् का बचपन भी बीता था। और इसलिए भी राजू अथवा राजेन्द्रनाथ की 'इन्द्रनाथ' की प्रकृति का मनुष्य था। राजेन्द्रनाथ ही 'इन्द्रनाथ' पात्र का आधार है, ऐसा सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय मानते हैं। दूसरी ओर शरत् की जन्मभूमि देवानन्दपुर गाँव के श्री द्विजेन्द्रनाथ दत्त मुंशी का कहना है कि 'इन्द्रनाथ' की कल्पना शरत्चन्द्र ने सतीशचन्द्र भट्टाचार्य को देखकर की थी। सतीशचन्द्र श्री सिद्धे-श्वर भट्टाचार्य के छोटे भाई थे, जो 'बंगला छात्रवृत्ति स्कूल' के बंगला भाषा के अध्यापक थे और जिनके सम्पर्क में युवक शरत्चन्द्र तब आये, जब वह उक्त स्कूल के छात्र थे। यद्यपि 'इन्द्रनाथ' पात्र के रूप-निर्माण के सम्बन्ध में दो भिन्न-भिन्न मत अवश्य हैं। बावजूद इसके इतना अवश्य माना जा सकता है कि राजेन्द्रनाथ और सतीशचन्द्र नामधारी दो यथार्थ जगत के व्यक्तियों के व्यक्तित्वसिम्तों (पर-सोनैलिटि ट्रेट्स) के आधार पर शरत् बाबू ने इन्द्रनाथ की रूपरेखा की कल्पना की होगी।

अन्नदा दीदी 'श्रीकान्त' की एक अन्य नारीपात्र हैं। शरत् बाबू ने स्वयं कई एक बार अपने मुंह से सुरेन्द्रनाथ गंगो-पाध्याय को अन्नदा दीदी के वास्तविक अस्तित्व के सम्बन्ध में बताया था।

अन्नदा दीदी के सम्बन्ध में द्विजेन्द्रनाथ दत्त मुंशी लिखते हैं :–

'श्रीकान्त उपन्यास के प्रथम खण्ड में अन्नदा दीदी और उनके पति शाहजी नाम के सपेरे की कहानी है। वह देवानन्दपुर के निकटवर्ती सरस्वती नदी के पार के एक गांव की सत्य घटना है। शरत्चन्द्र और सतीशचन्द्र प्रायः अन्नदा दीदी की कुटिया पर आया-जाया करते थे और उनको फल, तरकारी, मछली इत्यादि दे आया करते थे। कभी-कभी तो उनको वे आर्थिक सहायता भी देते थे–इस सत्य को देवानंदपुर निवासी शरत्चन्द्र के वचपन के मित्र 'प्रसन्न ठाकुर दा' के सुपुत्र श्री संतोशकुमार घोष भी दृढ़ता पूर्वक समर्थन करते हैं–जिनका उल्लेख शरत्चन्द्र ने 'श्रीकान्त' के द्वितीय खंड में किया है। 'प्रसन्न ठाकुर' स्वयं एक देहधारी मनुष्य थे, जो अघोरनाथ बंदोपाध्याय के भाई और शरत्चन्द्र के पिता मोतीलाल चट्टोपाध्याय के मामा थे।

'टुबा' के सम्बन्ध में गुजराती के सुप्रख्यात हास्य लेखक क्या कहते हैं?

'मैं गंजेपन का शिकार हो गया हूँ और उत्तरोत्तर और भी अधिक होता जा रहा हूँ।' मेरे किसी लेख में ऐसा पढ़ कर भाई श्री बंदुकवाला ने मुझे उनके तेल 'टुबा' की दो शीशी भेज दी। उन्होंने जोर देकर लिखा था कि दस-बारह शीशी का उपयोग करने से आपको उक्त रोग से मुक्ति मिल जायगी। मेरा तो दृढ़ विश्वास था, एक बार वाल झड़ जाने और गंजापन आ जाने पर पुनः वाल का आना असम्भव है। किंतु जब किसी तेल का उपयोग करना ही है तो यह क्या बुरा? ऐसा समझकर बिना किसी फलाकांक्षा के मैंने पाँच शीशियों का उपयोग कर डाला। इससे गंजापन विशुद्धरूप से समाप्त तो नहीं हुआ, किंतु प्रथम शीशी के उपयोग के वाद ही उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी। आगे चल कर जहाँ एक भी बल नहीं था; वहाँ कहीं-कहीं नये वाल आने शुरू हो गये। ऐसा मैंने ही अनुभव किया हो, यह वात नहीं। मुझे देखनेवालों का भी यही अनुमान था। इससे इतना लाभ होगा, इसकी मुझे किंचित भी आशा नही थी। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निस्संकोच कह सकता हूँ कि 'टुबा' के उपयोग से भले ही संपूर्णरूप से लाभ न हो, फिर भी आपके रोग की प्रगति अवश्य रुक जायगी। साथ ही यह थोड़ा-बहुत लाभ भी पहुँचायेगा।

'टुबा हेयर टानिक' झड़नेवाले वालों को रोकने का एक प्रभावशाली एवं विश्वसनीय इलाज है।

श्री ज्योतीन्द्र ह. दवे

४ औंस की दो शीशिओंका पोस्टेज पेकिंग के साथ दाम रु. ९–०–० मनिआर्डरसे भेजना होगा; वी. पी. से माल नहीं भेजा जाता।

टुबा प्रोडक्ट्स, ९१, भाजीपाला स्ट्रीट, **बम्बई–३.**

'श्रीकान्त' उपन्यास में जिस प्रकार श्रीकान्त अपने घर में न रहकर अपनी चाची के घर में रहते थे, उसी प्रकार शरत्चन्द्र भी अपने घर न रहकर अपने मामा उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय जी के यहां रहा करते थे।

'श्रीकान्त' उपन्यास में श्रीकान्त को कई एक बार साधुओं की मण्डली में योगदान देते देखा गया है, उसी प्रकार शरत्चन्द्र के व्यक्तिगत जीवन में देखा गया है।

अब राजलक्ष्मी की वास्तविकता के सम्बन्ध में उन पंक्तियों को उद्धृत करूँगा, जो श्री द्विजेन्द्रनाथ दत्त मुंशी ने देवानान्दपुर के पुराने व्यक्तियों से जिन तथ्यों का पता लगाकर 'देवानन्दपुर में शरत् का वचपन' नामक लेख में लिपिबद्ध किया। राजलक्ष्मी के सम्बन्ध में इस लेख की यह पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :—

पैरी बन्दोपाध्याय की पाठशाला में शरत्चन्द्र का विद्यारंभ हुआ। यह पाठशाला उनके घर के निकट ही थी। इस पाठशाला में पढ़ते समय शरत्चन्द्र के निकट के जो दो प्रिय साथी थे, वे थे उक्त पंडित जी का पुत्र काशीनाथ और उस गांव के ब्राह्मण पुजारी की भांजी 'राजलक्ष्मी'। यह राजलक्ष्मी नाम की लड़की वयस में शरत्चन्द्र से दो तीन साल की छोटी थी। पर हर वक्त वह शरत्चन्द्र के साथ सखी के रूप में डोला-फिरा करती थी। दोनों में वंधुत्व भाव भी जैसा प्रगाढ़ था, झगड़ा और मान मनोवल भी उसी प्रकार हुआ करता था। शरत्चन्द्र जब प्रथम बार देवानन्दपुर से अपने माता-पिता सहित भागलपुर पढ़ने के निमित्त जाने लगे, तो उस समय यह राजलक्ष्मी भी उनके साथ जाने के लिए काफी रोयी धोयी थी।

...भागलपुर से लौट कर जब शरत्चन्द्र हुगली शहर के स्कूल में भर्ती हुए, तो इसी राजलक्ष्मी के साथ पुनः उनकी भेंट हुई और गांव में उसके साथ घुलमिलकर बैठने का अवसर मिला। ... बचपन की यह सहेली वास्तविक रूप में देवदास की पार्वती और श्रीकान्त की राजलक्ष्मी पात्र में चित्रित हुई है। ऐसा निःसन्देह कहा जा सकता है।

★

पवित्र नारी सृष्टिकर्ता की सर्वोत्तम कृति होती है; वह सृष्टि के सम्पूर्ण सौन्दर्य को आत्मसात् किये रहती है।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

★

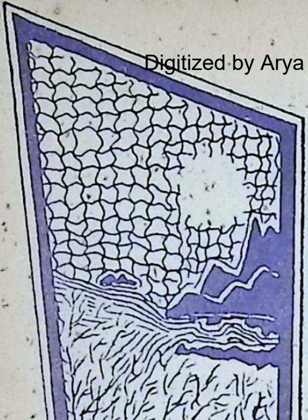

राजेश्वरदयाल सक्सेना

●

समता

जब हरे-भरे झुरमुट सूख जायेंगे,
कंकालों की छाया रेखा-चित्रों में उलझ जायेंगी,
उषा की कोमल अरुणता श्वेत पड़ जायेगी,

संध्या,
काल-पट-क्रम को बदलेगी,
ये शैल-श्रेणियाँ योग-साधना की
शान्ति में, तपस् सत का पालन करेंगी,
निशा के अन्धकार में गहराई और रिक्तता आयेगी,
चन्द्र-ज्योत्स्ना भारहीन हल्की पड़ जायेगी,

तब,
क्षितिज की लम्बी डोरी पकड़ कर
जो बढ़ जायेगा,
लालसा-प्रगति के झरोखों से
मन की आप्त भावनाएँ
झाँक कर देखेंगी, समरूपता
दर्द बँट जायेगा
सूखे तन मन का,
भूमा के अनुभव में।

●

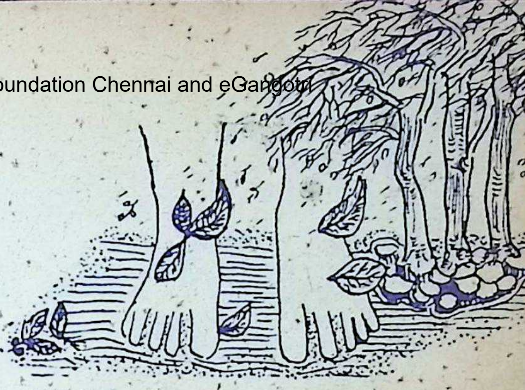

भारत रत्न भार्गव

●

प्रपंजित आस्था का दर्द

आँधी में टूटे हुए पत्तों का शोर
कि क्षण-क्षण वृक्ष हमसे भाग जाते दूर,
और दूर ।

वातावरण को
मटियाले कम्बल से जकड़ दिया अंधड़ ने ।
रेतीले छोटे-बड़े अनास्था के कण
सबकी पलकों पर साँकल चढ़ाते हैं ।

कुंठित, बेचैन,
बिखरती हुई भीड़ का चीत्कार ।
न सांझ, न दुपहर, न रात,
यह क्या है ?
गति ने मान ली काल से हार !

संक्रमण !
एक 'ह्विशस सर्किल' में घिरे हुए प्राण !
या विपर्यय !...

मैं अंगदीय पावों से खड़ा हूँ,
आँधी के समुद्र में बेखटके तैरता हूँ ।
छोटे-बड़े पत्तों का कागज़ी अस्तित्व
मेरे पैरों से लिपट गया है शरण खोजता हुआ ।

किन्तु, कौन करता है
रह-रह कर मेरी दृष्टि तोड़ने की कुचेष्टा ?
रेतीली गंध, साँसों में धँस जाने को व्याकुल,
रंध्र-रंध्र मेरे टूटते हैं, फैलते हैं, बिखरते हैं !

ओ, ज्योतिपुंज ! उमगो, दृष्टि दो, सुझाओ;
मुझे नहीं–
इस बेचारी आँधी को रास्ता दिखाओ ।

●

प्रभाकर द्विवेदी

मेरे स्वामी : मेरे लाल !

मेरे देवता, तुम आ गये मेरी गोद में ? तो क्या तुम्हारे चरणों में झुकूं, अपने शीश को नत कर दूं ? या तुमको आँचल की ओट कर लूं ! कहीं दीठ न लग जाये ? तुमको अपने आसरे में लेलूं । पहले मैं तुम्हारे आगे नमित थी, पर अब तो बुद्ध को ही गोपा के आसरे में आना है... । क्या कह कर पुकारूँ तुम्हें ? मेरे स्वामी ! मेरे लाल ... !

विधवा शांता ने किवाड़ के समीप ही छोटे लाला की धीमे स्वर में कही हुई बात सुनी, तो वह स्तम्भित रह गयी कि आज फिर वही बात ! व्यथा के वोझ से झुक गयी दृष्टि से उसने अपने उभरे पेट को देखा और फिर वहाँ से लौट पलँग पर गिरकर फ़फक-फ़फक कर रो पड़ी वह।

उसका हृदय वहुत ही कोमल और भावुक था। उसका वचपन दरिद्रता से दूर गाँव में बीता था, जहाँ फूलों की रंगीनी में शांति से विचरना और तितलियों से बातें करना ही उसने सीखा था। शहर की ससुराल में आर्थिक अभावों के अंधड़ों से अपरिचित ही रहकर उसने भावात्मक पुस्तकों को अपनी सहेली वना, अपने को कवि-हृदया वना लिया था। इससे उसके हृदय की अनुभूति ग्रहण करनेवाली प्रवृत्ति वहुत तीव्र हो गयी थी।

हवाई जहाज़ की दुर्घटना में पति का स्वर्गवास हो जाने के वाद, उसकी आदत सी हो गयी थी कि वह उनके चित्र के सम्मुख खड़ी होकर अकेली ही वाणीहीन भाषा में बातें किया करती थी। देखते ही देखते उसकी आँखें सजल हो जातीं और वेदना से हत–सा होकर उसका गात्र सिहर उठता। उसे जाने कैसा अभाव-सा प्रतीत होता और लगता कि जैसे विकलता अपनी विकराल बाँहों में उसे कसे ले रही है। पति की स्मृति से उसे व्यथा-सी होने लगती, पर अपनत्व के कारण उस व्यथा से ही उसे प्रीति सी

हो चली थी। तब भी वह उससे बचना चाहती थी और उसे परे रखने के लिए, एकांत से बचने के लिए, वह अपने आपको परिवार के अन्य सदस्यों के कार्य-कलापों में मिला देने की चेष्टा करती।

इसी से जब उस दिन उसने सुना था कि देवर जी ननद के साथ सिनेमा जा रहे हैं, तो उसने ननद को बुलाकर कहा था कि छोटे लाला से पूछ लो, मैं भी चलूं ? वह बगल के कमरे में पूछने गयी, तो वह भी पीछे-पीछे वहीं चली गयी थी, किन्तु बाहर किवाड़ के पास ही ठिठक गयी थी। छोटे लाला ननद जी से कह रहे थे–"मैं उन्हें साथ नहीं ले चलंगा। देखती हो, उनका पेट कैसा घड़े जैसा फूला हुआ है और चेहरा सरसों जैसा पीला हो गया है। लोग देखकर हँसेगे तो मेरी भद्द होगी"।

यह सुनते ही उसने अपने को संभाल लिया और कई दिन पहले की भी बातों को स्मरण कर उसने मन ही मन देवर जी से जैसे कहा कि कभी आप ही कहते थे, "भाभी, तुम तो कविता के समान हो। कवि की कल्पना के समान हो और कल्पना की परियों के घुँघुरुओं की रुनुन-झुनुन सिंजन के समान हो।" वही मैं अब इतनी खराब हो गयी हूँ कि मेरे साथ जाने से आपकी भद्द होगी?

फिर मन में पति की एक मूर्ति सी बना वह मूक वाणी में ही कहने सी लगी–"स्वामी, लोगों को मैं अच्छी नहीं लगती हूँ। लोग मुझसे दूर रहना चाहते, हैं। मुझसे बातें नहीं करना चाहते, क्योंकि मैं उनकी बातों में अपनी परेशानी के कारण रस नहीं ले पाती हूँ। जिसे देखो वही मेरी बदली हुई शक्ल पर ही दौड़ जाता है। मैं सबकी उपेक्षा की पात्र हो गयी हूँ, इसलिए कि मैं शीघ्र ही किसी वच्चे की माँ बनने वाली हूँ। हाय! क्या मातृत्व को प्राप्त करना इतनी बुरी बात है ? ईश्वर ने क्यों नारी को ऐसा अभिशाप दिया है कि जिस तक पहुँचने के लिए लोगों का मुंह बिचकाना और उपेक्षा को अपनाना पड़ता है ?

"मेरे देवता, तुम होते तो क्या इस प्रकार की बातें सम्भव थीं ? क्या तुम भी मुझे ठुकरा देते ?"

किन्तु उसका प्रश्न अंतर में उपज, अंतर में ही समाधिस्थ हो गया। उत्तर तो दूर की बात है, वैसे भी उस प्रश्न का उत्तर कहाँ से मिलता ? प्रश्न ऐसे

व्यक्ति से किया गया था, जो संसार में ही नहीं था। जो अब कभी भी उसके निकट नहीं आ सकता। जो अब उससे बहुत दूर था, बहुत दूर—था भी या नहीं इसमें भी सन्देह है।

प्रश्न के कटु उत्तर का जब उसे भास हुआ, तो वह कसक से भर कर रह गयी। हृदय में व्यथा छलक पड़ी और आँखें सजल हो गयीं और तकिये के ऊपर गिरकर सिसकने लगी वह। आँसुओं ने उसके जी की पीड़ा को कुछ हल्का कर दिया और उसी सांत्वना में उसकी आँखें लग गयीं। उसने देखा कि उसके बिल्कुल सामने खड़े होकर स्वामी मुस्करा रहे थे। वही पहले जैसी किंचित् हास जनित मुस्कान की रेखा अधरों पर खिंची हुई थी। उसने देखा तो देखती ही रह गयी। नयन भर आये। स्वामी ने उसकी ठोड़ी पकड़कर मुखड़ा ऊपर उठाते हुए कहा—"पगली, रोती है !"

सुखद स्पश पा अंतर के पुलक से भर वह सिसक उठी और बोली—"तुम कहाँ हो ?"

"तुम्हारे पास ही तो हूँ !" कह वे अदृश्य हो गये ! वह आँखें फाड़े देखती ही रह गयी। कहीं भी वे नहीं थे। अंतर की पीड़ा से विकल होकर उसने कसकर अपनी ही बाँहों से अपने आपको बाँधने की चेष्टा की। नयन मूंद आँसुओं को रोकना चाहा। और चाहा कि उन्हें भूल, वेदना को भी विस्मृत कर जाय।

किन्तु जाग्रतावस्था में आकर उसने देखा कि वह अपने बाँहों में तकिया कसे हुए थी। क्षण भर का वह दर्शन भी स्वप्न बन कर रह गया। बड़े पलँग पर अपने आपको अकेली पाकर उसका मन भर आया और सूनी सेज देख-देख कर सूनासूना लगने लगा। दीवाल पर जहां स्वामी का चित्र टंगा था, उसी का अनुमान लगाकर अँधेरे में उसने टकटकी लगा दी, किन्तु अँधेरा ही अँधेरा ! अँधेरे में अँधेरे के अतिरिक्त और क्या हाथ आता ? फिर चित्र तो चित्र ही रहेगा। जड़-पदार्थ से क्या उसके मन की कमी भर पाती ? जब वे स्वयं ही इस जगत में नहीं थे, तो उनकी स्मृति से क्या होना था ? वह सोचने लगी कि आह ! मेरे देवता, क्षण भर का वह दर्शन, वह सम्भाषण कितना सुखद था। काश वह स्थायी हो पाता !

फिर जैसे वह प्रश्न सी करने लगी, "आह, मेरे स्वामी—पूज्य स्वामी, तुम क्यों चले गये ? क्षण भर की वसन्तश्री के समान अपनी शोभा का दर्शन करा कर तुम कहाँ चले गये ? इश्कपेचा के सुमन की भाँति क्या तुम्हारा जीवन भी एक विशेष परिधि में बँधा हुआ था ? परमेश्वर का यह कैसा अभिशाप था कि तुम

ते इतनी दूर हो गये, जितनी संसार की कोई भी दो वस्तुएँ नहीं हो सकती हैं!

काश, मुझे प्रतिदिन स्वप्न आया करते। इसी बहाने मैं तुम्हें अपने पास पाती। किन्तु नहीं, यह सब भुलावा देने की बातें हैं। सत्य यही है कि तुम मुझसे दूर हो, बहुत दूर!"

वह वैसी ही बैठी-बैठी सोचती रही, सोचती रही—एक ऐसी अबाध और सरल गति में, जो हृदय में पीड़ा उत्पन्न होने के पश्चात् भावुक तर्कों के साथ स्वयमेव आ ही जाती है।

उसे याद आया वह दिन, जब विश्वविद्यालय में कन्वोकेशन के दिन नुमाइश देखने वह गयी थी। वहाँ पर आई. टी. कालेज की, तितलियाँ वनीं लड़कियों ने उसे वस से कुछ कष्ट के साथ उतरते हुए देखा, तो वे खिलखिला कर हँस पड़ीं। उसने झेंप कर दृष्टि नीची कर ली, तो पेट के उठे हुए भाग पर वह चली गयी। देखकर मन में रोष सा आ गया। सोचा कि कहे, "लड़कियो, कुछ दिन पश्चात् तुम्हें भी इसी दशा में पहुँचना है, हँसो मत।"

किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। नयनों में आँसू आते-आते वाष्प वन गये।

और वह सोचती रही कि क्या स्वामी भी मुझको देखकर इसी तरह हँसते। क्या वह अपनी अर्द्धांगिनी को रूप एवं सौन्दर्य से परे हटते देखकर उससे घृणा करने लगते। नहीं, नहीं, मैं कुतिया भी हो जाती, फिर भी वे मुझे न ठुकराते। वे मेरे जीवन साथी थे। मेरे माँझी—मेरे प्रिय......

किन्तु इस 'थे' क्रिया के विकराल हास्य को कैसे दूर फेकूं? वे तो मुझसे दूर हैं, बहुत दूर। सुनती थी कि विधवाओं को हिन्दू समाज में आर्थिक कष्ट भोगन पड़ते हैं। मैं सम्पन्न हूँ, इससे इन कष्टों से दूर हूँ। पर आह, न जाना था कि कोई मुझे जो मैं चाहती हूँ, वह देने वाला न होगा। मैं क्या चाहती हूँ? नहीं जानती। पर वे अवश्य जानते होते। मेरी इस पीड़ा को, इस कसक को वे अवश्य समझ जाते। सेमर के फल की नाईं मेरे हृदय को वे अन्दर पक कर छिटक न जाने देते। वे तो उसे तभी से सँजोते आये थे, जब वह लाल-लाल कली के ही रूप में था। वे उसकी मखमली रुई को वचा कर रखते।

पर कहाँ? वे हैं कहाँ? उनकी छाया भी नहीं। उनका अस्तित्व भी नहीं। वे तो दूर हैं, बहुत दूर—बहुत दूर! कदाचित हैं ही नहीं! दूर का प्रश्न ही नहीं।

जाने कैसी कसक से वह भर उठी और

उसकी स्मृति के आगे अँधेरा छा गया !

दूसरे ही दिन उसने माँ को गांव पर पत्र लिखा कि मुझे वहाँ बुलवा लीजिए और कुछ ही दिनों में भाई आकर लिवा ले गये।

गाँव में शहर की चहल-पहल से दूर कुछ शांति उसे मिली। मन को थोड़ा सहारा मिला। शारीरिक तन्द्रामयी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। उठना-बैठना भारस्वरूप हो गया था। लगता कि कितना बोझ ऊपर लदा हुआ ह और अन्दर कितनी गर्मी है। फिर भी कुछ शान्ति मिल रही थी।

एक दिन गाँव के कुछ लड़के सियारों की माँद में से दो बच्चों को पकड़ लाये। उन लोगों ने उन्हें पटक-पटक कर बेदर्दी से मार डाला। उन बच्चों का तड़फना देख कर शान्ता को सिहरन सी होती थी। उसके बाद उसने देखा कि सियारिन 'कुरूं कुरूं' करती हुई इधर-उधर फिरती थी। लड़के उसका पीछा कर रहे थे। कुत्ते भी लगे थे। फिर भी वह बेकल हुई इधर-उधर रोती फिरती थी। उसे देख कर मन में बड़ी व्यथा लगती थी। रात में बड़ी देर तक शान्ता की स्मृति के आगे उसी सियारिन की शक्ल नाचती रही।

उसके दूसरे दिन संध्या को गाय ब्यायी। शान्ता ओसारे में से देख रही थी। बाड़े में प्रसव-पीड़ा से व्याकुल गाय पड़ी थी। लोग तेल आदि लिये जुटे थे। प्रसव के बाद उसने गाय की बेचैनी देखी। गाय की आँखों में बड़ी निश्छलता झलक रही थी। ऐसी निश्छलता उसने किसी बच्चे की आँखों में भी नहीं देखी थी।

जब लोग बछड़े को उठा कर बाड़े के बाहर लाने लगे, तो गाय छटपटा उठी। वह बेकली से सिर हिला-हिला कर रस्सी तुड़ा कर बच्चे के पीछे भागना चाहती थी।

यह देख, वह सोचने लगी कि परमात्मा ने यह कैसी लीला रची है। यह कैसा सम्बन्ध स्थापित किया है। यह कौन सा, किस प्रकार का लगाव है, जो समस्त जीवों में माताओं को अपनी संतानों से होता है।

ईश्वर ने यह कितना बड़ा और उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य प्रेम के रूप में नारी को सौंप दिया है।

जैसे-जैसे दिन निकट आते जा रहे थे, उसके मन में तरह-तरह के नये-नये विचार उत्पन्न होते थे। पता नहीं किस अदृश्य के प्रति एक आकर्षण की अनुभूति हृदय में वह महसूस करती थी। लगता कि जैसे कहीं दूर आकाश के अंचल के पार से कोई हाथ हिला-हिला कर कुछ कह रहा हो ! वह जो भाषाहीन शैली में अपनी बात प्रगट कर रहा होता,

जैसे उसका आसरा माँगता। प्रतीत होता कि वह उससे बहुत महान् है, किन्तु फिर भी वह जैसे आगे झुक सा रहा है। और उसका भी मन कहता कि उसे आँचल की ओट कर ले। कभी-कभी वह सोचती कि यह कैसी अनोखी बात है कि जिस आँचल की लज्जा को स्वामी के ही चरणों में लोटने का अधिकार था, वह अब जैसे किसी और के हाथों पहुँचने वाली है। कहीं यह स्वामी के लिए संजोये गये पवित्र भावों के प्रति अविश्वास तो नहीं होगा ?

एक और बात थी। पहले भगवान कृष्ण, प्रभु यीशु और शिवाजी के प्रति जो श्रद्धा के भाव उठते थे, वे अब श्रद्धा से परे हट कर किसी और ओर जा रहे थे। श्रद्धा रहने पर लगता था कि वे जैसे अपने से बहुत ऊंचे हैं—बहुत दूर हैं। पर अब लगता था कि वे जैसे अपने में ही बसे हुए हैं।

उस दिन साँझ से ही उसका जी जाने कैसा-कैसा हो रहा था। रात में नींद नहीं आती थी और चैन उड़ जाता था। स्वामी की स्मृति भी जब-तब आ जाती थी। उसने माँ से कहा, तो उन्होंने हल्की-हल्की तेल मालिश का प्रबन्ध करा दिया। फिर भी पीड़ा कम नहीं हुई। बढ़ती ही गयी।

आधी रात को तो ऐसा लगा कि जैसे प्राण ही निकल जायँगे। लगता कि जैसे कोई पेट के ऊपर कचोट रहा हो। वह समझ ही नहीं पाती थी कि उसे कैसे प्रकट करे। उसको विश्वास हो गया कि अब मृत्यु का समय आ गया। उसने जान लिया कि अब स्वामी से मिलने का समय निकट आ गया। वे जहाँ भी होंगे—स्वर्ग में या नरक में, उनसे जा मिलूंगी। बीच की दूरी समाप्त हो जायगी। यह तो एक अस्थायी दूरी आ गयी थी। फिर भी मरने से भय लगता था और जीने की इच्छा होती थी।

जब पीड़ा बहुत बढ़ गयी, तो वह जैसे बदहोश-सी हो गयी।

दाई ने कमर के नीचे हाथ डालकर सहारा दिया। उसी समय वह चैतन्य हो गयी और लगा कि जैसे कोई तेज पुंज हृदय को बेधकर पेट में समा रहा है।

दूसरी दाई पेट को सहारा देकर हल्के-हल्के सहला रही थी। बगल की स्त्रियाँ स्तब्ध खड़ी थीं। शान्ता के मुंह से—"दैया री, आह माँ! आह माँ!!" निकल रहा था। तभी उसे लगा कि जैसे उदर शूल चरम सीमा पर आ गया। दाई ने पैर पकड़ कर सँभाल-सँभाल कर चारपाई से लगा दिया। उसने करवट बदलनी चाही। क्षण भर के लिए उसे कुछ कष्ट और मिला, फिर वह चरम सीमा से कुछ नीचे उतर आया। पेट हल्का प्रतीत हुआ। भार उतरा हुआ सा लगा।

जहाँ केवल सर्वोत्तम ही स्वीकार है...

परिवार के लिए माँ की पसंद डालडा

मुन्ना ललचाये...माँ फूली नहीं समाये! यह है ममता और स्नेह से बनाये भोजन का चमत्कार, जिस की सामग्री मां स्वयं चुनती है—शुद्ध और सर्वोत्तम, जैसे कि डालडा! शुद्ध वनस्पति तेलों से बना डालडा, मुहरबंद डिब्बों में सदा शुद्ध और ताजा मिलता है। और डालडा में विटामिन हैं जो बढ़ते हुए बच्चों के लिए जरूरी हैं। जी हाँ, आप का परिवार डालडा का हक़दार है!

डालडा वनस्पति एक विशेष, शुद्ध चिकनाई

DL. 80-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

डालडा
वनस्पति
विटामिन ए और डी युक्त

पीड़े के मारे अपने जिन नयनों को उसने मूंद लिया था, वे अपने आप खुल गये। उसकी इच्छा होने लगी कि नीचे नी ओर देखे। उठकर बैठ जाय। लगता था कि हाथों की पकड़ के घेरे में कुछ था, जो छूट गया है। उसे कुछ सूना-सूना लगा। वह क्या चाहती थी। इसका पता उसे स्वयं ही नहीं लग सका।

तभी उसने करवट बदली। नाइन ने झुकक्र वगल में कुछ रख दिया। गरदन नीचे की ओर झुका कर उसने देखा, तो उसे अपना समस्त आकर्षण बिन्दु, स्नेह-केन्द्र सिमटा सा दिखायी दिया। भगवान कृष्ण, प्रभु यीशु और शिवाजी अपने आप में ही जैसे समा से गये। समस्त पीड़ा, समस्त वेदना, भूल-भटक कर मूर्त्त रूप में आ गयी थी—अनुपम रूप धारण कर के।

शांता के मुँह से– "ओ माँ! ओ माँ!!" निकल रहा था। पर क्या वह किसी की– माँ की–शरण जाना चाहती थी? नहीं, नहीं वह चाहती थी कि कोई कहे– "ओ माँ, ओ माँ!" और तब वह उसे निहार, अपने नयनों का स्नेह उड़ेल दे।

वह हाथ के सहारे से उस तेजपुंज को, अपनी अभिलाषाओं के साकार रूप समाप्त कार्य-कलापों के मूर्त्त रूप को अपनी लज्जा के पास ले आयी। दूध उतर आया।

शांता विमुग्ध हुई उसे देखने लगी, ध्यान से देखा। उसे लगा कि–और वह मन ही मन जैसे हर्ष से भर उठी– अरे, यह तो मेरे स्वामी तुम्हीं हो! तुम मेरे देवता, तुम आ गये! तुम मुझसे दूर कहाँ हो? तुम तो मेरे पास हो। यह कैसा मन में बस गया था कि तुम मुझसे दूर हो। तुम तो बिल्कुल पास में हो, मेरे पूज्य स्वामी!

तो क्या तुम्हारे चरणों में झुकूँ, अपने शीश को नत कर दूँ?

या तुम को आँचल की ओट कर लूं। कहीं दीठ न लग जाय? तुमको अपने आसरे में ले लूं। पहले मै तुम्हारे आगे नमित थी, पर अब तो बुद्ध को ही गोपा के आसरे में आना है।

हाँ ठीक ही तो है। तुममें मुझमें दूरी ही कैसी, देवता?

मेरे स्वामी!

मेरे लाल!!

★

यौवन, तेरी आशाएँ कितनी प्रेरक होती हैं! सूर्यमुखी पुष्पों की भांति वे भी सदा आलोक पक्ष की ओर उन्मुख रहती हैं। —जीन एंजिलो

★

आनन्द भैरव शाही

●

विगत, और यातनाओं का राजमार्ग

शिलालेखों के बुझे अक्षर;
और, मुठ्ठी में भरा रेडियम—
इन्हें क्या करूँ ?
ऐतिहासिक स्थलों के पेशेवर परिचायक
कोई अर्थ नहीं सुझाते।
मैंने हर युग के भग्नावशेष पर उँगलियों के
टहोके लगाये—
गुजरे जमानों के दुभाषिये
अब अबोल हो चले।
अतीत की प्रज्वलित मशालों—
और हमारी इन भगीरथी चेष्टाओं के
दर्म्यान
आँधियों, सैलाबों के षड़यंत्र,
आतंकास्पद कानाफूसियाँ,
लू की उसाँसें हैं।
एक दर्द—इसी उत्कीर्ण-अभिलेख-सा
छाती पर नक्श है।
भागते युग की वल्गा को थाम लेने की
कोशिश में
फँसे हाथों रास्ते पर घिसटते
छाती के अक्षर मिट रहे हैं
मुट्ठी का रेडियम बिखर चला है;
किन्तु, मुक्त होने की उलझन में
निकले रुधिर से, उन्हीं शिलालेखों के
महाभाष्य
लिखता जा रहा हूँ, जहाँ तहाँ—
काल के राजमार्ग पर।

रॉबिन शॉ पुष्प

●

गिरती बर्फ़ और जूड़े में खोंसी एक शाप

मैंने तुम्हें– आँखों से छू लिया...
कि जैसे, कोई गन्धवती हवा
झाड़ी से उलझ गयी,
कुछ वैसे ही....मेरा स्पर्श भी ।

●

जैसे कोई आवाज़—
गन्तव्य तक पहुँचते-पहुँचते
किसी दूरी में, दूसरी तरफ बहक गयी....
या फिर–कोई थकी-हारी हिरनी
बीच जंगल में भटक गयी,
तुममें ....कुछ वैसे ही
मेरा मन भी..... ।

●

जैसे किसी इमारत पर—
मंज़िल-दर-मंज़िल बनती गयी. ..
और फिर पूरे का पूरा मकान
नींव की कमजोरी से बैठ गया.....
कुछ वैसे ही मेरे सपने भी....।

●

लेकिन तुमने जो मेरे जूड़े में...
एक शाम खोंस दी थी,
वह कहीं गिर गयी, सूख गयी ....
या फिर उसी सर्पीली शाम ने मुझे डस लिया....

●

और आज मैं एक-एक कर,
बिखरे सपनों को चुन-चुन कर,
सपनों का झालर बुनती हूँ...
आँखों में दूर-दूर पड़ी...अलग-अलग ....
अकेली सुनसान. .सड़कों-सी डोरियों को–
आपस में उलझाती हूँ,
कि एक सूत में तुम. . एक सूत में मैं. .
गिरती बर्फ़ों के बीच...
ख़ामोश-अकेली सड़क-सी ढंकी-ढंकी मैं . .।

पृथ्वीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

धरती के कवि, सैं-जॉन पैर्स

नोबल-पुरस्कार विजेता फ़्रेंच महाकवि सैं-जॉन पैर्स ने धरती की माटी के स्पर्शों, स्पन्दनों और संवेदनों को जिस गहराई और सूक्ष्मता से अनुभूत किया और अपनी कविता में शब्दायित किया, वह उस नव-अध्यात्म चेतना का सूचक है, जो आधुनिक मानव-आत्मा के क्षितिज पर इस घड़ी उदय की पूर्वाभा के रूप में झलक रही है।

वेस्ट इंडीज, फ्रांसीसी उपनिवेश ग्वाद् लॅप। आज से तिहत्तर वर्ष पूर्व जिस लड़के ने यहाँ जन्म लिया, उसे ही उन्नीस सौ साठ में स्वीडिश अकादसी ने प्रवीण कवि के रूप में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया है। फ्रांस का एक परिवार उन्नीसवीं सदी के अंत में इस फ्रांसीसी उपनिवेश में वसने पहुँचा। शिशु कवि पैर्स जिनका असली नाम अलेक्सी सैं लेज़े लेज़े है, इस उपनिवेश में दुनिया की तमाम जातियों से कुछ दिनों में ही परिचित हो गये– नीग्रो, चीनी, जापानी, भारतीय, श्वेत जातियां और रेड इन्डियन। मानवता के इस संगम स्थल में शिशु कवि ने कौतूहल भरी आँखों से उद्घाटित करना शुरू किया मानव चरित्र। तभी अट्ठानवे में उन्हें फ्रांस लाया गया। वहाँ कुछ समय पढ़ना-लिखना सीखने के वाद उन्होंने सामरिक शिक्षा के लिए सैन्य विभाग में योगदान किया। शिक्षा के अंत में उन्होंने बोर्दो (Bordcan) जाकर कानून, विज्ञान और साहित्य पढ़ना शुरू किया। उनका सबसे प्रिय दार्शनिक हुआ, प्राचीन ग्रीस का हिराक्लिटस। कुछ दिन वाद राष्ट्रनीति का अध्ययन करके उन्होंने फ्रांसीसी परराष्ट्र विभाग में योग दिया और फ्रांसीसी राजदूत के सचिव के नाते पेकिंग गये। परवर्त्ती, पाँच वर्षों में उन्होंने खूब भ्रमण किया। चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, मलय, पालीनेशिया

भ्रमण करने के वाद वे पेकिंग वापस आये। एक बार गोवी (सहारा) मरुभूमि से वापस आकर एक छोटे चीनी मन्दिर में बैठकर उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ काव्य अनावाज़ (Anabase) लिखना शुरू किया, जिसे अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि टी. एस. इलियट ने अंग्रेजी में सन् उन्नीस सौ तीस में अनूदित किया। सुदूर प्राच्य के सम्बन्ध में विशेषज्ञ के रूप में उन्नीस सौ इक्कीस में अंतर्जातीय सम्मेलन में योगदान करने के वाद धीरे-धीरे कवि-राजनीतिज्ञ की पदोन्नति हुई और उन्हें उन्नीस सौ तैंतीस में फ्रांस का राजदूत वनाया गया। फिर सन् उन्नीस सौ चालीस तक वे फ्रांसीसी परराष्ट्र विभाग के मुख्य सचिव रहे। महायुद्ध के समय सन् उन्नीस सौ चालीस में वे इंगलैण्ड होते हुए न्यूयार्क पहुँचे। शत्रुओं ने उनके पेरिस के घर की तलाशी करके पायीं, सात पूर्ण काव्यों की पाण्डुलिपियाँ। सन् उन्नीस सौ इकतालीस में वे वाशिंगटन में पुस्तकालय कांग्रेस के परामर्शदाता नियुक्त हुए। इसके वाद प्राप्त जानकारियों के अनुसार सैं-जॉन पैर्स सन् उन्नीस सौ अट्ठावन तक यूरोप नहीं आये, किन्तु मार्किन परिवेश में पूर्णतया रह कर भी कवि अपनी समग्र सत्ता में शुद्ध फ्रेंच ही वना हुआ है।

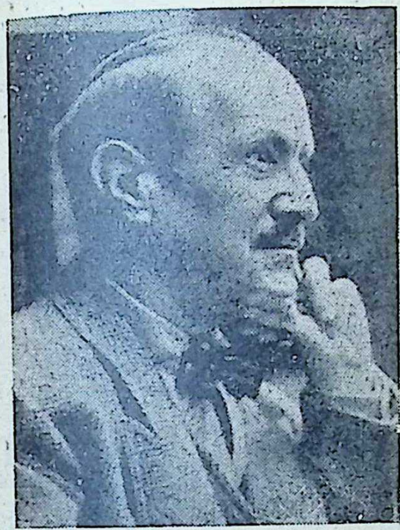

सैं-जौन पैर्स

सैं-जॉन पैर्स समृद्ध और सटीक शब्दावली के कवि हैं। इसी कारण वे कठिन अभिव्यक्तियों के क़वि के नाते भी प्रसिद्ध हैं, पर उनकी रचनाओं में एक धरती का वातावरण है। मानव के प्यास की पुकार है और एक शान्त शिशु का सजग कुतूहल भी। उनकी पुस्तकें, एलोज़ (प्रशस्ति), १९११ में, अनावाज़ १९२४ में, एक्ज़ील (निर्वासन) १९४२ में, वाँ (मरुत्) १९४६ में, संकलन, १९५३ में प्रकाशित हुईं। आमेर् (सागरिक) भी इन्हीं की रचना है। इनमें अनावाज़ तथा वाँ (मरुत्) विश्वविख्यात पुस्तकें हैं।

दो छोटी कविताएँ:

१ : प्रशस्ति :

इस क्षण मुझे छोड़ दो, मैं अकेला जाऊं। मैं बाहर निकल जाऊंगा, क्योंकि मुझे काम है, शायद एक कीड़ा मुझे मजा दिखाने के लिए इन्तजार कर रहा है। मैं आनन्द से भर उठता हूँ।

शतमुखी बड़े नयन देखते हैं; तराशे हुए अदृष्ट पूर्व मानो साइप्रस *के फल।

आज नहीं तो मुझे काम है नील शिराओं वाले पत्थरों के साथ, इसी से तुम मुझे दो–

बैठे रहना मेरे घुटनों के सख्य का उपयोग करते हुए-----

●

(२) एक गीत –अनावाज़ से :

घुग्घू बैठे वृक्ष के नीचे मेरा घोड़ा रुक गया।

ऐसे तीखे स्वर में मैं सीटी मार उठा कि किसी नद-नदी उपकूल के वश का नहीं कि इससे बड़ी प्रतिश्रुति दे।

(प्रभात के प्राणोच्छल पत्ते, याद दिला देते हैं, महिमा की प्रतिच्छवि।)

ऐसा नहीं कि मानव शोक संतप्त नहीं होगा। किन्तु दिन के अलोक के आगे जाग उठता है, बुद्धि करके एक बूढ़े वृक्ष की गोपन कथा को जान कर, अंत में तारों के वक्षस्थल पर चिबुक रख कर उपवासी आकाश के गहन में, वह देखता है, सुपवित्र अलोकिकों की भीड़, जो महानन्द में घूमती चली जा रही है।-

घुग्घू बोलते हुए वृक्ष के नीचे मेरा घोड़ा रुक गया। अति तीखे स्वर में मैं सीटी बजा उठा,---- जरामरण पथगामी, जिन्होंने ऐसा दिन नहीं देखा, उनके प्राणों में शान्ति आये। किन्तु मेरा भाई– जो कवि है– उसकी खबर मिली है– उसने दी है एक और अति मधुर वस्तु की खबर। और अनेकों ने शायद उसकी अभिज्ञता भी पायी है।

१०दिसम्बर को स्वीडिश अकादमी कवि को नोबल पुरस्कार से समादृत करने जा रही है।

हम शुभ कामना करें, धरती के कवि का यह क्षण नयी संवेदनाओं का जनक हो, नये आयामों को खोले। मानव को नव संदेश दे।

---

* झाऊ जैसा झाड़

✯

सभी राष्ट्रों के कवियों में जो कुछ श्रेष्ठ है, वह उनके राष्ट्र का नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व का है।

— लांगफेलो

✯

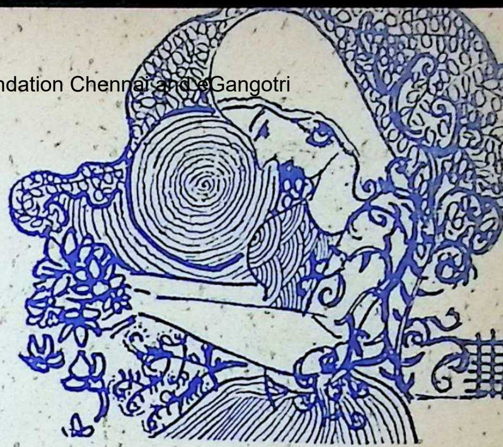

नरेन्द्र चंचल

●

गीत

कों में गीलापन, मन में भी सूनापन
ता है पर मुझको जीवन में आकर्षण !
बह-शाम दबे-दबे
ती उदासी है।
हरे नूतन-अनगिन;
ना आकाशी है।
कुलता ढाँक रही दीवारें औ आँगन,
हका-सा लगता है उभरा-बहरा यौवन !
स पी गयीं किरणें,
रिया प्यासी है !
की-थकी तृषित आँख–
र भी रुआसी है !
धला-धुंधला-सा है, प्रतिबिम्बों का दर्पण
न्तु मुझे लगता यह दर्पण में है चितवन !
न की सौ कुंठाएँ,
तों का कथ्य नहीं !
: सिर्फ़ जीवन का
कलौता सत्य नहीं !
तों के सर्जन में आवश्यक है अर्पण,
नो या मत मानो; मेरा जीवन-दर्शन !

कु. प्रतिभा त्रिवेदी

कुंडलिनी महायोग और इसके अद्भुत चमत्कार

कुण्डलिनी शक्ति प्रवृत्तिशील और निवृत्तिशील दोनों ही होती है। ब्रह्मांड में इसका स्फुरण होने पर यह प्रवृत्त बन कर विश्व का सर्जन करती है और जगत के व्यवहार को सुव्यवस्थित कर पुष्ट करती है। किन्तु जब यह निवृत्त बनती है, तब जगत को अपने ही में लय कर परमात्म तत्व को सिद्ध करती है। इसके जागृत होने पर पार्थिव जगत में दिव्य सत्ता का चमत्कारिक ऐश्वर्य प्रकट होता है, लौकिक और अलौकिक का भेद मिट जाता ह।

मन की संकल्पविकल्परहित स्थिति प्राप्त होने से चित्त की स्थिरता सहज प्राप्त हो जाती है। चित्त के स्थितिकरण का अर्थ हुआ, सुखदुखात्मक जगत् का नाश और अद्वैतानुभूति की प्राप्ति। यह समग्र जगत चित्त की चित्तिशक्ति का ही स्फुरण है और यही परमात्मतत्व परमब्रह्म की अनन्त शक्ति है। जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश की कारणभूत बनकर वह जगद्व्यापिनी है। यही चेतन है और यही प्रतिभा है। यह स्थावर-जंगम जगत इसी का आविर्भाव है। जड़-चेतन के अणु-अणु और कण-कण में इसी का अस्तित्व है। इसीसे बन्धन और इसी से मोक्ष है। यह सारा जगत इसी की निष्प्रयोजन, निष्काम लीला है। यही महाशक्ति प्रत्येक मनुष्य में कुण्डलिनी रूप से विराजमान है, और मनुष्य को पशु से देवता बनाने में समर्थ है। एकही कुण्डलिनी शक्ति राग-द्वेष, काम-क्रोध, मोह-माया प्रभृति भिन्न-भिन्न वृत्तियों में प्रकट होती है। कवि की प्रेरणा, कलाकार की प्रतिभा, संगीतज्ञ की साधना, संसारी की व्यवहारकुशलता, राजनीतिज्ञ की कुटिलता अथवा एटम की एनर्जी एक ही शक्ति का आविर्भाव है। अहं

ब्रह्मास्मि अथवा तत्त्वमसि जैसे महावाक्यों के अनुशीलन से उद्भूत उल्लास और आनन्द कुण्डलिनी शक्ति की ही स्फुरणा है। इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

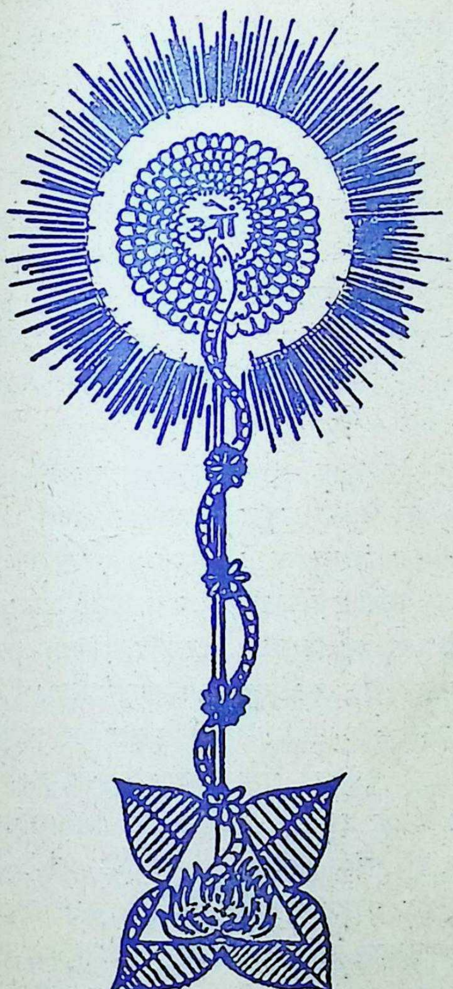

महाकुण्डलिनी प्रोक्ता परब्रह्मस्वरूपिणी।
शब्दब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृति॥

यही कुण्डलिनी योगवशिष्ठ की चित्ति, परब्रह्म की माया, सांख्य की प्रकृति, महेश्वर की उमा, कृष्ण की राधा, अथवा योगी की अनुरूप महाशक्ति है। महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती इत्यादि एक ही चिन्मय शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। संसार तारिणी और मुक्तिदाता भी यही है। संसार के दुख से दग्ध मनुष्यों के उद्धार के लिए यह करुणामयी देवी प्रत्येक प्राणी में सुप्तावस्था में रहती है। यह कुण्डलिनी शक्ति प्रवृत्तिशील अथवा निवृत्तिशील होती है। ब्रह्माण्ड में उसका स्फुरण होने पर वह प्रवृत्त बन कर विश्व का सर्जन करती और जगत के व्यवहार को सुव्यवस्थित कर पुष्ट करती है। किन्तु जब वह निवृत्त बनती है, तब जगत को अपने में ही लयकर परमातमतत्व को सिद्ध करती है। मनुष्य-पिंड में कुण्डलिनी शक्ति बहिर्मुख होती है। तब असत्य जगत को सत्य बता कर वह संसार के दुखसुख का अनुभव कराती है, परन्तु अन्तर्मुख होकर जागृत होने पर वह परमार्थ की प्राप्ति कराती है। इस कुण्डलिनी शक्ति की आराधना से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

कुण्डलिनी महाशक्ति मनुष्यशरीर में मूलाधार चक्र में साढ़े तीन आंटे मारकर सर्पाकार रहती है। परम सुख की प्राप्ति के लिए उसे जाग्रत करने के लिए साधक भिन्न-भिन्न उपाय करते हैं, जैसे आसन, प्राणायाम, मुद्रा, विशिष्ट उपासना इत्यादि; परन्तु ये सब कनिष्ठ प्रकार के अस्वाभाविक उपाय हैं, क्योंकि ये मार्ग कष्ट तथा विघ्नों से परिपूर्ण रहते हैं। मोक्षप्राप्ति का एक सरल, उत्तम और सुलभ उपाय है, सद्‌गुरु का अनुग्रह अथवा शक्तिपात, जिसके वग़ैर साधक के सभी प्रयत्न निष्फल रहते हैं। सद्‌गुरु की कृपा होने से जिज्ञासु शिष्य को महायोग सहज साध्य बन जाता है और उसकी सुषुप्त आत्मशक्ति का अपने-आप विकास होने लगता है। सद्‌गुरु का शक्तिपात उनके प्रति सेवा और भक्ति के अनुरूप होता है। शिष्य के सेवाभाव से जब गुरु प्रसन्न होते हैं, तब उनके स्नेह से शिष्य में उनकी शक्ति का संचार अपने आप हो जाता है। ईश्वर के प्रति प्रेम का यह प्रत्याघात है; इसी का नाम अहैतुकी कृपा है। भगवान ही सद्‌गुरु रूप से अनुग्रह करते हैं। परमेश्वर की अनुग्राहिका शक्ति का नाम ही सद्‌गुरु है और सद्‌गुरु के अनुग्रह से कुण्डलिनी शक्ति की जाग्रति का नाम ही शक्तिपात है।

शक्ति जाग्रत होने पर साथ-साथ नाड़ी शक्ति की अनेक यौगिक प्रक्रियाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें साधक को चमत्कारिक अनुभव होने पर वह स्वयं आश्चर्यान्वित होता है। शक्तिपात का रहस्य अनुभवगम्य होने पर, शक्तिपात हुए शिष्य को हो रहे आन्तर्कार्य से ही ये अनुभव जाने जाते हैं। साधारणतः कुण्डलिनी जाग्रत हो कर क्रियाशील बनती है और प्राण का सुषुम्ना द्वारा ऊर्ध्वगमन हो कर षड्चक्र का वेध होता है। एक-एक चक्र के खुलने पर साधक को अलौकिक अनुभव होते हैं, जैसे कि लोकलोकांतरों के देवताओं तथा सिद्धलोक के दिव्य पुरुषों का दर्शन, शंखनाद, घंटारव इत्यादि, दिव्य नाद का श्रवण, एक प्रकार का नशा चढ़ना, शरीर में विद्युत के से झटके लगना, दाह होना, ज्योति का दिखना इत्यादि। किसी साधक में काव्यशक्ति का स्फुरण होता है, किसी को पराभक्ति प्राप्त होने पर वह गाने-नाचने लगता है। प्रत्येक साधक को उसके अधिकार के अनुसार भिन्न-भिन्न अनुभव होते हैं। किसी भी प्रकार के प्रयत्न के बिना मन का एकाग्र होना, श्रद्धा और भक्ति का उत्पन्न होना, एक प्रकार के संतोष का अनुभव होना, नाड़ीशुद्धि की अनेक प्रक्रियाओं का होना—यह शक्तिपात का प्रथम लक्षण है। परन्तु इसकी अंतिम प्राप्ति है ज्ञान, जिसमें 'मैं ही सर्वत्र हूँ

और यह सकल विश्व मेरा ही विलास है', सका भान सतत रहता है। ज्ञान, ज्ञय और ज्ञाता एकरूप हो जाते हैं। सहस्रार में जब तक शिव-शक्ति का मिलन नहीं होता, तब तक नाद, बिन्दु, कला, ज्योति, सूर्य, चन्द्र, तारे इत्यादि अन्तराकाश में दिखायी देते हैं। इस प्रकार के तत्वशुद्धि के अनेक अलौकिक अनुभवों के बाद मन शान्त होकर शून्य हो जाता है। इस शून्यावस्था के पार स्वानुभवगम्य परब्रह्म का आनन्द है। इस शून्यता में धीरे-धीरे परब्रह्म की अभिव्यक्ति होती रहती है और प्रज्ञा का उदय होता है। अन्त में निर्विकल्प की प्राप्ति हो कर जगत स्वप्नवत् दिखायी पड़ता है। इसे तुर्यातीत अवस्था कहते हैं और इस स्थिति को प्राप्त महात्मा देवतुल्य गिने जाते हैं।

शक्तिपात की विद्या अनादि वेदकालीन सिद्धपरंपरा में है। शक्तिपात करने वाले गुरु उच्च कोटि के महात्मा और संकल्पसिद्ध महायोगी होते हैं। समर्थ सद्गुरु शिष्य में शब्दस्पर्श अथवा दृष्टि से शक्तिपात या अनुग्रह करते हैं। इसीका नाम दीक्षा है। शक्तिपात की दीक्षा में गृह अथवा संसार का त्याग आवश्यक नहीं; जो जिस संजोग या परिस्थिति में है, उसी में रह कर सुगमता से महायोग की साधना कर सकता है। उच्च कोटि के सद्गुरु मानसी दीक्षा भी देते ह, जिसमें गुरु देशदेशांतर में रह रहे, शिष्यों पर सत्यसंकल्प मात्र से शक्तिपात करते हैं।

इस महायोग में गुरुमहिमा और गुरुभक्ति पर विशेष वल दिया जाता है, गुरु को शिवस्वरूप माना जाता है। क्योंकि शक्तिपात कर मुक्ति देने का सामर्थ्य ही नहीं, परन्तु शिष्य को अपने जसा गुरु बनाने का सामर्थ्य भी उनमें होता है—वे शिष्य को लघु से गुरु बनाकर स्वस्वरूप बना सकते हैं। संतपुरुषों को शास्त्रों में पारसमणि की उपमा दी गयी है, वे लोहे को भी सोना वना देते हैं; परन्तु सद्गुरु तो उनसे भी महान हैं, क्योंकि वे लोहे को केवल सोना ही नहीं, स्वयं अपने जैसा पारसमणि भी वना देते हैं। उनकी कृपा से सहजावस्था रूपचित्त को जो प्रसन्नता, संतोष, समाधान, आनन्द, शान्ति, एकाग्रता, तटस्थता, जाग्रति, धैर्य इत्यादि-इत्यादि प्राप्त होते हैं, वह वर्षों तपस्या से भी दुर्लभ है।

इसीलिए कुण्डलिनी योग को महायोग कहा जाता है। मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग इस योग के अन्तर्गत हैं। ये चारों योग सद्गुरु के अनुग्रह से प्रयत्न किये विना अपने आप सिद्ध हो जाते हैं और वे प्रत्यक्ष फलप्रद होने के कारण, शक्तिपात योग मोक्षप्राप्ति का सिद्ध उपाय है।

*

सुर्यभानु गुप्त

कोशिश करता हूँ

जब मेरे ज्योति-पुरुष की किरण-पुत्रियाँ,
बिना मोरपँाख बाँधे ही, शून्य व्यूहों में
बिना लड़े ही,
किसी सम्बंध की तरह टूट जाती हैं।

और जब चीखते हुए बौखलाए हुए चौराहों पर
नज़रों की तमाम पहचानें हाथों से
संकल्पहीन जल की तरह छूट जाती हैं।

तब, कोशिश करता हूँ मैं सोने की,
इन लाल-लाल सूरज वाली
शामों के कसमसाते हुए गर्भ में।

जब कोई मेरे जीवन से हवा की तरह
दबे पाँवों, धीरे से गुज़र जाता है।

और जब मेरा उदास दिल,
एकान्त की मनहूस दीवारों से
किसी पुराने पोस्टर की तरह
हौले से उतर जाता है।

तब, कोशिश करता हूँ मैं, खोने की,
इन नये-नये चेहरों वाली
सड़कों के बदलते हुए अर्थ में।
जब मेरे होंठों पर ख़ुशबू की सम्भावना,
हँसी की मुंहबन्द कलियों के रंगारंग चेहरे;
जवानी से पहले ही
बुढ़ापे की झुर्रियों से भरने लगते हैं।
और जब सनकी हवाओं के पुरसर्द झोंकों से
तुम्हारी कभी न पूरी हो सकने वाली
अधूरी तस्वीरों पर,
मेरी काँपती हुई पलकों के हरसिंगार झरने लगते हैं।

तब, कोशिश करता हूँ मैं रोने की,

अगस्त १९६२

इन मोम के आँसुओं
में किसी नये सन्दर्भ में ।

और इन सब को भोगते हुए मैं,
अनुभव करता हूँ अपने को,
उस बदनसीब बच्चे-सा
जिसे कहानी का अन्त पहले ही
बता दिया गया है।
जिसकी शिशु-जिज्ञासा,
लोरियाँ पीने से पहले ही बूढ़ी हो गयी हैं।

और तब मैं
तुम्हारे बीसियों बार पढ़े गये पुराने ख़त,
एक बार फिर पढ़ने बैठता हूँ।
कि अचानक मुझे बोध होता ह कि
जिस सच में मैं जिया था,
वाक़ई वह कितना बड़ा झूठ था।
और जिस झूठ को मैं निभा रहा हूँ,
वाक़ई वह कितना बड़ा सच है।
कि तभी यकायक बेतरह काँप उठता है
मेरा जिस्म।
प्रतिक्षण.... पास आती हुई
किसी के क़दमों की आहट इसकी गवाह है
झूठ नहीं कहूँगा—
मेरा यह बोध ठीक वैसा ही है
जैसा कि गौतम को
तपस्या के बाद हुआ था।

कुलवन्त कोहली

अनपढ़ी चिट्ठी : मासूम आँसू

अपने सिद्धान्तों में चुस्त प्रगतिवादी, साम्यवादी थे हरनाम, पर अपनी नौकरानी उस मासूम ग़रीब काश्मीरी बाला जुलयाना को वह महज़ नौकरानी ही मानते थे–इन्सान नहीं। जुलयाना को भी दुख-दर्द, मौत का ग़म, प्यार-मोहब्बत हो सकती है यह हरनाम साहब को क़बूल नहीं था। उस जुलयाना के अपमानित दर्द की हृदय-विदारक कहानी यहाँ पढ़िये।

हरनाम मेरा पुराना साथी था और यही वजह थी कि मैं उसके यहाँ कभी-कभी हो आता था। दरअसल अगर देखा जाय, तो उसके बग़ीचे के चमेली के फूल ही मुझे यहाँ खींच लाते थे। यहाँ गुलबाशी, गुलाब और नर्गिस हर तरह के फूल थें, लेकिन चमेली के फूल मुझे सब से अधिक भाते और जाते समय वह प्रायः मेरा रूमाल इन फूलों से भरवा कर मुझे दे दिया करता था।

मैं हरनाम के घर की हरेक चीज़ से परिचित हूँ। उसकी पत्नी से, खुद उससे और इसके इलावा उसकी नौकरानी से।

नौकरानी इस घर में एक ऐसी लड़की है, जो कि अपने गाँव के लीची, जामुन और आम के मैदानों को छोड़कर शहर के उस वातावरण में आ गयी है, जहाँ कि न तो हवा है––न आकाश ही पूरी तरह से नज़र आता है––और न अपनी बहन और माँ की भोली और प्यारी मूरत ही देखने को मिलती है। प्यार भरे ये दृश्य उसे शायद इसलिए देखने को नहीं मिलते कि वह पेट की भूख से बढ़कर प्यार की भूख को महत्त्व नहीं दे सकती और यही वजह है कि वह घर में मालिक के गुस्से होने पर, या यूं ही कोई बहाना बनाकर रोने लगती है।

इसका नाम है जुलयाना। उमर की

हरनाम, पर
ा जुलयाना
। जुलयाना
सकती है
ना के अप-

ची, जामुन
ड़कर शहर
ी है, जहाँ
श ही पूरा
र न अपनी
यारी सूरत
प्यार भरे
देखने की
ा से बढ़कर
दे सकती
में मालिक
ोई बहाना

उमर की

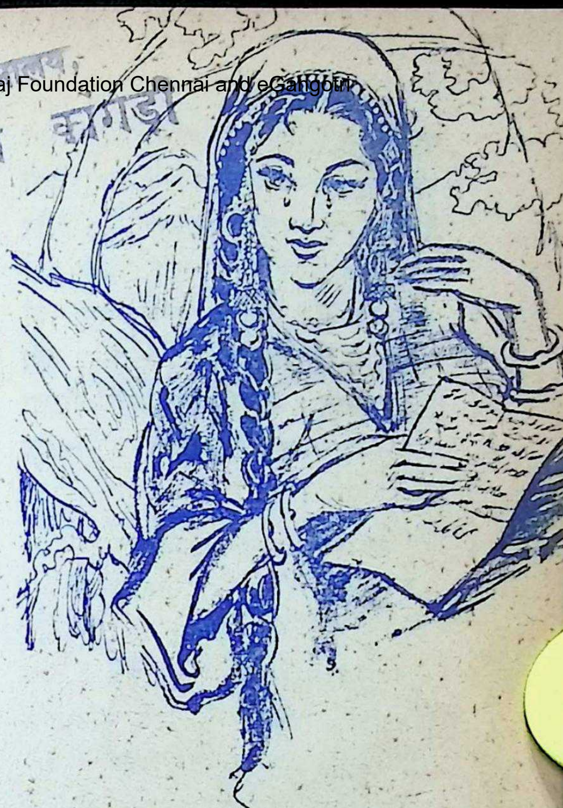

ी ही है। सूरत कुछ काली जरूर है! कपड़े इसके हमेशा गंदे और मैले ही होते हैं। चूंकि यह देहाती लड़की है, ालिए यह शहर के बनावटी ौर-तरीक़ों से बहुत कम वाकिफ़ है। िसी भी सवाल के जवाब में यह 'हाँ' ा 'न' से अपना काम चलाती है ात-बात पर इसे हँसने और मुस्कुराने की आदत है। और बाद में यह ाएक चुप भी हो जाती है, ठीक उस हाड़ी नदी की तरह, जो कि पहाड़ से तरते वक्त उसके सीने में हल्की सी ुदगुदी मचाकर मैदान में आते ही अपनी ारी नटखटता छोड़कर किसी नवेली ी तरह चुप-चाप चलने लगती है। िन भर यह काम में लगी रहती है, बीच में एक बार सब्ज़ी लाने के लिए बाज़ार में जाती है। फिर आकर काम में लग जाती है और रात क़रीब साढ़े ग्यारह बजे इसे फ़ुर्सत मिलती है।

पहले-पहल जब मैं हरनाम के यहाँ आया था, तब वह मुझसे बहुत झिझकती थी। लेकिन धीरे-धीरे, इधर अक्सर आते देखकर अब मुझे भी वह घर का एक आदमी समझने लगी थी। मैं कभी-कभी उससे सके घर वालों के मुतल्लिक़ पूछा करता था और वह बिना किसी झिझक के अपने र और गांव की बातें मुझे बताया रती। वैसे उसकी कहानी से मुझे कोई दिलचस्पी थी भी या नहीं इसके मुतलिल्क़ मैंने कभी भी नहीं सोचा। असल में मैं यह चाहता था कि दो-चार शब्द वह अपने बारे में कह दे और तब मैं अच्छी खासी कहानी लिख कर आपके सामने पेश कर सकूं!

वह कहा करती—"देहात में मेरा बाप और मेरी एक बहन है। बाप मुझे बहुत प्यार करता है। बहन अब भी मुझे कभी-कभी चिट्ठी लिखती है। मेरे शहर आने पर वह बहुत रोती थी!" फिर खीज के साथ कहती—"बाप कभी-कभी बुरा लगने लगता है। वह तांगा

चलाता है। देहात के लोगों को स्टेशन पहुँचाता है—और बहुत पैसे कमा लेता है। लेकिन उसे पीने की आदत है। और वह अपने बहुत से पैसे नशे में ही ख़र्च कर देता है। मना करने पर वह कहा करता है कि बिना पिये वह तांगा नहीं चला सकता। माँ को वह बहुत पीटता था। वह बराबर रोती रहती थी—और बाद में एक दिन मर गयी !"

बातों का रुख बदलने के लिए मैं वैसे ही पूछ बैठता—"तुम्हारे गाँव में कोई फल भी होता है ?"

"बहुत से फल होते हैं साब ! अब तो गर्मी का मौसम है। इस मौसम में तो लीची, जामुन, आम और पियार बहुत से फल होते हैं।" इतना कहने के बाद उसने एक लम्बी सांस खींची और फिर अपने आप कहने लगी—"आजकल हमारे गांव के लड़के-लड़कियाँ दिन भर फलदार पेड़ों के नीचे बैठे रहते हैं। इस मौसम में हम लोग खाना नहीं खाते। असल में भूख ही नहीं लगती। जामुन खा-खा कर तो जीभ नीली हो जाती है।" इतना कहकर वह हँसने लगी।

अब जब कि मै उठने की तैयारी में ही था कि वह फिर बोल उठी—"आजकल हमारे गांव में रात बहुत अच्छी तरह से कटती है। गर्मी होने के कारण, चूंकि नींद जल्दी नहीं आती, इसलिए गांव की लड़कियाँ चाँदनी रात में ज़मीन सूखी हुई घास पर बहुत देर तक बै रहती हैं। कोई भी एक लड़की भूत प्रेतों की या शहर की कोई कहानी सुनाती है। हरेक लड़की को कोई न कोई कहानी सुनानी पड़ती है।" मुझे लगा जैसे संभवतः वह अपने जीवन के अनुभवों को ही सुना रही है। अन्त में उसने इतना ही कहा—

"अब मैं कुछ ही दिनों में अपने गांव चली जाऊँगी। कल ही मेरी बहन की चिट्ठी आयी थी, उसने लिखा है- बा तुम्हें बहुत याद करता है। वह कहता है जल्दी ही अपनी तनख़ाह के पैसे लेकर गांव लौट आओ। हम लोग मिलकर रहेंगे।"

अगले दिन जब मैं हरनाम के यहाँ गया, तो उसके मूड से कुछ ऐसा मालूम हुआ, जैसे कि वह मेरी किसी ग़लती पर मुझसे ख़फ़ा हो। वह चुप-चाप बैठा था। कुछ देर के बाद उसने खुद ही कहा—

"देखो यार, अगर बुरा न मानो, तो एक बात कहूँ !"

"भई एक नहीं, अनेक बातें कहो। कुछ कहो तो सही। आखिर बुरा क्यों कर मानूंगा।" मैंने जिज्ञासा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

'कहना कुछ नहीं । बस समझाना

है कि अपने से नीच आदमी से बात नहीं की जाती।"

"यानी !"

"मतलब यह कि जुलयाना मेरी नौकरानी है। मैं नहीं चाहता कि मेरी नौकरानी से मेरा कोई दोस्त बात करे !"

"आखिर किसलिए ?"

"केवल इसलिए कि तुम्हारी इज्ज़त और मेरी इज्ज़त में कोई फ़र्क नहीं !"

"ठीक !" मैंने तीव्र परन्तु कुछ रोष-भरे स्वर में कहा।'

"और चूंकि नौकर से बात करने से वह खुल जाता है—इसलिए अगर उससे काम करवाना है—या उससे इज्ज़त करवानी है, तो उससे वहुत कम बोलना चाहिए। नौकर से बात करने पर या उससे हिलने-मिलने से तो वह कल 'आप' की जगह 'तुम' का व्यवहार करने लगेगा। तब तुम्हारी इज्जत कहाँ रह जायगी ?" उसने बहस के लहज़े में कहा।

मैं एक ज़माने से हरनाम के साथ रह रहा था। मुझे उम्मीद न थी कि वह इस क़िस्म के विचारों का मालिक होगा ! हालांकि प्रगतिवाद के समर्थन स्वरूप वह बहुत कुछ कहा करता था, लेकिन उसके वास्तविक रूप को मैंने आज ही जाना। अगर सच देखा जाय, तो एक तरह से घर बुलाकर मेरी वेइज़्ज़ती की गयी थी। मुझे, इसके लिए वहुत गुस्सा था। खुद मेरा अपना नौकर होते हुए मुझे यह बताने की चेष्टा की गयी थी कि नौकर के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए ! मैंने केवल इतना ही कहा—"भाई हरनाम तुम्हारे अपने विचार हैं—मेरे अपने विचार। तुम मेरे विचारों को बदल नहीं सकते ! और न ही तुम्हारी तरह मैं ऐसा करना पसंद करूँगा कि नौकर जोकि तुम्हारे लिए सव्ज़ी वनाये, मटन बनाये, फिश बनाये.....अपने हाथों से एक-एक चपाती को गोलाकार रूप देकर उसे तवे की लौ पर पकाये......उसका हाथ भी जल जाये.....वह पसीने-पसीने हो जाय...... और तुम्हारे सामने एक माँ की तरह प्यार से खाना परोसे और तुम्हें खिला चुकने के वाद जब उसकी वारी आये, तो वह रात के बचे हुए भात में पानी डालकर उसे नमक के साथ खाये, पेट भर कर सो जाये... सुखकी नींद या दुख की नींद और फिर सुबह होते ही फिर से तुम्हारा नाश्ता और खाना बनाने में लग जाये—इस आशा पर कि बदले में उसे थोड़ा सा भात मिलेगा......वासी भात ....वह भात जिसमें जीवन नहीं होता। क्या ऐसा नहीं होता हरनाम ?"—इतना कहकर मैं उठ बैठा। हरनाम ने कितनी वार मुझे बुलाया....माफ़ी तक माँगी....

लेकिन मैंने इतना ही कहा—"रात हो गयी है; फिर कभी आऊँगा।" और फिर सड़क पर आकर बिजली के खंभों की रोशनी में बढ़ने लगा।

बहुत दिन हो गये न मैं हरनाम के घर गया, न वह ही हमारे यहाँ आया। बीच-बीच में जुलयाना मुझे कभी-कभी मार्केट में सब्ज़ी खरीदते मिल जाती। मुझे महसूस हुआ, जैसे अब वह मुझसे बात करने में कुछ झिझकती थी। लेकिन मेरी ओर प्यार भरी दृष्टि से देख अवश्य लेती।

एक दिन वह मुझे बाज़ार में देखकर मुस्कुरायी। मैंने इतना ही पूछा—"क्यों री जुलिया कहाँ?" जवाब में उसने कहा—"सब्ज़ी खरीदने आयी थी।"—और मेरे नज़दीक आ गयी। जाने क्या सोचकर मैं आगे बढ़ने ही वाला था कि उसने अपनी फटी-पुरानी साड़ी की किनारे को खोलकर एक कागज़ का टुकड़ा निकाला और मेरी ओर बढ़ाते हुए कहने लगी—"इसमें क्या लिखा है साब?" चिट्ठी हाथ में लेकर मैं पढ़ने लगा। टूटी-फूटी हिंदी में यह चिट्ठी लिखी गयी थी, इसलिए मुझे पढ़ने में कुछ दिक़्क़त ज़रूर हुई। सार रूप में मैंने उसे यही बताया—"तुम्हारी बहन की शादी होने वाली है और तुम्हारे बाप ने तुम्हें आने के लिए लिखा है!"—मुझे उम्मीद थी कि इतना सुनते वह मारे खुशी के उछल पड़ेगी और चिट्ठी लेकर नाचती-टपकती भाग जायगी। लेकिन दूसरे ही क्षण मैंने क्या देखा कि उसकी आँखों में आँसू आ-आ कर रुक गये थे। वह मुझे कुछ कहना चाहती थी, लेकिन बार-बार झिझक जाती थी। आखिर मैंने ही पूछा—"क्या बात है, जुलिया?"

अब तक वह सोच रही थी कि वह मुझसे कुछ कहे या न कहे। किसी तरह भर्रायी आवाज़ में उसने कहा—"हरनाम बाबू छुट्टी नहीं देंगे। मैं दो महीनों से छुट्टी माँग रही हूँ। वह कहते हैं घर जाकर क्या करोगी? कभी कहते हैं कि किसी दूसरे नौकर के मिलते ही तुम्हें छुट्टी दे देंगे। लेकिन अब तक तो........."

"अगर शादी ही है, तो तुम यहाँ रहकर क्या करोगी!" मैंने माथे का पसीना पोंछते हुए, ये लफ़्ज कहे।

"सो तो है, लेकिन अपने आप जाने पर तो मेरी तनख़ाह कैसे मिलेगी?"

"तुम्हारी कितने महीनों की तनख़ाह बाकी है?"

"क़रीब डेढ़ साल की!"

क्योंकि मुझे कुछ जल्दी थी और मैं बाज़ार में रुककर बातें करना पसंद भी नहीं करता, इसलिए मैंने जाते वक्त उससे यही कहा—

हरनाम बाबू तो ऐसे नहीं कि तुम्हें छुट्टी न दें–यह चिट्ठी दिखा देना, वह खुद-ब-खुद कहेंगे कि तुम जा सकती हो।" वह कुछ कहने ही वाली थी कि मैं वहाँ से आ गया। बाद में मुझे कहे गये अपने लफ़्ज़ों पर खुद ही हँसी सी आ गयी और मैं कुछ मुस्कुराता, कुछ सोचता अपने रास्ते पर आकर चलने लगा।

बहुत दिन गुज़र गये। एक ज़माने से कश्मीर जाने की इच्छा थी और इस बीच में कश्मीर वग़ैरह की सैर करके लौट आया हूँ। सोचा–कश्मीर से आया हूँ इसलिए हरनाम के यहाँ कुछ अखरोट और खुमानियां, जो कि वहाँ के प्रसिद्ध मेवे हैं, दे आऊँ। रास्ते में जा ही रहा था कि पीछे से एक महीन आवाज़ आयी–"साव !" खैर इस आवाज़ को पहचानते मुझे देर नहीं लगी। मैंने घूमते हुए कहा, "कहो जुलिया"? वह कुछ शरमा सी गयी और अपने हाथ के झोले को ज़मीन पर रखकर आज फिर वह साड़ी की चूक खोलने लगी–और एक पुराना और मैला पोस्टकार्ड मेरी ओर पढ़ने के लिए बढ़ा दिया।

कई जगह शायद पानी पड़ने से कुछ लफ़्ज़ मिट गये थे। फिर भी पत्र मैंने पढ़ लिया। और इस पत्र को पढ़कर मेरे दिल पर एक गहरी चोट लगी। मैं चुप था। वह वार-बार पूछ रही थी–"क्या लिखा है ?"

मेरी समझ में नहीं आरहा था कि मैं इसे वताऊँ भी तो क्या वताऊँ! मैं चाहता था कि वह हँसती रहे–मुस्कुराती रहे; और इसलिए मैंने उसे कुछ भी नहीं वताया। मेरे सामने उस दिन की स्मृति वार-वार आ रही थी, जब कि आज की तरह मैंने उसका एक पत्र पढ़ा था और उसमें लिखा था–"तुम्हारी वहन की शादी होने वाली है। जल्दी आना।" इसके वाद मैंने जुलियाना से यही कहा–"घर जाओगी ?"

"छुट्टी जो नहीं मिलती साव !" उसने एक ठंडी सांस भरते हुए, ये लफ़्ज कहे।

"मैं ले दूंगा, अभी जाओगी ?"

"साव ! मुझे छुट्टी ले दीजिए। मुझे समझ नहीं आता कि आखिर मैं यहाँ किसके लिए बैठी हूँ। मैं अभी ही ज़ाऊँगी।" उसने कुछ निराश कुछ गद्‌गद् आवाज़ में कहा।

"तो चलो !" उसके वाद वह उस पत्र के वारे में बिल्कुल भूल गयी। मैंने भी उसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं वताया।

हरनाम के यहाँ जाते ही मैं उसे एक तरफ ले गया। उसे जुलियाना का वह पत्र दिखाया। लिखा था–"वेटी जुलिया ! तेरी बहन को दो दिनों तक सख्त बुखार

LIFEBUOY
SOAP

ताज़गी का तराना ! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके तनमन में ताज़गी का तराना गूंज उठेगा ! और मज़ा यह है कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताज़ा कर देता है ! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा ।

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ !

L. 33–X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

हा और आज तीसरे दिन वह चल बसी। मरते वक्त तुमको बहुत याद करती थी। ख़ैर, भगवान को ऐसा ही मंजूर था। मैं जानता हूँ कि तुम सब को भूल बैठी हो। बहन की शादी पर भी नहीं आयी और आज जब वह मर गयी है, तब भी मत आना। भाग्य में ही ऐसा था!!”

मैंने सोचा था हरनाम यह चिट्ठी पढ़कर फौरन ही कह देगा कि वह जा सकती है। लेकिन चिट्ठी पढ़ने के बाद सबसे पहला लफ़्ज़ जो उसके मुँह से निकला, वह यह था कि घर का काम कौन सम्हालेगा।

किसी तरह मैंने उसे मज़बूर किया कि वह इस बिचारी के साथ और अन्याय न करे और अभी दोपहर की गाड़ी से इसे भिजवा दे। इसके इलावा इसे बहन के मुतल्लिक़ कुछ भी कहना ग़लती होगी।

अंत में वह किसी तरह मान गया।

आज जुलियाना बहुत खुश थी। एक तो शायद इसलिए कि अब वह घर जाकर बाप और बहन से मिलेगी—दूसरे इसलिए कि आज उसे अपनी तनख़ाह के एक सौ-साठ रुपये मिले थे। वे रुपये जिनकी वजह से इन्सानी ज़िंदगी में घन लग जाता है।

उसने सबको नमस्कार किया और जाते समय यही कहा कि वह इन पैसों से बहन के लिए एक साड़ी खरीदेगी और कुछ पैसे और जोड़कर कपड़े सीने की एक मशीन खरीदेगी और फिर गाँव में लोगों के कपड़े सिया करेगी—जैसे तब वह किसी की भी नौकरानी नहीं होगी और उसे किसी से भी छुट्टी लेने की ज़रूरत नहीं रह जायगी।

इतना कहकर वह एक बार ज़ोर से खिलखिला कर हँसी—और फिर आगे बढ़ गयी। मारे खुशी के उसकी आँखों में आँसू आकर रुक गये थे—जोकि कुछ ही देर में हवा की तेज़ी से इधर-उधर गालों पर बिखर गये। ● ● ●

● त्यौहार के दिन ?
● शादी-ब्याह ?
● जन्म-दिन ?
● साठवीं वर्ष गाँठ ?
उपहार के लिए
अति उत्तम पुस्तक
सभी शुभ अवसरों पर सभी के लिए
एक आकर्षक पुस्तक

प्रेमोपहार
[हिन्दी भाषा में]
मूल्य—२.५० रु. डाक-द्वारा—३.५० रु.

LITTLE FLOWER CO. (LIFCO), MADRAS-17; M. DAMODARAM & CO., APPAH BLDGS., MADRAS-1; HIGGINBOTHAMS' RY. STALLS; POPULAR BOOK DEPOT, LAMINGTON RD., BOMBAY-7; AND OXFORD BOOK & STATIONERY CO., SCINDIA HOUSE, NEW DELHI--1.

राम निरंजन परिमल

सृष्टि का जीवन

श्वासगिरि के उत्तुंग शिखर पर
शिषिणा-सुषमा आच्छादित,
सौरभ के ग्रहपथ पर श्वास के नील बुद्बुद्
उगते, मिटते
पारदर्शी नील मनोरवसर्पण
पारदर्शिनी नीलिमा का महावट
शतपथ ब्राह्मणवृक्ष आलोकित
जीवन-सूर्य्योदय-सौन्दर्य उदित
पद्मासना उर्मि-ज्योति
पद्मासना विभा अभिनन्दित,
वैवस्वत तरी सा जीवन
धरणी का नौकाबन्धन
सप्त मन्वन्तर की शपथ,
पवमान अरूप का पत्ते स्वरूप के
जीवन के पर्याप्त अंश पवमान में है, पत्र में है।
रूप-रहस्य के अन्तरिक्ष में
प्राण-उषा उदित होती है।
आलोक के सप्त मन्वन्तर-उदय की शपथ,

१९६२

आलोक का सप्त मन्वन्तर
कालिमा, स्वरूप-अस्थियाँ
निद्राराशि, किरण की नील अस्थियों से भरा
अनमिल हलचल, रजस्वला हलचल
धरणी-पद्मिनी के जीवन में आ रही,
धूप के बादल स्मृति-वारिद बन
छिपे हैं अज्ञात लोक में,
पिपासा का नील शशि उदित
उदित शशि नील पिपासा का
तारों का आहत यौवन
तारों का यौवन आहत...........
नीरव आँसुओं से तारे, अश्रु-तारे....
अरूप-महानद, अरूप-सरोवर में
स्वरूप-प्रतिमा विसर्जन
प्रतिमा विसर्जनोत्सव
वैवस्वताकृतिराशि, वैवस्वताकृतियाँ
विसर्जन-संवेगाभिभूत मानवदल
सरोवर जल में कम्पन का लघुकाय
सरोवर निर्मित—क्षण के अल्पजीवी प्रहर
विकलांग प्रहर के पश्चात्,
शान्ति प्रसवित, मत्स्यगंधा शान्ति
मत्स्यकन्या शान्ति.........! ! !

* * *

भगवान प्रसाद

प्राचीन भारत के दौत्य सम्बन्ध

यदि स्वर्गीय हरविलास शारदाकृत 'हिन्दू सुपिरियारिटी' दिये गये पाश्चात्य विद्वानों के प्रमाण सत्य मान लिये जा तो मिस्र, जर्मनी, यूनान ही नहीं, समस्त विश्व की सभ्यता संस्कृतियों के संस्थापक भारतीय ही रहे हैं। वेद की 'कृणवन् विश्वमार्यम्' की आज्ञा को शिरोधार्य कर प्राचीन भारती के कल्चरल मिशन-सभ्यता-संस्कृति के प्रचार के लिए विदे में जाते थे। मिश्र ब्राह्मणों ने नील घाटी में मिस्र बसाया शर्मा लोगों ने जर्मनी बसाया तथा कुछ लोगों ने अमरीका भारतीय सभ्यता का प्रचार किया।

प्राचीन भारत के इतिहास में दूसरे देशों के साथ राजदूतों के आदान-प्रदान का उल्लेख मिलता है। यात्रा की कठिनाइयों के बावजूद भी भारत के राजदू दूसरे देशों को भेजे जाते थे। ईसा लगभग ३००० वर्ष पूर्व जिस सम सिन्धु नदी की शस्य श्यामला घाटी हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की सभ्यता विकसित हो चुकी थीं, इस देश व्यापारिक सम्बन्ध नील तथा दज और फरात की घाटी में पायी जा वाली सभ्यताओं से स्थापित था। नील नदी तथा मेसोपोटामिया की प्राचीन सभ्यता में भारतीय सम्बन्ध के प्रमाण प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

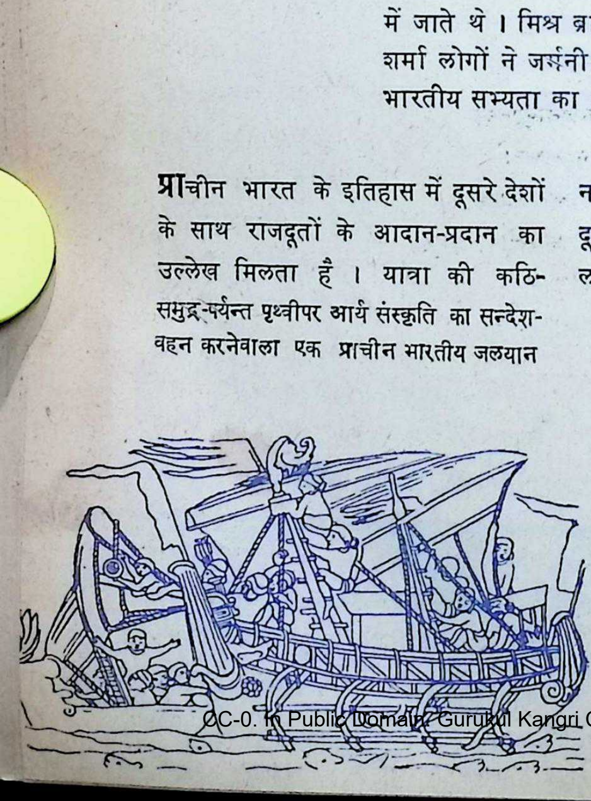

समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीपर आर्य संस्कृति का सन्देश-वहन करनेवाला एक प्राचीन भारतीय जलयान

स्वर्गीय हरविलास शारदा कृत हिंदू सुपिरियारिटी" में दिये गये पाश्चात्य ानों के प्रमाण सत्य मान लिये जायँ, मिस्र, जर्मनी, यूनान ही नहीं, समस्त की सभ्यता के संस्थापक भारतीय रहे । भारतीयों का कल्चरल मिशन– टमंडल–संस्कृति तथा सभ्यता– के ार में विदेशों को जाता था। र्युक्त पुस्तक में वर्णन आया है कि वेद 'कृणवन्तो विश्वमार्यम्" की आज्ञा को रोधार्य कर ब्राह्मण विदेशों को जाते । मिश्र ब्राह्मणों ने नील टी में मिस्र, शर्मा लोगों ने र्मनी बसाया तथा कुछ लोगों ने अमेरिका में भारतीय भ्यता का प्रचार किया।

मेगस्थनीज़

स्वर्गीय शारदा ने स्वीकार किया है कि श्रीकृष्ण के बड़े भ्राता बलदेव (हलधर) का राज्य यूनान में था। यूनानी गाथा में हरक्यूलिस बड़ा वीर माना जाता है। वे अन्य कोई नहीं, बल्कि हरि-कुल-ईश अर्थात् बलदेव जी थे। इससे सिद्ध होता है कि भारत का अन्य देशों से व्यापारिक संबंध ही नहीं, वरन् सांस्कृतिक संबंध भी था!

संस्कृत महाकाव्यों–रामायण तथा महाभारत में कूटनीतिक राजदूतों का उल्लेख मिलता है। कई प्रकार के दूतों की चर्चा इन ग्रंथों म आयी है। कुछ दूतों को संवि-समझौता आदि करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता था। श्रीकृष्ण पाण्डवों के पूर्ण अधिकारों से युक्त राजदूत थे। रामचन्द्रजी ने लंका के राजा रावण के यहाँ दो दूत भेजा। हनुमान को सीताजी का केवल समाचार लाने का अधिकार दिया गया था। बालिपुत्र अंगद को और अधिकारों के साथ भेज गया था!

मनुस्मृति के सातवें अध्याय में राजदूत के लिए वांछित गुणों का उल्लेख आया है, यथा–

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र
विशारदम्!
इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं
कुलोद्गतम् ॥६३॥
अनुरक्तः शुचिरक्षः स्मृतिमा-
न्देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः
प्रशस्यते ॥६४॥

अर्थात् राजदूत को सभी शास्त्रों का ज्ञाता; मुखाकृति, भावभंगिमा, हाथ-पैर आदि की चेष्टाओं द्वारा अपने अभिप्राय को व्यक्त करनेवाला; पवित्र; लोकाचार में चतुर और कुलीन व्यक्ति होना चाहिए। वह राजा और प्रजा में अनुराग रखनेवाला, अपने संदेश को स्मरण रखने वाला, देश-काल का ज्ञाता, पदानुरूप शरीरवाला (व्यक्तित्व), निर्भीक तथा वाग्मी (वक्ता)

हो तभी राजा का प्रिय होता है!

आज के आधुनिक युग में इन गुणों की उपयोगिता से कौन इन्कार कर सकता है। हमारे राजदूतों तथा दूतावास के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति इन्हीं गुणों के आधार पर होनी चाहिए!

भारत तथा यूनान

परम्परागत इतिहास में यूनान तथा भारत के दौत्य सम्बंध की चर्चा सिकन्दर के भारतीय आक्रमण के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में की जाती है कि सैल्यूकस निकेटर ने, मेगस्थनीज नामक राजदूत को मौर्य दरबार में पाटलिपुत्र भेजा। यूनान तथा भारत के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बंधों का उल्लेख ईसा पूर्व पाँचवीं शदी में भी पाया जाता है। प्रोफेसर सर फ्लिडर्स पेट्री कहते हैं "४८० ई. पू. में यूनान में पारसी सेना में बहुत से भारतीय सैनिकों की उपस्थिति.....और मेम्फिस में भारतीयों के शिरोभाग की मूर्तियों की प्राप्ति ने सिद्ध कर दिया है कि वहाँ व्यापार के लिए भारतीय रहते थे।" एरिस्टोजेनस (३३० ई.पू.) नामक संगीतज्ञ ने भारतीयों के सम्बंध में एक कहानी लिखी है कि इन व्यक्तियों में से एक ने एथेन्स में सुकरात से दर्शनशास्त्र के सम्बंध में पूछताछ की और जिसके प्रश्नों को सुनकर पाश्चात्य जगत के महान तत्ववेत्ता मौन हो गये। इससे पता चलता है कि ईसा से पूर्व पाँचवीं शताब्दी में भारत और यूनान में सांस्कृतिक शिष्टमण्डलों का आना-जाना होता था।

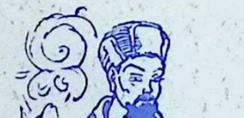

ह्वेनसाँग

मेगस्थनीज के वाद यूनान से कई राजदूत भारत आये। यूनान के राजा ऐन्टियोकस साटर ने डिमसकास को बिन्दुसार के दरबार में भेजा। मध्य भारत के राजा भागभद्र के दरवार में यूनान से हेलियोडोरस नामक राजदूत आया था, जिसकी प्रशस्ति भिलसा के समीपस्थ वेसनगर लौह स्तम्भ के लेखों में उत्कीर्ण है। बौद्ध सम्राट अशोक के समय में मकदूनिया के ऐन्टीगोनस, उत्तरी अफ्रीका के मगस, एपाइरस के सिकन्दर, मिस्र के टालमी और सीरिया के ऐन्टिआकस द्वितीय ने पाटलिपुत्र के साथ दौत्य सम्बंध स्थापित किया।

सम्राट अशोक के समय में बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार करने के लिए अनेक महाश्रावक और स्थविर वाहर गये। यहाँ तक कि राजकुमार महेन्द्र और राजकुमारी संघमित्रा को भी लंका में धर्म-प्रचार के हेतु भेजा गया!

१९६२

भारत-चीन संबंध

इन दो एशियायी देशों का सम्बंध त पुराना है। सांस्कृतिक सम्बंध के तिरिक्त इन देशों में राजनीतिक और नीतिक सम्बंध भी था। ईसा की म शदी में चीनी सम्राट हो-ती के रबार में भारत का प्रथम राजदूत गया ा। चीन के एक दूसरे वाई वंशीय राजा े अनुरोध पर मगध सम्राट ने भारत के सिद्ध विद्वान परमार्थ को चीन भेजा, जिन्होंने भारत की अनेकों संस्कृत पुस्तकों ा चीनी भाषा में अनुवाद किया। ५१८ ई. ं वाई वंश के एक और राजा ने शुंग यान को भारत भेजा, जो हमारे श से बौद्ध धर्म की १७० पुस्तकें चीन ले ा। सातवीं सदी में न्नौज के राजा हर्षवर्धन के यहाँ चीन े एक सद्भावना मिशन आया और भारत से भी उसके प्रत्युत्तर में एक मिशन चीन भेजा गया। इसी संबंध में न हियुन नामक चीनी विद्वान भारत में न बार आया। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान यात्री फाह्यान ह्वेन साँग और इत्सिग के नाम े सभी लोग परिचित हैं। फाहयान ने नी पुस्तक में लिखा है कि "मैं चीन में वसे प्रसिद्ध विद्वान कुमारजीव का शिष्य हूँ।" ज्ञातव्य है कि कुमारजीव चीन में बुद्ध-संदेश ले जाने वाले भिक्षुओं में प्रमुख थे! उनके अतिरिक्त परमार्थ, बुद्धभद्र, बुद्धयश, गुणवर्मन, गुणभद्र, बोधिधर्म, संघपाल, उपशून्य, बोधिरुचि और बुद्धशांत प्रमुख महाश्रावक बुद्ध संदेश लेकर चीन गये। ७९५ ई. में उड़ीसा के राजा शुभाकारदेव ने समकालीन चीनी सम्राट के दरबार में "गण्डव्यूह" नामक पुस्तक की चित्रित हस्तलिखित प्रति लेकर एक सांस्कृतिक मिशन भेजा!

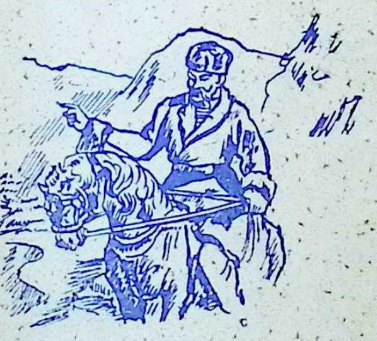

फाह्यान

भारत तथा रोम

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में रोमन सम्राट आगस्टस सीजर के समय से ही भारत तथा रोम के बीच में व्यापारिक अथवा राजनैतिक कार्यों के लिए दूतों का आदान-प्रदान होता था। आगस्टस के ही समय में भारत से चार बार दूत भेजे गये। एक बार राजदूत के साथ एक भारतीय दार्शनिक भी था, जिसने एथेंस में जलकर आत्महत्या कर ली। दमिश्क के निकोलस के अनुसार एक दौत्यमण्डल रोमन-दरबार में चार वर्षों तक रहा। रोमवासी भारतीयवस्तुओं के बड़े प्रशंसक

रोज़ पहनने के कपड़े...

सनलाइट से

कितने सफ़ेद और उज्जले!

SUNLIGHT
SOAP

साफ़, सजीले! सफ़ेद और उजले!
यह है सनलाइट से धुले कपड़ों की शान! अपने
सभी कपड़े घर में सनलाइट से धोइये।

सनलाइट बढ़िया झागवाला शुद्ध साबुन

S. 32A-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

और इसके लिए रोम साम्राज्य को ११ लाख पौण्ड, अथवा १ करोड़ ६५ लाख रुपये खर्च करना पड़ता था। ईसवी सन् ९८ से लगभग ३७५ सन् तक ट्राजन, हेलोगैबल्स, हेड्रियन, ऐन्टोनिनस-पायुस, आरेलियन, कान्स्टैन्टाइन और जूलियन जैसे प्रसिद्ध सम्राटों ने भारत से दौत्य सम्बंध बनाये रखा। इसका प्रमाण भारत में पाण्डिचेरी के पास उत्खनन से प्राप्त रोमन सिक्कों से भी मिलता है।

फारस तथा अन्य देशों से दौत्य संबंध

महान एशीमियन के साम्राज्य काल में जितने ही ईरान के राजा भारत आये तथा उन्होंने यहाँ के निवासियों के साथ तोहफों और उपहारों की अदला-बदली की। स्वदेश लौटते समय वह अपने साथ यहाँ के अनेक कारीगर, विद्वान तथा दार्शनिक भी ले गये, जिन्होंने ईरान में भारतीय कला और संस्कृति का प्रचार किया। डेरियस के राज्यकाल में भारतीय सैनिकों की एक टुकड़ी उसकी सेना में काम करती थी। उदयपुर के राजा गोह का विवाह ईरान के प्रसिद्ध न्यायप्रिय राजा नौशेरवाँ की पौत्री के साथ हुआ था। नौशेरवाँ के समय में एक फारसी हकीम भारत में संजीवनी बूटी खोजने आया। उसे संजीवनी तो नहीं मिली, पर कहीं से 'पंचतंत्र' उसे मिल गया। वर्जो नामक उस हकीम ने पंचतंत्र का "दिमना कलीला" के नाम से पहलवी भाषा में अनुवाद कर डाला!

भारत और ईरान का सम्बंध—सांस्कृतिक तथा राजनैतिक मौर्य तथा गुप्तकाल में अक्षुण्ण बना रहा। चालुक्य राजा पुलकेशिन के समय में एक फारसी दूत-मंडल उसके दरबार में आया, जिसका सुन्दर चित्र अजन्ता की गुफा चित्रकारियों में सुरक्षित है। भारत से भी बहुत से विद्वान और कूटनीतिज्ञ ईरान के राजदरबार में सम्मानित होते थे।

वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के विस्तार के इतिहास से सभी परिचित हैं। जावा, सुमात्रा, मलाया, बाली, वोर्निया, आदि द्वीपसमूह भारतीय कला, धर्म और संस्कृति के घर ही जैसे हैं। इन देशों से दौत्य सम्बंध भी स्थापित था। सुमात्रा के राजा बालपुत्र देव ने बंगाल के राजा देवपाल देव के दरबार में अपना दूत भेजा था और इसी दूत ने नालन्दा विश्वविद्यालय को पाँच गाँव दान में दिया।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के कुछ ही समय पूर्व यह परम्परा वन्द हो गयी। स्वतंत्र भारत ने संसार के सभी राज्यों से यह संबंध पुनर्जीवित कर लिया है। देश की प्राचीन परम्परा और दूतों के गौरवशाली आदर्शों को अक्षुण्ण रखते हुए हमारे देश के कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधि विदेशों में देश की शांतिप्रिय संस्कृति को गौरवान्वित करेंगे, यह हमारा विश्वास है, क्योंकि वे पंचशील के प्रवर्तक भगवान तथागत के संदेशवाहकों के उत्तराधिकार के सच्चे संरक्षक हैं।

* * *

तारकनाथ बाली

नूतन साहित्य की आकांक्षा : सूर्योदयी घोषणा के सन्दर्भ में

सूर्योदयी घोषणा की बात को आगे बढ़ाते हुए श्री बाली ने यह लेख हमें लिख भेजा है : हम उनके कृतज्ञ हैं। उनका अपना कथन है कि : 'भारतीय समाज की परिस्थितियाँ पश्चिम की परिस्थितियों से भिन्न हैं। उनका अपना एक रूप है, अपनी सीमाएँ हैं, अपनी आकांक्षाएँ हैं, और विकास की अपनी एक गति और क्रम है। उसको समझे बिना विदेशी साहित्यिक प्रवृत्तियों और वादों को भारतीय साहित्य-चेतना में घसीट लेना किसी प्रकार से भी संगत, वैज्ञानिक और ग्राह्य नहीं है। आज के अधिकांश भारतीय साहित्यकार इस सत्य से परिचित नहीं हैं।

इधर नयी कविता के मूल्यों एवं मानों के संबंध में विशेष रूप से विचार-विमर्श हुआ है। वस्तुतः यह विचार-विमर्श केवल नयी कविता तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। उसकी सीमाएँ साहित्य की सभी विधाओं को अन्तर्भूत करती हुई, कला के सभी रूपों को समेटती हुई, नये जीवन तक विस्तृत हैं। इसीलिए मैंने नयी कविता पर ही विचार न कर साहित्य मात्र की आकांक्षा पर विचार करना उचित समझा है।

सबसे पहले 'नयी कविता' के प्रयोग पर विचार होना चाहिए। 'नयी' विशेषण युग सापेक्ष हुआ करता है और इसलिए 'नयी कविता' को कविता के किसी वाद तक सीमित नहीं करना चाहिए। क्या विशेषण वादात्मक नहीं है। जो उसे वादात्मक समझते हैं, वे युग में हैं। यह भी सच है कि इधर कुछ लोग जान-बूझकर इस युग का शिकार होकर उसके प्रचार में लगे हैं। इन पथभ्रष्ट दिग्भ्रमित विचार वाहकों से सावधान रहना परम

आवश्यक है।

प्रयोगवाद के विषय में एक बड़ा भारी भ्रम फैला हुआ है। जिससे शायद ही कोई प्रचारक या आलोचक अछूता रहा हो। वह यह कि प्रयोगवाद को कविता का वाद समझा जाता है। इससे बड़ा साहित्यिक भ्रम कोई दूसरा नहीं है। प्रयोगवाद का कविता से क़तई कोई रिश्ता नहीं है। उनका संबंध या तो प्रचारात्मक भूमिकाओं-आलोचनाओं से है, या तुकबंदियों से। प्रचारात्मक भूमिकाएँ न तो स्वयं कविता का स्थान ले सकती हैं और न ही तुकबंदियों को कविता मनवाने में समर्थ हो सकती हैं। हाँ यदि कोई चाहे, तो उन प्रचारात्मक भूमिकाओं-आलोचनाओं को भी 'प्रयोगवादी कविता' कह ले। इसमें न तो उन प्रचारात्मक भूमिकाओं-आलोचनाओं की वृद्धि होगी और न 'प्रयोगवादी कविता' की ही हानि। बात सिर्फ़ नाम की है और समझ की।

"प्रयोगवाद कविता' को या तो तुकबंदी कहा जा सकता है और या पद्य। वैसे तो 'प्रयोगवादी पद्य' नाम ही अधिक सार्थक है, क्योंकि ऐसी रचनाओं में कोई तुक तो है नहीं।

तथाकथित प्रयोगवादी संकलनों में या तो कवि हैं, जैसे शमशेर बहादुर-सिंह, नागार्जुन, धर्मवीर भारती आदि, या पद्यकार। पद्यकारों का नाम लेने से

श्याम मोहन दुब

●

सनातन सूर्योदयी नूतन कविता के नाम

आत्महारा
दिशाहारा हो भटकती
पराजयी कुण्ठित
आत्मपीड़ित
अनाथ काव्य चेतना–
जाओ !
आओ बदल कर वस्त्र नूतन
नया मस्तिष्क;
नयी हो चेतना
हम स्वागत करेंगे।
अल्प से महत
जड़ से आनन्द तक तुम बढ़ो;
ले चलो–
अंधकार से प्रकाश में
गरल नहीं अमृत दो;
तोड़ चलो सीमा
भेंट लो असीमा।
स्वागत तुम्हारा
ओ सनातन सूर्योदयी
नूतन कविता धारा !
गंगा सी बढ़ो–
नगर-नगर-ग्राम ग्राम
होवें पवित्र,
स्वागत कर तुम्हारा;
ओ सनातन सूर्योदयी
नूतन कविता धारा !

कोई लाभ नहीं। इधर प्रयोगवाद पर बहुत चर्चा हुई है, इसलिए प्रयोगवादी पद्य की विशेषताएँ भी सुन लीजिए। वह पद्य या तो निरर्थक, असंगत और अनर्गल होता है अथवा संकीर्ण, ह्रासोन्मुखी, घोर व्यक्तिवादी एवं मनोविश्लेषण शास्त्र के अधकचरे ज्ञान की बेसाखी पर रेंगती हुई शब्द-राशि।

इधर नवीन साहित्य पर अस्तित्ववाद का प्रभाव भी लक्षित हो रहा है। वस्तुतः अस्तित्ववाद घोर निराशावादी, वीभत्स कुंठावादी चेतना से निःसृत हवाई दर्शन है। उसके उदय के पीछे विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, जिनकी व्यभिचारजन्य अराजकता ने अपना दार्शनीकरण कर अस्तित्ववाद की प्रतिष्ठा की है। भारतवर्ष में न तो ऐसी सामाजिक स्थिति है और न ही कभी आयेगी। इसलिए अस्तित्ववाद के भारतीय वादकों को हमारी यह नेक सलाह है कि वे अपनी नज़रों से देखना और अपने दिमाग़ से सोचना सीखें।

साहित्य की जन्मभूमि है समाज। पश्चिम में समाज ने जैसे-जैसे विकास किया, वैसे ही वैसे उसके साहित्य आदि का भी विकास हुआ। वहाँ के साहित्यकारों ने अपनी आँखों से देखा है, अपने दिमाग़ से सोचा है और उनकी सामाजिक चेतना ने उन्हें जिस ओर मोड़ा है, वे उधर मुड़ते चले गये। वहाँ पर जो प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद आदि का उदय हुआ है वह उनकी सामाजिक चेतना का ही परिणाम है। सवाल यह है कि वहाँ की सामाजिक चेतना से उत्पन्न वादों को भारतीय जनता के सामने पेश करनेवाले प्रयासों का मूल्य क्या हो सकता है? स्पष्ट है, कुछ भी नहीं।

भारतीय समाज की परिस्थितियाँ पश्चिम या पूर्व की परिस्थितियों से भिन्न हैं। उनका अपना एक रूप है, अपनी सीमाएँ हैं, अपनी आकांक्षाएँ हैं और विकास की अपनी एक गति और क्रम है। उसको समझे बिना विदेशी साहित्यिक प्रवृत्तियों या वादों को भारतीय साहित्य-चेतना में घसीट लेना किसी प्रकार से भी संगत, वैज्ञानिक और ग्राह्य नहीं है। अधिकांश साहित्यकार इस सत्य से परिचित नहीं हैं।

कवि या साहित्यकार के पास कला होती है, अभ्यास होता है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि उसके पास अपना चिंतन भी हो। जिन कवियों से साहित्यकारों की चेतना विदेशी वादों के जाल में उलझी हैं, उनकी चिंतन-शक्ति संदिग्ध ही समझनी चाहिए। यही कारण है कि वह पश्चिमी वादों एवं रचनाओं से छीना-झपटी करते दिखायी देते हैं।

यह आवश्यक नहीं कि नयी हिंदी कविता या साहित्य के मूल्यों की प्रतिष्ठा

वि या साहित्यकार ही करें। इस महान र्य में देश के सभी चिन्तकों का हाथ ता है और होना चाहिए। इस संबंध में ज के विचारक कवि और मेधावी लोचक का कर्त्तव्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। संभवतः आज के हिंदी साहित्य के त्र में आलोचक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। आलोचक मूलतः चिंतक और विचारक होता है और आज के आलोचक को केवल शास्त्र-ज्ञान ही नहीं, जीवन का भी व्यापक ज्ञान होना चाहिए। तभी वह अपना महत्वपूर्ण कार्य कर पायेगा। इसके लिए उसे सामाजिक जीवन की रचना और विकास-क्रम की वैज्ञानिक जानकारी होनी चाहिए।

हिंदी में सुमित्रानंदन पन्त और वीरेन्द्र-कुमार जैन ने नयी कविता के मूल्यों और मानों पर विचार किया है। उन दोनों ने ही वादग्रस्त, संकीर्णता और व्यक्तिवादी चेतना का घोर विरोध किया है। यह विरोध आध्यात्मिक विकासवाद के स्तर पर किया गया है। और इसी आध्यात्मिक आलोक में मानवतावादी और समाजवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है।

मेरा यह निश्चित मत है कि आगामी साहित्य–जो सच्चे अर्थों में साहित्य होगा– समाजवादी पृष्ठभूमि पर ही आधारित होगा। वादग्रस्त साहित्य-चेतना और सर्जना का पतन अवश्यंभावी है। किंतु मेरा यह मत किसी प्राचीन-नवीन दार्शनिक मत पर स्थित नहीं है, वरन् आज की भारतीय जन-चेतना और लोक-रुचि पर आधारित है।

इस संबंध में मुझे दो मूल बातें कहनी हैं। एक तो यह कि जहाँ तक विदेशी वादों का सवाल है, वे पूर्ण रूप से भारत में कभी भी स्वीकृत नहीं होंगे। इसका कारण यह है कि विभिन्न वाद–साहित्यिक, राजनीतिक, दार्शनिक आदि–परिस्थिति विशेष की उपज होते हैं। और भारत की परिस्थिति अन्य सभी देशों की परिस्थितियों से निश्चित रूप से भिन्न है। इस पर मतभेद हो सकता है और यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी राष्ट्रों में भी औद्योगिक विकास हुआ है और साम्यवादी राष्ट्रों में भी। और अब जब भारत औद्योगिक विकास कर रहा है, तो फिर वहाँ वैसे ही वादों का जन्म क्यों नहीं हो सकता?

इसका एक उत्तर यह है कि पश्चिमी एवं साम्यवादी राष्ट्रों के औद्योगिक विकास के तथ्य आज भारत के सामने हैं। यह एक ऐसा तथ्य है, जो न तो पश्चिमी विकास के सामने था और न साम्यवादी विकास के सामने। इसलिए विकास की इन दोनों परिस्थितियों के गुण-दोष हमारे सामने हैं और हमारा प्रयास यह है कि हम अपने भौतिक एवं सांस्कृतिक

विकास में इन गुण-दोषों के ज्ञान से लाभ उठाने की कोशिश करें। यही कारण है कि हमारे देश की भूमि से उन वादों का जन्म और उसी रूप में कभी नहीं होगा, जो अन्य राष्ट्रों में अंकुरित-पल्लवित हुए।

दूसरी बात यह है कि एक सामान्य भावना है, जिसे हमारे देश ने स्वीकार किया है और जिसका विकास निश्चित है। वह भावना है, समाजवादी भावना। जीवन के सभी पक्षों में–ऐन्द्रिय, मानसिक, आत्मिक–यह भावना बद्धमूल होती जा रही है। अतएव यह निश्चित है कि हमारा नवीन साहित्य मनुष्य और मनुष्य की सहज़ समानता और स्वाभाविक संगठन की भावनाओं से अनुप्राणित होगा–साहित्य की कला भी और चेतना भी।

इस समय हमारे देश के सामने तीन प्रमुख साध्य हैं–राष्ट्र की भावात्मक एकता, राष्ट्र का विकास और विश्व-शांति की रक्षा और पोषण। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय, तो इन तीनों की सिद्धि का मार्ग एक ही है। और वह है सामाजिक एकता और सामाजिक संगठन। अतएव वही साहित्य उनकी सिद्धि में सहायक होगा, जिसमें समाजवादी चेतना और समाजवादी कला की अखंड सृष्टि होगी।

समाजवादी चेतना से हमारा अभिप्राय उस संयुक्त साधना से है, जो व्यक्ति और वर्ग की खाइयों का निर्माण करनेवाली कुंठावादी, स्वार्थमय एवं शोषण-लोलुप प्रवृत्तियों का–चाहे वे व्यक्ति के रूप में हों, चाहे वर्ग के रूप में और चाहे पार्टी के रूप में–पर्दाफ़ाश करने में तल्लीन हो, और जो सामाजिक चेतना से अनुप्राणित, राष्ट्रीय भावना से पुष्ट और अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम से आन्दोलित विकासगामी शक्तियों को– चाहे वे व्यक्ति के माध्यम से व्यक्त हों, चाहे वर्ग के माध्यम से और चाहे पार्टी के माध्यम से–जीवन्त रूप से मूर्त्तिमान कर सके। ऐसी चेतना से अनुप्राणित साहित्य ही नया साहित्य है, जो कुंठाओं की अभिव्यक्ति का नहीं, प्रेममूलक संगठन की अभिव्यक्ति का साधन होगा, जो व्यक्तिवादी अनाचार का पोषक नहीं, वरन् सामाजिक सन्तुलन को प्रतिष्ठित करेगा, तथा जो संघर्षनिरत ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का नहीं, वरन् शांतिपोषक, सृजनात्मक शक्तियों को चित्रित करेगा।

*

अरुणकुमार शर्मा

अव्यक्त शक्तियों का साक्षात्कार

●

आँख से दिखायी पड़ने वाली दुनिया में प्रत्यक्ष कारण-कार्य के क्रम में जो शक्तियाँ काम करती दिखायी पड़ती हैं, वही सब कुछ नहीं हैं। हमारे और जगत-सत्ता के भीतर ऐसी असंख्य अव्यक्त शक्तियाँ क्रियाशील हैं, जो हमारी बुद्धि की पकड़ में नहीं आतीं। योगी और तांत्रिक अत्यन्त वैज्ञानिक तरीके से इन शक्तियों पर प्रभुता स्थापित कर इन्हें जीवन में संचारित करते हैं। अन्तर-आत्मिक ज्ञान के चूड़ामणि देश भारत में ऐसी अव्यक्त शक्तियों के साधन और परीक्षण के लिए विशाल पैमाने पर एक प्रयोगशाला खुलनी चाहिए। विज्ञान और आत्मज्ञान की समन्विति में से जो नवीन युग आनेवाला है, उसका नेतृत्व भारत के ही हाथ है, यह हमें भूल नहीं जाना है।

●

विश्व-ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ऐसी अगणित शक्तियाँ हैं, जिनमें से कुछ प्राणियों के अनुभव में आती हैं, किंतु कुछ शक्तियाँ ऐसी हैं, जिनका न तो हमें ज्ञान है और जिनका न हमें अनुभव ही होता है।

जीवन स्वयं एक महती शक्ति है। प्रकृति के ऊपर जीवनी शक्ति किस प्रकार काम कर रही है, इस रहस्य को आज तक कोई जान नहीं पाया है। वर्तमान युग प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए कमर कसे हुए है, किंतु प्रकृति के ऊपर जीवनी शक्ति किस प्रकार काम कर रही है—इस रहस्य को वह समझ नहीं पाया है। इस रहस्य का नाम गुप्त शक्ति या अव्यक्त शक्ति है। इस प्रकार की अव्यक्त शक्तियों का साक्षात्कार करना

अब तक केवल भारत जानता है। विश्व के अन्य देश इस रहस्य-ज्ञान से सर्वथा वंचित हैं। विशिष्ट क्रिया-योग एवं साधन के द्वारा मनुष्य अव्यक्त शक्तियों को प्राप्त कर लेता है। इन शक्तियों को प्राप्त कर वह प्रकृति का प्रभु बन जाता है, उस पर पूर्णरूपेण अधिकार कर लेता है। बाधाएँ, अड़चनें, कठिनाइयाँ और यहाँ तक कि असम्भव शब्द भी उसके कार्य में बाधक नहीं बन सकते। वह सब कुछ देख सकता है, सुन सकता है, सब कुछ अनुभव कर सकता है। वह सर्वत्रगामी बन जाता है। शारीरिक, मानसिक, किसी प्रकार की व्याधि या रोग उसे नहीं होते। ऐसे ही व्यक्ति सिद्ध या योगी कहलाते हैं!

प्रत्येक व्यक्ति में चाहे वह किसी वर्ण या वर्ग का हो, किसी देश का हो, अव्यक्त शक्तियाँ निहित रहती हैं। हर व्यक्ति साधना द्वारा इन शक्तियों का साक्षात्कार कर सिद्ध योगी बन सकता है।

अव्यक्त शक्तियों को जागृत करने के लिए सर्वप्रथम मन, शरीर और आत्मा को पवित्र एवं वलवान वनाना चाहिए। कोई भी अव्यक्त शांति किसी विशेष स्वरूप के बिना जागृत और अनुभूत नहीं हो सकती। योगी और सिद्धजन सब प्रकार की अव्यक्त शक्तियों का वर्गीकरण पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु—इन पाँच तत्त्वों के अन्तर्गत करते हैं। अनन्त अव्यक्त शक्तियाँ इन्हीं पाँच तत्वों में लीन रहती हैं। जैसे तेज के द्वारा शरीर में छिपी हुई आकर्षण-शक्ति, प्रकाश और दीप्ति—का साक्षात्कार होता है। वायु के द्वारा, गति, शक्ति और शुष्कता आदि अव्यक्त शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इसी प्रकार सब के प्रति दया, सहानुभूति, समता के भाव आदि शक्तियाँ, आकाश तत्त्व के द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं!

जाने अनजाने हमारे मन, मस्तिष्क और हृदय के अन्दर अव्यक्त शक्तियाँ अपना कार्य किया करती हैं। जव इन शक्तियों में सन्तुलन और सामञ्जस्य रहता है तब हम हर्ष, सुख और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। और जव इनका आपसी संघर्ष होता है, तो हमें शोक, मोह, ग्लानि, घृणा, पीड़ा का अनुभव होता है! तांत्रिक लोग अपनी सारी शक्ति लगाकर इन शक्तियों को संतुलित वनाये रखने का निरन्तर प्रयत्न करते हैं।

इन शक्तियों को संतुलित वनाने के लिए शरीर और मन को प्रथम सन्तुलित बनाने की ज़रूरत पड़ती है। योगी, सिद्ध और साधक लोग शरीर-विज्ञान, और मनोविज्ञान के उच्च-कोटि के विशेषज्ञ होते हैं! उन्हें इस बात का पता रहता है कि स्नायुओं के सैकड़ों शिरोभाग स्नायु-रन्ध्र के भण्डार होते हैं! इन शिरोभागों से जो स्नायु निकलते हैं, वे नाड़ी-जाल का

१९६२

र्माण करते हैं।

ोगियों की भाषा में इस नाड़ी जाल ो चक्र कहा जाता है। क्योंकि अव्यक्त क्तियाँ चक्र में ही घूमा करती हैं। र चक्रों के ही द्वारा वे शक्तियाँ द्रिय-व्यापार किया करती हैं। हमारे रीर में जितनी इंद्रियाँ हैं—उन सब के साथ िरोभाग रहते हैं! शिरोभाग ही द्रियों को शक्ति प्रदान करते हैं। दि इन्हें हटा दिया जाय, तो इंद्रियों का कास अवरुद्ध हो जाता है। इसीलिए स बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि—गी और सिद्ध बनने के लिए शिरोभाग र उनसे संबंध रखनेवाले नाड़ी-जाल हुत ही महत्व के साधन हैं। शरीर ो क्रिया-शील और विकसित बनाने ं इनका वहुत बड़ा योग रहता है।

इसीलिए योगी या तांत्रिक लोग िव्य-शक्ति के ध्यान के द्वारा शिरोभाग ी क्रिया को सदैव नियमित और संतुलित नाये रखने के लिए चेष्टा-रत रहते हैं।

यद्यपि ये नाड़ी-जाल कुल १७ हैं, न्तु योग-शास्त्र इनमें से मूलाधार-्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत—को ही धानता प्रदान करता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्गत एक महा-क्ति छिपी रहती है। वह सुषुम्ना नाड़ी से लती हुई महान् सहस्राकार चक्र में िवास करती है।

इसी शक्ति की उपासना योगी, साधक और तांत्रिक सभी लोग करते हैं।

तंत्र-शास्त्र के अनुसार काली, दुर्गा चण्डी, सरस्वती, तारा, ब्रह्मविद्या आदि इसी महाशक्ति के अनेक नाम एवं रूप हैं। समस्त विश्व, ब्रह्माण्ड इसी शक्ति का प्रतिरूप है।

सांसारिक व्यवहार निभाने के लिए जितने भी काम, रूप, संख्या आदि हैं, वे सब इसी महाशक्ति के गुण-विशेष के द्योतक हैं। क्योंकि योग-शास्त्र का कथन है कि जगत के समस्त दृश्य, कम्पन से उत्पन्न होते हैं। इसीलिए हर काम, आकृति और अंक कम्पन के परिणाम हैं। योग-सूत्र अपने इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए बतलाता है कि मनुष्य जैसा संकल्प करता है वैसा ही वह बनता है। मनुष्य के संकल्पों से ही उसकी आत्मा प्रकाशित होती है। मनुष्य की मुख्य शक्ति संकल्प है ही, वह उसे एक विशेष रूप देकर व्यक्त करता है। रूप विशेष मन को एक प्रकार के विशिष्ट आकार में बदलता है। वह आकार विशेष एक प्रवृत्ति अपने स्वभाव के अनुसार शारीरिक उष्णता को विशेष आघात पहुँचाती है—और वह आघात प्राण या स्नायविक शक्ति को हृदय में प्रवृत्त करता है। और उसी स्नायविक प्रवृत्ति से एक विशेष कम्पना-

[शेष पृष्ठ १०१ पर]

कृष्णावतार

• श्री कन्हैयालाल मुन्

धारावाहिक पूर्ण-पुरुष लीला

[१२]

... और उनका नाम पड़ा कृष्ण

कारावास से मुक्त होने के बाद देवकी अपने महल में ही रहने लगी थीं। उनका मन सदा अपने प्रिय सपनों में खोया रहता। अपने नन्हे-नन्हे पैर हवा में उछालते, स्तनपान करते, पतले-पतले होठों पर मुस्कान बिखेरते, सुन्दर, मनमोहक आँखों से उनकी ओर आनन्द-दृष्टि डालते, अपने उस नीलवर्ण, मृदुल बालक की हृदयहारी छवि उनकी आँखों में सदा बसी रहती। आसपास जब कोई नहीं रहता तो वसुदेव से वे सदा अपने लाडले की ही चर्चा किया करतीं। वसुदेव भी जब उनके सम्मुख बालक के जन्म के समय क्या-क्या चमत्कार हुए थे, गोदी में लेने पर वह किस प्रकार चतुर्भुज विष्णुस्वरूप हो गया था, अन्तर से उनके स्वतः किस प्रकार प्रार्थना फूट पड़ी थी, किन्हीं अदृश्य हाथों ने किस प्रकार कारागार के दरवाजे खोल दिये थे, किस प्रकार सभी चौकीदार निद्रामग्न हो गये थे, यमुना के जल में उनके पैर रखते ही किस प्रकार भीषण वृष्टि एकाएक रुक गयी थी, शेषनाग के विशाल फनों के समान श्याम बादल ने घिर कर किस प्रकार मूसलाधार जलधाराओं से बालक की रक्षा की थी, किसी को कानोकान खबर न लगे इस प्रकार गुप्त रीति से

ोदा की बालिका को वे किस प्रकार ाये थे और वह बालिका दुष्ट कंस े हृदय को भय से कंपित करनेवाली ार कर किस प्रकार उसके हाथ से क कर खिड़की के बाहर उड़ चली े, इत्यादि का वर्णन करते, तब देवकी ते-सुनते कभी अघाती नहीं थी।

वसुदेव और गर्गाचार्य के अतिरिक्त न दिनों देवकी को किसीसे मिलना-ना अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि वह ने हृदय में बसे प्रिय बालक की चर्चा और किसी से कर नहीं सकती थीं। त्रि के समय उनका मन वारंवार कुल पहुँच जाता और इसी सुखद ना में खो जाता कि वहाँ उनका लाल या कर रहा होगा। फिर भी इस बारे ं वह सदा सावधानी बरतती कि किसी ो उनके पुत्र के जीवित रहने की खबर न ड़ जाय।

ात को वसुदेव के शरीर पर अपना थ रख कर जब वह सो जातीं, तो उनका य सदा अपने मन में बसे उस बालक ो देखने, उसे अपनी छाती से लगा कर के सलोने मुख को बार-बार चूमने र लाड़-प्यार करने के लिए मचल ता।

प्रति पक्ष जब गर्गाचार्य यज्ञविधि न्न कराने नंद के यहाँ जाते, तो देवकी ा चित्त और भी व्याकुल हो उठता। वह उनके लौटने की इस उत्कंठा से प्रतीक्षा करती रहती, मानो उनके वापस आने पर ही उनके जीवन का समस्त आधार अवलंबित हो। जब वे लौटते और उनकी आँखों में एक अर्थसूचक इशारा वह देखतीं, तो उनका हृदय आनन्द से ओतप्रोत हो जाता। 'वह सकुशल है, सकुशल है मेरा लाल, मेरा तारणहार, मेरा प्रभु!' वह मन ही मन कह उठतीं।

कभी-कभी तो अपने पुत्र को देखन की उनकी लालसा इतनी प्रवल हो उठती कि वह अकेले में ही लोरियाँ गाने लगतीं। यह देखकर पहले तो दासियों को वड़ा आश्चर्य हुआ, पर पीछे उन्होंने यह समझ लिया कि इनकी आठ-आठ सन्तानें बड़ी निर्दयता के साथ इनसे छीन ली गयी हैं, तो अवश्य ही उसका असर इनके मस्तिष्क पर पड़ा होगा।

एक बार देवकी को लगा कि पुत्र-दर्शन की लालसा अव और उनसे दवायी नहीं जा सकेगी, तो उन्होंने अपने हाथ से नवजात शिशु की एक मिट्टी की मूर्ति वनायी और एक छोटा-सा पालना भी उसके लिए तैयार किया। इसके वाद तो रोज़ सवेरे जल्दी उठकर नन्हे वालक की मिट्टी की मूर्ति बनाना, उसपर चन्दन, पुष्प, कुंकुम, केसर चढ़ाना, फिर उसे पालने में सुला

कर मीठी लोरियाँ गाना, फिर घंटी बजा-बजाकर भजन गाते हुए नींद से उसे जगाना और पुष्प, फल, दूध तथा मधु का भोग धरना उनका नित्यप्रति का कार्य हो गया।

वसुदेव तथा गर्गाचार्य तो यह समझ ही गये कि देवकी ऐसा क्यों कर रही हैं। देवकी के मन पर अपने प्रिय पुत्र की छवि अंकित थी और वह उनसे भुलायी नहीं जा सकती थी। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनका पुत्र और कोई नहीं स्वयं भगवान का अवतार है। दूसरों को लगता कि वे पागल हो गयी हैं, परन्तु जिस निष्ठा से वे अपने बाल प्रभु की छोटी-सी प्रतिमा का पूजन करतीं, उसे देखकर सभी लोग उनके प्रति आदर-भाव रखते।

नंद की पत्नी यशोदा की कोख से अब तक कोई सन्तान नहीं हुई थी, इसलिए प्रसूति के समय उनकी स्थिति बड़ी विषम बन गयी थी। सन्तान जन्म के समय अत्यंत पीड़ा के कारण वे बेहोश हो गयी थीं। वसुदेव की अन्य पत्नी रोहिणी अकेली ही उनकी संभाल के लिए वहाँ उपस्थित थीं।

सवेरे जब यशोदा जाग्रत हुईं, तब रोहिणी ने बालक को उनके हाथ में दिया। आश्चर्य तथा आनन्द से उनका हृदय बड़ी तेजी से धड़कने लगा। जब सभी आशाओं को वे तिलांजलि दे बैठी थीं, तब उनकी कोख से पुत्र जन्म हुआ और पुत्र भी कितना सुन्दर! कितना अद्भुत था यह बालक! उसके शरीर का वर्ण भी कैसा था घनश्याम! आनन्दोत्साह से परिपूर्ण, वालक को रोहिणी से लेकर उन्होंने अपने हृदय से लगा लिया।

'मेरे लाल-मेरे बच्चे!' आनंदातिरेक से वे बोल उठीं। बालक ने नयन खोलकर उनकी ओर निहारा। यशोदा को लगा कि उसकी आँखों में से एक अपूर्व तेज चमक रहा है।

पुत्र जन्म का यह आनन्द-समाचार कानों-कान सारे गोकुल में फैल गया। गोकुल के अधिराज वयोवृद्ध नंदबाबा के घर ऐसे सुन्दर और अद्भुत बालक ने जन्म लिया, जैसा कि किसी ने पहले देखा तक न हो, फिर शूरकुल के गोप-गोपियों की खुशी का क्या ठिकाना! वे तो हर्ष से उन्मत्त हो उठे। गोपियों ने इस तरह साज-सिंगार करना शुरू किया, मानों कोई बड़ा पर्व आ गया हो। गोपों ने अपने गाय-बैलों को नहला-धुलाकर स्वच्छ किया, उन्हें लाल अथवा नीले रंग से रंगा और उनके सींगों पर सोने-चाँदी के बर्क लगाये। आनन्दोत्सव मनाते हुए बालकों ने सारे ब्रज में धूम मचा दी। सभी लोग यशोदा के लाल को

ने नंदबाबा के यहाँ उमड़ पड़े।

जो जुलूस वहाँ आया उसमें, सोने-चाँदी के वर्क चमकाती गायें थीं, इधर उधर दौड़ादौड़ करते और आनन्द-कोलाहल मचाते बालक थे, एक-दूसरे की ढोल ठोंकते, रंगबिरंगे साफे पहने गोप थे, तथा उनके पीछे उस मंगल अवसर के योग्य वस्त्राभूषण से सज्जित माथे पर जगमग करते, चमचमाते पीतल के घड़े लिये गोपांगनाएँ थीं।

जब यह जुलूस नंदबाबा के आंगन के पास आकर रुका, तो नंदबाबा तथा उनके सम्बन्धियों ने सभी का स्वागत किया। कुतूहल से प्रेरित होकर गोपियाँ आहिस्ते से उस कक्ष में गयीं, जहाँ यशोदा लेटी थीं। यशोदा ने बड़े चाव और गर्व से अपने बालक को उन्हें दिखाया। नीलवर्ण के उस बालक को देखकर गोपिकाएँ आश्चर्य विमुग्ध हो गयीं—ऐसा सुन्दर बालक उन्होंने जीवन में कभी नहीं देखा था।

एक दिन देवकी जब अपने महल के झरोखे में खड़ी थीं, तब आकाश में चल रहे एक श्याम बादल की ओर उनकी दृष्टि गयी। बादल गहरे नीले रंग का था, बिल्कुल उनके अपने पुत्र के वर्ण का ही। वे एकटक उस मेघ की ओर देखती ही रह गयीं। उसकी आकृति बदलकर बालक के समान हो गयी। अपने मन में सर्वदा बसा वह सुन्दर मुख, रात-दिवस उनकी आँखों में घूम रहे नन्हे-से नयन, वही हाथ, वही पैर! आनन्द से वे प्रायः मूर्छित-सी हो गयीं। उनका अपना लाल भी तो उसी बादल के रंग का था-वह वास्तव में घनश्याम ही था।

फिर गर्गाचार्य तथा वसुदेव वहाँ आये। कुल पुरोहित ने बालक के जन्माक्षर बनाये थे। ऋषि मुनियों द्वारा रचे नियमों के अनुसार बालक का नाम क, घ अथवा छ पर ही रखा जा सकता था। यह भी एक चमत्कार था। इससे बालक का नाम घनश्याम—बादल जैसे श्याम वर्ण का—अथवा कृष्ण अर्थात् श्याम वर्ण का, रखा जा सकता था।

दूसरे दिन वसुदेव ने देवकी के लिए संगमरमर की एक बाल मूर्ति तैयार करवायी। देवकी ने उसका नाम 'घन-श्याम' रखा और उसे अपने पूजागृह में प्रतिष्ठित किया। यह बात उन तीनों के सिवाय कोई नहीं जानता था कि वह मूर्ति कृष्ण की प्रतीक रूप है। किसी को यह खबर पड़नी भी नहीं चाहिए थी, क्योंकि देवकी जिसकी पूजा कर रही थी, वह प्रतिमा, गोकुल में रहकर शीघ्र विकास कर रहे कृष्ण की प्रतीक रूप है, यह बात कहीं कंस को मालूम न हो जाय, उसका उन्हें बहुत डर था।

बालक के नामकरण की संस्कार-विधि का दिवस ब्रजवासियों के लिए एक महोत्सव का दिन बन गया। नंदबाबा का आंगन केले के खम्भों से सजाया गया। एक छोर से दूसरे छोर तक आम के पत्तों के तोरण वांधे गये। ज़मीन पर केशर-चन्दन का छिड़काव किया गया। आंगन के बीच में एक के ऊपर एक चमचमाते पीतल के घड़े रखे गये।

फिर ब्रज में गर्गाचार्य अपने शिष्य समुदाय सहित पधारे। शंखनाद से उनका स्वागत किया गया और नंद ने मूल्यवान वस्तुएँ भेंटकर उनका सम्मान किया। यशोदा बालक को ले आयीं और गर्गाचार्य ने उसे घी-भात खिलाकर विधिपूर्व उसका नाम 'कृष्ण' रखा।

इसके वाद बड़े ठाटबाट से ब्रह्मभो हुआ, जिसमें गोप-गोपियों ने भी भा लिया। आसपास के सभी गाँवों भिक्षुकों को भी भरपेट खिलाया गया शाम को गर्गाचार्य और उनके शि मथुरा लौटे।

वसुदेव और देवकी ने जब यह सा वृत्तांत सुना, तब उन दोनों ने खिलौने पलंग पर फूलों की ढेरी के नीचे छोटी-सी श्याम वर्ण की मूर्ति छिपी उसे निकालकर उसके आगे हाथ जोड़क नमस्कार किया और उसकी पूजा की

बेंगाल केमिकल का
सुगंधित ब्राह्मी केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वैदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है।

बेंगाल केमिकल
कलकत्ता ० बम्बई ० कानपुर

उनकी यह श्रद्धा उस दिन और भी वती हो उठी कि उनके यहाँ साक्षात् भु ने ही अवतार धारण किया है।

बारह महीने बीत गये। ब्रजवासियों ने मुना के तीर पर, जहाँ गोपनाथ महादेव का प्राचीन मंदिर स्थित था, श्रीकृष्ण का न्मदिवस मनाया। नंद ने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें भोजन कराया। इस भोजन-समारंभ में गोप-गोपियों को भी निमंत्रित किया गया। अपने नन्हे-से लाल को गोद में लेकर यशोदा ने स्मितपूर्वक सभी का सत्कार किया।

भोजन समारंभ का प्रारंभ मध्याह्न में हुआ था। बालक को नींद आने लगी। आमंत्रितों का यथोचित सत्कार करने और बालक को धूप न लगे, इसलिए उसे एक ओर खड़ी की गयी खाली गाड़ी के नीचे सुला दिया गया।

यशोदा स्त्रियों के समुदाय में जाकर वार्ता व विनोद करती फिर रहीं थीं कि एकाएक किसी के चीखने की आवाज़ आयी। खड़ी की हुई गाड़ी उलट गयी थी। भय से विह्वल हो, ज़ोर से चीख़ती हुई यशोदा वहाँ दौड़ी गयीं, किन्तु वहाँ जाकर देखा, तो बालक हवा में पैर उछालता आनन्द से किलकारी करता मज़े में लेटा था– उसे कहीं कोई क्षति नहीं पहुँची थी।

नंद भी बालक के पास दौड़े आये और लात मारकर उलटी हुई गाड़ी को सीधा किया। छोटे-से बालक को निरापद देखकर सभी चकित हो गये।

गर्गाचार्य ने जब इस चमत्कार की बात कही, तो देवकी के नयन अश्रुओं से भीग गये। वह बोल पड़ी, 'मेरे लाडले, मेरे लाल मेरे प्रभु!' और आनन्दाश्रु की धाराएँ उनकी आँख से बहने लगीं।

(क्रमशः)

[अनु० ओंकारनाथ शर्मा]

★

[पृष्ठ ९५ का शेषांश]

त्मक ध्वनि होती है। इस सिद्धांत से यह निष्कर्ष निकला कि नाम, अंक और आकृति के समस्त दृश्य कम्पन के द्वारा ही प्रकट होते हैं। और वे कम्पन विशेष भाव होते हैं, जो दिव्य-शक्ति के ज्ञान में निवास करते हैं। वैय्याकरण पाणिनि ने भी यह सिद्ध किया है कि अक्षर विभिन्न शक्ति-सम्पन्न ध्वनियाँ हैं। निरन्तर पुनरावृत्ति के द्वारा ये अक्षर स्पष्ट कम्पनों को उत्पन्न करते हैं। और अक्षर स्वयमेव कम्पनों से उत्पन्न होते हैं!

प्रकृति के अन्तराल में निरन्तर एक नित्य शब्द व्याप्त रहता है। जो व्यक्ति अपने मन को संतुलित, संयमित बनाकर अपने अन्दर उस शब्द को सुनने का अभ्यास कर लेता है, वही अव्यक्त शक्तियों का साक्षात्कार करके योगी या सिद्ध बन जाता है। योग के संबंध में हम फिर कभी पुनः विस्तारपूर्वक लिखने का प्रयत्न करेंगे।

०००

विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती हिन्दी संस्करण

कुल २० खंड–डबल डिमाई १६ पेजी साइज़ में; पृष्ठसंख्या प्रति खंड लगभग ५००; मजबूत और आकर्षक सजिल्द प्रति खंड का सस्ता मूल्य (सिर्फ जन्मशती वर्ष के लिए) ४ रु. ७५ न. पै. और प्रति सेट ४७ रु. ५० न. पै.

आधुनिक भारत के संत तथा स्वदेश-प्रेमी स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मशती सन् १९६३ ई. जनवरी में सारे संसार में मनायी जायगी, इस शुभ समारोह के अवसर पर उनकी समग्र ग्रन्थावली "विवेकानन्द साहित्य" नाम से दस खंडों में प्रकाशित हो रही है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसा प्रथम प्रकाशन है। इन खंडों में स्वामी विवेकानन्द जी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज, आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित और अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों, तथा कथाओं का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादकों में पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्री सुमित्रानन्दन पन्त, डा. प्रभाकर माचवे, श्री फणीश्वर नाथ 'रेणु' आदि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमियों के लिए सुलभ बनाने और केवल प्रचार के उद्देश्य से इन पुस्तकों का मूल्य बहुत ही कम रखा गया है। जो पूरा सेट खरीदना चाहते हैं, वे ३० सितम्बर १९६२ को या उसके पहले पूरा मूल्य अथवा अंशतः १५ रु. अग्रिम हमारे निम्नलिखित पते पर, अथवा हमारे एजेंटों के पते पर भेजकर अपने नाम दर्ज करा लें। सेट का पूरा मूल्य पहले जमा करने वालों को २ रु. ५० नं.पै. कमीशन दिया जायगा, अर्थात्; ४५ रु. में पुस्तकों का एक सेट मिलेगा, अग्रिम २५ रु. देनेवाले ग्राहकों को बाकी रुपया एक ही साथ, अथवा दो क़िस्तों में ३१ दिसम्बर १९६२ को या उससे पहले अवश्य जमा कर देना पड़ेगा, रुपये की प्राप्ति हम लोगों द्वारा या हमारे एजेंटों द्वारा स्वीकार की जायगी। पुस्तक-वितरण का समय बाद में सूचित किया जायगा। चूंकि अब केवल ४००० सेट जनता के लिए प्राप्य हैं; इसलिए सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे जल्दी से जल्दी अपना नाम दर्ज करा लें। रुपया नक़द, मनी-आर्डर या बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft) द्वारा निम्नलिखित पते पर या हमारे एजेंटों के पास भेजना चाहिए। डाक द्वारा सीधे अद्वैत आश्रम से जो ख़रीद करना चाहते हैं, उनको डाक और पैकिंग खर्च १० रु. ५० न.पै. अतिरिक्त अग्रिम भेजना चाहिए। दूसरे ग्राहक स्वयं ही कलकत्ते से या हमारे एजेंटों से पुस्तकें ले सकते हैं।

एजेंटों का नाम––रामकृष्ण मिशन: इलाहाबाद, कानपुर, वाराणसी, लखनऊ, कनखल, दिल्ली, बम्बई, पटना, नागपुर, जमसेदपुर और आसनसोल।

मैनेजर, अद्वैत आश्रम, ५, डिही एंटाली रोड कलकत्ता–१४

[भारतीय साहित्यकारों का संगमतीर्थ : पृष्ठ ३१ का शेषांश]

यूनिवर्सिटियों की भ्रमपूर्ण भाषानीतियों के कारण कुछ ऐसी धाराएँ एक-दूसरे को काटती हुई उपस्थित हो गयी हैं कि उनके कारण कोई सीधा मार्ग सुझायी नहीं पड़ता।

जहाँ तक साहित्य का मनुष्य के अन्तर्जगत को विषय बनाने का सवाल है, नये लेखकों ने उस दिशा में अपनी खोज न केवल रूमानी तथा वैभवसम्पन्न चरित्रों में की, बल्कि निम्नवर्गीय, दरिद्र और अभागे लोगों में भी शुरू कर दी है और यह बिल्कुल ठीक भी है। उनके इस प्रयत्न से हमारे साहित्य की समृद्धि हुई है। कुछ ऐसे साहित्यिक भी हैं, जो कुछ युरोपियन धाराओं का अनुकरण कर और अपने को 'यथार्थवादी' बता कर गंदगी का प्रचार करने में लगे हैं। एक ऐसी धारा के लेखक भी हैं, जो समाज की ऊपरी आवश्यकताओं और परिणामों पर लिखते हैं और स्वयं को एक उच्च, मसीहा-सा मानते हैं। और, उन लोगों का जिक्र तो मुझे भूलना ही नहीं चाहिए, जो कुत्सित, हीन रुचियों की माँगें पूरी करने में यौन-भावनाओं को महत्व देने और मानव मूल्यों का ह्रास करने में लगे हैं और स्वयं को 'आधुनिक' मानकर गर्व भी करते हैं।

नयापन लाने की कोशिश के बावजूद, भारत भर में अब भी अंग्रेजी साहित्य ही एक समान प्रेरणा का स्रोत है, चाहे वह अपने श्रेष्ठ रूप में न होकर अधिकांशतः रोमांचकारी उपन्यासों के सस्ते संस्करणों में ही हो। फिर भी, ऐसी नयी धारणाओं ने अब तक कोई स्पष्ट रूप नहीं लिया हैं, जो हमारे विचारों, मान्यताओं, आशाओं और कल्पनाओं को प्रभावित कर सकें। कम-से-कम भारत भर में साहित्यिक प्रयास को एक नयी चेतना और शक्ति देने लायक प्रभावशील तो वे नहीं हैं। कला की कोई नयी भारतीय परम्परा विकसित नहीं हुई है, जो साहित्य को एक नयी संजीवनी शक्ति दे सके। यहाँ तक कि टैगोर-शताब्दि भी एक श्रद्धेय पूर्वज के प्रति श्राद्ध ही था, न कि एक जीवंत समाधि पर प्रेरक पूजा। ●●●

देश के साहित्य-क्षेत्र में पृथक्करण की प्रवृत्ति ही इस दिशा में हमारी प्रमुख कठिनाई है। हम यह स्वीकार करने में झिझकते हैं कि अंग्रेजी ही हमारी बौद्धिक एकता को क़ायम रखनेवाली कड़ी है और बहुत समय तक रहेगी। हम इस तथ्य के प्रति उदासीन-से हो गये हैं कि प्रादेशिक भाषाओं पर अनावश्यक बल देकर और एक समान माध्यम की उपेक्षा कर, हम एक भाषा के साहित्यिक-

वर्ग को दूसरे भाषीय दल से पृथक कर, समस्त भारत में साहित्यिक आदान-प्रदान और आपसी सम्पर्क को कठिन बनाते हैं।

उदाहरण के लिए हमें अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं। हमारे अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं के उद्‌गार यदि अंग्रेजी के पत्रों में उद्‌धृत नहीं होते, तो उनका देशव्यापी प्रभाव नहीं होता। यदि गांधीजी भी इतनी सचोट अंग्रेजी में नहीं लिखते, तो शायद अपने समय में वे भारत को इतना प्रभावित नहीं कर सकते थे। टैगोर की कई रचनाएँ हमें अंग्रेजी के माध्यम से ही जानने को मिली हैं।

स्वयं अपने अनुभव की ही बात कहूँ। कई वर्षों पहले लिखे गये, मेरे कुछ उपन्यास उत्तर भारत में हिंदी अनुवाद, और समस्त भारत में अंग्रेजी अनुवाद द्वारा ही अभी हाल में जाने गये हैं। केरलवासियों को 'भगवान परशुराम' की जानकारी अंग्रेजी संक्षेप के मलयालम अनुवाद द्वारा हुई। श्री एच. एम. पटेल के अंग्रेजी अनुवाद से किया गया 'तपस्विनी' का हिंदी अनुवाद अब अधिकाधिक लोगों को पढ़ने को मिला है। श्रीकृष्ण के जीवन पर लिखित मेरा ऐतिहासिक उपन्यास 'कृष्णावतार' अंग्रेजी माध्यम के कारण ही सारे भारत में प्रचलित हुआ है। यदि मैं उसे गुजराती में लिखता, तो शायद साहित्यिक दृष्टि से वह अधिक समृद्ध होता, परंतु उसका प्रचार केवल गुजराती भाषाभाषियों में ही होता। हमें यथार्थ को स्वीकार करना चाहिए। यह अंग्रेजी का माध्यम ही है जो, समस्त भारत के साहित्यिकों को एक-दूसरे के निकट लाता है और विभिन्न भाषाओं में हुए नये अनुभवों का लाभ हमें पहुँचाता है।

गुजराती भाषा से मुझे बहुत प्रेम है और उसकी सेवा में जीवन के अनेक वर्ष जो मैंने बिताये हैं, उन पर मुझे गर्व है, फिर भी इतना मैं जरूर कहूँगा कि हमारी आज की परिस्थिति को देखते हुए सारे भारत में प्रचलित एक समान माध्यम के रूप में अंग्रेजी का परित्याग करना हमारे साहित्यिकों को एक समान भावना, एक समान प्रेरणा से वंचित करना है। उसे अस्वीकार करना प्रादेशिक भाषाओं की अंधेरी गुफाओं में अपने-आप को बंद कर लेना और संसार के साहित्य में जो श्रेष्ठ है, उससे अपनी आँखें मूंद लेना है। मैं यह बात आपको स्वयं अपने अनुभव से कह रहा हूँ।

●●●

अखिल भारतवर्षीय माध्यम के रूप में एक राष्ट्रीय भाषा के लिए हमारा इच्छुक होना स्वाभाविक ही है, परन्तु राष्ट्र-भाषा एक दिन में नहीं बनती, एक पीढ़ी में भी नहीं। संविधान के अनुरूप प्रमुखतः संस्कृतपोषित हिंदी पिछले कुछ वर्षों में काफी विकसित हुई है और भविष्य में भी वह द्रुतगति से आगे बढ़ेगी, किंतु अखिल

भारतीय स्तर पर साहित्य के माध्यम का स्वरूप धारण करने में उसे कई पीढ़ियाँ और लगेंगी, औ वह भी तब, जबकि संस्कृत से वह निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करती रहे।

यहाँ मैं राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहूँगा। उनके निधन से हमें भारी क्षति पहुँची है। अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के योग्य बनाने में, अपूर्व लगन के साथ, व्यतीत किया। हमारी राष्ट्रीयता का इतिहास जब [illegible] रूप से कभी लिखा जायगा, तब इस देश में एक महानतम संगठन शक्ति के निर्माता के रूप में वे स्वीकृत होंगे।

संविधान के अनुरूप हिंदी की वृद्धि को रोकने का कुछ अधिकारी लोग असफल प्रयत्न कर रहे हैं। वे उसे कृत्रिम तौर पर, असंस्कृतनिष्ठ बनाना चाहते हैं, किंतु उनकी चेष्टा सफल नहीं हो सकती। अधिकांश भारतीयों के लिए केवल संस्कृत प्रयोग और शब्द ही भाषीय एकता का समान धरातल तथा उच्चतर विचार तथा अभिव्यक्ति के लिए एक विकसित स्रोत प्रस्तुत करते हैं। यदि दुर्भाग्यवश, पिछले पचास वर्षों से चले आ रहे हिंदी के विकास को समान तत्वों से वंचित करने में ये लोग समर्थ हुए, तो जो नयी बाजारू भाषा पनपेगी, वह साहित्यिक आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में सर्वथा मूल्यहीन सिद्ध होगी।

●●●

आज जो भी भ्रांति व्याप्त हो, साहित्यिकों के नाते हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा कर्तव्य हमें क्या करने को कहता है।

जीवन भर मैं इसी श्रद्धा से प्रेरित रहा हूँ कि एक साहित्यिक का ध्येय अपने अन्तर के भंडार को सुन्दर शब्दों का रूप देना है। यह वह तभी कर सकता है, जब अपनी जगह पर वह दृढ़ हो। इसके लिए उसे सर्वप्रथम सम्पूर्ण हृदय से सत्य के प्रति निष्ठा; उच्चतर मूल्यों के प्रति सदा समर्पण की भावना के साथ त्यागवृत्ति; और अंत में सौंदर्य के लिए निरन्तर खोज की आवश्यकता है। और, सौंदर्य की यह शाश्वत शोध तभी संभव है, जब कि मन से स्थूल भावों को निकालने में वह निरन्तर प्रयत्नशील हो।

आधुनिक प्रवृत्तियों का अनुसरण कर कुछ साहित्यिक, संसार का रूप ही बदलना चाहते हैं। उन्हें मैं पेस्तरनक के ये शब्द याद दिलाना चाहूँगा, जो उसने लारा से अपने प्रेमी यूरी की अरथी पर कहलाये हैं :

"जीवन की गुत्थी, मृत्यु की पहेली, प्रतिभा का सौंदर्य, प्रेम की सुन्दरता—हाँ इन सबको हमने जाना-समझा है; किंतु संसार को बदलने जैसी बेकार बातों में, क्षमा करना, हमें कोई रुचि नहीं है।"

साहित्यिकों की कला, जैसा कि मैंने देखा है, विषय और भाषा में स्वयं को खो देना है। जब कभी मैं इस प्रकार अपने-आप को भूल सका हूँ, तभी कुछ अच्छा कहा जा सकने लायक मैंने लिखा है, अन्यथा वह सामान्य ही रहता है। इस आत्म-विस्मृति को कभी हम प्रेरणा भी कहते हैं। सृजन की उच्चतम स्थिति में कलाकार स्वयं

नहीं लिखता; बल्कि वह जिस मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति की चेष्टा करता है, उसीका महत्व है। यहाँ मैं पेस्तरनक को फिर से उद्धृत करना चाहूँगा। उन्होंने लिखा है:

"सौंदर्य और अर्थ का आवास तथा केंद्र भाषा स्वयं मनुष्य के लिए सोचने और बोलने लग जाती है और वह एक ऐसा संगीत है, जो बाहरी, श्रव्य ध्वनि नहीं, बल्कि अपने आन्तरिक प्रवाह की शक्ति तथा गति से संगीतमय है.....

"ऐसे क्षणों में यूरी अनुभव करता कि उसके कार्य का मुख्य अंश वह स्वयं नहीं सम्पन्न करता, बल्कि एक ऐसी पराशक्ति द्वारा वह होता है, जो स्वयं उसका नियंत्रण करती है; और वह शक्ति संसार की विचार और काव्यशक्ति है, जैसी वह उस समय थी और भविष्य में भी रहेगी। अपने ऐतिहासिक विकास में वह शक्ति, जो अगला चरण उठायेगी, उसीसे कलाकार संचालित होता है। स्वयं को इसीलिए, वह निमित्तमात्र ही मानता है।"

अपने से किसी उच्च और नियन्ता शक्ति का उपकरण–निमित्तमात्र–बनने का सौभाग्य सृजनशील कलाकार को ही प्राप्त होता है।

इन शब्दों के साथ मैं इस परिषद की सफलता की कामना करता हूँ। ●●

देना बैंक
देवकरण नानजी बैंकिंग कं. लि.
स्थापना १९३८

अधिकृत पूँजी	रु. १ करोड़
स्वीकृत एवं चुकता	रु. ५० लाख
स्थाई कोष	रु. ७५ लाख
जमा की गई रकम	रु. ४३ करोड़ से अधिक
काम चलाऊ कोष	रु. ४८ करोड़ से अधिक
खातों की संख्या	२,४०,०००

ग्राहकों के लिए देना बैंक के किसी भी ऑफिस के किसी भी रकम के चेक बिना कमिशन के वसूल किये जाते हैं।

१०० से अधिक ऑफिस और
३० सेफ डिपोजिट वॉल्ट

रजिस्टर्ड ऑफिसः
देवकरण नानजी बिल्डिंग्स,
हार्निमेन सर्कल.
फोर्ट, बम्बई १

देना बैंक की सेवायें
- ★ करंट एकाउन्ट
- ★ सेविंग्ज एकाउन्ट
  ब्याज ३%. वर्ष में १०० चेक की निकासी
- ★ स्थाई जमा
  १ से ५ वर्ष के लिए ४% से ५% ब्याज अर्ध वार्षिक हिसाब चुकाई।
- ★ अल्पवयस्क बचत योजना
  १० वर्ष और अधिक उम्र के बालक खाते खोल सकते हैं।
- ★ कैश सर्टिफिकेट
  ४½%ब्याज
- ★ विदेशी मुद्रा तथा लेटर्स ऑफ क्रेडिट
- ★ इनवेस्टमेंट सर्विस
- ★ गिफ्ट चेक
- ★ छोटे छोटे चाँदी के टुकडे

प्रवीणचंद्र वी. गांधी
मैनेजिंग डाइरेक्टर

DB/SH/24

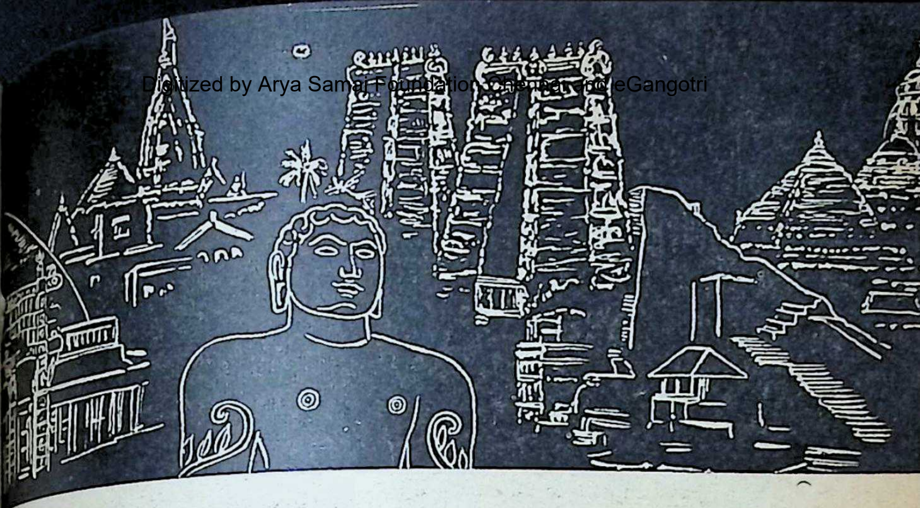

अमर भारत : १५

जयन्तकृष्ण ह. दवे

●

सूरत

प्राचीन एवं ऐतिहासिक नगर सूरत तापी या ताप्ती नदी के दक्षिणी तट पर अरब सागर से १२ मील की दूरी पर बसा हुआ है। कुछ विद्वान सूरत को शूर्पारक के नाम से भी सम्बोधित करते हैं; किंतु अब इस मान्यता को स्वीकार नहीं किया जाता। व्हेनसांग ने सातवीं शताब्दी के शुरू में सूरथ नामक शहर का वर्णन किया है, जो उसीके अनुसार बेरिगाज़ा या भृगुकच्छ या वर्तमान भड़ौच के निकट स्थित था। वह सौराष्ट्र तो हो नहीं सकता था; क्योंकि उस समय सम्पूर्ण सौराष्ट्र में इस नाम का कोई शहर नहीं था। इससे यह अनुमान किया जाता है कि सूरत नगर ही भड़ौच के निकट था। टॉलमी (सन् १५०) ने पुलिपुला की व्यापार-केंद्र के रूप में चर्चा की है, जिसे फूलपाड़ा के नाम से जाना जाता है। मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार कुतुबुद्दीन सन् १२०५ में सूरत तथा रान्देर तक पहुँच गया था। उस समय वहाँ का शासक एक हिन्दू था और सूरत से १३ मील की दूरी पर उसका कामरेज नामक दुर्ग स्थित था। सूरत को सूर्यपुर, ब्रध्नपुर,

ब्रध्नतापीपुर या तापीपुर के नाम से भी संबोधित किया जाता है। जब सन् ९९० में अनहिलवाड़ पाटण के राजाने लाट देश पर आक्रमण किया, तब उसकी सेना सूर्यपुर से होकर गुज़री थी। कुछ पारसी सन् ११४२ में ईरान से आकर सूरत के निकट नवसारी में बस गये थे। उसके बाद वे सूरत में भी आकर रहने लगे।

एक दूसरी कथा के अनुसार सन् १४८२ में गोपीनाथ नाम के एक सज्जन नें सूरत में ही गोपीपरा नामक धनाढच बस्ती को बसाया। ऐसा भी कहा जाता है कि गोपीनाथ के सातवे वंशज राममन्त्री ने सूरत तथा वड़नगर को व्यवस्थित रूप से बसाने में पर्याप्त रूप से सहायता की थी।

ऊपर वर्णित गोपीनाथ के पिता कीका नें सूरत में नीलकण्ठ महादेव के मंदिर की स्थापना की और एक पुल का भी निर्माण किया। कीका एक अति धनाढच पुरुष थे और उन्हें सूरत का राजा कहा जाता था। उनकी पत्नी का नाम रानी था और जिसके नाम पर ही सूरत के रानी तालाब का नाम पड़ा, ऐसा समझा जाता है। गोपीनाथ ने भी विशाल गोपी तालाब का निर्माण किया था। गोपीनाथ की वंशावली के आधार पर विद्वानों का ऐसा मत है कि वे नागर ब्राह्मण थे।

एक कथा ऐसी भी आती है कि सूरत का नाम सूरज के नाम पर पड़ा, जो रान्देर के एक अति धनाढच व्यापारी की उपपत्नी थी। अपने इस प्रेमी से झगड़ा कर वह हज करने मक्का चली गयी और वहाँ से लौटने पर वह सूरत में ही रहने लगी। अपने पास संचित अपार धन से उसने सूरत को समृद्धिशाली बनाने में हर प्रयास किया।

सबसे नवीन एवं मान्य धारणा यह है कि वर्तमान सूरत नगर प्राचीन हिंदू नगर सूर्यपुर के आधार पर ही बस हुआ है। कहा जाता है कि सन् १३७३ में फिरोज़ तुग़लक ने सूरत के दुर्ग को बनवाया था। सन् १३९१ में ज़फरखान ने अपने पुत्र मस्तेखान को सूरत तथा रान्देर का गवर्नर नियुक्त किया। सन् १५१४ में पुर्तगाली यात्री बारबोसा ने सूरत को एक महान व्यापारिक केंद्र तथा बहुत ही महत्वपूर्ण बन्दरगाह बताया है। पुर्तगालियों द्वारा यह नगर तीन बार जलाया गया। नगर की सुरक्षा के लिए अहमदाबाद के सुलतान ने सूरत-दुर्ग को और भी सुदृढ़ बनवा दिया था और इसका निर्माण-कार्य सन् १५४६ में पूर्ण हुआ। सम्राट अकबर ने सन् १५७३ में इस नगर पर अपना अधिकार कर लिया। सूरत स्थित मुगल अधिकारी का सम्पर्क सीधे दिल्ली से था। वह अहमदाबाद के अधिकारी के अधीन नहीं था। १७वीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोपीय व्यापारी सर्वप्रथम सूरत से होकर ही भारत में प्रविष्ठ हुए। इसीलिए सूरत

को ब्रिटिश साम्रज्य का हिंडोला' कहते हैं। सन् १६१० में मलिक अम्बर ने सूरत को लूटा। सन् १६०८ में ब्रिटिशों का भारत तथा सूरत में पदार्पण हुआ। २६ सितम्बर सन् १६११ को तीन अंग्रेजी जहाज़ ताप्ती नदी के मुंहाने पर आकर टिक गये। ब्रिटिशों ने सन् १६१२ में सूरत में एक फैक्टरी की स्थापना की। तत्काल बाद ही पुर्तगालियों के साथ उनका संघर्ष हुआ। ब्रिटिशों को उनके वादशाह की ओर से शस्त्र-सम्बन्धी सहायता मिली और सन् १६१३ में पुर्तगालियों को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। सन् १६१५ में पुर्तगाली पूर्णरूप से पराजित हुए। सन् १६१६ में सूरत में डचों का आगमन हुआ। इस काल के दरम्यान सूरत हर दृष्टि से समृद्धिशाली था। सन् १६२० में फ्रांसीसियों ने भी सूरत में अपना पैर जमा लिया। सन् १६६४ से १७०३ तक मराठों का आक्रमण होता रहा। ब्रिटिशों नें सूरत पर आक्रमण किया और सन् १७५९ में दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। सूरत में प्रमुख यूरोपीय व्यापारी ब्रिटिश, डच, फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली थे। डच, फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली धीरे-धीरे अपनी शक्ति खोते रहे और ब्रिटिशों ने सन् १८०० में सूरत के शासनसूत्र को सम्पूर्ण रूप से अपने हाथ में ले लिया। सूरत के नवाव को पेंशन दे दी गयी।

सन् १६८९ में ओविंग्टन नामक अंग्रेज यात्री ने लिखा है कि उस समय सूरत में प्राप्त स्वर्ण की किस्म इतनी वढ़िया थी कि अगर उसे यूरोप ले जाया जाता था, तो उस पर १२ से १४ प्रतिशत का मुनाफा मिलता था।

सूरत से दो मील की दूरी पर कतारगाम स्थित है, जिसे कान्तारग्राम से भी सम्बन्धित वताया जाता है। पौराणिक ग्रंथों में भी इसका वर्णन आता है। ९वीं सदी में यह १६०० ग्रामों के जिले का प्रधान कार्यालय था। सूरत से दक्षिण २० मील की दूरी पर नवसारिका नामक समृद्धिशाली नगर बसा हुआ था और डॉ. भगवानलाल इन्द्रजी के अनुसार यह गुर्जर चालुक्यों की राजधानी था।

सूरत की जनसंख्या जो सन् १६९० में ३ लाख थी, वह सन् १७६३ से १७९७ में वढ़कर १० लाख पहुँच गयी; किंतु कई वार के दैवी-प्रकोप के कारण सन् १८४७ में जनसंख्या घटकर ८०,००० रह गयी। सन् १८३७ का भीषण अग्निकाण्ड आज भी लोगों को रोमांचित कर देता है, जिसमें नगर का एक बहुत बड़ा भाग राख का ढेर बन गया था। इसी प्रकार ताप्ती नदी की भीषण वाढ़ में सारा नगर जल-मग्न हो गया था। किंतु धीरे-धीरे पुनः जनसंख्या बढ़ने लगी और सन् १९४१की जन-गणना के अनुसार

मात्रा १,७२,००० तक पहुँच चुकी थी। अब तो और भी वृद्धि हो गयी होगी।

प्रारम्भिक भारतीय इतिहास के अनुसार भड़ौच गुजरात तथा भारतवर्ष का प्राचीन बन्दरगाह था। मुसलमानों के प्रारभिक काल में खम्भात ने प्रमुख बन्दरगाह का स्थान ले लिया था। मुसलमान काल के उत्तरार्द्ध, मुगलकाल के मध्य तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पूर्वार्द्ध में सूरत ही प्रमुख बन्दरगाह के रूप में प्रख्यात था। उसके बाद बम्बई बन्दरगाह की प्रमुखता बढ़ने लगी और आज वही सूरत की प्रेरणा से भारतवर्ष का एक आधुनिकतम बन्दरगाह बन गया है।

सूरत में निर्मित सूती तथा रेशमी वस्त्रों की किस्में इतनी उत्तम हुआ करती थीं कि इंग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों में इन्हीं की विशेष माँग होती रहती थी और इससे ब्रिटिश व्यापारियों को भारी परेशानी का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि सन् १७०१ में ऐसा कानून बन गया कि इंग्लैण्ड में कोई भी सूरत के वस्त्र का उपयोग नहीं कर सकता। सूरत के बन्दरगाह पर ८४ विभिन्न देशों के ध्वज फहराया करते थे। इस नगर को 'स्वर्ण की प्रतिमा', '८४ बन्दरगाहों का ध्वज' 'बन्दर मुबारक' तथा 'मक्का वारी' के नाम से पुकारा जाता था। जो मुसलमान हज करने के हेतु मक्का जाना चाहते थे, वे जानबूझ कर सूरत से होकर जाते थे। औरंगज़ेब ने तो सूरत से होकर हज के लिए मक्का जाने वालों पर धार्मिक कर भी घटा दिया था।

सूरत का गोपी तालाव, जो अब ध्वंसप्राय हो चुका है, इतना विशाल था कि उससे समस्त नगर की जल-पूर्ति की जा सकती थी। एक अंग्रेजी यात्री ने तो सन् १६७३ में यहाँ तक लिखा है कि उस तालाब में बड़ा से बड़ा जहाज भी तैर सकता था।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि श्री शंकराचार्य ने अपना ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य की रचना सूरत में ही की थी। अपने समृद्धिकालीन युग में सूरत विद्या के केन्द्र के रूप में भी प्रख्यात था। आन्ध्र के प्रख्यात तांत्रिक लेखक भास्कर राम सूरत आकर ही महान विद्वान तथा तांत्रिक शिवदत्त शुक्ल से दीक्षा ग्रहण की थी।

वल्लभ सम्प्रदाय के तीन मन्दिर यहां थे, जिनके नाम मोटा मन्दिर, गोविन्द जी का मन्दिर तथा लाल जी का मन्दिर हैं। मोटा मन्दिर का निर्माण सन् १६९५ में हुआ था और उसमें वालकृष्ण की प्रतिमा प्रतिस्थापित की गयी थी। वल्लभाचार्य स्वयं इस प्रतिमा की उपासना करते थे। सूरत में इस मन्दिर की गद्दी पर गोस्वामी पुरुषोत्तम आसीन

और वे इतने उद्भट विद्वान थे कि उन्हें दस-दिगन्त विजयी कहा जाता था।

सन् १९०७ में सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन भी हुआ था; किन्तु किसी प्रकार का उत्पात खड़ा हो जाने के फलस्वरूप अधिवेशन अधूरा ही रह गया।

सूरत के निकट ताप्ती नदी के तट पर कितने ही प्राचीन अवशेष आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें वारियाव, फूलपाड़ा, अश्विनी कुमार आदि मुख्य हैं। फूलपाड़ा में गुर्वेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर है। वरछा से ही सूरत नगर की जल-पूर्ति होती है। सूरत से दो मील की दूरी पर कतारगाम है, यहाँ पर कुन्तेश्वर या कन्तारेश्वर महादेव का मन्दिर स्थित है। श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को यहाँ धार्मिक मेला लगता है और मन्दिर के दर्शनार्थ बड़ी मात्रा में लोग एकत्र होते हैं।

सूरत का दूसरा प्रख्यात मन्दिर है, बालाजी का, जिसका निर्माण सन् १८०३ और १८१९के मध्य में श्रीकृष्ण अर्जुन नाथ जी त्रिवेदी ने किया था। वे एक अति धनाढ्य नागर ब्राह्मण व्यापारी थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बैंकर भी थे। सन् १८०५ में उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बड़ी मात्रा में ऋणप्रदान किया था। अम्बाजी तथा कालका माताजी, दो देवियों का मन्दिर भी अम्बाजी रोड पर स्थित है। जहाँ तक शिव मन्दिरों का सम्बन्ध है, वाला जी रोड पर काशी विश्वनाथ तथा गोपीपुर में भुलेश्वर या मोरेश्वर महादेव के मन्दिर प्रख्यात हैं। दोनों मन्दिर भूमिगत हैं। हाटकेश्वर महादेव का मन्दिर आमलीरान में स्थित

सद्वैद्यशाला
सिंचीप
अपचन दूर करते

आयुर्वेदिक फैक्टरी
ज्वरेग
तापांतर

नांजनगुड
आलमनटाईन
टॉनिक

सहायक

प्रत्येक शहर के लिए
हम एकही व्यापारी
को अपना स्टाकिस्ट
नियुक्त करते हैं।

सद्वैद्यशाला
आयुर्वेदिक फैक्टरी
नांजनगुड

नांजनगुड
टुथपावडर

सोल एजन्ट्स :
दी युनायटेड कन्सर्न
५४, बन्दर स्ट्रीट,
मद्रास—१.

शाखा—ज्योति स्टोर्स, किंग सर्कल, माटुंगा, बम्बई १९

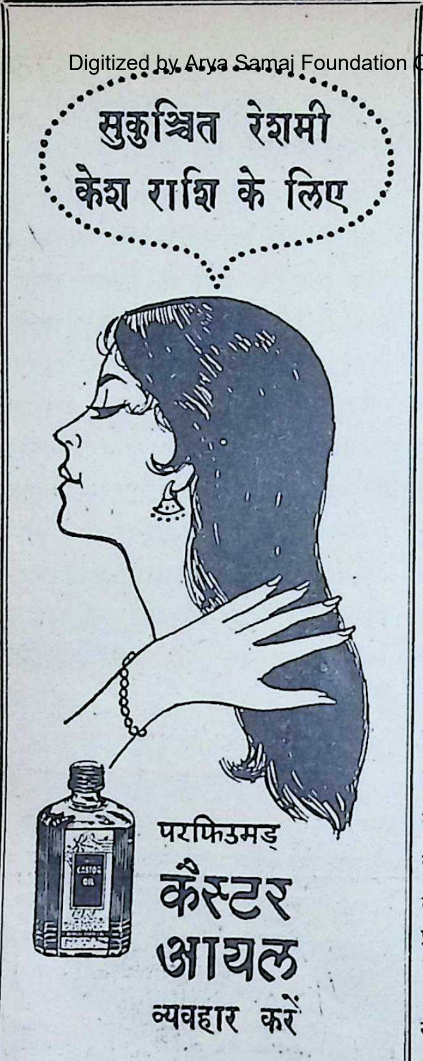

सुकुञ्चित रेशमी
केश राशि के लिए

परफिउमड्
कैस्टर
आयल
व्यवहार करें

यह मनोरम सुगन्धयुक्त केश तैल है।

बंगाल केमिकल
कलकत्ता · बम्बई · कानपुर

है। सूरत से कुछ दूरी पर रामनाथ घेला का मन्दिर है, जो अति प्राचीन है। सन् १८६९ में सूरत में स्वामीनारायण मन्दिर का निर्माण हुआ था। तीन गुम्बदों से सुशोभित यह मन्दिर विशाल एवं आकर्षक है। नदी के तट पर पताली हनुमान तथा सगरामपुर में रोकड़िया हनुमान के मन्दिर भी प्रख्यात हैं। सूरत में ४० से अधिक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ है। महावीर स्वामी तथा आदिश्वर भगवान का मन्दिर गोपीपुर तथा चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर शाहपुर में स्थित है। पोलिस लाइन के निकट एक छोटे से मन्दिर में खेतरपाल जी की पूजा होती है। सूरत में प्रति वर्ष जन्माष्टमी के दिन एक विशाल मेला लगता है। सूरत के मिष्ठान भी प्रख्यात हैं। विशेष कर बरफी तथा घारी को लोग अधिक पसन्द करते हैं। यहाँ की पतंग-उड़ान प्रतियोगिता तथा इक्का व बैल गाड़ी दौड़ प्रतियोगिता भी प्रख्यात है।

बम्बई बन्दरगाह के उत्थान के बाद सूरत की उपेक्षा होने लगी। फिर भी सूरत का अपना महत्त्व बना हुआ है, क्योंकि यह बम्बई तथा अहमदाबाद के मध्य में है। यहाँ का हाथकरघा उद्योग तथा जरी व रेशम उद्योग आज भी विकास के पथ पर हैं।

★

'भारती' का आगामी (सितम्बर १९६२) अंक श्रीकृष्ण-लीला विशेषांक होगा

त विशेषांक में चिर प्रगतिमान भारतीय आत्मा के प्रतीक-पुरुष, सर्वांगीण नव-विकास के युग-युग-सम्भव नित-नूतन नेता, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की नानामुखी क्तिमत्ता और जीवनलीला के सभी संभाव्य आयामों का, आध्यात्मिक, मनोज्ञानिक, दार्शनिक सामाजिक तथा ऐतिहासिक सन्दर्भों में, आत्याधुनिक मानवतनासम्मत अध्ययन प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास किया जायगा। भारतीय कारत्व के क्षेत्र में, श्रीकृष्ण के जीवन पर यह विशेषांक, अपने ढंग का एक पूर्व और अद्वितीय योगदान होगा। प्रस्तुत विशेषांक में समःविष्ट सम्भावित खों की विषय-सूची निम्न प्रकार होगी :–

- नवीन जगत के लीला-पद्म पर महाकाल पुरुष का विहार : श्री अरविंद
- श्रीकृष्ण : भाग्वद्-पुरुष और इतिहास-पुरुष : श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
- श्रीकृष्ण और भग्वद्गीता : डॉ कन्हैयालाल मुन्शी
- श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य : डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
- पूर्णकाम का प्रणय-भाव : श्री जैनेन्द्रकुमार
- गोवर्द्धन-धारी उँगली की परम्परा (कविता) : डॉ. हरिवंशराय बच्चन
- श्रीकृष्ण-लीला और उसका व्यापक प्रभाव : पद्मभूषण पं. सूर्यनारायण व्यास
- श्रीकृष्ण-चेतना : काम-शक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा : डॉ. शिवप्रसाद सिंह
- कृष्णावतार का प्रयोजन : श्री हरिहरनाथ त्रिपाठी
- वासुदेव कृष्ण की धर्म-मीमांसा : डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय
- गीता-धर्म की गंगोत्री : श्री मकरन्द दवे
- साँवली मोहिनी का मर्म : श्री रजनीकान्त मोदी
- कारागार में ज्योति-पुरुष का अवतरण : श्री रमेशचन्द्र शाह
- विश्व-पुरुष की बाल-लीला : डॉ. चन्द्रभान रावत
- रसेश्वर की रास-लीला : श्री किशोरी शरण 'अलि'
- श्री भगवान की चिर-विरहिन आत्मांशिनी श्रीराधा : श्रीमती लावण्य प्रभा राय
- परकीया के प्राण-वल्लभ : पं. राममूर्ति चतुर्वेदी
- चिरकुंवारी राधा के चिरकुमार बालम : श्रीयुत श्रीहरि

- बहु-प्रिया-वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र : श्री सुरेन्द्र शर्मा
- रुक्मिणी-हरण का रोमानी नायक : श्री राजकमल चौधरी
- मर्यादा भंग के दावेदार : नव-मर्यादा के संस्थापक, लीला-पुरुषोत्तम : श्री रमेशचन्द्र शाह
- अखण्ड आर्यावर्त का एकमेव लोक-नायक : श्री करसनदास माणेक
- कूट-नीतिज्ञ शिरोमणि श्रीकृष्ण : जानकीनाथ शर्मा
- सौंदर्य, प्रेम और कला के अधीश्वर श्रीकृष्ण : श्रीमती मनी साहुकार
- श्रीकृष्णाख्यान के प्रतीकार्थ और शुभ-नियुक्ति : श्री रमाशंकर शास्त्री
- युग-निर्माता महापुरुष श्रीकृष्ण और उनका युग : श्री श्रीनन्दन चतुर्वेदी
- बाल-कृष्ण-पूजा : एक मनोवैज्ञानिक परमौषधि : श्री लालजीराम शुक्ल
- भागवत आन्दोलन और श्रीकृष्ण-मूर्ति का प्रादुर्भाव : श्री कुमार शील
- भारतीय चित्र-कला में श्रीकृष्ण-लीला : कलाकार महेन्द्रनाथ सिंह
- भारतीय शिल्प में श्रीकृष्ण-लीला : श्री चन्द्रभूषण मिश्र
- श्रीयुगल की सनातन लीला-भूमि वृन्दावन : श्री शत्रुघ्न दुबे
- बंगाल के वैष्णवों की रसेश्वरी कृष्णोपासना : श्री कैलाशनाथ ओझा
- महाप्रभु चैतन्य का श्रीकृष्ण-लीला गान : श्रीयुत श्रीहरि
- रसिक-शेखर बिल्व-मंगल का श्री-कृष्ण-लीला गान : श्री रामलाल
- श्रीकृष्ण की लीला-भूमि व्रज : कुमारी सरोज वर्मा
- श्रीकृष्ण की आराधिका : महाभाव राधिका : अनवर आगेवान
- श्रीकृष्ण अपने जीवन की संध्या में : श्रीमती लीलावती मुन्शी
- प्रभु का अंतिम वचन : श्री करसनदास माणेक

श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी अनेक प्राचीन तथा नवीन दुर्लभ चित्रों की अनुकृतियों तथा तीन कलात्मक रंगीन चित्रों से सुसज्जित : **१९२ पृष्ठों के इस दलदार विशेषांक का मूल्य केवल ६० न.पै.।**

[गत अंक की विज्ञप्ति में प्रकाशित इस विशेषांक का मूल्य ७५ न. पै. न होकर केवल ६० न.पै. ही होगा।]

एजेण्ट और पाठक अपनी प्रतियाँ तुरन्त सुरक्षित करायें।

★

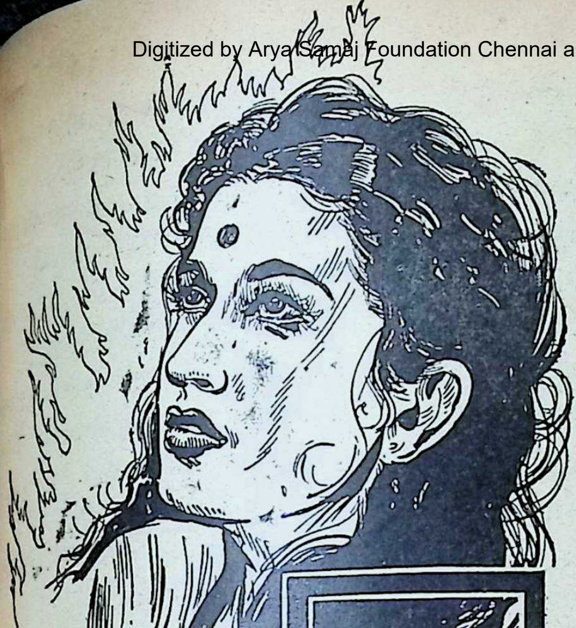

तपस्विनी

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

[द्वितीय खण्ड]

धारावाहिक उपन्यास

●

भारतीय भाव-चेतना के गत सौ वर्षों के इतिहास को आवरित करता एक कथा-प्रबन्ध

●

[३८ ख]

शीला का निश्चय

"झूठ मत बोलना। मैं जानती हूँ। आज सेवेरे ट्रेन में जो दो यूरोपियन छोकरियाँ आयी हैं, वे हाईनेस और साहब के साथ खाना खाने वाली हैं। बोलो, ठीक है कि नहीं?"

[illegible] [illegible] होकर देखने लगा। उसे

यह न सूझा कि वह क्या कहे ?

"मुझसे छिपा क्यों रहे हो ? सब बताओ, जो जानते हो सो।" शीला का क्रोध असहायावस्था में बदल गया और उसने क्रन्दनमय अनुरोध किया। "बता दो मुझे, सब। मुझसे यह संदेह नहीं सहा जाता। तुम्हें मेरी क़सम, सच-सच बता दो। दोपहर से मुझे जो संदेह हो गया, वह सच है या नहीं ?"

"शीला बहन, मैं क्या कहूँ ?" उदय ने खिन्न आवाज़ में कहा। "मेरी जीभ काम नहीं देती। मेरी धारणा ग़लत भी हो सकती है।" वह क्रोध और वेदना से रक्तिम हो जानेवाले शीला के मुखको देखकर सन्न हो गया।

"ग़लत हो तो भी कह दो। जैसा हो वैसा।"

"मैंने चार आदमियों के लिए खाने की मेज़ तैयार होती देखी थी। जब लौट रहा था, तब दो यूरोपियन स्त्रियां बंगला ढूंढ़ती हुई मिलीं।" उदय ने नीचे देखते हुए कहा।

शीला ने हाथों से आँखें बन्द कर लीं और सोफ़े पर बैठ गयी। दस मिनट तक दोनों में से कोई भी न बोला। इसके बाद शीला अपने को न संभाल सकी और उसकी आँखों से आसुओं की धारा बहने लगी। उदय का हृदय उससे पुकारकर कहने लगा–'यह अद्भुत स्त्री है, पूजा के योग्य है। इस समय असह्य वेदना का अनुभव कर रही है। उसे आश्वासन दे, साहस दे, अपनी मित्रता का सहारा दे, उसके आँसू पोंछ।"

परन्तु वह संयमी था। हृदय द्वारा निर्दिष्ट मूर्खता करने में उसे शिष्टता न दिखायी दी। ऐसे दुःखमय क्षणों का लाभ उठाकर घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने में उसे गार्हस्थिकता न जान पड़ी। वह केवल स्नेह-सिक्त नयनों से शीला को मूक आश्वासन देने लगा।

शीला ने आँसू पोंछे। वह खड़ी हुई और उसकी ओर देखती हुई करुण स्वर में बोली–"उदय, मैं दुर्बल हूँ। मैं अपनी भावनाओं को दबा नहीं पाती। इस समय मेरी दुर्दशा की सीमा नहीं। तूने इतना देखा और सुना है तो, क्या तू मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेगा ?"

'क्या यह भी कोई पूछने की बात है, शीला बहन ?" आखों से उपालम्भ देते हुए उदय ने कहा–"क्या मुझ पर इतना भी विश्वास नहीं ? मुझे अधिक कुछ नहीं कहना, पर जो आज्ञा आप देंगी, वह शिरोधार्य होगी।"

"तो उदय, एक कृपा कर। इस समय साढ़े दस बज गये हैं, फिर भी तू अपने होटल चला जा।" उदय को आश्चर्य चकित देखकर शीला ने आगे कहा–"इस

में तीसरा शयन-कक्ष नहीं है। मुझे लिए शयन-कक्ष की आवश्यकता है।" कहने को तो यह कह गयी, पर इन में निहित ध्वनि का भान होते ही उठी, फिर बैठ गयी और आँखों पर रखकर सिसकने लगी।"

"अवश्य, मैं अभी जाता हूँ।" उसने कहा।

कुछ और कहे जाने पर शीला और दुःखी हो जायगी, यह सोचकर वह को टेलीफोन करने गया और फिर कमरे में जाकर ओवरकोट, टोपी, ले आया। जब बैठक में लौटा तब कुछ स्वस्थ हो गयी थी। "शीला देर हो रही है। मुझे आज्ञा दीजिए। मैं चलता हूँ।"

शीला खड़ी हुई और उसने मुस्कराने का प्रयत्न किया। "उदय इतनी रात के तुझे जो बाहर धकेल रही हूँ, उसके क्षमा करना। लेकिन मेरे लिए कोई चारा नहीं।" उसने दयनीय आवाज़ में कहा।

"अरे, इसमें क्या है? अन्य कोई सेवा तो निःसंकोचभाव से कह दीजिएगा।" उदय बोला।

शीला दुवारा दीनता से मुस्करायी और उसके होंठ कुछ काँपे। "तो एक काम भी करना। आज मैं जैसी दिख रही हूँ, उसे अनदेखा मान लेना। कभी-कभी मैं पागल हो जाती हूँ।"

"अनदेखा तो मान लूंगा, पर स्मृति में न लाना ज़रा कठिन होगा।" उदय ने जवाब दिया। उसने शीला के अंग-विन्यास, सुन्दर शरीर और खिन्न, किंतु आकर्षक मुख पर क्षणभर के लिए अपनी आँखें गड़ा दीं। लेकिन तत्क्षण हृदय में उठी उमंग को दवाकर वह हँसा—"लीजिए, स्मृति-पटल से भी मिटाये देता हूँ। और कुछ? कल सवेरे आपको स्टेशन छोड़ आऊँगा।"

जैसे उसके हाथ पर हाथ रखना चाहती हो, ऐसे शीला उसके पास आयी और झिझकी। "मैं किन शब्दों में तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करूँ।" उसने भावावेश में कहा।

"मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।"

उदय ने आवेशमयी दृष्टि से आज्ञा माँगी और पीछे मुड़कर सीढ़ियाँ उतर गया।

शीला दरवाज़े में जाकर खड़ी हो गयी। उसके हृदय में नयी भावना उदय हुई। "उदय!" उसने कहा।

"क्यों शीला बहन?" उदय मुड़ा और कम्पाउण्ड के दरवाज़े में खड़ा हो गया।

शीला तेज़ी से सीढ़ियाँ उतरकर

दरवाज़े पर गयी और उदय के पास जा खड़ी हुई।

"एक बात तो मैं भूल ही गयी, 'कवि को बधाई देना।" वह हँसी।

"कवि को?" चकित होकर उदय ने पूछा और फिर तुरन्त समझकर हंसने लगा।"उँह! 'तपस्विनी' पूरी पढ़ ली लगती है। कैसी लगी?"

"कैसी लगी?" शीला की आँखें विनोद से नाच उठीं। "यदि मैं तपस्विनी होती तो, कविको अपने मंदिर से बाहर निकाल देती?"

उदय खिलखिलाकर हँस पड़ा। "यदि मैं कवि होता, तो उसके मंदिर से बाहर निकालने के पहले अपने प्राण त्याग देता।"

"तुम्हारा सौभाग्य है कि मैं तपस्विनी नहीं हूँ।"

दोनों सब कुछ भूलकर हँसने लगे। "किसे पता है कि पिछले जन्म में आप तपस्विनी न रही हों। आप होतीं तो.."

"तो....."

"तो मुझे कवि होने का मन होता।" दोनों खूब हँसे। कोई स्त्री और पुरुष रास्ते पर जा रहे थे। उन्होंने यह हँसी सुन ली। स्त्री ने उनपर टार्च फेंकी। उदय और शीला रास्ते पर जानेवालों की ओर मुड़े। स्त्री ने टार्च बुझा दी और वह तथा पुरुष दोनों हँसते हुए चले गये।

"सुनिशम्, कवि," शीला ने कहा

"सुनिशम् शीला बहन," कहकर उदय तेज़ी से चला गया। उसकी वहाँ और अधिक देर तक खड़े रहने की हिम्मत न हुई।

दरवाज़े में खड़ी शीला बड़ी देर तक अन्धकार में अदृष्ट होते उदय को देखती रही। चारों ओर वृक्ष पवन में झूम रहे थे। आकाश में तारे सदा की भाँति चमक रहे थे। शीला ने कुछ देर उनकी ओर देखा और सोचा। संसार का यह चक्र तो चलता ही जायगा। उसमें राधारमण और शीला के सुख-दुःख का क्या मूल्य? लौटते समय सीढ़ियाँ चढ़ने लगी, तो तपस्विनी और कवि की याद आयी। उदय के अंतिम शब्द प्रतिध्वनित हुए। अब इस संसार में वह अकेली न थी। लेकिन उदय कब तक मित्रता निभा सकेगा? न भी निभा सकेगा, तो आशातन्तु क्यों तोड़ा जाय?

बैठक में पहुँची तो उसे गणपति शास्त्री याद आये। एक आशातन्तु के सहारे उन्होंने पचासी वर्ष काट दिये थे। उस महा तपस्वी ने आत्म-शक्ति के बल पर कैसे-कैसे दुःखों को हँसकर टाल दिया था। उनका भी तप था। यदि वह भी ऐसा तप करे, तो तपस्विनी हो सकती है।

शीला ने सोफे पर पड़ी "तपस्विनी" पुस्तक उठायी, उदय के शयन-कक्ष में जाकर अन्दर से दरवाज़ा बन्द किया और दुबारा पुस्तक पढ़ने बैठ गयी। [क्रमशः]

★

सनातन सूयौंदयी नूतन कविता का स्वागत करते हैं

[प्रस्तुत वक्तव्यों के सभी अभिप्रायों से सहमत होना सम्पादक के लिये आवश्यक नहीं]

●

वश्यकीय :

[कल्पना’ मई १९६२ के अंक में सुप्रसिद्ध नूतन कवि-कथाकार, साहित्य चिन्तक डॉ. शिवप्रसाद सिंह का जो ‘नयी कविता : कुछ प्रश्न’ शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, उसे सनातन सूर्योदयी नूतन कविता के घोषणा-पत्र के उत्तरार्द्ध या पूर्वार्द्ध के रूप में सहज ही ग्रहण किया जा सकता है। पूर्वार्द्ध यों—कि डॉ. सिंह से हमें यह जानने को मिला है कि ‘भारती’ में घोषणा प्रकाशित होने के पूर्व ही डॉ. सिंह वह लेख लिखकर ‘कल्पना’ को भेज चुके थे। उत्तरार्द्ध यों, कि वह घोषणा के ठीक वाद उसके अनुसन्धान में ही प्रकाश में आया। सम-सामात्यतया, डॉ. सिंह का लेख और घोषणा एक ही युगोन्मेष की दो समानान्तर अभिव्यक्तियाँ हैं। यह प्रमाणित करता है, कि घोषणा कोई निरी वैयक्तिक अभिव्यक्ति नहीं, वह एक कॉस्मिक चेतना का ही एक व्यक्ति द्वारा विनम्र उद्घोष है।]

श्री उमेशचन्द्र पाणिग्राही : उड़िया भाषा के यशस्वी यात्रा-साहित्य लेखक और कथाशिल्पी; अन्तर्राष्ट्रीय पी. ई. एन. और विश्व भ्रातृ संस्था के सदस्य, भारतीय मैत्री संघ के संस्थापक तथा रजिस्ट्रार :

‘सनातन सूर्योदयी नूतन कविता’ का घोषणा-पत्र मिला। आप को कैसे वधाई दूँ, इसके लिए हमारे पास भाषा नहीं है। आपने जिस चिन्ता, जिस भाव का उद्गार किया है, वह आज की विश्व-मानवता की आत्मा की पुकार है। आप ने इस वधिर ज़गत् के कान के पास अहिंसक अणु-बम का विस्फोट किया है। इससे कुछ तो अविचल रहेंगे, परन्तु ज़्यादा से ज़्यादा लाभवान भी होंगे। उनकी श्रवण-शक्ति पुनः कार्यकारी होगी। वे स्वर्गीय सुषमामय अमर आत्मा की नूतन वाणी सुनेंगे। आपने जो वैप्लविक घोषणा की है, मैं उसका स्वागत करता हूँ। आपके इस युगोन्मेषकारी चिन्तन के निकट मैं प्रणत हूँ। परात्पर भगवान करें, आपके

इस चिन्तन से अनुप्राणित होकर आज के लेखनीधारी, युग-निर्मातागण सत्य, शि और सुन्दर युग का आवाहन करें।

कुमारी प्रियम्बदा पाणिग्राही : उड़िया भाषा की नवीनतम पीढ़ी की कवयित्री कथा और शिशु-साहित्य लेखिका :

आप का युगधर्मी नूतन कविता का 'घोषणा-पत्र' 'भारती' में पढ़कर मैं विस्मय और आनन्द से भर उठी। उसी ढंग की चिन्ता मैं भी कर रही थी, परन्तु आप के घोषणा-पत्र ने मुझे मार्गदर्शन दिया है। आपके अमूल्य चिन्तन के मैं गुरु-रूप से अभिनन्दित करती हूँ।

श्री श्याम सुन्दर घोष : अकुण्ठ आस्था से उन्मेषित, सूर्योदयी चेतना से अनुप्राणित नूतन काव्य-धारा के एक अग्रणी कवि :

घोषणा-पत्र की मुद्रित प्रति और आपका स्नेहपूर्ण पत्र मिला। घोषणा-पत्र 'भारती' के मार्च अंक में भी पढ़ा था और आज फिर पढ़ा। अपनी विस्तृत प्रतिक्रिया तो अभी नहीं लिख सकूंगा, क्योंकि विश्वविद्यालय-परीक्षाओं के चलते व्यस्त हूँ। हाँ, संक्षेप में अपने विचार लिख रहा हूँ।

आपने घोषणा-पत्र में आजकी नानाविध स्थितियों का जो विशद विश्लेषण किया है, उससे पूर्णतः सहमत हूँ। लेकिन इन स्थितियों से उबरने और ऊपर उठने के लिए आपने जिस अध्यात्म और भगवतीशक्ति का—चाहे वह इस प्रत्यक्ष निखिल सृष्टि लीला की ही सर्वव्यापी, नित नूतन विकासमान क्रियाशील शक्ति हो और देह, मन, प्राण इंद्रियों से परे जाकर नहीं, वरन् इन्हीं का ऊर्ध्वीकरण कर भगवान के पूर्णत्व को इस जगत में साकार करे—उल्लेख किया है (क्षमा कीजियेगा वीरेन दा) मैं उससे सहमत नहीं हूँ।

आपने भगवान की सनातन सत्ता के प्रति जो आस्थापूर्ण उद्गार व्यक्त किये हैं, वे आप ही के योग्य हैं। हम अधिकांश नये लोग उस प्रगाढ़, प्रज्ञापूर्ण अवस्था तक पहुंचने की स्थिति में नहीं हैं। इसका अर्थ आप यह न लें कि मैं आपके मनोभावों और तज्जनित प्रयत्नों को हल्की निगाह से देखता हूँ। यह मेरी अपनी विवशता है और सम्भव है औरों को भी यह वैसी ही मालूम हो!

आपने अपने घोषणा-पत्र में हिंदी साहित्य की उद्देश्य वृत्तियों और उनके रचयिताओं के जीवनमानों का जो विश्लेषण किया है, वह सर्वथा उचित है। ऐसी बातें हम लोगों के द्वारा यदा-कदा छिटफुट रूप में पहले भी कही गयी हैं। लेकिन आपने सबसे पहली बार

त १९६२

पूर्वक उनका सम्यक् विश्लेषण किया है और उन्हें एक सुपुष्ट वैचारिक आधार देकर त किया है। इसके लिए हिंदी संसार आपका आभारी रहेगा। आप एक कवि के में ही नहीं, स्वतंत्र चेता मनीषी के रूप में भी विख्यात होंगे।

घोषणा-पत्र में नये कलाकारों के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, उनसे किसी का नहीं होगा। आपने ठीक समय पर आदमी की दुखती रग पकड़ी है। एतदर्थ मरण और द्विधाजन्य विभीषिका से अकुलाये हुए लोग आपके आभारी होंगे। हाँ, ऐसा हो सकता कि आप द्वारा निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कुछ लोग अलग राह भी ढूंढ़ें। इससे का विरोध क्यों हो? सब अपनी-अपनी नियति के अनुसंधान और निर्माण के लिए त्र हैं। आप करुणा विगलित प्रार्थना पूर्ण स्वरों के सहारे, जिस मंगल पूर्ण परिणति तक चने की कामना करते हैं, यदि वहीं तक कोई दूसरी राह से पहुँचे, तो हर्ज क्या है?

आपने अपने घोषणा-पत्र में तथाकथित बुद्धिजीवियों की जो तीखी आलोचना की है, उचित है। दृग हारा और दिशा हारा के लिए सहानुभूति क्यों? मैं अक्सर सोचता हूँ कि जिस स्वाधीन राष्ट्र का प्रतिनिधि 'यू. एन. ओ.' के मंच पर धुरीण राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के साथ रूबरू बातें करता है, यथावसर उनका नेतृत्व करता है और सम्यक् व देता है, उसी राष्ट्र के साहित्यकार, मनीषी और बुद्धिजीवी इतने निर्वीर्य, नक़लची और नगण्य क्यों हैं? कुछ टुटपुजिये राष्ट्रों की हुई विचारसरणि के अंधानुकरण में ही में गौरव और सार्थकता का अनुभव करते हैं? इसका कारण मुझे तो हीनता बोध ही म होता है। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि हमारा मनीषा जगत आज भी पराधीन, लांग और पिछड़ा है। इस सन्दर्भ में आपका यह कथन बिल्कुल सही है। "हिंदी साहित्य में अधोमुखी विकृत चेतना को स्थापित करने का श्रेय भी ऐसे ही कुछ बिके हुए मेधावी कों को है, जिन्होंने अपने अहंतोषण, विश्वव्यापी ख्याति की लालसा और अपनी तिक सुखविलास की तृष्णा को तृप्त करने के लिए हमारे देश और हमारे साहित्य की समूची पीढ़ी के रक्त में मरण-पूजक दर्शन का आत्मघाती जहर फैलाने का जघन्यतम राध किया है।"

आपने अपने घोषणा-पत्र में लघुमानवों की जो भर्त्सना की है, वह भी उचित ही है। व में सामाजिक जीवन से कटे और हटे हुए लोग ही अपने को लघुमानव कहते हैं और , निराशा और जड़ता का अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों को फ़तवे देने, सिद्धांत बघारने और घोषणा करने का अधिकार नहीं है। ये भारतीय समाज के प्रतिनिधि हैं ही नहीं। का कथन मात्र प्रेतकथन है। इनके द्वारा फैलाये गये ज़हर का इलाज, मेरी दृष्टि में

तो यही है कि आज़का हर सचेत कलाकार विस्तृत सामाजिक जीवन के अधिकाधिक निकट आये, जीवन के उष्ण स्पंदनों का अनुभव करे, समष्टिगत जीवन के तानेबाने से निःसृत होने वाले संगीत का श्रवण करे। तब वह अपने को निपट अकेला अनुभव नहीं करेगा और न किसी अलौकिक सत्ता का सहारा ढूंढ़ेगा। पश्चिम में जो भय और अवसाद का वातावरण है, उसका कारण यही है कि वहाँ का समष्टिगत जीवन नष्टप्रायः हो गया है। यह ट्रेजेडी हमारे यहाँ नहीं घटी है। (यों कुछ लोग बलात् उस ट्रेजेडी को ओढ़ने की चेष्टा करते हैं) इस सन्दर्भ में मुझे आपका यह कथन एकदम उपयुक्त मालूम होता है–"वैज्ञानिक यांत्रिक क्रांति और उससे उत्पन्न एकांत भौतिकवादी सभ्यता पश्चिम के देशों में ही अपने चूड़ान्त उत्कर्ष पर पहुँची है। उसीके फलस्वरूप दो-दो भीषण महायुद्धों से गुज़र कर पश्चिम की मानवता खंडित और विक्लांग हो गयी है। वहीं सबसे पहले धर्म और स्थापित नैतिक मानवीय मूल्यों का ह्रास आरम्भ हुआ और उसके परिणाम स्वरूप वहाँ की समूची मानवता, अधोगामी अन्धवृत्तियों के अराजक अंधकार में भटकने को विवश हुई। और उसी दौरान में वह पतन, पराजय, कुंठा, आत्मभीति, एकाकीपन, निराधारिता और आत्मजुगुप्सा की भीषण मनोवैज्ञानिक स्थितियों और गुंथियों से गुजरी। एशिया के अधिकांश देश और भारत अभी तक भी मानवचेतना के उस भीषण पतन और उससे निष्पन्न अवचेतना के दिशाहारा मरणान्धकार से गुजरने को विवश नहीं हुए हैं।" वास्तव में जहाँ दो-दो महायुद्धों के बाद पश्चिम हताश और पस्त हिम्मत हुआ है, वहाँ भारत और एशिया के अन्य अनेक राष्ट्र स्वाधीन और समर्थ प्रमाणित हुए हैं। उन्होंने जागरण का शंखनाद गुंजाया है और आत्मविश्वास का परिचय दिया है। इस दृष्टि से हमारी मनोभूमि पश्चिम से बिल्कल भिन्न है। दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती।

अंत में आपसे एक विनम्र अनुरोध है। घोषणा-पत्र पर अनुकूल और प्रतिकूल जो भी प्रतिक्रियाएँ हों, उन्हें आप मूल घोषणा के साथ पुस्तक रूप में मुद्रित करवा दें। यह एक बड़ा काम होगा और इसका ऐतिहासिक महत्व होगा।

श्री सुधाकर दीक्षित : हिंन्दी और अंग्रेजी में समान स्वामित्व के लेखक; सार्वभौम नव-अध्यात्मवादी चेतना के विरल खोजी और स्वतंत्र विचारक; बम्बई की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के एक केंद्रीय व्यक्तित्व :

'सूर्योदयी नयी कविता' पर आपका गम्भीर, गवेषणापूर्ण घोषणा-पत्र पढ़ कर मैं बहुत ही आनंदित हुआ।

स्तव में आजकी तथाकथित नयी कविता में न तो कल्पना की उड़ान है और न हमारे रागत मूल्यों की झलक। प्रायः यह नयी कविता कुछ आस्थाहीन अहंवादी लोगों की ना मात्र है, जो साहित्य सौष्ठव, रसात्मक वाक्य, संगीत और उदात्त भावनाओं का ार करके अपने उच्छूंखल आत्म-व्यभिचार की अभिव्यक्ति के लिए भगवती वती के उज्ज्वल मुख पर कालिमा पोतने का विफल प्रयास कर रहे हैं।

न लोगों की दायित्वहीन प्रेत-चेतना की कटु आलोचना करके आपने आधुनिक हिंदी पर जो उपकार किया है, वह स्तुत्य है। पाश्चात्य प्रतिक्रियावादी साहित्यिकों की परिपाटियों का अन्ध अनकरण करनेवाले इन स्वयम्भू कवियों को आपने जो चेतावनी है, उसका सच्चे साहित्यकार हृदय से आदर करेंगे, यह मेरा विश्वास है।

गामी कल की ऊर्ध्वोंन्मुखी काव्य-चेतना का सजीव चित्रण करके आपने काव्य-यों को जो प्रेरणा दी है, उसका मैं हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। अगणित विरुद्ध नाओं का अधिष्ठान–चिर-असंग, अप्रमेय, अविकारी जो तत्व है, जिसमें भगवती अन्तर्हित है, जो अमर-काव्य और दर्शन का चिर-स्रोत है उस महान की ओर ध्यान र्षित करके आपने आजके पथभ्रष्ट साहित्य को पुनः मार्गदर्शन का प्रशंसनीय प्रयास या है!

आपका यह लेख घोषणा भी है और चुनौती भी। आपके निर्भीक उद्गारो में मैं य-दुन्दुभी की ध्वनि सुन रहा हूँ।

शत्रुघ्न दुबे : तटस्थ समन्वित विचार-चेतना के साहित्य-चिंतक; ऊर्ध्व-मुखी, मल प्राण रसालता के गीत-कवि :

मसृण कोमल वायवीय सूक्ष्म चित्रणयुक्त रागात्मिका काव्यधारा को समय की बढ़ती मांगों के अनुकूल नहीं पाया गया। जब देश में ग़रीबी का हाहाकार बढ़ रहा हो, मी के रथचक्र के दुर्वह भार के नीचे जनता पिसी जा रही हो, पूंजीवाद से वर्ग-संघर्ष हो गया हो, तब कवि उससे अलग-थलग भिन्न कल्पनालोक की सृष्टि करे, यह हित्यिक नेतृत्व को 'पलायनवाद' प्रतीत हुआ। 'बहुत उड़ चुके अंबर में, अब धरती पर रों जैसे स्वर उमड़ने लगे; पंतजी ने ग्राम्या के गीत गाये, और श्री निराला ने गुलाब माध्यम से 'कैपिटलिस्टों' की भर्त्सना की, फलतः 'छायावाद' का पतन हो गया और काव्य राजसिहासन पर 'प्रगतिवाद' समासीन हुआ।

किंतु प्रगतिवाद भी मात्र 'हाय हाय' को चित्रित करते रहने से एकांगी हो गया, रस त्मकता एवं–रमणीयता के स्थान पर नीरस गद्यमयता उसमें बढ़ने लगी, वर्ग-संघर्ष नाम पर मार्क्सवादी विचारधारा में साहित्य की सीमाएँ निर्धारित करके उसे अत्यंत संकुचित कर दिया गया और तथाकथित उत्थान की भावनाओं को काव्य में लाने का सेह कुछ विशिष्ट राजनैतिक विचारधारा के लोग अपने सर बाँधने लगे, लगभग उसी सम (सन् १९४३ में) प्रथम 'तार-सप्तक' में अज्ञेय जी ने घोषित किया, "उनके (तार सप्तक कवियों के) एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के ही हैं, किसी मंजिल पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं–राही नहीं, राहों के अन्वेषी हैं।" यों, काव्य में अन्वेषण परीक्षण प्रयोग करके–एक नयी बात को सामने लाया गया। छायावादी प्रवृत्ति हो या प्रगतिवाद अथवा कोई अन्य, यदि वे मंजिल पर नहीं पहुँचे हैं (वे पहुँचे हुए नहीं हैं), मात्र अन्वेषी हैं तो उन्हें एकत्र होने का अधिकार है। फलतः प्रगतिशील होते हुए भी जो प्रगतिवाद की थोथी नारेबाज़ी से ऊब चुके थे, वे छायावादी भी जो प्रगतिवादियों की आलोचना-उपेक्षा से त्रस्त थे, तथा वे जो छायावाद अथवा प्रगतिवाद के युग में 'पहुँचे हुए' नहीं स्वीकार किये गये थे, सभी को एक स्वर्णावसर मिला।

छायावादी रचनाओं का व्यक्तिपरक स्वर ही 'अहं' की सीमा तक बढ़ गया। जिसकी पूर्त्ति न हो सके, उस अभाव को नियति-नटी का छलावा मानकर आत्म-संतोष कर लेने की भावना भी छायावाद ने ही दी, जिसे प्रगतिवाद ने अस्वीकार कर दिया। प्रगतिवाद ने ईश्वरीय परोक्ष सत्ता के प्रति भी उपेक्षा को बल दिया। यों, मन को समझाने के सहारे को छीन प्रगतिवाद ने पराजय की अनुभूतियों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रस्तुत कर दीं। फ्रायडियन थ्योरी के इसमें सम्मिलित हो जाने से रही सही कमी भी पूरी होगयी और पराजय की भावनाओं के साथ यौन कुंठाओं ने मिलकर साहित्य में 'अंधे युग' की सृष्टि कर डाली।

इन परिस्थतियों में हिंदी कविता को एक सही मोड़ की आवश्यकता थी। "सनातन सूर्योदयी नूतन कविता की घोषणा" यदि अपेक्षित सही मोड़ प्रस्तुत करती है, तो इसका स्वागत होना आवश्यक है, इसे प्रेरणा के रूप में ग्रहण करना चाहिए। कम-से-कम इससे यह तो स्पष्ट ध्वनित होता है कि अन्वेषण-काल समाप्त हो गया; अन्वेषणवाद अथवा प्रयोगवाद को लगभग दो दशकों (सन् १९४३ से सन् १९६२ तक) का समय पर्याप्त से अधिक रहा, और यदि 'सनातन सूर्योदयी नूतन कविता' अन्वेषण-प्रयोगों का ही परिणाम है, तो यह प्रयोगवाद की स्पष्ट उपलब्धि है।

*

BHAVAN'S JOURNAL

ANNUAL NUMBER '62

issue dated August 5, 1962

SPECIAL ARTICLES

- **Our Common Heritage** —H.H. Jagadguru Sri Sankaracharya of Kanchi.
- **Sanskrit: Its Supremacy** —H.H. Jagadguru Sri Sankaracharya of Dwarka.
- **All About Gayatri** —Swami Sivananda
- **So'hamasmi** —Sri C. Rajagopalachari.
- **What Life Has Taught Me** —Dr. P. Subbarayan, Governor of Maharashtra.
- **The Philosophy of Vedanta** —Dr. K. M. Munshi.
- **Five Dimensions of Love** Pitirim A. Sorokin
- **Jnana-Deepa** —Sri K. Balasubrahmanya Iyer.

* **Temple-worship** —Sri T. A. V. Dikshitar

* **The European Economic Community**—Sri Asoka Mehta

* **Our Drifting Education** —Sri H. M. Patel.

* **Renaissance of Ayurveda** —Dr. P. M. Mehta.

* **Kangra Paintings of the Gita Govinda** —Sri M. S. Randhawa

* **The Renaissance of Indian Dance** —Sri Mohan Khokar.

* **Mahadevi of Chottanikara** —Sri C. K. Pillai.

and many more, besides an artistic cover, colour plates and regular features.

Pp. 208 Price: 60 nP. (Postage extra)

Please reserve your copy in advance with your news agent or direct with us.

BHARATIYA VIDYA BHAVAN
Chowpatty Road . . . . . Bombay-7.

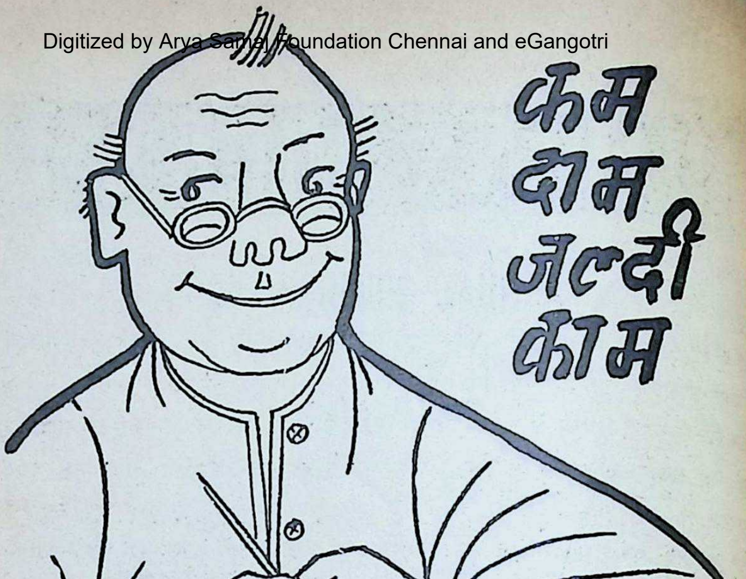

आपको जब जरूरी काम होता है, तभी तो आप तार देते हैं। फिर आप पता पूरा क्यों नहीं लिखते ताकि आपका तार जल्दी पहुंचे।

अधूरा पता होने से तार के पहुंचने में देर लगने की संभावना रहती है। पर एक तरीका ऐसा भी है, जिससे दाम भी कम लगे और काम भी जल्दी हो। यदि आप अपना तार टेलीफोन के पते पर भेजें, तो ऐसा हो सकता है। इसके लिए आपको पता इस प्रकार लिखना होगा; जैसे— 'बनर्जी, टे. फो. ३१६७०, नई दिल्ली'। ज्यों ही यह तार नई दिल्ली के तारघर में पहुँचेगा, त्यों ही वह उस टेलीफोन नम्बर पर पढ़ कर सुना दिया जायेगा।

पते में 'टे. फो. ३१६७०' एक ही शब्द गिना जाता है।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिए

डीए ६२/१

समाचार

सर्वभाषिक लेखक सम्मेलन सम्पन्न

१ जुलाई १९६२ से ८ जुलाई १९६२ तक, भारतीय विद्या भवन द्वारा आयोजित बम्बई उपनगरीय सर्वभाषिक लेखक-सम्मेलन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। प्रथम दिन उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता डॉ. कन्हैयालाल मुन्शी ने की। महाराष्ट्र के राज्यपाल डॉ. पी. सुब्बारायन् के करकमलों द्वारा सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। लेखक-सम्मेलन की अध्यक्षा श्रीमती लीलावती मुन्शी ने अपने सारगर्भित स्वागत भाषण में कहा कि भारतीय विद्या भवन की ओर से राज्यपाल डॉ. पी. सुब्बारॉयन् तथा आज के समारोह के अध्यक्ष डॉ. मुन्शी का स्वागत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आज इन दो विभूतियों की उपस्थिति से सम्मेलन को बहुत बड़ा बल मिलेगा।

इस सम्मेलन के आयोजन का प्रमुख उद्देश्य यही है कि सभी भाषाओं के लेखक एक-दूसरे के सम्पर्क में आयें और साहित्य-सर्जन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार विनिमय करें। जैसा कि आप सभी जानते हैं, भवन मानसचेतना के विकास सम्बन्धी गतिविधियों में विशेष रुचि रखता है और इसीलिए वह सांस्कृतिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक विषयों पर पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ आदि का प्रकाशन भी कर रहा है। आज इस बात की विशेष आवश्यकता है कि सर्वसाधारण के लिए प्रकाशित होने वाले ललित साहित्य को एक कसौटी की दृष्टि से देखा जाय। खेद का विषय है कि आज का अधिकांश साहित्य निम्न प्रकार के मनोरंजन के लिए ही प्रकाशित होता है और जिससे लोगों की अन्तःप्रेरणा को किसी प्रकार का स्वस्थ बल नहीं मिलता। वह राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से ही न केवल असंघटनात्मक है, अपितु विचार, व्यक्तित्व तथा नैतिक मूल्यों के ह्रास का भी प्रधान कारण है। लोगों में सुविचार तथा सुचरित्र को बल मिलने वाले साहित्य के प्रति अरुचि है। मैं तो ऐसा अनुभव कर रही हूँ कि अधिकांश लेखक ऐसी विषम परिस्थिति पर दृढता पूर्वक विचार नहीं कर रहे हैं।

सभी प्रकार का साहित्य मानव के मस्तिष्क की उपज होता है। साहित्य के द्वारा ही मानविक सभ्यता आज विकास के शिखर पर पहुँच गये जैसा समझा जाता है। साहित्य में ही वह

शक्ति है, जो मनुष्य को महान या अधम वना सकती है। ऐसे ही कुछ विचारों को लेकर इस सम्मेलन का आयोजन किया गया है। अगर सभी भारतीय भाषाओं के लेखक दृढ़संकल्प हो एक साथ इस प्रकार की भ्रष्ट प्रवृतियों को समूल नष्ट करने के लिए उद्यत हो जाँय, तो बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है।

अब मैं आपका और अधिक समय नहीं लूंगी, क्योंकि अभी और भी विद्वज्जन बोलेंगे। एक वार मैं फिर से आप सब का हृदय से स्वागत करती हूँ और आशा करती हूँ कि यह सम्मेलन कुछ ऐसे ठोस सुझाओं को प्रस्तुत करेगा, जिससे वर्तमान प्रवृति को रोका जा सके।

अन्त में श्री नवीन खांडवाला ने आभार प्रदर्शन किया।

शुक्रवार ता. ६-७-६२ को एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसमें हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी भाषा के कवियों ने भाग लिया और कविसम्मेलन की अध्यक्षता उर्दू के प्रख्यात शायर सरदार ज़ाफरी ने की।

शनिवार ता. ७-७-६२ को महाराष्ट्र प्रान्त के आवास, जन-पूर्ति, अल्प वचत, प्रेस तथा मत्स्य विभाग के मन्त्री श्री होमी जे. एच. तलेयारखान की अध्यक्षता में अंग्रेजी, गुजराती तथा मराठी, रविवार ता. ८-७-६२ को प्रातःकाल १० बजे महाराष्ट्र प्रदेश के गृह-निर्माण तथा संचार उप मन्त्री डॉ. रफीक ज़करिया की अध्यक्षता में हिन्दी, उर्दू, बंगला तेलुगु व कन्नड़ तथा उसी दिन शाम को ४-३० वजे वम्बई विश्वविद्यालय के भूत-पूर्व उप-कुलपति तथा जयहिन्द कालेज के आचार्य प्रो. टी. एम. अडवानी की अध्यक्षता में सिन्धी तथा पंजावी भाषाओं में विभिन्न विषयों पर निवन्ध पढ़े गये।

व्यास-जयन्ती

१७ जुलाई १९६२ को भारतीय विद्या भवन की ओर से गीता मन्दिर में भवन के उपाध्यक्ष श्री एच. वी. दिवेटिया की अध्यक्षता में व्यास जयन्ती मनायी गयी। इस पुनीत अवसर पर विद्वान पंडितों द्वारा वेद-पाठ किया गया। बड़ी संख्या में उपस्थित श्रोतागणों के समक्ष स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने अपने भाषण में व्यास जी की महानता का वर्णन करते हुए, उनके अमूल्य कार्यों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। श्री दिवेटिया ने भी महान ऋषि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। भवन के मानद नियामक श्री जे. एच. दवे ने स्वामी जी का आभार प्रकट किया। कुलपति श्री मुन्शी जी भी इस समारोह में उपस्थित थें। पंडित सत्कार के पश्चात् समारोह की समाप्ति हुई।

मु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन के लिए बम्बई से प्रकाशित व मुद्रित तथा एसोसिएटेड एडवटाइजर्स एण्ड प्रिन्टर्स, तारदेव, बम्बई ३४ में मुद्रित।

किलो में खरीदिये

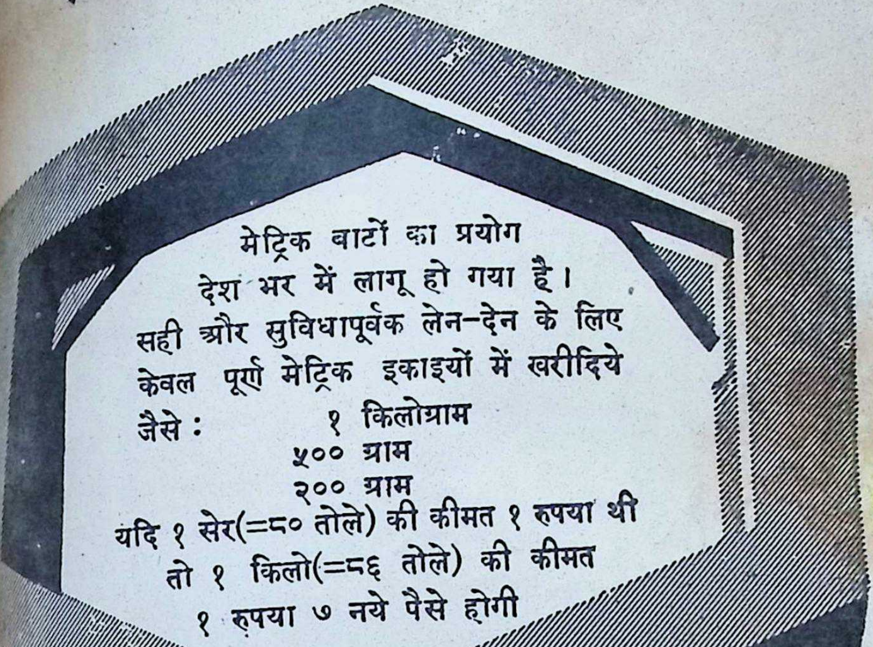

मेट्रिक बाटों का प्रयोग
देश भर में लागू हो गया है।
सही और सुविधापूर्वक लेन-देन के लिए
केवल पूर्ण मेट्रिक इकाइयों में खरीदिये
जैसे : १ किलोग्राम
५०० ग्राम
२०० ग्राम
यदि १ सेर(=८० तोले) की कीमत १ रुपया थी
तो १ किलो(=८६ तोले) की कीमत
१ रुपया ७ नये पैसे होगी

मेट्रिक बाट

सरलता व एकरूपता के लिए

भारत सरकार द्वारा प्रचारित

DA 62/190

सौन्दर्य प्रसाधनोंकी
मेरी पसंदगी में हमेशा सर्व प्रथम...
रेमी
स्नो और पावडर
Remy
TALCUM POWDER
Remy
INDIA
Remy
SNOW
Remy

एकमात्र वितरक :
व्ही. आर. ए. कं.
बम्बई—२, मद्रास—१, कलकत्ता—१

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल स्पेशल नं. १

रजिस्टर्ड

बालों की रूसी तथा बालों को गिरने से रोकनेवाला सर्वोत्तम बाल शक्तिवर्धक तेल। विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य सामग्रियों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया हुआ यह तेल मस्तिष्क को ही ठंडा नहीं रखता, अपितु शरीर-संस्थान को भी सुधारता है। इसका सेवन करने से प्रगाढ़ निद्रा आती है। साथ ही यह शरीर-मालिश के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद है। सब ऋतुओं में सेवन योग्य।

मूल्य ४.५० रु. बड़ी शीशी तथा २.२५ रु. छोटी शीशी। सर्वत्र प्राप्य।

उमेश योग दर्शन

(प्रथम भाग)

चार भाषाओं में—हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती तथा मराठी

लेखक— **योगिराज उमेशचन्द्र जी**

UMESH YOGA DARSHAN

१०८ वास्तविक आसन चित्रों से सुसज्जित पाचनशक्ति को सुधारने तथा श्वास क्रिया के साथ शरीर-संस्थानों पर प्रकाश डालने वाली योग के वास्तविक अर्थ की अत्युत्तम, अद्वितीय, सरस एवं पठनीय पुस्तक। इसमें योग चिकित्सा, क्रोमोपैथी तथा मानस चिकित्सा का भी विद्वतापूर्ण विवेचन है। यह प्रत्येक गृह, अस्पताल तथा पुस्तकालय के लिये संग्रहणीय है।

मूल्य १५ रु. डाक व्यय २ रु. अतिरिक्त।

योगासनचित्रपट विभिन्न योगासनों के साथ 'आर्ट ग्लेज्ड' कागज पर छपा हुआ योगासन चित्र भी प्राप्य है। मूल्य ३ रु. (डाक व्यय सहित जो मनीआर्डर द्वारा भेजा जा सकता है।)

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

दादर, बम्बई १४

HVB

उषा से
सिलाई कीजिये
— आराम से
सिलाई कीजिये

पर्याप्त अनुभव के आधार पर बनी उषा मशीन की बनावट ही ऐसी होती है कि उसपर सिलाई करना अत्यन्त सरल और सुगम होता है। इसके पुर्जे भी आसानी से मिल जाते हैं। उषा की "बिक्री के बाद देखभाल" की व्यवस्था उच्च कोटी की है। कपड़े सीना तो अब है— काम का काम आनन्द का आनन्द।

आसान किश्तों पर ख़रीदने के लिए स्थानीय
उषा बिक्री केन्द्र में पधारिये।

उषा सिलाई
मशीन

जय इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड, कलकत्ता-३१

JESM/G/272

र्ष ७ : अंक २]

भारती

[सितम्बर १९६२

स्थापक :
न्हैयालाल मुन्शी
●
न्य सम्पादक :
न्तकृष्ण ह. दवे
●
काशक :
. रामकृष्णन्
●
म्पादक :
ीरेन्द्रकुमार जैन
●
हयोगी :
ीराम मिश्र
ोंकारनाथ शर्मा
मलाल शुक्ल
●
र्यालय :
रतीय विद्या भवन,
पाटी रोड,
बई ७
●
अंक : ६० न.पै.
क : ५)

श्रीमद्शंकराचार्य : सृष्टि-निर्माता ५
कन्हैयालाल मुन्शी : कुलपति का पत्र ६
श्री अरविन्द : नवीन जगत के लीला-पद्म पर महाकाल पुरुष का विहार १०
डॉ. हरिवंशराय बच्चन : गोवर्धनधारी उँगली की परम्परा १४
डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् : श्रीकृष्ण : भागवद्-पुरुष और इतिहास-पुरुष १८
जानकीवल्लभ शास्त्री : बनी मैं पूजा २२
डॉ. कन्हैयालाल मुन्शी : श्रीकृष्ण और भगवद्गीता २४
डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य २८
जैनेन्द्र कुमार : पूर्णकाम में प्रणय-भाव ३०
हरीन्द्र दवे : यमुना ३२
जर्मन महाकवि गाएथे : भगवान श्रीकृष्ण के प्रति ३३
डॉ. शिवप्रसाद सिंह : श्रीकृष्ण-चेतना : काम-शक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा ३४
अमृता भारती : फिर फूँको बाँसुरी, फिर फूँको पांचजन्य ४२
पद्मभूषण पं. सूर्यनारायण व्यास : श्रीकृष्ण-लीला और उसका व्यापक प्रभाव ४४
पद्मा सुधि : गीत ४७
पं. हरिहरनाथ त्रिपाठी : कृष्णावतार का प्रयोजन ४८
डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : वासुदेव कृष्ण की धर्म-मीमांसा ५६
रमेशचन्द्र शाह : कारागार में ज्योतिपुरुष का अवतरण ६२
मदनमोहन तरुण : मैं जगत की नवल गीता-दृष्टि ६६
डॉ. चन्द्रभान रावत : विश्वपुरुष की बाल-लीला ६८

आगामी अंक में

आगामी श्रीकृष्ण-लीला अंक:- उत्तरार्ध में:

- श्रीकृष्ण-चेतना : श्री अरविन्द
- द्वारिकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र: डॉ. कृष्णदत्त वाजपेयी
- श्रीकृष्ण अपने जीवन की सन्ध्या में: सुश्री लीलावती मुन्शी
- अखण्ड आर्यावर्त का एकमेव लोक-नायक: करसनदास माणेक
- सीमान्तक संस्कार में राधा और कृष्ण: राजेन्द्र प्रसाद सिंह
- बंगाल के वैष्णवों की रसेश्वरी कृष्णोपासना: कैलाशनाथ ओझा
- रसिक शेखर बिल्व मंगल का श्रीकृष्ण-लीला गान: रामलाल
- श्रीयुगल की सनातन लीला-भूमि वृन्दावन: शत्रुघ्न दुबे
- तन्त्रेश्वर श्रीकृष्ण : देवदत्त आदी-आदि....

किशोरी शरण अलि : रसेश्वर की रास-लीला ७६
प्रकाश परिमल : निष्काम कामी पूर्ण पुरुष की अवतारणा ८६
लावण्यप्रभा राय : श्रीभगवान की चिर-विरहिन आत्मांशिनी : श्रीराधा ८८
श्रीहरि : चिरकुँवारी राधा के चिर-कुमार वालम ९४
पं. राममूर्ति चतुर्वेदी : परकीया के प्राण-वल्लभ १००
जगदीश प्रसाद सिंह : श्रीकृष्ण : एक स्वगत १०६
सुरेन्द्र शर्मा : बहु-प्रिया वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र १०८
रमेशचन्द्र शाह : मर्यादाभंग के दावेदार: नवमर्यादा के संस्थापक लीला-पुरुषोत्तम ११६
मकरन्द दवे : गीता-धर्म की गंगोत्री १२२
रजनीकान्त मोदी : सांवली मोहिनी का मर्म १२६
अनामिका : राधा के दो वक्तव्य १३२
कलाकार महेन्द्रनाथ सिंह : भारतीय चित्रकला में श्रीकृष्ण १३४
राजकमल चौधरी : रुक्मिणी-हरण का परम प्रेमिक नायक १४२
श्रीनन्दन चतुर्वेदी : युग-निर्माता महापुरुष श्रीकृष्ण और उनका युग १५२
कन्हैयालाल मुन्शी : कृष्णावतार १५८
मनी साहूकार : सौन्दर्य, प्रेम और कला के अधीश्वर: श्रीकृष्ण १६

●

प्रस्तुत अंक में श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी सारे प्राचीन और अर्वाचीन चि- की अनुकृतियाँ कलाकार श्री महेन्द्रनाथसिंह द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। अंक की सारी श्रीशोभा उन्हीं की सुललित उँगलियों की आभारी है

●

इस अंक के अन्य सज्जाकार: सर्वश्री दिनेश शाह, ओके, भी कुमार ज्योतीन्द्र जैन, पवन कुमार

●

आवरण-चित्र : श्रीयुगल
चित्रकार : के. राजैय्या

पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी

12 SEP 1962

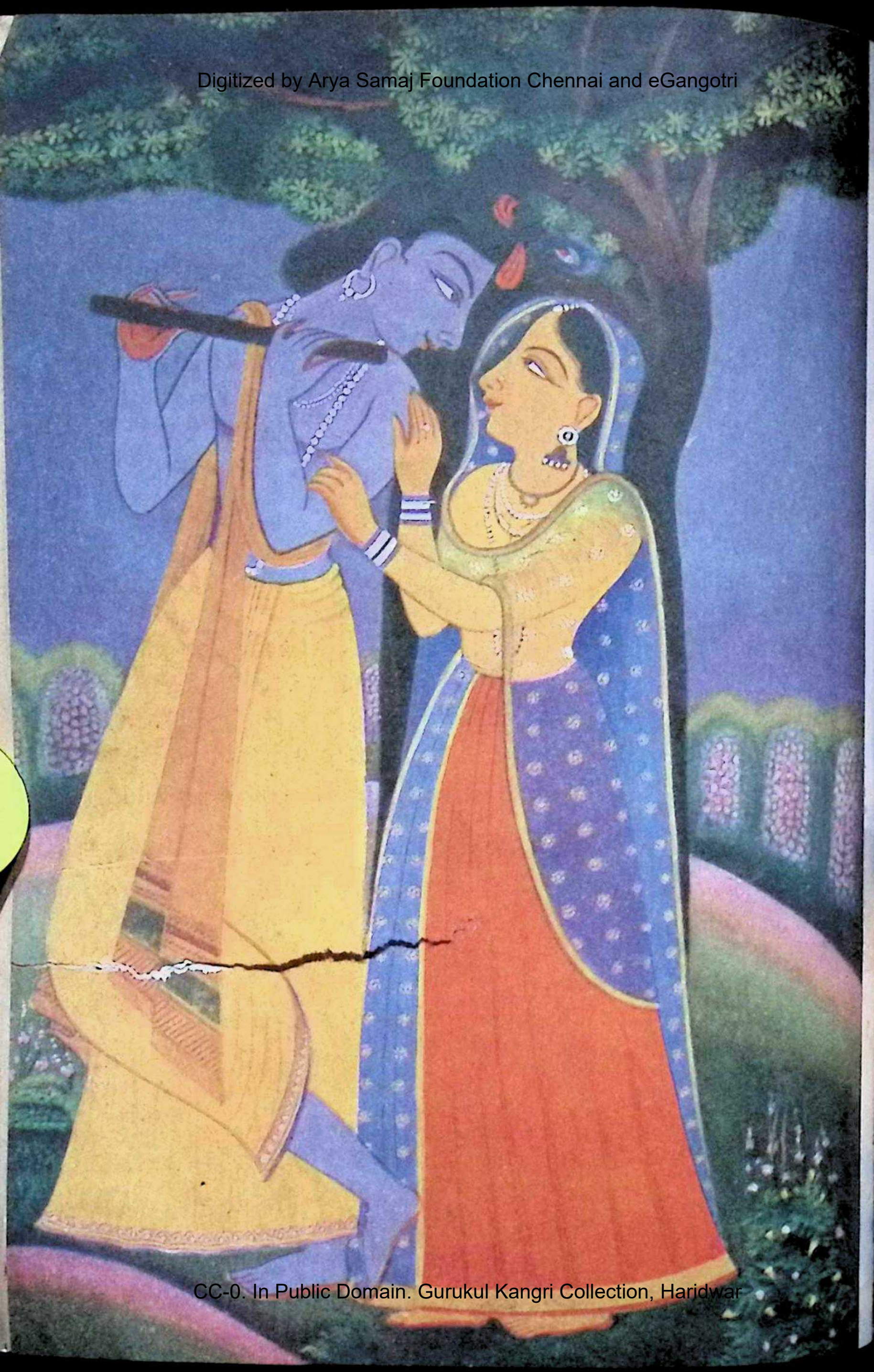

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।
प्रत्येक दिशा से शुभ एवं सुन्दर विचार हमें प्राप्त हों।

भारती
[भवन की पत्रिका]

●

आगामी विश्व विकास का सूचक:
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

●

सृष्टि-निर्माता

कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
कालिन्दीगतकालियशिरसि मुहुर्नृत्यन्तं च सुनृत्यन्तम्।
कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
कालत्रयगतिहेतुं प्रमणत गोविन्दं परमानन्दम्॥

परम सुन्दर, कारणों के श्री कारण, आदि और अनादि, स्वयंप्रकाश, कालिन्दी में कालिय नाग के शीश पर वारंबार नृत्य करते हुए नटेश्वर, कालस्वरूप, काल की गति से परे, सृष्टि के निर्माता, कलि के दोषों को दूर करनेवाले, तीनों कालों की गति के नियंता, परमानन्दस्वरूप गोविन्द को नमस्कार करें।

—श्रीमद् शंकराचार्य

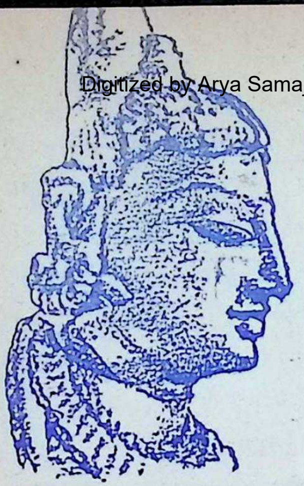

कुलपति का पत्र

जीवन साहित्य तथा संस्कृति से संबंधित

- 'रुक्मिणी-हरण' की समाप्ति पर
- कृष्ण साहित्य की परतें

भगवती सरस्वती
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड, बंबई,
१ सितम्बर, १९६२

मेरे युवा मित्र,

२५ मई १९६१ को मध्याह्न के समय मैंने अपने उपन्यास 'कृष्णवतार' के द्वितीय भाग 'रुक्मणी-हरण' का अंतिम अध्याय समाप्त किया। तीन वर्षों से भी कुछ अधिक समय से मैं श्रीकृष्ण-चरित् में प्रायः खोया-सा रहता था; अब उसकी समाप्ति पर, अन्य कार्यों के बीच भी, मैंने एक रिक्तता का अनुभव किया।

श्रीकृष्ण के बाल्यकाल एवं युवावस्था के इन दो मधुर प्रसंगों से वैसे तो सभी भारतवासी परिचित हैं, परन्तु मेरे लिए बचपन से ही ये आकर्षण के विषय रहे हैं। इनके बारे में लिखते समय मेरे मस्तिष्क तथा हृदय के सभी सुषुप्त विचार एवं भाव जागृत हो गये और मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानों मैं अपने ही सपनों के संसार की सृष्टि कर रहा हूँ। साहित्यिक मूल्य इसका जो भी कुछ हो, मेरा यह प्रयास मेरे लिए एक अत्यंत संतोषप्रद अनुभव रहा है।

अंगरेजी में उपन्यास लिखने का मेरा यह प्रथम अवसर था। अब तक तो गुजराती में ही मैंने कथा-साहित्य का सर्जन किया था। यदि मैं इसे अपनी मातृभाषा में लिखता तो संभवतः साहित्यिक दृष्टि से वह और भी अच्छी कृति होती।

फिर भी अंगरेजी माध्यम को मैंने जानबूझ कर ही अपनाया। श्रीकृष्ण की कथा मैं सारे भारत में पहुँचाना चाहता था और मैं समझता था कि भवन से प्रकाशित पत्रों द्वारा, जिनकी वितरण संख्या

पचास हजार है, मैं उस संख्या से गुने पाठकों तक इस कथा का प्रचार कर सकूंगा।

जैसा कि मैंने कहा है, श्रीकृष्ण की ओर मैं वचपन से ही आकृष्ट हुआ था। उनके अतिरिक्त प्राचीन पुरुषों में केवल परशुराम और व्यास ही मेरे प्रिय चरित्र रहे हैं। श्रीकृष्ण के विषय में पिछले सत्तर साल से जो मैं सुनता आ रहा था—अपनी माता के मुँह से तथा गागरिया भाटों द्वारा वचपन में सुनी उनकी कथाएँ; संस्कृत, गुजराती, हिंदी तथा व्रज भाषा में कृष्ण साहित्य; नरसिंह, मीरा, सूरदास और विद्यापति के पद; विष्णु, मत्स्य, भागवत, व्रह्मांड तथा हरिवंश प्रभृति पुराण; सामग्री के स्रोत के रूप में महाभारत; भगवद्गीता जिसके दैनिक पाठ से मेरी कल्पना उसके रचयिता की ओर उन्मुख हुई—इन सभी की छाप श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को समझने में मेरे मन पर थी। श्रीकृष्ण का अपनी कल्पना के अनुसार, चमत्कारों और पौराणिक वर्णनों से पृथक, विवरण देने का प्रयास कर मुझे आनन्द की ही अनुभूति हुई है। क्योंकि जो भी कुछ अध्ययन उनके वारे में मैंने किया है, उससे मुझे विश्वास हो गया है कि श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष थे। मूल महाभारत के हार्द में वर्णित उनके कार्य और भाषणों द्वारा उनके वास्तविक रूप का पता लगाया जा सकता है। भागवद्गीता के मूल में भी उनका जीवन-दर्शन झलकता है, जो कुछ प्रयत्न करने पर इस समय प्रचलित गीता में भी ढूँढा जा सकता है।

वह व्यक्ति कैसा होगा जिस ने तीस शताब्दियों से लोगों की प्रशंसा, भक्ति और समर्पण प्राप्त किया और स्वयं ईश्वर की कोटि तक पहुँच गया? महाभारत के हार्द में श्रीकृष्ण को हम एक साहसी, चतुर, दीर्घद्रष्टा के रूप में देखते हैं, जो अत्यंत कार्यशील होते हुए भी अलौकिक प्रज्ञावान हैं; वह धर्मप्रेरित लोकनायक है जो अपरिमित प्यार पाने और देने का अधिकारी है; सत्य और धर्म का वह सर्वमान्य संरक्षक है और दुष्टता का प्रवल शत्रु; वह एक ऐसा मसीहा है जिसने अन्य किसी से भी अधिक, जीवन में पूर्णता प्राप्त करने का मार्ग शव्द और कर्म दोनों द्वारा प्रशस्त किया; इतिहास में शायद वह अद्वितीय विश्वगुरु है जिसने जीवन को पूर्णतया जीने पर ज़ोर देकर जीवन की सार्थकता को सिद्ध किया है।

अपने जीवन-काल में ही श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम और देवतुल्य मान लिया गया था, तथा सभी का आदर उन्हें प्राप्त था। यह तो वाद की पीढ़ियों ने ही ईश्वर का अवतार मान कर श्रद्धा-भक्ति से उनकी पूजा करना शुरू किया, और हमें एक

आदर्श पुरुष के रूप में उन्हें भूल जाना पड़ा। शायद यह समय का ही दोष था क्योंकि शक्तिशाली विदेशी शक्तियों के दवाव के फलस्वरूप उन दिनों वास्तविक जीवन में वीरोचित पूर्णता प्राप्त करने का अवसर ही नहीं रह गया था। ○ ○ ○

शताब्दियों से जमे मलवे के नीचे से श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को ढूँढ़ निकालना कोई आसान काम नहीं और सच तो यह है कि मैं स्वयं भी कई वार बौखला गया था। यह एक दुहरा काम था। एक तो पुरातत्व विभाग की खुदाई जैसा, जिसमें परंपराओं, लोककथाओं, चमत्कारों, अतिशयोक्तिओं और विकृतियों की परतों के वाद परतें हटा कर श्रीकृष्ण का मानवीय स्वरूप खोज निकालना; दूसरा, इस चरित्र के अनुरूप ऐसी घटनाओं का पुर्नानिर्माण करना जो उन्हें एक जीवन्त चरित्र-नायक का रूप दे सके।

खुदाई की कठिनता का अन्दाज़ इसीसे लगाया जा सकता है कि युगों ने इस असीम प्रेम के दाता और अधिकारी लोकनायक को एक अत्यंत शृंगार प्रधान साहित्य का केन्द्रीय व्यक्ति वना दिया। सवसे ऊपर की परत है १७ और १८ वीं सदी के गुजराती कवि। प्रेमानंद के हाथों श्रीकृष्ण, १७ वीं शताब्दि के गुजराती सरदार के सीमित रूप में, भागवत के भगवान वन गये थे। दूसरी परत ब्रह्मांड पुराण (प्रायः १४००-१५००) कही जा सकती है, जिसमें श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार दिखाया गया है और उनसे सभी प्रकार के, मुख्यतः प्रवल संसारी भाव के शृंगार प्रधान कार्य कराये गये हैं। इसके नीचे ११ वीं शताब्दि के गीतगोविन्द की तह थी। वंगाल के लक्ष्मण सेन के पतनशील राजदरवार में प्रशंसा प्राप्त करने जयदेव ने श्रीकृष्ण को एक रंगीन प्रेमी का रू दे दिया, और उनका मुख्य कार्य राधा के साथ प्रेमचेष्टाएँ करने का ही र गया। स्वयं राधा ही प्राकृत कवियों की कल्पना की उपज है; भागवत में उसका कहीं स्थान नहीं, पुराणों में तो होगा ही कहाँ से?

गीतगोविन्द के नीचे की तरह भागवत की है। एक सशक्त क़वि ने विष्णुपुराण और हरिवंश से सामग्री प्राप्त कर उनके मानवीय गुणों को गौण वना कर श्रीकृष्ण को स्वयं भगवान ही वना दिया- श्रीकृष्ण भगवान स्वयं—और संसार का संभवतः श्रेष्ठ भक्तिकाव्य रचा दि स्वभावतः भारतवर्ष का प्रायः एक सह वर्षों से धर्मग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है इससे नीचे की तहें विष्णुपुराण और हरिवंश का पूर्वभाग है। श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन और कृत्यों का वर्णन क

ये सबसे प्राचीन पुराण हैं, जिनमें ओं के साथ उनके सम्पर्क को गौण दिया गया है। फिर भी श्रीकृष्ण म्पूर्ण जीवन की झलक वे देते हैं।

सबसे नीचे की तह है महाभारत, जिनमें पाण्डवों से सम्बन्धित श्रीकृष्ण जीवन एवं कृत्यों का वर्णन मिलता है। महाभारत में भी परम्पराओं, लोक-गाथाओं, कहानियों और चमत्कारों की परतें हैं जिनमें श्रीकृष्ण को शनैः विष्णु का अवतार बना दिया गया है। कभी-कभी एक ही अध्याय में विरोधाभासों का पाना भी कठिन नहीं है।

एक बात ध्यान देनेयोग्य है कि वद् गीता के ग्यारहवें स्कंध में, जिसे व्यास विरचित मूल ग्रंथ का भाग नता हूँ, श्रीकृष्ण को उनका परममित्र र्जुन तब तक भगवान नहीं समझता जब तक कि कुरुक्षेत्र के मैदान में वह नके इस रूप के दर्शन नहीं कर लेता। सलिए विष्णु के अवतार के रूप में हाभारत में उनका वर्णन बाद के जोड़े भाग होने चाहिएँ।

श्रीकृष्ण-परम्परा में ये उत्तर कालीन द्धियाँ इस तरह से भी प्रकट होती हैं श्रीकृष्ण को एक अलौकिक शक्ति के व्यपुरुष से अनेक पत्नियों का स्वामी और शृंगार-रसिक काम का देवता बना या गया है।

महाभारत के मूल अन्तर्भाग में, प्रामाणिक रूप से वे एक ही पत्नी, रुक्मणी के पति थे। बाद के क्षेपकों में उनके तीन और पत्नियाँ-सत्यभामा, शैब्या तथा जाम्बवन्ती तथा कुछ अन्य भी जिनकी चर्चा अन्यत्र कहीं नहीं है, बतलायी गयी हैं। विष्णुपुराण तथा उसके पंद्रहसौ वर्ष बाद रचित हरिवंश के प्रारंभिक अध्यायों में उनके आठ पत्नियाँ हैं, जिनमें कुछ के नाम तो अध्यायों के साथ-साथ बदलते भी रहते हैं। एक अन्य स्थान पर हरिवंश उनके २२ पत्नियाँ बताता है।

इन नामों के तुलनात्मक अध्ययन से मालूम होता है कि ये सब मनगढन्त हैं। कुछ नामों को तो दुहराया गया है और कुछ विशुद्ध काल्पनिक हैं। एक पत्नी तो उनकी रीछ की कन्या है; दूसरी उस मद्रराज की पुत्री जो महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण का कट्टर शत्रु था, और उन्हें अपना जामाता बनाने को शायद ही कभी तैयार होता।

इन पुराणों में इससे भी बाद के क्षेपकों में श्रीकृष्ण के प्राग्ज्योतिषविजय के पश्चात १६,००० पत्नियों के होने की कपोलकल्पित कथाएँ हैं और उनके १,८०,००० पुत्र बताये गये हैं, अर्थात् इस हिसाब से प्रतिवर्ष उनके १५०० पुत्र उत्पन्न हुए !

[शेष पृष्ठ १७ पर]

श्री अरविन्द

नवीन जगत के लीला-पद्म पर महाकाल पुरुष का विहार

●

कलियुग के आदि से शेष पर्यन्त कलि के साथ जो मानव का घोर संग्राम चल रहा है और चलेगा, उस संग्राम के सहायक और नायक के रूप में भगवान का अवतार और उनकी विभूति कलिकाल में बार-बार प्रकट होंगे। उस संग्राम के उपयुक्त ब्रह्मतेज, ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्म की शिक्षा देने के लिये और उसके सम्मुख मानवों की रक्षा करने के लिये कलि के आरम्भ में भगवानने मानव-शरीर धारण किया था। भारत की रक्षा मानव-कल्याण की भित्ति, और आशा-स्थल है। भगवान ने कुरुक्षेत्र में भारत की रक्षा की थी। उस रक्त-समुद्र में नूतन जगत के लीला-पद्म पर कालरूपी विराट पुरुषने विहार करना आरम्भ किया था।

●

प्रथम आवेश में अर्जुन ने कुलनाश पर ही अधिक बल दिया था, क्योंकि इस वृहत् सैन्यसमावेश दर्शन में कुल की चिंता, जाति की चिंता अपने-आप मन में उठती है। कहा जाता है कि जिस प्रकार आधुनिक मनुष्य-जाति के लिए जाति की हितचिंता स्वाभाविक है, उसी प्रकार उस समय के भारतवासी के लिए कुल की हितचिंता स्वभाविक थी। किंतु यह आशंका क्या अकारण थी कि कुलनाश से जाति की प्रतिष्ठा का नाश होगा? कइयों का कहना है कि अर्जुन को जिसका भय था, वास्तव में वही होकर रहा; कि कुरुक्षेत्र का युद्ध भारतीय अवनति और दीर्घकालीन पराधीनता का मूल कारण है। तेजस्वी क्षत्रियवंश के लोप से, क्षात्रतेज के ह्रास से भारत का विषम अमंगल हुआ है। एक विख्यात विदेशी महिला, जिनके श्रीचरणों में अनेक हिन्दू इस समय शिष्यभाव से नतमस्तक हैं, यह कहती कुंठित नहीं

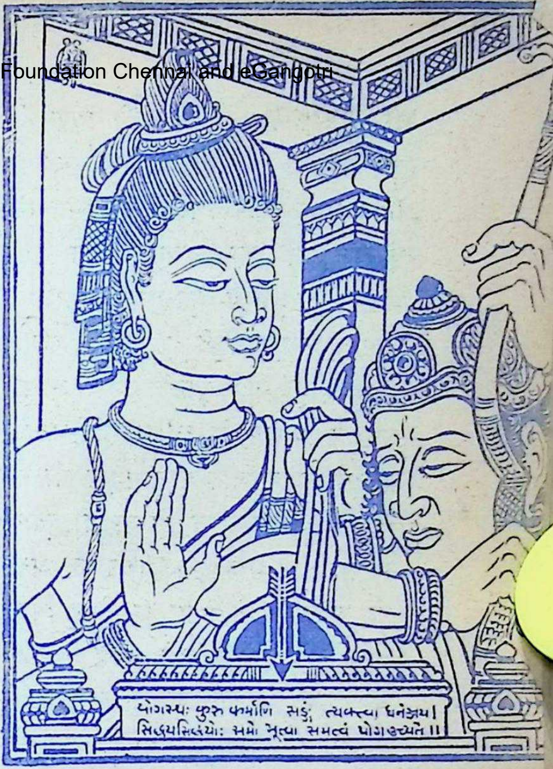
યોગસ્થઃ કુરુ કર્માણિ સઙ્ગં ત્યક્ત્વા ધનંજય।
સિદ્ધ્યસિદ્ધ્યોઃ સમો ભૂત્વા સમત્વં યોગ ઉચ્યતે ॥

नहीं कि क्षत्रियनाश से अंगरेज साम्राज्य स्थापन का पथ सुगम करना ही भगवान के अवतीर्ण होने का असल उद्देश्य था। हमारे मत से, जो लोग इस प्रकार की असंलग्न बात बोलते हैं, वे विषय की गहराई में न जाकर अतिनगण्य राजनीतिक तत्व के वश हो श्रीकृष्ण के राजनीतिक तत्व को देखते हैं। यह राजनीतिक तत्व अनार्य-चिताप्रणाली-सम्भूत म्लेच्छविद्या है। अनार्यगण आसुरिक बल से बलवान हैं और उसी बल को स्वाधीनता और जातीय महत्व का एकमात्र आधार वे मानते थे।

जातीय महत्व केवल क्षात्रतेज पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, चतुर्वर्ण के चतुर्विध तेज से ही उस महत्व की प्रतिष्ठा है। सात्विक ब्रह्मतेज राजसिक क्षात्रतेज को ज्ञान, विनय और परहितचिंता की मधुर संजीवनी सुधा से जीवित रखता है, क्षात्रतेज शांत ब्रह्मतेज की रक्षा करता है। क्षात्रतेजरहित ब्रह्मतेज तपोभाव द्वारा आक्रांत होकर शूद्रत्व के निकृष्ट गुणों को आश्रय देता है। अतएव जिस देश में क्षत्रिय नहीं, उस देश में ब्राह्मणों का निवास निषिद्ध है। यदि क्षत्रियवंश का लोप होता है, तो नूतन क्षत्रिय की सृष्टि करना ब्राह्मण का प्रथम कर्तव्य है। ब्रह्मतेजपरित्यक्त क्षात्रतेज दुर्जन्त, उद्दाम आसुरिक बल में परिणत होकर प्रथम तो परहित विनाश के लिए चेष्टाशील होता है और अंत में स्वयं भी नष्ट हो जाता है। रोमन कवि ने यथार्थ कहा है कि, असुरगण स्वयं अपने बलातिरेक से पतित होकर समूल विनष्ट होते हैं। सत्व रज की सृष्टि करेगा; रज सत्व की रक्षा करेगा, सात्विक कार्य में नियुक्त होगा, तभी व्यक्ति और जाति का मंगल संभव है। सत्व यदि रज का ग्रास करे, रज यदि सत्व का ग्रास करे, तो तम के प्रादुर्भाव से विजयी गुण स्वयं पराजित हो, तमोगुण का राज्य होता है। ब्राह्मण कभी राजा नहीं बन सकता, क्षत्रिय विनष्ट होगा तो शूद्र का राज्य होगा, ब्राह्मण तामसिक

होकर अर्थलोभ में ज्ञान को विकृत कर शूद्र का दास बनेगा, आध्यात्मिक भाव निश्चेष्टता का पोषण करेगा, स्वयं म्लान होकर धर्म की अवनति का कारण होगा। निःक्षत्रिय शुद्रचालित जाति का दासत्व अवश्यम्भावी है। भारत की यही अवस्था हुई है। दूसरी ओर, आसुरिक बल के प्रभाव से क्षणिक उत्तेजना के कारण शक्तिसंचार और महत्व भी संभव है, परन्तु तब शीघ्र ही या तो दुर्बलता, ग्लानि और शक्तिक्षय होकर देश अवसन्न हो जाता है, नहीं तो राजसिक विलास, दम्भ और स्वार्थ की वृद्धि से जाति अनुपयुक्त होकर महत्व रक्षा के लिए असमर्थ हो जाती है, अथवा अंतर्विरोध, दुर्नीति, अत्याचार से देश नष्टभ्रष्ट होकर शत्रु का सहज शिकार बनता है। भारत तथा यूरोप के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

महाभारत काल में आसुरिक बल के भार से पृथ्वी अस्थिर हो उठी थी। भारत में इस प्रकार का तेजस्वी, पराक्रमशाली, प्रचंड क्षत्रिय तेज का विस्तार इससे पहले भी नहीं हुआ था, न बाद में; परन्तु उस भीषण बल के सदुपयोगकी संभावना बहुत कम थी। जो इस बल के आधार थे, वे सभी असुर प्रकृति—अहंकार, दर्प, स्वार्थ, स्वेच्छाचार—के वशीभूत थे। यदि श्रीकृष्ण इस बल का नाश कर धर्मराज्य की स्थापना नहीं करते, तो जिन तीन प्रकार के परिणामों की आगे चर्चा हुई है, उनमें से कोई न कोई परिणाम अवश्य घटित होता। भारत असमय में ही म्लेच्छों के हाथ आ जाता। यह याद रखना चाहिए कि कुरुक्षेत्र का युद्ध पांच हज़ार वर्षों पहले हुआ था और अढ़ाई हज़ार वर्ष बाद म्लेच्छों का प्रथम सफल आक्रमण सिन्धु नदी के उस पार पहुँच सका था। अतएव अर्जुन-प्रतिष्ठित धर्मराज्य ने इतने दिन ब्रह्मतेज—अनुप्रणित क्षात्रतेज के प्रभाव से देश की रक्षा की। तब भी संचित क्षात्रतेज देश में इतना था कि उसके भग्नांश ने भी दो हज़ार वर्ष तक देश को बचा रखा। चंद्रगुप्त, पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, विक्रम, संग्रामसिंह, राजसिंह, प्रताप, प्रतापादित्य, शिवाजी इत्यादि महापुरुष उसी क्षात्रतेज के बल से देश के दुर्भाग्य के साथ संग्राम कर सके थे। गुजरात युद्ध में और लक्ष्मीबाई की चिता पर ही उसका शेष स्फुलिंग निर्वाचित हुआ। तब श्रीकृष्ण के राजनीतिक कार्य का मुख्य और पुण्य क्षय हो गया था। भारत को जगत की रक्षा करने फिर से पूर्णावतार की आवश्यकता हुई। वही अवतार फिर से ब्रह्मतेज ज़ाग्रत कर गये। वही ब्रह्मतेज क्षात्रतेज की सृष्टि करेगा। श्रीकृष्ण ने भारत के क्षात्रतेज को कुरुक्षेत्र के रक्तसमुद्र में निर्वाचित नहीं किया,

आसुरिक बल का विनाश कर ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज दोनों की ही रक्षा की। आसुरिक बल दृप्त क्षत्रियवंश के संहार से उद्दाम रजःशक्ति को छिन्न-भिन्न उन्होंने किया, यह सत्य है। इस प्रकार के महा-विप्लव, अंतर्विरोध को उत्कट भोग द्वारा क्षय कर, निगृहीत कर, उद्दाम क्षत्रियकुल का संहार सर्वदा अनिष्टकर होता है। अंतर्विरोध से रोमन क्षत्रियकुल नाश हुआ तथा राजतंत्र स्थापना से रोम का विराट साम्राज्य अकालविनाश का ग्रास होने से बचा था। इंग्लैण्ड में श्वेत और रक्त गुलाब के अंतर्विरोध से क्षत्रियकुलनाश द्वारा चतुर्थ एडवर्ड, अष्टम हेनरी तथा रानी एलिज़ाबेथ सुरक्षित, पराक्रमशाली, विश्वविजयी आधुनिक इंग्लैण्ड का आधार स्थापन करने में समर्थ हुए थे। कुरुक्षेत्र युद्ध से भारत भी उसी प्रकार की रक्षा पा सका।

कलियुग में भारत की अवनति हुई है, यह कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु अवनति लाने के लिए भगवान का अवतार कभी नहीं हुआ। धर्मरक्षा, विश्वरक्षा, लोकरक्षा के लिए ही अवतार होता है। विशेषतः कलियुग में ही भगवान पूर्णभाव से अवतरित होते हैं, क्योंकि कलियुग में मनुष्य की अवनति का अधिक भय रहता है। अधर्मवृद्धि स्वाभाविक होती है, इसलिए मानवजाति की रक्षा के लिए अधर्म नाश और धर्मस्थापना के लिए, कलि की गति रुद्ध करने के लिए इस युग में पुनः पुनः अवतार होता है। श्रीकृष्ण जब अवतरित हुए, तब कलि का राज्य आरंभ होने का समय हुआ ही था, उन्हींके आविर्भाव से भीत हो कलि अपने राज्य का पदस्थापन करने में समर्थ नहीं हुआ; उन्हींके प्रसाद से परीक्षत ने कलि को पंचग्राम दान देकर उसीके युग में उसीके आधिपत्य को स्थगित कर दिया। जिस कलियुग के प्रारंभ से अंत तक कलि के साथ मानव का घोर संग्राम चल रहा है वह चलेगा, उसी संग्राम के सहायक और नायक के रूप में भगवान का अवतार और विभूति कलि में बारंबार प्रकट होती है, उसी संग्राम में उपयोगी ब्रह्मतेज, ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म की शिक्षा और रक्षा करने भगवान ने कलि के आरंभ में मानवशरीर धारण किया था। भारत की रक्षा मानवकल्याण की भित्ति और आशास्थल है। भगवान ने कुरुक्षेत्र में भारत की रक्षा की थी। उसी रक्तसमुद्र में नूतन-जगत के लीलापद्म पर कालरूपी विराटपुरुष ने विहार करना आरंभ किया।

*

“सूधी अंगुरि न निकसै घीऊ”—जायसी

डॉ. हरिवंशराय बच्चन

●

गोवर्धनधारी उँगली की परम्परा

चलें आओ, चले आओ,
जानता हूँ हाथ खाली है तुम्हारा,
हथेली खुरदुरी, रूखी
ओऔ' गदोरी में न गड्ढा।

आज घी की कमी दुनिया में नहीं है–
औ' न उससे अधिक गुणकर डालडा की–
फैक्टरी पर फैक्ट्रियाँ हैं–
इस अहिंसक देश में यदि
मांस–घी पर शाक–घी को
दी गयी तरजीह तो आश्चर्य क्या है? –
किन्तु घी की इस प्रकट बहती नदी में
या कि उसकी बाढ़ में–घृत–सिंधु में–
वर्णित पुराणों में प्रदर्शित नये युग में–
बिंदु से वंचित अगर तुम रह गये हो,
पूर्वजों का गो कि था उपदेश
ऋण लेकर पियो घी,
तो यही कारण
कि सीधी उंगलियाँ सारी तुम्हारी,
जो कि झुककर हुक न बनतीं,
जो कि मुड़ टेढ़ी न होतीं,–
एक तो अपवाद होतीं–
जबकि पाँचों या दसों के हैं सदुपयोगी चतुर्दिक;
और, मेरे बंधु, सीधी उँगलियों से
घी निकलता नहीं
सारे अनुभवी बतला गये हैं।
किन्तु फिर भी चले आओ,
तुम हमारे काम के हो।

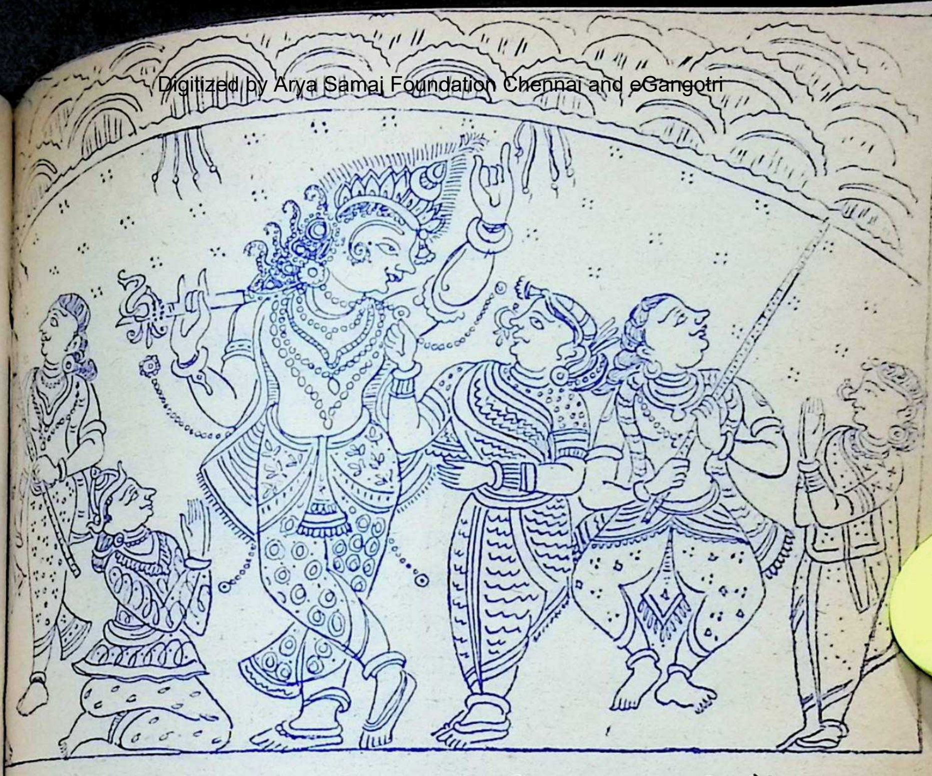

गोवर्धनधारी : उड़ीसा लोक शैली

तीन पोरों से लचीली उँगलियाँ
वरदान कितनी बड़ी थीं
चतुरा प्रकृति की।

किन्तु युग के इस महा घृत-मोह ने
सब को विकृत-टेढ़ी बना
अभिशाप साबित कर दिया है।

एक पीढ़ी लग रही विकलांग
लकवे से प्रताड़ित।
लुप्त आज परंपरा है
वे-मुड़ी, बे-झुकी, सीधी उँगलियों की
कभी जिसने सहज अपने पर
टिका कर छत्र-गोवर्धन
गगन का गर्व-मद-मर्दन किया था।

तुम उसी की कड़ी कोई बच गये हो,
चले आओ, चले आओ ।
तुम्हें गोवर्धन उठाने को
नहीं मैं कह रहा हूँ
किंतु केवल एक तुममें
शक्ति है निर्भीक-निश्चल
ख़ास तुम संकेत कर कह दो
कि देखो–
"तुम पतित हो,
तुम ग़लत पथ के प्रदर्शक,
तुम नक़लची दूसरों के,
तुम धुरी से हीन, अवसर की सजावट,
तुम प्रवंचक-धर्म दोहक, .
स्वार्थ तुम साकार, पैसाकार,
तुम शोषक प्रजा के,
तुम नपुंसक सब तरह का जो कि
अत्याचार, भ्रष्टाचार, छद्माचार सहते ।"

आज टेढ़े से नहीं शंका रही है,
क्योंकि सब हैं वक्र
कोई ग्रसे किसको-किसे पकड़े ?
किंतु ऐसी वक्रता के चक्र या कि कुचक्र में
शर-शब्द-बेधी
एक उँगली उठेगी सीधी अगर
दुनिया डरेगी, थरथरायेगी, समझ लो ,
बात यह मेरी कही है ।
इसलिए मैं बारबार पुकारता हूँ
चले आओ, चले आओ,
और जो झुकना न मुड़ना
न ही हटना और हिलना जानती
उँगली उठाओ ।

[सूर्योदयी नूतन कविता का घोषणा-पत्र पढ़ने के उपरान्त हिन्दी के एक युग-प्रवर्तक कवि डॉ. बच्चन द्वारा हमें भेजा गया आशीर्वचन ।]

[पृष्ठ ९ का शेषांश]

इससे संतुष्ट न हो कर प्राकृत कवियों ने संभवतः १५०० वर्ष पश्चात्, कृष्ण की एक नयी प्रेमिका रच डाली। ११ वीं सदी में रचित जयदेव के श्रृंगारप्रधान काव्य गीतगोविन्द का मुख्य विषय ही राधा-कृष्ण का प्रेम था। ब्रह्मांड पुराण (१४-१५ सदी) ने इससे भी आगे बढ़ कर श्रीकृष्ण को अनेक गोपियों का रसिक प्रेमी बना दिया।

इस प्रकार समाज जैसे-जैसे पतनोन्मुख और कल्पना उच्छृंखल होने लगी, श्रीकृष्ण का निजी जीवन अपना वास्तविक रूप बदलता गया, और जहाँ वे एक पत्नी, अधिक से अधिक चार पत्नियों, के स्वामी प्रामाणिक परम्परा के अनुसार माने जाते थे, वहाँ उनके प्रणय की कोई सीमा ही नहीं रही।

● ● ●

इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के यथासंभव वास्तविक चरित्र की शोध कर, उनके सशक्त व्यक्तित्व के अनुरूप ही परम्पराओं से ऐसी घटनाओं का चयन भी मुझे करना था जिनसे उनकी जीवनी का एक तारतम्य बैठ सके। मैं स्वीकार करता हूं कि इस कार्य में मुझे भी अपनी कल्पना का सहारा लेना पड़ा। श्रीकृष्ण के साथ राधा का नाम जन-जीवन के साथ कुछ ऐसा संलग्न है कि उसे एकदम छोड़ देना किसी तरह संभव नहीं था। कुछ ऐसी घटनाएं भी, जो प्रामाणिक जान पड़ती थीं, इतनी लचर थीं कि उनके लिए मुझे कारण और स्थान की पूर्ति स्वयं करनी पड़ी।

मेरा विश्वास है कि अपने जीवनकाल में ही श्रीकृष्ण अपने महान समकालीनों द्वारा देवतुल्य समझे जाने लगे थे, इसलिए इस भक्ति साधना के मूल का भी मुझे पता लगाना था। उनके व्यक्तित्व में ऐसे कुछ अलौकिक तत्व अवश्य रहे होंगे कि व्यास और भीष्म भी पुरुषोत्तम मान कर उनकी प्रतिष्ठा करते थे और अर्जुन ने तो उन्हें स्वयं भगवान के रूप में ही देखा था। किन्तु इस भावना के क्रमिक विकास का पता लगाना किसी उच्च प्रतिभावाले सर्जनशील व्यक्ति का ही काम है और ऐसा होने का दावा मैं नहीं करता।

मेरी रचनाओं में इन सभी बातों का निर्वाह सफलतापूर्वक हुआ है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। फिरभी इस बात का मुझे पूर्ण संतोष है कि पिछले तीन वर्षों से अपने कल्पना लोक में मुझे श्रीकृष्ण के साथ रहने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

इस समय तो मेरा मन उस रथ के पीछे-पीछे दौड़ रहा है जिसमें श्रीकृष्ण रुक्मणी को कुंदिनपुर से द्वारका भगा ले जा रहे हैं, मानों द्रुत गतिशील उस रथ के पहियों से उठा हुआ और उन्हीं का अनुकरण करता हुआ वह एक रजकण हो।

आपका

कनैयालाल मुन्शी

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

श्रीकृष्ण : भागवद्-पुरुष और इतिहास-पुरुष

श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता सम्पूर्ण रूप से प्रमाणित है। पर उनकी महिमा उनकी ऐतिहासिकता में नहीं, इतिहास के काल-क्रम को अतिक्रान्त कर, अनन्त कालों और लोकों में उनके नवीनतर विकास की पुकार पर, उसके एक ज्वलन्त और अचूक उत्तर के रूप में अवतरित होने में है। प्रत्येक काल-खण्ड में जो सनातन पूर्ण-पुरुष, उस काल की चरम-परम आवश्यकता के रूप में साक्षात् अवतार लेता है, वही एक वारगीही इतिहास-पुरुष और भागवद् पुरुष श्रीकृष्ण है।

जहाँ तक भगवद्गीता के उपदेश का प्रश्न है, यह जानना अनावश्यक है कि गीता के संदेशक श्रीकृष्ण ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं, अथवा नहीं। इस प्रश्न में विचार की बात है–विश्व में या मनुष्य की आत्मा में उस पूर्ण और दिव्य जीवन का अवतरण, उस शाश्वत सत्ता का अवतरण, जो अनन्त है।

फिर भी, कृष्ण की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण हैं। छांदोग्य-उपनिषद् में कृष्ण को देवकी का पुत्र और घोर आंगिरस का शिष्य कहा गया है। कौषीतकी ब्राह्मण के अनुसार आंगिरस सूर्य के उपासक थे। यज्ञ (sacrifice) के अर्थ की व्याख्या करने के पश्चात् आंगिरसने उपासक के लिए तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्यवचन आदि पाँच गुणों का अभ्यास आवश्यक बताया है। उपनिषद् कहता है, "जब घोर आंगिरस ने देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को इन गुणों के वारे में कहा तब यह भी स्पष्ट किया कि मनुष्य को इन तीन विचारों की शरण जाना चाहिए–तुम अनाशवान् हो (अक्षत), तुम अविचल हो

(अच्युत), तुम जीवन का सम्पूर्ण सार हो (प्राण)। उपनिषद् में घोर आंगिरस और गीता में दिये गये कृष्ण के उपदेश में बहुत साम्य मिलता है।

महाभारत की कथा में कृष्ण ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। कृष्ण अर्जुन के मित्र के रूप में सम्मुख आये हैं। पाणिनी ने वासुदेव और अर्जुन को पूजा के आधार (objects of worship) कहकर उद्धृत किया है। कृष्ण यदुवंशियों की पुरातन वृष्णि अथवा सात्वत शाखा से सम्बन्धित हैं, जिनका निवासस्थल मथुरा के निकट कहा गया है। इतिहास और धर्मग्रंथों में मथुरा नगरी कृष्ण के नाम से जुड़ी हुई है। कृष्ण ने वैदिकधर्म के पुजारीवाद से भिन्न जो उपदेश दिया है, वह आंगिरस के सिद्धांतों से अनुप्राणित है। वैदिक सम्प्रदाय से कृष्ण का विरोध वहाँ देखने में आता है, जहाँ इन्द्र युद्ध में पराजित होता है और विनम्र भाव से कृष्ण से कहता है, "मैं इन्द्र हूँ, देवों का इंद्र। किन्तु, तुमने गौओं के ऊपर इंद्र की शक्ति को पा लिया है। गोविन्द के रूप में मनुष्य सदा तुम्हारी भक्ति करेंगे (हरिवंश)।" गीता में ऐसे कई उद्धरण हैं, जहाँ यह स्पष्ट है कि सब मनुष्य कृष्ण में अपनी आस्था नहीं रखते और उनके उपदेश पर आक्षेप करते हैं (३।३२; ९।११; १८।६१)। महाभारत में ऐसे संकेत

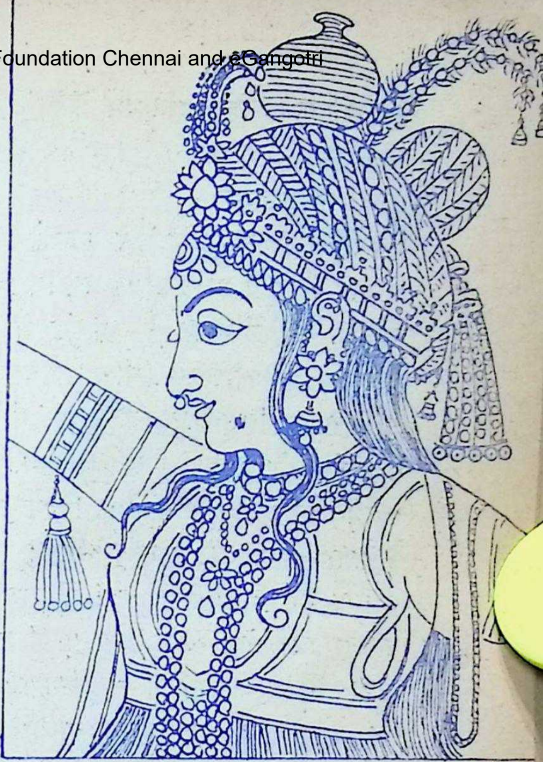

श्रीकृष्ण : राजस्थानी शली

हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि कृष्ण की सर्वप्रभुता नहीं की गयी थी। इस महाकाव्य में कृष्ण इतिहास-पुरुष और अवतार-पुरुष दोनों रूप में प्रदर्शित हैं। कृष्ण ने सात्वतों को सूर्य की उपासना करने के लिए कहा था और तब सात्वतों ने कृष्ण और सूर्य को एकरूप मानकर उपासना की। भावगत के अनुसार सात्वतों ने उस 'परम' की आराधना 'भगवान्' और 'वासुदेव' कहकर की है। ईसा से चौथी शतीपूर्व वासुदेव-सम्प्रदाय पूरी तरह स्थापित हो चुका था। बौद्ध-धर्म के ग्रंथ निद्देस (चौथी

शती ई. पू.) में, जो 'पाली कैनन' में सम्मिलित है, लेखक ने 'वासुदेव' और 'बलदेव' के उपासकों का उल्लेख किया है। मैगस्थनीज़ (३२० ई. पू.) ने कहा है कि हेरेक्लस शूरसेनों द्वारा पूजित था, जिसके प्रदेश में दो बड़े नगर थे– मथुरा और कृष्णपुर। हेलिओडोरस (ग्रीक भागवत्) ने बीसनगर शिलालेख (१८० ई. पू.) में वासुदेव को 'देवदेव' कहा है। ईसा से पहली शताब्दी पूर्व के नानघाट शिलालेख के प्रथम पद में देवों के मध्य वासुदेव का उल्लेख है। बौद्धधर्म के ग्रंथों में राधा, यशोदा और नन्द आदि खास पात्रों का उल्लेख मिलता है। पाणिनी की टीका करते हुए पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में वासुदेव को 'भगवत्' कहा है। गीता भगवद्गीता नाम से पुकारी गयी है, क्योंकि भागवद्धर्म में कृष्ण 'श्रीमद्भगवान्' नाम से जाने गये हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि वे कुछ नया दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, किंतु उसी उपदेश को दुहरा रहे हैं, जो इन्होंने विवस्वान् से कहा था और विवस्वान् ने मनु से तथा मनु ने इक्ष्वाकु से कहा था। महाभारत में यह प्रसंग है कि भागवद्धर्म परम्परागतः विवस्वान् से मनु और मनु से इक्ष्वाकु को मिला। नारायणीय अथवा भागवद्धर्म के बारे में यह उल्लेख है कि यह धर्म पहले भगवद्गीता में कृष्ण द्वारा उपदिष्ट हो चुका था– वाद में कौरव-पाण्डवों के युद्ध के अवसर पर अर्जुन के हतोत्साह हो जाने के कारण उन्होंने इसे दुबारा कहा।

गीता में कृष्ण उस परम सत्ता (Supreme Lord) के साथ तद्रूप किये गये हैं, जो दिखायी देने वाली विविध-रूपा सृष्टि के पीछे का ऐक्य (Unity) है, सबके ऊपर का अलौकिक सब में अवतरित सार है, सब रूपाकारों में एक अविचल सत्य (Changeless truth) है। कृष्ण ईश्वर का प्रकट रूप हैं, जो सामान्य मनुष्यों द्वारा भी आसानी से जाने जा सकते हैं, क्योंकि जो मनुष्य-उस 'परम ब्रह्म' को पाना चाहता है, उसकी प्राप्ति अथक परिश्रम के बाद ही सम्भव है। कृष्ण 'परमात्मन्' कहे गये हैं, अलौकिक जीवभूत, सर्व के प्राणरूप।

प्रश्न है–इतिहास-पुरुष को परम-भगवान् (Supreme God) के साथ कैसे तदाकार किया जा सकता है? "वैश्विक आत्मा (Univerral Self) का व्यक्ति के रूप में अवतरण हो सकता है, या वह उस परमात्मन् से अभिन्न है? इस विचारधारा से हिन्दू धर्म की परिचिति है। उपनिषद् में कहा गया है कि सम्पूर्ण चेतन आत्मा, जो उस परम (Absolute) से अपना सच्चा सम्बन्ध पहचानती है– वह देखती है कि मूलतः आत्मा उस 'परम' से अभिन्न है और वह स्वयं परम है।

ईश्वर का जन्म साधारण अर्थ के लिए कभी नहीं होता है। जन्म और अवतरण का जो नियम सीमाओं से बाधित है, वह उनके प्रति लागू नहीं होता। जब किसी खास समय और खास अवसर पर ईश्वर स्वयं को प्रकट करना चाहता है या प्रकट करता है, तो उसका तात्पर्य यही है कि वह एक सीमित मानवीय आकार में रूप ग्रहण करता है। विश्व का आध्यात्मिक और भौतिक विधान उस परम की प्रकृतियों की उच्च और निम्न अभिव्यक्तियाँ हैं, किंतु जो महत्, सुन्दर और दृढ़ है, उसमें ईश्वर की उपस्थिति विशेष रूप से प्रकट होती है। जब कोई व्यक्ति (Finite individual) स्वयं में आध्यात्मिक गुणों का विकास कर लेता है और विशाल अन्तर्दृष्टि का स्वामी हो जाता है, वह विश्व का निर्णायक होता है आध्यात्मिक एवं सामाजिक ऊर्ध्वीकरण करता है, तो हम कहते हैं कि सज्जनों की रक्षा के लिए, दुष्टों के विनाश के लिए और धर्म की संस्थापना के लिए ईश्वर ने जन्म लिया है। सहस्त्रों रूपाकारों में श्रीकृष्ण वह व्यक्ति हैं, जिनके रूप में उस वैश्विक आत्मा ने स्वयं को प्रकट किया है।

मनुष्य के आध्यात्मिक गुणों और विद्यमान् किंतु अविकसित दिव्यता (latent divinity) का स्पष्टीकरण 'अवतार' है। मानवीय आकार में दिव्यप्रभु का स्वीकरण ही केवल अवतार नहीं है, किंतु मनुष्य की प्रकृति का वह ऊर्ध्वीकरण जो 'दिव्य के साथ अपनी एकता के द्वारा ब्रह्मस्थल तक ले जाता है, 'अवतार' है।

अध्यात्मवाद में स्पष्ट है कि कृष्ण अवतार हैं, अथवा मनुष्य के आकार में 'दिव्य' का अवतरण हैं। यद्यपि ईश्वर का कोई जन्म नहीं है, वह अपरिवर्तनीय है, किंतु फिर भी उसने अनेकों बार जन्म लिया है। कृष्ण विष्णु का मानव रूप हैं। कृष्ण वह परमेश्वर है, जो संसार के समक्ष जन्म लेता है और प्रकट होता है। सृजन और अवतरण दोनों का ही सम्बन्ध प्रकटीभूत संसार (World of manifestation) से है, निराकार ब्रह्म (Absolute Spirit) से नहीं। जब-जब धर्म की ग्लानि होने लगती हैं और अधर्म का प्रसार दिखायी देता है, तब धर्म की पुनर्स्थापना के लिए दिव्यप्रभु अपना सृजन करता है। अपने प्रेम के कारण वह बार-बार जन्म लेता हैं, ताकि विश्व को उन्नत स्तर (higher plane) पर ले जाय।

कृष्ण कोई अतीत व्यक्तित्व नहीं है, जो कभी हमारी पृथ्वी पर आया था या जिसने अपने प्रिय मित्र व शिष्य अर्जुन को उपदेश दिया था, किंतु वह सार्वकालिक रूप है, जो हम सब में है, सब जगह है।

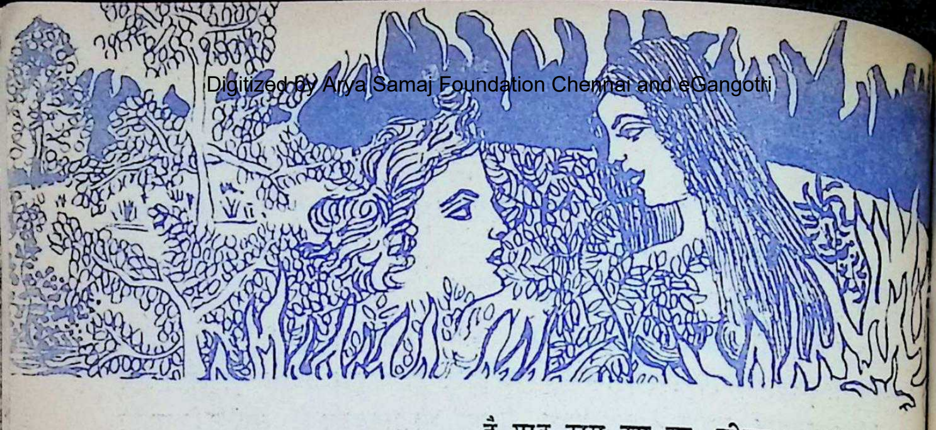

बनी मैं पूजा

पं. जानकी वल्लभ शास्त्री

हैं याद रास रस का, जीवन का यौवन,
उन्माद नाद का, प्राणों का सम्मोहन!
उच्छ्वास–श्वास की तप्त तृषा का तर्पण,
गुण–कर्म–हरण वह सर्वेन्द्रिय–ज्ञानार्पण!
वह अविश्वास–तट का प्रकाश का प्लावन,
वह निमिष–निमिष में निहित अनन्त, चिरन्तन!

स्मृतियों के फहरे अम्बर के वे बूटे–
हैं चमक रहे अब भी सँवलाये, टूटे!
वे तीर चक्र–से चन्द्र–धनुष से छूटे–
कैसे आत्मा के सोम–चषक थे घूँटे!

हैं याद मौन मन का अरूप, अनलंकृत–
अम्बर–वीणा के तार–तार पर झंकृत!
वह ध्वनि आँखों की पी, देखी कानों की,
वह खिंची तान तन के गिरते मानों की!
वह चिन्मय ऊर्ध्वपतन मृण्मय नारी का,–
जीवन भर जीवन से जीती, हारी का!

रतनार अंगारे बरसे वारिज-वन में,
उड़ते स्फुलिङ्ग किञ्जल्क–पिङ्ग हिमकण में!
वह ठहरा–ठहरा काल, देश अतियन्त्रित,
खद्योत– चेतना चन्द्र–बिम्ब– अभिमन्त्रित!

रस का अपार विस्तार, राग का सागर,
उस दिन देखा अनदेखा-सा नटनागर!
वेदना न थी विद्युत् की अन्तःस्तर में,
इकहरा मेघ ज्योत्स्ना-ज्योतित अम्बर में!
वह रूप-कपूर सुगन्ध-धूम से वेष्टित,
अनुराग-आग की ललित लपट दृग-चेष्टित!
मन कहता था, आत्मा के कर्ण-कुहर में,
–'आ सकती ऐसी घड़ी रात, दुपहर में,
हिमवाष्प तलहटी में जब जम जायेगा,
संवेग शिखर के पथ में थम जायेगा,
अतिरिक्त चेतना चित को भरमायेगी
जीवन झूमेगा, मृत्यु गान गायेगी!'

× × ×

संकल्प निपट क्रम-हीन, विफल-श्रम-गीले
थे लिये जा रहे जाने कहाँ हठीले!
सहसा मुरली का नाद श्रवण-नभ गूंजा,
मन मन्दिर-सा खुल गया, बनी मैं पूजा!

*

डॉ. कन्हैयालाल मुन्शी

श्रीकृष्ण और भगवद्गीता

गीता का केन्द्रीय तत्व यही है, कि मर्त्य मानव की देह में श्रीकृष्ण के रूप में स्वयम् श्री भगवान् अवतरित हुए थे। गीता की दिव्य प्रज्ज्वलन्त वाणी में उन्होंनें अर्जुन को सिखाया था, कि वह उन्हें जानें, उनके पास आये, उनके भीतर जिये, और उन-रूप हो जाये। यही तत्व भारतकी सबसे मूल्यवान निधि रहा है। गीता कोई परलोक, सन्यास या अकर्मण्यता का शास्त्र नहीं है। वह एक नितान्त मानवीय दस्तावेज़ है : हर मानवीय स्थिति की वह मार्ग-दर्शिका है। जीवन के दारुणतम संग्राम में वह मनुष्य को अपनी सीमाओं से ऊपर उठने की शिक्षा देती है। वह एक ऐसे विजेता जीवन का सन्देश देती है, जिससे मनुष्य, इस जीवन में ही, आत्मानुशासन द्वारा भागवदीय आयामों को प्राप्त कर सकता है। मरण, पराजय और घोर भौतिकता के जिस ज़हर से आज पश्चिम ने जगत् को विषाक्त कर दिया है, उसे गीता एक अपराजेय पुरुषार्थ के संदेश से चुनौती देती है।

* * *

गीता के गायक हैं श्रीकृष्ण, जो परम विजयी पुरुषत्व के प्रतीक हैं और जिन्हें भारतवर्ष की जनता युग-युग से भगवान का अवतार मानती आयी है।

पिछले ढाई हज़ार वर्षों से गीता-धर्म ने असंख्यों लोगों को सामान्य मानव से कहीं अधिक सक्षम वनाया है, जिनमें आधुनिकों में हम शंकर और रामानुज, विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक और गांधीजी की भी गणना कर सकते हैं। भागवत और तुलसीदास का रामचरित मानस जैसे अमर ग्रंथ भी इसी धर्म से प्रेरित हैं और इसीलिए वे भारतीय संस्कृति को अपना स्वरूप और शक्ति प्रदान करने में समर्थ हुए हैं। कभी सिर न झुकानेवाले, विप्लवी पुरुषत्व की अग्नि-शिखा को इसी छोटी-सी पुस्तिका ने प्रज्ज्वलित रखा है। पराजय, मृत्यु तथा उस घोर

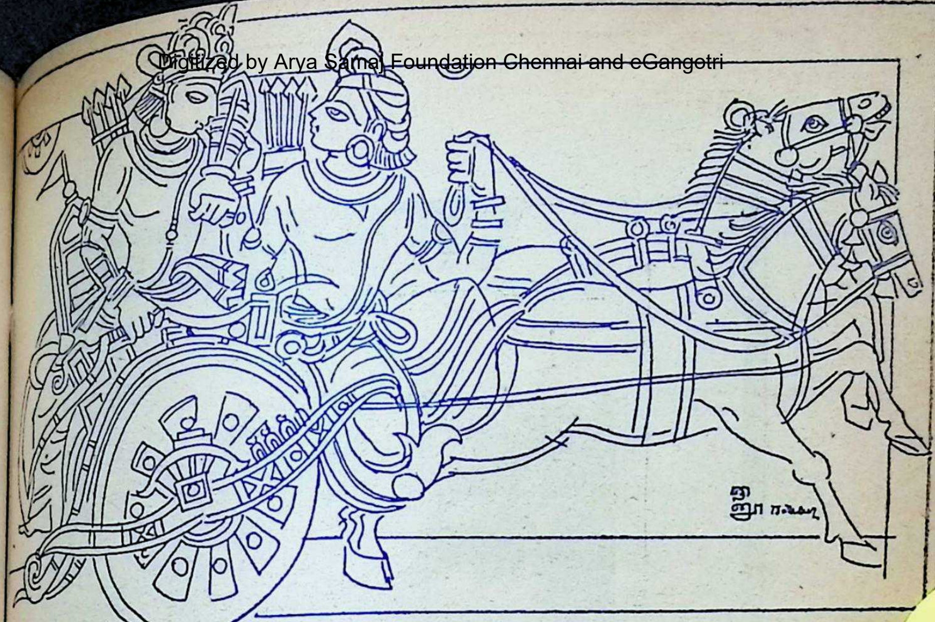

भौतिकवाद को इससे सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है, ज़िसके द्वारा आधुनिक पाश्चात्य देशों ने विश्व को विषाक्त बना रखा है।

भागवत तथा रामायण ने कई प्रकार से हमारे सामूहिक अचेतन मन के मूलतत्व प्रस्तुत किये हैं, परन्तु भगवद्गीता ने उन्हें अद्भुत शक्ति दी है। सातवीं शताब्दि में शंकर ने कहा था, 'इसके उपदेशों का बोध समस्त मानवीय उच्चाकांक्षाओं की पूर्ति करता है।' तिलक के अनुसार यह 'ऐसा ज्ञान है, जिस पर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।' श्री अरविन्द ने इसे 'संसार का महानतम धर्मग्रंथ, एक राष्ट्र और संस्कृति के पुनरुद्धार में सर्वाधिक सशक्त तत्व' कहा है। गांधीजी तो गीता को जगत् की जननी कहते थे और उनके जीवन का प्रत्येक क्षण उसकी अगाध शक्ति का परिचायक था।

ऊँच या नीच, सभी को गीता एक नवजीवन का दिव्य संदेश देती है। मैं यद्यपि 'इस धरती का–पार्थिव' रहा हूँ, फिर भी मेरे लिए भगवद्गीता अंधकार में से जीवन की ओर ले जानेवाली ज्योति-शिखा रही है, हालाँकि उसका प्रकाश अधिकांशत: आच्छन्न, कभी-कभी शीघ्र ओझल हो जानेवाली एक क्षीण और कंपमान ज्योति-रेखा सी रहा है, परन्तु किन्हीं असाधारण प्रेरणा-क्षणों में उसके उज्ज्वल और परम तेजस्वी स्वरूप का भी दर्शन मैंने किया है। सूर्य की भाँति प्रभावित कर उसने प्रेरणा दी है, जीवन का निर्माण और संचालन किया है, क्षय और मृत्यु के विष-कीटाणुओं का नाश किया है,

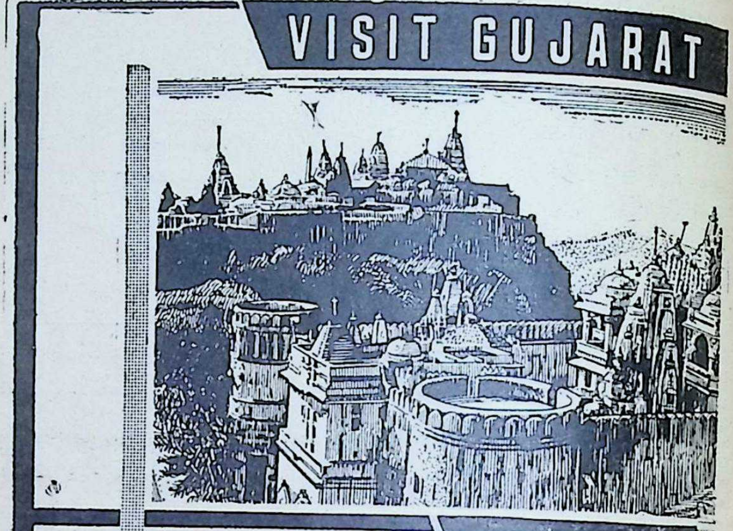

VISIT GUJARAT

PALITANA

PALITANA, a picturesque city of over 860 temples, open to everybody and a place of pilgrimage mainly for the Jains, is situated at a distance of 33 miles by road and 31 miles by rail (via Sihor) from Bhavnagar, in Gujarat State. Over and above their sculptural beauty the temples of Palitana, also attract the tourist from the scenic point of view.

A mile to the south of Palitana, is the hill of SHETRUNJAYA, the most sacred of the five hills of the Jains.

For further details write to :
The Director of Informotion.
Sachivalaya, Ahmedabad-15,

DJRINF (G)

T(8)

या नवीन परिस्थितियों के अनुरूप वजीवन का निर्माण और संगठन किया है।

गीता स्वर्ग का मार्ग दिखानेवाला ग्रंथ नहीं, न वह संन्यास अथवा ष्क्रियता का उपदेश देता है। वह तो येक मानवीय परिस्थिति में मार्गदर्शन रनेवाला एक सक्रिय एवं अत्यंत प्रभावोत्पादक ग्रंथ है। घोर जीवन-संग्राम में वह नुष्य को अपनी सीमाओं का परित्याग रने की प्रेरणा देता है—विजय-प्राप्ति का पाठ सिखाता है, ताकि मनुष्य आत्म-नियंत्रण द्वारा देवत्व की स्थिति प्राप्त कर सके।

उसका मुख्य भाव यह है कि श्रीकृष्ण के रूप में स्वयं ईश्वर ने मानव-तन धारण किया, और गीता के शब्दों को प्रेरित किया। अर्जुन को उन्होंने अपने को जानने, अपने प्रति सर्मपित होने, अपने में ही जीने और स्वयं अपने ही सदृश बनने का उपदेश दिया। यह भाव ही भारतवर्ष की सबसे अमूल्य निधि रहा है; और किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना सभी को सुलभ रहा है। जीज़स क्राइस्ट ने भी तो यही कहा था, "परम पिता मुझमें है और मैं परम पिता में... जो भी शब्द मेरे मुख से निकलते हैं उन्हीं के हैं.... क्योंकि मेरे पिता मुझसे महान हैं।' ल्लाज में महान मुस्लिम रहस्यवादी ने

[शेष पृष्ठ १७६ पर]

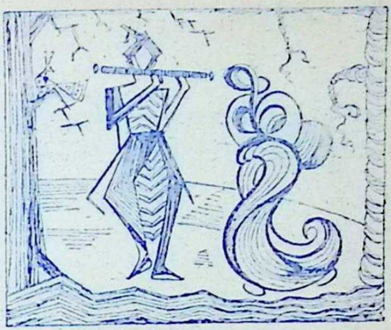

चित्र : चन्द्रभूषण मिश्र

तुम्हारी वेणु

•

तुम्हारी वेणु जब खो गयी,
तुम चले गये मोहन!
लेकिन आज,
वही वेणु बन,
मैं फिर से जन्मी हूँ...!
तुम्हारी सांस सांस से,
बज उठने को आकुल
मेरे ये पोर पोर.......!
लेकिन तुम कब आओगे मोहन
कब आओगे.....?

—ज्योत्स्ना मिलन

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य

पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीला इतनी विरोधाभासिनी है कि उसके समक्ष मानव-चित्त सदा अनेक प्रश्नों से आलोड़ित हो उठता है। अगम और अपार है नर के भीतर नारायण की यह लीला। उसीके रहस्य पर आचार्य द्विवेदीने यहाँ प्रकाश डाला है।

यद्यपि अवतार का हेतु एक यह भी है कि धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान को भगवान् स्वयं आविर्भूत होकर दूर करें, परन्तु मुख्य कारण तो भक्तों के लिए लीला का विस्तार ही है। यह लीला दो प्रकार की बतायी गयी है, प्रकट और अप्रकट। मध्यकाल के भक्त कवियों ने प्रकट लीला का ही गान किया है, परन्तु अप्रकट नित्यलीला को वे भूले कभी नहीं।

हमें जो बात अच्छी तरह याद रखने की है, वह यह है कि भक्त का भगवान् के साथ जो भी सम्बन्ध क्यों न हो, निखिलानन्दसन्दोह भगवान् श्रीकृष्ण ही उस प्रेम के आलंबन हैं। आलंबन, जैसा कि सभी जानते ही हैं, दो प्रकार के होते हैं, विषय-रूप आलंबन और आश्रयरूप आलंबन। दुष्यन्त को देखकर अगर शकुन्तला के हृदय में प्रेमभाव उत्पन्न हुआ है, तो दुष्यन्त विषयरूप आलंबन है और शकुन्तला आश्रयरूप। वैष्णव भक्त भगवान् को विषयरूप आलंबन के रूप में ही देखते हैं। गोपियाँ, यशोदा, नंद, गोप वाल, उद्धव आदि सभी भक्त आश्रयरूप आलंबन हैं। इन सब की एकमात्र अभिलाषा यही होती है कि भगवान हमसे प्रसन्न हों। अगर हम इस बात को ध्यान में रखे बिना वैष्णव साहित्य को पढ़ेंगे, तो हम घाटे में रहेंगे। यह भाव नाना भाव से भक्त कवि की कविता में आयेगा। इसी रूप में न देखने का परिणाम यह हुआ है कि सूरदास की वर्णन की हुई श्रीकृष्ण की बाल-लीला को बड़े-बड़े सहृदयों तक ने इस प्रकार समझा है, मानो

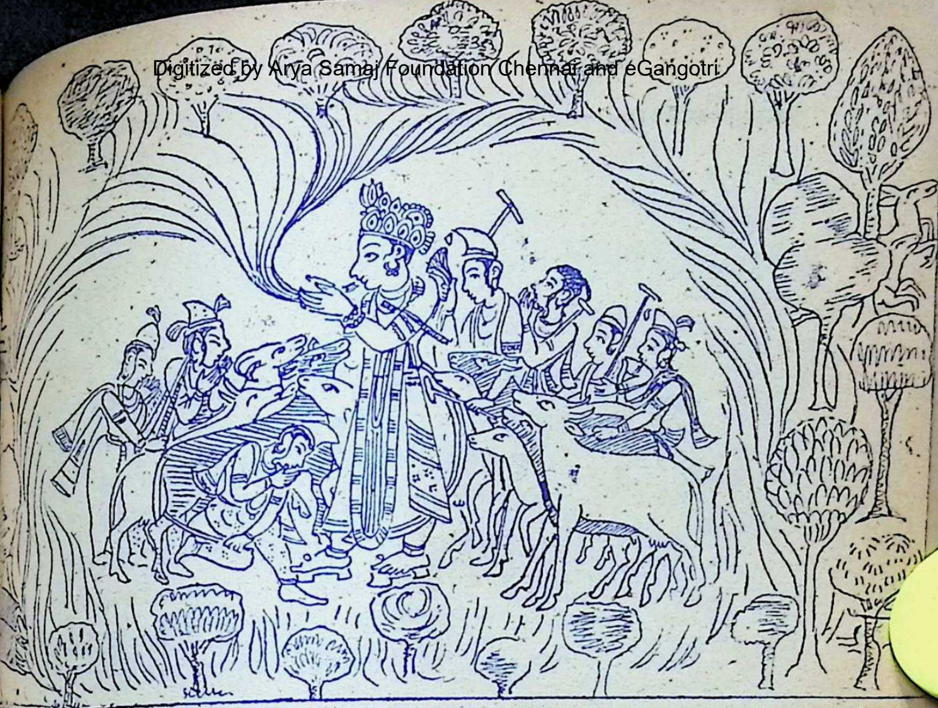

दावाग्नि : बसोहली शैली

वे स्वभावोक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। नहीं, वे स्वभावोक्ति के उदाहरण नहीं है, वे उससे बड़ी चीज हैं। संसार के साहित्य की बात मैं नहीं जानता, क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंशमात्र हमारा जाना हुआ है, परन्तु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखी हुई बाललीला अलभ्य है। बालकृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देता है। न उसे शब्दों की कमी होती है न अलंकार की, न भावों की न भाषा की। क्यों ऐसा है? क्या कारण है? कि शताधिक पदों में बार-बार दुहरायी हुई बात इतनी मनोरम हो गयी है? क्या कारण है कि उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं की जमात हाथ जोड़कर इस बार-बार दुहरायी हुई लीला के पीछे दौड़ पड़ी है? इसका कारण यशोदा का निखिलानन्दसंदोह भगवान् बालकृष्ण के प्रति एकांत आत्मसमर्पण है। अपने आपको मिटाकर, अपना सर्वस्व निछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है, वही श्रीकृष्ण की इस बाललीला को संसार का अद्वितीय काव्य बनाये हुए है। यशोदा को उपलक्ष्य करके वस्तुतः सूरदास का भक्त-चित्त ही शत-शत रसस्रोतों में उद्वेल हो उठता है। वही चित्त गोपियों-

(शेष पृष्ठ १७८ पर)

जैनेन्द्र कुमार

पूर्णकाम में प्रणय-भाव

श्रीकृष्ण मानो पूरी तरह प्रेम-लीला की ही व्यंजना और अभिव्यंजना के रूपक हैं। उस दिशा में हमारे स्वप्न जहाँ तक जा सकते हैं, कृष्ण उनकी परिपूर्ति है। उनके प्रणय का पार नहीं है। कोई मानो उस प्रणय की पात्रता से हीन और वंचित नहीं रह सकता है। कुब्जा तक तक के लिए वह प्रणय उसी तरह समुद्यत है। साथ ही वह प्रणय किसी एक के प्रति मिथ्याचारी नहीं हो सकता है। पत्नी और प्रेमिका का वहाँ परस्पर समावेश है। फिर भी उस प्रेम में अनन्त अवकाश बचा रहता है।

एक अत्यन्त प्रतिष्ठित वन्धु ने एक बार कहा, "राम का चरित्र साफ है। वह आदर्श विश्वसनीय है। उस पर प्रामाणिक समाज का निर्माण हो सकता है। लेकिन कृष्ण हमारी समझ में बिल्कुल नहीं आते। जाने क्यों उनकी इतनी महिमा है। वह किसी सिद्धान्त पर सही नहीं उतरते। उनका चरित्र विरोधों से पूर्ण है। विलक्षण पुरुष रहे हो सकते हैं, लेकिन प्रामाणिक और सत्पुरुष कहना मुश्किल होता है। पर उन्हीं को अवतार नहीं, वल्कि पूर्णावतार के रूप में पूजा जाता है। इसके कारण मेरे विचार में, नैतिक क्षेत्र में वहुत वुद्धिभेद हो आता है। उस ओट में मानों सब कुछ मान लिया और कर लिया जा सकता है। और यह रासलीला क्या है? राधा का व्यापार क्या है? अनेकानेक गोपियों के संग बिहार का प्रकरण क्या है? इस सबसे असामाजिक व्यवहार को समर्थन मिलता है। तुम मानते हो? तुम कृष्ण को पूरी तरह मान सकते हो?"

याद है, मैंने इतना जतला तो दिया था कि मैं कृष्ण को पूरी श्रद्धा से मानता हूँ। लेकिन उसके वाद बात को आयी-गयी कर दिया था। इतना कि फिर स्वयं वन्धु को उस प्रकरण का स्मरण नहीं रह गया था।

कारण, वह विवाद का प्रश्न नहीं है। किसी निश्चित वुद्धि से कृष्ण को पकड़ना

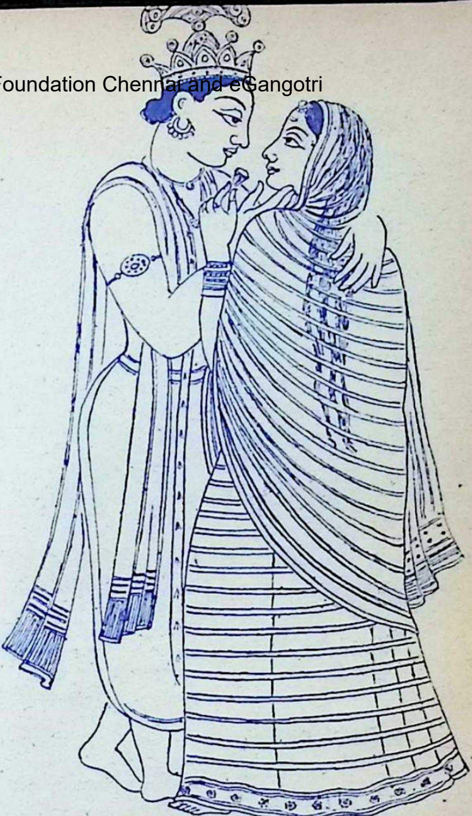

श्री राधा कृष्ण : कांगड़ा शैली

कठिन होता है। बुद्धिवादी अधिकांश सुधारक हुआ करता है। उसके पास नक्शा होता है और जीवन जगत को वह उसी के अनुरूप ढला हुआ देखना चाहता है। इस निमित्त उसके पास शब्दों की जोड़ियाँ वन जाती हैं और एक को गुण और दूसरे को वह अवगुण ठहरा लिया करता है। कुछ उजला होता है और कुछ उसके विरोध में काला होता है। सुधारक बुद्धि कुछ उसी सहारे चलती है। काले को मिटाकर वह उजलाहट का विस्तार किया चाहती है। यह प्रयत्न देखने में बहुत सही मालूम होता है, पर परिणाम में उतना सफल नहीं होता। प्रतीत होता है कि सज्जन वनाने की कोशिश में दुर्जन उसी अनुपात में अपने आप वन जाता है। पुलिस जितनी बढ़ती है, अपराध भी उतना बढ़ने लगता है। दवा नयी-नयी वनती हैं, तो रोग भी नये-नये निकलते हैं। अर्थात् इस कर्तृत्व की स्पर्धा में उठाया गया कर्म जितना समस्या को काटता हुआ मालूम होता है, ठीक दूसरी ओर समस्या उतनी ही वन खड़ी होती है। इस प्रकार मनुष्य के अनुभव में आता गया है कि कर्त्तव्य-कर्म के पालन मात्र से बन्धन नहीं कटता। गुण की आराधना से अवगुण का प्रश्न समाप्त नहीं हो जाता। अथच मानव मस्तिष्क इस जगह आकर चकरा जाता है। माना हुआ अंहकृत मन्तव्य बिखर रहता है और सबके उपर कोई मंनमाना भाग्य आदमियों के साथ खेल करता हुआ, मानो ज़वरदस्त सावित होता है। इस प्रकार की बुद्धि अन्त में नास्तिक हो जाती है और उसके निकट फिर जगत में कोई नियम नहीं रहता, वल्कि नियम मनुष्य की अपनी मुट्ठी में आ वसता है।

कृष्ण उस प्रकार की बुद्धि के लिए

(शेष पृष्ठ १८२ पर)

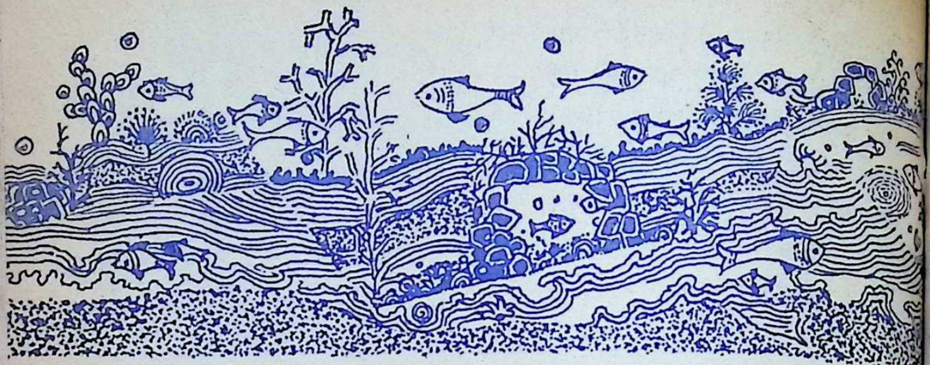

हरीन्द्र दवे

यमुना

[गुजराती कविता]

यह गोपी-वल्लभ की भूमि, यहाँ तू माता,
विस्तीर्ण औ' गहन, केवल नीलवर्ण;
ये दृष्टिपात से वर्तुल कैसे रचाते,
मानों कि द्युति-कुण्डल उतार कर दे रहे कर्ण।

अँधेरी रात का यह आकाश, तेरे
दीपों से अलंकृत प्रवाह का बिम्ब केवल;
और यह आंदोलित प्रवाह, क्या प्रभु का स्पर्श पाकर,
अमृत होकर विलसता कालिय का हलाहल?
जो कुछ भी उत्तम है, बह जाता है जल के प्रवाह में,
खण्डहर हैं पुलिन-प्रान्त विरूप इसके;
ये बिन्दु-बिन्दु उर में स्मृतियाँ जगाते,
और वेदी मृण्मय, विसर्जन-मेघ रचती।

जहाँ अंजलि से ऋषि ने कभी किया था अर्घ्य-दान,
वहाँ भर कर जल अंजुरि में मैंने छींटे उड़ाये।

●

जर्मन महाकवि गोएथे

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति

चित्र : महेन्द्रनाथ सिंह

प्रेम की अस्तित्व-व्याकुलता के बिना तुम्हारी कल्पना असंभव है
रासेश्वरी राधा के बिना, और उस स्वर्गश्री के बिना
जहां तुमने (अथवा तुम्हारी आत्मा के संस्कारी कवि ने)
ईश्वरत्व को मानवीय कामनाओं से बनाया था सुन्दरतर !

और, अस्तित्व-समर्पण के बिना तुम्हारी धारणा असंभव है
क्योंकि, तपस्या की चरम परिणति है आत्म-विलयन
योग की चरम परिणति है अपनी आत्मा से साक्षात्कार
धर्म की चरम परिणति है मुक्ति--

किंतु, प्रेम हो तो ये सब अनायास मिल जाते हैं
तपस्या, योग, धर्म का अ-भाव हो, फिर भी
आत्मा-कमल के समस्त दिव्य पाटल खिल जाते हैं।

संभव है, कर्म ही हो जीवधारी का एकमात्र अधिकार
संभव है, स्वर्ग-द्वार विजेताओं के लिए ही खुलते हों
किंतु, जब महाचेतन के प्रति समर्पित होती है सत्ता
अधिकार अथवा स्वीकृति का कोई प्रश्न नहीं उठता है।
क्षितिज-तरंगित ध्वनि में तैरता प्रेम स्वयं आता है
साग्रह-सादर हमें यमुना-तट पर ले जाता है--

अब भी बजती होगी उसी निमन्त्रण-स्वर में बाँसुरी
आती होगी रसवर्षा में डूबी अभिसारिणि ब्रज-नागरी !

[मूल जर्मन से, आइरेन विस्समैन के सहयोग से राजकमल
चौधरी द्वारा रूपांतरित।]

डॉ. शिवप्रसाद सिंह

श्रीकृष्ण-चेतना : काम-शक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा

उत्तरोत्तर काम की परिपूर्ति के भीतर से ही पूर्णकाम परात्पर चैतन्य-पुरुष की भूमिका में अवतरित होने की जैसी सहजानन्दमयी विकास-प्रक्रिया श्रीकृष्ण की जीवन-लीला में दिखायी पड़ती है, संसार के पुराण, इतिहास और काव्यों में वैसी कोई दूसरी चरित्रमत्ता उपलब्ध नहीं है। काम की स्फुरणा के भीतर से ही स्वयम् सच्चिदानन्द प्रभु इस सृष्टि में अपने को प्रकट करते हैं और काम के उत्तरोत्तर ऊर्ध्वीकरण द्वारा जीवन की विविधांगी लीला को सार्थक करते हुए, अन्ततः वे हमारी सम्पूर्ण कामनाओं को अपने पूर्णकाम स्वरूप में निर्बाध और मुक्त कर देते हैं। देह के क्षणिक और वाधित मदन को ही आत्मा के अबाध और अनन्त मदनानंद तक ले जाने की जो सहज-गामिनी कला श्रीकृष्ण की प्रणयलीलाओं में दिखायी पड़ती है, उसमें आज के अत्याधुनिक मनुष्य की काम और प्रेम की सारी समस्याओं का अत्यन्त प्रगतिशील समाधान समाया है।

कृष्ण और राधा · किशनगढ शैली

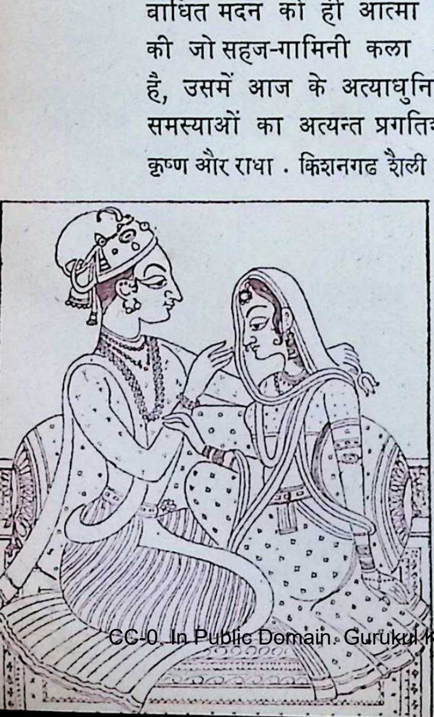

आकाश की ओर मुँह उठा कर देखो, तुम्हें जुड़वीं पतंगों की तरह उड़ते हुए पक्षि-मिथुन अपनी मनोहर इन्द्रधनुषी आभा से सतत् आकृष्ट करेंगे, धरती पर वनस्पति-जगत् के बीच इस फ़ूल से उस फ़ूल पर उड़ती हुई तितलियाँ, मधुमक्खियाँ, किसी अदृश्य व्यापार की कहानी सुनायेंगी, पशुलोक पर ध्यान दो तो तुम्हें ऋतु पर उन्मुक्त मैथुन की लीला से धरती आच्छादित दिखाई पड़ेगी, मानव के मन को

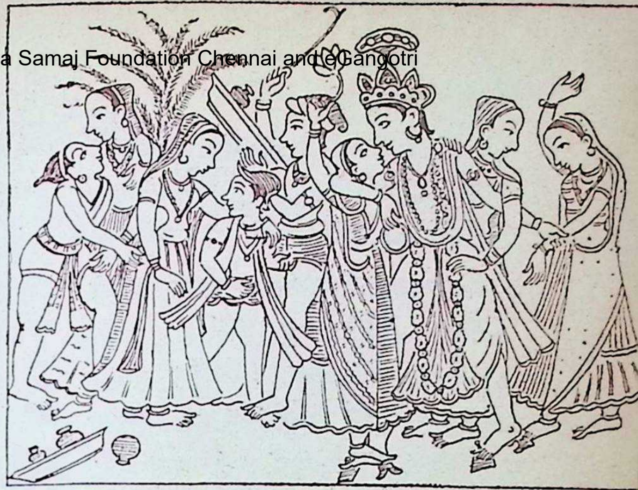

दान-लीला : कुलू शैली

अन्तर्गुहा में घुस कर झांको तुम्हें निरन्तर प्राण की रयि से मिलने की आकांक्षा नाना मुद्राओं में उभरती नज़र आयेगी—मनोजगत् में वासना और आनन्द का मिथुन है, तो आध्यात्मिक ईश्वरिक लोक में आत्मा की परमात्मा के प्रति अदम्य युग्मेच्छा—देवलोक में नन्दन की सुरभि इसी संयोग की गाथा कह रही है, जड़-चेतन, भूत-भविष्य, अस्ति-आविः, नाद-विन्दु, वीर्य-रज, अंधकार-प्रकाश, रात-दिन, सबमें निरन्तर एक चुम्बकीय आकर्षण की प्रक्रिया गतिमान है—यह महाशक्ति का विलास है, यह मातृशक्ति की लीला है, यह जीवन की अंधशक्तिः (Blind force): नहीं, प्राण शक्तिः (Vital force): है, इसे ही ऋषि ने सृष्टि की इस अद्‌भुत प्रक्रिया को नमन करते हुए कहा था :

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् (ऋक् १०-१२९-४)

महातमस् में सोये मातृत्त्व यानी जल से उत्पन्न प्रथम सृष्टि-चिन्ह से लेकर आज तक और आगे आने वाले आविः-लोक में, निरन्तर इसी कामशक्ति की मूल प्रेरणा को नाना रूपों में प्रतिफलित देखा जा सकता है। इसी महाशक्ति को अपनी निःशेष श्रद्धांजलि देते हुए मनुष्य ने संगीत, साहित्य, चित्र, मूर्ति, वास्तु-वास्य या स्थापत्य कलाओं के द्वारा अक्षय सौंदर्य-सृष्टियों का निर्माण किया है। प्रथम उल्लास की अवस्था में संवेदन से चोट खाकर जो प्रथम संगीत फूटा, जो प्रथम मण्डलावर्त-नृत्य जन्मा, जो प्रथम श्लोक अवतरित हुआ, जो प्रथम रेखा गुफा द्वार पर अंकित हुई, जो प्रथम गुफा मनुष्य के लिए निर्मित हुई उन सब में इसी कामशक्ति की उत्तेजना व्याप्त थी। विश्व संस्कृति साक्षी है कि संसार का सर्वोत्तम संगीत, काव्य, चित्र, मूर्ति, वास्तु-शिल्प इसी कामशक्ति की प्रेरणा की ही देन है। यही कामशक्ति शिव का ताण्डव है, पार्वती का लास्य है, वेद की ऋचा है, साम है, सोम है, यही मंदिरों के गर्भगृह में स्थापित मूर्ति हैं, अजन्ता, एलौरा, भुवनेश्वर, खजुराहो के प्रस्तर इसी की अचिन्त्य लीला को उत्कीर्ण किये हैं, आज इसी की प्रतिच्छवि

है, पिरामिड इसी की गाथा है, रोम, कीट, अज़टेक के भग्नावशेष, इसी के प्रमाण हैं, तानसेन की रागनियों में, विठोवीन की कला में इसी का स्वर है।

किन्तु जल की शक्ति सिर्फ ऊर्ध्वगामी ही नहीं अधोगामी भी होती है। काम-शक्ति निम्न उद्देश्य से प्रेरित होकर वासना वनती है, ऋचाएं अश्लील साहित्य वनती हैं, सोम सुरा वन जाता है, मंदिर चकले और वेश्यालयों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। यह काम ऊर्ध्वमुखी प्रणय के आसन से गिरकर "द्वीन्द्रिय-समापत्ति" में संकुचित हो जाता है, स्थूल हो कर विकृति को प्राप्त होता है, तव इसे काम नहीं "अलीक काम" या वौद्ध परिभाषा में "मिच्छाचार" कहते हैं। तव इसकी प्रक्रिया में उल्लास नहीं, भय होता है, राग नहीं, रोग होता है, मुक्ति नहीं, वन्धन होता है, उत्थान नहीं, पतन होता है। हमारी संस्कृति के इतिहास में एक ऐसा ही काल आया था जव पूजा का अर्थ भय था। नाना प्रकार की तामसिक मनोभावनाओं का वाहुल्य था। उस समय हमने घवड़ा कर, अपने पतन से ग्लानिगर्हित हो कर संसार को अनित्य कहा, काम को सारे वन्धन का कारण कहा। राग, तृष्णा, मूर्च्छा, परि-दाह, पिपासा इसके रूप वताये गये। सवने इसका विरोध किया, सभीने काम तृष्णा के विनाश का उपदेश दिया। मृत्यु प्रांक्रिया और अदम्य जीवनी शक्ति को इतना कलुषित वताया गया कि इसका नाम लेना भी शिष्टाचार में वर्ज्य हो गया। काम की संज्ञा मार हुई, अमृत मृत्यु वन गया। मार-दाह हमारी नयी पौराणिक सृष्टि हुई। किन्तु जलकर भी काम क्षार न हुआ, वह अनंग वन कर अगम्य स्थानों में भी गमन की शक्ति से संयुक्त हो गया। पुष्पधन्वा के रोष के नीचे मनुष्य तो मनुष्य देवजाति ने भी घुटने टेक दिये।

विस्तृति में संकोच आया। देव और मनुष्य की परस्पर समन्विता-सम्वादिता नष्ट हुई। इन्द्र को अपने भोग-विलास और कामाचार में निरन्तर वाधा की शंका रहने लगी, वह मनुपुत्रों को महत् संकल्पों से विरत करने के लिए उन्हें 'मिथ्या काम' या 'अलीक स्थूल काम' में वांधने का प्रयत्न करता रहा। इसी समय जीवनी शक्ति से रहित, संकल्पों से विरत, मिथ्याचार में आवद्ध, वर्णसंकरता में ग्रसित उल्लास और आनन्द से वंचित मनुष्य जाति में एक ऐसा व्यक्ति भी आया जिसने समूची कटोर दमनशील मिथ्या हठ साधना को चुनौती देते हुए कहा कि कामशक्ति मनुष्य की प्राण स्रोतस्विनी है और मैं सकल सृष्टि का विधाता भगवान् यह घोपणा करता हूं

मनुष्य जीवन को आनन्द देने वाले, धारण करने वाले धर्म की अविरोधिनी मशक्ति मैं ही हूँ।

विरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।
(गीता ७-११)

गीता सिर्फ इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसमें एक महत् क्ति ने बहुत ऊंची ी बातें बतायी हैं, नुष्यता की ऊर्ध्वमुखी त्रा के संबल-रूप देश दिये हैं, बल्कि ता का महत्त्व निर्वि-ाद इसलिए है कि ये देश एक ऐसे व्यक्ति े दिये हुए हैं जिसने न से गहन परिस्थि-ियों में इन उपदेशों ो अपने जीवन में पूरी रह चरितार्थ किया है। ृष्ण का जीवन र्ध्वमुखी कामशक्ति ा सम्यक् विलास है।

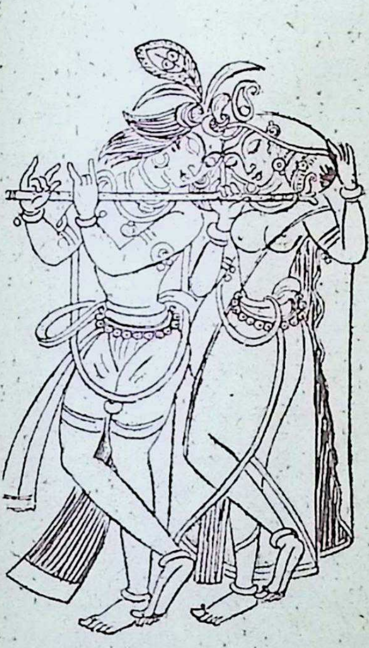

चित्र : नन्दलाल बोस

ुष्य की यह अपूर्व जीवनी शक्ति बौद्धिक तर के हिसाब से कई भागों में विभक्त है। चेतन जीव जगत् में जो भाव 'बुभुक्षा' न्न) का है वही मानसिक जगत् में मना (सेक्स) का। ऊपर उठने पर ौद्धिक धरातल पर यही इच्छाशक्ति (विल पावर) और आध्यात्मिक जगत् में अपने ऊपर पूर्ण विजय करके पूर्ण-शान्ति, आनन्द अथवा मुक्ति का भाव बन जाती है। प्राण, मन, बुद्धि और प्रज्ञा के ये चार स्तर कामशक्ति के चार लीलाक्षेत्र हैं। प्राण के लिए अन्न, मन के लिए वासना, बुद्धि के लिए इच्छा और प्रज्ञा के लिए आनन्द का वेग दुर्निवार है। कामशक्ति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा इन्हीं चारों क्षेत्रों का एक के बाद एक शोधन है। जिस व्यक्ति के पास जितनी बड़ी भूख है, वासना है, इच्छा है, आनन्द-कामना है, वह उतना ही अधिक शक्ति सम्पन्न है, किन्तु यह शक्ति सम्यक संकल्प और महत् उद्देश्य से परिचालित होने पर ही जीव के भाव जगत् में पूर्णकाम आत्मा का अवतार करा सकती है, गलत उद्देश्य या क्षुद्र आंकाक्षाएँ इसे उतने ही वेग से अधोमुखी भी बना सकती हैं।

कामशक्ति के चारों स्तरों पर उसकी ऊर्ध्वमुखी साधना का मंत्र है उत्सर्ग। प्रत्येक

प्रक्रिया में अहं का विसर्जन। जैसा कि श्री अरविन्द कहते हैं "वासना (Desire) दिव्यजीवन के सिद्धान्त की क्रिया शक्ति है जो व्यक्ति को आत्मनिष्ठ बनाती है, इसे जड़ "इनर्शिया" के नाम पर झुठलाने का अर्थ है दिव्य जीवन की प्रक्रिया को झुठलाना। इच्छा या वासना का तिरोधान तभी होगा जब वह अनन्त सत्ता की इच्छा बन जायेगी और जब वह उस अनन्त सर्वनिष्ठ आनन्द में अपनी शाश्वत अनन्त पूर्णकामता को प्राप्त कर लेगी। तब तक उसे अपनी ऊर्ध्वयात्रा जारी रखनी होगी– निचले स्तर की बुभुक्षा से लेकर उपरले स्तर की आनन्दपूर्ण पूर्णकामता तक पारस्परिक सहयोग और उत्सर्ग के बल पर इसे गति देना होगा– एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को, निम्न उच्च को, उच्च निम्न को, मनुष्य ईश्वर को और ईश्वर मनुष्य को अपना सर्वस्व देता है ताकि प्रत्येक दूसरे के द्वारा पूर्णकाम बन सकें। बुभुक्षा का प्रेम में, विभेद का समन्वय में, मृत्यु का अमृत में लय हो जाना चाहिए क्योंकि यही सृष्टि के मूल में निहित वासना अथवा कामशक्ति की माँग है, यही इसकी सार्थकता है और यही इसकी चरितार्थता है।" (द लाइफ डिवाइन, पृष्ठ २३२–२३३)

भगवान् कृष्ण का सारा जीवन, उसका हर पहलू साधारण के बीच असाधारण की साधना है। वे पूर्ण लीलावतार इसी कारण हैं कि उनके जीवन में असाधारण प्रकृति-प्रदत्त शक्ति और सुविधाएं जन्म के साथ ही अवतरित नहीं हुईं। जन्म हुआ वन्दीगृह में, माता पिता को बेड़ियों में आबद्ध छोड़ पालन-पोषण के लिए कहीं और जाना पड़ा। गोकुल अभिजात्य संस्कारों का केन्द्र नहीं था, सामान्य बान्धव कुटुम्ब में पले, बढ़े। मृत्यु की विभीषिकाएँ निरन्तर साथ लगी रहीं–कार्य गोचारण था, सम्पर्क ग्वाल-बालों का। इस परिस्थिति में भी उनकी अपार इच्छाशक्ति ही थी जिसने उन्हें शनः शनैः युग-पुरुष की पीठिका पर प्रतिष्ठित कर दिया। इस साधना के अक्षत-फूल उनके जीवन के हर मोड़ पर बिखरे पड़े हैं। मैंने ऊपर कामशक्ति के चार क्षेत्र बताये है– कृष्ण जीवन के ये चार मोड़ हैं गोवर्धन धारण, रास महाभारत और द्वारका निवास। सिर्फ इन्हीं चार पर केन्द्रित होकर भी हम उनकी महत् साधना की एक संक्षिप्त झांकी पा सकते हैं। गोपियों के रसिया कृष्ण से योगेश्वर कृष्ण की भूमिका में अवतरित होने वाले महापुरुष की साधना किसी आश्चर्यचकित नहीं कर देगी, किन्तु मेरा ध्रुव विश्वास है कि यह आश्चर्य या कुतूहल सिर्फ उन्हीं चित्तों को विजड़ित

ता है जो आवर्जना से दंभित हो कर मशक्ति के स्फुरण और विकास का ी अर्थ नहीं जानते। आज का मनो-ानिक भी फ्रायड से प्रभावित होकर मशक्ति (लिविडो) के अतुल बल ौर आच्छादक प्रभाव से तो परिचित गया है, किन्तु उसके ऊर्ध्वीकरण अचिन्त्य भारतीय साधना–रूप उसकी द्धि से परे ही रह जाता है।

गोवर्धन धारण प्राणमय कोश में ाशक्ति के स्फुरण का प्रतीक है। यह बसे प्रथम चरण है, इसलिए सर्वाधिक ल है तथा आदिम भी। यह कितने श्चर्य की बात है कि कृष्णलीला के नी प्रस्तर-प्रमाण गोवर्धनलीला की ामाणिकता पर एकमत हैं। श्री दयाराम हानी ने आर्कियालाजिकल सर्वे की ९२५-२६ की रिपोर्ट में स्पष्ट संकेत या है कि कृष्णलीला की प्राचीनतम तियां गोवर्धन-धारण की हैं। एक मथुरा मिली है दूसरी महाबलिपुरम् में, जो नों चौथी शती के पूर्व की हैं। गोवर्धन ला हमारे साधना के इतिहास का न्तिकारी मोड़ है– भयपूजा के स्थान र प्रीतिपूजा। हम क्यों इन्द्र की पूजा करें ो अपने वज्रपात से हमें निरन्तर संत्रस्त ता है– हम उसके स्थान पर गोकुल ो खाद्य देने वाले मंगलकारी गोवर्धन ो क्यों न पूजें– और तब आया अन्नकूट। भूख और अन्न। भय और प्रीति। इन्द्र और अन्नकूट। सम्पूर्ण गोकुल एक विराट् कुटुम्ब में बदल गया– सभी परिवारों का जैसे एकीकरण हो गया, माखनचोरी इसी आत्मविस्तार का सरस दृश्य है। इसी आत्मविस्तार नें कालिय दमन, इन्द्रमान मोचन, वत्सासुर, वृकासुर, घेनुकासुर-वध, मुंजाटवी के दावानल की शान्ति, की नयी कथायें अंकित कीं। यह अन्न, दुग्ध और जल पर होनें वाले उत्पातों पर, विजय का गान है। अन्नमयकोश में सर्वमंगला महाशक्ति के प्रसरण की अलौकिक गाथा।

रास मनोमय कोश में वासना की अल्पना है, चन्दन र्चाचित अल्पना, जिसकी रेखाएं एक ओर सौन्दर्य को मूर्त करती हैं तो दूसरी ओर आनन्द के उच्छल नृत्य का संयोजन। रास नारी और पुरुष के महामिलन का विराट् पर्व है। प्राण और रयि की अनन्त अपूर्ण प्रणय कल्पना है। सृष्टि के अणु-अणु में प्रवहमान चुम्बकीय मिथुनशक्ति का यह महाकाव्य है, जिसमें अपूर्व दिव्य छन्द और लय का भाव-लोक मूर्तिमान हो उठा है। कामवासना का उन्नयन दो रूपों में संभव है। उसे सौन्दर्य विधायिनी कलाओं में सन्निहित करके भाव–परिवर्तन (Transformation) द्वारा अथवा उसके व्यापक सामाजिक प्रकाशन द्वारा। कामवासना की उत्तेजना

प्रायः पर्दा प्रथा के कारण तरह तरह से विकृत हुआ करती है। ई. उड के 'साएंस आव् ब्रदरहुड' में जे. एच. कूले का "टुडे एण्ड टुमारो' शीर्षक एक निबंध है जिसमें उन्होंने लिखा है कि जिस समाज में जितना अधिक पर्दा है, अंग छिपाने का रिवाज़ है, उसमें काम-वासना उतनी ही प्रबल है। कीनिया के कव्विओंड़ों में जो प्रायः नग्न रहते हैं, व्यभिचार की मात्रा बहुत अल्प है। सामाजिक सम्पर्क या समूह में आकर कामवासना अपने आप दब जाती है। मैं बार बार सोचता हूँ कि कृष्ण की विक्षोभकारी भंगिमा और चित्ताकर्षक बांसुरी से खिची हुई गोपियों के मन में उत्पन्न उत्तेजना की माँग को शान्त करने के लिए रास क्यों रचाया गया। नृत्य और गीत जैसी सूक्ष्म कलाओं का इसमें समावेश क्यों किया गया। कृष्ण ने एक गोपी अथवा अलग अलग गोपी के साथ सम्पर्क क्यों नहीं किया। वह इसलिए कि कृष्ण के मन की कामशक्ति स्थूल देह-वासना नहीं थी, उसके भीतर उन्नयन की साधना थी, कामवासना की स्थूल-वृत्ति नृत्य और संगीत के अशरीरी सूक्ष्मलोक में लय हो गयी। समूह नृत्य ने एकाकी मन को विकृत होने का अवसर नहीं दिया। चीरहरण और कुछ नहीं काम को निम्न समझ कर उसे गोपनीय बनाने वाली प्रवृत्ति का विरोध है, पर्दा आवरण अथवा अवगुंठन का भग्निकरण है। इसी कारण रास में जिस उच्छल आनन्द की अनुभूति हुई वह जड़ोन्मुख कामोत्पन्न नहीं चिदोन्मुख विकासशील प्रणय जन्य सौख्य था, अतीन्द्रिय आनन्द था। परनारियों के साथ कृष्ण के रमण की इस गाथा से परीक्षित का आस्तिकहृदय भी सन्तप्त हो उठा, किन्तु शुकदेव ने स्पष्ट कहा:

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते।
विपर्ययेण चानर्थो निरहंकारिणा प्रभो॥

सामर्थ्यवान् व्यक्ति अहंकारहीन होता है, कृष्ण ने जो कुछ किया कर सांसारिक स्वार्थ से प्रेरित होकर नहीं किया, वे स्वार्थ और अनर्थ से ऊपर उठ कर ऐसा कर सके। उत्सर्ग ही उनका मूल मंत्र था। गोपी प्रेम और रासलीला ने कृष्ण के मन में कायरता, संकोच कर्तव्यविमुखता अथवा आलस्य और प्रमाद जन्य जड़िमा नहीं उत्पन्न की। यह इसकी उन्नयनकारी शक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण है– इस अनन्य प्रेम और शुभेच्छा की असीम शक्ति लेकर उन्होंने जीवन के कटुतम संघर्षों में प्रवेश किया– परिवार कुल, सुहृदजन, समाज, देश और सबसे बढ़ कर मानवता के सम्मुख जो भी समस्याएँ खड़ी थीं, उन सब में उन्होंने

नी कुशलता से अपना कर्तव्य पूरा या कि वे योगेश्वर के नाम से ख्यात हो । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि व्य क्षेत्र से विमुख हो कर मन के लोक में जड़ीभूत हो जाना योग नहीं योग: कर्मसु कौशलम् । इसी कारण भारत को मैं उनके जीवन का तीसरा ड़ मानता हूँ जहाँ बुद्धि के क्षेत्र में, नमय कोश में महाशक्ति का विलास ता है। यहाँ आकर कामशक्ति के सभी चले आवर्तन पूर्णकामता के समुद्र विलीन हो जाते हैं। कृष्ण ने अपने वन के इस अंश के अनुभवों के निचोड़ो एक श्लोक में यों रख दिया :

पूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविश-
न्ति यद्वत्
त्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्ति-
माप्नोति न कामकामी
(गीता २-७०)

चारों ओर के प्रवाहों के धक्के से भी स समुद्र की मर्यादा भंग नहीं होती, समुद्र में जिस प्रकार सब प्रकार का समा जाता है, वैसे ही जिस व्यक्ति चित्त में सभी प्रकार के विषय उसकी न्ति भंग किये बिना ही प्रवेश करते है, शान्ति को प्राप्त करता है।

महाभारत कृष्ण की इसी शान्ति- ना का कर्म क्षेत्र है, जहाँ उन्होंने शरीर को सभी प्रकार के आक्रमणों के सम्मुख रख दिया, शस्त्र नहीं उठाया– क्यों, ऐसी शक्ति, ऐसा विश्वास उनके चित्त में कहाँ से आया– यह विश्वास और यह शक्ति ऊर्ध्वमुखी प्रणय ने प्रदान की, जो उनके जीवन का अभेद्य कवच बन सका। और यह सब कुछ उन्होंने विश्वमानवता को अपना दाय समझ कर दिया– लोकसंग्रह के लिए उत्सर्ग की भावना से।

सभी प्रकार के संघर्षों के भीतर अपने कर्तव्य को पूरा करने के बाद 'द्वारका-निवास' समुद्र के बीच, लहरों के भीतर, पर लहरों से परे की स्थिति उनके जीवन की अन्तिम स्थिति है। द्वारका कृष्ण की स्थितिप्रज्ञता का आवास है, वहाँ के सभी कार्य जैसे एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होते रहते हैं, जिसमें न उसका राग है न द्वेष।

कृष्ण के जीवन के इन चारों मोड़ों को सही ढंग से देखने वाला, उनकी ऊर्ध्वमुखी कामशक्ति की चरितार्थता को समझने वाला ही कह सकता है कि जैसे नट अनेकों प्रकार के स्वांग बनता है, परन्तु रहता है उन सब में निर्लेप, वैसे ही भगवान् का मनुष्यों के समान जन्म लेना, लीला करना, और फिर उसे संवरण कर लेना माया अथवा कामशक्ति का विलास मात्र है।

★

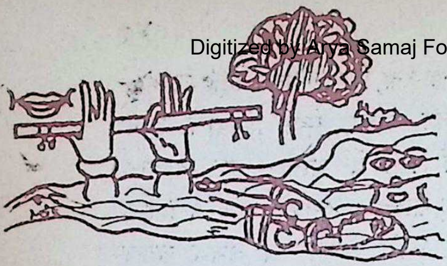

अमृता भारती

●

फिर फूँको बाँसुरी फिर फूँको पांचजन्य

अनन्त सागरों की आभा से सँवरे
ओ नीलम तन,
कितनी सिन्धु-वीचियाँ
मूर्छित हो सो गयी हैं
तुम्हारे हृदय पर झूलती पुष्पमाला में
सुनो, एक बार फिर फूँको बाँसुरी

रंध्रों से फूट पड़ें राग-रागिनियाँ,
एक बार फिर इन्द्र विजयी हो:
वृत्र आहत
और मेघ-कन्दराओं में बन्दी जल
उन्मुक्त हो दौड़ पड़े
घर लौटती गौएँ मुकर जाएँ
स्वर-सम्मोहित कदम्ब-मालाएँ
वेणु-वन में परिवर्तित हों
दिशाओं के वक्ष में खुल जाएँ
चन्द्रमा की खिड़की
हृदय-रस निःसृत हो
पिघल जाएँ नयन–तारक

देह विदेह हो
सुनो, एक बार फिर फूँको बाँसुरी

अन्तहीन मेघों की आभा से सँवरे
ओ निलम तन,
अनगिनत बिजलियाँ
बन्दिनी पड़ी हैं
तुम्हारे वक्ष देश की वैजयन्तीमाला में
सुनो, एक बार फिर फूँको पाञ्चजन्य

दिशाएँ उद्घोषित हों
जागृत हो शिथिल गाण्डीव
एक बार फिर इन्द्रपुत्र विजयी हो:
कौरव आहत
और शिलीभूत हुए धर्म के पाँव
माप लें–कुरुक्षेत्र की रक्त-भूमि
दिग्चक्र, पुन: चक्रित हो
और उषा के नीलारुण आँचल में
लिख जाए वह गीत-सन्देश
धर्म अजेय हो,
सुनो एक बार फिर फूँकों पाञ्चजन्य

देह विदेह हो,
सुनो, एक बार फिर फूँको बाँसुरी!

पद्मभूषण पं. सूर्यनारायण व्यास

श्रीकृष्ण-लीला और उसका व्यापक प्रभाव

श्रीकृष्ण को षोडश कलाओं के अवतार पूर्ण पुरुषोत्तम कहा गया है। इसीसे वे सर्वांगीण जीवन के अधीश्वर थे। जीवन-जगत की सारी ही द्वंद्वात्मक लीलाएँ उनके व्यक्तित्व में अमर्याद और अविरोध रूप से व्यक्त हुईं थीं। अनगिनत पहलुओं वाले हीरे की तरह, उनका नानामुखी व्यक्तित्व, हमारे इस घड़ी तक के 'टू-डेट' विकासमान जीवन के नित-नूतन आविर्मान हर आयाम पर, इन्द्र-धनुषी किरणें फेंकता-सा हमारे साथ चलता दिखायी पड़ता है। ऐसा सर्वकालीन और सार्वलौकिक दूसरा कोई शलाकापुरुष मानव-इतिहास में नहीं दिखायी पड़ता। मानों कि जन-जन के अन्तरतम में जो विलक्षण परम-पुरुष विराजमान है, वह एकही श्रीकृष्ण की नाना अभिव्यक्तियां हैं।

◆

भगवान् श्रीकृष्ण के सहस्रनामों में एक नाम 'लीलापुरुषोत्तम' है। उनका समस्त-जीवन विविध लीलाओं से ओत-प्रोत ही है। किंतु जिस लीला ने लोगों को शताब्दियों से विशेष रूप में प्रभावित और प्रेरित किया है, वह रासलीला है, यह परम्परा हमारे देश में सदियों से चली आ रही है। और भावुक-भक्तों से लेकर वेदांत-मार्गियों तक को इस लीला ने रहस्य खोजने के लिए विवश किया है। रास लीलापर, उसके रहस्य की खोज ने कई रचनाएँ हुई हैं। तर्कों और अनुमानों के आश्रय से तथ्य पकड़ने के प्रयास भी हुए हैं। परंतु इस लीला में मनीषियों की मति आंदोलित हो रही है।

कुछ तत्व-चिंतकों ने भगवान् की इस लीला को आकाश के चमकते तारों से जुड़ाया है, नक्षत्र-मण्डल में गोपियों को

ोजा है, और रसिक-जनों ने मानव-
नु-धारिणी व्रज की गोपियों में ही शृंगार
ी परिधि में समवेत समझा है।
म्प्रदाय-विशेष ने अपनी-अपनी दृष्टि
े इसमें कल्पना का सहारा लेकर
ौंदर्य की सृष्टि की है, तब विरक्त-
नों ने शरीर की विभिन्न-स्नायु से सम्बन्ध
ुड़ा कर उनकी क्रीड़ा को इस लीला में
ालित्य प्रदान किया है। आज भी यह
विवाद का विषय बना हुआ है कि रस-
रास-रहस्य की स्वामिनी राधा का व्यक्तित्व
-या अस्तित्व भी था—या नहीं, 'अनया
राधितो' शब्द से राधा का रहस्य सुलझाने
ा प्रयास भी किया गया है। भगवान्
की पूरी शृंगार-क्रीड़ा, और रति-रहस्य ने
हां 'मर्यादा पुरुषोत्तम' और 'योगीश्वर' श्रीकृष्ण को साधारण-ज्ञान धर्म की पूँजी रखनेवाले मानव ने चारित्रिक-शंका की दृष्टि से निहारा है, योगियों ने उसमें कुछ भिन्न रहस्य को ही देखा है। महाभारत से लेकर श्रीमत्-भागवत जैसे उत्कृष्ट कोटि के ग्रंथों में राधा के रहस्य को नयाकर इस लीला में भी संदेह-भावना की गई है। बहुतों की धारणा है कि राधा की सृष्टि और प्रेम-भक्ति के प्रेरक चैतन्य रहे हैं, महाकवि 'गीत गोविन्द'कार ने इस शृंगार को पराकाष्टा पर ही पहुँचा दिया है। अवश्य ही गीत गोविन्द के रस में स्नात होकर मानव-मन-मयूर मत्त होकर नर्तन करने लगता है। परंतु क्या यह उसी 'योगीश्वर' श्रीकृष्ण का रूप है जो सोलह-सहस्र पट्टराणियों का

गीत गोविन्द : गुजराती शैली

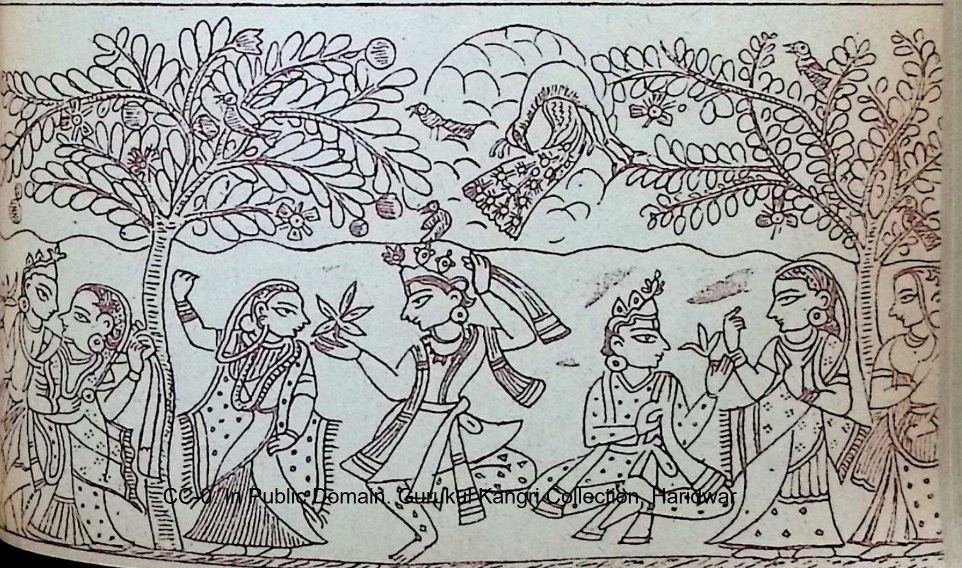

स्वामी होकर अनासक्त निर्लिप्त-निर्विकार रहने का उपदेश देता है, तथा गीता के जीवन-दर्शन द्वारा मानव-जाति की कल्याण कामना का शाश्वत-सत्य-तथ्य का प्रेरक है। भारतवर्ष में राधा-माधव ने जन-जन को जितना अनुराग रक्त वनाया है, उतना अन्य ने नहीं, चाहे ‘राधा’ की पुरातनता को कोई सरलता से पकड़ न पाया हो, परंतु श्रीकृष्ण की इस सहयोगिनी ने समस्त-देश को अपनी माया में आकर्षित अवश्य किया है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक यह लीला मानव-मन को आंदोलित किये हुए है। आर्यावर्त की मर्यादा का मान हिमालय-और विन्ध्य की सीमा में सिमटा रहा है। दक्षिण, द्रविड़-सभ्यता का केंद्र रहा है, किंतु कृष्णलीला ने इस द्रविड़ केन्द्र में भी प्रवेश कर अपना प्रभाव कम नहीं डाला है। अवश्य ही बौद्ध और जैन साहित्य में राम का प्रवेश हुआ है, पर वह अपने रंग में पलटकर रह सके हैं; इसी तरह कृष्ण की भी स्थिति वनी है। परंतु लीला को लिये बिना वहाँ भी कृष्ण का प्रवेश नहीं हुआ है, चाहे उस लीला का रूप अपने रंग में रहा हो। अवश्य ही द्रविड़-प्रभावित-क्षेत्र में श्रीकृष्ण के साथ राधा नहीं पहुँच पायी हैं। जिस काल के साहित्य में द्रविड़ों ने श्रीकृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार किया है, उस काल तक के आर्य-साहित्य में भी ‘राधा’ का उद्भव नहीं हुआ है।

जिस प्रकार आर्य-साहित्य में गोपालों के साथ श्रीकृष्ण की वाललीला का रोचक-वर्णन है, उसी प्रकार शंगम-काल की द्रविड़ रचनाओं में श्रीकृष्ण का चरवाहा (गोपाल) लोगों के साथ सम्पर्क वतलाया है। वे श्रीकृष्ण के भक्त थे। ग्वाल और गुवालिनें उनकी साथिनें थीं और जंगल में उन्हें तामिल-साहित्य में वंशी वजानेवाला भी माना है। उनकी वंशी की मधुर स्वर-लहरी से मानव ही नहीं, पशु-जड़-जगत् भी मुग्ध होता था। तामिल-साहित्य के पुरातन ग्रंथ अयच्चियर कुरवई, और निलप्पाधिकारम् में इसका पर्याप्त वर्णन मिलता है। उसमें कृष्ण के अग्रज वलराम की भी चर्चा है। अवश्य ही प्रथमशति की रचनाओं में राधा का नाम नहीं है। परंतु वहाँ कृष्ण की प्रिय-सहचरी एक नवीन ही है—उसका नाम ‘नप्पिन्नई’ है। इनमें श्रीकृष्ण की किसी पट्ट-राणियों में इस नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता, आश्चर्य नहीं कि यह ‘नप्पिन्नई’ ही राधा हो? यह जाति की ग्वालन नहीं वतलायी गयी है। और उसे श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा-लीला करते हुए बतलाया गया है। जो नृत्य-क्रीड़ा श्रीकृष्ण अपनी सहचरी के साथ करते थे, उसका तामिल नाम ‘कुरवई कुतु’

[शेष पृष्ठ ५५ पर]

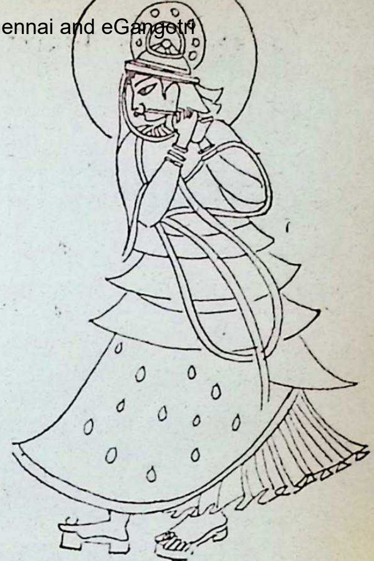

पद्मा सुधि

गीत

प्रिय, तुम बन जाओ रतनारी !
भाव-भंगिमाएँ सुकुमारी
सस्मिति-साज सरलता सारी
ले लो मेरी, देख तुम्हें सब
बोलें विधि ने नकल उतारी !

पलकों के घूँघट को डाले,
दृग-पनिहारी पीड़ा पाले,
बेच रही मैं थक कर उसको
बन कर आओ तुम व्यापारी !

पा कर छबि मेरी तुम छबिता,
बन जाओगे रूप-गर्विता,
अनुनय-विनती-अरज तुम्हारी
जाएँगे तुम पर ही वारी !

रूप लावण्य तन पायेगा
हृदय तुम्हारा इतरायेगा,
देखोगे तुम मुशकिल कितना
करना अपनी पहरेदारी !

सभी गोप बन कर गोपाला
तोड़ रहे राधा का ताला,
बेसुर वंशी सुन कर उनकी
नहीं रात-दिन कटते भारी !

नारी को नारी से डर क्या ?
मुझ में तुम में फिर अन्तर क्या ?
लोक-लाज की नदी पार कर
दुहरा देना मेरी गारी !

चरण पकड़ मनुहार करूँगी
स्वयं-मुग्ध पर रीझ मरूँगी,
मागूँगी मांगा जो मुझसे
तुमने, कह दूँगी मैं हारी !

पं. हरिहरनाथ त्रिपाठी

कृष्णावतार का प्रयोजन

स्वयम् श्री भगवान ने गीता में अपने अवतरण के प्रयोजन की उद्घोषणा करते हुए कहा है–कि 'साधु-जनों का परित्राण करने के लिये, और दुर्जनों का विनाश करने के लिये, मैं प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ। जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का प्रवर्त्तन होता है, तब नवीन धर्म की संस्थापना के लिए मैं जन्म लेता हूँ। अपने अवतरण के इस प्रयोजन को मानवीय जीवन-लीला की विषम और द्वंद्वात्मक भूमिकाओं में, ठीक मनुष्य की तरह ही व्यवहार करते हुए, श्रीकृष्ण ने कैसे अपनी सर्वतोमुखी भागवदीयता से सार्थक किया, उसका एक सूक्ष्म ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक विवेचन यहाँ पढ़िये।

भगवान कृष्ण ने गीता में स्वयं अपने अवतार का स्वरूप और प्रयोजन बताया है। उनके अनुसार जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, जब दुष्टों से साधु पुरुषों को हानि पहुँचाई जाती है तो धर्म और साधु की रक्षा के लिए वे अवतार लेते हैं। प्रश्न यह है कि द्वापर के अंत में कौन सी दानवी वृत्ति उदय हो गई जो धर्म एवं साधु पुरुषों को समाप्त कर रही थी। देश में वैदिक धर्म का विनाश कोई शक्ति नहीं कर रही थी, कोई अवैदिक मार्ग इस रूप में विकसित नहीं हो रहा था जो वैदिक धर्म को समूल उन्मूलन पर उतारू हो। हस्तिनापुर में केंद्रिय राजसत्ता थी, उसमें परस्पर गृहयुद्ध की स्थिति थी लेकिन धर्म और साधु के प्रति वे न्यायच्युत नहीं थे। अतएव कृष्णावतार का प्रयोजन स्पष्ट नहीं होता।

इसके अतिरिक्त कृष्ण के संबंध में भी कुछ विचार करना आवश्यक है। अवतार का स्वरूप यह होता है कि वे समाज के लिए स्थापित विधि में संशोधन न कर उसे ज्यों का त्यों स्वीकार करें और उसका

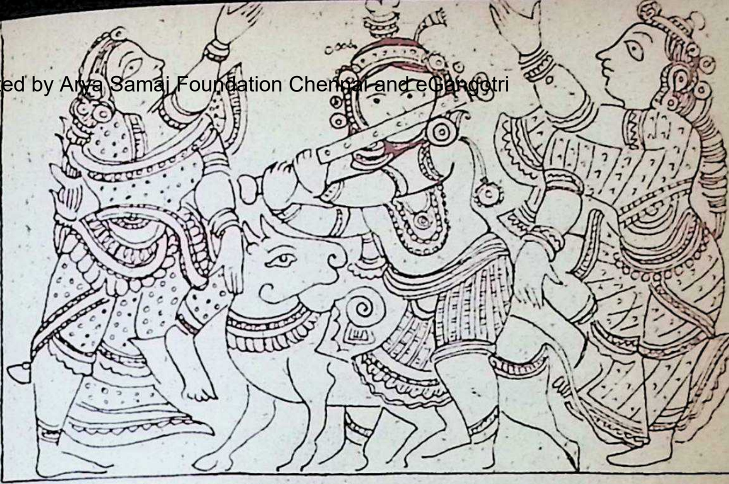

परदे का अलंकारिक आलेखन : दक्षिण भारत

लन कैसे किया जाय ने अपने आचरण से माज के सामने प्रयोग रें। रामावतार इसका त्यक्ष प्रमाण है। संशोन करने से बुद्ध भगवान तो माने गये किंतु वैदिक माज ने उनके संशोधन को नहीं माना। कृष्ण के बंध में सीधे कहा गया है कि वे लीला पुरुषोत्तम हैं। हम उनके आचरण का अनुकरण नहीं कर सकते। कृष्ण ने आर्यावर्त की केंद्रिय शक्ति में गृहयुद्ध उभाड़ कर देश की मूल शक्ति समाप्त कर दी। उनका प्रभाव अंत में यादव गण पर इतना भी नहीं रहा कि यादव-यादव गृहकलह में स्वाहा हो रहे थे, किंतु कृष्ण की कोई नहीं सुनता था। कृष्ण के अवतार से यदि कलियुग का जन्म होता है तो उसका धार्मिक महत्त्व क्या रहा ?

इन स्थितियों के होते हुये भी कृष्ण को अवतार सभी ने एक स्वर से माना। वे राष्ट्र के श्रद्धास्पद' रहे। इस समस्या की यदि राजनीतिक दृष्टि से व्याख्या की जाय तो अधिक स्पष्टता होगी। कृष्ण के जीवन का अथ-इति आभीर एवं यादवगण से प्रारम्भ होता है। आभीर गण को अनार्य गण माना जाता है। भंडारकर के अनुसार "कृष्ण के चीर-हरण, रास-लीला आदि ऐसे आचरण हैं जिन्हें आर्य आचार नहीं कहा जा सकता।" इतना तो सत्य है कि भारत में वैदिक काल से ही गणशासन पद्धति वैदिक एवं राजतंत्रात्मक पद्धति की विरोधिनी रही है। इनमें शासन पद्धतियों का ही संघर्ष नहीं था, इनमें धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मतभेद भी था। अथर्ववेद में एक ऋचा आई है उसमें अराजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का संकेत है। उसके निवासी वैदिक व्यवस्था के विरोधी हैं। वे ब्राह्मणों के समूलोन्मूलन के लिए कटिबद्ध हैं। वे ब्राह्मण और उनकी गाय दोनों को खा रहे थे। वितहव्य के १००० निवासियों के गण का उल्लेख सामने हैं जो ब्राह्मणों की गाय खा गये :—

ये सहस्रमराजन्नासन् दश शता उत,
ते ब्राह्मणस्य गां जग्धा वैतहव्या
पराभवन्। अथर्व० ५।१८।१०

]

इस स्थिति का विशेष स्पष्टीकरण बौद्ध गणों में होता है। इन गणों की केवल शासन-व्यवस्था की पद्धति में ही भेद नहीं था अपितु वे वैदिक संस्कृति के कट्टर विरोधी थे। कौटिल्य ने गणों पर सर्वाधिक आक्रमण इसीलिए किया और गण व्यवस्था को उन्मूलन कर वैदिक परम्परा का धर्म एवं राजनीति दोनों में विकास किया। गणतंत्रात्मक एवं राजतंत्रात्मक व्यवस्था के इतिहास को देखा जाय तो स्पष्ट दिखाई देता है कि आदि से अन्त तक दोनों व्यवस्थाएँ टकराती रही हैं।

लेकिन एक काल बीच में आता है जिसमें दोनों व्यवस्थाएँ परस्पर एकता और मित्रता के सूत्र में बँधती हैं। यह काल है महाभारत का और इस एकता के सूत्रधार हैं भगवान कृष्ण। कृष्ण जरासन्ध जैसे व्यक्तिवादी शासकों के उन्मूलन में पांडवों से सहायता लेते हैं। वे पाण्डवों के गृह-युद्ध का स्वयं संचालन करते हैं। इस प्रकार राजतंत्रात्मक व्यवस्था के पीछे गणराज्यों को इस प्रकार लगा देते हैं कि वे उनमें आत्मसात हो जाते हैं। इस ऐक्य का फल यह हुआ कि कृष्ण को राजसूय में सर्वाधिक महत्व दिया गया और उनकी पूजा की गई। राजसूय में कृष्ण को सर्वाधिक महत्व का कारण यही था। ध्यान देने की बात है कि कृष्ण महत्व, प्रतिष्ठा और सम्प्रभुता से सदा दूर रहे लेकिन राजसूय में उन्होंने इसे स्वीकार किया। इतना ही नहीं जिसने इसका विरोध किया उसका वध भी किया। राजसूय राजतन्त्रात्मक व्यवस्था की विशेषता थी। कृष्ण ने उसका समर्थन ही नहीं संचालन कर गणों की विशेषता को गौणता दी। फलत: उन्हें इस प्रकार का महत्व दिया गया। इसका विरोध शिशुपाल ने किया। विरोध में शिशुपाल ने उन्हीं तथ्यों का उद्घाटन किया जिनका सम्बन्ध कृष्ण के पूर्व जीवन से था और वे सदैव शासनपद्धति से मेल नहीं खाते थे। लेकिन शिशुपाल कृष्ण की समन्वयात्मिका बुद्धि को नहीं समझ पा रहा था। फलत: उसका वध किया गया। उपस्थित किसी राजा ने उस वध का विरोध नहीं किया।

यादव एवं आभीर गणों में ऐसे आधार थे जिनका समर्थन वैदिक आचार से नहीं हो पाता था। कृष्ण उस आधार की सीमा में उचित थे, लेकिन उन्होंने उन आचारों का समर्थन नहीं किया। वे विधायक के रूप में समाज के सामने आदर्श रूप में आते हैं। गणनायक कृष्ण ने जिस सिद्धांत का समर्थन किया उसका अन्यतम सम्बन्ध वैदिक परम्परा से था। कृष्ण के द्वारा उनका प्रतिपादन हो जाने से वे गण और राजतंत्रात्मक दोनों व्यवस्थाओं के लिए मान्य हो गये। धर्म की एकात्मिका शक्ति समग्र देश में एक हो गई। कृष्ण की भागवती धारा ने देश की बिखरी दार्शनिक,

र्मिक और इनके आधार पर विकसित ंवाली राजनीतिक शक्ति को एक धार दिया जिस पर वे सभी एकात्मता न कर सकें, यही है कृष्ण का धर्मोद्धार।

मनु एवं अन्य स्मृतिकारों ने धर्म को कहा है। पुराणों ने कहा कि अब सभी जा शूद्र होंगे और वृषलत्व का विकास गा। मनु भी यही मानते हैं—वृषलंगताः। राणों एवं मनु की यह उक्ति बहुत ही ान देने की है। यदि मनुस्मृति का तिम संस्करण पुष्यमित्र के समय में माना ाय तो उस समय ब्राह्मण शासन था। नः यह कैसे कहा जा सकता है कि अब भी राजा शूद्र होंगे? यदि पुराणों और नुस्मृति का भी वही काल न माना जाय र सनातनी विचारधारा से सृष्टि के दि में माना जाय तो और भीषण असंगति ती है क्योंकि बाद में अधिकतम राजा त्रिय हुए, नाममात्र को कहीं कोई शूद्र हुआ गा। वस्तुतः यहाँ शूद्र और वृषल का शेष तात्पर्य है। शास्त्रों में शूद्रभूयिष्ट ाष्ट्र का नाम आया है। इसमें जनता र शासक दोनों की परिभाषा है। नता शासन की वृत्ति पर ही जीवित गी और उसके वैयक्तिक उत्पादन एवं मफल का क्षेत्र समाप्त होगा। शासक यं विधायक होंगे। वह धर्म एवं सामा- क विधि के नियन्त्रण अस्वीकार कर यं विधायक होगा। ऐसे शासन को धर्माधिष्ठित न कहकर शुद्रभूयिष्ट कहा गया है। नन्दों ने इस प्रकार के शासन की नींव डाली। उसीको लक्ष्य कर पुराण एवं स्मृतिकार कहते हैं कि अब धर्म (विधि) अलम् (समाप्त) हो जायगी और राष्ट्र शूद्र भूमिष्ठ होगा। सभी राजा (शूद्र) धर्म (विधि) से अनियन्त्रित और स्वयं विधायक होंगे। राज्य, व्यक्ति और समाज के लिए यह शासन निम्नतम कोटि का माना गया है, अतएव इसे शूद्र शासन कहा गया।

भारतवर्ष के इतिहास में यह स्थिति सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण के समय में आयी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के समय वैदिक एवं अवैदिक शासन शक्तियों के संघर्ष का प्रश्न था। कृष्ण के समय स्वयं वैदिक शक्तियों में अनेक शाखाएँ हो रही थीं। गण और राजतंत्रात्मक शासन पद्धति में गण शासन भी जनतन्त्रात्मक नहीं था। वह अभिजातवर्गीय के साथ गणनायक की शक्ति पर केंद्रित था। कृष्ण और बुद्ध जैसे व्यक्तियों के निर्देशन में चलने वाले गणों में इन व्यक्तियों के सापेक्ष ही शासनसत्ता थी। फलतः इन गणों को अभिजात वर्गीय या स्व-वर्गीय (आभीर, एवं यादवगण) के साथ व्यक्तिवादी भी कहा जा सकता है। राजतंत्रात्मक पद्धति में दो प्रकार के राजतन्त्र विकसित हो रहे थे—धर्मनियन्तित्र और व्यक्तिवादी

निरंकुश । धर्म नियन्त्रित में संविधान एवं विधि सम्प्रभु थी। इसे ही विधि शासन कहा जाता है। व्यक्तिवादी शासन-पद्धति में राजा की शक्ति एवं वाणी सब कुछ थी। भारतीय एवं वैदिक परम्परा संवैधानिक राजतन्त्र के रूप में विकसित हो रही थी। समाज एवं व्यक्ति के अधिकारों की उसी में सुरक्षा रही।

भगवान कृष्ण के समय में जरासन्ध, शिशुपाल आदि निरंकुश राजतन्त्र के पोषक थे, यही उनका अपराध था। अन्यथा विजिगीषु राजा अन्य राजाओं को स्वायतीकृत करने में उन्हें वन्दी तो बना ही सकता था। यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रतिकूल नहीं माना गया था। जरासन्ध और शिशुपाल निरंकुश राजा थे, फलतः कृष्ण के यादवों से नहीं (गण-राज्य) अपितु पाण्डवों से उनका नाश कराया। हस्तिनापुर केन्द्रिय शक्ति थी। राष्ट्र की दृढ़ता के लिए केन्द्रिय शक्ति को दृढ़ करना आवश्यक था। कृष्ण प्राण-पण से इसके लिए चेष्टा कर रहे थे। कृष्ण के सामने एक और समस्या थी। हस्तिनापुर में कौरव, पाण्डव दो वंश थे, जो राज्य पर समान रूप से उत्तराधिकारी वनना चाहते थे। दोनों कृष्ण के मित्र एवं सम्बन्धी थे। इनमें कौरवों का नेता दुर्योधन सर्वगुण सम्पन्न होने के साथ व्यक्तिवादी एवं निरंकुश था। वह अपनी नीति में शास्त्र, मन्त्रिमंडल और जनता की अवहेलना करता था। द्यूत से लेकर युद्ध तक उसने धर्म (सम्विधान) मन्त्रिमंडल और जनता के अनुकूल कार्य नहीं किया। दूसरी ओर पांडव थे। उनके नेता युधिष्ठिर इन तीनों की मर्यादा में बंधे थे। कृष्ण ने स्पष्ट देखा कि युधिष्ठिर के हाथ में ही शासन सत्ता आने पर धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र की स्थापना हो सकती है।

अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए कृष्ण ने युधिष्ठर का साथ दिया। युधिष्ठिर का साथ देने से गृह युद्ध हुआ। भारत के धन, जन, विज्ञान, कला आदि का महान नाश हुआ, लेकिन देश की ऐसी समग्र शक्तियाँ जो धर्मनियन्त्रित शासन शक्ति के विकास में बाधक थीं, समाप्त हो गयीं। अन्ततः देश की शक्ति "धर्मराज" युधिष्ठिर के हाथ में आयी और धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र की स्थापना हुई, जिसमें धर्म एवं साधुओं का परित्राण सम्भव हो सका। महाभारत के कृष्ण का चरित्र स्पष्ट है कि उन्होंने गृह युद्ध को युधिष्ठर के पक्ष में ले आने का अथक प्रयास किया। साथ ही गृह युद्ध को अनिवार्य भी समझा।

महाभारत युद्ध में बलराम दुर्योधन के पक्ष में थे। स्पष्टतः उनके गण व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का विशेष सम्पर्क दुर्योधन की मनोवृत्ति में था। महाभारत युद्ध

के बाद हस्तिनापुर की केन्द्रिय शक्ति स्थापित हो गयी। लेकिन उस समय यादव गण की शक्ति महान थी। इस गण की सेना तो महाभारत युद्ध में मारी गयी, लेकिन इसके नायक कृष्ण, बलराम, सात्यकि आदि जीवित थे। उनके नेतृत्व में गण संगठित और शक्तिसम्पन्न हो रहा था। गण की शासन पद्धति और यादवों का निरंकुश उत्कर्ष उस शक्ति के विकास में बाधक था, जिसकी स्थापना के लिए कृष्ण ने अपना समग्र जीवन न्योछावर कर दिया। वे अन्तःकलह से बड़े पीड़ित थे। नारद से वार्ता के समय उन्होंने गण के सदस्यों की उच्छूंखलता, निरंकुशता, स्वयं की स्थिति आदि का जो रूप प्रस्तुत किया, उससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि कृष्ण, गण की व्यवस्था से ऊब गये हैं। गणों के विनाश का एकमात्र मार्ग है—अन्तःकलह। कृष्ण यह भी समझ रहे थे कि उनकी अनुपस्थिति में गण राष्ट्र के लिए घातक होंगे। वे गणों की स्थिति और भविष्य के सम्बन्ध में गम्भीरता से विचार कर रहे थे कि यादव लड़ पड़े। कृष्ण तटस्थ भाव से उनका विनाश देख रहे थे। अन्ततः आर्यावर्त की समग्र निरंकुश शक्तियाँ समाप्त हो गयीं। धर्मराज्य के मार्ग में अब कोई बाधा नहीं रही।

धर्मराज्य की स्थापना के साथ उसके संचालन का भी प्रश्न था। धर्ममय समाज में ही धार्मिक नियमों से धर्म की रक्षा होती है. जब समाज में धर्म विधान अस्वीकार करने वाले विभिन्न घटकों का विकास हो जाता है, तो धर्म रक्षा करने के लिए कूटनीति आवश्यक हो जाती है। उस समय साध्य-साधन में अन्यतम सम्बन्ध नहीं रह जाता। भगवान कृष्ण नें धर्म के साध्य की स्थापना में कूट प्रयोगों को (अनुचित साधनों) भी स्वीकार किया। इसमें वे किसी धर्मशास्त्र की सीमा में नहीं बंधे रहे। धर्मशास्त्र की सीमा की मर्यादा को तो उन्होंने स्वीकार किया, लेकिन उसकी सुरक्षा का ध्यान दिया। महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व दोनों पक्षों ने मिल कर धर्म युद्ध के कुछ नियम स्थिर किये। उनके देखने पर युद्ध की भारतीय नैतिकता का दर्शन होता है। लेकिन कृष्ण जानते थे कि द्यूत जाल में उलझा कर सर्वस्व अपहरण करने वाले कौरवों से धर्म युद्ध का पालन नहीं होगा। वे सावधान थे। अन्ततः देखा जाता है कि उभय पक्ष नें खुल कर युद्ध की नैतिकता का उल्लंघन किया। यदि कृष्ण कूटनीति में सावधान न होते, तो निश्चय ही पाण्डव पुनः परास्त होते। लेकिन कृष्ण धर्मराज्य के उच्च साध्य के लिए कूट साधन के प्रयोग में नहीं हिचके। फिर साध्य की उपलब्धि होने पर कूटसाधनों का बहिष्कार ही

विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती हिन्दी संस्करण

कुल २० खंड--डबल डिमाई १६ पेजी साइज में; पृष्ठसंख्या प्रति खंड लगभग ५००; मजबूत और आकर्षक सजिल्द प्रति खंड का सस्ता मूल्य (सिर्फ जन्मशती वर्ष के लिए) ४ रु. ७५ न. पै. और प्रति सेट ४७ रु. ५० न. पै.

आधुनिक भारत के संत तथा स्वदेश-प्रेमी स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मशती सन् १९६३ ई. जनवरी में सारे संसार में मनायी जायगी, इस शुभ समारोह के अवसर पर उनकी समग्र ग्रन्थावली "विवेकानन्द साहित्य" नाम से दस खंडों में प्रकाशित हो रही है, जो राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसा प्रथम प्रकाशन है। इन खंडों में स्वामी विवेकानन्द जी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज, आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित और अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों, तथा कथाओं का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादकों में पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', श्री सुमित्रानन्दन पन्त, डा. प्रभाकर माचवे, श्री फणीश्वर नाथ 'रेणु' आदि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमियों के लिए सुलभ बनाने और केवल प्रचार के उद्देश्य से इन पुस्तकों का मूल्य बहुत ही कम रखा गया है। जो पूरा सेट खरीदना चाहते हैं, वे ३० सितम्बर १९६२ को या उसके पहले पूरा मूल्य अथवा अंशतः १५ रु. अग्रिम हमारे निम्नलिखित पते पर, अथवा हमारे एजेंटों के पते पर भेजकर अपने नाम दर्ज करा लें। सेट का पूरा मूल्य पहले जमा करने वालों को २ रु. ५० नं.पै. कमीशन दिया जायगा, अर्थात्; ४५ रु. में पुस्तकों का एक सेट मिलेगा, अग्रिम २५ रु.देनेवाले ग्राहकों को बाकी रुपया एक ही साथ, अथवा दो क़िस्तों में ३१ दिसम्बर १९६२ को या उससे पहले अवश्य जमा कर देना पड़ेगा, रुपये की प्राप्ति हम लोगों द्वारा या हमारे एजेंटों द्वारा स्वीकार की जायगी। पुस्तक-वितरण का समय बाद में सूचित किया जायगा। चूंकि अब केवल ४००० सेट जनता के लिए प्राप्य हैं; इसलिए सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे जल्दी से जल्दी अपना नाम दर्ज करा लें। रुपया नक़द, मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft) द्वारा निम्नलिखित पते पर या हमारे एजेंटों के पास भेजना चाहिए। डाक द्वारा सीधे अद्वैत आश्रम से जो ख़रीद करना चाहते हैं, उनको डाक और पैकिंग खर्च १० रु. ५० न.पै. अतिरिक्त अग्रिम भेजना चाहिए। दूसरे ग्राहक स्वयं ही कलकत्ते से या हमारे एजेंटों से पुस्तकें ले सकते हैं।

एजेंटों का नाम---रामकृष्ण मिशन: इलाहाबाद, कानपुर, वाराणसी, लखनऊ, कनखल, दिल्ली, बम्बई, पटना, नागपुर, जमसेदपुर और आसनसोल।

मनेजर, अद्वैत आश्रम, ५, डिही एंटाली रोड कलकत्ता-१४

उनकी नीति थी। इस नीति का सफलता है, उनके बाद, कौटिल्य ने पालन किया और आर्यावर्त के श्रद्धेय महापुरुष हुए। द्वापर के अन्त में उत्तरवर्त्ती काल के लिए कृष्ण की यही देन थी। भारतीयों ने साध्य-साधन के इस मर्म को जब तक समझा, सदा विजयी रहे और धर्म की रक्षा एवं साधु का परित्राण होता रहा।

कृष्ण के योग, दर्शन, कृतित्व, व्यक्तित्व, नेतृत्व, त्याग, आदि सहस्त्रों गुण हैं, जिनका इस दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इन क्षेत्रों में उनके प्रयोग सर्वथा दिव्य थे। जहाँ तक किसी अन्य अवतार की पहुँच नहीं थी, भारतीय साहित्य में कृष्ण एक ऐसे पात्र हैं जो गर्भ से ही संकटग्रस्त हैं, किन्तु जीवन में कभी आंसू नहीं बहाये, साक्षात, आनन्द के स्वरूप भगवान कृष्ण ने जिस मार्ग से धर्म, जाति एवं राष्ट्र का उद्धार किया, उससे वे पूर्ण पुरुष एवं लीला पुरुषोत्तम हो गये। उनका जीवन ही नहीं उनके द्वारा स्थापित मार्ग धर्म (विधि) एवं साधु (उत्तम नागरिक) की रक्षा कर सका और उनके अवतार का प्रयोजन समझ कर कहना पड़ा—कृष्णस्तु भगवान स्वयम्।

[पृष्ठ ४६ का शेषांश]

कहा गया है। और संभवत भागवत में (१०अ.३३) सूचित यह रास ही होना चाहिए।

शिळप्पाधिकारम् नाम की द्वितीय शती के तामिल काव्य में इस क्रीड़ा के लिए ७ या ९ ग्वालिनियों का सहयोग लिया जाना सूचित है। यह स्पष्ट ही रासक्रीड़ा ही हो सकती है। मणि मेखलम् (तामिल के पुरातन काव्य) में भी कृष्ण के गोपी के साथ क्रीड़ा की चर्चा है। शिळप्पाधिकारम् में कृष्ण की कुछ और लीलाओं का भी वर्णन मिलता है।

इसके बाद मध्यकालीन तामिल-साहित्य में कृष्ण की बाल-लीलाओं का सुंदर वर्णन है। वहाँ माखन-चोरी की भी रोचक-कथा है। गोपियों की कई रस-लीलाओं का भी तामिल में सुंदर वर्णन है, जो भागवत और गोकुल की लीलाओं से मिलता हुआ है। द्रविड़-देश के पुरातनकालीन-साहित्य में भी श्रीकृष्ण ने आर्यों की तरह ही अपना स्थान बना लिया था, और उनकी लीलाओं ने तामिलों को भी उतना ही मोहित कर लिया था, जितना आर्यावर्त के मानवों को।

डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय

वासुदेव कृष्ण की धर्म-मिमांसा

श्रीकृष्ण भारतवर्ष के सबसे बड़े विचारक हुए हैं। आज तक कृष्ण की प्रतिभा को कोई नहीं पा सका। चाणक्य और गांधी कृष्ण के अंश मात्र थे। गांधी के स्थान पर यदि कृष्ण होते तो वे स्पष्ट करते कि सत्य, अहिंसा और धर्म अपने में ध्येय नहीं हो सकते। वे केवल लोक-संग्रह या लोक-कल्याण के लिए साधन मात्र हैं। साध्य है विश्व-कल्याण, देश-कल्याण और इनकी प्राप्ति ही आत्मकल्याण है।

महाभारत के कृष्ण एक अद्भुत गौरव से अभिमंडित प्रतीत होते हैं। सम्पूर्ण महाभारत में एक ही प्रश्न है, धर्म क्या है? गीता में भी कृष्ण ने स्वीकार किया है कि "कर्म क्या है, और अकर्म क्या है, विद्वान भी इस विषय में कुछ निश्चित करने में असमर्थ हैं।" अतएव महाभारत में विभिन्न घटनाओं के द्वारा यह निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है कि करणीय कर्म क्या है? चूँकि मुनियों के मत भिन्न हैं और श्रुतियों में भी ऐकमत्य नहीं है, अतः महाभारत में "महाजनो एन गतः सः पन्थः" के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। महाभारतकारों ने इसीलिए अनेक परिस्थितियों की कल्पना की है और उनमें किसी "महाजन" को डालकर उसके द्वारा करणीय कर्म को ही भविष्य की पीढ़ियों के लिए "आदर्श" बताया गया है। अब तक के दीर्घ इतिहास में कोई भी ऐसी जीवन-परिस्थिति नहीं दिखाई पड़ती जिसका वर्णन महाभारत में न मिलता हो और जिसका समाधान प्रस्तुत न किया गया हो। इसीलिए कहा गया है कि जो महाभारत में है वही अन्यत्र है और जो महाभारत में नहीं है, वह अन्यत्र भी कहीं नहीं है। महाभारत इसलिए नवीनतम ग्रन्थ है क्योंकि आज के सभी प्रश्नों का उत्तर

उसमें मिलता है !

धर्म की परिभाषा यह नहीं की गयी कि किसी सम्प्रदाय के द्वारा निश्चित मान्यताओं में विश्वास धर्म है। धर्म की परिभाषा यह है कि जिस विचार से, अपनी अंतिम व्याख्या में विश्व का “हित” हो, वही धर्म है, वही सत्य है[1], वही नैतिकता है, वही कर्म है। अर्थात् महाभारत की दृष्टि सापेक्षतावादिनी है। महाभारत हर विचार को किसी सन्दर्भ में रखकर सोचता है और विचारों में श्रेष्ठ थे जनता-जनार्दन वासुदेव कृष्ण !

आज का सम्पूर्ण ज्ञान अधिकाधिक “हित” को ही ध्यान में रखकर सत्य, असत्य, नैतिकता, अनैतिंकता आदि की मीमांसा करता है। राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र और दर्शन भी आजकल “हित” के आधार पर सोचता है अतः महाभारत की दृष्टि नवीनतम प्रतीत होती है !

इस “हित” को ध्यान में रखकर वेद को भी चुनौती दी गयी है। वेद जिसे धर्म कहता है, वही धर्म नहीं है, क्योंकि धर्म की गति सूक्ष्म[2] है और उसमें अनेक शाखाएँ हैं अर्थात् देशकालानुसार “हित” का स्वरूप वदलता है, और इसलिए धर्म की व्याख्या में परिवर्तन होता है। वेद कहता है, “सत्य वोलो” किन्तु महाभारत कहता है कि “सत्य” क्या है, यह केवल “हित” को ध्यान में रखकर निश्चय करो, तव वोलो। प्राणसंकट, विनोद, प्रेम, कन्याविवाह आदि के समय असत्य-भाषण ही सत्य भाषण है। क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में असत्य भाषण से ही “हित” होता है ! इस सम्वन्ध में डाकुओं के भय से कौशिक ऋषि के पास छुपे हुए कुछ लोगों के लुटने की कथा दी गयी है। ऋषि से डाकुओं नें पूछा कि क्या यहाँ कुछ लोग छिपे हुए हैं तव ऋषि ने “सत्यभाषण” किया और फलतः

---

[1] यद् भूतहितमत्यन्तं तत् सत्यमिति धारणा।
विपर्ययकृतोऽधर्मः पश्य धर्मस्य लक्षणम्।

[2] श्रुतिप्रमाणो धर्मोऽयमिति वृद्धानुशासनम्।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य वहुशाखा हयनन्तिका॥

डाकुओं ने छिपे हुए निरीह लोगों को मार डाला। महाभारत के अनुसार यह ऋषि का मिथ्याभाषण था क्योंकि वह परिणाम में दुःखद हुआ। यदि ऋषि डाकुओं से मिथ्या बोलता कि यहाँ कोई नहीं छुपा है तो उसका वह "अनृत" कथन सत्य होता!

महाभारत का यह परिस्थिति-सापेक्षवाद सर्वत्र मिलता है, कृष्ण को भारतवर्ष खूब समझता है, अतः सभी क्षेपककारों ने भी इसी "कृष्ण-दृष्टि" का प्रचार किया है, इनमें सबसे शिक्षाप्रद कर्णपर्व का एक प्रसंग है। कर्ण के बाणों से घायल होकर युधिष्ठिर भागकर शिविर में विश्राम करते हैं, उनकी चिन्ता में कृष्णार्जुन उन्हें खोजते हुए शिविर में पहुँचते हैं। युधिष्ठिर अर्जुन को देखते ही कहते हैं, यह गांडीव फेंक दो, जिसके होते हुए मेरी यह दुर्दशा हुई, यह व्यर्थ है। किन्तु अर्जुन ने मन ही मन प्रतिज्ञा की थी कि वह गांडीव निंदक का वध करेंगे, अतः वे युधिष्ठिर को मार डालने के लिए उद्यत हो गये। अजीब परिस्थिति थी, तब कृष्ण कहते हैं:–

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम्॥

सत्य बोलना उत्तम है, सत्य से बढ़ कर और कुछ नहीं है परन्तु वह दुर्जेय है। फिर कृष्ण सत्य का स्वरूप समझाते हैं जो आज के सापेक्षतावादी को भी अपनी वैज्ञानिकता अर्थात् यथार्थवाद से चकित कर देता है:–

भवेत् सत्यमवक्तव्यं, वक्तव्यमनृतंभवेत्।
यन्नानृतं भवेत् सत्यं, सत्यं चाप्यनृतं भवेत्।

जहाँ मिथ्या बोलने का परिणाम सत्य बोलने के समान मंगलकारक हो, वहाँ मिथ्या बोलना ही सत्य है और वहाँ सत्य बोलने का परिणाम असत्यभाषण के समान अनिष्ठकारी हो, वहाँ सत्य न बोलना ही उचित है!

तादृशं पश्यते बालो यत्र सत्यमनुष्ठितम्

जो मूर्ख है, वही एक जैसे सत्य को सर्वत्र आवश्यक समझता है! क्यों?

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः
यद् स्यात् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।

अर्थात् धर्म वह जिससे प्रजा का धारण हो, भरणपोषण हो, रक्षा हो, मंगल हो, अतः जिस सत्य से जनकल्याण हो, वही सत्य है अन्यथा कौशिकमुनि का डाकुओं के सम्मुख "सत्य" भाषण भी सत्य मानना होगा। कौशिक मुनि यदि "हित" पर ध्यान देते तो डाकुओं से साफ झूठ बोल जाते और वही उत्तम होता!

कृष्ण की इस व्याख्या को सुनकर अर्जुन युधिष्ठिर की हत्या से विरत हो गये

क्योंकि वह समझ गये कि निरपेक्ष रूप में सत्य, अहिंसा आदि शब्दों का प्रयोग निरर्थक प्रयोग है, जगत् में "हित" ही मुख्य है, उसके लिए जो कुछ किया जाय या कहा जाय सब धर्म है !

किन्तु अर्जुन ने पूछा कि मैं युधिष्ठिर को यदि नहीं मार डालता तो मेरी प्रतिज्ञा नष्ट होती है और प्रतिज्ञा नष्ट होने पर मैं आत्मवध करूँगा ! कृष्ण ने कहा कि तुम युधिष्ठिर से कुछ अपशब्द कह दो, बड़े भाई के लिए वह मरणवत् होगा, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो जाएगी !

अर्जुन ने युधिष्ठिर की भर्त्सना की। इससे अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली; किन्तु अब अर्जुन को पश्चाताप हुआ कि उन्होंने बड़े भाई की निन्दा की है और यह सोचकर आत्मघात करने को उद्यत हो गये !

कृष्ण ने पुनः "हित" पर ध्यान रखने को कहा और कहा कि यदि तुम आत्मघात करना चाहते हो तो आत्मप्रशंसा करो, जो आत्मवध के समान ही होती है। इससे तुम आत्महत्या से भी वचोगे और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायगी। फलत : अर्जुन ने अपनी तारीफ करनी शुरू की। परन्तु युधिष्ठिर ने मन ही मन प्रतिज्ञा कर रखी थी कि लघुभ्राताओं द्वारा अपमानित होने पर वह प्राण छोड़ देंगे। फिर वही उलझन ! कृष्ण ने पुनः "हित" पर ध्यान केन्द्रित करने को कहा—'हित' इसमें है कि आप दोनों जीवित रहें ताकि राज्य जीत कर सुशासन की स्थापना हो सके। अतः इन प्रतिज्ञाओं को पूरा न करना ही धर्म है, सत्य की रक्षा है।

सम्पूर्ण महाभारत में 'सत्य' और धर्म की यही व्याख्या स्वीकार की गयी है। निरपेक्ष सत्य केवल संन्यासियों के लिए हैं, यह भी कृष्ण के जीवन-दर्शन को मानने वाले 'व्यास' और अन्य महाभारत के क्षेपक लेखक नहीं मानते ! जन्म से सन्यासी एक मुनि को एक माता-पिता-सेवक व्याध से उपदेश दिलाया गया है और "जरत्कारु" ऋषि की उनके पितरों द्वारा भर्त्सना करायी गयी है जिन्होंने बौद्धों की तरह विवाह न करके ही संन्यास ले लिया था। तात्पर्य यह कि लोक रक्षण, लोक संग्रह ही ध्येय है, संन्यास का उद्देश्य भी लोकोद्धार है, विश्व कल्याण करते हुए ही "आत्मा" की मुक्ति संभव मानी गयी है। बौद्धों की तरह "निरपेक्ष" होकर जीवन व्यतीत करके समाज पर भार वनना कृष्ण के अनुसार निन्दनीय कर्म है।

धर्म, अधर्म की व्याख्या का एक अन्य प्रसंग दुर्योधन के भीम द्वारा आहत हो जाने के समय पर आता है। घायल दुर्योवन कृष्ण से कहता है—"सरलता से

धर्मानुकूल युद्ध करने वाले सहस्रों भूमिपतियों को कुटिल उपायों द्वारा मरवा कर तुम्हें लज्जा नहीं आती ? "

कृष्ण मुस्कराकर प्रसिद्ध उत्तर देते हैं, यहाँ भी "जगहित" ही आधार है।

हतस्त्वमसि गान्धारे सम्राट्सुतबान्धवः।
सगणः ससुहृच्चैव पापं मार्गमनुष्ठितः ॥

दुर्योधन ! तुम पापमार्गी थे, अतः तुम अपने बंधुओं के साथ मार डाले गये ! यही धर्म है ! तुम्हारे शीलानुवर्तक भीष्म, द्रौण, कर्ण आदि का वध भी धर्म अनुकूल था क्योंकि जिन पाण्डवों के कृत्यों को तुम अधर्म कह रहे हो, वह तुम्हारे अधर्म के कारण ही उत्पन्न हुए थे !

कृष्ण ने यहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही है और आज की राजनीति तथा धर्मनीति पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रश्न यह है कि क्या दुर्योधन जैसा प्रबल पापी बिना छल के मारा जा सकता था ? क्या बिना छल के भीष्म, कर्ण, द्रौण आदि का वध सम्भव था ? और क्या बिना इनके वध के विभिन्न कबीलों, जातियों, उपजातियों और "स्वतंत्र" रजुल्लों के ऊपर एक प्रबल "केन्द्रीय शासन" की स्थापना सम्भव थी ? क्या बिना महाभारत के युद्ध के भारतवर्ष राजनैतिक दृष्टि से "एक" हो सकता था ? महात्मा गांधी का कार्य सरल था क्योंकि शताब्दियों तक "एक भारत" की भावना देशवासियों में घर कर चुकी थी। उसे केवल पुनः जाग्रत करना था। किन्तु कृष्ण का कार्य कितना महान था ? एक साधारण "यादवगण" के मुखिया कृष्ण और वह भी अपने ही गण के झगड़ों से क्लान्त ! किन्तु कृष्ण के सम्मुख एक बात स्पष्ट थी– कि हिमाचल से कन्याकुमारी तक का भूमि-भाग तभी "एक देश" होगा जब हस्तिनापुर में केन्द्रीय शासन की स्थापना हो और शासक

- त्यौहार के दिन ?
- शादी-ब्याह ?
- जन्म-दिन ?
- साठवीं वर्ष गाँठ ?

उपहार के लिए

अति उत्तम पुस्तक

सभी शुभ अवसरों पर सभी के लिए
एक आकर्षक पुस्तक

प्रेमोपहार

[हिन्दी भाषा में]

मूल्य–२.५० रु. डाक-द्वारा–३.५० रु.

LITTLE FLOWER CO. (LIFCO), MADRAS-17; M. DAMODARAM & CO., APPAH BLDGS., MADRAS-1; HIGGINBOTHAMS' RY. STALLS; POPULAR BOOK DEPOT, LAMINGTON RD., BOMBAY-7; AND OXFORD BOOK & STATIONERY CO., SCINDIA HOUSE, NEW DELHI--1.

वीर और “धार्मिक” हो, धार्मिक “प्रजा के हित” को सबसे अधिक न में रखने वाला। इसके लिए राज्यों को तोड़ने की आवश्यकता इसीलिए छल, बल से कृष्ण न राज को मरवाया था और अत्याचारी रवों का भी सफाया कराया। इसीलिए राजा घटोत्कच के वध पर कृष्ण म-अर्जुन के सम्मुख ही नाचने लगे थे र पुत्र शोक से विकल जब भीम ने रा भला कहा तब उन्हें समझाया गया धर्म की गति सूक्ष्म है! यदि घटोत्कच कर्ण न मारता तो मैं अपने हाथों इसे र डालता! क्योंकि गण केन्द्रीय सन की स्थापना के विरोधी थे और न्द्रीय शासन के बिना कृषि, वाणिज्य र व्यापार का विकास असम्भव था। हाभारत के युद्ध में स्वतंत्र राजाओं भस्म पर ही आगे चल कर “कृष्ण–नुगामी” चाणक्य ने मौर्य साम्राज्य स्थापना कर सर्वदा के लिए “देश” “नेशन” के रूप में प्रतिष्ठित कर या था! इस सन्दर्भ में देखने पर कृष्ण’ राम से भी महान और “पूर्ण” तीत होते हैं। कृष्ण जन नायक थे, जनता नार्दन! दीनबंधु! अतः वे निरपेक्ष ति, निरपेक्ष धर्म, निरपेक्ष दर्शन के विरोधी विचार की सत्यता “परिणाम” पर विचार कर निश्चित करनी चाहिए। “सिद्धान्त” की परीक्षा “व्यवहार” में है, कृष्ण का यह महान सन्देश था।

स्वयं बलराम को कृष्ण की यह “बकवास” प्रतीत हुई थी। बलराम ने ललकारा था–“भीमसेन ने धर्म को हानि पहुँचाकर इन सबको विकृत कर डाला है। तुम कृष्ण! इस कार्य को धर्मसंगत बता रहे हो, वह सब तुम्हारी मनमानी व्याख्या है!”

किन्तु इतिहास गवाह है कि कृष्ण की विजय हुई। भारत “राष्ट्र” के रूप में उभर कर सम्मुख आया और प्रादेशिक राजे-महाराजे केन्द्रीय शासन के अनुवर्ती हुए, होना पड़ा! अतः मौर्यों और गुप्त साम्राज्य के युगों को जो इतिहासकार “स्वर्णकाल” कहता है, उसकी नींव में “कृष्ण” का परिस्थिति-सापेक्ष ज्ञान था। इसीलिए कृष्ण भारतवर्ष के सबसे बड़े “विचारक” हुए हैं, आज तक कृष्ण की प्रतिभा को कोई नहीं पा सका, चाणक्य और गांधी कृष्ण के अंश मात्र थे! गांधी के स्थान पर यदि कृष्ण होते तो वह स्पष्ट करते कि सत्य और अहिंसा या धर्म अपने में ध्येय नहीं हो सकते। वे केवल लोक-संग्रह—या लोक-कल्याण के लिए साधन मात्र हैं– साध्य हैं, विश्व-कल्याण, देश-कल्याण और इनकी प्राप्ति ही “आत्मकल्याण” है!

* * *

रमेशचन्द्र शाह

कारागार में ज्योति-पुरुष का अवतरण

लोक-लोकान्तर और काल-कालान्तर के सर्वोपरि अधीश्वर, सारी सत्ताओं के स्वामी, परात्पर मुक्त-पुरुष श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कारागार की अन्ध तमिस्रा में हुआ था। महा-मृत्यु की आतंक-छाया तले ही, मर्त्य मानवदेह के भीतर अमर ज्योति ने अवतार धारण किया था। जन्म से लगा कर तिरोभाव के दिन तक की श्रीकृष्ण की सारी जीवनलीला, मृत्यु के नागचूड़ पर अमर आत्म-पुरुष की विजय-लीला का एक प्रकाण्ड महापर्व है।

* * *

लोक जीवन के अनन्य आराधक श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं का परिवेश भी अत्यन्त पार्थिव और लोकसामान्य है। उनकी महानता का आन्तरिक ऐश्वर्य अत्यन्त साधारण मानवीय प्रसंगों एवं परिस्थितियों के अन्दर से प्रस्फुटित होता चलता है, गीता श्रीकृष्ण के जीवन की चरमोपलब्धि है, जीवन का प्रौढ़तम दर्शन है; किन्तु उसके प्रकाशन का परिपार्श्व कितना विचित्र है! किसी व्यास-पीठ से दिया गया व्याख्यान वह नहीं; न प्लेटो की तरह अपने संदेश को प्रसारित करने के लिए उन्हें कोई एकेडेमी स्थापित करने की आवश्यकता महसूस हुई। उनका विराट् दार्शनिक उपनिषदकारों की तरह आश्रम, अरण्य और शिष्य समुदाय की भी अपेक्षा नहीं करता। सारथी की अकिंचन भूमिका और रणोन्मुख सेनाओं के मध्यस्थित रथ ही इस महान् 'ओरेकल' की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं।

उनका जन्म भी इस नियम का अपवाद नहीं। राजपुरुष पिता के पुत्र हैं वे, किंतु राजभवन में नहीं कारागार में उनका जन्म हुआ। 'अभ्युत्थामधर्मस्य' वाली

ं तो हमारे सभी अवतारों ने पूरी की ै किन्तु अधर्म का इतना सीधा साक्षात्कार ाचित् ही किसी ने किया हो। श्रीकृष्ण जन्मनः असत् और अनीति के प्रत्यक्ष ा-भोक्ता हैं। वे उससे परिचित ही हीं, सम्बन्धित भी हैं। कंस का वह न्दीगृह अधर्म, अमानुषिक अत्याचार वं शोषण का प्रतीक है। मुक्ति और ातन्त्र्य के अग्रदूत लीला-पुरुषोत्तम के ादुर्भाव की यह कथा कितनी मर्मसार्थक है। बिना इस पूर्वपीठिका के उन्हें ब्रजभूमि और ब्रजवासियों का उन्मुक्त सहवास से सुलभ होता?

और ब्रज से ब्रज तक की उस महायात्रा के साक्षी कौन थे? भादों का मेघाच्छन्न आकाश, उद्दामयौवना यमुना का उमड़ता प्रवाह, और कृष्णपक्ष की अँधेरी रात। ज्योति-पुरुष के स्वागत का कैसा विराट् आयोजन किया था प्रकृति ने! 'जित देखो तित श्याममयी' थी वह रात्रि!

हमारे सामने लोकोत्तर चरित्रों के जन्म पर एक निश्चित स्मृति-परम्परा है। दिव्यात्माओं का प्राकट्य भी दिव्य परिस्थितियों में होता है, ऐसा हमारा विश्वास है। तुलसी के 'राम' का जन्म खिए:

नौमी तिथि मधुमास पुनीता।
सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥

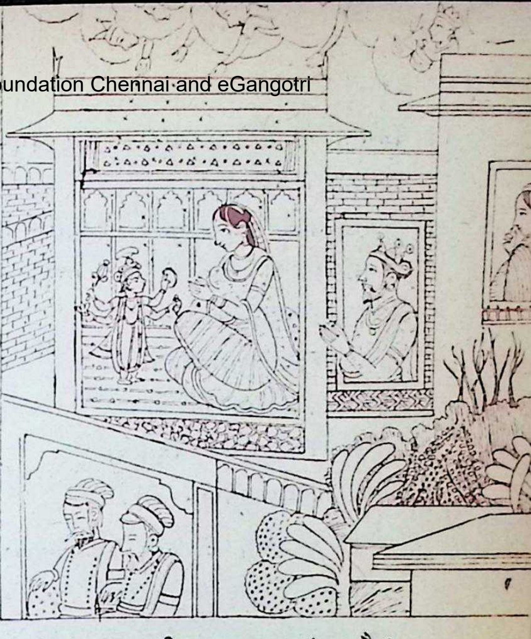

श्रीकृष्ण-जन्म : कांगड़ा शैली

मध्यदिवस अति सीत न घामा।
पावन काल लोकविश्रामा॥

पवित्र चैत्र का महीना है, नवमी तिथि है, शुक्लपक्ष, और भगवान् का प्रिय अभिजित् मंगल-मुहूर्त्त। दोपहर का समय, न बहुत सर्दी, न गरमी। वह पवित्र समय सब लोकों को शान्ति देने वाला है। और......

सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।
हरषित सुर संतन मनचाऊ॥
बन कुसुमित गिरिगन मनी आरा।
स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥

स्वयं प्रकृति अपने सौम्यतम रूप में श्रीराम का स्वागत कर रही है। वन पुष्पित हैं। पर्वतों के समूह मणियों से

जगमगा रहे हैं और सारी नदियाँ अमृत-धारा बहा रही हैं।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास की पार्वती का जन्म भी किसी साधारण दिवस को नहीं हुआ था:–

प्रसन्नदिक्पांसुविविक्तवातः,
शंखस्वनान्तरपुष्पवृष्टिः।
शरीरिणां स्थावरजंगमानां,
सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव॥

इन दृष्टान्तों के साथ श्रीकृष्ण-जन्म की परिस्थितियों को रखकर देखें तो एक अद्भुत 'कन्ट्रास्ट' प्रतीत होता है। कहाँ चैत्र और कहाँ भाद्रपद! कहाँ शुल्कपक्ष और कहाँ कृष्णपक्ष! कहाँ दोपहर और कहाँ अर्द्धरात्रि! कहाँ हिमालय की शान्ति, अयोध्या की समृद्धि और कहाँ कंस की कारा का निबिड़ आतंक! अनिष्ट की दुर्निवार आशंका से उद्विग्न मातापिता! जन्म पर मृत्यु का अनुक्षण पहरा......

प्रतिकूलताओं से श्रीकृष्ण का परिचय तभी से दृढ़ हो गया था जब से उनका धराधाम में अवतार हुआ, विपरीत परिस्थितियों से अनवरत संग्राम करते-करते ही उनका व्यक्तित्व उस पूर्णता तक पहुँचा था जहाँ उन्हें 'योगेश्वर' का गौरव मिला।

आत्मा की अखण्ड ज्योति लेकर वे

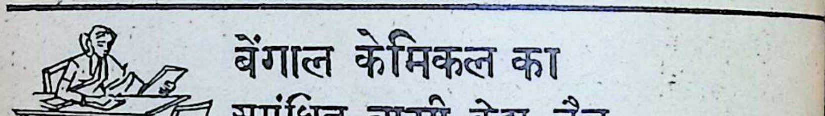

बेंगाल केमिकल का
सुगंधित ब्राह्मी केश तैल

बड़ी कारीगरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वैदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम की नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है।

बेंगाल केमिकल
कलकत्ता ० बम्बई ० कानपुर

धरती पर अन्धकार की शक्तियों युद्ध करने के लिए आये थे। फिर जन्म लेने के लिए ही शुक्लपक्ष का क्यों कर होता? कृष्णपक्ष की तिमिराच्छन्न रात्रि को उनका आगमन तों उनकी ओर से पृथ्वी के कलुष-स को चुनौती थी। क्राइस्ट ने न को उसकी पूरी कालिमा में सम्मुख र ललकारा था। गत्यात्मकता ही नका स्वधर्म है, ऐसे श्रीकृष्ण सरीखे स्तित्व को सहज, अनुकूल स्थितियों का कर्षण कदापि मोह नहीं सकता। तो विपरीत, अनिष्ट और शिवेतर को करते चले जाने और उनके ध्वंसों पर ष्टि-कल्याण का प्रासाद खड़ा करने विश्वास करता है।

श्रीकृष्ण उन व्यक्तियों में न थे जिनका मात्र और चरम साध्य अपने व्यक्तित्व संस्कार और विकास रहता है। तो लोक के विकास से अपने विकास अभिन्न मानकर चलते थे। लोक से जैसे उनकी स्थिति ही नहीं थी। न के अस्तित्व को जकड़ी हुई तिक और मानसिक काराओं को भंग ना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। 'कारा' की चेतना वे अपने साथ लेकर थे। स्वयं अपने और अपने जन्मदाता-के 'कारावास' की विकल स्मृतियों ने उन्हें प्रेरणा दी। इस आत्मानुभूत, प्रत्यक्षीकृत पीड़ा के भीतर से उन्होंने व्यापक जनजीवन को रुद्ध करनेवाली असंख्य काराओं को पहचाना और उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने में ही अपने जीवन की चरम सार्थकता पायी। उन्होंने जहाँ एक ओर मनुष्य की आनन्दमूलक चेतना को विषाक्त करने वाली, सड़ी-गली मर्यादाओं और मानसिक कुण्ठाओं की जड़ पर प्रहार किया, वहीं उनकी भौतिक भूमा को संत्रस्त करने वाले शोषकों के कंस-वंश का उन्मूलन किया। आध्यात्मिक ही नहीं, सामाजिक मानव की सुख समृद्धि को वेड़ियों में जकड़ने वाले दुरात्माओं का भी नाश किया।

कंस का कारागार मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का प्रतीक था, और भादों की रात जैसे क्षुद्र मनुष्य के प्रयत्नों पर अट्टहास करने वाली प्रकृति की ध्वंसकारी, अमांगलिक शक्तियों की अभिव्यक्ति थी। जड़ प्रकृति सदैव मानव-पुरुपार्थ की सहायिका संपादिका ही नहीं होती, अपनी अदृष्ट मुद्राओं की भयानकता से वह उसे आतंकित भी कर सकती है। लोक कल्याण के दृढ़व्रती साधक को जन्मते ही प्रकृति के इस मानवद्रोही रूप से परिचित होना पड़ा था। सम्भवतः प्रकृति को भी उस रात गोवर्द्धन-लीला का पूर्वाभास हो गया होगा।

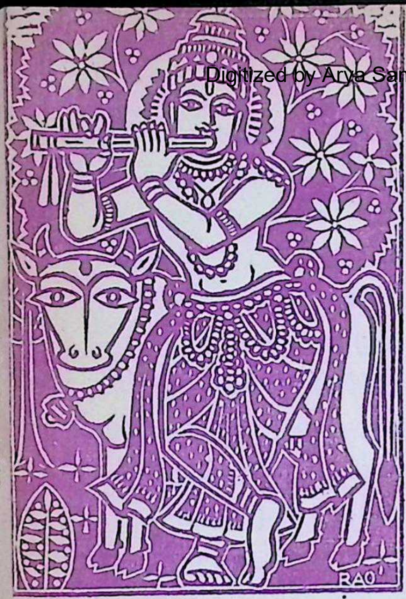

चित्र : टी. के. राव

मदनमोहन तरुण

मैं जगत की नवल गीता-दृष्टि

क्रुद्ध कंस, विरुद्ध, वज्रिल दनुज अट्टाहास
कर-पदों की श्रृंखला झन झन झनकती
सजग प्रहरी के स्वरों से कँपित कारावास।

गगन-घन घिर-घिर घुमड़ घर्षण,
हहर हर, हर हर हहर वर्षण,
देवकी के छलछलाये नयन्
वेदना से कँप-कँपाये बयन्।

◆

अर्ध रजनी विगत, तम की विनत पलकें
प्रहरियों के नयन में घुल गये सपने
मधुर मुरली स्वरण–सुठि दुख हरण सुमधुर,
क्षितिज बन्धन मुक्त मधुरिम ज्योति का अवतर
भास्व

युगल मुखरन–मौन-
चरण शत–शत,
बाहु शत–शत,
बदन शत–शत,
अवनि–अम्बर,
समाकार–विराट,

हे अतुल स्तित्वमय, निस्तित्व !
तुम नहीं माया, नहीं तुम देव, दनुज न मनुज,
तब तुम कौन ?

काल अन्ध प्रकोष्ठ बन्ध खुले खनक कर,
प्राणियों की श्रृंखला टूटी झनक कर,
थमित सिंधुर ज्वार, ठिठके वायु के पदचाप,
चतुर्दिक फैली प्रबोधन गुरु गभीरावाज:

"घनों का घर्षण प्रहर्षण विद्यु का प्रतिफलन्
तमस पर मैं शशि विभा के सत्व का अवतरण।
मैं तुम्हारी वेदना की साधना की सृष्टि,
मैं जगत की नवल गीता दृष्टि।
कंस कुरु के वंश का विध्वंस
तिमिर पर मैं ज्योति रवि अवतंस।"

तनिक भर मुस्कान, बोले फिर सहज भगवान–
"मैं कमल, मेरी सुरभि ब्रह्माण्ड का विस्तार,
कृष्ण मैं भी, कृष्ण तू भी, कृष्ण वह भी
देवकी जब से समझने लगी खुद को तभी से
यह हुआ अत्याचार।

आज तू है श्रृंखला से मुक्त
क्योंकि तुम तत्त्वम् अहम् से युक्त
खुल गये हैं नयन् के सब द्वार
चतुर्दिक तू तू तुम्हारा चतुर्दिक विस्तार।"

●

डॉ. चन्द्रभान रावत

विश्व-पुरुष की बाल-लीला

श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का जो वर्णन भागवत और भक्तों के लीलागान में मिलता है, उसमें सीमा के भीतर असीम के अवतरण का अद्भुत और आत्मोन्मेषक दर्शन हमें प्राप्त होता है। एक ओर सहज मानुषी बालक और मानुषी माँ के बीच की वात्सल्य क्रीड़ा है, दूसरी ओर बीच-बीच में अनायास ही वही बालक विराट अनन्त के ज्योति-पुत्र के रूप में प्रकट होकर नाग-दमन, गोवर्द्धन-धारण और असुर संहार जैसी ईश्वरी लीलाएँ भी करता है। संसार के साहित्य में, दिव्य और पार्थिव के संयुक्त व्यक्तीकरण का जैसा स्वरूप कृष्ण की बाल-लीलाओं में दिखायी पड़ता है, वैसा अन्यत्र सुलभ नहीं।

भारतीय साहित्य में बालकृष्ण क लीलाओं का चित्रण अत्यन्त आश्चर् सुन्दर रंगों से हुआ है। उस चित्रण म प्रायः उन सभी तत्वों और अभिप्रायों क समावेश है जो संसार के अधिकांश पौराणि और धार्मिक महापुरुषों के बाल-चरि से संबद्ध हैं। आध्यामिक दृष्टि से ज परमतत्व है उसकी बाललीलाओं क स्वाभाविक और मानवीय स्तर पर उतार कर भारतीय मनीषियों ने उसको अद्भु भी बनाया है और सुन्दर भी। इन लीलाओं का दर्शक या पाठक जहाँ एक ओर अमायिक और निश्छल वात्सल्य र में स्नात हो जाता है वहाँ दूसरी ओ असुर-विनाश के दृश्यों से वह आश्च

' माई मैं चन्द्र खिलौना लै हों '
—कांगड़ा शैली

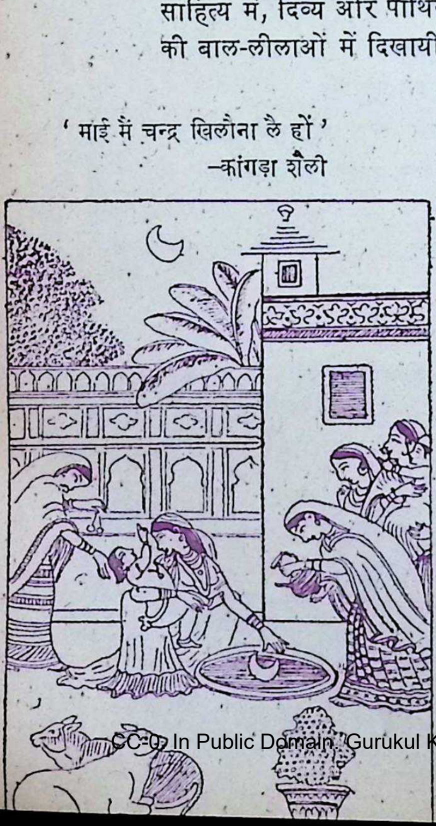

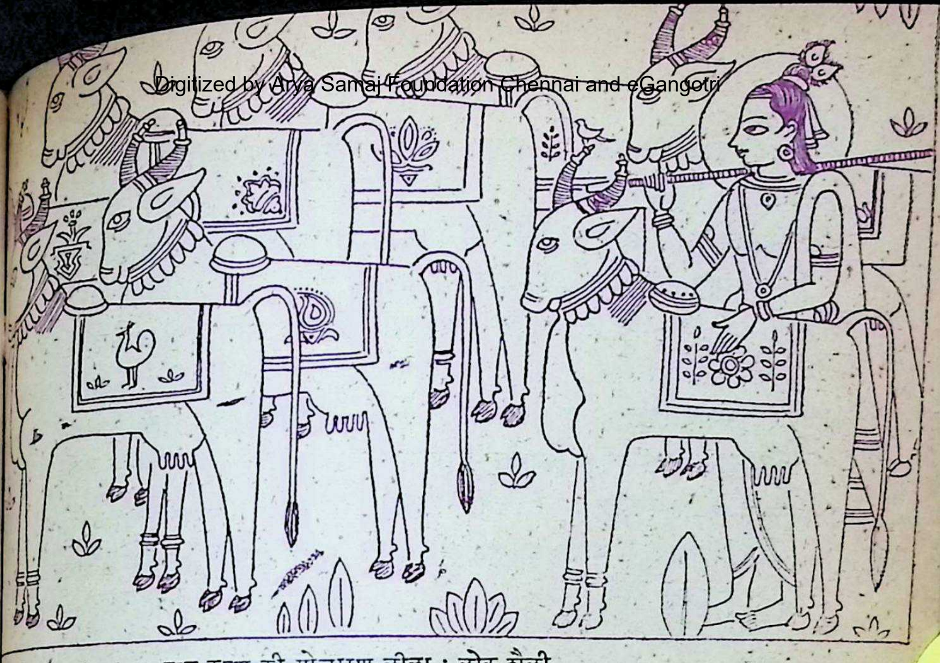

बाल-कृष्ण की गोचारण-लीला : लोक शैली

क्ति भी हो जाता है–बालक में यह कल्याणकारी अद्भुत शक्ति भी! कृष्ण के अभिप्रायों ने समस्त भारतीय हित्य और अन्य कलारूपों को प्रभावित ता। दक्षिण में भी बालकृष्ण की नग्न र्तियाँ मिलती हैं। मद्रास के संग्रहालय बालकृष्ण की दो नग्नमूर्तियाँ हैं– र्तित नृत्त मूर्तियाँ। हाथीदाँत की एक शायी कृष्ण की मूर्ति त्रिवेन्द्रम में । दक्षिण के मन्दिरों के स्तम्भों पर मूर्तियाँ एक हाथ में मक्खन का डेला हुए तथा दूसरा हाथ टेककर घुटने बैठने की स्थिति में हैं। ब्रज और क्षेत्र के साहित्य में कृष्ण की लीला के विशद चित्र मिलते हैं साम्प्रदायिक दृष्टि से बंगाल के कवियों की वृत्ति कृष्ण और राधा की शृंगार-लीलाओं में विशेष रूपसे रमी है। ब्रज के अनेक संप्रदायों में भी प्राधान्य शृंगार लीलाओं का रहा। पर पुष्टिमार्ग में बालकृष्ण की उपासना को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। वात्सल्य-रस-परक भक्ति मुख्यतः ब्रज में ही पनप सकी। वातावरण की दृष्टि से यह स्वाभाविक भी था।

राम की बाललीला की अपेक्षा कृष्ण की बाललीला लोकजीवन में अधिक गहरी उतर सकी। राम एक राजकुमार थे: लोकमानस का तादात्म्य सम्भवतः बाल राम के साथ उतना नहीं हो पाया। साथ ही 'मर्यादा' का व्यूह बाल राम के रूप को आरम्भ से ही घेरने लगा।

अलौकिकत्व का रंग भी इतना गहरा गया कि स्वाभाविक तन्तु इस भार को सम्हालने में जैसे अपने को असमर्थ पाने लगे। ब्रज की दूध और मक्खन भरी आभीर-गुर्जर संस्कृति के लोकतत्वों से समन्वित परिस्थिति में बालकृष्ण का रूप स्वाभाविक रूप से उभरा है। 'दूध और पूत' का अद्भुत सामंजस्य हुआ। कृष्ण-जन्मोत्सव के चित्रों में यही परिस्थिति भरपूर व्यक्त हुई है। गोविन्द दास के शब्दों में–

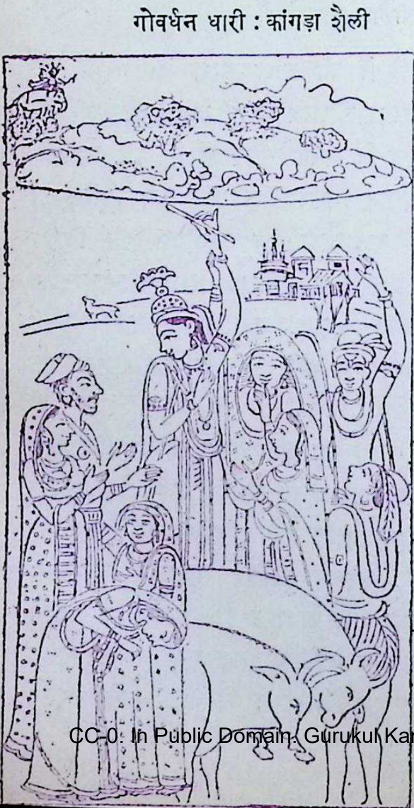

गोवर्धन धारी : कांगड़ा शैली

आज ब्रज भयो सकल आनन्द

० ० ०

नाचत तरुनी और गोप सब प्रगटे गोकुल-चन्द।
विविध भाँत बाजे बाजत हैं निगम पढ़त द्विजछंद।
छिरकत दूध, दही, माखन, प्रफुल्लित मुख अरविन्द।

कृष्ण की बाललीला का आरम्भ जन्म से ही होता है। जन्म के समय उनके मा-बाप असहायावस्था में हैं। पुराण-पुरुषों के जन्माख्यान के साथ प्राय: यह अभिप्राय जुड़ा हुआ मिलता है। लोकप्रचलित नलोपाख्यान में भी नल का जन्म मां की असहायावस्था में, हींस-बिरे में होता है। गणेश जी भी बनस्थ एकान्त गुहा में त्याज्य माता के साथ रहते हैं। हनुमान जी की माँ पर भी कलंक का आरोप करके उसके सास-सुसर निकाल देते हैं और उसी असहायावस्था में हनुमान जी का जन्म होता है। कहने का तात्पर्य यह कि जन्म के समय कृष्ण की माँ की असहायावस्था का अभिप्राय अत्यन्त लोकप्रिय अभिप्राय है। जन्म होते ही कृष्ण को अपने माँ-बाप से पृथक होना पड़ा। इस प्रकार उनका पालन पोषण अन्यत्र हुआ। पुत्र-त्याग का कारण यह था कि वह अपने मामा का शत्रु था। यूनानी गाथाओं में जिअस की गाथा में यही

प्राय प्राप्त होता है। उसका पिता अपने पुत्र का इसलिए शत्रु है ज्योतिषियों के अनुसार उसका पुत्र मृत्यु का कारण है। क्रीट की एक गुहा में दिव्य शक्तियों द्वारा उसका पोषण होता है। कृष्ण का पालन-भी गोकुल में होता है। शिव-पुत्र र का पालन-पोषण भी अनेकत्र है: पार्वती ने उसे धारण न करके ने धारण किया, फिर क्रमशः रा ने, गंगा ने उसे धारण किया अन्ततः कृत्तिकाओं (षडमातृकाओं) नका पालन-पोषण किया। इस प्रकार के जन्म और पालन-पोषण के साथ व्यापी अभिप्रायों को संबद्ध किया है। जन्म के समय कुछ अलौकिक का समावेश है। बन्दीगृह के द्वार हो जाते हैं: यमुना चरण-स्पर्श ती है: देवकी को दिव्य रूप की झाँकी ती है। इन तत्वों के समावेश से कृष्ण रहस्यमयी शक्ति को स्पष्ट किया है।

स के द्वारा कृष्ण को मारने के लिए उपाय किये जाते हैं। अनेक दुष्ट-एतदर्थ भेजे जाते हैं। पर उनका अत्यन्त रहस्यपूर्ण ढंग से करा जाता है। यह देव के बालरूप ल्पित किये जाने का लोक-अभिप्राय यहाँ लोककथा धर्म गाथा का रूप लेने लगती है। ईश्वर या देव का बालरूप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमें विशेष आकर्षित करता है। जुंग के अनुसार बाल-अभिप्राय सामूहिक रूप से हमारे मन के चेतनापूर्वी बाल पक्ष को प्रस्तुत करता है। अतः हमारा मन समग्र रूप से इस अभिप्राय (Motif) की ओर आकर्षित होता है।

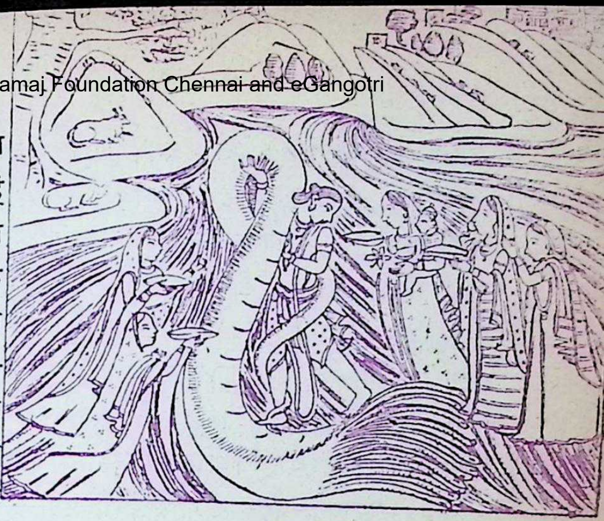

कालिय मर्दन : पहाड़ी शैली

यहाँ से बालकृष्ण की लीलाओं का प्रवाह दो दिशाओं में प्रवाहित होता है। बालदेव के रूप में वह लोकोपकारक दानवीय शक्तियों का विनाश करता है और दूसरी ओर मानवीय धरातल पर अपनी माँ की वात्सल्य-भावना का आलंबन कर अनेक आत्मचुंबी लीलाएँ करता है। साहित्य में इन दोनों की समन्वित गंगाजमुनी प्रवाहित हुई है। अलौकिक लीलाओं में उसका देव रूप व्याप्त रहता है और लोकमानस अपने

शत्रुओं को नष्ट होते देख कर परितृप्त हो जाता है। अलौकिक लीलाओं को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है: पहली लीलाओं में बालकृष्ण अपने घातक शत्रुओं का विनाश करता है। इनमें पूतना-वध और शकटासुर-वध को सम्मिलित किया जा सकता है। दूसरी लीलाओं का संबंध कृषि-शत्रुओं के विनाश से है। तृणावर्त, वकासुर और केशी का वध इसी प्रकार की लीलाएँ हैं। वकासुर सम्भवत: समस्त उत्पादन को चर जाता था। इस प्रकार ब्रज के लोक-जीवन की आधार शिला कृषिकार्य को कृष्ण सुरक्षित कर देता है। एक दानव तो आकर कृष्ण के गोपाल रूप, को ललकार देता है। इस प्रकार ब्रज-जीवन के द्वितीय आर्थिक आधार को हिला देना चाहता है: समस्त गोप-गो—वत्स उसके उदरस्थ हो जाते हैं। उसका विनाश करके ब्रज के लोक-जीवन की रक्षा सम्पन्न होती है। तीसरे प्रकार की लीला में अन्य लोकपीड़कों का वध आता है। कालीनाग का वश में करना इसी प्रकार की एक लीला है। चौथी प्रकार की लीला का संबंध वैदिक देवों और अनुष्ठानों से है। गोवर्द्धन-लीला के द्वारा इन्द्र का मान-मर्दन होता है। वछड़ों को चुराने वाला ब्रह्मा भी अन्ततः बालकृष्ण से अभिभूत हो जाता है। चतुर्वेदियों के यज्ञ-पुरुष के निमित्त बने हुए पाक से अपना भाग उन्हीं की पत्नी के माध्यम से कृष्ण प्राप्त करता है। इस प्रकार अव्यक्त रूप से वैदिक अनुष्ठानों के स्थान पर लोकानुष्ठानों और वैदिक देवों के स्थान पर लोक देवताओं की स्थापना करके कृष्ण जीवन से सम्बद्ध जन-संस्कृति को नवीन जीवन और मूल्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक और अलौकिक लीलाएँ लोकोन्मुख हो जाती हैं और अवतारवाद के लोक-मंगल वाले अभिप्राय से संवद्ध हो जाती हैं। उनमें अलौकिक लौकिक धरातल पर उतर आता है। सामान्यतः मानवीय यथार्थ की दृष्टि से असम्भव लगनेवाली लीलाओं में व्याप्त लोकानुसार अभिप्राय में खोया हुआ जनमानस उनकी असम्भावना को विस्मृत कर देता है।

बालकृष्ण की लीलाओं के दूसरे पक्ष पर अद्भुत वात्सल्य रस की शत-शत फुहारें पड़ रही हैं। आश्रया मुख्य यशोदा हैं। माता यशोदा के जितने चितेरे हुए हैं, उन्होंने माता के हृदय की गहराइयों तथा अनेक स्पष्ट-अस्पष्ट छायाओं का समावेश करते हुए यशोदा के चित्र में मानवीय उभार दिया है। सबसे अधिक उभार सूर ने दिया है। माता अपने लाल को झुला रही है: पालने के आसपास आत्मनिर्गत लोरी गूंज रही है।

ोदा हरि पालने झुलावै
रावै दुलराइ मल्हावै जोइ-सोइ कछु
गावै

पालने में झूल रहे हैं और माता ोदा का मन अभिलाषाओं की रंगीन र्यों पर पैंगें मार रहा है: मातृ- अभिलाषाओं का चित्र सूर के दों में यों है–

ुमति मन अभिलाष करै
ब मेरो लाल घुटुरवनि रेंगै, कब धरनी
पग द्वैक धरै।

ालकृष्ण के नहाने,मचलने, रूठने, मक्खन ाने आदि की सुन्दर लीलाओं का त्रण हिन्दी के अनेक कवियों ने किया है। मिट्टी खाने का प्रसंग विशेष रूप भक्तों और कवियों के मन को अनुरंजित रता रहा है। यशोदा का दंडविधान लकर आँखों में प्रेमाश्रु उच्छलित हो ते हैं।

ालने में झूलते हुए कृष्ण के कुछ लौकिक चित्र भी हैं। एक दिन घटना स प्रकार घटित हुई–

रन गहे अँगुठा मुख मेलत
छरत सिंधु, धराधर काँपत कमठ पीठे
अकुलाइ। [सूर]

लयकाल में भी कृष्ण का बाल रूप ही विशिष्ट रहता है। उस समय का दृश्य पस्थित हुआ और चराचर में हलचल हो गयी। इन दृश्यों में आश्चर्य-मिश्रित आनन्द व्याप्त है। यह आश्चर्य मिश्रित आनन्द भक्त जनों के लिए है। भक्त सदैव एक आश्चर्य-सुन्दर स्थिति की कल्पना करके मन:स्थिति को उसमें स्थित कर देते थे। यह एक परम रमणीय स्थिति है, जहाँ पहुँच कर भक्त-रसिक समाधिगत आनन्द में विभोर हो जाता है।

एक दिन दाऊजी ने कृष्ण को वहुत खिझाया। यदि वात यहीं तक रहती तो, सम्भवत: बालकृष्ण सहन करते। सभी गोप-ग्वाल दाऊजी के साथ हो गये और कृष्ण अकेले। तब अपनी माँ के शीतल क्रोड़ से बड़ा आश्रय बालकृष्ण को नहीं दीखा। जाकर उन्होंने जो कहा, अत्यन्त स्पृहणीय है–

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो
मो सों कहत मोल को लीन्हों, तोहि
जसुमति कब जायो।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम
सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत
बलबीर॥

इन शब्दों से माता के हृदय पर और भी गहरा रँग चढ़ जाता है।

तू मो हीं कों मारन सीखी दाउहिं कबहु
न खीझै।

इस प्रकार के अनेक चित्र बालकृष्ण से

LIFEBUOY
SOAP
LIFEBUOY SOAP

ताजगी का तराना ! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके तनमन में ताजगी का तराना गूंज उठेगा ! और मजा यह है कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताजा कर देता है ! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा।

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ !

L. 33-X29.HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पाद

ित हैं। माखनचोरी की लीलाओं में
भाव का चरमोत्कर्ष मिलता है।
चोरी घर में ही चली। यशोदा के
ने पर कुछ बालसुलभ उक्तियों से
ा को बालकृष्ण बहकाते रहे–'मैं
बँहियन कौ छोटौ, छींकौ किहि
पायौ।' जब छोटी उम्र में पास-
स में भी कृष्ण चोरी करने लगे, तब
ड़े भी गये-अपनी तुतली उक्तियों से
समय तक ग्वालिन को भी रिझाते
काते रहे–'देखत हों गोरस में चींटी
न को कर नायो।' पर जब चोरी ने
योजना का रूप धारण किया तो
ोदा को वारबार उपालम्भ मिलने लगे।
तो एक दिन ऊखल से बाँध दिया गया।
तो उपालम्भ देनेवाली ग्वालिन का
भी पिघला–? 'जसुदा तेरौ भलौ
है माई।' बलदाऊ भी बालकृष्ण की
में हीरकाश्रुकण देखकर काँप उठे।
ऐसा मनोरम बना कि सभी दर्शक
हो जाते हैं।

आगे की दो लीलाएँ और हैं: गो-
और गोचारण। बंगाली वैष्णव
कवियों ने गोदोहन (गोष्ठ) लीला का
वड़े उत्साह के साथ किया है।
में भी इस लीला के चित्र कम मन-
नहीं हैं। कृष्ण गोदोहन के लिए
वड़े उत्सुक हैं। मा से अनुनय करके
गोदोहन आरम्भ करते हैं। सूर के सीधे-सादे शब्दों में–

तनक कनक की दोहनी दै दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यो मोहिं धौरी गैया।
अटपटे आसन बैठि कैं गो-थन कर लीन्हौ।
धार अनत ही देखिकै ब्रजपति हँसि दीन्हौ।

कृष्ण आड़ी तिरछी धार निकालते हैं, इस पर नंदबाबा हँसने लगते हैं। भक्त आश्चर्य से भर जाता है–अरे! भगवान के अवतार से इतना भी नहीं होता! इसके पश्चात् कृष्ण गोचारण के लिए हठ करते हैं–

मैयारी मैं गाय चरावन जैहौं।
तू कहि महरि नंद बाबा सौं बड़ौ भयौ न डरैहौं।

बालकृष्ण का मथुरा-गमन इन लीलाओं का अन्त कर देता है। इससे समस्त ब्रज विरह पारावार में डूब जाता है! यशोदा के आँसू जैसे त्रिलोक को ही डुबो देंगे। समस्त ब्रज के देखते-देखते कृष्ण अक्रूर के रथ पर आरूढ़ हो जाते हैं। यशोदा का हृदय उमड़ पड़ता है।

माता से बिछुड़कर कृष्ण चले गये। माता को जीवन भर पश्चाताप रहा–'फाटिन गई ब्रज की छाती, कत यह सूल सह्यौ।' इस प्रकार कृष्ण की बाललीलाओं के चित्रों में अनेक तत्व हैं। इनसे मिलकर चित्रों को पूर्णता मिली है। सम्भवतः संसार के महापुरुषों की बाललीलाओं ने साहित्य और संस्कृति को इतना प्रभावित नहीं किया, जितना कृष्ण की बाललीला ने।

किशोरीशरण 'अलि'

रसेश्वर की रास-लीला

अनन्त रमणियों के साथ एक बारगी ही जो रमण करता है वह पूर्णकाम ही हो सकता है, विकल काम नहीं। इसीसे श्रीकृष्ण की रास-लीला परमकाम पूर्णकाम के साथ अपूर्णकाम मदन की युद्ध-लीला है। मदोन्मत्त अनंग ने उछल-उछल कर श्यामसुन्दर पर वार किये। पर उसके सारे ही बाण कुंठित हो गये। श्रीकृष्ण ने स्वयम् ब्रजांगनाओं के वक्षोज, गण्डस्थल और उरु आदि अंगो में खोज-खोज कर अनंग को जर्जरांग, वेपथांग और विकलांग कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह रास-लीला काम-लीला नहीं, बल्कि काम-विजय लीला है।

प्राणियों की मनोवृत्ति, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पाँच विषयों में समासक्त है। वह शुद्ध परब्रह्म, परमात्मा और भगवान की ओर जाती ही नहीं। इसीलिए भगवान को उनकी स्वारसि की प्रवृत्ति सम्पादन करने के लिए, उनके मन और इंद्रियों को आकर्षित करने के लिए शब्दादि पंच विषयों से विरहित होने पर भी दिव्य स्पर्श, दिव्य रूप और दिव्य रसवान् होकर अवतीर्ण

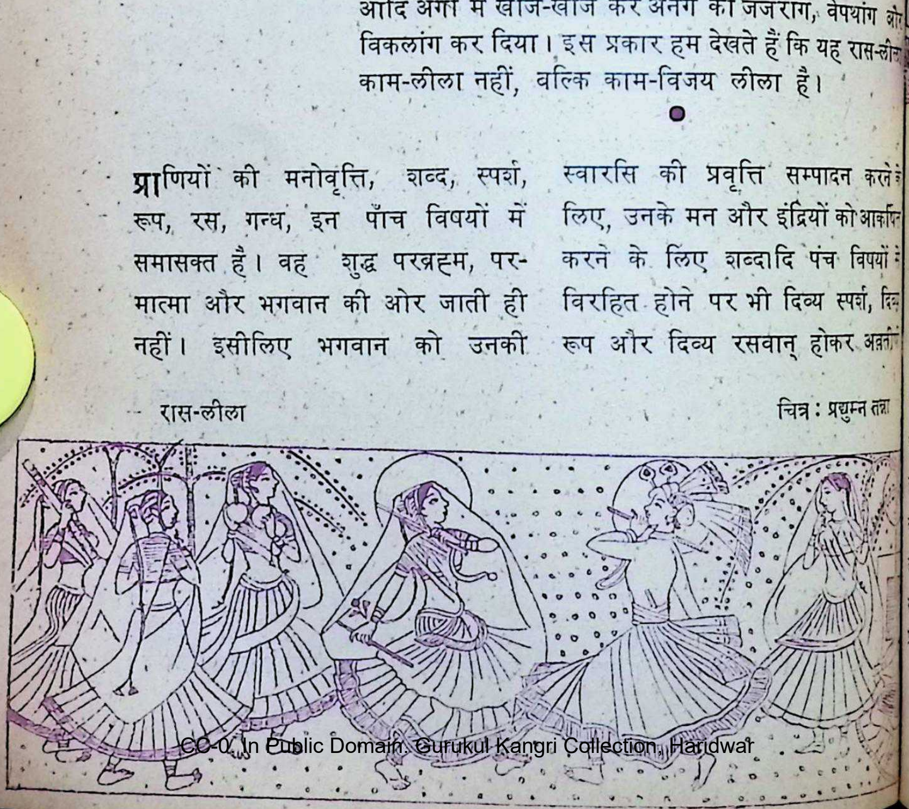

रास-लीला

चित्र : प्रद्युम्न तन्ना

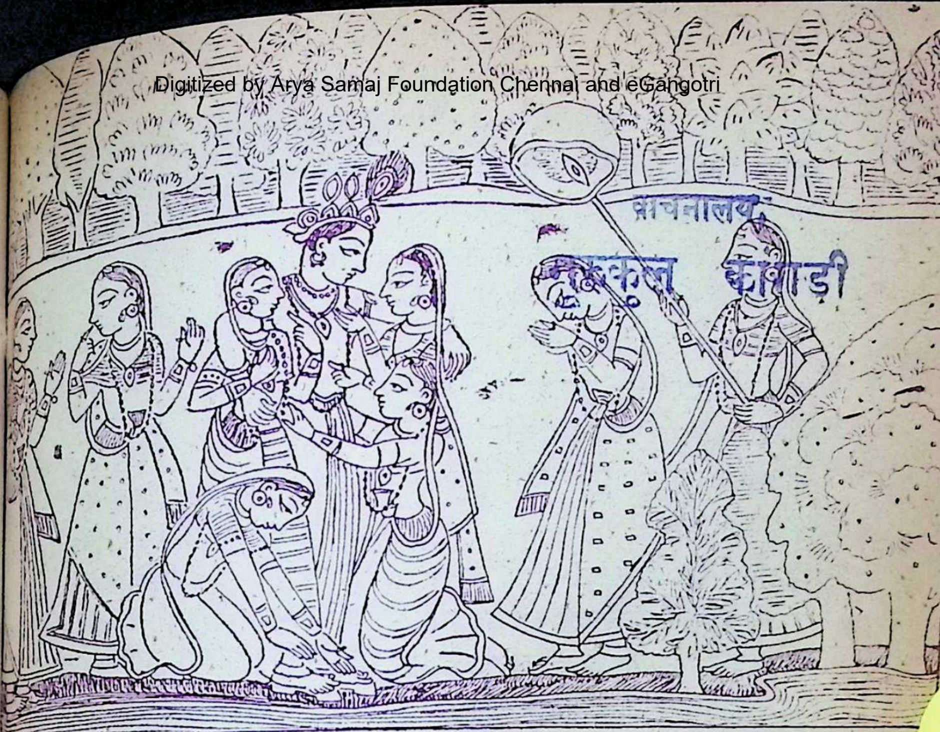

वाचनालय गुरुकुल कांगड़ी

रसेश्वर-वृन्दावनचन्द्र की रासलीला : बसोहली शैली

होना पड़ता है और यही कारण है कि उनके अन्य अनेक अवतार-रूपों में से श्री राम और श्री कृष्ण रूप सर्वाधिक प्रिय सिद्ध हुए। भक्तिरस के आलम्बन के लिए भी सर्वोत्कृष्ट माने गये; क्योंकि यह रूप लोक (भावनाओं) के अत्यन्त निकट थे, इनमें ऐश्वर्य लीलाओं की अपेक्षा माधुर्य-लीलाओं का प्रकाश अधिक था। और इन दोनों रूपों में भी भगवान के श्रीराम रूप में आदर्शमूलक चारुचरित्रों का और श्रीकृष्ण रूप में आनंदमूलक मधुर लीलाओं का प्रकाश अधिक है।

लीला और चरित्र में एक प्रकार से अर्थसाम्य होते हुए भी पारिभाषिक दृष्टि से दोनों शब्दों में कुछ तारतम्य भी है। शुद्ध स्वेच्छित विलासों का नाम ही लीला है[१]। जिस कार्य में किसी भी प्रकार का आभास न हो, जो सब प्रकार से स्वेच्छाधीन हो, जो अनेक प्रकार की विचित्रताओं से परिपूर्ण और नित्य नवीन उल्लास तरंगों से पूर्ण हो, उस कार्य को लीला कहते हैं। जिस कार्य में आत्मविनोद के अतिरिक्त कोई अन्य हेतु विशेष न हो, उसी कार्य को लीला कहा जाता है। आनन्द विधायक कार्यों की लीला संज्ञा और आदर्श विधायक

---

[१] लीलानां विलासेच्छा।

कार्यों की चरित्र संज्ञा होती है। आदर्श- और अनादर्श शून्य कार्यों को ही लीला और आदर्श तथा अनादर्श मूलक कार्यों को चरित्र कहकर अभिसंज्ञात किया गया है।

चरित्रों किंवा लीलाओं से ही लीला नायक का रूप निष्पन्न होता है। सम्भवतः इसीलिए भगवान श्रीराम को आदर्श चरित्र, मर्यादा पुरुषोत्तम और भगवान श्रीकृष्ण को मधुर मूर्ति, लीला पुरुषोत्तम कहा जाता है।

लीला-प्रिय श्रीकृष्ण सर्वथा रसमय हैं, उनकी कोटि-कोटि कन्दर्प कमनीय लोकाभिरामिनी मूर्ति जिस प्रकार विचित्र आकर्षण-पूर्ण है, उसी प्रकार उनकी महा मधुर लीलाएँ भी सर्व मनोहारिणी और रसोन्मदकारिणी हैं। वैसे तो भगवान की सभी लीलाएँ[१] लोकोत्तर आनन्दातिरेक का संचार करनेवाली हैं तथापि इनकी ब्रज लीलाएँ तो महाभाग भक्तों एवं कवि पुंगवों का सर्वस्व ही हैं। उन लीलाओं में भी जिसका आविर्भाव ही एकमात्र रसाभिव्यक्ति के लिए हुआ था, वह महारास-लीला तो मानो सर्वथा माधुर्य का ही विलास था, रसेश्वर का रस विलास ही था।

बहुत अधिक सम्भव है कि भगवान श्रीकृष्ण का यह 'रसेश्वर' नामकरण कुछ भावुक भक्तों के लिए पक्षपातपूर्ण दिखायी दे; किंतु बात ऐसी है नहीं;- वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्ण के रूप और लीलाओं में कुछ 'अभिव्यक्ति' विशेष ही इस प्रकार की हैं, कि जिन्हें देखकर प्रत्येक विचारवान् पुरुष इन्हें रसेश्वर और इस रासलीला को रसेश्वर की रासलीला कहने के लिए विवश हो जाता है। वे अभिव्यक्तियाँ इस प्रकार हैं:—रूपाभिव्यक्ति, माधुर्य्याभिव्यक्ति, पूर्णरसाभिव्यक्ति आदि।

१. रूपाभिव्यक्ति:–

इनके रूप और इनकी लीलाओं में सभी रसों के भावुक भक्तों को उनके भावानुकूल रसानुभूति हो जाती है। इस तथ्य को और भी स्पष्ट करने के लिए इसे यों कहा जा सकता है कि इनके रूप और इनकी लीलाओं में, शांत, हास्य, सख्य, वत्सल और श्रृंगार-भक्ति रस के इन सभी अंगभूत रसों के विभाव, अनुभाव, संचारी और व्यभिचारी ये कारण पूर्णरूप से प्रत्यक्ष हैं। भक्तिरस को शास्त्रीय रूप देनेवाले विद्वान् भक्तों ने तो इन्हें वीर, रौद्र और भयानक आदि नवरसों के भी आलम्बन और उद्दीपनकारण, सप्रमाण सिद्ध किये हैं।[२]

---

[१] भगवान श्री कृष्ण की लीलाएँ स्वरूप और लीला क्षेत्र के अनुसार तीन रूपों में प्रकाशित हुई हैं। भक्तों ने उन्हें ब्रजलीला, मथुरा लीला और द्वारिका लीला, इन तीन नामों से अभिसंज्ञात किया है।

[२] दे. भक्ति रसामृतसिन्धु, श्रीरूप गो. कृत।

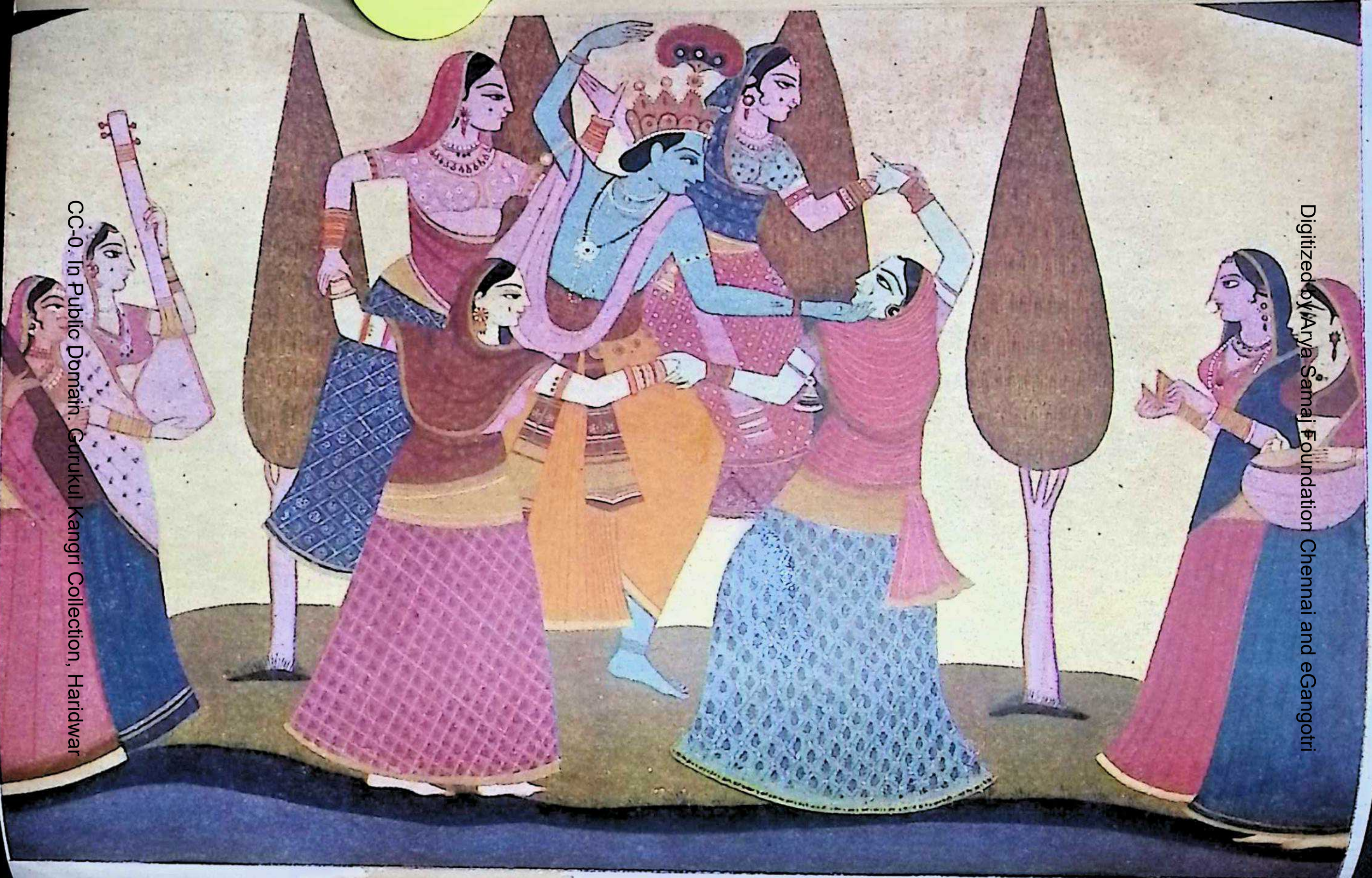

अनुकृति : कु. कोकिला देसाई

'आरती' : श्रीकृष्ण लीला विशेषांक

म्बर

लोकर

लोक की

र आवा

न कसौट

गोंकि बहु

लोकरस

ने आस्वा

आस्वादक

नाय ही

आस्वादन

है। क्योंकि

न का आ

हीं। एक

स्वन का

सका नहीं

भक्तिर

शास्त्रकार

सामान्य अ

, स्वयं

ों दोषों क

वे सब रस

हीं बन प

ता है।

भगवान

---

१. रस इ

(आस्वाद्यते)

, ३. यह

ही सीमि

. भक्ति रस

लोकरस और लोकरस के विभाव ोक की प्रत्यक्ष घटना और घटनापात्र) आवारित काव्यरस के आलम्बनों को कसौटी पर इसलिए नहीं कसा जाता, ोंकि वहुत-अधिक प्रत्यक्ष है कि इन दोनों ोकरस और काव्यरस) के आलम्बन न आस्वादेय (रस) ही वन पाते और न स्वादक (रसिक) ही वन पाते[२]। य ही इनमें आस्वाद सवैचित्री तथा स्वादन वैचित्री का भी अभाव सा ही क्योंकि यहाँ का एक आलम्बन एक ही का आलम्बन वन सकता है, सव रसों का हीं। एक विषयालम्बन एक ही आश्रया-म्वन का विषयालम्बन वन सकता है, का नहीं।

भक्तिरस के आलम्बन (भक्तिरस के त्रकार के शब्दों में श्रीकृष्ण[४], किन्तु, मान्य अर्थ में) "सर्व आत्मनिप्रियं हितं , स्वयं भगवान ही हैं, अतः उपरोक्त दोषों का परिहार हो जाता है किंतु, सव रसों के आलम्बन (विषयालम्बन) हीं वन पाते;" इसका दर्शन होता ही ता है।

भगवान श्रीराम भी लोकभावनाओं की सहज भूमिका पर लोकाभिनेता के रूप में राजमान् हैं, उनका कोटि कन्दर्प रूप भी विश्वविमोहन है; किंतु वह मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाला नहीं, आदर्श एवं अनादर्श की ओर से आँख वन्द करनेवाला नहीं। सच वात तो यह है कि इनका यह मर्यादा संरक्षण ही इनके गाम्भीर्यपूर्ण रूप और शीलयुक्त सौंदर्य की श्रीवृद्धि का कारण वना हुआ है। उनकी यह मर्यादा ही उन्हें दास्य रस को छोड़कर प्रायः अन्य सभी रसों का विषयालम्बन वनने में वाधक वनी हुई है।

भगवान का श्रीकृष्ण रूप इस कसौटी पर पूर्ण रूप से खरा उतरता है। अर्थात् यह श्रीकृष्ण रूप सख्य, वत्सल आदि सभी रसों का आलम्बन एक साथ वनकर प्रत्यक्ष हुआ है और उनकी लीलाएँ सव रसों की उद्दीपन सामग्री से पूर्ण हैं।

२. माधुर्य्याभिव्यक्ति :–

जो निरतिशय मिष्ट हो, जिससे कभी तृप्ति न हो, जिससे कभी अरुचि न हो, मन, प्राण और इंद्रियों को जो इस प्रकार से प्रिय हो, वही माधुर्य है। भक्तिरस साहित्य की दृष्टि से जो लोक के अति निकट हो, जिसमें ऐश्वर्य (अलौकिकता) का सर्वथा अभाव हो, वही माधुर्य कहलाता है। माधुर्य ही रस किंवा आनन्द का प्राणभूत आधार है। काव्य रस जगत में चमत्कार प्राण-आनन्द को रस संज्ञा दी

---

१. रस शब्द के दो अर्थ होते हैं, रस्यते स्वाद्यते) एवं रसयतिं (आस्वादयति) इति , ३. यह सिद्धान्त लोकरस की भूमिका ही सीमित है, काव्य रस तक नहीं। भक्ति रसामृत सिंधु।

गयी है, किंतु भक्ति-रस जंगत में माधुर्य विहीन किसी आनन्द के लिए कोई स्थान नहीं है। जो रतिविभाव और अनुभाव आदि के योग से रस रूप में आस्वादित होती है यह माधुर्य, उस रति को नित्य उद्‌बुद्ध बनाये रखता है। इसी तथ्य को इस प्रकार भी स्पष्ट किया जा सकता है कि वत्सल रस के पात्र और उसकी बाल-लीलाओं में, सख्य रस के विषय और उसकी सख्यलीलाओं में एवं श्रृंगार रस के विषय और उसकी मधुरलीलाओं में एक माधुर्य विशेष ही है, जो हमारे हृद्‌गत रतिभाव को उसके प्रति नित्य उद्‌बुद्ध और उद्दीप्त करके उसकी ओर प्रवहनशील बनाये रखता है।

यह माधुर्य भगवान के अन्य सभी अवतारों की अपेक्षा श्रीकृष्ण अवतार में सबसे अधिक प्रत्यक्ष हुआ है।

३. पूर्व रस की पूर्वाभिव्यक्ति :–

श्रृंगार रस की पूर्णता, संयोग और वियोग अपने इन दो अंगों को लेकर होती है। एक अंगी के दो अंग होते हुए भी यह दोनों अपने पृथक-पृथक क्षेत्र में विशाल रसधारा के रूप में परिदृष्ट हैं। इन दोनों में एक धारा 'संयोग-श्रृंगार-रस-धारा और दूसरी वियोग (विप्रलम्भ) श्रृंगार रसधारा के नाम से अभिसंज्ञात है। संयोग श्रृंगार रस की अनुभूति, संयोग लीलाक्षेत्र में और विप्रलम्भ, श्रृंगार-रस की अनुभूति वियोग, किंवा विरहलीला के क्षेत्र में होती है, दोनों अपने आप में पूर्ण जैसे भी हैं। यही कारण है कि कृष्ण भक्तों में किसी ने सम्भोग श्रृंगार को और किसी ने विप्रलम्भ श्रृंगार को ही लेकर अपने हृदय को रस-आप्लावित किया है।

इस महारासलीला में इन दोनों (अंगों) का एक साथ सम्पूर्ण दर्शन होता है। पूर्वराग से लेकर पूर्णराग तक की प्रत्येक दशा अपने आप में पूर्ण होकर प्रत्यक्ष हुई है। उन सबका सविस्तार विवेचन तो समय और स्थान सापेक्ष है और वह यहाँ पर अनावश्यक जैसा भी है, अतः सांकेतिक शब्दों में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वेणुनाद सुनकर अपने स्वजनों का परित्याग करके अर्द्धरात्रि में एकांतवन में गोपियों का श्रीकृष्ण के पास जाना, श्रीकृष्ण के द्वारा घर लौट जाने की प्रेरणा से उनका दुखित होना, श्रीकृष्ण के द्वारा उनकी स्वीकृति और उनके हृदय में सौभाग्य का गर्वोदय होना, श्रीकृष्ण का अन्तर्धान, गोपियों का विरह विलाप और श्रीकृष्ण का पुनः प्रगट होकर उनके सामने अपने को चिरऋणी स्वीकार करते हुए महारास करना। यह सब लीलाएँ रसाभिव्यक्ति की उपकरण विशेष ही हैं।

श्रृंगार रस को उज्ज्वल रस और रसराज कहा जाता है, किंतु इस रस का

देवता शिव[1] का अरि वह काम है, जिसकी चर्चा भक्त जगत में ही नहीं, लोक के शिष्ट जगतमें भी निन्दनीय मानी जाती है, फलतः अत्यन्त मधुर और अत्यंत प्रिय शृंगार रस की चर्चा तक अश्लील कही जाती है; किंतु, वही काम और वही शृंगार रस श्रीकृष्ण का सर्वस्व बन जाने के कारण–अर्थात् श्रीकृष्णलीला में प्राण-स्थानीय, प्रधान बन जाने के कारण एवं श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व (अपना आलम्बन) बना लेने के कारण वह (शृंगार रस और काम) सब में समाद्रित होगया, उसका रसराजस्व सफल हो गया और वह कृष्णवर्ण से परम 'उज्ज्वल' हो गया।

मधुरमेचक श्रीकृष्ण में शृंगार रस का यह राजस्व पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष हुआ है। इसीलिए तो इन्हें शृंगार रस सर्वस्व[2] और शृंगार रस मूर्ति[3] कहा जाता है। रसराज किंवा रसेश्वर कहा जाता है।

श्रीमद्भागवत को श्रीकृष्ण का वाङ्मय-स्वरूप कहा गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी अपने तिरोधानकाल में श्री उद्धव जी से स्वयं श्रीमुख से कहा है कि मैंने अपने (तेज) को श्रीमद्भागवत ग्रंथ में स्थापित कर दिया है।[4] श्रीमद्भागवत के माहात्म्य वर्णन में इसी तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए इस ग्रंथ को श्रीकृष्ण-आलय न कहकर रस का आलय[5] कहा गया है, क्यों?

उत्तर बहुत अधिक स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीकृष्णलीलाओं में रस के सम्पूर्ण ऐश्वर्य का प्रकाश देखा जाता है और इन रसमयी लीलाओं से निष्पन्न श्रीकृष्ण रूपों में रसेश्वरता पूर्ण रूप से आलोकित होती है।

४. रस (माधुर्य) और ईश्वर (ऐश्वर्यपूर्ण स्वरूप) की एक साथ अभिव्यक्ति :–

वैसे तो इनकी प्रत्येक लीला में ही माधुर्य और ऐश्वर्य का दर्शन साथ-साथ होता है, किंतु इस महारासलीला में तो ये दोनों इतने अधिक रूप में प्रत्यक्ष हुए हैं कि जिन्हें देखकर प्रत्येक विचारक इस असमंजस में पड़ जाता है कि मैं इसे रस क ऐश्वर्य प्रकाश कहूँ, या ईश्वर का रस प्रकाश कहूँ। एक ओर इनके अनन्त रूप धारण अन्तर्धान और पुनः प्रागट्य आदि के द्वारा–'ऐश्वर्य' का, पातिव्रत धर्मोपदेश के द्वारा 'धर्म' का, गोपियों द्वारा इनके स्वरूप

---

[1] कल्याण, [2] शृंगार रस सर्वस्व शिखिपिच्छविभूपितम (श्रीकृष्णकर्णामृत) [3] शृंगार सखिमूर्तिमानमिवमधौंमुग्धौंहरिःक्रीडति ॥ गीतगोविन्द.

[4] स्वकीयंयद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्॥
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवं ॥
—पद्मपुराण.

[5] पिवत भागवतं रसमालयं मुहरहो रसिका भुवि भावुकाः, श्रीमद्भागवते,

कथन में यश का, ललितत्रिभंगवपु के रूप वैभव द्वारा–'श्री' का, पूर्ण अवरुद्ध सौरत-स्थिति के द्वारा 'साज' का और अन्तर्धान के द्वारा 'वैराग्य' का पूर्ण प्रकाश देखा जाता है, तो दूसरी ओर गोपीमंडल में स्वमुख चिर ऋणी होने की स्वीकृति, और तदनुकूल वनकर उन्हें रमाने की प्रक्रियाओं द्वारा पूर्व माधुर्य का प्रकाश पाया जाता है। इस विचित्र सामञ्जस्य-पूर्णलीला वैचित्र्य की अभिव्यक्ति भी एक कारण है, जोकि इन्हें रसेश्वर कहने को वाध्य करता है।

रसेश्वर की इस रासलीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में २९वें अध्याय से ३४वें अध्याय तक है। यह पाँच अध्याय रासपंचाध्यायी के नाम से विख्यात हैं। भागवत वर्णित इस रासलीला का एक रूपांतर हमें जयदेव जी के गीतगोविन्द में भी प्राप्त होता है। भागवत परम्परा की रासलीला शरद-पूर्णिमा में हुई थी और गीत गोविन्द में वर्णित रास वसन्त काल में हुआ था। प्रथम परम्परा के वर्णन में श्रीराधा का नामोल्लेख नहीं है, किंतु दूसरी परम्परा में श्री राधा का स्पष्ट उल्लेख है। सूरदास आदि परवर्ती भक्त कवियों में यह दोनों परम्पराएँ एक-दूसरे से गुंथकर एक हो गयी हैं।

यह रासलीला जैसी मधुरातिमधुर है, वैसी ही अति रहस्यमयी भी है। यह इतनी रहस्यमयी है कि औरों की तो बात ही क्या है, 'परीक्षित' जैसे श्रीकृष्ण-कृपापात्र के हृदय को भी शंकाशील बना देती है। इस रासलीला के पात्र भगवान श्रीकृष्ण और उनकी आत्मा रूपा गोपियां होते हुए भी वह लोक के प्राकृत नायक-नायिका के रूप में दिखायी देते हैं, साथ ही प्राकृत दिखायी देते हुए भी उनसे पूर्ण भगवत्ता और भगवतीत्व चमत्कृत होता है। इस रासलीला में प्रत्यक्ष काम क्रीड़ा का दर्शन होते हुए भी वह काम क्रीड़ा नहीं है और वह कामक्रीड़ा न होने पर भी काम से सर्वथा असम्बन्धित भी नहीं कही जा सकती।

अपनी अत्यंत प्रिय, अत्यंत मधुर, और अत्यंत मूल्यवान् वस्तु का उपभोग एकांत में ही किया जाता है, इस प्राकृतिक नियम की दृष्टि से तो इसकी यह रहस्यात्मकता ही इसकी अति गोप्यता, अति मधुरता और भगवदीय निजभोग्य होने की प्रतीक है। इसकी यह रहस्यमयिता ही तो आज के एक स्थूल द्रष्टा कुतार्किक के लिए एक कामुक की विशुद्ध काम क्रीड़ा बनी हुई है, किंतु गम्भीरतया इसका आलोड़न करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ८ वर्ष की अवस्था में एक साथ अनन्त रमणियों के साथ रमण, एक लीला ही थी, यह कामक्रीड़ा नहीं-प्रत्युत कामविजय लीला ही थी।

काम ने नारद, शिव, ब्रह्मादिकों को भी जीत लिया था, इससे उसका अभिमान बहुत अधिक बढ़ गया था, अब उसने इन सबके स्वामी भगवान श्रीकृष्ण से भी युद्ध करने का निश्चय किया और भगवान श्रीकृष्ण ने भी उसकी चुनौती (चैलेंज) स्वीकार कर ली। काम ने श्रीकृष्ण के अद्भुत प्रभाव को स्मरण कर ब्रजांगनाओं के अंगरूप कांचनमय दुर्ग का आश्रय लिया, उनके प्रधान-प्रधान अवयवों को अपना युद्ध-मंच बनाया। पंचशर और सुमन चाप लिया तथा अपनी अनङ्गी सेना को आगे करके युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। इतने पर भी श्रीकृष्ण ने उसे दुर्बल ही देखा और इसकी उपेक्षा जैसी ही की, क्योंकि दुर्बल शत्रुओं से युद्ध करना सफल और यशस्वी योद्धा अधर्म समझते हैं और वे युद्धारम्भ से पूर्व अपने प्रतिपक्षी को भी सशस्त्र कर दिया करते हैं। राहु जैसा राक्षस भी अपूर्ण चन्द्र पर आक्रमण नहीं करता। फिर युद्धनीतिनिपुण श्रीकृष्ण ने महादेव के कोपानल से दग्ध अनङ्ग को अपने वेणुनाद द्वारा–अपनी अधर-सुधा-सिंचन से उसे तुष्ट पुष्टांग कर उसकी शक्ति सम्वर्धन की। इतना ही नहीं, अमना होते हुए भी आप स्वयं ने भी मन स्वीकार किया, ताकि वह यह न कह सके कि प्रतिद्वंद्वी ने मेरे शरों का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया है।

युद्ध आरम्भ हुआ, भगवान श्रीकृष्ण पर उसका एक भी वार सफल न हो सका। उसके सब बाण कुंठित हो गये। श्रीकृष्ण ने स्वयं ब्रजांगनाओं के वक्षोज, गण्डस्थल और उरु आदि-आदि अंगों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर अनंग को जर्जरांग, वेपथांग और विकलांग कर दिया। इस प्रकार से हम देखते हैं कि यह रासलीला कामलीला नहीं, अपितु काम-विजय लीला है।

रासलीला वर्णन में भगवान श्रीकृष्ण को 'योगेश्वर' कहा गया है। भक्ति भी एक योग है, ज्ञानयोग में वासनाओं के उन्मूलन का प्रयत्न किया जाता है, तो भक्तियोग में वासनाओं का विशोधन करके उनका सदुपयोग किया जाता है। महारासलीला में भक्तियोग का यह सिद्धांत मूर्त्तरूप में प्रत्यक्ष हुआ है। कामवासना अन्य सभी वासनाओं में सबसे अधिक दुर्धर्ष और दुर्जेय है, किंतु इस रासलीला में इस अजेय वासना का भी विशोधन स्पष्ट रूप से दिखायी देता है।

गोपियों की कृष्णोन्मुख वृत्ति का उन्मिषन कामवासना, किंवा कामभाव को लेकर हुआ था, किंतु इनके कामभाव

१–ब्रह्मादि जयसंरूढ़दर्पकन्दर्पदर्पहा
जयति श्रीपतिर्गोपी रासमण्डलमण्डनः ॥
श्री श्रीधरस्वामी

२–निशम्य गीतं तदनङ्गवर्द्धनंप्रजास्त्रियः कृष्ण-
गृहीत मानसाः ॥ १०।२९।४

का विषय, काम से पराजित कोई नश्वर पंचभौतिक शरीरवाला मनुष्य नहीं, प्रत्युत मन्मथ के मन को भी मथनेवाले काम-विजयी साक्षात भगवान ही थे। यहाँ पर यह अविस्मरणीय है कि यह गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण की नित्य अंगसंगिनी हैं, किंतु, जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने "लोकलीलावत् कैवल्यम्" को चरितार्थ करने के लिए हँसना, रोना, पीटना, खाना, पीना, सोना और जगना आदि सब क्रियाएँ स्वीकार की थीं, उसी प्रकार इन गोपियों ने भी इस श्रृंगार रस-लीला का सफल प्रदर्शन करने के लिए यह अभिनय किया था। इसके साथ ही दूसरा उद्देश्य यह भी था कि–

"शुद्ध भगवद् भक्ति की अपेक्षा भय, क्रोध, वैर, स्नेह और काम आदि (लोक के सहज) भावों में तन्मयता अधिक होती है और उस तन्मयता के द्वारा भगवान की प्राप्ति, सहज, सरल और सुनिश्चित होती है।[1] यह प्रमाणित करने के लिए ही यह कृष्णावतार हुआ है", इसे परम सत्य सिद्ध करने के लिए ही गोपियों को इस प्रकार का अभिनय करना पड़ा था, यदि ये ऐसा न करतीं, तो इस अवतार का उद्देश्य ही पूर्ण रूप से सफल न होता। अर्थात् जिस प्रकार क्रोध, भय, वैर और स्नेह आदि भावों के द्वारा श्रीकृष्ण प्राप्ति के प्रमाण मिल जाते हैं,[2] उसी

---

[1] –तस्मात् वैरानुवन्धेन निर्वैरेण भयेनवा॥ स्नेहात्कामेन वा युन्जयात् कथञ्चिन्नेक्षते पृथक ॥२५॥ यथावैरानुवन्धेनमर्त्यस्तन्मयतामियात् ॥ न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ २६ ॥

[2] –कामादद्वेषादभयात्स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरेमनः॥ आवेपतदघंहित्वावहवस्तद्गतिं गताः ॥२९॥ गोप्यः कामाद् भयात् कंसोद्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः॥ सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयंभक्त्यावयं विभोः ॥ ३० ॥ श्रीमद्भागवतेसप्तमस्कन्धे, प्रथम अध्याय ॥

परिवार
सद्वैद्यशाला
जिंचीप
अपचन दूर करते
आयुर्वेदिक फॅक्टरी
ज्वरेग
तापांवर
नांजनगुड.
आठमनटाईन
टॉनिक
सहायक

प्रत्येक शहर के लिए
हम एकही व्यापारी
को अपना स्टाकिस्ट
नियुक्त करते हैं।

नांजनगुड
टुथपावडर

सोल एजेन्ट्स:,
दी युनायटेड कन्सर्न
५४, बन्दर स्ट्रीट,
मद्रास–१.

शाखा–ज्योति स्टोर्स, किंग सर्कल, माटुंगा, बम्बई १९

गुरुकुल कांगड़ी

प्रकार कामभाव से भजन करके श्रीकृष्ण-प्राप्ति का प्रमाण ही न मिलता और तब विधान यह होता कि क्रोध और वैर आदि प्राकृत भावों से तो भगवत प्राप्ति हो सकती है, किंतु प्राकृत कामभाव से नहीं। अस्तु यह तो हुई प्रसंगागत बात, प्रस्तुत विषय तो यह है कि गोपियों ने कामभावावेशित होकर श्रीकृष्ण को आत्म समर्पण किया था, उनसे मधुरतर सम्बन्ध स्थापित किया था, किंतु भगवान के निकट जाते ही—सम्बन्ध स्थापित होते ही वह काम सर्वथा निष्काम हो गया—किसी काम का न रहा। वह जले हुए धान्य बीज की भाँति शक्ति विहीन हो गया। इसे सत्य प्रमाणित करने के लिए ही अपनी स्वीकृति की मुहर जैसे लगाते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं श्रीमुख से कहा! हे गोपयों!

"न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते। भर्जिता कथिताधानाप्रायो बीजाय नेष्यते॥" रासलीला के उपरोक्त विवेचन से तो हमें एक यह तथ्य भी प्राप्त होता है कि यह रासलीला के उपरोक्त हृद्रोग से दुखी-सर्वथा निराश रोगियों के लिए एक अमोघ औषधि और सबसे बड़ा सम्बल है।

आदर्शवादियों का कहना है कि श्रीकृष्ण की इस लीला में जगत को क्या मिला? प्रश्न सुन्दर और समीचीन है, अतः स्वल्प मूल्य होते हुए भी अनुपेक्षणीय है। यदि अत्युक्ति न समझी जाय, तो लेखक की दृष्टि में श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं में यही एक लीला है, जोकि आदर्शपूर्ण है। माखनचोरी, गोचारण और मृत्तिकाभक्षण आदि लीला तो वास्तव में लीलामात्र ही हैं। देखना केवल यह है कि इस लीला में प्रमुख पात्र कौन है। इस लीला में प्रमुख पात्र गोपी हैं, जिन्होंने भगवान के लिए आत्म-समर्पण करने का चरम आदर्श उपस्थित किया है। जैसा कि नल दमयन्ती नाटक में प्रधान पात्र दमयन्ती और अभिज्ञान शाकुन्तलमें शकुन्तला है। यदि थोड़ी देर के लिए श्रीकृष्ण को ही प्रधान पात्र मान लिया जाय, तो एकांत वन में अर्धरात्रि के समय अनुकूल प्रमदाओं के साथ रमण करके भी अवरुद्ध सौरत बने रहना आदर्श नहीं है? किंतु सच बात तो यह है कि भगवान की इन लीलाओं में और विशेषतया इस रास-लीला में आदर्श ढूंढ़ना ही अन्याय है; अपराध जैसा है। क्योंकि यह लीलाएँ आदर्श के लिए नहीं की गयी थीं। लीला के लिए ही की गयी थीं। 'आदर्श' तो हमें भगवान श्रीराम के चरित्र से लेना चाहिए, जो इसी उद्देश्य से किये गये थे। भगवान श्रीकृष्ण की यह रासलीला तो इनकी अन्य लीलाओं में भी अति गोप्य, अति गोप्यतम और अति गोप्यतर हैं, तभी तो सब से छिपकर और सब से छिपाकर की गयी थी। आदर्श तो सबके सामने उपस्थित किया जाता है। फिरभी यह सब प्रकार से आदर्श पूर्ण है, यही तो इसकी रहस्यमयिता है और इसीलिए तो यह रहस्यातिरहस्य रसेश्वर की रासलीला कही जाती है।

★

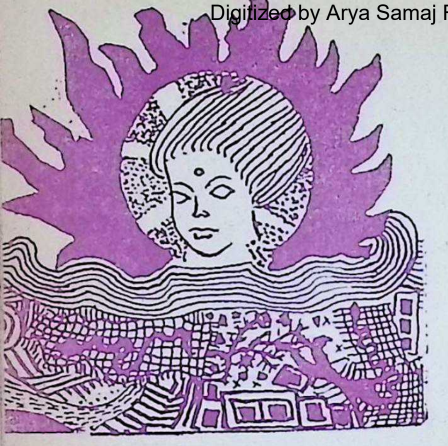

प्रकाश परिमल

●

निष्काम कामी पूर्ण पुरुष की अवतारणा

रजस् के रक्तिम आयाम से उतर कर
तमिस्रा के महोदधि में
एक एक करके डूबती
घनीभूत समकोणीय निष्ठा धाराओं का
ऊहापोही विलीनीकरण–
परमाणु की विस्फोटित शक्ति से भी गहन
लालिमा का यह भारी वेग
मर्यादित-युग सागर को असह्य–

अन्धकार की
अनाचारी उच्छृंखल वैयक्तिकता के
'पैंच' के 'पैंचों' का
शून्य के फलक में
अनियोजित थोपा जाना–

और उनके कण्ठावरोधी तत्त्व से बढ़ती
जनचेतना की
अनभिव्यक्त घुटन–

वृद्धिंगत प्रलयंकारी श्याम धनों के यूथों का
व्यक्ति स्वातन्त्र्यकी उन्नतोभिमुख
शैल शृंखलाओं को लील जाना-

अपशकुन की एक अनहोनी रेख का
अज्ञात शून्य से भूग्रह की ओर निरन्तर अग्रसरण–...

और दूसरी ओर
हिरण्यगर्भा वसुन्धरा की
निर्बाध क्षमताके प्रति आस्थालु
चित्-संस्कृति के आधार स्तम्भों का
पुनः किसी नृसिंह का सा विकल्प लिए जीना
किसी–अरूप अनागत की अवतारणा में आशारत
इस दुःसह अपशक्ति के विरुद्ध भी
दो एक क्षण और टिके रहने को समाकुल
उनका धैर्य

तदात्मानं सृजाम्यहम् के से
अखण्ड विश्वासीकी बाट जोहता संस्थित–
किन्तु ये तो किसी महाभावीकी
सहज् पूर्वानुमतियां थीं
प्रकृतिने जिन्हें
रहस्यमय ढंग से ओढ़ लिया था
कि कोटि सूर्यों की अखण्ड ज्योति से उद्दीप्त
उसके गर्भस्थ धर्मशिशु की अवतारणा
विधान का कोई
अविश्वसनीय रूपक प्रस्तुत न करे

इस हेतु
गरजते बरसते
स्याह-नीले धारा प्रवाह का
कृष्णरात्रि के दूसरे प्रहर में
कारामग्न अन्धघाता
अमिय ज्योति के एक मन्द मधु प्रकाश से
क्षणभर को जगमग हो उठी–
अवतार की प्रथम 'ॐ आँ' का श्रवण-सुख
मां जननी ने लिया
और संत्रस्त विश्व के शून्य को–
महत्स्वर की प्रथम थपकी मिली–
लो चिन्मय रहस् संसृति के
महापथ का कर्म पथी पूर्ण लीला पुरुष–
गीता के निष्काम कर्म का
मौलिक उद्गाता (परित्राणाय साधूनाम्
विनाशाय च दुष्कृताम्)
अवतरण कर चुका था।

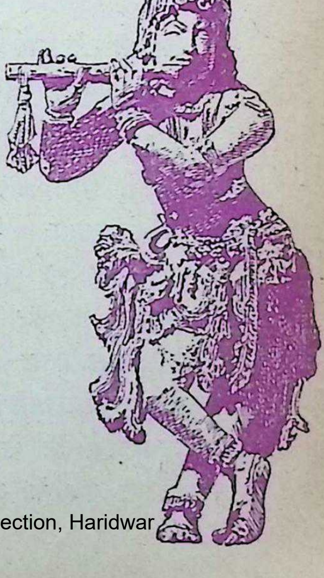

लावण्यप्रभा राय

श्री भगवान की चिर-बिरहिन आत्मांशिनी : श्री राधा

...प्राण-वल्लभ सदा के लिए वृन्दावन छोड़कर मथुरा जा रहे थे। राधा रानी ने शोक से, भाषाहीन दुख से विकल होकर कृष्ण के दोनों हाथों को पकड़ कर अपने सिर पर रखा। उससे एक शब्द भी कहा नहीं गया। अश्रु-सजल आँखें उठा कर मानों वह यही कहना चाहती थी—'मेरा सिर छू कर कहो, तुम जाओगे नहीं!' पर उनका जाना निश्चित था...और राधा के हृदय-देवता सदा-सदा के लिए उसे छोड़ कर चले गये...। और चिरन्तन् विछोह की यह अग्नि-शैया ही, अनन्त मिलन की चिर नवीन सोहाग-सेज बन गयी।...

"सखि, पीरिति आखर तीन,
जनम अवधि भाबि निरवधि,
ना जानि राति कि दिन—"

महाभावमयी कृष्ण प्रेमोन्मादिनी राधा की प्रेम विह्वलता के विरह-मिलन, आँसू व हँसी से एक ऐसा अपूर्व मणिहार रचा गया है, जिसकी तुलना संसार-भर के प्रेम-साहित्य में अद्वितीय है। प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन के लिए, उनके श्रीअंग के स्पर्श के लिए, उनके मोहन रूप के अपूर्व परिमल के घ्राण के लिए, मधुपान के लिए उत्सुक अलि के समान राधा का चित्त निरन्तर व्याकुल है।

पूर्वराग के प्रथम आभास के समय में राधा उन्मादिनी है। मेघ के भीतर विलसित सौदामिनी के चकित विलास के समान राधा को कृष्ण का दर्शन मिला था, जिससे उसके मन की अकुलाहट मिटी नहीं, उसकी अमित प्यास बुझी नहीं। एक वार देखा—वह भी लाज के मारे अच्छी तरह देख नहीं पायी : फिर कभी

ल पायेगी या नहीं, इसी आकुलता से राधा व्याकुल है। सखी से कहती है–

सजनि, भाल करि पेरवन न भेल।
मेघमाला संगे तड़ितलता जनु
हृदये शेल देइ गेल।

कोमल हृदय के मर्मस्थल में इस शेल की पीड़ा को छिपा कर राधा असहनीय व्यथा से कातर है। पर अबला नारी राधा किससे अपने मन की पीड़ कहेगी? कौन उसे उपाय बतायेगा? व्याकुल हो कर राधा सखी से पूछती है –

पीरिति पीरिति, सब जना कहे,
पीरिति केमन रीत !'
रसेर पीरिति, रसेर स्वरूप,
के ना करे परतीत !
सखि, कि बुके दारुण व्यथा !
से देशे जाइब जे देशे ना सुनि
पाप पीरतिर कथा।
सखि, के बले पीरिति भाल ?
हासिते हासिते पीरिति करिया
काँदिते जनम गेल॥

विरहिणी राधा के रोने का कोई ओर छोर ही नहीं था। कृष्ण प्रेम के कारण उसकी आँखों से निरन्तर सावन-भादों की सी झरी बहती रहती थी। फिर भी उसके मन की आग नहीं बुझती थी: वह कहती

हँस हँस कर प्यार किया था
अब रोकर जीवन बिताना !

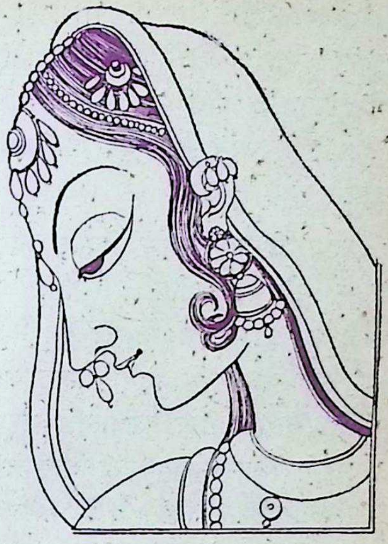

श्रीराधा : किशनगढ़ शैली

सखि, सुख की आस से घर बसाया था,
उसमें लग गयी आग
अमृत सागर में चाहा नहाना
पर अमृत हुआ विषकुंड
सखि, बलिहारी भाग्य का लेख !

कृष्णप्रेम से राधा उन्मादिनी है। इस दिव्य उन्माद-आवेश में राधा अपना घन केशपाश खोल कर उसमें अपना वदन कमल छिपा लेती है– कृष्ण को कृष्ण का ही नीलांजनस्निग्ध रूप मान कर राधा आनन्द से विभोर हो जाती है। प्रेमावेश की इस चरम परम विह्वलता में है कितना कितना अनुनय-विनय, मान-अभिमान, मधुमय क्रोध, कातर अश्रुप्रवाह, मनोवेदना का निवेदन।

अरुणोदय में विकसित प्रभात कमल के समान राधा के दो नयन कमल रजनी की शबनम के बोझ से मानों निमीलित हो जाते हैं– कोर में से बूंद-बूंद वेदनाश्रु टपकते रहते हैं।

राधा की यह चरम वेदना, विरह-व्यथा की असहनीय स्थिति, यह कृष्ण की ही लीला माधुरी है। वेदना का भास जानने के लिए, विरह व्यथा की अपरिसीम पीड़ा का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण ने कैसा-कैसा उपाय किया था। विरह से राधा को पगली बना कर, उसी के भीतर वेदना–रसमाधुर्य का आस्वादन करना ही था कृष्ण का उद्देश्य।

वृन्दावन-लीला के अन्त में श्रीकृष्ण मथुरा चले गये थे। उस समय राधा व गोपियों की प्रेमोन्मत्त कातरता कठोर-हृदय को भी पिघलाने वाली थी। विरहिनी राधा का रूप इस कातर दशा में भी विकसित कमल के समान नयनमनोहारी था। कुंज की पुष्पिता-ब्रतती को देख कर राधा के मन में कृष्ण-मिलन-सुख की स्मृति उमड़ पड़ती है। लीलाकदम्ब के नीचे गोपियों के साथ वृन्दावनचन्द्र नभोमंडल के तारापति राधानाथ के समान विराजमान होते थे। एक दिन चम्पा पुष्प देख कर कृष्ण को चम्पक वरणी राधारानी याद आयी–वह बेहोश हो कर वहीं धूल में पड़े रहे। दोपहर के समय संकेत बाँसुरी की धुन न सुनकर अधीर आकुल राधा सब कामकाज छोड़-कर भाग आयी। आकर क्या देखती है? –नीलमणि धूल पर पड़े हुए थे। राधा ने उन्हें उठा कर परम यतन से हृदय पर रखा। उसके स्पर्श से कृष्ण का मोह दूर हो गया। उन्होंने आँख खोल कर राधा को देखा और 'राधा, राधा' पुकारते हुए प्रेम से कातर उच्छ्वसित हो गये।

कृष्णचन्द्र से मिलन का आश्वासन पाकर राधा कहती है– "सखी, मुझे जाना होगा : 'राधा–राधा, धुन में जब मोहन की मुरली–मधुर बज उठेगी, तब मुझे जाना होगा : बन हो, जंगल हो, काँटें हों, चाहे कीचड़ हो, मुझे तो जाना ही पड़ेगा।"

"पर राजनन्दिनी, काँटों पर, कीचड़ पर चलोगी कैसे? सुकोमल तुम्हारे चरण-कमल व्यथित न हो जायँगे?"

राधा मुस्करा कर सखी से भेद बता देती है– "सखी, सुनो–

"कंटक गाड़ि कमलसम पदतल मंजीर
चीरहि झाँपि,
गागरि वारि-ढारि करि पिछल चलत हि
अंगुली चापि।
माधव, तुआ अभिसारकी लागि!

उन्मादिनी राधिका की कृष्णप्रेम-विह्वलता में कभी-कभी मरीचिका के समान भ्रम भी उत्पन्न हो जाता था। स्वप्न में हृदयवल्लभ के साथ मिलन की सुखस्मृति से राधा विकल है: आनन्द से झूम-झूम कर वह कहती है –

आजु रजनी हम भाग्ये पोहायनु, पेखनु
पिया मुख चन्दा।
जीवन यौवन सफल करि माननु, दश दिश
भेल निरदन्दा॥
आजु मझु गेह, गेह करि माननु, आजु
मझु देह भेल देहा।
आजु बिहि मोहे अनुकूल होयल, टूटल
सबहु सन्देहा॥

भ्रम हो चाहे माया मोह की मरीचिका क्यों न हो, राधा का विरह शोकातुर हृदय इसी कल्पित मिलन से ही आत्महारा हो जाता है। आनन्द से गद्गद होकर राधा कहती है–

कि कहब रे सखि आनन्द ओर
चिरदिन माधव मन्दिरे मोर!

हे मोर वांछित वल्लभ, तुम आओ: मेरे मनमन्दिर में तुम सदा विराजमान रहो। तुम नहीं रहते तभी तो मेरे चारों ओर इतना दुख, इतनी ज्वाला, इतनी व्यथा, इतनी अपरिसीम यन्त्रणा। तुम रहो नाथ, मैं तुम्हें देखूँ–मेरा सब दुख, मन प्यास मिट जायगी।"

आलोकछाया की लीला के समान शीघ्र ही राधा का मोह दूर हो जाता–मिलन मरीचिका से उद्भ्रान्त उसका चित्त निराशा के घनघोर अन्धकार में डूब कर मरना चाहता है। परन्तु मर कर भी क्या उसे शान्ति मिलेगी? अपने प्राणप्रिय, प्रियतम वल्लभ को वह किसे दे जायेगी? उसके न रहने पर उनके मन की भूख प्यास कौन मिटायेगी? विकल हो कर राधा विलाप करती है –

मरिब मरिब सखि, निश्चय मरिब
कानु हेन गुननिधि हाय कारे दिये जाब?

कुछ भी हो मरना तो राधा के लिए अनिवार्य है ही। वह सखियों से विनती कर कहती है–

"तुम सब सखियों, मेरे साथ रहना: मरते समय मेरे अंग पर कृष्ण नाम लिख देना। मेरे प्राण की सखी ललिते, मेरे कान में कृष्ण नाम सुनाना। मुझे जलाना नहीं सखि– क्योंकि

कबहुं सो पिया यदि आसे वृन्दावने।
परान पावब हम पिया दरशने॥"

प्राणवल्लभ को वृन्दावन छोड़ कर मथुरा जाना है। राधारानी ने शोक से, भाषाहीन दुख से विकल हो कर कृष्ण के दोनों हाथों को पकड़ कर अपने सिर पर रखा। उससे एक शब्द भी कहा नहीं गया– अश्रुसजल आँखें उठा कर

मानो वह यही कहना चाहती थी– "मेरा सिर छू कर कहो, तुम जाओगे नहीं।"

अन्तर्यामी कृष्ण ने भी मन ही मन उसके मन का अभिप्राय जान कर नीरव वचन दिया : राधा आश्वस्त हो गयी कि यह चिर विदाय नहीं है। विरह का बादल छट जायगा, कृष्णचंद्र का फिर दर्शन होगा, नयन सार्थक हो जायँगे।

कृष्ण चले गये : दिन पर पर दिन बीतने लगे– कृष्ण लौट कर नहीं आये। राधा की मूर्ति शीर्ण, कान्ति मलिन होने लगी। सखियाँ उसे आश्वासन देती रहती हैं– पर दुख से मृतप्राय राधा कहती है–" लता सूख जाने पर मधुऋतु के आने से क्या फायदा?

सखि, हिमकर-किरणे नलिनी यदि जारब,
कि करब माधवीमासे !
अंकुर तपनतापे यदि जारब
कि करब वारिदमेहे ?
हरि हरि को इह दैव दुराशा !
सिन्धु निकटे यदि कंठ सुखायब
को दूर करब पियासा !

कृष्णविरह से राधा की मृत्युयन्त्रणा भी अनुराग माधुर्य से अनुपम है। विरह-व्यथा कितनी भी मर्मस्पर्शी क्यों न हो, वह मृत्यु की विभीषिका को दूर कर देती है, क्योंकि राधा का पूर्ण विश्वास है कि–

श्रवणहुं श्यामनाम करुं गान,
जयइते निकसऊ कठिन परान।

कृष्ण के विरह से राधा प्राणविसर्जन कर रही है– वृन्दा से सहा नहीं गया। वह बोली– "वचन देकर चला गया, आया नहीं। उस दुष्ट को मैं बाँध कर लाती हूँ–वह जायगा कहाँ?"

मुमूर्षु राधा ने व्याकुल हो कर कहा– "नहीं सखी, ऐसा न करो : उन्हें बाँधो नहीं : उलाहना भी मत दो। देखो उनके मन में दुख न देना सखी। तुम उनसे भला बुरा कहोगी, उनका मुख मलिन हो जाएगा–इस कल्पना से भी मेरा दिल फट जाता है।"

प्राण निकलते समय भी राधा के मन में कृष्णचिन्ता प्रबल है। कृष्ण उसे कितना–कितना प्यार करते हैं। राधा के हाथ में अपनी मुरली दे कर राधा के चरणकमल की धूल के स्पर्श के लिए वह कैसे व्याकुल हो जाते थे। राधा के मुख पर दिव्य हँसी देखने के लिए कृष्ण के नयन चकोर प्यासे थे–बारबार कहते थे, "हँसो राधे, फिर हँसो : मैं जहाँ भी, जितनी दूर भी रहता हूँ, तुम्हारे चाँद-मुख की हँसी भूल नहीं पाता।"

राधा की याद से ही कृष्ण चम्पकवर्ण पीतवास पहनते हैं। मिलन की घड़ी के अन्त में 'जाऊँ या न जाऊँ' की द्विधा में पड़कर एक कदम आगे बढ़कर लौट आते थे। अपने हाथ से सोने की कंघी उठा कर परम प्यार व यतन से प्रियतमा

र्णपुतली की कवरी बनाते थे– उसमें लती की माला पहना देते थे। अपने हाथों से सजा कर, प्रियतमा के चन्द्र-दन को दोनों हाथों में भर कर निहारते – अपलक आँखों के आँसू से कृष्णचन्द्र का चन्द्रवदन भीग जाता था।

इतना प्यार करते थे– अब वह अपनी राधा को भूल कर इतने निर्मम कैसे हो गये? सखी जा रही थी कृष्ण को बुला लाने के लिए पर राधा जानती थी– कृष्ण के आने से पहले ही उसका प्राण निकल जायगा। वह कृष्ण को देख नहीं पायेगी। वह सखी से कातर विनती कर कहती है– "सखि मेरी, कृष्णचन्द्र से कहना एक बार, वह जरूर वृन्दावन आवें: निकुंज में मैं अपना मणिहार छोड़ जा रही हूँ– वह एक बार आकर उसे उठा लें, गले में पहनें। बड़े यतन से मैंने मल्लिका के पौधे लगाये थे– फूल खिलेंगे, मैं उन फूलों से माला बना कर प्रियतम के गले में पहनाऊँगी, पर मेरी सब आशा दूर हो गयी– कृष्ण नहीं आये। अब तुम लोग इन फूलों से माला बना कर राधा के नाम से उन्हें पहना देना। मेरे तोते–मेरी मैना को देखना। प्रियतम जब आयेंगे, इन्हीं तोते–मैना के मुख से सब बात सुनेंगे। तुम सब कहती हो 'कान्हा आवेंगे, पर कब?'

के कह आअब माधव!
बिरह पयोधि पार किए पाअब, मझु
मने नहीं पतियाइ।
एखन तखन करि दिवस गमाएब, दिवस
दिवस करि मासा,
मास मास करि बरस गवाँयल, छोड़लुँ
जीअनक आशा।"

राधा की प्रेम-साधना मिलनानन्द से विरहव्यथा के माध्यम से ही अधिक सार्थक है। इस साधना का एक मात्र नैवेद्य है, अविरल आँसू की धार व मन की आकृति, जो रो-रो कर श्यामसुन्दर के चरणों की शरण माँगती है। यह प्रेम नित्य नवीन, गभीर आध्यात्मिक द्योतना से भरपूर तथा माधुर्य रस का अपार पारावार है। तभी राधा कहती है–

"सखि, कि पूछसि अनुभव मोय,
सोही पीरति अनुराग बाखानिते,
तिले तिले नूतन होय!"

इस प्रेम का कणमात्र पाकर जब मनुष्य का जीवन धन्य व सार्थक होता है, महाभावमयी, कृष्णचन्द्र की ह्लादिनी, मूर्तिमती प्रेमस्वरूपा राधा के लिए तब क्या कहना? राधा ही एकमात्र कृष्ण-वल्लभा है, जो कह सकती है–

जनम अबधि हम रूप नेहारल,
नयन न तिरपित भेल,
लाख लाख युग हिये हिय रखल,
तबु हिय जुड़न न गेल।

['माथुर'—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा का विरहवर्णन ही है 'माथुरलीला' जो कि सब लीलाओं में महाकरुण रस के कारण श्रेष्ठ है।]

श्रीहरि

चिर कुँवारी राधा के चिर कुमार बालम

...अब भी राधा सृष्टि के प्राण-प्राण में लीन है। कृष्ण के कर्षण से उसके चरण उठते चलते हैं, नूपुर बज उठते हैं, अनन्त दूरियाँ उसके चरण-चिन्हों को चन्दन की भाँति आलेपन करती हैं। समय ठहर जाता है—केवल राधा चलती रहती है—चिर कुँवारी राधा अपने चिर कुमार बालम का वरण करने की विकलता लिए हुए: और कृष्ण उसे खींच कर स्वयम् उसकी ओर खिंचते चले जाते हैं।

तन्मयता नाम की समर्पणमयी राधा युग-युगान्तर से अपने प्राण-वल्लभ श्रीकृष्ण के लिए बावली बनी वन-वन भटक रही है। उसकी पुकार प्राणिमात्र की आत्मा की चिरन्तन आकुलता के स्वरों में आज भी गूंज रही है। उसकी कसकभरी वेदना प्रत्येक प्रेमी हृदय की नाना मधुर कोमल भावनाओं के आकाश में विद्युत की भाँति कौंधती है। वह ब्रजभूमि की किशोरी कुमारिका व्यक्ति नहीं, जोकि सीमित है, वह व्यक्तित्व है जोकि असीम है। राधा एक तत्व का नाम है जो प्रीति, भक्ति, अनुरक्ति और चरम श्री-शांति का पर्याय है।

बहुत-बहुत कुछ जान-सुन रखा था गोकुल के साँवरे के बारे में, और मन ही मन खिंचती चली जा रही थी वृषभानुजा किशोरी, उसीकी ओर, किंतु दर्शन नहीं हुए थे। अचानक दर्शन हुए तो रूप-माधुरी देखकर वह ठगी-सी रह गयी—अभिनव जलधर के समान सुन्दर शरीर, सौदामिनी की रेखा के समान पीताम्बर, श्यामलवर्ण, कुञ्चितकेश, जैसे स्वयं मदन ने काजर में शरीर सज्जित कर लिया हो—

'अभिनव जलधर सुन्दर देह।
पीत वसन पर दामिनि रेह॥
सामर झामर कुटलहि केश।
काजरे साजल मदन सुवेश॥'

(विद्यापति)

और यह रूप राधिका के हृदय में ऐसा गड़ा कि तिरछे होकर अड़ गया। वह किसी प्रकार हटाया नहीं जा सकता। फिर यह राधिका को हो क्या गया? अंचल-चंचल रहने लगा, सम्हलता ही नहीं, गहने खिसकने लगे, रह-रहकर चौंकने लगी–

'सदाइ चंचल वसन अञ्चल संवरण
नाहि करे।
वसि थाकि थाकि उठये चमकि भूषण
खसिये पड़े॥'
(चण्डीदास)

एक ही दण्ड में सौ बार घर से बाहर और भीतर, मन उचटा-उचटा, कदम्ब वन की ओर देखकर दीर्घ निःश्वास निकलने लगे–

'घरेर बहिरे दण्डे शतवार तिलेतिले
आसे याय।
मन उचाटन निश्वास सघन कदम्ब
कानने चाय॥'
(चण्डीदास)

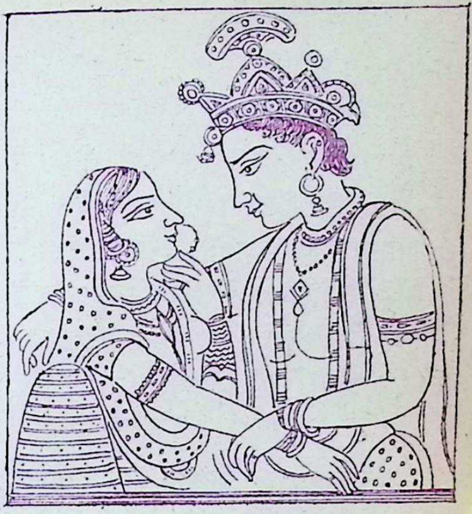
राधा-माधव : पहाड़ी शैली

हर साँवली चीज़ उसके लिए खास मानी रखती है। बादलों में नयन अटके रह जाते हैं, नाचते मोरों की नृत्य भंगिमाओं और गतियों में वह स्वयं समा जाती है। अपने ही केशों की श्यामता में उसे न जाने कौन-सी निधि मिल जाती है। किंतु, यह अपूर्व एकांतिक सूनापन, हथेली पर रखे कपोल, निराहार रहना, श्यामल वसन पहनना, किसने बदल कर उसे ऐसा रच दिया है।

अब तो श्याम के संग-संग फिरे बिना चैन नहीं। छाया की भाँति न रहे तो रहे कैसे। छाया अँधेरे में साथ छोड़ देती है, किन्तु राधा कृष्ण को पलभर भी कैसे छोड़ सकती है। वह मन ही मन अपने मानस-निवासी श्री श्याम से कहती है–तुम्हीं साक्षी हो, मैं तुम्हारे सिवा और किसी को नहीं जानती। माँ-बाप तो कुल-मर्यादा का ही ध्यान रख सकते हैं, वे तुम्हें क्या जानें–

'राधा विनय करति मन ही मन
सुनहु श्याम अन्तर के यामी।

मातु-पिता कुल-कानिहि मानत
तुम्हहि न जानत हैं जग-स्वामी ।।'
(सूरदास)

राधा अनन्य भाव से अपने आराध्य के प्रति समर्पित रही और कभी कोई प्रतिदान न चाहा, न माँगा। केवल यही कामना रही कि प्राणेश्वर सदा प्रसन्न रहें– वह अपने देवता के किसी काम आसके। वह वियोगिनी मौन, शांत और गंभीर है। कैशोर्य की चंचलता और मुखरता कैशोर्य के साथ ही चली गयी।

राधा ने अपने प्रियतम की मूर्ति कल्पित कर तन्मयता के आवेश में उससे वातें कीं, हँसी, रोयी, विलपती-कलपती रही और आनन्द-विभोर भी होती रही। वह हर कदम पर अपने माधव से कहती– मैं तुम्हारे चरणों पर पड़ी हूँ, तुम्हारे मुख मोड़ लेने पर यह सुधा-निधि चन्द्रमा भी शरीर को जलाता-सा है–

ध्यान लयेन पुरः परिकल्प्य भवन्त-
मती व दुरापम।
विलपति हसति विषीदति रोदिति
चञ्चति मुञ्चति तापम्।
प्रतिपदमपि निगदति माधव तव चरणे
पतिताहम्।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि
तनुते तनुदाहम्।
(जयदेव)

फिर भी राधा स्वयं को अधूरी नहीं समझती क्योंकि उसके प्राणेश्वर उसीमें रमे हुए हैं। वह निरविरहिणी होकर भी चिरमिलनमयी है। वह आकुल विकलता से चलकर बेसुध तन्मयता तक पूर्णत्व प्राप्त करती है। वह अनुभूति की प्रक्रिया और स्थिति एक साथ है क्योंकि अनुभूति ही राधा है।

राधिक का आत्म-समर्पण अप्रतिम है। उसने कभी श्रीकृष्ण पर एकाधिकार नहीं चाहा। वह परिणय नहीं, प्रणय चाहती थी इसीलिए वह परिणीता न होकर प्रणयिनी रही। वह अपने प्रभु की तृप्ति की आकांक्षिणी है। वह अपने प्राण-वल्लभ की सखी, सेविका, गुरु और वल्लभा एक साथ रही। यद्यपि श्रीकृष्ण से पलभर भी दूर रह कर उसके प्राण निकलने लगते थे फिर भी वह केवल विलास नहीं चाहती थी। ऐसा नहीं कि उसने स्पर्श-सुख जाना नहीं था। उसने प्रियतम के स्पर्श से अपना अंग-अंग जुड़ाया था, किंतु आराधिका राधिका विरह और मिलन से परे उस बिन्दु पर थी जहाँ अंतर की सभी वृत्तियां लीन हो जाती हैं, जहाँ विरह विश्रांत होकर सो जाता है और मिलन तरल होकर वह जाता है। राधा कृष्णमय हो जाती है और कृष्ण राधामय। इस प्रकार राधा और कृष्ण मिलकर एक सम्पूर्णता और समग्रता को स्वरूप देते हैं–अलग-अलग वे दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं।

यदि श्रीकृष्ण परमप्रभु हैं तो राधा नु की ह्लादिनी शक्ति है जिसका रण कण-कण में क्षण-अनुक्षण क्रिया-ल है और जिससे सृष्टि प्राणमयी है। एक ऐसी अजस्र-धारा है जो सभी की न-शिराओं में संवेग प्रवहमान है। ना कोई अस्तित्व नहीं, जिसमें राधा और कृष्ण एक साथ नहीं। उनका विरह, उनका मिलन, उनकी आकुलता, उनकी मयता, उनकी वेदना, उनका गीत, उनका सुख-दुःख, उनकी दूरी-निकटता सब क साथ, एक-एक आत्मा के चेतना-नुओं में बँधा हुआ है। आज भी, अब भी ण-अनुक्षण राधा कुहुकती है और श्रीकृष्ण की मुरली के सब स्वर मौन हो जाते हैं और जब मुरलिका बज उठती है तब राधा के नूपुर आपसे आप झनझना उठते हैं।

आग दोनों तरफ बराबर लगी हुई है। श्रीकृष्ण राधा से कम विकल नहीं हैं। वे भी वारम्बार दीर्घ श्वास लेते हैं, त्सुक होकर चतुर्दिक देखते हैं, कभी ज से वाहर निकलते और कभी उसीके भीतर चले जाते हैं, वे गुनगुनाते भी हैं, किन्तु विरह-दग्ध होते हैं। एक बार शय्या रचते हैं और फिर व्यग्रभाव से सब ओर देखते हैं—राधा जैसी कान्ता के प्रियतम श्रीकृष्ण विरह-व्याधियों से क्लांत हो उठते हैं—

विकिरति मुहुः श्वासान्नासाः पुरो-
मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्ज़न् मुहुर्बहु
ताम्यति।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव
वर्तते॥
(जयदेव)

वास्तव में राधा और कृष्ण का पारस्परिक प्रेम ऐसा है कि वैसा प्रेम न पहले कभी देखा गया, न सुना गया—एकके प्राण दूसरे के प्राणों से पूर्णरूपेण बँध गये हैं। दोनों ही दोनों की गोद में विछुड़ जाने की आशंका से रो रहे हैं और एक क्षण भी न देख पाने पर जैसे मर जाते हैं—

एमन पिरीति कभु देखि नाइ शुनि
पराणे पराणे बाँधा आपनि आपनि
दुहुँ कोड़े दुहुँ काँदे विच्छेद भाविया
तिल आध न देखिले यायये मरिया।
(चण्डीदास)

और यह प्रीति आज भी अविकल, अविराम यथावत् चली जा रही है। प्रत्येक जड़-चेतन, चराचर में पल-अनुपल राधा कसकती है तो वहीं के वहीं विराजमान श्रीकृष्ण थरथरा उठते हैं और विह्वल श्रीकृष्ण पुकारते हैं तो राधा बेतहाश भागती है उनकी ओर। आज भी यह कण-कण का सत्य है, हमेशा यह रहा है और हमेशा यह ऐसे ही बना रहेगा। जब-

जब राधा प्यासेगी, काम्य काम-मोहन के होंठ सूख-सूख जाएँगे, जब-जब मोहन की मग्न मुरलिका स्वर भर-भर उनके आवेशों को प्रेषित करेगी तब-तब राधा सिहर-सिहर उठेगी।

राम जाने यह कैसी प्रीति है कि प्रियतम की उपस्थिति में भी विरह की अनुभूति होती है—यह प्रेम-वैचित्य प्रेमोत्कर्ष का चरम निदर्शन है। मिलकर भी राधिका जैसे अपने प्राणेश्वर से विछुड़ी की विछुड़ी है—

राधेहि मिलेहु प्रतीति न आवति।
यदपि नाथ विधुवदन विलोकति दरसन
को सुख पावति।
भरि भरि लोचन रूप परम निधि
उर में आनि दुरावति।
विरह-विकल मति दृष्टि दुहूँ दिसि
सचि सरधा ज्यों धावति।
चितवत चकित रहति चित अन्तर नैन
निमेष न लावति।
सपनों आहिकि सत्य ईश तउ बुद्धि
वितर्क बनावति।
कबहुँक करति विचार कौन हौं को
हरि केहि यह भावति।
सूर प्रेम की बात अटपटी मन
तरंग उपजावति।
(सूरदास)

यह मिलन की बिछुड़नमयी मानस प्रक्रिया अद्भुत है। राधा के प्रेम का जादू रुक्मिणी जैसी परिणीता पत्नी पर भी पड़े बिना नहीं रहा। वह ऐसी प्रणय-पुत्तलिका को देखने के लिए अति उत्सुक हो उठी, तो प्राण-धन श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि वे राधा के दर्शन कराएँ और उन्होंने राधा को दिखाकर कहा—'वह देखो जुवतिन में ठाढ़ी नील वसन तन गोरी।'

कौन कहता है कि राधा किसी की परिणीता है! परिणय तो मन का होता है और राधा का मन श्रीकृष्ण का है—राधा, जो आपाद मस्तक मन ही मन है, वह तन कहाँ है! राधा तो कहीं से देह नहीं है, मात्र मन है, आत्यन्तिक मन, चरम मन, सम्पूर्ण मन, निरन्तर मन, चिरन्तन मन। वह अपने देवता से मिलकर भी विरहिणी रहती है, इसी लिए वह चिरकुमारिका है। वह कभी रीती नहीं, लुटी नहीं, लुटकर भी नहीं लुटी, वह अपने आप में कभी कम नहीं हुई। वह सम्पूर्ण है, सम्पूर्णतर होती गयी है क्योंकि वह अपने अखिलेश्वर की केलि-सखी है।

कौन बताये कि वह माधव की कौन है! उनकी सहचरी, सहयात्रिणी, लीला-बान्धनी, सृजन-संगिनी, प्रणयिनी, श्रेयसी अथवा क्या नहीं है राधा! राधा धरित्री है तो नीलगात श्रीकृष्ण उस पर छाये हुए नील गगन की भाँति हैं। राधा वह विरामदायिनी वेला है

में युग-युगान्तर का भार झेलते विश्रांत विश्रांत विश्वेश विराम पाते गोवर्द्धन का भार धारण करनेवाली ती में वही तो समायी हुई है जो के करोड़वे टुकड़े में भी न थकती है, उनसे विलग होती है। समूचे दावानल धधकती अग्नि-शिखाएँ कृष्ण के से प्रविष्ट हो उनके अन्तर में छिपी धा नाम की परम शीतल हिमांशिनी में हो जाती हैं। कालिय को बाँधकर ष्टि की विकलता को आश्वस्त करने की क्ति के मूल में यह ब्रजवाला नहीं तो र कौन है? महाभारत से थके और ह्वल-विकल श्रीकृष्ण को बाँहों में लेकर पने अमृत-स्पर्शों से स्फूर्त एवं पुनर्नवीन रथी को और सशक्त बना देने वाली वह मांशिनी नहीं तो और कौन है?

श्रीकृष्ण की एकमात्र इच्छा, परम-रम संकल्प एवं लीला-शक्ति-स्वरूपा धा का वरण श्रीकृष्ण स्वयं भी कहाँ कर के। वह तो आज भी अपने परम काम्य न-मोहन को अपने ही आँचल में दुबकाए, रह-भ्रम में उन्हें खोजती हुई वन-तर में अविराम भटक रही है और वली वनी अपने ही प्रतिविम्ब से कहती हैं—तुम माधव तो नहीं हो? तुम कोई भी हो, इतना तो वताओ कि मेरे प्राणेश्वर कहाँ हैं? और फिर अपने ही प्रमाद पर हँसकर कहती है—न जाने, मुझे क्या हो जाया करता है!

स्वयं श्रीकृष्ण का वरण कौन कर सका। वह असीम न किन्हीं भाँवरों में सीमित हो सका, न सिन्दूरी बन्धन उसे कहीं जकड़ सके। वह निर्लिप्त, निर्विकार बहु-वल्लभ आज भी प्रकाश की चम्पक वर्णी आभा की खोज में समय की गलियों में बाँसुरी टेरता फिर रहा है। परम योगेश्वर को उन समाधियों की स्थिति-स्वरूपा राधा सम्पूर्णतया मिलकर भी जैसे नहीं मिली है।

अव भी राधा सृष्टि के प्राण-प्राण में लीन है। कृष्ण के कर्षण से उसके चरण उठ चलते हैं, नूपुर वज उठते हैं, अनन्त दूरियाँ उसके चरण-चिन्हों को चन्दन की भाँति आलेपन करती हैं, समय ठहर जाता है, केवल राधा चलती रहती है—चिरकुंवारी राधा अपने चिर कुमार बालम का वरण करने की विकलता लिए हुए—और कृष्ण उसे खींचकर स्वयं उसीकी ओर खिंचते जाते हैं।

पं. राममूर्ति चतुर्वेदी

परकीया के प्राण-वल्लभ

गोपियों के हृदय से सारा ब्रज वँध गया था एक प्रेम की डोर में। गोकुल गाँव की उन भोली गोप-बालाओं के परकीया प्रेम ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को चरितार्थ कर दिया। आध्यात्मिक साम्यवाद को जन्म देने का श्रेय प्राप्त कर लिया परकीया गोपियों ने। भगवान श्री कृष्ण का रास उज्ज्वल रस का दिव्य प्रकाश था। प्रेम में शारीरिक सान्निध्य आवश्यक नहीं। गोपियों के निष्कपट प्रेम का नाम ही काम है, और भगवान का आत्म-रमण ही क्रीड़ा। इन्हीं भावों को लेकर परकीया गोपियों ने स्वकीया की अपेक्षा कहीं ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। ऐसी थी परकीया के प्राण-वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र की लीला।

वसुदेव के अंश से, देवकी के गर्भ से अहंकारावतार कंस के कारागार में संपूर्ण कलाओं से परिपूर्ण अवतरित हुए रसो वैसः भगवान श्रीकृष्ण। लालन-पालन हुआ उनका पराये धाम, पराये ग्राम, पराये लोगों में। न माता अपनी.... न पिता...और न विमाता...पराये सखा, पराये सेवकों के वीच। आनन्द-स्वरूप नन्द के घर, भक्तिस्वरूप यशोमति की गोद में गोकुल ग्राम, गोपाल को मिल गया गोविन्द। गौवों का रखवाला, गो-दोहन करनेवाला। वृन्दावन धन्य हो गया.... ब्रजभूमि कृतकृत्य हो गयी। पराये वालक ने माखन चोरी करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण की, चीर हरण करके उनके व्यवधान का पर्दा उठा दिया और रासलीला करके उन्हें सरावोर कर दिया अखण्डानन्द से।

गोपियों की सेवा भक्ति कें वशीभूत होकर स्वयं भी लुट गये "माखन के चाखन में" रसराज, वंध गये प्रेम वन्धन में, चोर की उपाधि ग्रहण की, रस्सी में वँधे, डांट फटकार सुनते रहे...पर सार तत्व "माखन" ग्रहण करने का व्यसन न छोड़ सके। प्रेम से, श्रद्धा से, एकाग्रता से जो मथकर निकाला जाता है—स्वयं ठहरे

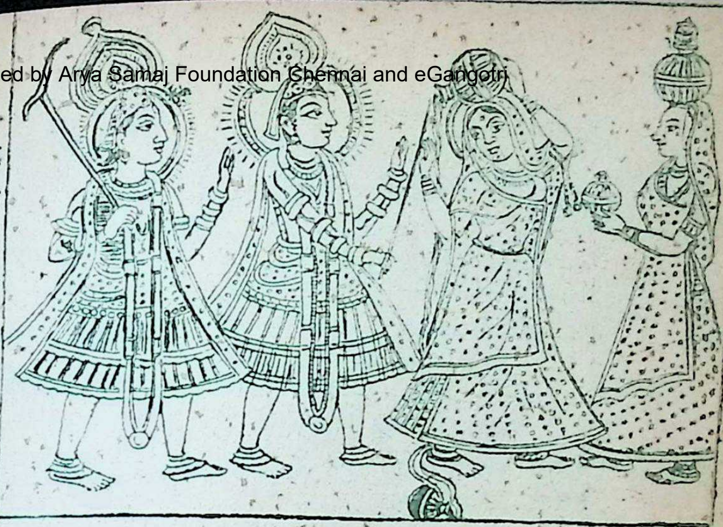

कृष्ण और गोपियाँ : श्रीनाथजी मंदिर, नाथद्वारा

गुणी... माखन विकार होता है–गोपियों के प्रवाह में बहने लगे, ने लगे–गोपियों की की में बन्द हो... दूध, माखन के रूप में घर.....

डोलै बेचति
गोपाल ही दधेड़ी घरे
नि समाने सोई
बंननि जनात है.....
पिका वधूनि की विकानि पै विकाइ रहे
स ह्वै गली गली मोहन विकात है..!..

सेवा और प्रेम के अनन्त बन्धन में र निर्गुण सगुण, अचल चल, निष्काम म हो गया। भिन्न-भिन्न रसों का स्वादन संसार को कराते हुए.... योंकि स्वयं रसास्वादन दोष है) ब्रह्म ने यों को आत्मा रूप में रख लौकिकता अलौकिकता में परिणत कर दिया। ल्य रस की सरिता में शृंगार रस ो रसों में प्रमुख है) की लहरें उठने ीं।

रस सब संसार में नव रस में संसार।
रस सार सिंगार रस युगल सार
शृंगार!!

गोपियों ने आत्मसमर्पण कर दिया ये पर, परकीया प्रेम के निर्मल प्रेम की कर दी, अपना सर्वस्व मनमोहन पर अर्पण कर करके। सराबोर हो गई सांवरे के स्नेह में–

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु
सयानप बांक नहीं,
जहाँ सूधौ चलै तजि आपुन पौ, भटकैं
कपटी जे निसांक नहीं।

ब्रजवासियों का चित्त चुराते-चुराते उन्हें चित्तविहीन कर दिया–रम गये ब्रजवनिताओं की रग रग में। कान्हमय हो गईं गोपियाँ... उनकी दृष्टि सांवरे के अतिरिक्त किसी अन्य को देखना भी नहीं चाहती थी–

ऊधो जी वे अंखियाँ जरि जायँ,
जो सांवरो छाँड़ि तकैं तन गोरो।

त्याग तिरस्कारमूलक नहीं तृप्तिमलक होता है। सब त्याग "एक" को पाकर वे तृप्त थीं, सन्तुष्ट थीं और लोक मर्यादा का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं था। नारदजी ने ठीक ही कहा है

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानंद (भारतीय व्याख्यान) ...	५.००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश) ...	२.७५
पत्रावली–प्रथम भाग ...	५.३५
पत्रावली–द्वितीय भाग ...	४.२५
विवेकानंदजी के संग में ...	५.२५
विवेकानंदजी की कथाएँ ...	१.६०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ...	१.६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ...	१.५०
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ...	१.१५
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)...	१.५०
विवेकानंदजी के सान्निध्य में ...	०.९०
कर्मयोग	१.४०
भक्तियोग	१.५०
राजयोग	३.००
ज्ञानयोग	३.००
प्रेमयोग	१.३७
हिन्दू धर्म	१.५०
धर्मरहस्य	१.२५
धर्मविज्ञान	१.६२
विविध प्रसंग	१.१२
चिन्तनीय बातें	१.००
शिकागो वक्तृता	०.६२
भारतीय नारी	०.७५
विवेकानंद चरित	६.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए –

श्रीरामकृष्ण आश्रम (भा.)

धन्तोली, नागपुर–१

"वेदमपि सन्यस्यति, केवलम् विच्छिन्ना-
नुरागं लभते।

'वेद मूलक समस्त मर्यादाओं
त्यागनेवाला ही अखण्डानन्द को प्राप्त क
सकता है' आत्म रमण ही रति है
मनुष्य सम्पूर्णता से साधनारत होने पर
प्राप्त कर सकता है। तभी तो मुरली
मधुर ध्वनि सुनते ही बावरी होकर दौ
पड़तीं गोपियाँ . . . लोक लाज छोड़...
कर देतीं सर्वस्व निछावर पराये पर....
रसराज के अलौकिक कारे रूप से गोपि
की आँखें किलोल करने लगतीं।
श्रद्धा भक्ति पराकाष्टा पर पहुँच गई..
ऋणी वन गये गोपियों के रसो
और उन्हें कहना पड़ा–

न पारयेहं निरवद्यसंपुजां, स्वसा
कृत्यं विबुधा युषापि वः।
या माभजन दुर्जर गेह शृंखला, संवृ
तद्वः प्रतियातु साधुना॥

"गोपियों तुमने लोक परलोक के सा
वन्धन काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया
है। यदि मैं तुममें से प्रत्येक के लि
अलग-अलग अनन्त काल तक जीवन धार
करके तुम्हारे प्रेम का वदला चुकाना चाहूँ
तो नहीं चुका सकता। तुम अपने सा
स्वभाव से ऋण रहित मानकर मुझे और
ऋणी वना दो–ये था परकीया प्रेम!
वहाँ अंग-अंग के लिए कोई स्थान नहीं था–

संग की कल्पना तो केवल देहात्मक में जकड़े हुए लोग ही करते हैं। भेद से अभेद की सृष्टि होती है– शरीर का गुण है और अभेद आत्मा का। यों को आत्म संतुष्टि से संयोग का देकर रसराज ने उन्हें विरह की सौटी पर कसना प्रारम्भ किया।

वियोग की अनेक भावनाओं के कारण के गूढ़ तत्वों के दर्शन होते हैं–संयोग में शारीरिक सुखों के आनन्द में मन रहता है किन्तु वियोग में अनेक नाओं में विचरण करता है। वियोग ही योग का पोषक होता है। यहाँ एक कह देना आवश्यक हो गया है कि कीया में स्वार्थ होता है किंतु परकीया ने प्रियतम से कुछ नहीं चाहती। वे तो ने प्रियतम पर आत्म-समर्पण करने में मुख मानती हैं। श्रीकृष्ण के भगवत्-स्वरूप को भुलाकर ही–स्वकीया और कीया का प्रश्न उठता है। किंतु पियों के लिए तो वे स्वयं परब्रह्म रमात्मा ही थे। उनके पति, पुत्र, सगे, बंधी वही थे। उनकी दृष्टि में उनके द्धांत के अनुसार वे परकीया नहीं थीं। वे नित्य सिद्धा भगवान की स्वरूपभूता । वे सदाचार का उल्लंघन कैसे कर ती थीं। इन्हीं भावों को देखकर तो के अपने, उन पर शंका नहीं करते और फिर धर्म मर्यादाओं को स्थापित करनेवाले श्रीकृष्ण कैसे मर्यादा तोड़ सकते थे। गोपियों की दृष्टि में तो श्रीकृष्ण "आत्मानाम् सर्वभूतेषु" थे। अस्तु!

भगवान मथुरा गये। कंस का उद्धार करके लग गये राजकाज में। जरासंध को मुक्त करके सोलह हज़ार बालाओं का उद्धार किया। वे भी उनकी ही शरण में आ गईं। यद्यपि मथुरा में उन्हें सब कुछ प्राप्त था किंतु गोपियों की याद उन्हें बेचैन किये रहती थी। उनके परम मित्र, परम ज्ञानी सखा उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा घमण्ड था। उद्धव की दृष्टि में ज्ञान मार्ग के आगे संसारी भक्ति का कोई महत्व नहीं था–भगवान को उद्धव का घमण्ड दूर करना था। उन्हें संदेश लेकर भेजा गोकुल। ज्ञान और भक्ति को आमने-सामने खड़ा कर दिया। बोले–

एक बार आओ धारि गोकुल गली की धूरि।
तब इहि नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम ॥

उद्धव चल पड़े...और..."गोकुल के गाँव की गली में पग धारत ही" उनकी दशा हुई–

ज्ञान गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौं कब,
हरैं हरैं पूजी सब सरकि कछार में।

दौड़ पड़ीं गोपियाँ उनके आगमन का समाचार सुन...कुशल प्रश्न के बाद उद्धव उन्हें ज्ञान का उपदेश देने लगे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना, योग की

साधना, मुक्ति का मार्ग . . . उन्हें उत्तर मिला–'इतने बड़े विश्व में जो आँखें खोलकर ढूंढ़ने से नहीं मिलता वह आँखें बंद करने पर भला कैसे मिलेगा–हमने तो उस ब्रह्म को प्रत्यक्ष देखा है–उस रूप सुधा का पान किया है।' "उद्धव ब्रह्म ज्ञान को बखान करते ना नैंकु, देख लेते कान्ह जो हमरी अंखियान तैं।"

भक्ति सिद्धांत के अनुसार भक्त अपने इष्ट देव को ही अभीष्ट मानता है। मुक्ति को वह विशेष महत्व नहीं देता। वे कहती हैं–

आपु ही भई हैं मृग छाला ब्रजबाला सूति।
तापे कहो उपर मृगछाला कहां सोहैगी॥

योगिनी बनना उनके लिए सम्भव नहीं था। वे तो जन्म से ही योगिनी थी–

एक ही अनंग साधि, साध सब पूरी अब।
और अंग रहित अराधि का करिहौं।

ये थी परकीया की भक्ति . . . बोली–

अपनी आवश्यकता के लिए खरीदिए

Hind FLOORING TILES

हाइड्रालिक इटालियन मशीनों से

निर्मित : प्रीफ़ब (पूर्वनिर्मित) आर. सी. सी. गृह, सीमेण्ट पाइप, टैंक, रंगाई की नाँदें व बागीचों के सामान का निर्माण करते हैं। सरकार, रेलवे, म्युनिसिपैलिटी, पी. डब्ल्यु. डी. के कंट्राक्टर हैं और सामान मुहैया करते हैं।

हिन्दुस्तान सीमेन्ट पाइप्स एण्ड कंक्रीट कन्स्ट्रक्शन कं०

मुख्य कार्यालय : **ओछवलाल गोरधनदास शाह**

टाइल, पाइप्स एण्ड सेनीटरी मरचेण्ट्स

खाडीआ, चार रस्ता, अहमदाबाद

फैक्टरी : **सुएज फार्म रोड, अहमदाबाद**

कार्यालय तथा निवास फोन : ५२२९२

फैक्टरी फोन : ५१६३६

व तुम तो सदा स्वप्न लोक में विचरण ते हो–भोली-भाली गोपियों ने आज के की नारियों की तरह डिग्री प्राप्त नहीं थी–वे ग्राम-वधुएं प्रेम और सेवा दो ही जानती थीं। वे अपने कान्ह के वियोग दुःख में भी ऐसा सुख मानती थीं कि व के निर्गुण ब्रह्म का सुख उन्हें दायी लगता था। बोलीं–तुम्हारे इस न के उपदेश से हमारा मन नहीं डिडेगा–

वह सिन्धु नाहिं सोखि जो अगस्त लियो।
यो यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है॥

आत्मविश्वास को पराकाष्टा पर पहुँचा या। उद्धव का ज्ञान भक्ति में विलीन गया। परकीया के प्रेम ने अखण्ड नी को भक्ति के द्वारा विस्मृत दिया– उद्धव मथुरा लौटकर भग- न से वोले–

तौ चित्त चाव जो न रावरे चितावन को।
ज व्रज गांव इतैं पांव धरते नहीं॥

भेदभाव, ऊँचनीच, अपना-पराया आदि का वन्धन टूट गया था गोपियों हृदय से। सारा ब्रज बंध गया था प्रेम की डोर में–गोकुल गाँव ने, कीया प्रेम ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भावना को चरितार्थ कर दिया। यात्मिक साम्यवाद को जन्म देने का प्राप्त कर लिया परकीया गोपियों ने। वान श्रीकृष्ण का रास उज्ज्वल रस का दिव्य प्रकाश था। प्रेम में शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं। गोपियों के निष्कपट प्रेम का नाम ही काम है और भगवान का आत्मरमण ही क्रीड़ा। इन्हीं भांवों को लेकर परकीया गोपियों ने स्वकीया की अपेक्षा कहीं ऊँचा स्थान प्राप्त किया–

चेरी हैं न ऊधव काहू ब्रह्म के बबा की हम।
सूधो कहि देति एक कान्ह की कमेरी हैं॥

ऐसे थे परकीया के प्राणवल्लभ भगवान श्रीकृष्ण!

● ● ●

सुबोध संस्कृतम् OR

EASY STEPS TO SANSKRIT

EASIEST BOOK FOR BEGINNERS

नौसिखियों के लिए अत्यन्त सुलभ पुस्तक।
(भारतीय (प्रमुख) १० भाषाओं में प्रकाशित)
Opinions:(विद्वानों के अभिप्राय) (Step I)

Opinions: Sri "C. R.": *Excellent book*'. Dr. Suniti Kumar Chatterji, President, Sanskrit Commission: '*A novel method in teaching Sanskrit, extremely efficacious.*' Sri G. S. Bajpai (late Governor): '*I wish I had known of it when I first started. It would have saved me much grammatical drudgery*'. Maha-Maho. Dr. P. V. Kane, Scholar and Author (M.P.): '*The book will induce even very young children to glide over sentences and take in the sense and some of the salient peculiarities of the language.*'

Step I (प्रथमं पुस्तकं)—Completely Hindi (Rs. 2.25) Completely Tamil Rs. 2.75 Completely English (Rs. 2.50)—English & Hindi (Rs. 2.50).
Sequels: (both in Hindi—1st Edition Rs. 2.00 each). Step II & Step Intermediate (each Rs. 2.00) in English only.
Step I:—Other languages: Tamil, Telugu Malayalam, Kannad, English, Gujr., Marathi, Sindhi, Bengali. Step III. (New) will be posted on First October.
N.B.: Your name & address in block letters.
B. B. KAMAT, 11--HB Saraswat Colony, Poona (2.).

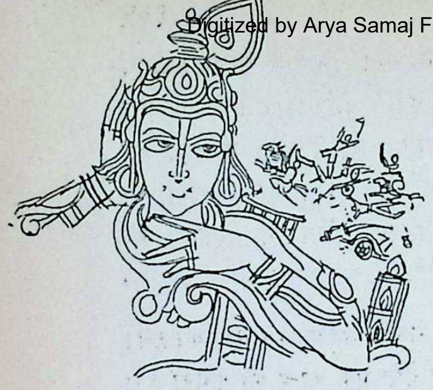

श्रीकृष्ण : एक स्वगत

जगदीशप्रसाद सिंह

श्रीजगदीश प्रसाद सिंह ने महाभारत के प्रमुख पात्रों को केन्द्र में रखकर कई स्वगत लिखे हैं। उन्हींमें से श्रीकृष्ण के एक लम्बे स्वगत का अंश यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें प्रभु युद्धोपरांत युद्ध के औचित्यानौचित्य पर चिन्तन-मग्न हैं।

●

युद्ध हुआ,
शान्ति आ सकी नहीं, किसी भी प्रयत्न से।
मैंने भी यत्न किया, भीष्म, द्रोण, विदुर ने भी,
यद्यपि वे मौन थे;
हमारे अनुरोध का फल विपरीत हुआ।
दर्प अहंकार को विनय से प्रेम नहीं,
विनम्रता उनके लिए भय, कातरता है,
जिनका सर्वदा स्वभावतः निरादर है।
शान्ति की सुरक्षा शक्ति से है; शक्ति के अभाव में
जीवन दास वृत्ति है, सुख भी दुःख है, मंगल अमंगल है।

○

युद्ध के सभी अंग परम दुखदायी हैं।
कारण कठोर, फल विनाशकारी,
वास्तविक अवस्था है श्रम की, वैर की, चिन्ता की, अशान्ति की।
स्नेह की धार से ही जीवन पनपता है,
युद्ध उसे करता है, नष्ट, भ्रष्ट, ध्वस्त, त्रस्त,
दुखद है—सर्वथा दुखद है,
किन्तु, दुर्भाग्यवश, लोकहित के लिए
कभी-कभी युद्ध अनिवार्य है।

शान्ति की रक्षा में लोक-कल्याण है।
युद्ध के पूर्व

ी प्रयत्न, जिनसे विरोध का अन्त हो,
वश्यक हैं, सतत करणीय हैं।
ल यदि विफल हों–बहुधा ऐसा होता है–
रिस्थिति उत्पन्न हो कि धर्म संकटग्रस्त है,
क संतप्त है, न्याय की उपेक्षा है–
द्ध ही उस समय एक मात्र धर्म है।

◆

द्ध की उपस्थिति में
हि-क्लान्ति-तक अनुचित हैं, निरर्थक हैं;
रम कठोर समय-धर्म फलाफल-विचार रहित शिरोधार्य है।
च्छाएँ मूल्यहीन मनोविलास,
वुकता सीमाबद्ध,
न्तर्द्वन्द प्रायः कर्म का विरोधी है।
नका नियंत्रण आवश्यक है– प्रतिक्षण,
शेषतः युद्ध में, कर्म-धर्म क्षेत्र में।
र्म-धर्म आश्रित-व्यक्ति भी समाज भी,
सके परित्याग में समाज की विकृति है, व्यक्ति का विनाश है।

◆

म्मुख अवश्य है
मिरव्याप्त, वियोग, शोक, ध्वंश–नाश–
नमें भी अंकुर है
तन-युग-वैभव के, विकास के।
नका शुभ स्वागत हो,
ष्ट-लब्ध शान्ति का समुचित उपयोग हो।
ति का आग्रह है–
शान्ति-दुख समाप्त हो,
तीत की श्रद्धा हो,
गठन हो वर्तमान का,
भिनन्दन भविष्य का।

◆

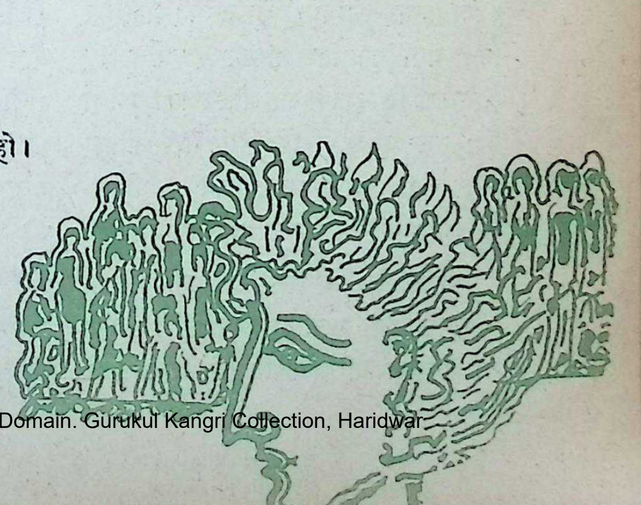

सुरेन्द्र शर्मा

बहु-प्रिया वल्लभ श्रीकृष्ण चन्द्र

योगीश्वर श्रीकृष्ण और बहुप्रिया-वल्लभ ? बात चौंकानेवाली लगती है आज भी। पर जो काम-जयी पूर्णकाम योगी होता है, वही एक बारगी ही अनन्त रमणियों के साथ रमण कर सकता है। फिर श्रीकृष्ण तो निरे योगीश्वर ही नहीं थे: वे साक्षात् सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्व-व्यापी भगवान के पूर्ण कला-मण्डित अवतार थे। अनन्त, अनेक में एकसाथ देश-कालाबाधित रूप से, पल-पल प्रत्यक्ष रक्त-मांस में रमना ही, उनकी अमर्याद जीवन-लीला की अनन्य विशेषता है। इसी वे रसेश्वर अनायास ही सर्व-रमणी-वल्लभत्व के अच्युत अधिकार के निर्बाध स्वामी थे।

जब भ्रष्टाचार, उत्पीड़न, असहाय्य, असन्तोष, आशंका, अविश्वास, अन्याय, अत्याचार, अनाचार जैसे सत्यसत्यानाशी तत्वों द्वारा समाज की शान्ति को झकझोर दिया गया हो, निराशा की काली घटाएँ जीवन के इस ओर से उस ओर तक फैल गयी हों; उन विषम परिस्थितियों में जन्मे हुए क्रान्तिदर्शी श्रीकृष्णचन्द्र को बहुप्रिया-वल्लभत्व मिला! एक विचारणीय प्रश्न है।

भारत के प्राचीन इतिहास में दो श्रीकृष्णों का उल्लेख मिलता है। एक तो द्वैपायन श्रीकृष्णचन्द्र थे और दूसरे वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्र। परन्तु थे दोनों ही महान, विद्वान, सामाजिक, दार्शनिक तत्ववेत्ता। दोनों ने ही सामाजिक विविधाओं को एकरूपता दी। दोनों ने ही जीवन के चरमलक्ष्य की मीमांसा की। दोनों ने ही 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का शाश्वत सन्देश देकर विश्वजन जन को जगाया। इन समानताओं के रहने पर भी द्वैपायन श्रीकृष्णचन्द्र को वासुदेव श्रीकृष्ण की गुणगरिमाओं का गायन करना पड़ा, इसका कारण वासुदेव श्रीकृष्ण की व्यावहारिक-व्यापकता ही थी। परि-

मत: वे दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, जनीतिक आदि अनेकों पक्षों से विवेच्य न गये।

श्री गीता जैसे दार्शनिक ग्रन्थ के उपदेष्टा योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र में अपने रम्भ से ही एक साथ अनेकों कलाओं का कास हुआ, इसीलिए श्रीमद्भागवत-र को अन्य अवतारों को अंशावतार, श्रीकृष्णचन्द्र को साक्षात्[1] भगवान कहना ड़ा। और वस्तुतः एक साथ अनेकों कलाओं का अभ्युदय जनसाधारण में म्भावित नहीं है। कारागार में जन्म, धर उधर घी दूध बेचकर जीवन यापन रने वाली अहीर जाति में पालन पोषण। ौन विचार सकता है कि इस सामान्य ने भी समाज के आर्थिक रूप को सुव्यवस्थित करना है। कृषि में क्रान्ति लानी है। अत्याचारों को सहन नहीं, शमन करना है। जीवन को भय आशंकाओं में नहीं आनन्द में पालना है। इस प्रकार गीत-नृत्य-वाद्य जैसे आनन्द रस प्रवाही पक्षों से लेकर समस्त भौतिक, आध्यात्मिक पक्षों का विकास श्रीकृष्णचन्द्र द्वारा हुआ। इसलिए सर्वात्मावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र वहुप्रियावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र बन गये।

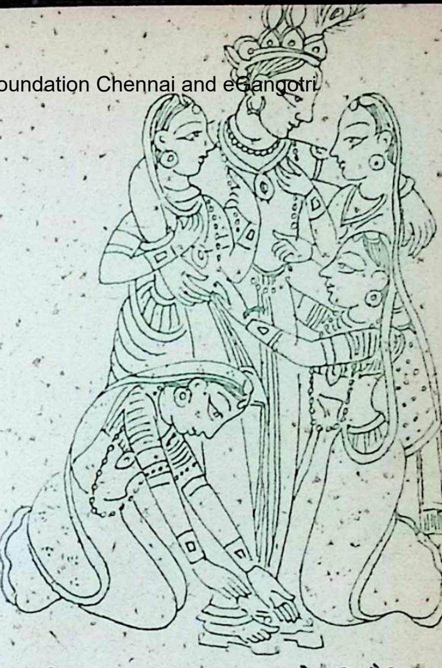

वहुप्रिया-वल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र : वसोहली शैली

श्रीकृष्णचन्द्र की वहुप्रियावल्लभत्व के पद पर समासीन करने का श्रेय सर्वप्रथम श्रीमद्भागवतकार महामुनि वेदव्यास को ही है और यही उनके जीवन की व्याख्या करने वाला प्राचीनतम ग्रन्थ है। इससे पूर्व उपासना जगत में इन्द्र, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, नारायण उपासना के केन्द्र-बिन्दु रहे थे। श्रीमद्भागवत्-काल में वैष्णवधर्म अपनी पूर्ण विकसितावस्था में था। इसलिए ही इस धर्म को श्रीमद्-भागवत् के माध्यम से काव्यात्मक रूप मिला। इस धर्म के सिद्धान्तों का दार्शनिक विकास पूर्व से ही हो चुका होगा, जिसका प्रभाव श्रीमद्भागवत में स्पष्ट गोचर होता है। श्रीमद्भागवत स्वयं दार्शनिक-काव्य है, जिसका प्रत्येक चरित्र आत्मा पर अधिक है, स्थूलतावादी कम। गोपियाँ आत्मा[2] की प्रतीक हैं

---

[1] एते चांशकला: पुन्स: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

[2] गा: इन्द्रियांणि पाति रक्षति इति गोपी।

तथा श्रीकृष्णचन्द्र परमात्मा के प्रतीक। श्रीशुकदेव इस शाश्वतरस के उपदेष्टा हैं, एवं सूक्ष्मदृष्टा परीक्षित[३] उस रस का सावधान स्रोता है। इसलिए ही वह विश्वात्मा श्रीकृष्ण के चरित्र को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता है। श्रीशुकदेव भी श्रीकृष्ण के रहस्यमय चरित्र की व्याख्या परीक्षित की परीक्षा लेते हुए और उसे उस चिद्रस का अधिकारी वनाते हुए करते हैं; क्योंकि गोपियों की गोप्य रागात्मिका-भक्ति जनसाधारण की वस्तु नहीं है।

भक्ति-साधना अपने उपासना-क्रम में क्रमशः शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं दाम्पत्य के रूप में उज्ज्वल बनती चली गयी। (लौकिक जगत् में इसका विरोध मिलता है।) निर्गुण-भक्ति शांत एवं सगुण-भक्ति में दास्य, वात्सल्य, सख्य दाम्पत्य-भाव साधक साध्य में उत्तरोत्तर साम्य उत्पन्न करते हैं। श्री शुकदेव ने इसी क्रम से नवमस्कन्ध तक शान्तभक्ति का वर्णन किया एवं रामचरित्र के रूप में दास्य-भक्ति को उपस्थित किया। दशमस्कन्ध में नन्द यशोदा के द्वारा वात्सल्य-भक्ति का गोपसखाओं द्वारा सख्यभक्ति और गोपकुमारिकाओं द्वारा मधुरा-भक्ति का दर्शन कराया है। यही माधुर्य काव्य में श्रृंगार, भक्ति में उज्ज्वलरस, व्रजरस एवं वृन्दावनरस के नाम से स्वीकार्य हुआ है। जहाँ ऐश्वर्य का विकास माधुर्य की परतंत्रता में हुआ है। जहाँ दास्य का आदर्श नहीं, वात्सल्य का संकोच नहीं एवं सख्य का वैविध्य नहीं। वहाँ आत्मा का इतना मुक्त-व्यापार चलता है कि जीव-जगत् का अस्तित्व परमानन्द में विलीन हो जाता है। गोपी (आत्मा) श्रीकृष्ण (परमात्मा) का शरद्यामिनी का मुक्तविहार गोपियों में से सांसारिकता के भावों के पूर्ण विनाश के पश्चात् ही हुआ है। श्रीकृष्ण ने अनेक लोक-परम्पराओं की शिक्षा[४] देकर गोपियों के लोकोत्तर भावों की परीक्षा[५] ली। अन्तर्धान होकर जब उनकी अनन्य प्रीति को पहिचान लिया, तभी उन्हें उस रस का पान कराया, जहाँ वासना नहीं विश्वास है, जो वास्तविकता से सुदूर की वस्तु है एवं सांसारिक लालची लोचनों से नहीं परखी जा सकती है।

यह रसधारा कोई नवीन कल्पना नहीं है। इसका मूलस्रोत ऋग्वेद है। जहाँ

---

[३] परितः ईक्षत इति परीक्षित।

[४] भर्तुः सुश्रूषणा स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया।
तद्बन्धूनां च कल्याणः प्रजानां चानुपोषणम्॥
भाग १०-२९-२४

[५] कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशला स्व आत्मन्
नित्यप्रिये प्रियसुतादिभिरार्तिदैः किम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर, मा स्म छिन्द्याः
आशाभृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र॥
१०-२९-३३

रसो वै सः" वह ही रस है कहकर ईश्वर को संकेतित किया है। रस का चमत्कार उसका नित्य नवीनतत्व ही है जो नित्य-नवलीला विहारी भावनिधि परब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णचंद्र में ही मिलता है। श्रीकृष्णचन्द्ररस गोपिकाओं द्वारा आस्वाद्य है तथा गोपाङ्गनाओं का आस्वादक भी है। जब आश्रय की उभयतो गति होगी तभी आलम्बन उद्दीपन विभाव से परिपोषित प्रेम रति आनन्दरस स्वरूपा बन सकेगी। अतः ऋग्वेद की ईश्वर के सम्बन्ध में बीजरूपिणी रससम्बन्धिनी स्वीकारोक्ति आगे चलकर ब्रजगोपकुमारिकाओं की उपासना के रूप में अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुई। इस रससाधना ने श्रीकृष्ण को बहुप्रियावल्लभत्व दिया।

यही प्रेमोपासना आगे चलकर वेदांत द्वारा भी विवेच्य बन गयी। श्री माध्वाचार्य के द्वैतमत में परक़ीयात्व के रूप में, श्रीनिम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत में स्वकीयात्व के रूप में तथा श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत में स्वकीयात्व के रूप प्रस्फुटित हुईं। यही विचार आगे चलकर साधना पद्धति पर प्रभाव डालने लगा, जिसके परिणामस्वरूप आगे चलकर सखीसम्प्रदायों को जन्म मिला।

श्रीकृष्ण की प्रियागण दो प्रकार की हैं। प्रथम ब्रजप्रियागण एवं दूसरी द्वारिका प्रियागण। दोनों प्रियाओं की उपासना में पर्याप्त अन्तर है। द्वारिकाप्रियाओं पर श्रीकृष्णऐश्वर्य का पूर्ण प्रभाव है, अतः प्रेम का स्वच्छन्द प्रवाह वहाँ नहीं है। ब्रजप्रियाओं के ऊपर उस ऐश्वर्य का कोई भी प्रभाव नहीं है। इसीलिए सूरदास की गोपियाँ स्पष्ट भाषा में कह देती हैं कि:–

“ वहाँ बने जदुवंशमहाकुल हमहिं न लगत बड़े। ”

इस रस-माधुरी में द्वैतता होते हुए भी अद्वैतता है इसीलिए ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्र 'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति' वृन्दावन एवं ब्रजगोपिकाओं को छोड़कर एक पैर भी कहीं नहीं जाते हैं। संसार का नियन्ता ईश्वर तो वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा से सांसारिक बखेड़ों को उलझाया सुलझाया करता है। ब्रजराज श्रीकृष्णचंद्र अष्टदलकमल पर अवस्थित आनन्दवृन्दावन में अपनी आल्हादिनी शक्ति श्री राधा एवं अन्य शक्तियों के साथ चिद्विलास किया करता है। यही वृन्दावन रस की मूल भावना है।

बहुप्रियावल्लभ की वल्लभा इन ब्रजबालाओं के श्रीकृष्णसेवाभेद से अनेकों रूप हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण की आल्हादिनी शक्ति प्रेम की अधिष्ठात्री श्रीकृष्णकान्ता शिरोमणि गोविन्दानन्दिनी रसाधिष्ठात्री रासेश्वरी हैं। श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय में तो श्रीराधा श्रीकृष्ण की उपास्या हैं;

क्योंकि बिना रसेश्वरी की उपासना के रसकेलि का आनन्द अपूर्ण ही है। अन्य-गोपियाँ श्रीराधा की कायव्यहरूपा हैं जो श्रीकृष्ण महाभाव की रक्षा भी करती हैं। (गोपायति-रक्षिति-इति गोपी) सेवा-प्रकार भेद से ये गोपियाँ दो प्रकार की हैं।- १. सखी, २. मञ्जरी। सखी राधा-कृष्णलीला की अन्तरंग सेवाधिकारिणी होती हैं। इनके नाम श्री चैतन्य मत से विशाखा, ललिता, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुङ्गविद्या और सुदेवी हैं। श्रीवल्लभाचार्यमतानुसार विशाखा, ललिता चम्पकलता चन्द्रभागा, भामा, पद्मा, विमला एवं चन्द्ररेखा है। ये रूप रंग से अलग-अलग सेवानुसार वस्त्राभूषण पहिनकर श्रीकृष्णसेवा में लगी रहती हैं। मञ्जरी गोपिकाएँ वाल सेवा परिचारिकाएँ हैं। इनकी संख्या भी आठ है। रूपमञ्जरी, अनङ्गमञ्जरी, विलासमञ्जरी, रतिमञ्जरी, गुणमञ्जरी, रसमञ्जरी, कस्तूरीमञ्जरी एवं मञ्जुलिकामञ्जरी। इनमें सखीगण नित्यसिद्धा हैं क्योंकि उन्हें श्रीकृष्णसेवास्वातंत्र्य मिला हुआ है एवं मञ्जरीगण साधनसिद्धा हैं, इन्हें लीलाविस्तार के साधन एकत्रित करने पड़ते हैं। (इन अष्टसखियों में चैतन्य मत के अष्टाचार्य तथा वल्लभ मत के अष्टसख्य स्वीकारे जाते हैं।) मञ्जरी-

---

देना बेंक

देवकरण नानजी बैंकिंग कं. लि.
स्थापना १९३८

अधिकृत पूँजी	रु. १ करोड़
स्वीकृत एवं चुकता	रु. ५० लाख
स्थाई कोष	रु. ७५ लाख
जमा की गई रकम	रु. ४३ करोड़ से अधिक
काम चलाऊ कोष	रु. ४८ करोड़ से अधिक
खातों की संख्या	२,४०,०००

ग्राहकों के लिए देना बेंक के किसी भी ऑफिस के किसी भी रकम के चेक विना कमिशन के वसूल किये जाते हैं।

१०० से अधिक ऑफिस और
३० सेफ डिपोजिट वॉल्ट

रजिस्टर्ड ऑफिसः
देवकरण नानजी बिल्डिंग्स,
हार्निमेन सर्कल,
फोर्ट, बम्बई १

देना बेंक की सेवाऐं
- * करंट एकाउन्ट
- * सेव्हिंग्ज एकाउन्ट
  व्याज ३%. वर्ष में १०० चेक की निकासी
- * स्थाई जमा
  १ से ५ वर्ष के लिए ४% से ५% व्याज अर्ध वार्षिक हिसाब चुकाई।
- * अल्पवयस्क बचत योजना
  १० वर्ष और अधिक उम्र के बालक खाते खोल सकते हैं।
- * कैश सर्टिफिकेट
  ४¾%व्याज
- * विदेशी मुद्रा तथा लेटर्स औफ क्रेडिट
- * इनवेस्टमेंट सर्विस
- * गिफ्ट चेक
- * छोटे छोटे चाँदी के टुकडे

प्रवीणचंद्र वी. गांधी
मैनेजिंग डाइरेक्टर

DB/SH/74

में नित्यसिद्धजीव भी आते हैं।

स्वकीयात्व के मत में इन सखी-मञ्जरियों का विवाह श्रीकृष्ण के साथ ब्रह्मा द्वारा गोवत्सापहरण काल में ही होगया था अतः ये स्वकीया ही रहीं। परकीया भाव में ये सखीमञ्जरी अपने उपपति से ही प्रेम करती हैं पति से केवल सांसारिक सम्वन्धमात्र है। श्रीकृष्णचन्द्र ही उनके प्रेम का लक्ष्य मात्र हैं। श्रीमद्भागवत में गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि कुशल-व्यक्ति नित्यप्रिय तुमसे ही प्रेम करते हैं। दुःख देने वाले इन पति-पुत्रों से फिर हमें क्या प्रयोजन? इस प्रकार लौकिक सुख से दूर पारलौकिक सुखनिरत गोपियाँ निरन्तर श्रीकृष्णाराधना करती हैं। यहाँ तक कि उन्हें स्वसुख की अभिलाषा न रहते हुए अपने प्रियतम के सुख की चिराकांक्षा है। इस रस में परकीयात्व होते हुए भी स्वकीयात्व है क्योंकि श्रीकृष्ण का चिद्विलास प्रत्येक प्राणी में है। कोई ही पारखी उसे देख सकता है। सांसारिक-सम्बंध छायामात्र हैं। इस प्रकार इस रसभावना एवं आध्यात्मिकता ने श्रीकृष्ण के अनेक रूप प्रस्तुत किये हैं।

लौकिक-दृष्टि से भी श्रीकृष्ण ने अपने समय में पतिता नारी को सम्मान दिलाया था। व्रज में नारियाँ दूध-घी बेचने का व्यवसाय किया करती थीं। श्रीकृष्ण ने उन्हें रोका और कंस जैसे राक्षसों से सुरक्षित किया। दूसरी ओर ब्रज से मथुरा जानेवाले पौष्टिकतत्व घी-दूध के निर्यात को रोक कर दुर्बल ब्रजवासियों को कंस से लोहा लेने के लिए सबल वनाया। यह श्रीकृष्ण की लीलामूलक कुशल-व्यवस्था का ही परिणाम था। जबकि सभा में होनेवाली द्यूतक्रीड़ा (जुआ) में द्रौपदी के साथ सम्पत्ति जैसा व्यवहार किया जा रहा था, वहाँ भी उसकी रक्षा कर नारी प्रतिष्ठा स्थापना की, एवं महाभारत द्वारा दुःशासन का विनाश कराया। भौमासुर द्वारा १६,१०० कन्याओं का नारीमेधयज्ञ किया जा रहा था, वहाँ भी उस आततायी का वध कर समाज द्वारा तिरस्कृत कन्याओं को स्वयं परिणीत कर नारी के सम्मान को ही सुरक्षित किया था। श्रीमद्भागवतकार ने इस सम्बन्ध में उन सभी कन्याओं के आत्मसमर्पण की वात कही[६] है। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने नारी जाति की रक्षा की एवं उसका उत्कर्ष भी बढ़ाया। इसलिए वे बहुप्रियावल्लभ बन गये।

इन्हीं सोलह सहस्र कन्याओं की संख्या ब्रजोपासना में सोलह सहस्र गोपिकाएँ वन गयी। ये सभी वेदऋचाएँ, देवकन्याएँ एवं मुनिबालाएँ थीं, जो मोक्ष की इच्छा

---

[६] भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम्।
इति सर्वा पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ।।
भागवत १०।५९।३५

से अवतार लेकर आयी थीं। पद्मपुराण में इनकी संख्या सहस्रायुत बतलायी गयी है। बृहत्ब्रह्मसंहिता में इन कृष्णवल्लभाओं को गण दिए हुए हैं जिनमें आठ शक्तियाँ और सोलह प्रकृति ये अलग से श्रीकृष्णवल्लभा बतलायी गयी हैं। वायुपुराण में भी इनकी संख्या सोलहसहस्र गिनायी गयी है। सूरदास जी ने भी इनकी बहुत कुछ नामावली लिखकर इनकी सोलह सहस्र संख्या बतलायी है। जिनमें श्रीकृष्ण चिरविहार किया करते थे उनकी तो यही प्रतिज्ञा थी कि :–

"ऊधौ मोहि ब्रजविसरत नहीं।"
–सूरसागर

हंससुता यमुना के कलकछार, केलिकुन्ज की कोमल छाया को वे कभी भी नहीं भुला सकते हैं। वहाँ चिरविरह में भी चिरसंयोग है।

"रोम रोम प्रति गोपिका रहे सांवल गात।
कल्पतरोरुह सांवरो ब्रजबनिता भई पात॥"

इस सुन्दर अङ्गाङ्गी संयोग में भला वियोग कैसे हो सकता है। इन बहुप्रियावल्लभ रसिक राधापति का यशवितान तो सारे संसार में फैला हुआ है। वे तो

'टुबा' के सम्बन्ध में गुजराती के सुप्रख्यात हास्य लेखक क्या कहते हैं?

'मैं गंजेपन का शिकार हो गया हूँ और उत्तरोत्तर और भी अधिक होता जा रहा हूँ।' मेरे किसी लेख में ऐसा पढ़ कर भाई श्री बंदुकवाला ने मुझे उनके तेल 'टुबा' की दो शीशी भेज दी। उन्होंने जोर देकर लिखा था कि दस-बारह शीशी का उपयोग करने से आपको उक्त रोग से मुक्ति मिल जायगी। मेरा तो दृढ़ बिश्वास था, एक बार बाल झड़ जाने और गंजापन आ जाने पर पुनः बाल का आना असम्भव है। किंतु जब किसी तेल का उपयोग करना ही है तो यह क्या बुरा? ऐसा समझकर बिना किसी फलाकांक्षा के मैंने पाँच शीशियों का उपयोग कर डाला। इससे गंजापन विशुद्धरूप से समाप्त तो नहीं हुआ, किंतु प्रथम शीशी के उपयोग के बाद ही उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी। आगे चल कर जहाँ एक भी बल नहीं था; वहाँ कहीं-कहीं नये बाल आने शुरू हो गये। ऐसा मैंने ही अनुभव किया हो, यह बात नहीं। मुझे देखनेवालों का भी यही अनुमान था। इससे इतना लाभ होगा, इसकी मुझे किंचित भी आशा नही थी। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निस्संकोच कह सकता हूँ कि 'टुबा' के उपयोग से भले ही संपूर्णरूप से लाभ न हो, फिर भी आपके रोग की प्रगति अवश्य रुक जायगी। साथ ही यह थोड़ा-बहुत लाभ भी पहुँचायेगा।

'टुबा हेयर टानिक' झड़नेवाले बालों को रोकने का एक प्रभावशाली एवं विश्वसनीय इलाज है।

श्री ज्योतीन्द्र ह. दवे

४ औंस की दो शीशिओंका पोस्टेज पेकिंग के साथ दाम रु. ९–०–० मनिआर्डरसे भेजना होगा; वी. पी. से माल नहीं भेजा जाता।

टुबा प्रोडक्ट्स, ९१, भाजीपाला स्ट्रीट, बम्बई–३.

न पवित्र सुभग यमुनापुलिन पर ताल, ङ्ग, उपङ्ग, मुरज, डफ आदि अनेकों वृन्दों के साथ सारङ्गराग में ततथेई, ई की नवलगति को लिये नाचती हुई तिमण्डल के मध्य अनादि अनन्त लीला किया करते हैं। वे तो जल से ों के समान विलग ही नहीं किये सकते हैं। कभी योगिनी, वियोगिनी, हारिनी, पनहारिनी आदि के छद्मवेष रण कर अनेकों रूपों से गोपी रस का आनन्द लिया करते हैं। कभी राधा को ज रूप देकर और स्वयं राधा बनकर गोपियों में विभ्रमविलास करते हैं तो कभी राधा, श्रीकृष्ण एक जैसा श्रृंगार कर गोपियों में संदेह पैदा किया करते हैं। भी श्यामासखी का वेष धारण कर गोपियों के साथ झूलने जाते हैं तो कभी गोपियाँ ही उनका नारी रूप बनाकर उनसे ली खेलती हैं।

इस प्रकार उनकी विविध लीलाधुरी पीयूषवर्षी जयदेव से लेकर विद्यापति, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, सूरदासादि अष्टसखागण, स्वामी श्री हरिदास, श्री हितहरिवंश आदि अनेकों रसिककवियों की काव्य जीवन बनायी इन बहुप्रियावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र ने एक ऐसे भावना-प्रधान सम्प्रदाय को जन्म दिया, जहाँ रस, रास, रसिक के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आज भी श्रीकृष्ण-देवालयों में उनकी लीला-विभ्रम विलासमाधुरी का काव्य के माध्यम से गायन रसिकवक्ता श्रोताओं को भावना-जगत् में ले जाकर आनन्दान्दोलित कर योगियों द्वारा भी अगम्य आस्वाद्य सुख में विभोर कर देता है।

आधुनिक युग में भी उनके जीवन के विविधरूपों का नवीनीकरण करके श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि आधुनिक कवियों का मन नहीं भर सका है क्योंकि उस लीला पुरुषोत्तम ने अपनी लीलामाधुरी के द्वारा ही अमर संदेश इस क्षणजीवी मनुष्य को दिया है। ○ ○ ○

• न्यू माडल •

संतोष कुकर

रसोई पकाने के लिए इस्तेमाल कीजिए, जिसके उपयोग से समय, श्रम और पैसे की बचत होती है।

प्रवास, पिकनिक, पार्टी आदि में सुगम है। मुफ्त सूचीपत्र के लिए लिखें—

निर्माता : **संतोष कुकर कं.**, ११९, न्यू चर्नी रोड, प्रार्थना समाज, बम्बई-४।

USE
SANTOSH
COOKER
ESTD.
1920

रमेशचन्द्र शाह

मर्यादा-भंग के दावेदार : नव-मर्यादा के संस्थापक, लीला-पुरुषोत्तम

◆

एक उन्नीत हाथ की उँगली पर निरन्तर चक्रायित सुदर्शन चक्र धारण किये, दूसरे हाथ से शंखनाद करता हुआ, दिशा-काल के पटलों में पल-अनुपल विप्लव और नित-नूतन सर्जन करता हुआ, लोकालय की हर बाला और हर रमणी के मन को अपने लीला-कटाक्ष से अनायास अनन्त रस-मूर्च्छा में लीन करता हुआ, पद-पद पर जड़-रूढ़ मर्यादाओं का भंजन कर, अपने पद-नख की ज्योति से नित-नूतन जीवन की प्रगतिशील राहें खोलता हुआ, जो आकाश-पुरुष हमारे भाव-लोक में सनातन विहार कर रहा है—उसीका नाम है श्रीकृष्ण! परम्परा, प्रयोग और प्रगति का संयुक्त द्रष्टा और सृष्टा, ऐसा सर्वकालीन, सार्वलौकिक, अनन्त प्रगतिमान पूर्ण: पुरुषोत्तम व्यक्तित्व संसार के पुराण और इतिहास में दूसरा नहीं दिखायी पड़ता। सृष्टि के Eternal Dynamics का ही दूसरा नाम श्रीकृष्ण है।

◆

श्रीकृष्ण हमारे देश के ही नहीं, समस्त विश्व के पुराण-चरित्रों में अन्यतम हैं। स्यात् ही विश्व के किसी अन्य देवता के विषय में इतने अधिक 'मिथों' की अवतारणा हुई हो। किंतु इन 'मिथों' के सम्यक् परीक्षण-विवेचन से श्रीकृष्ण का जो रूप उभर कर सामने आता है उसमें दैवी चमत्कार की अपेक्षा विशुद्ध मानवीयता ही अधिक प्रत्यक्ष हुई है। आधुनिक युग में तुलनात्मक पुराणशास्त्र जैसे सूक्ष्म विषय के विकास के फलस्वरूप हम देश-विदेश की पौराणिक सृष्टियों में प्राचीन जातियों के उत्थान-पतन का इतिहास पढ़ने की ओर प्रेरित हुए हैं। इस विश्लेषण-परक दृष्टि के अतिरिक्त एक दृष्टि और भी है जिसे कला और मनोविज्ञान की दृष्टि कहा जा सकता है। सहस्रों वर्षों से संसार के कवि अपने पुराण-पुरुषों एवं देवी-देवताओं से प्रेरित और उन्मेषित होते रहे हैं। सन्दर्भ चाहे किसी भी युग का रहा हो, उनकी विधायक कल्पना अपनी पौराणिक गाथाओं का आश्रय लेकर

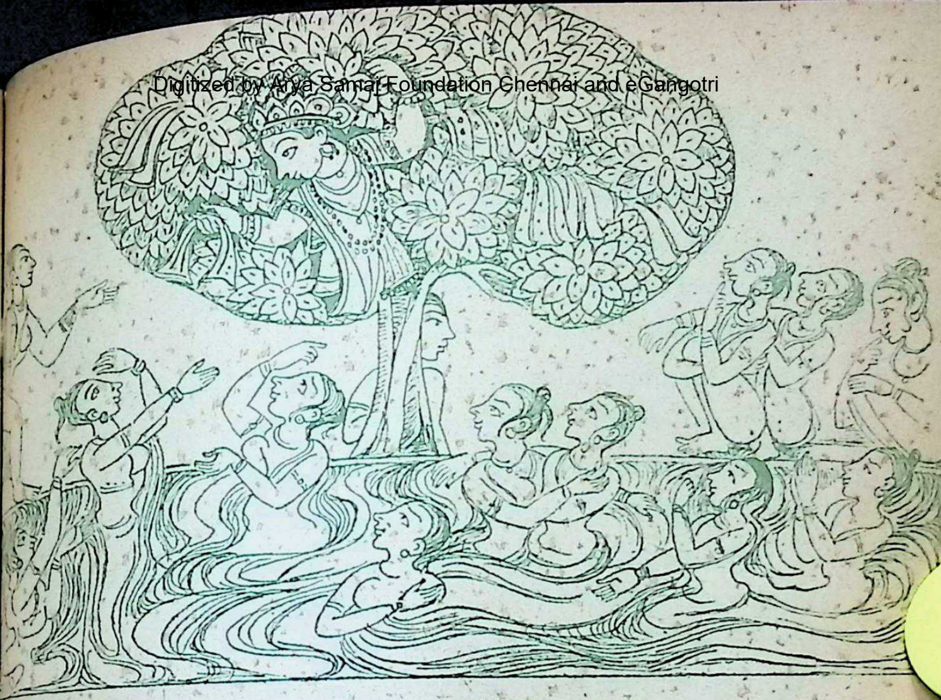

चीर-हरण : बसोहली शैली

अग्रसर हुई है। इन्हीं पुराणों और आदि-काव्यों के अन्दर से चिरंतन्, जीवंत प्रतीकों का पुनराविष्कार एवं पुनराख्यान होता रहता है।

●

राम और कृष्ण हमारी पौराणिक कल्पना के दो ध्रुव हैं। इन्हें हम लोक-नायक, राष्ट्र-निर्माता, महाकाव्य के आदर्श चरित्र मानकर चलें अथवा भारतीय मन की सहज आस्तिकता के वल पर स्वयं ईश्वर का अवतार स्वीकारें, सभी अवस्थाओं में इनकी महिमा और कलात्मकपूर्णता सिद्ध है। किसी भी महापुरुष या देवी-देवता से अधिक ये हमारे जातीय जीवन के चिरंतन् प्रेरणा-स्रोत हैं। अपनी विशिष्ट शक्तियों के कारण ये समूहों के ही नहीं, व्यक्तियों के भी इष्टदेव हैं। जव हम विद्वानों को यह कहते सुनते हैं कि समूचे विश्व के इतिहास में श्रीकृष्ण की जैसी विराट् कल्पना अन्यत्र कहीं नहीं मिलती तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होता, आश्चर्य का विषय तो आर्यों की पुराण-प्रतिभा का वह चमत्कार है जिसने राम-कृष्ण के युग्मादर्श की उद्भावना की।

राम लोकमानस में मर्यादा-पुरुषोत्तम और कृष्ण लीला-पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। लीला और मर्यादा के इन्हीं दो कूलों के बीच से आर्य-सभ्यता

और संस्कृति ने अपने अजस्र-अबाध प्रवाह के लिए राह बनाई है। हमारे साहित्य की स्रोतस्विनी भी इन्हीं की बाँह गह कर अग्रसर होती रही है। वाल्मीकि-व्यास, कालिदास-माघ, भवभूति-जयदेव, तुलसी-सूर, विद्यापति-केशवदास, हरिऔध-मैथिलीशरण प्रभृति अनेकानेक वागीश्वरों ने इन्हीं पुराण-पुरुषों की यशोगाथा में अपना काव्य-मधुर स्वर-संगम पाया है। लोक-साहित्य भी इन्हीं महापुरुषों का जयगान करके महिमान्वित हुआ है। ग्रीक, नौर्स, ट्यूटोनिक, केल्टिक, रोमन इत्यादि के पुराण-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरांत हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनका कोई भी पौराणिक चरित्र या काव्यनायक प्रभाव की व्यापकता और वैविध्य में हमारे राम और कृष्ण की समता नहीं कर सकता।

●

लोकप्रियता यदि किसी चरित्र के महत्व का मानदण्ड हो सकती है तो श्रीकृष्ण श्रीराम की अपेक्षा भारतीय जन-मानस के अधिक निकट हैं। राम की अलौकिक महत्ता हमें स्तब्ध-चमत्कृत करती है किंतु कृष्ण की लीलामधुर साधारणता हमें मोह लेती है। आदर्श हमारा आराध्य और काम्य हो सकता है। किंतु आनन्द हमारी मूल-प्रवृत्ति है। श्रीकृष्ण का आनन्द कन्द रूप हमारी इस सहज मनुजता को आकर्षित करता है; हमें अपनी सामान्य, मधुर लौकिकता से आश्वस्त करता है। उनके लोकोत्तर चरित्र और ऐश्वर्य भी हमारे मन में आतंक नहीं उपजाते, रस की ही सृष्टि करते हैं। वे मुरारि पीछे हैं, मोहन पहले हैं। गीतानायक बाद में हैं; वंसीवादक पहले। और तो और उनका चक्र भी 'सुदर्शन' है। फिर वे एक अद्भुत रोमान-पुरुष हैं। उनका शिशु उनके वयस्क से कम एडवेंचर-प्रिय नहीं। राम समुद्र के समान गम्भीर चित्रित किये गये हैं। उनकी प्रत्येक चेष्टायें भागवदीय वैशिष्ट्य हैं। उनका प्रत्येक कृत्य हमें उनकी लोकोत्तर, अमानवीय असाधारणता का परिचय देता है। वे मिल्टन के क्राइस्ट की भाँति सुदूर और अनधिगम्य प्रतीत होते हैं। उनके सख्य में भी एक अभिजात दूरी है। क्या सुग्रीव, क्या हनुमान, क्या विभीषण, सभी में दास्य का समर्पण सर्वोपरि है। अर्जुन का सा चपल, उच्छल, निःशंक सखाभाव वहाँ कहाँ? कृष्णार्जुन और राधाकृष्ण में कौन सम्वन्ध अधिक मधुर और दृढ़ है, यह कह सकना सरल नहीं। सुकरात क्या प्लेटो में इससे पूर्णतर समर्पण-भाव जगा पाए होंगे?

सुग्रीव के लिए राम ने एक मर्यादा भंग की थी।—और कौन कह सकता है

उनके इस उपकार में निष्काम मैत्री के अतिरिक्त और कोई आग्रह नहीं था ? दूसरी ओर श्रीकृष्ण ने 'अकारणमित्राणि सतां चेतांसि' के आदर्श को स्थापित किया। अर्जुन के निःशेष आत्मसमर्पण ने उन्हें जैसे उसका क्रीतदास बना दिया था। अर्जुन में न तो युधिष्ठिर का सा प्रगाढ़ धर्मज्ञान था, न भीम सा वाहुबल और न नकुल-सहदेव का सा रूप-तारुण्य, फिर भी श्रीकृष्ण ने सबको छोड़कर उन्हीं को अपना आत्म-सहचर अंगीकार किया। उन्होंने अर्जुन के मन की ही नहीं उसके रथ की भी रश्मियाँ सँभालीं। उसके लिए पग-पग पर लोकमत की उपेक्षा करके मर्यादाएँ भंग की। सहायता-प्रार्थी दुर्योधन के साथ कूटनीति बरती; पितामह भीष्म के विरुद्ध शस्त्र धारण करके अपना वचन भंग किया; मित्र की रक्षा के लिए भीमपुत्र घटोत्कच की वलि दे दी; निहत्थे कर्ण पर वार करने के लिए गाण्डीव के रुकते हाथों को उत्तेजित किया; इतना ही नहीं पांडवों के अंतिम और अन्यतम शत्रु का भी शास्त्रविरुद्ध विधियों से अन्त कराने में संकोच नहीं किया। उन्हें तो संसार में मैत्री का सर्वोच्च आदर्श स्थापित करना था। फिर उन्हें अस्थिर मर्यादाओं का मोह क्योंकर सताता!

श्रीराम ने मर्यादाओं की रक्षा करते हुए उनके भीतर से अपने व्यक्तित्व का विकास किया। परम्परागत आदर्शों की उच्च से उच्चतर भूमिका तक स्वयं को उठाकर उन्होंने सदैव के लिए जातीय जीवन के सामने एक अनूठा चारित्रिक आदर्श स्थापित किया। श्रीकृष्ण का माहात्म्य दूसरी कोटि का है। उनका जीवन एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक का नहीं, प्रत्युत एक गति से दूसरी गति तक असंख्य प्रगतियों का इतिहास है। उन्होंने सांसारिक जीवन को उसकी सम्पूर्णता में स्वीकार करके स्वयं को उसकी हर वृत्ति, हर स्वरूप के साथ तद्रूप किया। प्रारंभ से उनका यह विश्वास रहा कि मनुष्य-निर्मित मर्यादाओं का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं। अपनी सुख-सुविधा के लिए ही मनुष्य ने उनकी योजना की है। किंतु कोई भी मर्यादा वह चाहे कितनी ही श्रेष्ठ और प्राचीन क्यों न हो—मनुष्य से बढ़कर नहीं है। वह अगर व्यक्तित्व के विकास में बाधा वनकर आती है तो उसका भंग करना भी पुण्य है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। श्रीकृष्ण यदि मर्यादा-भंग के दावेदार बने हैं तो इसी 'पूर्ण मनुष्य' की माँग पूरी करने के लिए। उन्होंने जव-जव रूढ़ियों का उल्लंघन करके नये आचरण का पथ प्रशस्त किया, तव-तव जीवन-जगत् के नये-नये आयामों का अन्वेषण हुआ; मनुष्य की सम्भावनाओं में कोई न कोई नया अध्याय जुड़ा, उनके

जीवन-चरित्र में हमें एक अपूर्व गत्यात्मक विकसनशील सौंदर्य के दर्शन होते हैं।

◆

यह एक निश्चित तथ्य है कि सभ्यता के कितने ही आवरण हम अपने ऊपर चढ़ा लें, हम अपनी मौलिक आदिम मनुष्यता को नकार नहीं सकते। अनगिन पाखंडों का भार हमें अपनी गहराइयों से विच्छिन्न कर देता है। हमारा रक्त "अपने ही मौलिक छन्द में बहने को आजाद नहीं रह पाता।" किंतु अपने इस प्राकृत, नग्न स्वरूप का साक्षात्कार और स्वीकार भी हमारी एक अनिवार्य आवश्यकता है। हममें से प्रत्येक के मर्म में यह चाह उठती है कि काश! कोई ऐसा हो जिसके सामने हम अपने नग्न सौंदर्य में प्रकट हो सकें। जो हमारी कृत्रिम सांसारिकता के तमाम छद्मों को छिन्न करके हमें अपने सच्चे स्वरूप की प्रतीति करा सके। चीर हरण का प्रसंग हमें इसी मानुष-सत्य का दिग्दर्शन कराता है।

और रसेश्वर की रास-लीला? प्रत्येक युग के परीक्षितों ने श्रीकृष्ण-चरित्र के इस प्रकरण को प्रश्नांकित किया है। किंतु उनका समाधान करने के लिए हमें हर बार शुकदेव जी टेरने की कोई ज़रूरत नहीं। पहले के अपेक्षाकृत अनुदार युगों ने भी परकीया-प्रेम पर अधिक भ्रूकुंचन नहीं किया। और प्रणय का आधुनिक दर्शन तो उसके भूल को पहचानकर उसे स्पष्ट मान्यता ही दे चुका है। एकपत्नी व्रत का अटल आदर्श हमारे सामने रखने वाले राम हमारे आराध्य हो सकते हैं। किंतु "सूर चित् से टरत नाहीं राधिका की प्रीत" कहने वाले कृष्ण गोपियों की तरह हमारे प्राण-सखा हैं। श्रीकृष्ण की इस लीला ने कितने चैतन्यों को प्रेमविह्वल किया! कितने चण्डीदासों की वाणी में अमृत भरा! प्रणय के चिर-किशोर लीला-पुरुष ने ब्रज की गोपिकाओं का ही नहीं, आर्यावर्त्त में जन्म लेनेवाली सहस्रों पीढ़ियों का आनन्द-संदोह किया है। यह तो कल्पना ही की जा सकती है कि प्रणय की इन चिरयौवना स्मृतियों ने श्रीकृष्ण सरीखे विराट् व्यक्तित्व के निर्माण में कितना योग दिया होगा। वैसे श्रीकृष्ण में किसी आत्यन्तिक व्यक्तिवाद की छाया ढूंढ़ना ही व्यर्थ है। उनकी सारी लीलाएँ लोकरंजन की पर्याय थीं। से सुमुखी गोपाङ्गनाओं के ही नहीं, कुरूपा कुब्जा के भी प्रियतम थे। श्रीकृष्ण बहुजनहिताय, बहुजन-सुखाय जिए। लोक-संग्रह नहीं, शुद्ध लोकसेवा के लिए ही उन्होंने लीला-पुरुषोत्तम की भूमिका अपनायी थी। कर्त्तव्य के एक आह्वान पर, कर्म की एक पुकार पर वे सारी मोह-ममता को एकवारगी तोड़कर समरांगण में कूद सकते थे। राग और वैराग्य का अद्भुत समन्वय हमें उनके व्यक्तित्व

मिलता है। ऐकांतिक भोगवाद और हंपरक व्यक्तिवाद से वे कोसों दूर थे। र्यादाओं के अतिक्रमण की प्रेरणा उन्हें ने इस सामाजिक लोकनिष्ठ रूप से मिलती है। उसमें कोई एपीक्यूरियन ृति का लेश भी नहीं। वे सब को अपने ाथ लेकर आगे बढ़ने के समर्थक थे। ाम का तेज़ औरों को अपने में रमाता था। ृष्ण स्वयं दूसरों में रमते थे। लोक का प्रिय साधन उनका 'स्वभाव' था, कर्त्तव्य नहीं। समष्टि में ही उन्होंने अपनी व्यष्टि की कृतार्थता पायी थी।

रोमानी और क्लासिकल तत्त्वों का ऐसा आदर्श (और लचीला) सन्तुलन अन्यत्र दुर्लभ है। एक ओर द्वारकाधीश का ऐश्वर्य है, दूसरी ओर विदुर का साग और सुदामा के तन्दुल, एक ओर रुक्मिणीहरण की रोमानी कथा है, दूसरी ओर कुरुक्षेत्र का अनासक्तियोग, एक ओर परकीया प्रेम का चरमावेग है, दूसरी ओर दाम्पत्य का आदर्श निर्वाह। एक ओर ब्रह्मा, विदुर, युधिष्ठिर और भीष्म तक को चरणावनत करने वाला ब्रह्मज्ञान और दूसरी ओर "अहीर की छोहरियों के छछिया भर छाछ पर नाचने वाला कौमार्य।" प्रवृत्ति के भीतर से उन्होंने निवृत्ति का रहस्य समझा और प्रकाशित किया है। गीता श्रीकृष्ण का आत्मदान है। यह उन्हींके व्यक्तित्व की महिमा है जो नीति और तत्त्व के पूर्ण परिज्ञान के साथ ही उनका एक ही समय में निर्विरोध सामंजस्य कर सकती है। श्रीकृष्ण जितनी दूरदर्शन के महानील आकाशों में पहुँचे थे, उतना ही उससे भी अधिक अपनी प्यारी धरती के मर्म में प्रवेश कर सके थे।

श्रीकृष्ण सच्चे अर्थों में विश्व-पुरुष हैं और हमारी आधुनिक वैश्विक चेतना के सन्निकट पड़ते हैं क्योंकि उन्होंने 'अनुभव' को उसकी सम्पूर्णता में गले लगाया था। उनकी आत्मा स्वयं को विराट् की आत्मा से सर्वयुक्त करके जीवन का 'विराट दर्शन' कर सकी थी। यही कारण है कि उनका संदेश उनकी मधुर लीलाओं की ही भाँति हमारे लिए चिरनवीन और चिरमधुर बना रहा है और आगे भी बना रहेगा। अनन्तिनी चेतना (Infinite Consciousness) के प्रतीक स्वरूप उन महाप्राण श्रीकृष्ण का पुण्यस्मरण हमारे जीवन्मृत, ग्लानिग्रसित युग को अनन्त अभ्युत्थानों का संकल्प और नित-नूतन आविर्भाव का आश्वासन प्रदान करे यही हमारी कामना और प्रार्थना है।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥

★

मकरन्द दवे

गीता-धर्म की गंगोत्री

युगावतार कृष्ण मनुष्य के अन्तर में विराजित सदा के संगी और सारथी हैं। जो उनके श्रीचरणों में निःशेष आत्म-समर्पण करता है, वह जीवन में विजयी होता है। मनुष्य का एकमात्र ध्येय अपने जीवन के प्रेरक योगेश्व तथा प्रवर्त्तक धनुर्धर की मिलन-भूमि बनाने का है। और जहाँ यह मिलन सार्थक होता है, वहाँ श्री, विजय तथा अचल नीति है। नवीन गुजरात के परम रसलीन युवा कवि और नव-अध्यात्म चिंतक श्री मकरन्द दवे ने गीता के इस रहस्य को नूतन युग-मनीषा के प्रकाश में उद्‌घाटित किया है।

श्रीकृष्ण का नाम सुनकर ही हमें एक परंपरा-उच्छेदक तथा मूर्तिभंजक महापुरुष की झलक मिलती है। राम जिस प्रकार धर्म के कठिन नियमों को विनय से शिरोधार्य करते थे उसी प्रकार कृष्ण आजन्म विद्रोही की भाँति उन नियमों का उल्लंघन करते थे। दोनों के व्यक्तित्व में आकाश-पाताल का अंतर है। किंतु आश्चर्य की वात तो यह है कि कृष्ण ने स्वयं किसी नवप्रस्थान का दावा नहीं किया। राम के पूर्वजों ने जिस धर्म को पृथ्वी पर उतारा और राम—रामो विग्रहवान् धर्मः—जिस धर्म को अपने जीवन में मूर्तिमंत किया, उसीकी पुनःस्थापना करना वे अपना जीवनकार्य मानते हैं।

गीता के चौथे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, 'इस अविनाशी योग को मैंने विवस्वान—सूर्य को कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र मनु को कहा, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को वताया, और इस प्रकार परंपरा द्वारा प्राप्त योग को राजर्षियों ने पहचाना। परन्तु बहुत समय वीत जाने से, हे अर्जुन, यह योग लुप्त हो गया था। इस समय इसी पुरातन और उत्तम रहस्ययुक्त योग को मैंने तुम्हें वताया, क्योंकि तू मेरा भक्त और सखा है।'

किंतु अर्जुन को शंका हुई कि श्रीकृष्ण तो मेरे समकालीन हैं, वे कल्प के आदिकाल

ने उदित सूर्य को यह उत्तम रहस्य कहने गये होंगे। उसने कृष्ण से स्पष्ट ही अपनी शंका व्यक्त की जिसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा, "अर्जुन, तेरे और मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं उन सभी को जानता हूँ, परन्तु तूं नहीं जानता। अजन्मा, अविनाशी तथा प्राणीमात्र का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को आधीन कर योगमाया से मैं प्रकट होता हूँ।"

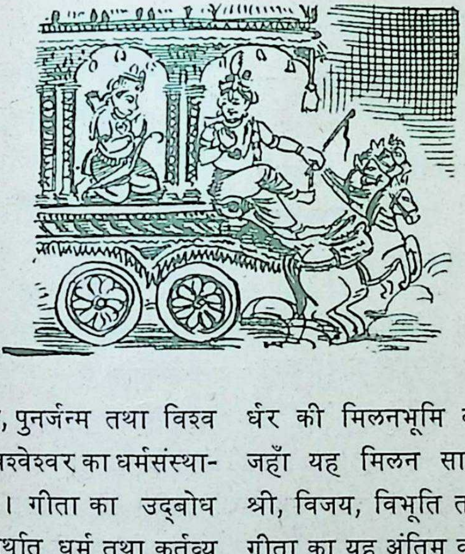

और उसके तुरंत बाद ही वह सुप्रसिद्ध श्लोक 'यदा यदा हि धर्मस्य' कह कर कृष्ण ने अपने अवतारकृत्य का वचन दिया। इतने श्लोकों में ही हिंदू धर्म के कई मूलभूत सिद्धांत आ जाते हैं–धर्म का अनादित्व, कालचक्र का उत्थान-पतन, पुनर्जन्म तथा विश्व के परे होते हुए भी विश्वेश्वर का धर्मसंस्थापन के लिए प्राकट्य। गीता का उद्वोध 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' अर्थात् धर्म तथा कर्तव्य के रणमैदान में हुआ है। वह एक 'धर्म संमूढ़चेता'– धर्म के विषय में दिशा-भूले हुए मनुष्य–को कर्तव्यपथ पर जाग्रत करता है। और इस उद्बोध के कर्ता विश्व के 'शाश्वत धर्मगोप्ता' हैं। इस प्रकार गीता की भूमिका एक साथ ही विश्व-व्यापी और व्यक्तिनिष्ठ है। अर्जुन को निमित्त बनाकर भगवान ने यहाँ मनुष्यत्व का गौरव बताया है। और किसी विषम पल में एकाध व्यक्ति के अंतर में भी धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, पुण्य-पाप के बीच महाभारत हो तो उसे सच्चा मार्ग दिखाकर विजयपथ पर ले जाने का इसमें ध्रुव-संदेश है। युगावतार कृष्ण मनुष्य के अंतर में विराजित सदा के संगी और सारथी हैं। जो उनके श्री-चरणों में निःशेष समर्पण करता है वह जीनव में विजयी होता है। मनुष्य का एकमात्र ध्येय अपने जीवन के प्रेरक योगेश्वर तथा प्रवर्तक धनुर्धर की मिलनभूमि बनाने का है। और जहाँ यह मिलन सार्थक होता है, वहाँ श्री, विजय, विभूति तथा अचल नीति है। गीता का यह अंतिम वचन है।

गीता के इस अंतिम वचन का रहस्य ध्यान में रख कर ही महर्षि व्यास ने महाभारत का प्रथम श्लोक रचा दिखता है। मंगलाचरण में महर्षि कहते हैं :–

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

महर्षि व्यास ने अपने ग्रंथ का नाम जो 'जय' रखा, वह भी अत्यंत सार्थक है। नर-नारायण के स्वरूप और उसके विजय-संदेश को यदि हम समझें तो अर्जुन की दो प्रतिज्ञाओं–अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे, न दैन्यं, न पलायनम्–की भाँति जीवन-संग्राम में दीनता तथा पलायनवाद को हम अपने मन से हटा सकते हैं। अर्जुन के धनंजय, सव्यसाची इत्यादि नामों के पीछे भी एक प्राचीन वैदिक भावना को मूर्त स्वरूप दिया गया है:

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्
(अथर्व० ७–५०–८)

'मेरे दाहिने हाथ में कर्म तथा बाँये हाथ में जय स्थित है। मैं भूमि का विजेता, अश्व का विजेता, धनंजय तथा सुवर्ण जीतनेवाला होऊँ।'

महर्षि व्यास की मेधावी तथा महाकारुणिक दृष्टि ने लोकसंग्रहार्थे वैदिक काल के सूक्ष्म धर्मत्व को नर तथा नारायण रूप में मूर्तिमंत किया है। भागवत के अनुसार 'नर-नारायण' का अवतार धर्म की स्त्री-मूर्ति की कोख से हुआ है और मूर्ति के ऐसे तेजस्वी बालकों को जन्म देते ही समस्त सृष्टि में आनंद छा जाता है। जो वैदिक धर्म अमूर्त था और इसीसे उसका लोप हो रहा था, वही साकार और जीवन्त हो उठा।

महाभारत में अनेक स्थानों पर अर्जुन और कृष्ण को नर-नारायण का अवतार कहा गया है। अर्जुन तथा कृष्ण दोनों का व्यक्तित्व तथा दोनों की अटूट मैत्री को महर्षि व्यास ने एक भौतिक दृष्टि से देखा है और लोप हुई एक अति प्राचीन वैदिक परंपरा को फिर से नया स्वरूप दिया है। जैसा कि श्रीकृष्ण ने कहा है, यह परंपरा सूर्य से उतर कर आयी है और राजर्षियों द्वारा पहचानी तथा प्रमाणित की गयी है। गीता का योग सर्वत्यागी, एकांतवासी, निवृत्तिप्रेमी संन्यासियों का योग नहीं; परिग्रही, उपद्रवी, प्रवृत्तिप्रेमी संसारियों का भी यह योग नहीं। यह तो उन जनक विदेही जैसे जीवनमुक्तों का योग है, जो संन्यास में कर्म और कर्म में संन्यास देखते हैं। और, जिस क्षत्रिय कुल में पिता द्वारा पुत्र को इस योग की शिक्षा मिलती है, उसका विचार करते ही सूर्यवंश के एक के बाद एक तेजस्वी राजर्षि दिखायी पड़ते हैं। अपनी संस्कृति शकुंतला की भाँति अरण्य में उपजी है, परन्तु उसे विश्व की साम्राज्ञी बनानेवाले तो ये राजर्षि ही हैं। महाकवि कालिदास भी इसीलिए 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः' अर्थात्

हाँ वह सूर्यवंश, मुग्धभाव से कह उठते और रघुवंश में उनकी महिमा गाते हैं। सूर्य-विवस्वान ने मनु को और मनु इक्ष्वाकु को इस जीवनधर्म का मर्म समझाया। सूर्य की अविरत कर्तव्यधारा और साथ ही निर्लिप्तता भी, इन राजर्षियों के समक्ष आदर्शरूप है। परन्तु आँखों के सामने दिखायी पड़नेवाले इस प्रकाशमान सूर्य को अखंड लोकसेवा में प्रेरित करनेवाला कौन है? वैदिक दृष्टाओं के समक्ष एक अदृश्य परन्तु अवकाश के स्वामी का चित्र उपस्थित होता है। कोई राजराजेश्वर, विश्व-नियमों के संचालक तथा सूर्य को भी नियमवश कर्म में प्रवृत्त करनेवाले तत्व को उन्होंने पहचाना है, और उसकी अतुल शक्ति तथा अपार महिमा के समक्ष स्तब्ध होकर शीश नवाया है। उन्होंने उसे देव, मनुष्य, असुर, अनंतविश्व के स्वामी राजा वरुण कह कर संबोधित किया है।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च
देवा असुर ये च मर्ताः।
(ऋ. २-२७-१०)

एक नन्हे-से ज़लबिंदु से लेकर आकाश की सीमाएँ भी वरुण की सत्ता के अन्तर्गत आ जाती हैं। यहाँ फिर से विश्व-व्यापी महान सत्ता को परम करुणा से एक अति क्षुद्र वस्तु के अंतर में प्रवेशित हम देखते हैं। सूर्य को जो अवकाश में घुमाती है, वही शक्ति मनुष्य के अंतर में भी शुभ प्रवृत्तियों का उदय करती है।

हृत्सु ऋतुं वरुणो...दिवि सूर्यम्
अरधात्
(ऋग्वेद ५-८५-२)

गीता में भी विश्वनियंता का ऐसा ही स्वरूप व्यक्त हुआ है।

कविं पुराणम् अनुशासितारम्
अणोरणीयासमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपम्।
आदित्य-वर्णं तमसः परस्तात्॥

वैदिक सूक्तों में इस अचिंत्यगहन तमस से परे प्रकाशित विश्वशासक और एक बिन्दु में भी विराजते पुराण-पुरुष को राजाधिराज वरुण कह कर संबोधित किया गया है, और उनके व्यक्त प्रतिनिधि रूप, उनके साथ सदा मित्र का—सूर्य का नाम जोड़ा गया है। एक है अनन्त आकाश का स्वामी और दूसरा इस दृश्य जगत में उनकी ध्वजा फहराता है। यह मित्रा-वरुण मेरे नम्र मत से नर-नारायण का वैदिक स्वरूप है। इस वैदिक आदित्य वर्ण परमपुरुष की उपासना पीछे से उपनिषद् की तत्वचर्या में खो गयी मालूम होता है। गीता ने इस तत्व को स्थान दिया है, परन्तु तत्व से भी पुराणसिद्ध पुरुषोत्तमतत्व पर उसने अधिक ज़ोर दिया है। महर्षि व्यास की पारगामी दृष्टि ने, तत्व में उपस्थित धर्मतत्व को कृष्णार्जुन रूप में मूर्त तथा मार्गदर्शक

वनाकर भारत के प्रजाजीवन में फिर से प्रचलित किया है।

ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि ही प्रधान हैं, परन्तु जहाँ मित्रा-वरुण का नाम आता है वहाँ विश्वस्य गोपा (विश्व के रक्षक) और धृतव्रता क्षत्रिया (नियमों के पालक वीरवर) कह कर अहोभाव से उनका स्मरण किया गया है। यजुर्वेद में एक स्थान पर राजा को उसके कर्तव्य में प्रेरित करते हुए मित्रा–वरुण का दृष्टांत, सत्य तथा उसके सामर्थ्य के लिए दिया गया है। मित्रः सत्यः वरुणो धर्मपतीनाम्। ऋग्वेदकाल में भी मित्रा-वरुण की गणना अत्यंत प्राचीन देवताओं में की गयी है। इन्द्र के जाज्वल्यमान उदय के साथ क्षितिज के उस पार से उनके गौरव पर मानो पर्दा पड़ गया है, फिर भी अन्य किसी देवता की तुलना में नीति-नियमों के रक्षक के नाते उनका स्थान अचल रहा है। अन्य देवताओं से धन-धान्य तथा ऐहिक समृद्धि की प्रार्थना की जाती है, परन्तु मित्रा-वरुण से तो वैदिक ऋषि पाप से वचाने और पाप की क्षमा माँगने करवद्ध खड़े हैं।

यहाँ हमें अर्जुन का स्मरण हो आता है। वह भी अपने स्वजनों, साथियों के हनन के महापाप से सिहर उठा था। परन्तु धर्म का मार्ग अति सूक्ष्म और गहन है। अपने स्वजनों के हनन से डर कर अर्जुन धनुष-वाण त्याग कर वैठ जाता है। तव कृष्ण सहज ही हँसकर उसे कहते हैं कि इस प्रकार के धर्मयुद्ध में शस्त्र त्यागना ही महापाप है।

अथ चेत्त्वमियं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा
पापमवप्स्यसि॥

अर्जुन भूल जाता है कि उसे गांडीव धनुष जो मिला है वह अग्नि द्वारा वरुण का दिया हुआ है। धर्मपालन के लिए विश्वनियंता की यह भेंट है, और जो यह धनुष धारण करता है उसे अपनी इच्छा-अनिच्छा, रुचि-अरुचि अथवा राग-द्वेष के विचार का अधिकार नहीं। इस कठोर कर्तव्य-मार्ग पर उसे तो व्यक्तिगत लाभ-हानि का विचार किये विना आगे वढ़ते ही रहना है। जो इस पथ से विमुख होता है वह, जैसा कि श्रीकृष्ण कहते हैं, पाप का भागीदार होता है। ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा योग के तमाम मार्गों द्वारा मनुष्य के एकमात्र गंतव्यस्थान का पता श्रीकृष्ण वताते हैं, और अंत में तो सभी प्रयत्नों को छोड़ कर सत्यधर्म के पालन के लिए एक परमात्म शक्ति की अनन्य शरण में जाने का वह कहते हैं। गीता का यही मर्म-वाक्य है: 'सर्व धर्मान् परित्यज मामेकं शरणं व्रज।'

मनुष्य के लिए यही सर्वोत्तम धर्म और नीति है। अपने अंतर्यामी के चरणों में जिसने अपना समग्र अस्तित्व समर्पित कर

या, उसके लिए सत्यधर्म का मार्ग खुल ता है। उसे फिर किसी पतन का भय वा पाप का कलंक नहीं लगता। विवर रवीन्द्र ने भी इसी सत्य के आनन्द गाया है:

'उदयेर पथे शुनि का'र वाणी!
भय नाहीं ओ रे भय नाहीं;
निःशेषे प्राण जे करिबे दान
क्षय नाहीं ता'र क्षय नाहीं।'

मित्रा-वरुण, नर-नारायण अथवा अर्जुन-ष्ण का मानस जाति के लिए यह सदा का अभय वचन है। मित्र जिस प्रकार रुण का व्यक्त प्रतिनिधि है, उसी प्रकार र अथवा अर्जुन नारायण के आदेश को हण करने वाला प्रतिनिधि–मनुष्य है; और उसकी तरह मनुष्य से अंतर का नारायण के साथ अनुसंधान हो जाय तो क अमोघ शक्ति का वह वाहन बन जाता है। मित्रा-वरुण के दैवी स्वरूप को मानुषी भूमिका पर लाने का भी वैदिक टा नहीं भूले।

यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः
(अ.–४१६–१८)

'जो दिव्य वरुण है, वही मानुषी है।' न्तु जैसा कि कृष्ण कहते हैं, मानुषी तनु में वास करने वाले परमात्मा को मूढ़ लोग पहचान नहीं सकते। इसीलिए ढ़ता-जड़ता का पर्दा हटाने के लिए ही उनको वारंवार अवतार ग्रहण करना पड़ता है। मित्र तथा वरुण की यह दिव्य-मानुषी युगल मूर्ति पीछे से इन्द्र-अग्नि का देवता रूप में प्राधान्य होने से विस्मृत हो गयी होगी। कृष्ण ने इन्द्र को पराजित किया, इस कथानक के पीछे किसी ऐसी ही मूल प्रेरणा को प्रसारित करने का प्रयास होगा। सत्य का पक्ष ले कर असत्य से टक्कर लेने तथा विजय प्राप्त करने वाले धर्म के रक्षक मित्रा-वरुण का चित्र अपने यहाँ पीछे से धुंधला पड़ गया, परन्तु ईरानी आर्यों ने मिथ्र तथा अहुरमज्द में इस स्वरूप तथा संदेश को बराबर संचित रखा है। और, आश्चर्य की बात यह है कि इसकी परम्परा भी कृष्ण ने जैसी बतायी है, वैसी ही है। विवस्वान-सूर्य के दो पुत्र थे–मनु तथा यम। मनु का राज्य इस लोक में था और यम का पितृ लोक में।

पारसी धर्मग्रंथों में वैवस्वत का नाम यिम खिशओस्त है। भारतीय तथा ईरानी आर्य पितृव्य भाई हैं। मनु की भांति यम ने भी अपने पिता विवस्वान की धरोहर अपनी प्रजा को दी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वैदिक देवताओं में आदित्यों को असुर कहा जाता है और उनमें वरुण मुख्य है। पारसी धर्म में यही अवकाश के स्वामी अहुरमज्द तथा उनके प्रतिनिधि मित्र मिथ्र के रूप में दिखायी पड़ते हैं। अहुरमज्द की प्रेरणा से मिथ्र सत्य के सैनिकों को विजय प्राप्त

कराने सदैव प्रस्तुत रहता है। ग्रीक देवताओं में (Ouranos) भी वरुण युरेनस के रूप में पता नहीं कैसे पहुँच गये। और, मिथ्र तो युद्धप्रिय तथा विजयेच्छु रोम का विशेष देवता बन गया है। इस प्रकार यह प्राचीन परंपरा भारत में कृष्ण के रूप में तो ईरान से फिरते-फिरते रोम में क्राइस्ट के रूप में साकार हुई है। इतिहास का कुहासा भेदने पर इस तथ्य की झाँकी हुए विना नहीं रहती।

ईरान परंपरा में मिथ्र का स्थान अहुरमज्द से नीचें होने पर भी उनके द्वारा ही परम पिता अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। अपने यहाँ एक विशिष्टता भी है। अनंत अवकाश के अधीश्वर वैदिक वरुण अथवा पौराणिक नारायण स्वयं ही मानुषी तनु धारण कर कृष्ण रूप में अवतार ग्रहण करते हैं। इस तेजमूर्ति को अपने समक्ष जीवन्त बना कर महर्षि व्यास को ऐसा लगा होगा कि ये भुलक्कड़ द्वारकावासी अव इसे किसी प्रकार भूल नहीं सकेंगे। किसी समय सनातन विश्व धर्म के प्रेरक तथा संचालक राजा वरुण को हमने मात्र जल का देवता बना दिया, अथवा उन्हें जल में डुबा दिया। इसी नारा-अयन (जल में सोये देव) को महर्षि व्यास की प्रतिभा ने फिर से जम कर बैठाया, लोकजीवन में पार्थसारथी के रूप में उन्हें स्थापित किया। आकाशचारी मित्रा-वरुण को इस धरती पर कृष्णार्जुन के रूप में वता कर महर्षि ने मानवीय चेतना तथा भगवद्शक्ति का अपूर्व मिलन करा दिया है और अपने 'जय' नामक ग्रंथ में इस मानुषी-दिव्य लीला का चिरंतर जयगान गाया है। अपने कर्तव्य-पथ पर बढ़ रहे मनुष के गात्र ढीले पड़ जाते हैं, मुख सूख जाता है, सारा शरीर कंपमान हो जाता है, तव यह गीता-गान उसे नवीन दृष्टि, अपराजेय शक्ति तथा विजयोल्लास से भर देगा। पांचजन्य का उद्घोष तथा गांडीव की टंकार उसके सभी विकारों और हृदयदौर्बल्य को सदा के लिए दूर कर देगा।

भगीरथ ने जिस प्रकार पृथ्वी पर गंगा को वहाया उसी प्रकार महर्षि व्यास ने पुरातन धर्म की लुप्त गंगोत्री को फिर से गीता के रूप में बहाया है। नर-नारायण का यशोगान गाती उनकी यह वाणी-गंगा समस्त विश्व को पावन करे!

अनु. ओंकारनाथ शर्मा

पाचनालय गुरुकुल कांगड़ी

रजनीकान्त मोदी

साँवली मोहिनी का मर्म

परम ज्योति-पुरुष श्रीकृष्ण अन्धकार का साँवला रंग धारण करके इस पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। कंस का कारागार भी काला और अन्धा था, जमुना भी काली थी, कमली भी काली थी: अनन्त रहस्यों की असूझ अभेद्य तमसा को जीवनभर निर्बाध भेदते ही चले गये थे वे प्रभु। उनकी साँवली मोहिनी में इन्हीं अनन्त रहस्यों की अगाध गहराइयाँ समायी थीं। मौलिक नव अध्यात्म-चिंतक और साधक श्री रजनीकान्त मोदी ने श्रीभगवान की उसी अतलगामी श्याम-श्री पर अपूर्व प्रकाश डाला है।

वैदिक साहित्य में अग्नि का एक नाम अथवा विशेषण 'कृष्णवर्त्मा' आता है जिसका अर्थ है कृष्ण अथवा अंधेरे पथ पर आगे बढ़नेवाला। अग्नि परमात्मा की संकल्पशक्ति अथवा इच्छा का प्रतीक है, तथा परमात्मा की इच्छा मानव के लिए अगम्य होने के कारण उसकी गति को गहन अथवा अंधकार में होनेवाली कहा गया है। ठीक इसी तरह कृष्ण का स्वरूप भी कृष्ण अथवा श्याम है। कृष्ण तो परमात्मा के अवतार हैं, परन्तु उन्होंने मनुष्य रूप धारण किया है इसीसे अति-परिचय के फलस्वरूप अवज्ञा से प्रेरित हो उनके सच्चे स्वरूप की गहनता की ओर हम लक्ष्य नहीं करते।

(वसु) देव तथा देवी (देवकी) की वे संतान थे, फिर भी उनका जन्म कारावास के अंधकार में तथा कृष्णपक्ष की अष्टमी को रात में हुआ। वसुदेव–वसु अर्थात् द्रव्य अर्थात् पृथ्वी में विद्यमान दैवत है

गोविन्द : शारदाचरण उकील

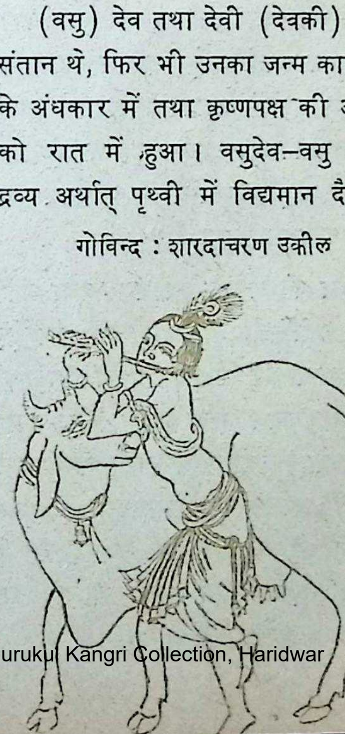

तथा देवकी भी धरा में उपस्थित दिव्यता अर्थात् दिव्यशक्ति हैं। परन्तु पृथ्वी तो जड़त्व का प्रतीक है और जड़तत्व का आविर्भाव अंधकारमय अचेतना में से हुआ है। इस जड़तत्व के भीतर भी अंधकार सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु साथ ही साथ उसके अन्दर परमात्मा भी छिपा हुआ है और बाहर अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील है। 'तम आसीत् तमसा गूढमग्रे'–प्रारंभ में तो (परम तत्व रूप) अंधकार (अचेतना रूप) अंधकार में गूढ़ बनकर रहता था।

कारागार अवकाश की अंधकारमय मर्यादितता का प्रतीक है और कृष्णपक्ष की अष्टमी काल की अंधकारमय मर्यादितता का प्रतीक है। इस प्रकार कृष्ण (अथवा काले) अवकाश में तथा कृष्ण (अथवा काले) काल में कृष्ण (अथवा काला, गहन, अगम्य) अवतार का आगमन बताया गया है।

कृष्ण की चमड़ी का रंग काला नहीं, अपितु ज्योतिर्मय, सुवर्णमय है। जिन्होंने आंतरचेतना में उनका दर्शन किया है उनका अनुभव यही कहता है। मात्र उनकी देह के आसपास नीली अथवा भूरे रंग की ज्योति का प्रभामंडल (aura, halo) है, जो उनके सुनहरे रंग से मिलकर एक विशेष प्रकार की कालिमा का आभास देता है।

जिस प्रकार कृष्ण का जन्म अंधकार अथवा गहनता में हुआ उसी प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन ही विशेष अंधकार अथवा अगम्यता में बीता। उनके किसी भी कार्य को भाग्य से ही कोई समझ पाता था। उनके अति निकट परिचय में आनेवाले व्यक्ति भी उन्हें समझ नहीं सकते थे। लगभग ७०-७५ वर्षों की दीर्घ तथा प्रगाढ़ मैत्री के बावजूद अर्जुन को कुरुक्षेत्र में कहना पड़ा 'सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तम्' तथा 'अजानता महिमानं तवेदम्'। कृष्ण के सभी कार्य आश्चर्यजनक हैं और उनकी इस गहन गति के अनुरूप ही उन्हें कृष्ण कहा गया है।

मज़े की बात तो यह है कि स्वयं काले होने पर भी कृष्ण की प्रियतमा राधा गोरी थी। उनका निकटतम सखा अर्जुन भी गोरा था। राधा तथा अर्जुन भिन्न-भिन्न दृष्टि से मानव-अंतरात्मा के प्रतीक हैं। राधा हृदय के प्रेम से परमात्मा को भजनेवाली अंतरात्मा है, जबकि अर्जुन मित्रता से परमात्मा की सहायता मांगनेवाली अंतरात्मा है और ये दोनों धवल हैं, उज्ज्वल हैं, परमात्मा के प्रति स्पष्ट हैं-इन दोनों के लिए जो गहन अथवा कृष्ण है उस परमात्मा के लिए वे स्पष्ट हैं।

कृष्ण धवल की इन विचित्र जोड़ियां (कृष्ण-राधा तथा कृष्ण-अर्जुन की) से भी विशेष विचित्र हैं कृष्ण से संलग्न दो

न्य काली वस्तुएँ। कालिन्दी के काले जल में कृष्ण ने कितनी ही बार डुबकी लगायी होगी और उसे और भी काला-बनाया होगा। इसके रहस्य को समझने के लिए श्री अरविन्द द्वारा वर्णित ऊर्ध्व जगत का क्रम जानना आवश्यक है। अपनी निम्न प्रकृति की शरीर-प्राण-मन-रूप की तीन भूमिकाओं के ऊपर अनुक्रम से (१) ऊर्ध्व मन (Higher Mind), (२) आलोकित मन (Illumined Mind), (३) स्फुरणा-त्मक मन (Intuitive Mind) तथा (४) अधिमनस (Super Mind) की भूमिकाएँ हैं। कृष्ण अधिमनस की भूमिका परसे हुआ परमात्मा का अवतरण है। सूर्य वेदों में अतिमनस का प्रतीक है। इस सूर्यरूप अतिमनस की पुत्री है यमुना, जो स्फुरणात्मक मन (Intuitive Mind) की प्रतीक है। मन के ऊपर की ये सभी भूमिकाएँ स्वस्वरूप में ज्योतिर्मय होने पर भी मानव के लिए तो ज्योति का अति-रेक रूप होने से अंधकारमय ही हैं। कृष्ण रूप अधिमानस चेतना का यमुनारूप स्फुरणा में निमग्न मानव चेतना से अत्यंत ऊर्ध्व में होनेवाली एक घटना है। ये दो भूमिकाएँ एक-दूसरे के आसपास होने से कृष्ण तथा यमुना का भी निकट का सम्बंध स्वाभाविक रीति से ही हमारे सम्मुख प्रकट होता है।

काले कृष्ण का एक और काली वस्तु से सम्बंध है। वह है कालीनाग अथवा 'कालीय नाग'। यह कालीय नाग अव-चेतना (Subconscious) का प्रतीक है। अवचेतना मानवचेतना के नीचे वास्तव में अंधकारमय भूमिका है। यह यमुना की भाँति ज्योति के अतिरेक से नहीं परन्तु ज्योति की अत्यंत अल्पता से मानव को अंध बनाती है। यमुना वैसे तो स्फुरणा (Intuition) की शक्ति है, परन्तु यह स्फुरणा जब प्राणमय अथवा जीवन की भूमिका से नीचे उतरती है तब वह अंध प्रेरणा (Instinct) का रूप ग्रहण करती है और वह अंध-प्रेरणा भी अपना सर ऊर्ध्वज्योति की ओर ऊँचा करती है। परन्तु स्फुरणा की ज्योति तक पहुँचने से पहले मानव मन के प्रदेशों में जब वह प्रवेश करती है, तब वह अंध-प्रेरणा वासनाओं, कामनाओं, अहंवृत्तियों प्रभृति अनेक विकृतियों को उत्पन्न करती है। इन सबके कारण मानव मन कलुषित होता है। इन सभी वृत्तियों को इसीलिए फिर से अवचेतना के नीचे दबा देना पड़ता है, और यह कार्य पृथ्वी पर अवतरित दिव्य चेतना करती है। यह कालीय नाग तथा कृष्ण के बीच–अंधकारमय अवचेतन वृत्तियों तथा दिव्य चेतना के बीच-संघर्ष है। कृष्ण कालीय नाग को मार नहीं डालते परन्तु यमुना के गहरे जल में नीचे धकेल देते हैं और वहाँ से

[शेष पृष्ठ १४१ पर]

राधा के दो वक्तव्य

अनामिका

●

आम्र मंजरियों के दिन चले गये,
न जाने क्यों, पतझर के आते आते,
लगता है कृष्ण तुम नहीं आओगे।
नहीं आओगे न तुम
बंसी सुनकर ठिठकी हुई गायें,
पत्थर न बन जायें, देखना कहीं,
मथुरा के द्वार द्वार कोई रुका हुआ स्वर,
घुटकर किसी नये व्यूह की रचना न कर डाले!

इतने दिनों से,
यमुना का जल,
और भी काला पड़ गया,
वृक्षों की शाखों से चमकती नन्हीं किरणें,
ठूंठ की पपड़ियों सी बिखर गयीं,
राह भर ऐसा लगा कृष्ण,
यह 'वह पुरानी' भूमि नहीं
यहाँ तो बस चुपचाप चल पड़ता, —समय!

अच्छा कृष्ण——
उस रोज़ क्यों कहा था तुमने,
"........................."
क्या पुरुष की आदिम जिज्ञासा नहीं थी वह,
अगर नहीं थी जिज्ञासा,
कौन सा मोह था, जिसका पाश आज,—
आज इस क्षण टूट गया है।
मैं हर क्षण की तरह टूट गई हूँ,
सच—हर अलग क्षण की तरह,
हर भोगी हुई अवस्था का अलग अस्तित्व,
मूंगे की माला जैसा मेरा भविष्य, कृष्ण पता नहीं
मथुरा के किस रेशमी धागे में जुड़ा हुआ,
यह पारदर्शक भविष्य
मेरे लिए तो पत्थर शेष है।

आम्र मंजरियों के दिन जा रहे हैं,
मुझे अच्छा लग रहा है
क्योंकि कृष्ण........
आम्र मंजरियों की यादें बहुत तीखी हैं!

[२]

मैंने देखा सब ओर....
एक आदिम पुरुष आता
हाथों में चमकते पुष्प
पाँवों में नौका
बहता आता—
मैंने देखा
एक आदिम पुरुष आता !
अरे तुमने नहीं देखा
वह छा गया सब ओर, वह पुरुष......
लोग कहते हैं
राधा नहीं चीन्हती उसे
अरे—मैं तो बताती हूँ
वह अकेला पुरुष चारों ओर छा गया।

लेकिन... लेकिन मेरे लिए क्या
मुझ पर तो टूटता ही जाता,
यह दैत्य सूर्य,
मुझ पर तो गिरता ही जायेगा,
यह कुरूप इन्द्र,
मुझसे खिलवाड़ करेगी ही,
डायन बिजली,
और तब लोग कहते हैं,
वह नहीं सुना जाता,
ओ, पुरुष — तुम कहो न कुछ,
मेरे लिए भी तो कहो,
बस मेरे लिए।

●

कलाकार महेन्द्रनाथ सिंह

भारतीय चित्र-कला में श्रीकृष्ण-लीला

श्रीकृष्ण का त्रिभुवन और त्रिकालमोहन व्यक्तित्व, ऐसा नानारंगी, इन्द्र-धनुषी और चित्र-विचित्र है, कि उनकी हर लीला, हर भंगिमा, अनायास ही एक अमिट चित्रांकन करती-सी ही सामने आती है। ऐसा लगता है, आकाश की अनन्त नीलिमा की हर नव-नवीन तरंग में, उनकी जीवन-लीला की चित्रमाला खुलती चली जाती है। भारतीय चित्र-कला के इतिहास में पुराकाल से आज तक, चित्रकारों के चित्त-केन्द्र और रचना-केन्द्र में जितने सर्वोपरि रूप से श्रीकृष्ण छाये रहे, उतना और कोई देवता नहीं। सुप्रसिद्ध चित्रकार, और भारतीय चित्रकला के साधक अध्येता श्री महेन्द्रनाथसिंह ने प्रस्तुत लेख में चित्रेश्वर प्रभु की युगान्तरव्यापी चित्रांकित छबियों पर अध्ययनपूर्ण प्रकाश डाला है।

भारतीय चित्रकला में श्रीकृष्ण लीलांकन का शुभारंभ गुजरात शैली से होता है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि गीतगोविंद की पाण्डुलिपियाँ हैं जिसे चित्र-रचना की दृष्टि से रेखा-रंगों का एक लघुप्रयासमात्र ही कहा जा सकता है। परंतु राजपूत कालीन चित्रों में वही लीलांकन अपने पूर्ण कलावैभव को लेकर प्रकट होता है। मध्ययुगीन चित्र-शैलियों के कृष्ण अपने रूपमाधुर्य की नव्य कल्पना से जनजीवन में छा जाते हैं। गोकुल में वह

उद्धव और गोपियाँ : राजस्थानी शैली

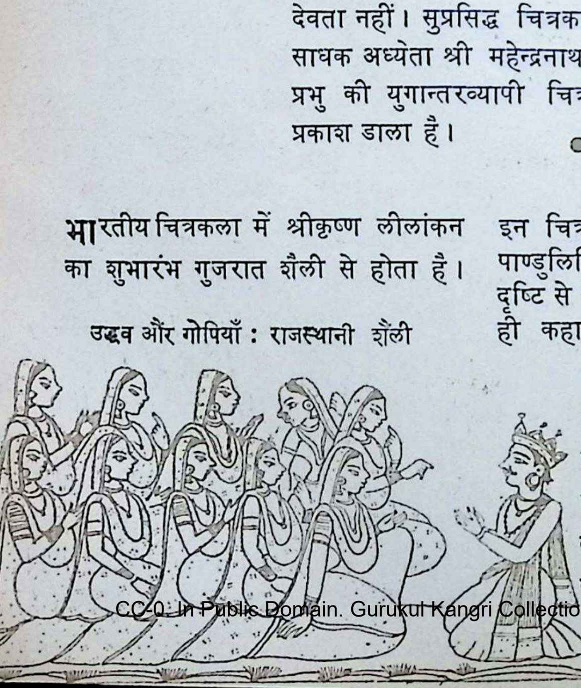

कुलचन्द्र कहलाते हैं। ब्रज में उन्हें ब्रजपति की उपाधि मिलती है। ब्रजप्रदेश से तब भक्ति-रस का एक अजस्र स्रोत ही फूट पड़ता है। धर्मभीरु समाज को एक नया जीवन मिलता है। काव्य और कला के क्षेत्र में यहीं से एक नया मोड़ उपस्थित होता है। कारण कि श्रीकृष्ण जैसा नायक और राधा जैसी नायिका का सुयोग इसके पूर्व न तो यहाँ के किसी काव्य में और न किसी चित्रशैली ही में प्राप्त होता है जहाँ श्रृंगार जैसे रसराज का अंकन इतने उन्मुक्त और स्वस्थ रूप से होने का अवसर मिला हो। यहीं तक नहीं श्रीकृष्ण की अलौकिकता को दर्शाने के लिए इन चित्रकारों ने भक्ति और श्रृंगार के बावजूद वात्सल्य, करुण एवं वीररस को भी अपने चित्रों में यथेष्ट स्थान दिया है। इन चित्रकारों ने श्रीकृष्ण के मधुर स्वभाव में लोकोत्तर आनन्द की कल्पना प्रतीकों के माध्यम से भी की है जो आज के जन मन को स्पर्श किये बिना नहीं रह सकती।

राजस्थानी चित्रशैली में श्रीकृष्ण के रूप की क्या कल्पनाएँ हैं इसे एक अंकित चित्र' में देखिये। शैली सर्वथा श्रृंगारिक है, फिर भी इस आदर्शवादी रूप की कल्पना में प्राण और स्पन्दन है। रंगों की सुसंवादिता (हारमनी) ने चित्र की एक बड़ी ही मनमोहक परिधि बना दी है। रत्नजटित मोरमुकुट, मुक्ता-

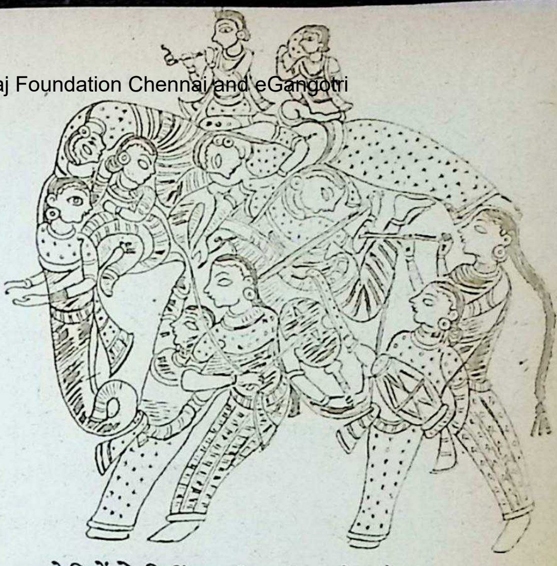

गोपियों से निर्मित हाथी : उड़ीसा लोक-शैली

मालाओं से अलंकृत वेश, कपोल पर लहराती अलकावलियाँ और मृगनयन देकर चित्रकार ने कृष्ण के आनन को भव्य और कांतिमय बना दिया है। उनके अधखुले ओठों की भावव्यंजना का तो पूछना ही क्या ? मुखाकृति से भाव टपकना ही चाहता है। और यह आँख मुंह से भी अधिक वाचाल दीख पड़ती है। जयपुर शैली का यह प्राणवान् चित्र बड़ी भावुकता के साथ अंकित किया गया है जो प्रथम दृष्टि में ही अपने श्रृंगारिक लालित्य से हमारा अंतःकरण सराबोर कर देता है। किशनगढ़ शैली में खंजन नयन रचने की प्रथा है। इन बाँके नयनों की शोभा वहाँ देखते ही बनती है। इस शैली में बाँकेबिहारी को बाँके नयन ही प्राप्त होते हैं। वास्तव में इन प्रतीकात्मक आँखों की रचना से ये [illegible] हैं और उनके माध्यम से

भावाभिव्यक्ति खुलकर होने लगती है। श्रीकृष्ण के समग्र रूप की यह अभूतपूर्व कल्पना देखकर अकस्मात् यह दोहा स्मरण हो आता है–

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इकबार॥

यहाँ के काव्य और चित्रों में श्रीकृष्ण के स्वरूप का ऐसा लालित्यपूर्ण चित्रण प्राप्त कर समाज सगुणोपासना की ओर लालायित हो उठता है। यही स्थल है जहाँ से गोपियाँ प्रणयभूमि का दर्शन करती हैं और इसी विहारस्थली से उन्हें संयोग-वियोग के फूल-काँटे मिलते हैं। इस संयोग-वियोग के प्रशस्त पथ का मर्मस्पर्शी चित्र हमें यहाँ की प्रत्येक चित्र-शैली में देखने को मिलते हैं जहाँ वसंत, संयोग और वर्षा वियोग का प्रतीक बनकर आती है।

वर्षा के प्रकोप का एक सुखारोपित चित्रण काँगड़ा शैली के 'गोवर्धनधारी कृष्ण' चित्र में देखिये। यह चित्र श्रीकृष्ण के अटूट स्वदेश प्रेम की याद दिलाता है। ब्रज पर विपत्ति के बादल मँड़रा रहे हैं। इन्द्र का प्रकोप कहर ढा रहा है जिसे चित्रस्थ पात्रों की आतंकित मुद्रायें स्वयं व्यक्त कर रही हैं। ब्रजपति रक्षा में संलग्न हैं फिर भी ब्रजजन वर्षा वेगी वाण के शिकार होते जा रहे हैं। पल को कल्प में काटनेवाली गायों का मूक संवेदन उनके कान और विकृत वदन की गतिमान मुद्राओं से व्यक्त हो रहा है। इस दुर्दिन का सामना लोकनायक श्रीकृष्ण किस धैर्य और साहस के साथ कर रहे हैं यही इस चित्र का वर्ण्य विषय है। इस गु अभियान में सकल समाज के साथ उन्हें प्राणशक्ति राधा का भी सुयोग प्राप्त है।

राजस्थानी शैली का एक हाथी-चित्र

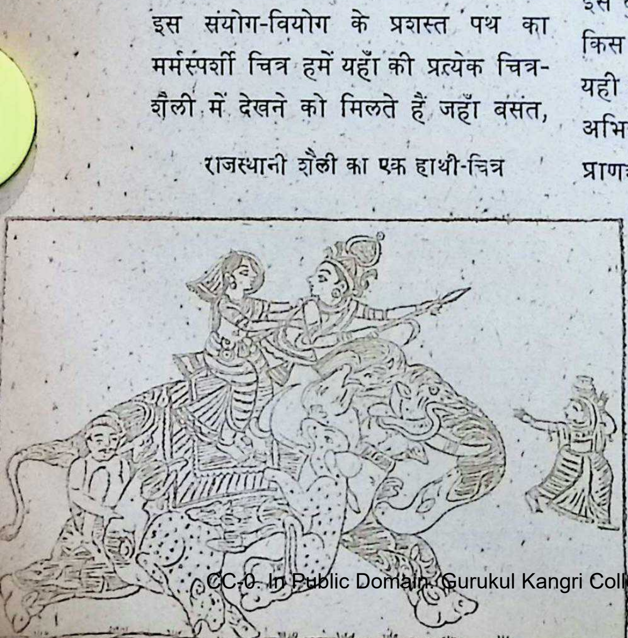

कैसी यह लीला है और कैसी यह विडम्बना कि विपत्ति के ये काले बादल ब्रज के शोकसागर से उठकर आज उसे ही जलमग्न कर रहे हैं। परन्तु भक्तवत्सल श्रीकृष्ण के उदात्त गुणों का ही यह प्रभाव समझना चाहिये जिससे ब्रजवासियों के चेहरों पर मुस्कराहट दौड़ने लग गई है। वर्षा-जनित अनुभूतियों की ऐसी तीव्रतम

अभिव्यक्ति शायद ही किसी चित्र में दीख पड़े।

वियोगावस्था में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के हृदय में क्या बीतती है, इसे राजपूतशैली के 'उद्धव और गोपियाँ' चित्र में देखिये। बात यह है कि उद्धव कला के पर्दे पर ज्ञान का नाटक खेलना चाहते हैं। यानी कला के अवतार श्रीकृष्ण की अवहेलना कर वह गोपियों पर अपना सिक्का जमाना चाहते हैं। बार-बार प्रयत्न करने पर भी ये मुखर गोपियाँ उन्हें अवाक् कर देती हैं। कला (कृष्ण) की प्यासी गोपियों के हृदय में उद्धव का शुष्क ज्ञान नहीं समा पाता है। हाथ जोड़े उद्धव और गोपियों की भर्त्सनायुक्त मुद्राओं के अंकन में चित्रकार को अच्छी सफलता मिली है। वास्तव में मसला यहाँ है भक्ति (कला) और ज्ञान का। यह हृदय ही भक्ति का उद्गम स्थान है (जो प्रतिक्षण रूपरंग और रस से सिक्त रहता है) जहाँ से कला उदित होती है। कला और भक्ति का उद्गार हृदय से होता है परंतु इसके विपरीत ज्ञान की उपज शुष्क मस्तिष्क से होती है। इसीलिए निर्गुण को रूप-रंग-रस-हीन शुष्क ज्ञान कहा गया है। सर्वगुण संपन्न होने के नाते श्रीकृष्ण सकल कलाओं के अवतार माने जाते हैं और कला के व्यापक अर्थ 'कर्तव्य' के रूप में समाज के सुखदुःख में वे सदा हाथ बटाते हैं। परंतु ज्ञानमार्गी उद्धव का शुष्क और सूक्ष्म मार्ग सबको सुझाई नहीं पड़ता। इसीलिए गोपियाँ उन्हें बारबार निर्गुण कहकर संबोधित करती हैं। अतः सगुण और निर्गुण यहाँ कला और ज्ञान के द्योतक हैं। उद्धव को अपने ज्ञान पर गर्व है। आये तो हैं वह यहाँ गोपियों का हृदय सम्पादन करने-परंतु उनके हृदय अर्थात् कला का अभाव ज्ञान को भी ले डूबता है। सगुणभक्ति (कला के अवतार श्रीकृष्ण) के स्वरूप की मार्मिक व्याख्या इस नाटकीय कौशल से इस छोटे से चित्र में संयोजित की गयी है कि ज्ञान के प्रखर सूर्य-उद्धव कला की निर्मल ज्योति गोपियों के आगे निष्प्रभ हो जाते हैं।

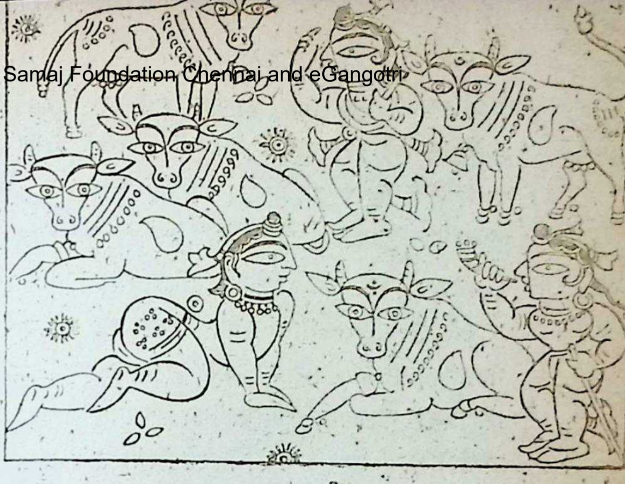

गायों के बीच ग्वाल-बाल और गोपाल :
चित्र : यामिनी राय

इन चित्रों की यही विशेषता है कि

इनमें बाहरी स्वरूप को महत्व न देकर मनोवृत्ति को अंकित करने की चेष्टा की जाती है। इस प्रकार के चित्रण की एक परिपाटी ही राजपूत शैली में चल पड़ती है। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ और बूंदी आदि स्थान कृष्ण जीवन की नाना घटनाओं (कालिय दमन, दावानल आचमन, कंस-वध, सुदामा का स्वागत आदि) को चित्रित कर रंग-बिरंगे चित्रों से जगमगा उठते हैं। परंतु जयपुर और किशनगढ़ के चित्रों में इन्हीं प्रतीकों के सौंदर्य ने उन शैलियों को चिरस्मरणीय बना दिया है। राजस्थानी शैली का एक प्रतीकात्मक हाथी चित्रण देखिये जिस पर कृष्ण राधा के साथ विराजमान हो रहे हैं। कुछ कला-आलोचक इसे मात्र आलेखन (डिज़ाइन) ही मानते हैं परंतु भारत की चित्रकला में (जिसकी आधारशिला मण्डनात्मक है) उसे कोरा आलेखन ठहराना अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देना है और राजस्थानी चित्रशैली के प्रति अन्याय करना है।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में यह अपने ढंग का पहिला हाथी चित्र है जिसे प्रतीकों के समुचित प्रयोग से प्राणवान बनाया गया है। हाथी के चारों पैर के अग्रभाग खरगोश की स्फूर्तिमयी आकृति से रचे गये हैं। जंघों पर चीते और भैंसों की शिकारी मुद्राएँ सजीव हो रही हैं। शेष भाग अन्य वन्य पशुओं शेर, शूकर, सर्प, घड़ियाल आदि की हिंसक मुद्राओं से अंकित हैं। हाथी का मस्तिष्क, विकृत दिखाने के लिए ही चित्रकार ने सिर से सूंड तक का हिस्सा अनेक जीव-जन्तुओं की भयकारी मुद्राओं से बनाया है। समूचे चित्र में भय और आतंक का ताण्डव हो रहा है। महाकाल का प्रतिरूप हाथी अपनी सूंड और पूंछ को ऊपर उठाये, चारों पैरों को फैलाये बिजली की चाल से बेचारी ग्वालिनी को अपनी सूंड में समेटना चाहता है। और चित्र के अन्य हिंसक पशु राधा को झपटना चाहते हैं। मतवाले हाथी को नियंत्रित करने के लिए कृष्ण उसके गंडस्थल में अंकुश धसा रहे हैं फिर भी निरंकुश हाथी भागता ही जारहा है। इन अबलाओं की जान गाढ़े में है। एक ओर बिचारी ग्वालिनी दही की मटकी सम्हाले, हाथ पसारे त्राहिनाथ! त्राहिनाथ!! कर रही हैं। और दूसरी ओर सहचरी राधा बाधाओं से तंग आकर अपने प्राणों की भिक्षा माँग रही है।

इस चित्र में कृष्ण की माया का अंकन लाक्षणिक पद्धति से किया गया है। उनकी लीलाएँ अनन्त हैं। एकोऽहं बहुस्याम। उनकी अद्भुत लीला और चमत्कार को व्यक्त करने के लिए ही चित्रकार ने हाथी का यह स्वरूप दिया है। वह राधा और गोपी के साथ

यहाँ भी उसी प्रेमभाव से रम रहे हैं। यह हमारी दृष्टिभेद है जिसे हम समझ नहीं पाते। प्रेम का सौदा इतना सस्ता नहीं जितना दुनिया समझती है। उसके लिए तो आत्मोत्सर्ग भी कोई महँगी चीज नहीं। राधा और ग्वालिनी की चित्रित मनःस्थितियाँ बरबस ही इस युक्ति की याद दिला देती हैं–'चढ़े तो चाखै प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर।'

ब्रजप्रदेश तो श्रीकृष्ण की लीला भूमि ही ठहरी, बंगभूमि भी उनके रंग में रंग उठती है। कहना न होगा कि बंगाल चित्रशैली के भी प्रिय चित्रण-विषय श्रीकृष्ण ही रहे हैं। कलाकार नन्दलाल बोस तथा उकील बंधुओं ने इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न किया है। पर नन्दबाबू ने अपने कृष्ण संबंधी चित्रों में सर्वथा एक नयी दृष्टि दी है। 'महाभारत युद्ध में कृष्ण और अर्जुन' इनकी एक ऐसी ही असाधारण चित्र-रचना है जो कला-तकनीक की मौलिकता के साथ-साथ भाव-विचारों की गहरायी से भी ओतप्रोत है। इनके 'कृष्ण और राधा' चित्र की भी अपनी विशेषतायें हैं। वह बाँसुरी जिसे गोपियाँ बैरिन समझ कर सदा उपेक्षित किया करती हैं उसे राधा अपने अधरों पर रखने के लिए विशेष उत्सुक चित्रित की गयी है। अब कलाकार यामिनी राय की तूलिका से 'कृष्ण की बाल-क्रीड़ा' का एक चित्र

सुकुञ्चित रेशमी
केश राशि के लिए

परफिउमड्
कैस्टर
आयल
व्यवहार करें

यह मनोरम सुगन्धयुक्त केश तैल है।

बंगाल केमिकल
कलकत्ता : बम्बई : कानपुर

देखिये। गोविंद पाटल-धवल गायों के बीच घुटनों के बल खेल रहे हैं। खेलते-खेलते वह कलोरों के बैठने का स्वांग भी करने लगते हैं। खेल पूरा भी नहीं हो पाता और गायों के चारागाह का समय हो जाता है। अतः कृष्ण के वाल सखा तुरही और लकुटी लिए वहाँ पहुँच जाते हैं और बैठी गायों को मधुबन ले जाने के लिए उकसाने लगते हैं। परंतु गोपाल को गायें और गायों को गोपाल इतने प्यारे हैं कि वलराम के लाख तुरही वजाने पर भी गोविंद की समीपस्थ गायों के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। साहचर्य भाव का ऐसा संश्लिष्ट चित्रण जिसमें बाल-सुलभ व्यापार और चेष्टाओं की इतनी सफल अभिव्यक्ति हो, शायद ही किसी आधुनिक चित्र में देखने को मिले। श्री राय रेखा-रंगों के जितने मितव्ययी हैं रस-भावों के उतने ही शाहखर्च।

वैसे काशी शंकर की नगरी कही जाती है। यहाँ भूतनाथ ही बसते हैं ऐसी वात नहीं। यहाँ की चित्रित दीवालों और यहाँ के धातु एवं काष्टशिल्पों से पता चलता है कि इस नगरी में गोपीनाथ भी रहते हैं जो अपनी माधुरी मूर्ति से जनजीवन का त्रय ताप जुड़ाते रहते हैं। काशी चित्रशैली में भी कृष्णजीवन के ललित अंशों को लेकर रसात्मक चित्र संयोजित हुए हैं। कृष्ण की जीवन व्यापी लीलाओं से भारत के लोक चितेरे भी काफी हद तक प्रभावित हैं। बंगाल के एक पट-चित्र में यशोदा गाय दूहती हुई दिखाई गई हैं जिसका निरीक्षण वालकृष्ण वड़ी उत्सुकता से कर रहे हैं। गाय भी अपनी गर्दन घुमा कर कृष्ण को मातृवत भाव से देख रही है। क्या ही मनोहारी भावव्यंजना है। उड़ीसा लोक कला शैली के भी अंकन विधान कम चित्ताकर्षक नहीं होते। अपनी सरल सीधी तकनीक से किसी भी विषय को ये रसमय कर देते हैं। कम से कम रंग-रेखाओं में अधिक से अधिक भाव भरने में ये विशेष पटु हैं। इनकी

धन कमाने का साधन लघु उद्योग

इस हिन्दी भाषाकी पुस्तक में आधुनिक युग में प्रचलित उन लाभदायक लघु उद्योगों का वर्णन है जिनसे लोग सहस्रों रुपये कमा रहे हैं। सरल किश्तों पर सरकार से मशीनरी प्राप्त करना, लघुउद्योग के लिए सरकारी आर्थिक सहायता, कच्चा माल तथा, मशीनरी मिलने के पते, विदेशों को माल भेजने तथा मंगाने का विस्तारपूर्वक खुलासा भी है, पृष्ठ संख्या ८८० है, मूल्य तेरह रुपये है, डाक व्यय रु. १—५० अलग।

कॉटेज इण्डस्ट्री (BH-20) पी. पी. १२६२, भरतीदफ्तर के पीछे।
जमना रोड, निकट लाल किला, दिल्ली—६

स प्रकार की चित्र-रचनाओं में 'चीर-रण' और 'रसेश्वर की प्रणयलीला' का संयोजन वृत्तों के अन्दर कलात्मक ढंग से किया गया है। लोक कला होने के नाते न चित्रों में एक स्वाभाविक प्रवाह है। स कलाशैली में भी गोपियों से सुसंयोजित क हाथी चित्र मिलता है। राजस्थानी शैली के हाथी जैसा ही इस हाथी का भी संचालन लीलापुरुष श्रीकृष्णस्वयं कर रहे है। वल्कि यो कहिये कि वह राधा के साथ उस पर बैठ कर चैन की बंशी बजा रहे हैं।

इस हाथी चित्र से उड़ीसा-लोक-चितेरों की प्रगीतात्मक चित्ररचना का सहज बोध हमें आसानी से हो जाता है। खेल-खेल ही में इन्होंने लोकरंजकता से परिपूरित यह एक असाधारण चित्र-रचना कर दिखायी है। यहाँ श्रीकृष्ण के गोपिका-वल्लभ नाम की क्या ही सार्थकता है। सच पूछिये तो यह चित्र रसेश्वर के महारास का एक अच्छा खासा दृश्य उपस्थित करता है। हाथी के अंग-प्रत्यंग में गोपियों की रसभाव सम्पृक्त मुद्राओं का सौंदर्य लहरा रहा है। चित्र की कुछ गोपियाँ सितार, वेला, बाँसुरी और मृदंग से महारास को स्वर ताल और ध्वनिमय कर रही हैं। शेष गोपियाँ अपने मनोहारी हावभाव से नृत्य की मुद्राओं की सरस स्मृति करा रही हैं। उनके रंग-विरंगे वस्त्राभरण भी महारास के अनुरूप ही बन पड़े हैं। चित्रस्थ नौ गोपियाँ मानो नवरंग वर्षा रही हैं। और सर्वोपरि आह्लादिनी शक्ति राधा के संग लीलापुरुष का वंशीवादन ! संगीतमय रूपक के माध्यम से अंकित यह महारास भला किसे आत्मविभोर नहीं कर जाता है। इस प्रकार से भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन चित्रशैलियों के परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन शैलियों के एकमात्र प्राणतत्व श्रीकृष्ण ही हैं।

☆

[पृष्ठ १३१ का शेष]

वह नाग समुद्र में—अप्रकेतं सलिलं शब्दों से वेदवर्णित अचेतना के समुद्र में—चला जाता है।

यह है तीन काले और दो धवल का रहस्य। एक ओर कृष्ण, यमुना तथा कालीय नाग काले हैं और दूसरी ओर राधा तथा अर्जुन धवल हैं। इन कालों तथा धवलों की वात से वेद का एक मंत्र याद आता है:

> अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च।—
>
> (ऋग्वेद ६.९.१)

जिसमें कृष्ण और धवल दिनों का उल्लेख है। यह मंत्र हमारे समक्ष एक अन्य ही गहन आध्यात्मिक रहस्य रखता है, परन्तु उसे खोजने का यह अवसर नहीं।

राजकमल चौधरी

रुक्मिणी-हरण का परम प्रेमिक नायक

> 'प्यार से बढ़ कर अलौकिकता और नहीं होती है, अजुन ! प्यार ही ईश्वरत्व है। अस्तित्व समाप्त हो जाता है, आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है, और मनुष्य स्वयम् ईश्वर बन जाता है–अगर उसे प्यार का एक सम्पूर्ण क्षण मिल जाये–अखण्ड और अनन्त क्षण।'

[यह नाटक स्थान, काल, और पात्र की समस्त औपचारिक सीमाओं का (तथा नाटक की अन्य औपचारिकताओं का) अतिक्रमण करता है। यह नाटक कालजयी न भी हो, कालहीन अवश्य है और, जैसे एक ही रंगमंच पर एक ही नाटक बार-बार अभिनीत होता है – 'दिस इज़ ऑल, वट ए स्टेज़ !'

रुक्मिणी-हरण एक बार नहीं हुआ, और ऐसा भी नहीं है कि अब कभी नहीं होगा ! मन्वन्तर-सत्य भी शायद, यही कहता है।

रंगमंच पर बेहद पीला अन्धकार छाया है। इस अँधेरे में कोई चीज़ सही-सही नजर नहीं आती। सिर्फ, पीछे की दीवार पर एक आदमक़द तस्वीर टंगी है। तस्वीर में भगवान श्रीकृष्ण का हंसश्री रथ है, जिसमें सात घोड़े हैं। और, रथ के पिछले हिस्से में राजकुमारी रुक्मिणी बैठी है। सामने खड़े श्रीकृष्ण एक हाथ से रास पकड़े हैं और उसी हाथ में धनुष रखे दूसरे हाथ से उस पर तीर चढ़ा रहे हैं। तस्वीर पर तेज़ रोशनी फैली है, और पार्श्व से घोड़ों की टाप और फौज़ी वाजों की आवाज़ आ रही है। धीमे कदमों से चलती हुई एक स्त्री स्टेज पर आ जाती है। यह रुक्मिणी है।

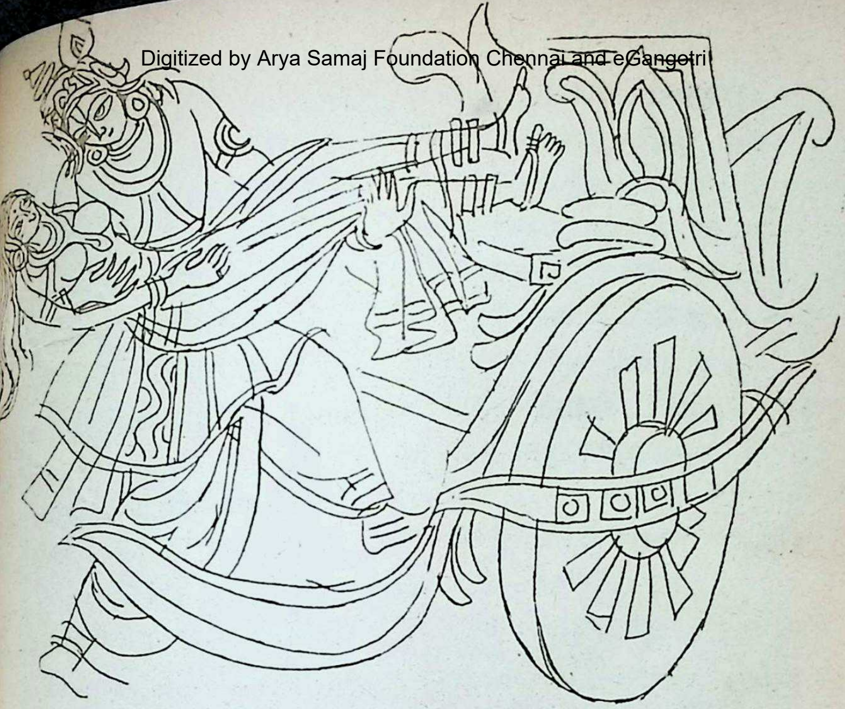

बेहद पीले अंधेरे के कारण उसका चेहरा नहीं दीखता है। उसके वस्त्र नहीं दीखते। सिर्फ उसकी चाल कहती है कि वह इस नाटक की नायिका है और रुक्मिणी है।]

रुक्मिणी : मैंने उसे भगवान नहीं समझा था। स्वर्ग का कोई साधारण-सा देवता तक नहीं। मेरे लिए वह मनुष्य था, कोई भी सुन्दर और पराक्रमी मनुष्य, जिसे कोई भी युवती प्यार कर सकती है और जिसका प्यार पाना चाह सकती है। देवता की पूजा की जाती है, उसे प्यार नहीं किया जाता ! श्रद्धा और ही चीज है। और ही चीज़ है पाप और पुण्य ! मैंने श्रद्धा नहीं की। मैं पाप और पुण्य, न्याय और अन्याय की उलझन में नहीं पड़ी। क्योंकि, मैंने प्यार किया।

[और, तभी विंग से एक मामूली-सा आदमी बाहर निकल आता है। शायद, यह वेदव्यास है। शायद, इसीने यह नाटक लिखा है।]

वेदव्यासः तुमने प्यार नहीं किया, रुक्मिणी ! तुम झूठ कहती हो। तुमने श्रीकृष्ण के गले में वरमाला

नहीं डाली। तुम तो जरासन्ध की ओर, और शिशुपाल की ओर, और सुयोधन, और महाबली, और जयद्रथ, और सभा में उपस्थित अन्य राजाओं की ओर देख रही थीं। एक क्षण के लिए तुमने श्रीकृष्ण को देख भी लिया, मगर उसकी ओर गयी नहीं ! राजाओं की क़तार में ही घूमती रहीं। तुमने प्यार कब किया ?

रुक्मिणी : तुम पुरुष हो ! स्त्री के प्यार का तुम्हें पता नहीं चल सकता है, प्रभु ! तुम सन्यासी हो।

वेदव्यास: मगर, तुमने प्यार कब किया ? उसने तुम्हें देखा और तुम उसे पसन्द आ गयीं। वह तुम्हारे रूप का बखान सुनकर ही इस स्वयंवर सभा में आया था। उसने तुम्हें देखा, और अवसर पाते ही तुम्हें अपनी बाँहों में उठाकर ले गया। सभी राजा देखते ही रह गये– अवाक् ! सभी भयभीत हो गये। वह श्रीकृष्ण था–द्वारकापुरी का सम्राट ! यादव सेना का अधिपति ! मथुरा के सम्राट कंस का दमन करने वाला ! सभी राजा निस्तब्ध रह गये, और उसने तुम्हें अपने विद्युतगामी रथ पर बिठा लिया। तुमने प्यार करने का अवसर ही कब पाया, रुक्मिणी ?

रुक्मिणी : प्यार के लिए एक युग नहीं चाहिए, प्रभु ! मात्र एक क्षण चाहिए। पूरा एक क्षण भी नहीं, उसका शत-सहस्रांश ! मैंने उसे देखा, और मेरी एक दृष्टि ने उसे बता दिया कि मैं उसे प्यार करती हूँ, और-उसकी एक दृष्टि ने ......

वेदव्यास : तो तुमने उसके गले में वरमाला क्यों नहीं डाल दी ? हाथ में माला लिए सहेलियों के साथ इस राजा के पास, उस राजा के सामने घूमती क्यों थीं ? मुख्य स्थान पर ही तो श्रीकृष्ण खड़ा था ! तुम उसके समीप गयीं ही नहीं !

रुक्मिणी : मैं क्यों जाती उसके समीप ? मैंने उसे प्यार किया। मैंने उसे बता दिया कि मैं प्यार करती हूँ। इससे अधिक मैं क्या कर सकती थी ? प्यार मैंने बता दिया। माला डालने से क्या होता है, प्रभु ? मैं उसका नाम नहीं जानती थी, यह भी नहीं कि वह सम्राट है अथवा सारथी, अक्षौहिणी का सेनापति है, अथवा सेवक ! मगर, मैंने प्यार बता दिया। और, मैं प्रतीक्षा करने लगी। मैं उसके परिचय की प्रतीक्षा करने लगी। और, पराक्रम के सिवा पुरुष का और परिचय ही क्या होता है ? मैं उसका पराक्रम देखना चाहती थी। मैं चाहती थी कि

वह मेरा अपहरण करले, और सभी राजाओं के चेहरों पर कालिख पुत जाय। मैं वही चाहती थी प्रभु, जो उसने किया....

[वेदव्यास सिर झुकाये वापस चला जाता है। और, उसके जाते ही अचानक रंगमंच पर उजाला फैल जाता है। अब उजाला है, और कोर्टरूम के गवाही के कठघरे में रुक्मिणी खड़ी है। सामने के कठघरे में अभियुक्त है। समूचा रंगमंच काले लबादे वाले वकीलों और दर्शकों से भरा है। सफ़ेद 'विग' लगाये न्यायाधीश किसी क्रिश्चियन सन्त की तरह दीखते हैं। अभियोगी-पक्ष के वकील की जिरह चल रही है।]

बैरिस्टर दास: नहीं, माइ लॉर्ड, रुक्मिणी झूठ कहती है। अभियुक्त को बचाने के लिए झूठ कहती है। रुक्मिणी नहीं चाहती थी। अगर, चाहती होती, तो अभियुक्त को यह सब करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अभियुक्त ने बड़ी होशियारी से सारा कुछ प्लैन किया है, माइ लॉर्ड, ही प्लैन्ड इट! उसने रुक्मिणी के घर के नौकरों को मिलाया, पहरा देने वाले कुत्ते को ज़हर खिला दिया, और आधी रात को रुक्मिणी के कमरे में घुस गया। रुक्मिणी उसे देखकर चिल्लाने लगी। घर के सारे लोग जाग गये। मगर, अभियुक्त के हाथों में भरी राइफल थी। वह डर से बेहोश हो गयी। उसने रुक्मिणी को कन्धे पर लादा, और मकान से निकलकर अपनी खुली कार में रुक्मिणी को पटक दिया। रुक्मिणी नहीं चाहती थी, माइ लॉर्ड, रुक्मिणी हैज़ बीन किडनैप्ड!

जस्टिस चौधरी: तब रुक्मिणी आज ऐसा क्यों कह रही है? वह इतनी जल्दी बदल कैसे गयी?

बैरिस्टर दास: बात एकदम साफ है। माइ लॉर्ड! वह अपने पिता और भाइयों को अपमानित-लांछित करना चाहती है। रुक्मिणी बहुत सेन्टिमेन्टल लड़की है। उसे गुस्सा है कि उसके परिवारवालों ने अभियुक्त के हाथों से उसकी रक्षा क्यों नहीं की! उसे गुस्सा है कि राइफल के सामने आने की हिम्मत उन्हें क्यों नहीं हुई! उसे गुस्सा है, माइ लॉर्ड! इसीलिए आज वह अपना स्टेटमेन्ट बदल रही है। पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार....

जस्टिस चौधरी: रुक्मिणी तुम्हारी उम्र कितनी है?

रुक्मिणी : औरत की कोई उम्र नहीं होती है, जज साहिब, और मैं तो सिर्फ औरत नहीं हूँ, मैं प्यार भी करती हूँ। जबसे मैंने श्रीकृष्ण को देखा है, उसे प्यार करती हूँ। यह सच है कि वह मुझे भगा ले गया है। मगर, मेरी आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध नहीं। वह साहसी है, पराक्रमी है। और, प्यार करता है! औरत इससे अधिक कुछ नहीं चाहती है, जज-साहब, औरत प्यार करने वाले और प्यार की रक्षा करने वाले पुरुष के सिवा कुछ नहीं चाहती है।

बैरिस्टर दास : माइ लॉर्ड, स्कूल-सार्टिफिकेट के अनुसार रुक्मिणी बालिग हो चुकी है, मगर मेडिकल-रिपोर्ट के अनुसार अभी यह पन्द्रह साल से ज्यादा नही है। रुक्मिणी की माँ के बयान के अनुसार रुक्मिणी कुल पन्द्रह साल पाँच महीने ग्यारह दिन की है, माइ लॉर्ड!

[कठघरे में खड़ी रुक्मिणी अचानक दोनों हाथों से सिर थाम कर कुर्सी पर बैठ जाती है और चीख़ती है,–'पानी!' अदालत में खलबली मच जाती है। रुक्मिणी की माँ पानी का थरमस आगे बढ़ाती है। बैरिस्टर दास थरमस के कटोरे में पानी भर कर रुक्मिणी की तरफ बढ़ाते हैं। इतने में अभियुक्त-पक्ष का बैरिस्टर उठ खड़ा होता है।]

बैरिस्टर सिंह : नहीं, नहीं! रुक्मिणी को थरमस का पानी नहीं दिया जाय। इस पानी में ज़हर हो सकता है।

बैरिस्टर दास : माइ लॉर्ड, ज़हर की बात उठाकर बैरिस्टर सिंह जूरी के माननीय सदस्यों को अभियोगी-पक्ष के ख़िलाफ करना चाहते हैं!

बैरिस्टर सिंह : नहीं, माइ लॉर्ड, रुक्मिणी के प्राणों का सवाल है! थरमस के पानी में ज़हर मिलाया जा सकता है। रुक्मिणी की माँ राज-परिवार की महिला हैं। वे ज़रूर चाहेंगी कि खानदान की परम्परा तोड़ने वाली लड़की का प्राणान्त हो जाय। वे रूढ़िग्रस्त हैं। वे नहीं चाह सकती कि उनकी बेटी को जो आदमी राइफल की ताक़त से उठा ले जाय, रुक्मिणी उसी को प्यार करे, और उसके प्यार को पब्लिकली स्वीकार करे! माइ लॉर्ड, रुक्मिणी को यह पानी नहीं दिया जाय!

[मगर, तब तक वह पानी पी चुकी है। थरमस का सारा पानी पी चुकी है, और सीधी खड़ी निगाहों से अभियुक्त की ओर

देख रही है। अभियुक्त के कठघरे में अँधेरा तो नहीं है। मगर जैसे धुआँ फैला है। उसका चेहरा ठीक-ठीक नज़र नहीं आता। पता नहीं चलता वह रुक्मिणी को देख रहा है या नहीं !]

स्टर चौधरी : रुमिक्णी पानी पी चुकी है, बैरिस्टर सिंह ! आप जूरी को प्रेज्युडिस करने की कोशिश मत कीजिए !

स्टर दास: रुक्मिणी देवी, आप अभियुक्त को पहले से जानती थीं ? 'हाँ' या 'नहीं' में जवाब दीजिए !

मणी: नहीं !

स्टर दास : आपने अभियुक्त को पहली वार कब देखा ?

मणी: मैं अपने कमरे में सोयी हुई थी। गहरी नींद में थी। मैं सारी उम्र अपने कमरे में सोयी रही थी। और जब अचानक मेरी नींद खुली। रोशनी की तेज किरनों ने मुझे झकझोर दिया, और मेरी नींद खुली तो मैंने देखा, वह मेरे पास खड़ा है। मैंने सिर्फ उसकी आँखें देखीं और उन आँखों में अपना संपूर्ण इतिहास, अपना संपूर्ण भविष्य अंकित देखा। मैंने उसके हाथ में पड़ी राइफल नहीं देखी। मैंने सोचा नहीं कि वह क्यों और किस तरह मेरे बन्द कमरे में आ गया है। मैंने, सिर्फ आँखें देखीं और आँखों में देख लिया प्यार। मैंने पहली बार ही प्यार देखा....

बैरिस्टर दास : मैं प्यार की नहीं, अभियुक्त की बात पूछता हूँ रुक्मिणी देवी ! आपने अभियुक्त को पहली बार देखा। अपने कमरे में देखा। उसके हाथों में राइफल थी। आप डर से चीख़ने लगीं। उसने आपको अपने कन्धे पर उठा लिया, और आपके चीख़ने-छटपटाने की परवाह किये बिना, कमरे से बाहर निकलकर दोमंज़िले की सीढ़ियाँ उतरने लगा। क्यों ठीक है न ?

रुक्मिणी : ठीक है या नहीं, मुझे कुछ याद नहीं है। मैंने उसे देखा, इसके बाद मुझे कुछ याद नहीं है। मैं खो गयी। मैं हमेशा-हमेशा के लिए खो गयी। मुझे कुछ भी मालूम नहीं है, मेरे साथ इसके बाद क्या हुआ !

बैरिस्टर दास : अब आप अपना स्टेटमेन्ट बदल रही हैं। आप पहले कह चुकी हैं, आपने अभियुक्त की बाहों से छूटने की कोशिश की, और अपने पिताजी और अपने भाइयों को पुकारती रहीं। मगर, वह बहुत ताकतवर

था, और उसके हाथ में भरी हुई राइफल थी !

रुक्मिणी : आप मेरी बात नहीं समझेंगे वैरिस्टर, आप औरत को नहीं समझ सकेंगे। मैं छूटने की कोशिश कर रही थी, मगर, मैं चाहती थी कि उसकी पकड़ इतनी मजबूत हो कि मैं छूट नहीं सकूँ। मैं अपने भाइयों को पुकार रही थी, क्योंकि मैं चाहती थी कि मेरे भाइयों के सामने, मेरे पिता के सामने, सारी दुनियाँ के सारे लोगों के सामने वह नुझे उठा ले जाये, और कोई उसे रोक नहीं सके !

बैरिस्टर दास : दिस इज़ इम्पॉसिवल ! यह असंभव है, माइ लॉर्ड, ऐसा हो नहीं सकता। रुक्मिणी के पास अक्ल है, समझदारी है, विद्या-बुद्धि है। यह हो नहीं सकता कि वह अभियुक्त को प्यार भी करती रहे, और शोरगुल मचा कर उसे मुसीवत में भी डाल दे। दोनों नहीं हो सकता, या तो प्यार हो सकता है, या उसके पंजे से छूटने की कोशिश !

बैरिस्टर सिंह : दोनों हो सकता है, माइ लॉर्ड ! एक साथ दोनों बातें हो सकती हैं। इतिहास यही कहता है। प्यार का और औरतों का इतिहास यही कहता है। माइ लॉर्ड, सुन्दरता की ग्रीक देवी एफ्रोदिती की कहानी याद की जाय। याद की जाये सुग्रीव-पत्नी तारा की कहानी, जिसे वालि ने अपहरण किया था। और, क्या सबूत है कि हेलेन ने नहीं चाहा था कि वह स्पार्टा से भगायी जाये, और अर्जुन की पत्नी सुभद्रा? साहस और पराक्रम के आगे हर स्त्री झुकती है, माइ लॉर्ड, चाहे वह स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी हो, चाहे पृथ्वी की राजकन्या रुक्मिणी ! रुक्मिणी के कथन से यही सिद्ध होता है कि उसने अभियुक्त को प्यार किया है, और अपनी इच्छा से उसके साथ गयी है !

जस्टिस चौधरी : मगर, रुक्मिणी ने चीख-पुकार क्यों मचायी ? वह तो चुपचाप अभियुक्त के साथ चली जा सकती थी।

बैरिस्टर सिंह : स्त्री-चरित्र का यही एकमात्र रहस्य है, माइ लॉर्ड, और सारा साहित्य, सारा मनोविज्ञान आज तक इस रहस्य को सुलझा नहीं सका है। स्त्री प्यार करती है। स्त्री अपने प्रेमी के प्रति समर्पित हो जाती है। फिर भी, वह चाहती है अपने प्रेमी का पराक्रम और चाहती है समाज की स्वीकृति अथवा पराजय ! स्त्री समर्पित

होती है। फिर भी, चाहती है कि प्रेमी उसे ग्रहण करे, बलपूर्वक, पराक्रमपूर्वक, पौरुषपूर्वक ग्रहण करे।

स्टर सिंह : मगर, रुक्मिणी के चाहने, नहीं चाहने का सवाल ही नहीं उठता है, माइ लॉर्ड, रुक्मिणी नाबालिग है। मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार, माता-पिता की गवाही के अनुसार वह कुल पन्द्रह साल पाँच महीने ग्यारह दिन की है। रुक्मिणी नाबालिग है, जूरी के माननीय सदस्यगण, और अभियुक्त ने राइफल की ताकत से उसका अपहरण किया है। ताजीराते हिंद की दफा....

स्टिस चौधरी : मगर, स्कूल-सर्टिफिकेट में उसकी उम्र ज्यादा क्यों लिखायी गयी? क्या कारण है कि... अरे यह क्या हुआ? पुलिस,.. सार्जेन्ट अली, यह क्या हुआ... ओ लॉर्ड !

[कोर्टरूम में भगदड़ मच जाती है। सभी देखते हैं अभियुक्त का कठघरा खाली है। और, सभी देखते हैं रुक्मिणी का कठघरा खाली है। अभियुक्त गायब हो गया है। रुक्मिणी गायब हो गयी है। दोनों हवा बन कर उड़ गये हैं, और कठघरे खाली हैं। बैकग्राउंड से बादलों की गड़गड़ाहटें और बिजली की तेज चमक। तूफान उठ रहा है। रंगमंच पर बेहद काले धुएँ की लहरें। और, लाल-पीली-नीली रोशनी के फ्लैश ! पूरा रंगमंच हिलने लगता है। और धीरे-धीरे अँधेरा फैल जाता है। वही बेहद पीला अँधकार ! और, इस अंधकार की नदी के एक किनारे छोटी-सी नाव की तरह श्रीकृष्ण का हंसश्री रथ खड़ा है। रथ में चुपचाप बैठी है रुक्मिणी। और, पास ही श्रीकृष्ण और अर्जुन !]

अर्जुन : मैंने मान लिया द्वारिकाधीश, कि यह अपहरण केवल क्षत्रियधर्म नहीं था, और न केवल अन्य राजाओं को नीचा दिखाने की इच्छा ही थी। किंतु,.......

श्रीकृष्ण : यह मात्र मेरी विलास-पिपासा भी नहीं थी, अर्जुन ! यह प्यार के एक क्षण का प्रतिदान था।

अर्जुन : प्यार का प्रतिदान ?

श्रीकृष्ण : अवश्य मित्र! एक क्षण का प्रतिदान! मैं रुक्मिणी के रूप-लावण्य की चर्चा सुनकर ही भोजवंशी सम्राट भीष्मक की राज़धानी कुण्डिनपुर गया था। मैं रुक्मिणी की स्वयंवर-सभा में अपने क्षत्रिय-कर्त्तव्य की पूर्ति करने ही गया था। मैं रुक्मिणी को देखना चाहता था। मैं रुक्मिणी के भ्राता-महावली रुक्म के महाधनुष विजय की तेजस्विता देखना चाहता था। रुक्म को कुवेर से यह दिव्य-धनुष प्राप्त हुआ था। तुम्हें अग्निदेव ने गाण्डीव दिया है। और मुर-राक्षस का नाश करके मैंने शार्ङ्ग-धनुष पाया है। विश्वभर में यही तीन धनुष सर्वश्रेष्ठ हैं। मैं अपने शार्ङ्ग और रुक्म के विजय-धनुष की शक्ति देखना चाहता था। मैं इसीलिए कुण्डिनपुर गया।

अर्जुन : तो क्या आपने इसीलिए रुक्मिणी का हरण किया कि आप रुक्म को पराजित कर सकें, और सुन्दरी, राजकन्या का परिणय प्राप्त कर सकें?

श्रीकृष्ण : केवल इतनी-सी बात के लिए नहीं, अर्जुन, इससे बड़ी बात के लिए। मैंने राजसभा में जाकर देखा कि रुक्मिणी के उपयुक्त एक भी

BANK WITH

THE STATE BANK OF INDIA

INDIA'S LEADING BANK

व्यक्ति स्वयंवर-मंडप में नहीं है। उपयुक्त केवल एक मैं हूँ। और एक ही दृष्टिपात में रुक्मिणी ने भी यही देखा। रुक्मिणी ने आत्म-समर्पण किया, और मैंने उसे ग्रहण किया। बस, इतनी सी बात है। इसके उपरांत जो युद्ध हुआ, अकेले मेरे धनुष ने रुक्म और उसकी चतुरंगिणी सेना को परा-जित किया, भीष्मक के पक्ष के सभी राजा अपने-अपने रथों में आहत और मूर्छित हो गये—उसका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि, वह मेरा धर्म था। मेरे क्षत्रिय और मेरे सामन्त का धर्म! मेरी आत्मा का धर्म तो रुक्मिणी के प्यार को स्वीकृति देना था, मित्र! स्वीकृति मैंने दी है। मैं रुक्मिणी को अपने साथ ले आया हूँ।

अर्जुन: किंतु, यह तो साधारण लौकिकता है, प्रभु! जबकि आप तो साक्षात्..

श्रीकृष्ण: प्यार से बढ़कर अलौकिकता और नहीं होती है, अर्जुन! प्यार ही ईश्वरत्त्व है। अस्तित्व समाप्त हो जाता है, आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है, और मनुष्य स्वयं ईश्वर बन जाता है—अगर, उसे प्यार का एक संपूर्ण क्षण मिल जाय—अखण्ड और अनन्त क्षण!

[और, इस बेहद पीले अँधरे में प्रकाश की एक श्वेत-अरुण किरण-रेखा तैरने लगती है। एक के बाद अनेक किरण-रेखाएँ। संपूर्ण रंगमंच प्रकाश-पुंजसे जगमगाने लगता है। रंगमंच खाली है, और पीछे की दीवार पर एक आदमकद तस्वीर टंगी है—श्रीकृष्ण के रथ पर रुक्मिणी की तस्वीर! यह तस्वीर टंगी रहती है। आदिकाल से अनन्तकाल तक टंगी रहती है यह तस्वीर!]

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

युग-निर्माता महापुरुष श्रीकृष्ण और उनका युग

युगान्तर की चिरन्तन् प्रगतिशील, एक बारगी ही भंजक विप्लवी और सर्जक माधवी युग-विधात्री महाचेतना ने श्रीकृष्ण के भीतर अवतार लिया था। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने श्रीकृष्ण के आविर्भाव-युग का और उनके विराट युग-निर्माता व्यक्तित्व का अत्यन्त तथ्यात्मक, शोधपूर्ण ऐतिहासिक विश्लेषण-विवेचन किया है।

“जब-जब धर्म पर विपत्ति आती है तब ही तब धर्म का अभ्युत्थान करने के लिए मेरा जन्म होता है। साधुजनों के परित्राण, अपकार्यों के विनाश और धर्म की स्थापना हेतु मैं युग-युग में जन्म लेता रहता हूँ।” जब कभी वर्तमान की भयावह स्थिति के कारण निराशाजनित अंधकार से अंतश्चेतना शून्य होने लगती है तभी श्रीकृष्ण के उपरोक्त शब्द स्मृति के गहन तल से उठकर मस्तिष्क में गूँज जाते हैं, और निराशा के काले बादलों के बीच से आश्वस्त करती हुई आशा की एक रजतरेखा झिलमिला उठती है।

श्रीकृष्ण का संपूर्ण जीवन एक विराट साध्य की साधना था। उन्होंने स्वयं के आत्मिक विकास हेतु साधना की, समाज के हेतु साधना की और देश तथा मानवता के हेतु साधना की।

जिस समय उनका जन्म हुआ, भारतवर्ष की राजनीति मानो कुष्ठरोग से ग्रस्त हो रही थी। शासन अनाचारी शासकों के हाथ में था। ये शासक जनता की ओर से पूर्णत: आँखें मूंदे पड़े थे। मदिरापान, भोग-विलास और जुआ के अतिरिक्त उनके जीवन का कोई लक्ष्य न रह गया था। जो थोड़ी बहुत शक्ति रह गयी थी उसे वे कुचक्रों, षड्यंत्रों और एक दूसरे से ईर्ष्या कर उसे नीचा दिखाने के प्रयत्नों में नष्ट

र रहे थे। पाण्डु की मृत्यु के वाद ही स्तिनापुर की राजनीति विकारग्रस्त गयी जो कौरवों के वयस्क होने के साथ ी पूर्णता की ओर अग्रसर हो चली थी। थुरा में कंस का अनाचारी शासन था सने अपने पिता उग्रसेन को कैद कर नरपराध बहिन देवकी को अपने बहनोई सुदेव के साथ कारागृह में डाल दिया था। चेदि देश का अभिमानी राजा शिशुपाल स्वयं को ही सब कुछ समझ बैठा था। प्राग्ज्योतिष का राजा नरकासुर अनेकों राजाओं का वध कर विभिन्न प्रदेशों की सहस्रों राजकुमारियों को बलपूर्वक छीन लाया था। पौंड्रक राजा ने स्वयं को नारायण का अवतार घोषित कर दिया था और शाल्व अपनी माया का प्रयोग कर लोगों को त्रस्त कर रहा था। उस समय भारत में सर्वाधिक आतंक मगध के राजा जरासंध का था जो जनता को अपने अत्याचारों से पीड़ित किये था। वह सैंकड़ों राजाओं को कैद कर लाया था। अन्य कुचक्री राजा या तो उसके मित्र बन गये थे या उसकी आधीनता स्वीकार कर चुके थे। केवल यदुवंशी और कुरुवंशी क्षत्रियों ने उसके हस्तक्षेप को सहन न किया था। स्वयं श्रीकृष्ण के कुल–यदुवंश में भी फूट और दुराचार के अंकुर पनप चुके थे। कहना न होगा कि सम्पूर्ण भारतवर्ष की राजनीति एक वण की भाँति सड़ रही थी और उसकी दुर्गंध सामाजिक वातावरण को भी विषाक्त बना रही थी।

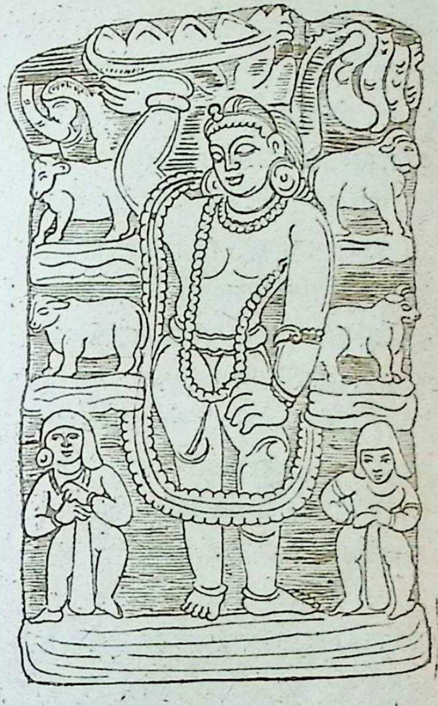

गोवर्धनधारी : मथुरा शैली

समाज का संगठन अस्तव्यस्त हो चला था। वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था अव्यवस्थित हो गयी थी। कुछ क्षत्रियों ने वैश्यवृत्ति धारण कर गोपालन का धंधा अपना लिया था। यादवों में कुछ ऐसे ही थे। कुछ ब्राह्मणों ने क्षात्र वर्ण के आचरण प्रारंभ कर दिये थे। आचार्य द्रोण का महाभारत में लड़ना इसीका परिचायक है।

तत्कालीन स्थिति का थोड़ी गंभीरता से अध्ययन करने पर विदित हो जाता है कि समाज किस गति से विघटन की ओर अग्रसर हो रहा था। ऋषियों के आश्रम मानो समाज का आवश्यक अंग न रह गये थे। आश्रमवासियों को अपना पेट पालना भी भारी पड़ रहा था। द्रोणाचार्य को इसी अर्थाभाव के कारण घर छोड़ कर क्षत्रियों का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण के बीच एक चौड़ी खाई पड़ गयी थी जो क्रमशः बढ़ती जाती थी। कुछ प्रभावशाली संन्यासी गण अवश्य थे किंतु वे समाज से दूर थे। रामायण काल की राजनीति में जिस प्रकार वशिष्ठ और विश्वामित्र आदि ऋषियों का हस्तक्षेप दिखाई देता है वैसा उस समाज में न रह गया था। सांदीपनि आदि ऋषि उन लोगों में से थे जो राज्य अथवा समाज के कार्यों में हस्तक्षेप करने से बहुत दूर थे। यहाँ तक कि व्यास जैसे प्रभावशाली महर्षि का भी कोई स्पष्ट प्रभाव तत्कालीन राजनीति अथवा समाज पर लक्षित नहीं होता। वे अत्याचारी कौरवों को कुकृत्यों से रोकने में असफल ही रहे। राजा प्रजा का अंतर बढ़ रहा था। वर्ण-वर्ण के बीच, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच और राज्य-राज्य के बीच की खाई बढ़ती जा रही थी।

धर्म की दृष्टि से राजा और प्रजा मर्यादाहीन हो चले थे। समाज अपने उद्देश्य को भूल गया था। वेद विहित चार पुरुषार्थों—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष में से प्रथम दो का ही बोलवाला था और राजपुत्रों में तो केवल एक को छोड़कर दूसरा पुरुषार्थ भी न रह गया था। धर्म की साधना केवल स्त्रियों में रह गयी थी। धृतराष्ट्र के अंधे होने के कारण स्वयं की आँखों पर पट्टी बाँध लेने वाली गांधारी इसीका उदाहरण है। भक्तों में राधा श्रेष्ठ थीं जो भक्ति की पूरी उन्नीस अवस्थाओं को धारण किये थीं। साधारण साधक जहाँ भक्ति की प्रारंभिक दो या तीन अवस्थाओं की प्रतिक्रिया को ही सहन करने में असमर्थ होकर विक्षिप्त हो जाते हैं अथवा भक्ति के आवेग से उत्पन्न गात्रदाह को न सहन कर पाने के कारण अपने प्राणों को खो बैठते हैं वहाँ राधा पूरी उन्नीस अवस्थाओं को धारण किये जीवित थीं। मुक्ति की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान था और जिनका ध्यान था उनका जीवन सच्चे संन्यासियों की भाँति क्रियाशील न रह गया था। वे केवल मनु के वाक्य 'आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत' को ही सब कुछ समझ बैठे थे। पृथ्वी पर रहनेवाले समाज से उन्हें मानो कोई प्रयोजन न रह गया था। ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ।

जन्म से मृत्यु तक श्रीकृष्ण का जीवन

अत्यधिक क्रियाशील रहा। उनके जीवन-काल की स्थिति को देखकर जब हम उनके शेष जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो लगता है मानो प्रकृति ने इस माहमानव का सृजन अवश्य ही किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया था और जिस उद्देश्य को लेकर उनका जन्म हुआ था वह उन्हींके शब्दों में कुरुक्षेत्र के मैदान में फूट पड़ा —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ —गीता

श्रीकृष्ण का चरित्र उन उत्साही व्यक्तियों के लिए सदा एक मार्गदर्शक का कार्य करता रहेगा जो अपने कर्मों पर विश्वास कर स्वयं की शक्ति से समाज में अपना स्थान बनाते हैं और समाज को अपने अनुसार चलने के लिए बाध्य करते हैं। कारागृह में इस बालक का जन्म हुआ। निरक्षर देहातियों के बीच इसका लालन-पालन हुआ। गोकुल में पहुँचने के समय से ही इसने अद्‌भुत कार्य आरंभ किये और अपनी असाधारण शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्ति का परिचय दिया। पूतना, वकासुर, अघासुर, केशी आदि का वध तथा कालिय दमन उनकी अपार शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति के परिचायक हैं। उनके विचार में असंभव शायद कुछ भी न था। धुनी ऐसे थे कि जो निश्चय कर लेते उसे बदलने की क्षमता फिर किसी में न होती थी। ऐसा न होता तो वे कालीदह में कूदने का भयानक कार्य न कर पाते। जो लोग सूरदास के श्रृंगार संबंधी पदों के आधार पर भ्रांतधारणा वना लेते हैं और श्रीकृष्ण के चरित्र को लांछित करने का प्रयास करते हैं वे बुद्धि के शत्रु सूर की शुद्ध सात्विक मधुर भाव की भक्ति-विषयक चित्तवृत्ति को न समझ कर स्वयं की ही अनभिज्ञता का उद्‌घोष करते हैं। श्रीकृष्ण ने जिस आयु में व्रज को छोड़ा उस समय वे निरे बालक थे। उनसे वैसे आचरण की साधारण संभावना भी नहीं की जा सकती। सोलह सहस्त्र नारियों की बात भी तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। योगी कहते हैं कि सुषुम्ना के निकट एक ऐसा स्थान होता है जहाँ शरीर की सोलह सहस्त्र नाड़ियाँ आकर केंद्रित होती हैं और योग की उच्चतर सफलता प्राप्त करने के लिए उन पर नियंत्रण करना साधक के लिए आवश्यक हो जाता है। संयत के विना योग साधना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर कृष्ण के द्वारा

काम एश क्रोध एश रजोगुण समुद्‌भवः।

महाशमो महापाप्मा विद्धि येन महि
वैरिणाम् ।।''

का उपदेश भी उपरोक्त आक्षेप को निराधार कर देता है। कृष्ण की गीता के उपदेश को मिथ्याचार कहकर भी नहीं टाला जा सकता, क्योंकि उनने अपनी समस्त शक्तियों का अर्जुन को साक्षात्कार करवाया था। भीष्म जैसे प्रबल पराक्रमी एवं वयोवृद्ध ब्रह्मचारी भी उन्हें नारायण का अवतार तथा महायोगीराज मानते थे। कौरव और पाण्डव दोनों समान रूप से उनका आदर करते थे। एक बार गाँधीजी ने कहा था, ''सत्यवादी व्यक्ति के मर जाने से उसके सिद्धांत नष्ट नहीं हो जाते। यदि मेरे वाद मेरी अहिंसा को कोई पूछने वाला न रहे तो समझना—मेरे अंदर अहिंसा थी ही नहीं।'' बापू के वाक्य की कसौटी पर भी श्रीकृष्ण खरे उतरते हैं। उनकी गीता का महत्व कम नहीं हुआ वरन् समय के साथ वढ़ता ही जा रहा है।

यदि सोलह सहस्र नारियों को सीधा अभिधा अर्थ में ग्रहण करें तो श्रीकृष्ण एक महान सुधारवादी दिखायी देते हैं। वे सोलह सहस्र कन्याएँ नरकासुर की कैद से छुड़ायी गयी थीं जिनका वरण करने के लिए आर्यावर्त में कोई तैयार न था। श्रीकृष्ण ने स्वयं उनका वरण कर उन त्याज्य कुमारिकाओं को राजरानी का सम्माननीय पद देकर तत्कालीन समय में समाज सुधार का वह अभूतपूर्व कार्य किया जो किसी भी व्यक्ति द्वारा संभव न हो सकता था।

श्रीकृष्ण कोरे उपदेशक न थे। जन्म से मृत्यु तक वे कार्यशील रहे। अपने युग की विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध लोहा लेने के लिए वे उठ खड़े हुए। संभवतः उन्होंने अपने जीवन का एक निश्चित उद्देश्य बना लिया था और उसे पुरा करने के लिए वे पूरी शक्ति से जुट गये थे।

उनके समय भारतवर्ष में कुछ गणराज्य भी थे। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार ''वे स्वयं यादव जाति की अंधक-वृष्णि शाखा के, जो एक गण-राज्य था, सदस्य थे।'' श्रीकृष्ण यद्यपि राज्यपरिवार से संवंधित थे तथापि उनका जन्म कारागार में और पालन-पोषण जनसाधारण के वीच हुआ। यही कारण था कि उन्हें जनसाधारण की स्थिति का भली प्रकार परिचय हो गया। साथ ही वे इस समय में इस तथ्य से भी परिचित होगयें कि अत्याचारी शासक के राज्य में जनता कितना कष्ट पाती है तथा ऐसे शासक के प्रति जनता के विचार क्या होते हैं। उस भोली-भाली और पीड़ित जनता के वीच से उठने वाले श्रीकृष्ण यदि प्रारंभ से ही तत्कालीन अत्याचारी शासकों को नष्ट

ते का घोर निश्चय कर उसे पूरा करने लिए कटिबद्ध होगये हों तो इसमें चर्य की बात ही क्या है। आरंभ से तक उनका जीवन घोर रक्तपात- या और क्रांति से संबद्ध रहा। वृंदावन ही हत्याओं का क्रम प्रारंभ होता है र कंस तथा उसके संबंधियों के वध के य एक बार उसकी समाप्ति हो जाती । इसके बाद जब वे सांदीपनि के आश्रम शिक्षा प्राप्त कर वापस आते हैं उसके द ही उनका वास्तविक राजनैतिक जीवन रंभ होता है।

श्रीकृष्ण के संपूर्ण राजनैतिक कार्य ो हम दो भागों में बाँट सकते हैं।

१. क्रांति द्वारा पुराने अत्याचारी सन का अंत,

२. पूर्वशासक के उत्तराधिकारी को हासन पर आसीन कर सुव्यवस्था की थापना।

उनके समय संपूर्ण भारत जनपदों में टा था। उनमें कुछ प्रजातंत्र थे और छ निरंकुश स्वेच्छाचारियों के अधिकार थे। श्रीकृष्ण स्वयं एक ऐसे ही गणराज्य संबंधित थे। वे सर्वत्र क्रांति कर एक ये प्रकार के शासन की संपूर्ण भारत में त्र डालना चाहते थे। जरासंध का तंक उन दिनों सर्वत्र था। अंधकवृष्णि र कुरुवंशियों के अतिरिक्त सब उसकी धीनता स्वीकार कर चुके थे। श्रीकृष्णने अपने बुद्धिबल से जरासंध के भी वध का उपाय खोज लिया और भीमसेन द्वारा उसका वध करवा कर उसके अत्याचारी शासन का अंत किया। किंतु उसके राज्य को स्वयं न लेकर उसके पुत्र सहदेव को ही गद्दी पर बिठाया। माहिष्मती के राजा शिशुपाल का वध कर उन्होंने उसके पुत्र धृष्टकेतु को उसके सिंहासन पर आरूढ़ किया। भारत के पूर्वी सिरे पर स्थित प्राग्ज्योतिषपुर में नरकासुर का आतंककारी शासन था। श्रीकृष्ण स्वयं उसके अत्याचारों की कथा सुनकर उसे समाप्त करने के हेतु प्राग्ज्योतिषपुर तक गये। नरकासुर वध कर उन्होंने उसके पुत्र को राज्य का अधीश्वर बनाया। इस प्रकार भारत में जहाँ भी उनने अत्याचारी शासन पाया वहीं पहुँचकर उसका अंत किया और इसके बाद भी स्वयं वहाँ के शासक न बने वरन् वहाँ के नियमविहित उत्तराधिकारी को ही उस स्थान का शासक बनाया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तहाँ क्रांति करने में श्रीकृष्ण का कोई निजी स्वार्थ न था।

'महाभारत' के कुपरिणाम को वे भली प्रकार जानते थे अतः उसे रोकने का हर संभव उपाय उन्होंने किया। धृतराष्ट्र को उन्होंने समझाया और अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा—

"कुरुणां पाण्डवानञ्च शमः स्यादिति भारत।

[शेष पृष्ठ १६९ पर]

कृष्णावतार

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

धारावाहिक पूर्ण-पुरुष लीला

[१३]

पूतना मौसी का गोकुल-आगमन

कंस को पूतना पर भारी क्रोध आया। श्रावण मास में जन्मे सभी बालकों का पता लगा कर उन्हें विष देकर अथवा अन्य किसी प्रकार से मृत्यु की गोद में पहुँचाने का जो कार्य-भार उसने लिया था, उस बात को पूरे दो वर्ष बीत चुके थे; फिर भी कंस को प्राप्त सूचना के अनुसार केवल नौ बालक ही ऐसे मिले थे जिन्होंने श्रावण मास में जन्म लिया था और जो मौत के घाट उतार दिये गये थे, अथवा लापता कर दिये गये थे।

शायद पूतना को किसी बालक की खबर ही न लगी हो और वह अन्यत्र कहीं पल रहा हो, इस आशंका से कंस का मन उद्विग्न हो उठता। उसे इस बात पर विश्वास ही नहीं होता था कि मथुरा जैसी राजधानी में एक मास में केवल नौ बालकों ने ही जन्म लिया। पूतना तथा बंदीगृह के चौकीदारों को वह बार-बार पूछता कि देवकी का शिशु कब और किस प्रकार हुआ, किन्तु बारंबार उसका वर्णन सुनने पर भी उसके मन को संतोष नहीं होता था। जिस भयंकर भय का अनुभव उस बालिका के उसके हाथ से छिटक कर एक कर्णभेदी चीख के साथ खिड़की में से बाहर उड़ जाने के समय उसे हुआ था,

गुरुकुल कांगड़ी

कभी भुला सकने योग्य नहीं था। उस नोखी घटना का अर्थ तो उसकी समझ यही आता कि, हो न हो, अवश्य ही का हन्ता अन्यत्र कहीं आश्रय पाये है।

पूतना की समझ में ही नहीं आता कि और क्या किया जा सकता है। वण मास में जितने बालकों के जन्म लेने खबर उसे मिली थी उन सब की तो त्या उसने कर डाली थी। उनके अतिक्त और किसी बालक के होने का माचार उसने सुना ही नहीं था। थुरा के लोग तो उससे इतनी घृणा रने लगे थे कि जिस ओर वह निकल ाती, सभी अपने-अपने किवाड़ बन्द र लेते, माताएँ अपने बच्चों को छिपा तीं। कई स्त्रियाँ तो शहर छोड़कर चली गयी थीं।

कंस के मन में एक योजना ने जन्म या। क्यों न एक वर्ष के जितने भी बालक थुरा में हों, उन सब की हत्या कर दी य! लेकिन उसके वफ़ादार आदमियों भी तो इस उम्र के बच्चे थे, और स्वयं सकी पत्नियों ने भी उस साल पुत्र प्रसव ये थे। नहीं, यह योजना तो किसी कार भी कार्यरत नहीं की जा सकती ी। फिर उसने सुना कि गोकुल के नायक की पत्नी ने प्रौढ़ावस्था में एक पुत्र जन्म दिया था और अब वह दो साल हो गया था। कुछ समय पूर्व जब नंद

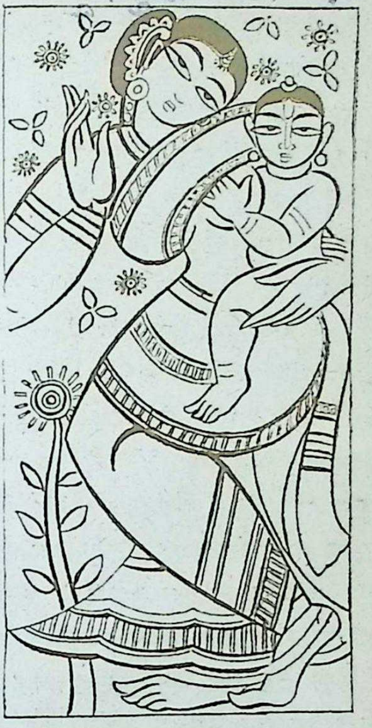

यशोदा और कृष्ण : यामिनी राय

कर चुकाने मथुरा आये थे तो बालक के जन्मोत्सव पर गोप-गोपियों ने किस प्रकार आनंद मनाया था, वह बालक कितना अद्भुत और सुन्दर था, इस सब की चर्चा सबसे की थी। कंस के दूतों ने इसकी खबर कंस को दी। इस समाचार से उसके मन में एक अज्ञात भय का संचार हुआ। क्या यही बालक तो उसका भावी हन्ता नहीं है?

नंद नियमित रूप से कर चुकाते थे,

उन्हें अपने प्रजाजनों का असीम आदर और प्रेम प्राप्त था, गोकुल के शूर बलवान और समृद्ध थे, वड़े-वड़े लोगों से उनका सम्बंध था, सभी उनकी इज्ज़त करते थे। ऐसे स्वतंत्र प्रकृति के लोगों को भड़का कर तो एक आफत ही मोल लेनी थी। उनके प्रमुख वसुदेव अत्यंत उच्च कुल के थे। हस्तिनापुर के राजा पांडु के साथ उनकी वहन का व्याह हुआ था। नंद के उस दो वर्ष के बालक की हत्या कर शूर कुल के साथ लड़ाई ठानना तो मगध से लेकर हस्तिनापुर तक सभी की हँसी का पात्र वनना था। केवल एक ही उपाय इस समस्या को सुलझाने का उसके पास रह गया था और वह था पूतना की सहायता लेने का। उसने पूतना को बुला भेजा।

शोक की मूर्ति बनी पूतना कंस के समक्ष आकर उपस्थित हुई। मन में को वह समझ ही गयी कि किसी बालक की हत्या करने कंस ने उसे बुलाया होगा। उसे तो अब इस विचार से ही ग्लानि होती थी। जहर देकर अथवा अन्य किसी रीति से जिन बालकों को उसने बैमौत मारा था उनके मरणकाल का उच्छ्वास उसके कानों में सदा गूंजता रहता था।

"पूतना, तूने सुना? गोकुल में नंद की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया है!"

अजान बनने का बहाना कर पूतना ने अस्वीकृति में सिर हिलाया।

"यहाँ पर जिस घड़ी देवकी के पुत्री हुई लगभग उसी समय नंदपत्नी ने पुत्र को जन्म दिया। लोग कहते हैं कि लड़का बड़ा अद्‌भुत है। इसके लिए अब तू क्या उपाय सोचती है?"

"महाराज मुझसे अब कुछ भी नहीं हो सकेगा! मथुरा में सभी लोग मुझसे तंग आ गये हैं," पूतना ने कहा, "मैं तो अब सबके धिक्कार की पात्र—सबकी पूतना 'मौसी' बन गयी हूँ। मेरा नाम सुन कर ही वालक भयभीत हो उठते हैं। मथुरा की प्रत्येक स्त्री मुझे गाली देती है। मेरे अपने कुटुंब की स्त्रियाँ, स्वयं मेरी बहनें भी, मुझसे किनारा कसती हैं। मेरे लिए सभी यह सोचने लगे हैं कि उसका मुंह भी दिख जाय तो कोई भयंकर आफत आ जायेगी।"

"क्या मूर्खता की बातें करती है!"

"अन्नदाता, मैंने यथासंभव आपकी सेवा की है। अब और मुझसे कुछ नहीं हो सकेगा। आप अपनी पत्नियों को ही पूछ देखें कि मेरा मुँह दिख जाने पर भी वे पाप का निवारण करने विधिपूर्वक स्नान करती हैं या नहीं!"

"पूतना, तू मूर्ख है। तेरी कितनी कद्र मैं करता हूँ, यह तुझसे छिपा नहीं है! फिर इन बेवकूफ स्त्रियों की परवाह तू

करती है ? बस इस नंद के पुत्र वाला
ा निकाल दे, फिर तुझे कोई काम नहीं
ंगा।"

"महाराज, मुझे क्षमा करें! अब मैं
ी भी बालक को हाथ नहीं लगाऊँगी।
मास पूर्व मेरा अपना बच्चा मुझे
कर चला गया। मरते समय उसके
छ्वास में, जिन चार बालकों को स्तन
न कराकर मैंने मार डाला था उनके
छ्वास को सुना। मेरा यह बालक जब
ृ की भेंट हुआ तब जिन माताओं
बालकों को मैंने विष देकर अथवा
ा घोंट कर मार डाला था, उनकी
ह्य पीड़ा का अनुभव मुझे हुआ।
नी आँखों के सामने अपने पुत्र को
ने देखना क्या होता है, इसका कटु
ुभव मुझे हो चुका है। अब ऐसा घोर
र मुझ से नहीं हो सकेगा, महाराज !"
ना ने करुणार्द्र स्वर में कहा।

"पूतना, मूर्ख मत बन! और कोई
ी भी करे, तुझे तो अपना मन मज़बूत
ना ही चाहिए। मैं इस बालक को
सी प्रकार जीवित नहीं देख सकता।
ों-ज्यों मैं विचार करता हूँ, उसको
संसार से हटा देने की आवश्यकता
काधिक अनुभव करता हूँ।"

भयग्रस्त, किंकर्तव्यविमूढ़ पूतना नीची
र किये खड़ी रही।

"तो क्या तू यह काम नहीं करेगी ?" कंस ने पूछा। उसकी आवाज़ में धमकी थी।

"क्षमा करें प्रभु ! मुझे और कोई काम सौंपें, मैं सहर्ष उसे पूरा करूँगी। परन्तु किसी बालक की हत्या करने को कृपा कर मुझे न कहें।"

विषाद की मूर्ति बनी पूतना स्थिर खड़ी रही। जीवन में प्रथम बार उसके नयन अश्रुजल से भीग गये।

"पूतना, यह मत भूलना कि तूं, तेरा पति, बक, अघ–सभी का जीवन मेरी दया पर निर्भर है।" कंस अब हृदयहीन, दयाहीन बन गया था। आज्ञा के स्वर में उसने कहा, "मेरी इच्छा का पालन यदि तुम लोग नहीं करोगे तो यहाँ से निकाल दिये जाओगे। लेकिन मुझसे दूर जाकर तुम रहोगे कहाँ? यह मत भूलना कि तुम्हें जो कुछ प्राप्त है और इस समय तुम्हारी जो स्थिति है वह मेरी ही बदौलत है। तुम्हारा पद, तुम्हारी सत्ता, धन, यहाँ तक कि जीवन भी जहाँ तक मैं जीवित हूँ वहीं तक बना रहेगा। मेरी मृत्यु के बाद तुममें से कोई भी बच नहीं सकेगा। लोग तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। इसलिए मेरी छत्रछाया तले ही रहने में तुम लोगों का कल्याण है, समझी !"

पूतना सिर झुकाये खड़ी थी।

"इस बात से तो तुम अच्छी तरह परिचित हो कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन मुझे सह्य नहीं," शांति से बात को जारी रखते हुए कंस ने कहा, "मेरे एक शब्द पर ही मगध के वीर योद्धा बड़ी खुशी के साथ तुम्हारा गला घोंट देंगे। पूतना, तेरा और तेरे पति दोनों का ही जीवन मेरी मुट्ठी में है।"

"यह मैं जानती हूँ, महाराज!" पूतना ने कहा।

"तो फिर इस प्रकार लाचार, मूक मूर्ति की तरह निश्चल क्या खड़ी है! जा, गोकुल जा, और काम पूरा कर आ।"

"जैसी प्रभु की आज्ञा!" भारी कंठ से, काँपती हुई आवाज़ में पूतना ने कहा।

"काम पूरा करने के लिए तुझे पंद्रह दिन की मोहलत देता हूँ।"

हाथ जोड़कर विनम्र भाव से कंस को प्रणाम कर पूतना चली गयी।

स्त्रियों के जाने-आने के मार्ग से जब वह महल से निकली तो दासियों ने उसे देख कर अपने-अपने कक्ष के दरवाज़े बंद कर लिये। पूतना ने यह सब देखा और मन-ही-मन कहा, "वास्तव में मैं सबके धिक्कार की पात्र बन गयी हूँ—मैं सचमुच ही पूतना मौसी हूँ!"

* * *

कृष्ण की द्वितीय वर्षगाँठ के पश्चात् आश्विन मास की जो पूर्णिमा पड़ती थी, उस दिन गोकुलवासियों ने अपने कुल-देवता गोपनाथ महादेव की जयंती सदा की भाँति मनायी। यह रीति उनमें पूर्वकाल से चली आ रही थी। गोकुल के लोग इस पुनीत प्रसंग पर बैलगाड़ियों में दो-दो दिन की यात्रा करके भी पहुँचते थे और प्रातःकाल पुण्यसलिला यमुना में स्नान कर, महादेव के दर्शन करते और बिल्वपत्र इत्यादि चढ़ाकर मिष्ठान्न भोजन करते।

आज की यह रात्रि वर्ष की अन्य सभी रात्रियों से अधिक रमणीय एवं मंगलकारी थी। भगवान सोमदेव-चंद्र अपनी किरणों से आज पृथ्वी पर अमृतधारा बरसाते थे। इस रात्रि में चंद्रोदय होते ही सभी स्त्री-पुरुष खीर से भरे पात्र लेकर यमुना के तीर पर जा बैठते। क्षीरान्न के साथ इस रमणीय रात्रि में चंद्रकिरणों के संयोग से ऐसी अद्भुत शक्ति आ जाती कि उसका प्राशन करनेवाले को सौभाग्य तथा आयुष्य वृद्धि की प्राप्ति होती।

शरच्चंद्र की किरणों से बलप्रद, इस क्षीरान्न का भोजन किये बाद उत्सव की तैयारी होती। तरुण स्त्रियाँ नृत्य करतीं, गातीं तथा आमोद-प्रमोद करतीं। रसिक तरुण नृत्य में साथ देते तथा हाथ से अथवा डांडियों से ढोलक पर ताल देते। बालकवृंद नाचते, कूदते तथा दौड़ की प्रतियोगिता में भाग लेते।

प्रातःकाल तक यह उत्सव चलता रहता।

विन मास का पूर्ण चंद्र ही दे सके, ी स्वस्थता और आनन्द से मत्त होकर लोग अपने-अपने गाँव लौटते।

पूतना को कंस ने बुलाकर जब नया भार सौंपा, उसके कुछ दिन बाद ही विन की पूर्णिमा का उत्सव पड़ता था। ने कुछ सम्बंधियों को लेकर गोकुल के या उस दिन मथुरा गये थे और य रात्रि तक उनके लौटने की संभा- ा नहीं थी।

मध्याह्न में एक संदेशवाहक ने आकर ोदा को सूचना दी कि राजदरबार के अग्रणी ब्राह्मण की पत्नी अपना ा दूर करने गोपनाथ महादेव की ा पर आनेवाली हैं। अतिथिसत्कार भावना के लिए तो हमारे ग्रामवासी द्ध हैं ही। नंद ने तो यह नियम बना लिया था कि जो भी अतिथि ुल आये चाहे वह ऊँच हो या नीच, वान हो या गरीब, उसे ससम्मान े यहां रखा जाय।

संदेशवाहक जब आया तब यशोदा, हिणी तथा कुटुंब के अन्य लोग यमुना ीर पर जाने की तैयारी कर रहे थे। े गाँव में कोई प्रतिष्ठित स्त्री आने- ी है, सुनकर यशोदा ने कुछ नौकरों ाथ दो युवकों को उनका यथोचित ार करने गाँव की सीमा तक भेजा और आदेश दिया कि वे उनको सीधे नंदगृह ले जायँ और जब वे स्नानादि से निवृत्त हो महादेव का दर्शन करलें तब उन्हें क्षीरान्न के भोजन तथा उत्सव में भाग लेने को निमन्त्रित किया जाय।

कंस द्वारा सौंपे गये नये कार्य के अप्रिय विचार से दुःखी हो, पूतना जब गोकुल के समीप पहुँची तो यशोदा के आदमियों ने उसका स्वागत किया और यशोदा का संदेश भी कह सुनाया। उसने अपने रथ को तुरंत नंद की पशुशाला में भेज दिया ताकि बैलों को नहला-धुला और खिला-पिला कर फिर से ताज़ा बना दिया जाय। उसे अपना काम पूरा कर मध्यरात्रि को ही वापस मथुरा चले जाना था। इसके बाद अपनी दासी और नौकरों को लेकर वह सीधी यमुना के तीर पर चली गयी, जहाँ सुंदर तथा आनंदमग्न गोपियाँ, नाचते-कूदते व हँसते बालक, हँसी-ठट्ठा करते तथा एक-दूसरे की पीठ ठोकते गोपवृंद उत्सवरत थे। उन्हें देखकर उसके दुःख की सीमा नहीं रही क्योंकि इस सारे हर्षोन्मत्त समुदाय में दुष्ट कहलाने लायक वह अकेली ही थी। उनके अग्रणी के एकमात्र उत्तराधिकारी की हत्या करने, आनंदमग्न गोप-गोपियों को दुःख के सागर में डुबो देने और जीवन के उत्तरकाल में जिसके जीवन की महेच्छा मनोहर पुत्र के रूप में साकार हुई थी, उस गर्वीली माता का हृदय टूक-टूक करने

यह ज़हरीली नागिन वहाँ आ पहुँची थी।

नदी पर जाकर स्नानादि से निवृत्त हो वह मंदिर में गयी। दूर क्षितिज में उसने तप्त कांचनवर्ण का चंद्रोदय होते देखा। उसके तेज से वह सुन्दर प्रदेश अप्सरालोक सा प्रतीत हो रहा था। परन्तु पूतना के हृदय ने तो आनन्द के स्थान पर दुःख का तीव्र आघात ही अनुभव किया। चंद्रमा की वह निर्मल किरणें उसे ज़हरीले वाणों सी लगीं। स्वयं को राक्षसी मानकर उसका हृदय उसे धिक्कारने लगा।

मंदिर में जव वह पहुँची तो अनेक हर्षोन्मत्त लोगों को उसने वहाँ देखा। कई लोग महादेव के स्तोत्रों का उच्चारण कर रहे थे। थोड़े-से बिल्वपत्र खरीद कर वह मंदिर में गयी और शिवलिंग पर वे बिल्वपत्र चढ़ाये। मूर्ति के समक्ष साष्टांग नमस्कार कर, ज़मीन पर माथा टेकते हुए उसने प्रार्थना की, "हे प्रभु! महादेव, आप सभी को सुखी करते हैं, फिर मुझ अकेली को ही क्यों शोकग्रस्त रखते हैं? किसलिए मुझे यमदूत-सी, बल्कि यमदूत से अधिक क्रूर, निर्दोष एवं सुन्दर शिशुओं की हत्यारिणी बनाया?"

"वस अव यह अंतिम बालक ही होगा। इसके वाद मैं किसी की हत्या नहीं करूँगी। प्रभु मुझे क्षमा करो! अव और मैं पाप के मार्ग पर नहीं चलूंगी।" पूतना ने मन-ही-मन कहा। वह उठ खड़ी हुई, चरणामृत लिया और उसे आँखों से लगाया।

मंदिर से वाहर निकल कर वह सीधे वहीं पहुँची जहाँ यशोदा अपने विशाल कुटुंव के साथ घिरी बैठी थीं। सबके बीच में दूध से भरे पात्र रखे थे। सम्मानित अतिथि के आगमन की सूचना होते ही पुरुषवर्ग उसे रास्ता देने के लिए उठ खड़ा हुआ। युवतियाँ उसके उत्तम वस्त्रालंकारों की ओर एकटक देख रही थीं। उन्होंने मथुरा के राजदरवार की किसी सन्नारी को पहले कभी नहीं देखा था।

यशोदा वालू में बैठी हुई थीं और उनकी वगल में रोहिणी थीं। अपने सामने खड़े, छोटे-छोटे मिट्टी के पात्र लिए वालकों को यशोदा दूध बाँट रही थीं। पूतना का सस्मित स्वागत करते हुए उन्होंने कहा, "पधारो वहन!" और कुछ खिसक कर उसके लिए जगह कर दी। यशोदा के इस आदर-सत्कार का प्रभाव पूतना के मन पर पड़ा। उसे लगा कि वह कितनी अभागी है, कितनी अधम जो इस हँसमुख, प्रसन्न और भोले स्वभाव की माता के प्राण समान बालक की हत्या करने वहाँ आयी है।

पूतना ने यशोदा की ओर, उसके वगल में बैठते समय, दृष्टि डाली। उसके दाहिनी ओर एक छोटासा वालक

ा था। उसका सिर यशोदा के आंचल छिपा हुआ था। वह अत्यंत आनन्दपूर्वक नपान कर रहा था। नीलवर्ण का का छोटा-सा सुन्दर शरीर, सुडौल कटि में धारण की हुई सोने की वनी और चांदी के छोटे-से छल्ले, सब ना ने देखे। कंस ने जिसकी चर्चा की थी, वही बालक था। इसमें किसी शंका वा भूल की संभावना नहीं थी।

इस नन्हे-से बालक की बगल में अपनी वस्था के प्रमोण में जरा अधिक ऊँचा र भरी देह का लगभग तीन वर्ष का अन्य बालक रोहिणी के केशों से खेल ा था। वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी रोहिणी वह पहचानती थी। वह गुदगुदा बालक ीका पुत्र होना चाहिए।

नीलवर्ण के उस बालक ने स्तनपान कर ना सिर यशोदा के आंचल से बाहर ाला और बगल में खड़े बालक के हाथ दूध का पात्र छीन कर सारा दूध पी या तथा पात्र को फेंक दिया। आश्चर्य-हो पूतना उस बालक को देखती ही । आनंद से चमकती काली-काली , गुच्छेदार लहराती केशराशि और -मंद स्मित से पूर्ण मुख! वह ठगी-सी ती ही रही। उसकी अपनी भी संतानें परन्तु ऐसा सुन्दर बालक उसने पहले नहीं देखा था।

और उस बालक की हत्या करना! क्षण भर तो उसके मन में आया कि इस जघन्य कृत्य से तो मृत्यु अच्छी है। किंतु फिर यह विचार कर कि कंस की आज्ञा न मानने से उसकी और उसके पति प्रद्योत की तो मृत्यु होगी ही, उसकी आठों संतानों की भी हत्या कर दी जायगी और सारे कुटुम्ब पर कंस का प्रकोप होगा, उसने किसी प्रकार इस अप्रिय कार्य को निपटाने का ही निश्चय किया। 'इसके बाद तो फिर कंस की दुष्ट आज्ञाओं से छुटकारा मिलेगा न!' उसने मन ही मन सोचा, 'अब मैं और किसी बालक की हत्या नहीं करूँगी।'

पूतना एकटक बालक को देख रही थी। ज्यों ही उसकी नज़र उससे मिली कि पूतना ने चुटकी बजाकर उसका ध्यान अपनी ओर आर्कषित किया और उसकी ओर हँसकर सीटी बजायी। बालक उसकी ओर देख कर मंद-मंद मुस्कराया। ओह कितनी सुंदर, कितनी मोहक थी उसकी मुस्कान!

पूतना ने हाथ बढ़ाया और जरा भी भय खाये बिना वह बालक यशोदा की गोद से उतर कर पूतना के पास चला आया। उसके स्पर्श से ही पूतना का मातृत्व जाग पड़ा और उसने बालक को छाती से लगा लिया। उसे लगा मानों कुछ समय पूर्व मृत्यु को प्राप्त अपने प्रिय बालक को ही वह हृदय से लगा रही है। इससे अधिक

भावावेग में उसने और किसी वालक का आलिंगन नहीं किया था। फिर भी मन में यह विचार तो उसके उठा ही कि इसी बालक की हत्या मुझे करनी होगी; इससे मैं किसी तरह वच नहीं सकती। यह उसके अपने पति और आठ संतानों के जीवन-मरण का प्रश्न था।

बालक के सुंदर मुख का चुंबन करने पूतना ने अपना सिर नीचे झुकाया। वालक आनंद से हँस उठा। उसका हास्य सुनकर पूतना मानों आनंद समाधि में पड़ गयी। मंदिर से लौटते समय उसने अपने केश में चंपा का एक फूल खोंस लिया था। उस पर वालक की दृष्टि पड़ी और मस्ती में उसने वह फूल खींच लिया। पूतना ने सिर ऊपर उठा लिया। वालक हँस पड़ा तथा आनन्द से नयन नचाते हुए उसने वह फूल उसके मुंह पर दे मारा।

"देखो तो वहन, तुम्हारा यह पूत क्या कर रहा है!" पूतना ने यशोदा से कहा। उसके पुरुष जैसे कठोर मुख पर स्मित की रेखा उभर आयी थी। "इस आयु में भी वह मेरे साथ खिलवाड़ कर रहा है। मेरे सिर से चंपक पुष्प खींच कर मेरे मुंह पर मार रहा है।"

मातृत्व के गौरव का अनुभव करती हुई यशोदा ने कृष्ण की ओर देखा। "यह कैसा उत्पात मचाता है, यह आपको नहीं मालूम!" उन्होंने कहा।

"अभी से इतना उत्पाती है तो आगे न जाने क्या करेगा?" पूतना ने कहा।

उसने अपना हृदय आनन्द से पुलकित होते अनुभव किया। आनंद समाधि में उसने कृष्ण को फिर छाती से लगा लिया। उसके हृदय की सुषुप्त मातृत्व-भावना की नदी में मानों बाढ़ आ गयी थी और उसके विशाल स्तनमंडल में से दूध की धाराएँ फूट पड़ीं। उसकी चोली भीग गयी। अपने समस्त हृदय, मन, आत्मा से वह उस बालक को चाहने लगी। उसे लगा कि उस सुन्दर बालक को उसे स्तन-पान कराना ही पड़ेगा। स्नान के पश्चात् तुरंत ही उसने अपने स्तन पर सोमरस लगाया था। इस प्रवाही को किस प्रकार तैयार किया जाता है, यह वह अकेली ही जानती थी। इससे पहले अनेक वार उसने यह द्रव्य अपने स्तनों पर इसी हेतु लगाया था कि वालक के मुंह में स्तनपान करते समय दूध के साथ सोमरस-युक्त प्रवाही चला जाय और उसकी इहलीला समाप्त हो जाय। इस वार भी उसे यही करना था। और कोई चारा भी नहीं था। अपनी, अपने पति और वच्चों की जिंदगी इसी पर निर्भर थी। उसने सोचा कि बस एक वार इस वालक को ठंडा कर दूं तो महाराज कंस की सदा के लिए कृपापात्री बन जाऊँगी।

उसका हृदय मानों बारंबार अत्यंत ग्रहपूर्वक उसे प्रेरणा दे रहा था कि इस क को शीघ्र अपने हृदय से लगा। तो दुष्ट और दुखार्त नारी है ही। स्त शरीर तथा मन-प्राण को पूरित र सके ऐसा अद्भुत आनन्द तूंने पहले भी नहीं अनुभव किया। आज तुझे अपूर्व सर मिला है। इस समय यदि तूं अपने, ने पति, अपनी संतानों के जीवन की बाजी लगा दे तो कोई बात नहीं। न वालक को शीघ्र छाती से लगा!"

पूतना का समस्त संयम शेष हो गया। न पर उसने ज़हर लगाया है यह बात भी वालक के प्रति अपने अपूर्व आनन्द ाह में भूल गयी, और उसने कृष्ण को में ले लिया। कृष्ण ने हँसते-हँसते की गोद से उतरने के लिए खींचा-ी शुरू की। पूतना स्वयं पर अपना त्रण खो वैठी। कंचुकी के वंध उसने दिये, स्तनों से दूध की धाराएँ ने लगीं, और उसने अपनी साड़ी के र से दूध से भीगे स्तन पोंछ लिये।

उसे ऐसा लगा मानों कोई कान में रहा हो, "तेरे स्तनों पर ज़हर लगा है। तेरा हृदय जिसके लिए छटपटा है, उस वालक की मृत्यु को तूं समीप रही है।" परन्तु स्वयं पर अब उसका नियन्त्रण रह नहीं गया था। आवेग-कृष्ण को खींचकर उसने अपनी छाती से लगा लिया। कृष्ण भी आनाकानी किये बिना उसकी छाती से चिपट गये और उत्साहपूर्वक स्तनपान करने लगे।

अपूर्व आनन्द से पूतना मग्न हो गयी। अवर्ण्य सुख का अनुभव उसने किया। "पेट भर कर पी ले, बेटा! ऐसा सुख मुझे किसी ने कभी नहीं दिया!" उसने मन-ही-मन कहा।

उसे ऐसा लगा मानों उसका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा है। आनंद समाधि के कारण तो कहीं मूर्छा नहीं आ रही है! उसे तो केवल एक ही इच्छा रह गयी थी। यशोदा का बालक पयःपान करे, और चाहे तो उसके साथ वह उसकी सारी जिंदगी, आशा, सर्वस्व सभी कुछ चूस ले। "हाँ, तुझ पर मैं अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हूँ, मेरे लाल!" उसने मन-ही-मन कहा, "मैं तेरी ही हूँ।"

उसका हृदय मत्त सागर की तरह उछल रहा था। मस्तिष्क में मानों कोई हथौड़ा-सा मार रहा था! सारे शरीर में एक ऐंठन-सी अनुभव हुई और फिर किसी अज्ञात दुःख का आघात और साथ ही साथ स्तन को जोर से चूसते बालक द्वारा प्रेरित आनन्द का भी अनुभव उसे हुआ।

गोपगोपियाँ जहाँ टोले वाँधकर खेल रहे थे वहाँ से कुछ हो-हल्ला और चीख-पुकार सुनायी पड़ी। बड़े-बड़े वांस लिये लोग दौड़े आरहे थे। सब के आगे स्वयं

नंद थे। उपस्थित लोगों में खलबली मच गयी।

"पूतना यहाँ आयी है!"

"कहाँ है वह? कृष्ण कहाँ है?"

"कृष्ण-कृष्ण!" अधीरता तथा गभराहट से भरी आवाज में नंद ने ज़ोर-ज़ोर से पुकारा, "कहँ है वह?"

"पूतना-पूतना-पूतना" यही भयंकर शब्द सब के मुंह पर था।

यशोदा ने घबड़ा कर अपनी ओर बढ़े आ रहे लोगों को देखा। 'पूतना-पूतना, कृष्ण' ये शब्द उसे बार-बार सुनायी पड़े। अपनी बगल में बैठी राजदरबार की उस स्त्री की ओर उन्होंने दृष्टि डाली और समझ गयीं कि वही पूतना थी।

परंतु इससे पहले कि कृष्ण को यशोदा अपने पास खींचे, पूतना फटी आँखों, धीरे-धीरे धरती पर लुढ़क गयी। बालक को अपनी छाती से चिपकाये रखने का अंतिम प्रयास उसने किया था। मृत्यु को प्राप्त होकर वह अब ज़मीन पर पड़ी थी। उसके मुख पर एक मातृ-सुलभ मधुर स्मित की रेखा उभर आयी थी।

पूतना जिस समय साँस लेने के लिए छटपटा रही थी उसी समय कृष्ण उससे विलग हो गये थे। धीमे-धीमे डग भरते वह यशोदा के पास आ पहुँचे। यशोदा ने तुरंत उन्हें बाहों में भर लिया। सभी सम्बंधी अत्यंत उत्तेजित और अधीर होकर यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि आखिर बात क्या है? नंद जब उनके पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि पूतना ज़मीन पर चित्त पड़ी है।

"कृष्ण कहाँ है? पूतना गोकुल के लिए प्रस्थान कर चुकी है, यह मैंने मथुरा में सुना और तुरंत ही दौड़ा-दौड़ा यहाँ आया हूँ।" उन्होंने हाँफते-हाँफते कहा।

"मार डालो पूतना को, मारो, मारो पूतना को" लंबे-लंबे बांस लिये दौड़ आ रहे लोगों ने पुकारा।

"वह तो मर चुकी है। मेरे लाल ने यह काम किया!" यशोदा ने घृणा से पूतना के शव से दूर खिसकते हुए कहा।

कृष्ण को उन्होंने अपने हृदय से चिपका लिया। वह तो उनका प्राण, उनकी आत्मा, उनका सर्वस्व था।

[क्रमशः]

अनु. ओंकारनाथ शर्मा

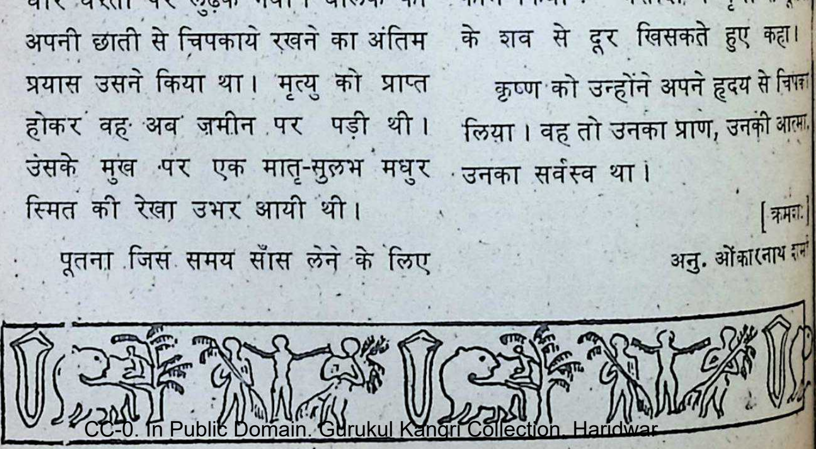

[युगनिर्माता महापुरुष श्रीकृष्ण : पृष्ठ १५७ का शेषांश]

अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥

"कौरवों और पाण्डवों के बीच शान्ति स्थापित हो जाय। वीरों के प्राणों का नाश न हो। मैं यही प्रार्थना करने आया हूँ।" दुर्योधन को समझाते हुए उन्होंने कहा था– "शमेशर्म भवेत्तात" अर्थात् हे तात ! तुम्हारा और विश्व का कल्याण शान्ति से ही संभव है। किन्तु दुर्योधन तैयार न हुआ तब वापस आने पर उन्होंने दुःख पूर्वक कहा था–" युद्ध अवश्यंभावी है। बूढ़े धृतराष्ट्र पुत्रप्रेम के वशीभूत होने के कारण अपने पुत्र की इच्छा के विरुद्ध व्यवहार नहीं कर सकते।" और युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण की सब से बड़ी विशेपता थी–परिस्थिति को तुरन्त पहचान लेना और अपने कर्तव्य का निश्चय कर पूरी शक्ति से उस ओर लग जाना तथा बुरी से वुरी स्थिति से भी अच्छा से अच्छा परिणाम निकाल लेना। वे कोई अच्छा परिणाम निकालने के उद्देश्य से स्वयं भी उस युद्ध में कूद पड़े। यद्यपि स्वयं लड़े नहीं। युद्ध से विरल हुए अर्जुन को अपनी पूर्ण वाग्शक्ति और योगशक्ति का प्रयोग कर उन्होंने युद्ध के लिए प्रेरित किया। अनेकों अत्याचारियों को उन्होंने स्वयं समाप्त किया। इसके बाद जो बचे उन्हें महाभारत में खींच लिया। अपने स्वयं के वंश 'यदुवंश' में दुराचार और फूट को देखकर वे दुखी हुए और इसीलिए उनका संहार करने के लिए उन्होंने अपनी यादवसेना को अपने विपक्ष की ओर–कौरवों की ओर रखा। युद्ध के बाद जो यादव बचे उनके आपसी मत भेद मिटाने के लिए उन्होंने हर संभव प्रयास किया और इस प्रयास में असमर्थ रहने पर उन्हें प्रवास क्षेत्र में ले जाकर समाप्त किया।

श्रीकृष्ण को संपूर्ण जीवन में एक पल भी विश्राम न मिला। किशोर अवस्था में उन्होंने गोकुल को छोड़ा। कंस और उसके साथियों का वध करने के पश्चात् वे विद्याध्ययन के हेतु गुरुकुल में गये। विद्या का अर्जन और योग की उच्चतम् साधना का ज्ञान प्राप्त करने के बाद वे पूरे जोर से देश की राजनीति में कूद पड़े। उन्हें अपने सुखों का तनिक ध्यान न था। क्या 'सुख' जैसी कोई आवश्यक वस्तु है ? इसका उन्हें भान भी न होता था। उनका संपूर्ण जीवन देश के लिए बलि हो गया। सोने तक का अवकाश उन्हें न मिलता था और न ही उन्हें नींद की आवश्यकता प्रतीत होती थी। निद्रा को अपनी योग-शक्ति से वे जीत चुके थे।

श्रीकृष्ण के संपूर्ण कार्य यहीं पूरे नहीं हो जाते। संभवतः वे और भी कुछ करना

चाहते थे, जिसे पूरा करने से पूर्व ही उनका अंतिम समय आ गया। वे स्वयं एक गणराज्य के नागरिक थे और जनसाधारण के बीच पले थे, अतः गणतंत्र से उन्हें प्रेम होना स्वाभाविक था। वे कदाचित भारतवर्ष में गणतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। शक्तिशाली दुराचारी राजाओं को वे समाप्त कर चुके थे। बचे हुए कुरुक्षेत्र में सो गये थे। उनके बीच की समस्त बाधायें समाप्त हो चुकी थीं। पांडवों ने महाभारत जीता था, परन्तु वे भी अब पराक्रम हीन हो गये थे। अर्जुन का साधारण डाकुओं द्वारा लूटा जाना इसी का प्रमाण है। अब जनता बची थी और शक्ति यथार्थ में उसी के हाथों में थी। यदि उनकी अकाल मृत्यु न हुई होती, तो वे जनक्रांति करवा कर बचे हुए राजवंशों के हाथों से भी शासन को निकाल लेते और अपने सामने ही संपूर्ण भारतवर्ष में गणतंत्र की स्थापना कर जाते। तथा आज एक झंडे के नीचे जिस महान भारत को हम एक सूत्र में संगठित देख रहे हैं, उसे संसार ने आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ही देख लिया होता। किन्तु विधाता को यह स्वीकार न था। वे एक व्याध के बाण का शिकार हो गये और उनका यह महान स्वप्न पूर्णता के निकट पहुँचकर भी अधूरा ही रह गया।

श्रीकृष्ण के चरित्र का पूर्ण विवेचन करने के बाद हम उन्हें एक साथ अनेक रूपों में देखते हैं। वे एक सफल कार्यकर्ता थे। स्वार्थ उन्हें छू भी नहीं गया था। उनके समय उनकी टक्कर का दूसरा योद्धा संपूर्ण पृथ्वी मंडल में न था। मित्र के लिए वे सब कुछ करने को तत्पर रहते थे। भीष्म के प्रहारों से अर्जुन की रक्षा करने के लिए उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को भी तोड़ दिया था। तर्कशक्ति उनमें प्रबल थी। देखते ही किसी समस्या की जड़ तक वे पहुँच जाते और तुरन्त अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेते थे, तथा पूरी शक्ति से उस ओर लग जाते थे। उनका प्रत्येक कार्य चरमसीमा पर होता था। सुदामा को उन्होंने इतना दिया कि उसे राजा ही बना दिया। उनकी राजनीति में क्षमा को कोई स्थान न था। रुक्मी के अतिरिक्त जिसपर भी उन्होंने हाथ उठाया, उसे तुरन्त समाप्त कर दिया। योग की साधना की तो स्वयं 'स्थितप्रज्ञः' की अवस्था को प्राप्त करके रहे और उपदेश दिया तो ऐसा कि जैसा ज्ञानी ब्राह्मण भी न दे पाते। आज भारत को श्रीकृष्ण जैसे ही किसी निःस्वार्थ और दृढ़ निश्चयी विद्वान, राजनीतिज्ञ तथा क्रियाशील समाज सुधारक की आवश्यकता है।

*

मनी साहुकार

सौन्दर्य, प्रेम और कला के अधीश्वर, श्रीकृष्ण

रस-राजेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र तो सम्पूर्ण कलाओं के अवतार थे। इसी कारण उनकी लीला में सौन्दर्य, प्रेम और कला का जैसा समन्वित प्रकाश और ऐश्वर्य दिखायी पड़ता है, वैसा अन्य और किसी भी अवतार में नहीं दिखायी पड़ता। उनका व्यक्तित्व सौन्दर्य, प्रेम और कला का 'यत्परोनाऽस्ति' अधिष्ठान था।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

द्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
त्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥
१०।४१॥

'जो कुछ भी सुन्दर है, श्रीमान् और क्तिमान् है, वह मेरे एक अंश का कटय है।' इस कथन में सौन्दर्य का श्वर के साथ सम्पूर्ण तादात्म्य प्रदर्शित । सौन्दर्य, जिसे कला की प्रेरणा के में जाना जा सकता है, सत्य से भिन्न हीं है। सत्य सौन्दर्य का ही अविलग अंश । कीट्स के शब्दों में 'सौन्दर्य सत्य है र सत्य सौन्दर्य'। जीवन या विश्वात्मा में दोनों की सत्ता को सर्वोपरि स्वीकार करते हुए भी यह प्रश्न सामने आता है– सुन्दर क्या है और सत्य क्या है? इनके स्वरूप के बारे में कोई निर्णायक मत कभी नहीं हो सका। हर युग, हर स्थिति में इन पर विचार बदलते रहे हैं और यह सही भी है, क्योंकि मानव-मन स्वयं अपूर्ण है। वह कोई ऐसा नियम कैसे निर्धारित कर सकता है, जो हर युग, हर देश, हर स्थिति में पूरा उतरे। बुद्धि का सीमित प्रसार सौंदर्य, प्रेम और कला जैसे असीमित विषयों को कहाँ तक माप सकता है। जब हम सौन्दर्य के बारे में कहते हैं, तो प्रायः हम उसे वहीं तक देख पाते हैं, जहाँ तक कलाकारों ने उसे अनावरित किया है। किंतु कला, सौन्दर्य की केवल

नकल नहीं है, उसकी व्याख्या है, जिसे कलाकार, वह चाहे कवि हो, चित्रकार हो या शिल्पी हो, अपनी आत्मा में गहरा और गहरा उतार कर पुनर्सृजित करता है।

भारत में कला धर्म से अनुप्राणित है, इसलिए कलाकार सदा ऐसा विषय चुनने के प्रयत्न में रहता है, जो लोक-पूजित हो। केवल कला के लिए जिस कला की सर्जना की जाती है, वह मनुष्य की ग्रहण करने की सामर्थ्य को तृप्ति देती है, किंतु सौंदर्य का क्षेत्र इससे कहीं बड़ा है। कला बहुत आंतरिक और बहुत प्राणवन्त होनी चाहिए, जो मानव प्रकृति को बहुत भीतर से स्पर्श कर सके। क्योंकि एक हिन्दू का सम्पूर्ण जीवन धार्मिक अनुभवों से भरा होता है, इसलिए उसके निकट धर्म से प्रेरित कला विशेष अभिप्राय रखती है। भारत में अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ, मथुरा और वृन्दावन के मन्दिर सब उसी शाश्वत सौन्दर्य के प्रतीक हैं। टूटी-फूटी कलाकृतियाँ भी उसी शाश्वत सौन्दर्य की झलक देती हैं, जिसका आधार सौंदर्य, प्रेम और कला का अधीश्वर था। एक हिन्दू व्यक्ति कला के दर्शन में जिस सौन्दर्यात्मक दृष्टि से काम लेता है, वह यह अपेक्षा रखती है कि कलाकृति उसकी आध्यात्मिक पिपासा को शांत कर सके। श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व एक ऐसा आधार है, जिसे मनुष्य हर कोण से देखकर अपना हृदय भर सकता है। जब कला की स्थापना किसी आध्यात्मिक रूप पर अवलम्बित होती है, तब धर्म स्वभावतः ज्यादा प्रेरक हो जाता है–यदि उसमें सौन्दर्य की सृष्टि हो। इस दिशा में श्रीकृष्ण का योग अभूतपूर्व है, अद्भुत है। कला की हर विद्या, जिसका आधार श्रीकृष्ण हैं, उनके धर्म को अधिक शक्ति के साथ प्रस्तुत करती है, इतना ही नहीं, उनके व्यक्तित्व को भी सुन्दर ढंग से प्रकाशित करती है। सम्भवतः किसी भी व्यक्ति ने ईश्वरीय ज्ञान को इतना सौन्दर्यात्मक स्वरूप और पृष्ठभूमि नहीं दी, जितनी श्रीकृष्ण ने। श्रीकृष्ण हमें 'सत्यात्मक-सौन्दर्य' नहीं 'सौन्दर्यातसका सत्य' का दिव्य दर्शन देते हैं और 'सौन्दर्यात्मक सत्य' हमें उस शिखर तक ले जाता है, जहाँ सब ओर आनन्द है, केवल 'सत् चित् आनन्द' है।

कलात्मक तत्त्वों के सृजन द्वारा मनुष्य 'सृजन' और उस महान 'स्राजक' के प्रति अपना सम्मान प्रकट करता है। यदि ईश्वर के साथ मनुष्य की एकरूपता सम्पूर्ण और गहरी है, तब सौन्दर्य का हर पहलू उसके निकट उजागर है। इस प्रकार एक साधक भी 'दिव्य सौन्दर्य' के परिचय के कारण कलाकार की कोटि में आ जाता है। यों, पारम्पारिक विश्वासों से यह सर्वथा

BRAHMI AMLA

लम्बे
सुंदर
और
घने
बालों
के लिए

रेमी
हेअर ऑयल
इस्तेमाल कीजिये

* आमला * कैस्टर * कोकोनट
* बोके और * स्पेशल हेअर ऑयल

MPS-RG 11-HIN

भिन्न विचार है, किंतु इसकी सत्यता में संदेह नहीं होना चाहिए। श्रीकृष्ण ने जिन आध्यात्मिक विचारों को प्रस्तुत किया है, वे सौन्दर्य के रूपाकारों में ही रस की सृष्टि और विकास की परिपूर्णता देखते हैं। यह एक नवीनतम दृष्टिकोण था, जिसे उन्होंने सर्वप्रथम प्रस्तुत किया।

इस विषय पर सन्त आगस्टाइन के विचारों को उद्धृत करना ठीक होगा : "यह विश्व उस शक्तिशाली प्रभु की कलासृष्टि है। ईश्वर अपने 'शब्द' और अपनी 'कला' के द्वारा इस सृष्टि को नियंत्रित रखता है और अपने कर्त्तृत्व की प्रतीति करता है। यह उसकी 'कला' ही है, जिसके ज़रिये मानव-कलाकार को संयमिति पानी चाहिए और अपनी रचना के रूप को पहचानना चाहिए।' 'स्राजक' को कलाकार के रूप में सोचना कृष्णसम्प्रदाय की विशेषता है। सृजन करना 'स्राजक' की अनिवार्यता है और क्योंकि कलाकार भी सृजन करता है, इसलिए वह इस रूप या अर्थ में मनुष्यों के मध्य ईश्वर सम होता है।

प्रस्तर कला के नमूनों के रूप में भारत में 'नटराज का नृत्य' या वीणा-वादिनी देवी सरस्वती की अनेक कलाकृतियाँ मिलेंगी, किंतु इन सब अभिव्यक्तियों में श्रीकृष्ण सम्वन्धी कृतियाँ संख्या में ज्यादा और सुन्दर है। कृष्ण के शिशु-काल का भारत के कवियों, कलाकारों, शिल्पियों नें अनेक रूपों में वर्णन-चित्रण किया है। कवियों ने उनके दिव्य वचपन को गाया, चित्रकारों ने उनके युवाकाल को अमर किया और मूर्तिकारों ने जिन पत्थरों को तराशा, उनमें ऊष्मा और स्पन्दन भर दिया।

भारतीय कला में सौन्दर्य को कई बार अभिप्राय सिद्धि के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो प्रश्न उठता है—क्या इससे कला का विशुद्ध सौंदर्य नष्ट नहीं हो जाता। किंतु श्रीकृष्ण ने अपने अनुयायियों से कहा : कोई भी 'सत्य' सच्चा नहीं है, यदि हम उसे प्रेम नहीं करते हैं। अकेला 'प्रेम' यथार्थ (fact) को सत्य (truth) में परिवर्तित कर सकता है, क्योंकि प्रेम में कल्पना (imagination) की शक्ति है और कव यह हमारे भीतर प्रवेश कर हमारे तथ्यों (fact) के ज्ञान को 'सत्य' में परिवर्तित या रूपांतरित कर देती है, हम नहीं जान पाते। प्रेम का तथ्यों से भेद नहीं है, किंतु अकेले प्रेम की उपस्थिति और प्रकाश में उन्हें पूर्णरूप से देखा और समझा जा सकता है। श्रीकृष्ण के अनुसार वह 'सत्य' नहीं हो सकता, जिसे 'प्रेम' न किया जा सके और वह कुछ भी प्रेम करने लायक नहीं है, जिसमें सौन्दर्य न हो। यह एक दृष्टिकोण है, जिसे हर कोई स्वीकार नहीं कर सकता।

ंतु बहुत से मनुष्यों के लिए, खासतौर कलाकारों के लिए यह एक मात्र विचार ौर विश्वास की बात है।

उक्त सत्य के परिचय के उदाहरण में कह सकते हैं कि सम्पूर्ण रास-ीला इसी विचार पर आधृत है। ो कुछ असुन्दर है, उससे प्यार नहीं िया जा सकता'.... इसलिए श्रीकृष्ण स्वयं को सौन्दर्य की मूर्ति बनाया, ुदर वस्त्रों से अपने सर्वांगों को सजाया, लंकृत किया और वंशी और अपने ाकर्षक नृत्यों द्वारा वृन्दावन की गोपियों ो प्रेम की प्रेरणा दी। और जब गोपियों े हृदय में इस प्रेम का अंकुर जन्मा, तब न्होंने उसे पवित्र रूप प्रदान कर गोपियों ो संदेश दिया कि कैसे वह इस ऊर्जस्वलित ेम के द्वारा उस 'सत्य' को पा सकती हैं, ो जीवन का एकमात्र अभिप्राय है, िद्धि हैं। वह सामान्य प्रेम जो गोपियों े हृदय में जन्मा था—वही पवित्रतम और र्ध्वगामी बनकर उन्हें उनके सत्य तक ले या, जहाँ आनन्द की शाश्वत स्थिति है। स प्रेम में विराग (detachment) ै, वस्तुतः 'रासलीला' की सम्पूर्ण कथा ेम में विराग की सुन्दर प्रतीति है।

'रासलीला' में सन्निहित भाव विशुद्ध ौन्दर्य को प्रदर्शित करता है। 'रास' थवा 'कृष्ण नृत्य' के केंद्र में वह प्रतीक या है, जो यह वताती है कि विश्व के मध्य सूर्य भगवान हैं—'चेतन और अचेतन प्रकृति के आतमरूप'— जिससे यह सम्पूर्ण विश्व एक गीत की भाँति फूट पड़ा है। इस लीला में मनुष्य का ईश्वर से सम्वन्ध बहुत सुन्दरता से व्यक्त हुआ है।

सार रूप में, गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला 'आनन्द' का सर्वोन्नत, सुन्दर रूप है। राधा, जो गोपियों के वीच में कृष्ण की प्रियतमा है, दिव्य प्रेम की साकार अभिव्यक्ति है और श्रीकृष्ण आनन्द के मूर्तिमान दिव्य रूप। ये दोनों, राधा और श्रीकृष्ण अविलग रूप से एक हैं, सुराये और फल की तरह: फूल और सुरभि की तरह।

श्रीकृष्ण के अनुसार सौन्दर्य, प्रेम और सत्य के प्रकटीकरण के लिए कला एकमात्र माध्यम है, जो सहस्त्रों मनुष्यों की भाववनाओं को एक साथ अभिव्यक्ति देने में समर्थ ह। श्रीकृष्ण ने 'सौन्दर्य' को सुन्दर ढंग से अनावरित किया—" 'अनेकता' में 'एकता' की जो काल्पनिक और भावात्मक अभिव्यक्ति है, उसीमें सौन्दर्य की स्थिति है। यह कृष्ण का सौन्दर्यात्मक सिद्धांत (aesthetic principle) था, जिसके मूल में 'आध्यात्मिक जागरूकता के साथ सौंदर्य की सम्पूर्ण तद्रूपता' का विचार निहित है।

सौन्दर्य, प्रेम और कला को समष्टि रूप में पाना हो, तो वह एक ही व्यक्तित्व है—श्रीकृष्ण।

●●●

[श्रीकृष्ण और भग्वद्गीता : पृष्ठ २७ का शेषांश]

कहा था, 'मैं वही हूँ, जो मेरा प्रिय है, और जो मेरा प्रिय है, वहीं मैं हूँ। एक ही शरीर में हम दो आत्माएँ हैं।'

भाव वही है। ईश्वर को चाहे श्रीकृष्ण कहें, श्रीराम, शिव अथवा शक्ति कहें, अल्लाह, ताओ, बुद्ध, महावीर, 'होली घोस्ट', माँ, ब्रह्मा, दिव्य सत्य, प्रेम अथवा सौंदर्य के नाम से पुकारें, उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

संसार भर में जो भी दिव्य संदेश महान गुरुओं ने सुनाये, उस सब का सार श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरित भगवद्गीता में है। पराजय से डरो मत। भय एक भ्रम है। मानव के भ्रामक मूल्य ही उसे पराजय से भयभीत होना सिखाते हैं। जिसे भगवतीय मुक्ति का वरदान मिल चुका है, वह साधारण मनुष्यों की भाँति जय-पराजय की भावनाओं से त्रस्त नहीं होता। उसका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि लोभ, भय तथा क्रोध उसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकते। वाहर से जो पराजय प्रतीत होती है, वह धर्म की अग्निशिखा को फिर से उसमें प्रज्ज्वलित करती है और आत्मा के प्रति उसे अधिक श्रद्धावान तथा प्रभु की वाणी का पालन अधिक उत्साह से करने को कर्तव्यनिष्ठ वनाती है। पराजय स्वर्ण से उसकी खोट निकालती है, शक्ति को वढ़ाती है और सत्य के प्रति निष्ठावान वनाती है।

जिसको धर्म के प्रति श्रद्धावान होने के लिए लोगों का अनुमोदन चाहिए और कार्य में संलग्न होने के लिए सफलता का नशा, वह सही मार्ग पर नहीं है। उसके लिए केवल एक ही रास्ता है और वह यह कि गीता का वह बार-बार पाठ करे, जब तक कि उसका मन अमरता के उस अखंड स्रोत से प्रफुल्लित न हो उठे।

गीताजनित सत्य मन, वाणी और कर्म की एकरूपता है, जो कि निरन्तर आत्म-अभिव्यक्ति में सुनायी पड़ता है। वह उस धर्मयुद्ध जैसा है, जिसे अर्जुन ने श्रीकृष्ण द्वारा गीता का उपदेश सुनकर स्वीकार किया था।

जब मन, वाणी और शब्द एक हो जाते हैं, तो श्रद्धा की एक रहस्यमयी धारा प्रवाहित हो उठती है। आध्यात्मिक भावना का एक ज्वार-सा आता है, आत्मा की शक्ति प्रचंड हो उठती है। प्रभु की वाणी श्रद्धा द्वारा सम्प्रेषित हो, सदा विजयी, यद्यपि सदा दुष्प्राप्य, निष्क्रिय को भी ईश्वर की ओर ऊपर उठानेवाली, धर्म की जीवन्त शक्ति बन जाती है।

श्रद्धा का सहारा न पाकर लड़खड़ाओ मत; गीता के अमृतस्रोत का पान करो।

प्रकट लाभ के लिए लालायित मत हो, नहीं तो काम, भय तथा क्रोध तुम्हारे मन को भ्रमित कर देंगे और तुम्हारा देवत्व अपूर्णताओं से घिर जायेगा।

जिसने धर्म के प्रति अपना जीवन समर्पित कर दिया है, उसके लिए ईश्वर की महत्ता वस्तुतः जीवन में अनुभवगम्य वस्तु है। ऐसी कोई पराजय नहीं, जिस पर उसकी इच्छा विजय न पा सके, ऐसा कोई दुःख नहीं, जिसको वह पार नहीं कर सके। यदि दुष्प्राप्य धर्म का वह दृढ़ इच्छुक हो, तो भावी से भी वह अधिक बलवान होगा, क्योंकि ईश्वर स्वयं उसमें वास कर चुका होगा।

किंतु यह इच्छा व्यक्तिगत ही हो सकती है। जो भी इसका अनुसरण करता है, उसे सामूहिक विचार की सर्वत्र व्याप्त विमूढ़ता से बचना होगा। जो भी धर्म का अनुसरण करता है उसे प्रशंसा और निंदा के प्रति उदासीन रहना होगा। धर्मप्राप्ति की दिशा में विचार और कर्म की हमारी एकता संशयशील और अनिश्चययात्मक बुद्धि के द्वारा भंग नहीं होनी चाहिए। यदि हम धर्म के प्रति निष्ठावान नहीं रहे, तो असत् के भंवरजाल में डूब जायेंगे।

धर्म ही जीवन है; आर्यावर्त उसका आश्रय है; और प्रभु की वाणी अर्थात् भगवद्गीता वह ज्योतिशिखा है, जो उसे जीवन्त रखती है। ●●●

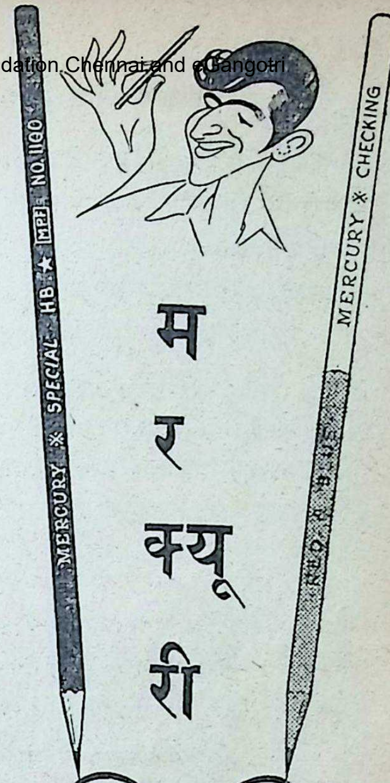
MERCURY ✻ SPECIAL HB ★ MPF NO.1100
MERCURY ✻ CHECKING
BLUE
म र क्यू री

अच्छी **पेंसिलों**
का नाम है।
ब्लैक लीड, कापिङ्ग
व कलर्स

उत्पादक :
द मद्रास पेंसिल फैक्टरी,
३, रिट्रन्जर्स स्ट्रीट, मद्रास १
एल. एण्ड सी. हार्डमुथ (ग्रेट ब्रिटेन) लिमिटेड
कोह-इ-नूर
पेंसिल फैक्टरी, इंगलैंड के यांत्रिक
सहयोग के साथ।

[श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य : पृष्ठ २९ का शेषांश]

गोपालों—और सबसे बढ़कर राधिका—के रूप में भी अभिव्यक्त हुआ है। इसीलिए सूरदास की पुनरुक्तियाँ जरा भी नहीं खटकतीं और वाक्चातुर्य इतना उत्तम कोटि का होकर भी व्यंग्यार्थ के सामने अत्यंत तिरस्कृत हो गया है। वर्णन-कौशल वहाँ प्रधान नहीं है, वह भक्त के महान् आत्मसमर्पण का अंगमात्र है। किंतु साधक भक्त लोग लीला के विरहरूप को जितनी आसानी से अनुभव कर सकते हैं, उतना मिलनरस को नहीं।

भगवान् के साथ गोपियों या श्रीराधा के मिलन के विषय में गान करता हुआ भक्त सद्गुरु के बताये हुए लीलामार्ग को दुहराता है और आशा करता है कि उनके सत्संग से प्राप्त की हुई हृदयकर्ण की रसायनरूप कथा को सुनते-सुनते श्रद्धा, प्रीति और भक्ति भी प्राप्त हो जायगी। श्रीमद्भागवत में यह बात स्पष्ट शब्दों में कही गयी है, परन्तु विरह की अवस्था में वह स्वयं अपने आपको निःशेष रूप से उंड़ेल देता है। यही कारण है कि भक्त की विरहकथा अधिक सरस, अधिक भावप्रवण और अधिक द्रावक होती है। यशोदा द्वारा कथित निम्नलिखित पद में सूरदास स्वयं फूट पड़े हैं :—

मेरे कान्ह कमलदललोचन।
अबकी बार बहुरि फिरि आवहु कहाँ लगे जिय सोचन।
यह लालसा होती जिय मेरी बैठी देखत रहौं।
गाइ चरावत कान्ह कुंअर को कबहूँ जान न दैहौं॥

यशोदा का यह रूप तभी समझा जा सकता है, जब पूर्ववर्ती बाललीलाओं को इसी प्रेम का एक रूप माना जाय। स्वभावोक्ति का चमत्कार देखनेवाले यशोदा के इस और उस रूप में कोई एकरूपता नहीं खोज पायेंगे। हम आगे चलकर देखेंगे कि राधिका के रूप में सूरदास ने भक्त-हृदय का जो चित्र खींचा है, वह इसी अपूर्व तन्मय प्रेम का आश्रयभेद से परिवर्तित रूपान्तर मात्र है।

उन्होंने उस प्रेम-निधि को पाया था, जो नये रूपों और आकारों को जन्म दिया करता है। बालस्वभाव का वर्णन हो या प्रेमलीला का, सर्वत्र वे गंभीर हैं। यह जो कांताभाव की रति है, वह इस देश के निर्गुण भाव के उपासक भक्तों में भी पायी जाती है। कबीरदास, दादू आदि भक्तों में भी यह भाव है, परन्तु वहाँ समासोक्ति पद्धति से काम लिया जाता है और लौकिक कान्ताविषयक प्रीति व्यंजन का विषय होती है।

छठां वर्ष....

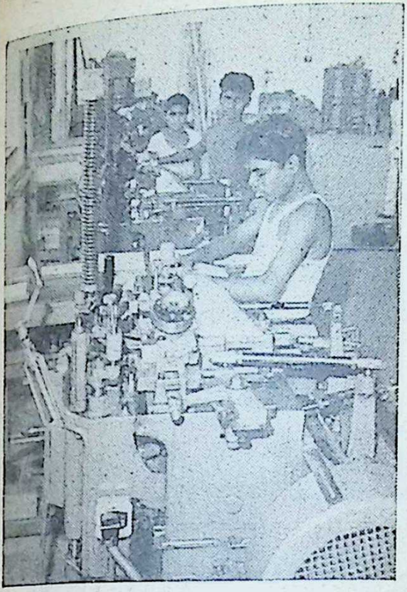

आन्ध्र प्रदेश के प्रथम पाँच वर्ष वास्तविकरूप से दूसरी योजना के साथ पूर्ण हुए, जिस पर मूल अनुमान की अपेक्षा १४ करोड़ रुपये अधिक व्यय हुए। राज्य का छठां वर्ष भी उसी आशा के साथ प्रगति के पथ पर है। जिसमें तीसरी योजना के अनुसार ३०५ करोड़ रुपये व्यय होंगे।

● नागार्जुन सागर के विशाल प्रोजेक्ट पर गत वर्ष १० करोड़ रु. खर्च हुए, जबकि ९ करोड़ रुपयों के व्यय की व्यवस्था थी।

● औद्योगिक विकास कार्पोरेशन ने राज्य में द्रुतगति से औद्योगिकरण के विकास के लिए ३ करोड़ रु. की अधिकृत पूँजी को निश्चित किया है। वह दस चुनी हुई योजनाओं पर विचार कर रहा है। ताकि १९.६५ करोड़ रुपये की कुल लागत से उन्हें कार्यान्वित किया जा सके।

● लघु उद्योग के विकास के लिए एक अलग कार्पोरेशन का निर्माण किया गया है, जिसको सरकार ने २० लाख रु. शेयर पूँजी के रूप में तथा ३५ लाख रुपये ऋण के रूप में दिया है।

● राज्य खदान कार्पोरेशन जो गत वर्ष से कार्यरत हुआ, कृष्णा जिले में कच्चे लोहे की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। इस जिले में दिसम्बर १९६१ से कार्य शुरू हुआ और १ लाख टन से भी अधिक कच्चा लोहा प्राप्त किया है। कार्पोरेशन ने अन्य धातुओं के सम्बन्ध में भी योजनाएं तैयार की हैं। और एसबेस्टस, तांबा, ग्रेफ़ाइट आदि को प्राप्त करने का शोध कार्य जारी है।

● ८३,४१५ वर्गमील के २.३६ करोड़ जनसंख्यावाले २४,४१७ गाँवों में सामुदायिक विकासयोजनाओं को कार्यान्वित किया जा चुका है। राज्य में ३७८ विकास खण्ड कार्य कर रहे हैं।

● अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा योजना के साथ स्कूल जानेवाले बच्चों को दोपहर का भोजन देने सम्बन्धी दो और योजनाओं को भी जारी कर दिया गया है।

तृतीय योजना के आवश्यक साधनों की पूर्ति के लिए नये कदम उठाये जा रहे हैं; किन्तु सारी सफलता जनसाधारण के ऐच्छिक सहयोग की भावना पर अवलम्बित है।

डी. आई. पी. आर., ए. पी.

इस विषय में रवीन्द्रनाथ के गानों में कवित्व इतना अधिक होता है कि वहाँ सहृदय के हृदय की चर्वित अनुभूति के अनुकूल लौकिक और अलौकिक दोनों ही प्रस्तुत हैं और दोनों ही व्यंजना के विषय हो जाते हैं। जब वे कहते हैं–'अरी ओ अभागिन, तुझे कैसी नींद आ गयी थी, जो प्रियतम के पास आने पर भी जाग नहीं सकी। वह निस्तब्ध रात्रि में आया था, हाथ में उसके वीणा थी, तेरे स्वप्न में उसने गंभीर रागिणी वजा दी और तू सोती ही रही। हाय जाग के देखती हूँ, दक्खिनी हवा को पागल वनाकर उसका सौरभ अंधकार में व्याप्त होकर प्रवाहित हो रहा है। हाय, क्यों मेरी रात व्यर्थ चली जाती है, उसे नजदीक पाकर भी नहीं पा-सकती, क्यों उसकी माला का स्पर्श मेरे वक्षस्थल को नहीं लगने पाता।' तो प्रस्तुतार्थ लौकिक प्रेम भी हो सकता है और अलौकिक भी। किंतु सारा पदबंध सहृदय को एक अलौकिक रसानुभूति कराये विना विश्रांत नहीं होता।

साधारण आदमी पूछ सकते हैं कि भक्त कान्ताभाव से ही परम शक्ति की उपासना क्यों करता है? भगवान को प्रिया के रूप में समझकर क्या उपासना नहीं हो सकती? हो सकती है। इस देश में इस प्रकार की उपासना-पद्धति भी अनजानी नहीं है, पर भक्त जिस कारण से अपने को भगवान् की कांता समझने में आनन्द अनुभव करता है, वह उपेक्षणीय नहीं है। आगम शास्त्रियों का विश्वास है कि भगवान् ने लीला के लिए जब सृष्टि उत्पन्न करनी चाही, तो अपने को उन्होंने द्विधाविभक्त किया। इसमें एक ओर तो नारायण हुए और दूसरी ओर उनकी शक्ति लक्ष्मी। शक्ति निषेधव्यापाररूपा होती है। क्योंकि, भगवान की उस इच्छा का रूप है, जिसके द्वारा वे 'कुछ' के अभाव को अनुभव करते हैं। स्त्री में इसी शक्ति का प्राधान्य है। इसलिए स्त्री निषेधव्यापाररूपा या अपने आपको समर्पण करके ही सार्थक होती है। भक्ति में इसी निषेधव्यापार या आत्म-समर्पण का भाव सेवक में स्वामी के लिए, माता-पिता में संतान के लिए और मित्र में मित्र के लिए भी होता है, फिर भी कान्त के लिए आत्म-समर्पण की भावना चरम सीमा पर पहुँचती है।

यह ध्यान रखने की बात है कि लौकिक प्रीति होने पर प्रेम जड़ोन्मुख होता है और इसलिए कांताभाव में जड़ शक्ति ही चरम रूप में विद्यमान होती है। लौकिक प्रीति का विषय होने पर यह प्रेम शृंगाररस का विषय होता है और सब प्रेमों के नीचे पड़ जाता है, परन्तु जब यह चिन्मुख होता है, अर्थात् भगवद्विषयक होता है, इसका नाम उज्ज्वल रस होता है। यही श्रेष्ट रस हैं। ● ● ●

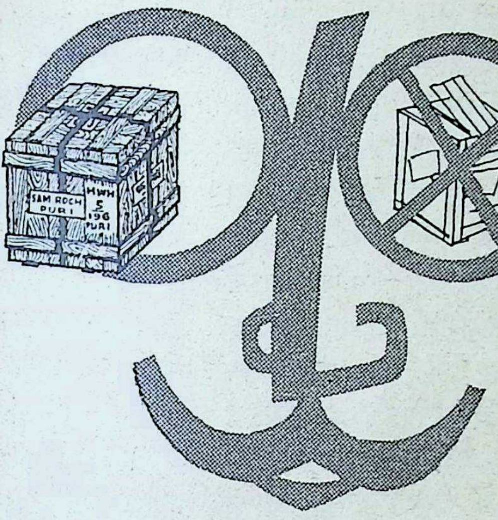

त्रिराशिक के

बहुमूल्य

नियम को

याद रखिये

पैकलेबल मार्क

गणित के एक मूलभूत पाठ से इस बात का ज्ञान होता है कि सही उत्तर पाने के लिए त्रिराशिक नियम का पालन करना आवश्यक है। इसी प्रकार "पी० एल० एम०" के बहुमूल्य नियम का पालन करने से आपका सामान गंतव्य स्थान पर निश्चयपूर्वक बिना टूटे-फूटे हुए पहुंचेगा।

आपको केवल इतना करना है—
१. इतमीनान कर लीजिये की माल भेजने की पेटी मज़बूत है। पेटी में कील ठीक प्रकार से और सुरक्षित रूप से लगाइये। २. पार्सलों के अन्दर अपने पते की एक अथवा दो पर्चियां और एक अतिरिक्त लेबल रखिये। ३. पेटी के अन्दर ऐसी वस्तु की तह लगाइये जिस से आपका सामान धक्के और पानी से नष्ट न हो। ४. पुराने निशानों को सावधानीपूर्वक मिटा दीजिये और सही निशान लगाइये। ५. पता बड़े बड़े अक्षरों में स्पष्ट लिखिये और ध्यान रखिये कि वह मिट न जाय। जो वस्तु भेज रहे हैं उसकी किस्म का उल्लेख कीजिये।

दक्षिण पूर्व रेलवे

[पूर्णकाम में प्रणय-भाव : पृष्ठ ३१ का शेषांश]

एक चुनौती बने हुए हैं और बने रहेंगे। उनके चरित्र को लीला कहना होता है। जैसे कि सृष्टि को स्रष्टा की अपेक्षा में लीला ही कह सकते हैं और कुछ नहीं कह सकते। कारण कर्तव्य का तर्क और तुक वहाँ हमारी पकड़ में नहीं आता है। कृष्ण में से भी मतवादी कोई अमुक सूत्र हाथ में नहीं आता है। कर्त्तव्य-कर्म से आगे बढ़कर वहाँ अकर्म, अथवा लीला-कर्म, की बात आती है। वहाँ त्याग किसी अपकर्म और दुष्कर्म का नहीं सुझाया गया है, वल्कि मूल कर्त्तृत्व का ही त्याग बताया है। कर्म-भी अप या दुर् यदि है तो इस कारण है कि वह अकर्म नहीं है, अहंकर्म है। इसलिए वैसा कर्म जो लीला-मय नहीं है, सहज नहीं है। कृतार्थ और फलार्थ से मुक्त सर्वथा अकर्म नहीं है, वह जाने-अनजाने किंचित् अपकर्म हो ही जाता है।

यह कर्मविषयक धारणा क्रान्तिकारी धारणा है। मुझे लगता है कि बढ़ते हुए विज्ञान के साथ अन्त में कर्म सम्बन्धी यही धारणा सही और वैज्ञानिक ठहरेगी। और कृष्ण का आदर्श सार्वकालिक क्रान्ति का प्रतीक बना रह सकेगा। कारण, वह आदर्श निर्गुणता की ओर ले जाता है और परस्पर विरोधी विशेषणों के द्वन्द्व से मुक्ति देता है। क्रिया में से प्रतिक्रिया जन्म लेती है, किन्तु अकर्म रूप कर्म में से बन्धन नहीं वनता, बल्कि कर्ता मुक्त बनता है।

एक शब्द में कहा जा सकता है कि नैतिक के लिए अनिवार्य है कि उसकी परिणति अध्यात्ममय हो। राम नैतिक के चूड़ान्त उत्कर्ष हैं। वह मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। सर्वथा नैष्ठिक वह आदर्श है और किसी प्रकार का बुद्धि भेद उत्पन्न नहीं करता है। किन्तु उसको बढ़ाकर निर्गुणता की भाषा में समझने का प्रयत्न किया जाय, तो मानो कृष्ण प्राप्त हो जाते हैं। राम से कृष्ण विरोधी नहीं है। किन्तु वह मानों दूसरे ध्रुव हैं। जो एक में सामाजिक और मर्यादित है, वही दूसरी जगह आध्यात्मिक और मर्यादातीत है। इन्द्रिय के लिए समय और कर्म के लिए विवेक चाहिए। लेकिन अतीन्द्रिय क्षेत्र में मानों संयम की जगह मुक्त भाव दरकार है, विवेक से अधिक वहाँ स्फूर्ति कार्यकारी है। संयम और विवेक नकारात्मक हैं, उन्मुक्ति और स्फूर्ति मानों स्वीकारात्मक मूल्य हैं। जो मन्तव्य की नहीं, बल्कि जीवन की भाषा में सोचते हैं, उनको मानों स्वीकृति बोधक मूल्य ही अधिक उपयुक्त और सार्थक जान पड़ेंगे।

राम के साथ सीता अनिवार्य हैं। सीता सती की मूर्ति हैं। कृष्ण के साथ

राधा का नाम चलता है। वहाँ मानों तीत्व का प्रश्न ही नहीं है। उस भाषा की ही संगति नहीं है। राधा कम पवित्र है, ऐसा नहीं। किन्तु वह क्षेत्र ही दूसरा है। मानो वहाँ संदर्भ आन्तरिकता का है, सामाजिकता की भाषा ही संगत नहीं रह जाती है।

वड़ी भूल होगी यदि इन दोनों आदर्शों को परस्पर प्रतिरोधी माना जायगा। यों राम और कृष्ण के अलग-अलग कर्म हो सकते हैं, जिनमें एक दूसरे के लिए सह्य भाव तक न हो। लेकिन भारतीय संस्कृति इन दो ध्रुवों के बीच में स्थिर और गतिशील रहती आयी है। वे ध्रुव परस्पर को मानो थामे रहे हैं। किन्तु, मानना होगा कि आन्तरिक को प्रधानता देने वाला प्रतीक केंद्र विकासशील वैज्ञानिक मेधा को अधिक तुष्टि दे सकेगा।

जो वात कृष्ण के सम्बन्ध में सामाजिक को वहुत व्यग्र और उद्विग्न करती है, वह उनकी रानियों और प्रेमिकाओं की असंख्य संख्या है। कितनी हज़ार जाने वे रानियाँ मानी जाती हैं। आठ और सोलह से ९६ हज़ार तक की संख्या आम वोलचाल में उन रानियों की कही-सुनी जाती हैं। फिर किशोर वय की संगिनि गोपिकाओं की संख्या कहीं निर्धारित नहीं है। इस सम्बन्ध की विलक्षण कथाएँ हैं। उन कथाओं की विलक्षणता से ही प्रकट हो जाना चाहिए कि वह प्रतीक भाषा है और आशय अन्यत्र है। भाषा वह साहित्य की है जहाँ शव्दार्थ में अर्थ सीमित नहीं रहता, वल्कि भावार्थ में गूढ़ रहता है। इसलिए, वल्कि उस भाषा को कुछ अधिक ही चित्रात्मक होना पड़ता है। कृष्णलीला की भागवत कथाएँ खूब सरस और मांसल प्रतीत होती हैं। मानो वहाँ आदर्श का प्रश्न न हो, सव कुछ सर्वथा यथार्थ हो। यह इसीलिए कि वहाँ अवतरण है, अवरोहण है; उत्तरण और आरोहण का भाव पैदा करने की आवश्यकता ही नहीं है। अव्यक्त को वहाँ व्यक्त करना है, अरूप और अनाकार को तद्रूप और तदाकार करना है। इसलिए मानो वहाँ किसी भी संभ्रम के लिए अवकाश नहीं छोड़ा गया है कि वह सब व्यापार ऐहिक और लौकिक नहीं हैं, दिव्य और अलौकिक है! नहीं, कृष्ण की लीलाएँ अत्यन्त घनिष्ट और भौतिक हैं। उन्होंने जो किया ऐसा नहीं मालूम होता कि किसी प्रतीकात्मक काव्य के मंच पर से किया गया है। वल्कि स्पष्ट है कि वह सब जीवन के स्थूल यथार्थ की भूमि पर हुआ है। जो दही–मक्खन उन्होंने छीना, चुराया और संगी साथियों में बांट दिया, वह कोई प्रतीक पदार्थ नहीं था, बल्कि सचमुच का दही–मक्खन था। न राधिका कोई कविनायिका थी, बल्कि

पी. एन. बी.

के

'ट्रैवेलर्स चेक' [यात्रा-हुण्डियाँ]

* यात्रा के समय पैसा ले जाने का अति सुरक्षित साधन ।

* भारतवर्ष भर में हमारे ४२५ कार्यालयों तथा बहुत सी एजेन्सियों में भुनाया जा सकता है।

* बैंक की सभी शाखाओं में १०० रु. ५० रु. तथा २५ रु. के चेक प्राप्य ।

पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड

प्रधान कार्यालय : पार्लियामेण्ट स्ट्रीट, नयी दिल्ली

चमुच बिन आहट, हौले पग और ड़कते जी से वृन्दावन की कुंज गलियों और यमुना के तीरों पर अभिसार के िए आनेवाली जीती जागती हाड़-मास ी नारी थी। और ठीक यही है कि जो क्ति तार्किक को पचंता नहीं है। अती- द्रिय भागवत लोक में इस ऐन्द्रिकता को ठा ले जाना मुश्किल होता है। और न्द्रिकता के तल पर इस आचार को दाचार समझना किसी तरह सम्भव नहीं हो पाता है!

किन्तु कृष्ण की यही अपार महिमा है। श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्गीता का कितना भी सहारा क्यों न हो, कृष्ण और उनकी लीला हमको ऐहिक तल पर अप्रस्तुत नहीं जान पड़ती। यद्यपि यह सच है कि ऐतिहासिक रूप में कृष्ण अनुपलब्ध हैं। जो रूप हमें सुलभ है, वह सर्वथा पौराणिक है। उसमें युग-युग से असंख्य जनों की श्रद्धा भक्ति पड़ती और जुड़ती रही है। इस प्रकार दैवी और मानवी अभिन्न भाव से वहाँ ग्रथित होते रहे हैं। कुल मिलाकर कृष्ण की कथा को अति मानवीय संदर्भ मिल गया है। किन्तु सच यह है कि कृष्ण को भारतवर्ष के नर-नारियों ने अपने घर के अन्तःपुर तक इतने अन्तरत और घनिष्ट भाव से धारण किया और अपनाया है कि वे हमारे नित्य के संगी-साथी हो गये हैं। उन लीलाओं के नाना रूपक लोकजीवन में प्रचलित हैं और कृष्ण हमारे बीच भगवान के से कहीं अधिक नटखट गोपाललाल के रूप में विद्यमान बने हुए हैं। कृष्ण को अतिमानसिक बनाकर देखने का आग्रह रखने की आवश्यकता नहीं है। तब वह हम से दूर जाकर अतिशय उत्तीर्ण और लोकोत्तर बन जाते हैं। पर कृष्ण की जो छवि सहस्राब्दियों से मानव चित्त में अंकित हो गयी है, वह किसी नीतिज्ञ की नहीं है, वल्कि वह मुरली मनोहर कौतुक प्रिय उन कृष्ण की है, जिनके क्रीड़ाव्यापार का कोई पार नहीं है। जो वस सबके प्रिय हैं और मानों प्रियता सम्पादन के अतिरिक्त जिन्हें और कुछ काम नहीं है।

महाभारत के युद्ध और विजय के मूल में जो कृष्ण हैं, जिन्होंने उत्तर से सुदूर दक्षिण में जाकर राज्य का संस्थापन किया; पाण्डवों की ओर से युद्धनीति के व्यूह का संचालन किया; जो अपने युग के कूटातिकूट राजनेता रहे, वे दुर्गम हो सकते हैं, समझदारों की समझ से बाहर गिने जा सकते हैं। लेकिन एक कृष्ण हैं, जो हमारे अन्दर से अन्दर हैं और इस तरह सदा सुगम हैं। वे ही हमारे स्नेह और आकांक्षा के केन्द्र हैं। वे मानो पूरी तरह प्रेमलीला की ही व्यंजना और अभिव्यंजना के रूपक हैं। उस

दिशा में हमारे स्वप्न जहाँ तक जा सकते हैं, कृष्ण उनकी परिपूर्ति हैं। उनके प्रणय का पार नहीं है। कोई मानो उस प्रणय की पात्रता से हीन और वंचित नहीं रह जाता। कुब्जा तक के लिए वह प्रणय उसी तरह समुद्यत है। कहीं वह रुकना नहीं जानता। साथ ही वह प्रणय किसी एक के भी प्रति मिथ्याचारी नहीं हो सकता। पत्नी और प्रेमिका का वहाँ परस्पर समावेश है। फिर भी उस प्रेम में अनन्त अवकाश वचा रह जाता है।

निश्चय ही कृष्ण की यह मूर्ति अत्यन्त मनोहारी है। वह मानो विश्ववल्लभ नायक है। किसी रंग का वहाँ अभाव नहीं है। और जहाँ सव रंग समाहित हो जाते हैं, वह क्या अनायास ही धूप की तरह उज्जवल नहीं हो आता? वहाँ वर्णों की विवर्णता और आपस की विभिन्नता मानो खो जाती है। वह पवित्रता, जो किसी से हटकर और कटकर बनती है, सहसा उड़ जाती है। मतवादी तमाम आदर्श सिमटे और सिकुड़े लग आते हैं। यह आनन्दी रूप है, जो हरएक के निकट है और अनसमझ को भी समझ आ जाता है। भय और आनन्द के लिए इसमें कुछ नहीं है, वल्कि सव सहज और सुलभ है। यही लोगों के मन में बिराजता है और कृष्ण की उस अनन्त मूर्ति को मानो किसी दिशा और दशा में और वढ़ाया और वचाया नहीं जा सकता है।

मैं मानता हूँ कि उद्भट कूटनीतिज्ञ राजनेता कृष्ण का रूप यदि आजतक मान्य बना हुआ है, तो इसीलिए कि उसके पीछे प्रणय मग्न कृष्ण का रूप उपस्थित ही नहीं रहता, वल्कि अधिक तेजोमय दीख आता है। अन्यथा कितने जेताओं और सेनानियों को दुनिया ने याद रखा है। यद्यपि यह समझना मुश्किल है कि किस प्रकार यह प्रेम ही था, जो कृष्ण को अपनी तमाम दुर्द्धर्ष रण-नीति में थामे रहा था, फिर भी हम मान सकते है कि महाभारत के अमित संहार के वीच भी कृष्ण में विराट् भागवत् भाव ही काम कर रहा था।

एक शव्द है, पूर्णकाम। अर्थात् जिसे यहाँ कुछ पाना या करना शेष नहीं है। कृष्ण के लीलायित जीवन में से मानो इसीका मान और प्रमाण मिल जाता है। बोझ के मानिद कोई कर्त्तव्य उन पर न था और प्रत्येक क्षण के प्रति मानो वह पूरे सर्मपित थे। न केवल क्षण, वल्कि उस क्षण में समक्ष जो होता था, जो व्यक्ति अथवा जो परिस्थिति, उसीमें वह मानो आत्मसात हुए रहते थे। असंख्य नारियों और नरों के भी प्राणवल्लभ होने का रहस्य यही था। मानो स्वयं उन्हें कुछ अभीष्ट और अभिलषित न था, सबके मनों के अंतरंग में जो होता, वही उनमें प्रतिरूप पा जाता था। चाहे कहो अकाम, और चाहे कहो आप्त-

काम। ऐसा व्यक्ति सबके लिए खुल रहता है। कहीं वहाँ अन्तराय नहीं रह जाता, जो प्रेम के अमोघ प्रवाह में बाधा बने। सीमा और मर्यादा निजता और अहंता के साथ है। जो निष्काम है, मानो वह सबके लिए सकामता का कामना-भावना का केंद्र बन जाता है।

हम विरागी, विरक्त के रूप में निष्काम को समझने-देखने के आदी हैं। मानो कृष्ण उसी हमारी नकारवृत्ति के लिए खुली चुनौती हैं। परमाप्त को अभाव और शून्य की भाषा म जानने-देखने का प्रयास ज्ञानियों-ध्यानियों ने किया है। उस सबको मानो एक साथ खंडित करता हुआ परिपूर्ण रागभाव में से समुद्भूत, यह कृष्ण का आदर्श हैं। वह नकार की ओर जानेवाली बुद्धि को स्तब्ध बना कर वही रोक देता है और फिर लौटकर उसे संसार के उपयुक्त और समर्थ बनने की ललकार देता है। विराग में से जिन्होंने परिपूर्ण को देखा है, उन्होंने क्या पाया है, मालूम नहीं है। किंतु राग में से भी परिपूर्ण को देखा जा सकता है और इस प्रकार जो प्राप्त होता है, उसी अनन्य रूप का नाम है कृष्ण।

एकाग्र भागवत् भाव से जो इस स्थान-समय की सीमा में नरदेह लेकर जीता है, वह भगवान के प्रति ही कर्म करता होगा। किंतु यहाँ नाम-आकार धारी अलग-अलग व्यक्तियों के प्रति क्या उसे आसक्त और रागयुक्त होने का अधिकार हैं? यह प्रश्न अक्सर उठता है और अधिकांश व्यष्टि को समष्टि के विरोध में देख लिया जाता है। ऐसे नारायण से नर विमुख पड़ जाता है। मानो भगवान से प्यार करने के लिए प्यार को नर-नारियों से बचाना आवश्यक हो। इस प्रकार भगवान के प्रेम में लोग आसपास से विमुख धारण करते हैं। मानो सृष्टि को उजाड़ कर स्रष्टा को वे हरा-भरा करना चाहते हैं। पूर्णावतार कृष्ण का उदाहरण मानो मानव की इसी व्यर्थ चेष्टा के प्रति एक बड़ा प्रश्न चिह्न है। कृष्ण के जीवन में मानो कहीं वह प्यार नहीं है, जो मनुष्यों से बचाया जाता और केवल भगवान के भविष्य के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। मानो वहाँ कोई स्वतंत्र और भिन्न भगवान रहता ही नहीं है। जो है सबसे व्याप्त हैं, और स्वयं के उद्देश्य में अधिष्ठित है। इस लिए गीता वह है, जहाँ कृष्ण स्वयं भगवान है।

मानव प्रेम, और चाहे तो उसे प्रणय कहो, का अखण्ड आचरण कृष्ण के चरित्र में निष्पन्न होता हुआ दीखता है। मानों नर-नारी ही यहाँ व्यक्त भगवान हैं। और यह असम्भव है कि सम्भावना की ओर से व्यक्ति को लो और उसमें आत्म-श्रद्धा पूर्णप्रेम न जाग पड़े। इसीका दैन्य हम सबको सताया करता है। प्रेम सोया रहता है और अहंकार उसकी चौक्सी

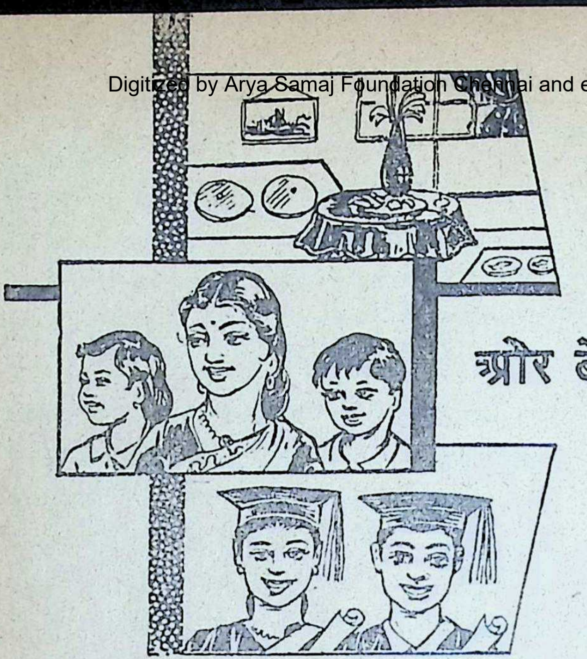

भरपूर जीवन और बेहतर रहन-सहन के लिए

"मैं पूरी तरह परिवार-नियोजन के पक्ष में हूँ—वास्तव में, इसका एक खास उद्देश्य आबादी बढ़ने की रफ्तार को कम करना है। यह एक जरूरी बात है पर इसके दूसरे पहलू भी हैं जैसे परिवार, विशेषकर माँ व बच्चे का जीवन भरपूर बनाना। रहन-सहन का ऊंचा स्तर, शिक्षा-सुविधा वगैरह—छोटे परिवार के मुकाबले बड़े परिवार में कम मिल पाती हैं।"

—*जवाहर लाल नेहरू*

सुख - स्वास्थ्य का साधन

परिवार नियोजन

सरकार द्वारा मान्य पास के
परिवार नियोजन केन्द्र
से सलाह लीजिए।

डीए ६२/२८७

'भारती' का अक्तूबर '६२ का अंक

'श्रीकृष्ण-लीला विशेषांक : उत्तरार्ध' होगा।

●

हमें यह प्रकट करते हुए आनन्द होता है कि, 'श्रीकृष्ण लीला विशेषांक' के लिए हमारे पास श्रीकृष्ण के जीवन के विविध आयामों पर, अत्याधुनिक चेतना-सम्मत उत्कृष्ट कोटि की सामग्री इतने अधिक परिमाण में आयी है कि उसे प्रस्तुत अंक के १९२ पृष्ठों में समाना भी सम्भव नहीं हो सका है। अतएव 'भारती' का आगामी अक्तूबर '६२ का अंक भी 'श्रीकृष्ण-लीला विशेषांक, उत्तरार्ध' के रूप में प्रकाशित होगा, जिसमें यथासम्भव बची हुई सामग्री में से अधिक से अधिक समाने का प्रयत्न किया जायेगा। जो सामग्री उत्तरार्ध अंक में भी न जा पायेगी, उसका उपयोग क्रमशः आगामी अंकों में हो जायेगा। लेखक मित्र सहयोग भाव से हमारी इस विवशता को क्षमा करेंगे।

●

श्रीकृष्ण-लीला विशेषांक के ये दोनों भाग मिला कर शायद श्रीकृष्ण के जीवन पर एक अत्याधुनिक सर्वांगीण ग्रंथ का अभाव पूरा करने में समर्थ हो सकेंगे।

●

अनेक दुर्लभ चित्रों से मंडित

१२८ पृष्ठों के इस उत्तरार्ध विशेषांक का मूल्य केवल ५० न. पै.। अपनी प्रति तुरन्त सुरक्षित करायें।

र जागा करता है। अहंकार अपनी ी सीमाओं के सम्भ्रम का नाम है। हमारे भीतर के असीम को यदि कोई छू ले ौर जगा दे,तो उसके प्रति हमारा आकर्षण अमोघ हो रहता है। कृष्ण ने यही किया। ीधी-सादी अवोधा ग्वालिनें, जो सामान्यतया अपने सम्बन्ध में हीन भाव से लिपटी रहती होंगी, उनके भीतर के अगाध तक ृष्ण की वंशी की टेर पहुँच जाती थी ौर सब फिर उस सुर पर बेसुध मतवाली बनी, अपने को लाँघती हुई ानंद के उत्कर्ष में खिंची चली जाती थीं। यह अनवार्य था और कृष्ण को इष्ट था। ऐसे मानो उस आप्त काम के प्रणयभाव द्वारा उन अबोधाओं को अपनी ही कृतार्थता प्राप्त हो जाती थी।

प्रणय के सामाजिक रूप को ही जो जानते-मानते हैं, वे इस पर अवसन्न हो सकते हैं। किंतु सामाजिकता को यदि कालक्रम से सत्यता तक उठते जाना है, तो अनन्त-प्रणयी परम योगी श्रीकृष्ण की मूर्ति के ध्यान में चित्त को लगाना लाभकारी होगा। ●

भवन समाचार

●

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू द्वारा

सरदार पटेल इंजीनियरिंग कालेज का उद्घाटन

१९ अगस्त १९६२ का दिन भी भारतीय विद्या भवन के इतिहास में अपना प्रमुख स्थान पा गया। उस दिन भवन के सरदार पटेल इंजीनियरिंग कालेज का उद्घाटन भारतवर्ष के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया। साथ ही उसी दिन उन्होंने हंसराज मोरारजी पब्लिक स्कूल के नवनिर्मित भवन, भवन इतिहास माला के ९वें खण्ड, भवन बुक युनिवर्सिटी माला की पाँच और पुस्तकों तथा भवन सामान्य माला की और चार पुस्तकों का भी उद्घाटन किया।

कुलपति श्री मुन्शी जी ने बम्बई नगर के कोलाहल से दूर अंधेरी उपनगर के निकट प्रकृति की गोद में स्थित इंजीनियरिंग कालेज के प्रवेश-द्वार पर ही प्रधान मन्त्री का स्वागत किया और वहाँ से वे एक विशाल एवं सुसज्जित शामियाने में पधारे, जहाँ समारोह का आयोजन किया गया था। प्रधान मन्त्री तथा अन्य सम्माननीय अतिथियों का स्वागत करते हुए कुलपति श्री मुन्शी जी ने कहा कि आज इस शुभ पर्व पर हम प्रधान मन्त्री महोदय के हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय दे कर हमें अनुग्रहीत किया है। आज वास्तव में मेरे लिए यह बड़े ही सुख का दिन है।

हंसराज मोरार जी पब्लिक स्कूल तथा भारतीय विद्या भवन का परिचय देते हुए श्री मुन्शी जी ने बताया कि भवन की स्थापना सन् १९३८ में हुई और जिस द्रुतगति से उसकी प्रगति हुई, उस रहस्य को परमपिता परमात्मा ही जान सकता है। बम्बई स्थित प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त देश भर में भवन के सात केन्द्र और भी कार्यरत हैं। भवन २० संस्थाओं को संचालित कर रहा है, जिसमें कई सहस्त्रों की संख्या में छात्र-छात्राएँ शिक्षा पा रहे हैं। प्रति वर्ष संस्कृत परीक्षाओं में ३६,००० विद्यार्थी भाग लेते हैं। भारतीय इतिहास तथा संस्कृति सम्बन्धी विषयों के प्रकाशन में भारतीय विद्या भवन विशेष रुचि लेता है और इस दिशा में उसने काफी सफलता भी प्राप्त कर ली है।

अन्त में उन्होंने बताया कि भवन भारतीय संस्कृति के पुनर्गठन एवं उसको श्रेष्ठता की वेदी पर बैठाने के लिए नये प्राणों के संचार में सदा प्रयत्नशील है।

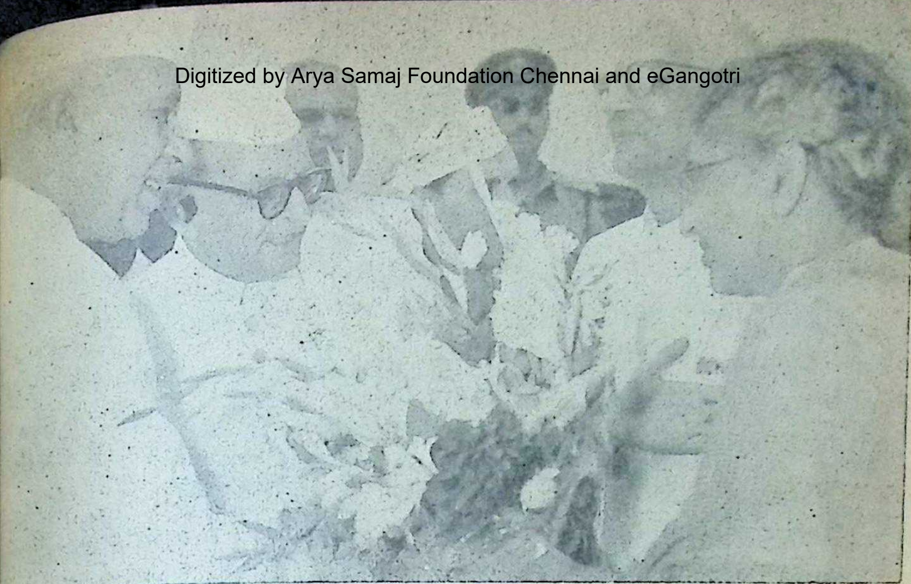

प्रस्तुत चित्र सरदार पटेल इंजीनियरिंग कालेज के उद्घाटन के अवसर का है। श्री नेहरू कालेज-कॉम्पस का निरीक्षण कर रहे हैं। साथ में कुलपति श्री मुन्शी जी तथा श्रीमती लीलावती मुन्शी भी दृष्टिगोचर हो रही हैं।

क्योंकि आज के यांत्रिक युग में उस देश का कोई अस्तित्व नहीं जो अपनी संस्कृति सहित उसके साथ-साथ न चल सके। सरदार वल्लभ भाई पटेल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंनें अन्त में पुनः सबका हृदय से आभार प्रकट किया।

भारतीय विद्या भवन के कार्यों की प्रशंसा करते हुए प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि मैं भवन की प्रकाशन सम्वन्धी गतिविधियों से बहुत ही प्रभावित हूँ और निस्सन्देह वह देशहित की दिशा में एक महान कार्य कर रहा है। उन्होंनें बताया कि देश की आर्थिक प्रगति के लिए अनुभव प्राप्त कार्यकर्ता, यंत्र तथा विद्युत-शक्ति जैसी त्रीसूत्री योजना की परमावश्यकता हैं। प्रकाशकों द्वारा सस्ते मूल्य की पुस्तकों के प्रकाशन पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि आज जो यह समझते हैं कि पैसा ही सब कुछ है, उनका यह भ्रम-मात्र है। देश में अधिक पुस्तकालयों की स्थापना होनी चाहिए और सभी को अध्ययनशील वनना चाहिए। श्री नेहरू ने कहा कि सही अर्थों में वही साहित्य है जो सरल हो और सुगमतापूर्वक पढ़ा जा सके।

समारम्भ के आरम्भ में भवन की प्रार्थना के वाद इंजीनियरिंग कालेज के प्राचार्य श्री एस. बी. जुन्नरकर ने प्राप्त

सभी के शुभ-सन्देशों को पढ़कर सुनाया, जिनमें जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, कांची, राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन्, राज्यपाल श्री सुव्वारायन तथा खाद्यमन्त्री श्री स. का. पाटिल के प्रमुख थे। भवन के उपाध्यक्ष श्री दिवेटिया ने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू से उद्घाटन-कार्य के लिए अनुरोध किया और उपाध्यक्षा श्रीमती लीलावती मुन्शी ने श्री नेहरू को पुष्प-गुच्छ भेंट स्वरूप अर्पित किया।

समारोह में वित्तमन्त्री श्री मोरारजी देसाई, मुख्य मन्त्री श्री यशवन्तराव चव्हान, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित, महाराष्ट्र मंत्रिमण्डल के कई मन्त्रीगण, विभिन्न देशों के राजदूत, बम्बई के हिज एमिनेंस ग्रेसियस, आर्क विशप (प्रधान पादरी) तथा अन्य गण्यमान नागरिक उपस्थित थे।

अन्त में न्यायाधीश श्री जे. एम. शेलट ने सबको धन्यवाद दिया।

☆

अन्तर-महाविद्यालय नाट्य प्रतियोगिता

गत २० अगस्त से ही भारतीय विद्या भवन के कला केन्द्र के तत्वावधान में आयोजित १२ वाँ अन्तर-महाविद्यालय नाट्य प्रतियोगिता शुरू है। इस वर्ष २० कालेजों द्वारा १३ भाषाओं में ६५ नाटक प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सभी भाषाओं के लिए अलग-अलग चल विजयोपहार (ट्राफी) हैं। साथ ही कलाकारों को सर्वोत्तम अभिनय के लिए वैयक्तिक विभिन्न पुरस्कार भी दिये जाते हैं। उल्लेखनीय वात यह है कि सभी भाषाओं में सर्वोत्तम नाटक को कुलपति श्री मुन्शी जी द्वारा स्थापित विशिष्ट चल विजयोपहार मिलता है। प्रतियोगिता सितम्वर माह के मध्य तक चलेगी।

★

संस्कृत की अगामी परीक्षाएँ

भारतीय विद्या भवन, बम्बई–७ द्वारा संचालित सरल-संस्कृत परीक्षाओं की आगामी परीक्षा-तिथियाँ इस प्रकार हैं–

परीक्षा दिनांक २९ और ३० सितम्ब १९६२।

★

गोकुल अष्टमी

२३ अगस्त १९६२ को गीता मन्दिर में भवन की उपाध्यक्षा श्रीमती लीलावती मुन्शी की अध्यक्षता में गोकुल अष्टमी मनायी गयी। संस्कृत पाठशाला के छात्रों द्वारा पूजा के वाद श्री कान्तीलाल पाटनवाला, श्री पुरुषोत्तम उपाध्याय श्री तथा श्रीमती सेठ तथा श्री रमेशभाई रावल द्वारा भजन प्रस्तुत किये गये। अन्त में श्रीमती लीलावती मुन्शी ने कलाकारों तथा कार्यकर्ताओं को धन्यवाद दिया।

● ● ●

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन के लिए बम्बई से प्रकाशित व मुद्रित
तथा [illegible] ४ में मुद्रित।

नंदा से सुनिये एक रहस्य की बात...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

'सुँदर रंगरूप के लिए
लक्स जरूरी है!'

LUX
LUX
LUX
LUX
LUX
TOILET SOAP

चित्रतारिकाओं का
शुद्ध, मुलायम
सौंदर्य साबुन

नंदा, पंचदीप चित्र की फ़िल्म
'आज और कल' की तारिका

'जैसे सुन्दर रंग... वैसा सुन्दर साबुन!' नंदा कहती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

LTS. 121-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

Regd No 7

डाबर की ब

डाबर आंवला केशों को
और चमकदार करनेवाला केश

लाल-शर (डाबर बालामृत) ब[illegible]र
शरीर को पुष्ट करनेवाला मीठा[illegible]र

डाबर टूथ पाउडर दांतों को
कीला और मजबूत बनानेवाला

डाबर

(डा. एस. के. बर्म्मन) प्रा. लि. कलक

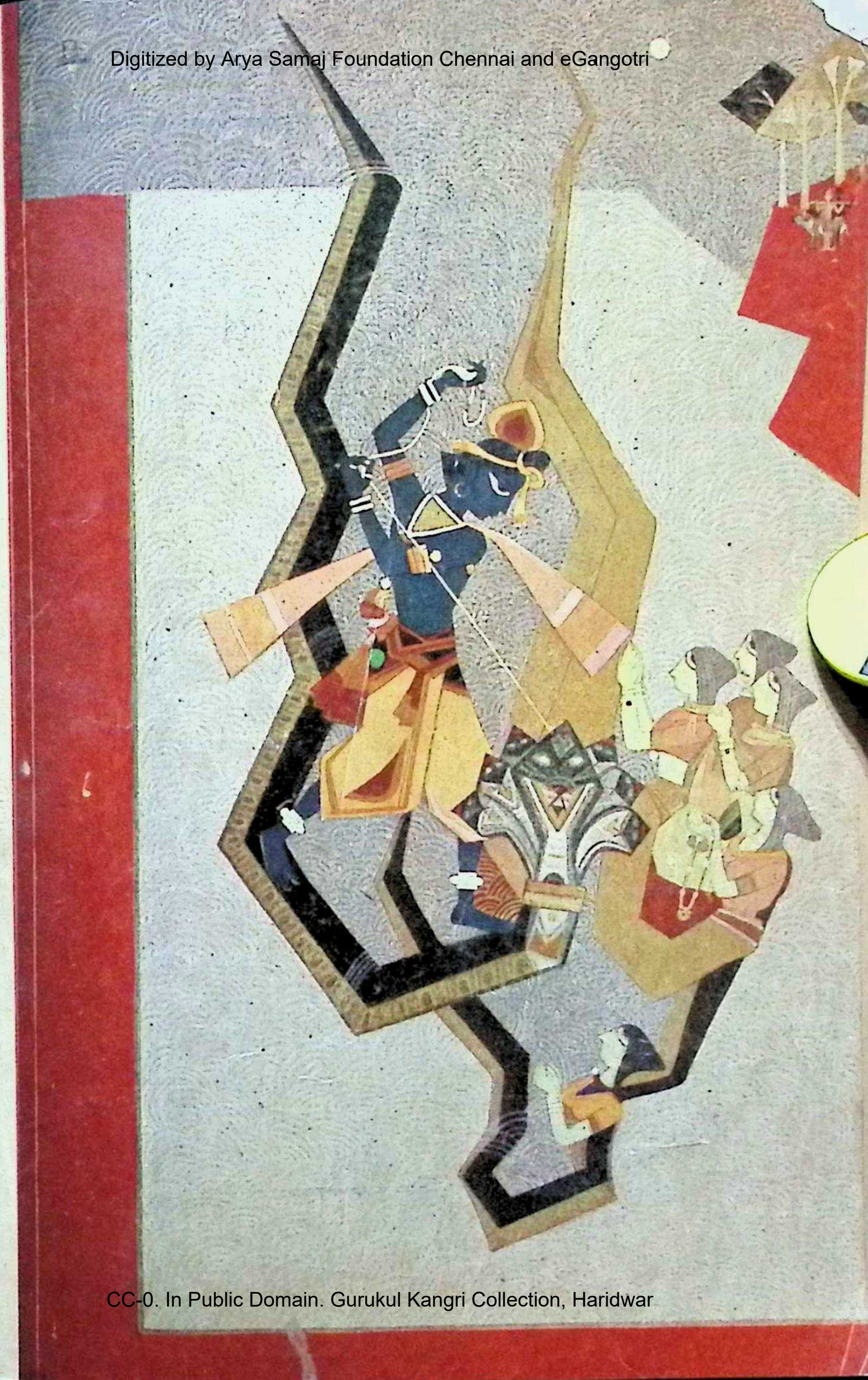

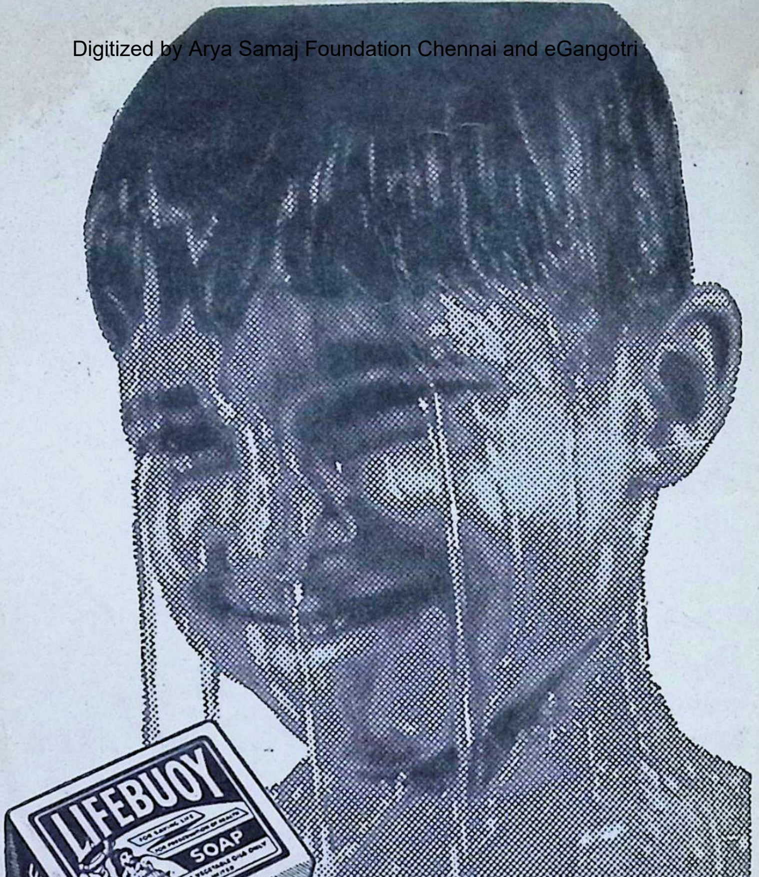
LIFEBUOY
SOAP
LIFEBUOY SOAP

साफ़ सुथरा रहने का मजा उन से पूछिये जो लाइफ़बॉय से
स्नान करते हैं। गर्मी और धूल-मैल की थकावट, घबराहट दूर कर के,
लाइफ़बॉय आपको बिलकुल तरोताजा कर देता है ... और साथ ही साथ
गंदगी में छिपे कीटाणुओं को भी धो डालता है।
जी हाँ, लाइफ़बॉय से आपका सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा।

लाइफ़बॉय है जहाँ, **तंदुरुस्ती** है वहाँ!

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन
L. 30-X29 HI

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल स्पेशल नं. १ रजिस्टर्ड

वालों की रूसी तथा वालों को गिरने से रोकनेवाला सर्वोत्तम वाल शक्तिवर्धक तेल। विभिन्न प्रकार की वहुमूल्य सामग्रियों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया हुआ यह तेल मस्तिष्क को ही ठंडा नहीं रखता, अपितु शरीर-संस्थान को भी सुधारता है। इसका सेवन करने से प्रगाढ़ निद्रा आती है। साथ ही यह शरीर-मालिश के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद है। सब ऋतुओं में सेवन योग्य। सर्वत्र प्राप्य।

उमेश योग दर्शन

(प्रथम भाग)

चार भाषाओं में--हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती तथा मराठी

लेखक— योगिराज उमेशचन्द्र जी

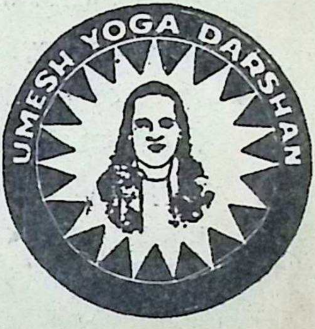

१०८ वास्तविक आसन चित्रों से सुसज्जित पाचनशक्ति को सुधारने तथा श्वास क्रिया के साथ शरीर-संस्थानों पर प्रकाश डालने वाली योग के वास्तविक अर्थ की अत्युत्तम, अद्वितीय, सरस एवं पठनीय पुस्तक। इसमें योग चिकित्सा, क्रोमोपैथी तथा मानस चिकित्सा का भी विद्वतापूर्ण विवेचन है। यह प्रत्येक गृह, अस्पताल तथा पुस्तकालय के लिये संग्रहणीय है।

मूल्य १५ रु. डाक व्यय २ रु. अतिरिक्त।

योगासनचित्रपट विभिन्न योगासनों के साथ 'आर्ट ग्लेज्ड' कागज पर छपा हुआ योगासन चित्र भी प्राप्य है। मूल्य ३ रु. (डाक व्यय सहित जो मनीआर्डर द्वारा भेजा जा सकता है।)

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

दादर, बम्बई १४ IIVP

क्या आप पौष्टिक तत्वों के अभाव से पीड़ित है ?

तो आल्बो-सांग का सेवन करें

पौष्टिक तत्वों के अभाव को
दूर करने वाला, बढ़िया, कम खर्चवाला तथा
वैज्ञानिक तरीकों से तैयार किया गया।

आनन्दायक स्वाद, जिसे चाय, काफी, दूध, हलुआ, फल के रस इत्यादि के साथ लिया जा सकता है। आल्बो-सांग शिशुओं, बढ़ रहे बच्चों व प्रसव के बाद माताओं, मानसिक परिश्रम करने वालों तथा बड़े-बूढ़ों के लिए बढ़िया पोषक तत्व प्रदान करने वाला खाद्य है। यह बीमारी छूटने के बाद स्वास्थ्य सुधार, दुर्बलता तथा रक्तहीनता दूर करता है।

ALBO-SANG
FOR POORLY AND IMPROPERLY NOURISHED BABIES AND ADULTS
J. & J. DeChane

पावडर तथा टिकियां
दोनों मिलती हैं

जे. एंड जे. डीशेन,
हैदराबाद (दक्षिण)

वर्ष ७ : अंक ३]

भारती

[अक्तूबर १९६२

वाचनालय, गुरुकुल काँगड़ी

संस्थापक :
कन्हैयालाल मुन्शी
●
प्रवन्ध सम्पादक :
जयन्तकृष्ण ह. दवे
●
प्रकाशक :
सु. रामकृष्णन्
●
सम्पादक :
वीरेन्द्रकुमार जैन
●
सहयोगी :
श्रीराम मिश्र
ओंकारनाथ शर्मा
रामलाल शुक्ल
●
कार्यालय :
भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड,
बम्बई ७
●
ति अंक : ५० न.पै.
ार्षिक : ५)

श्रीनारद पंचरात्र वन्दना ५
कन्हैयालाल मुन्शी : कुलपति का पत्र ६
श्री अरविन्द : श्रीकृष्ण-चेतना १२
श्रीमती लीलावती मुन्शी : श्रीकृष्ण, अपने जीवन की संध्या में १६
लावण्यप्रभा राय : वृन्दा का वन २१
कृष्णदत्त वाजपेयी : द्वारकाधीश श्रीकृष्ण २२
राजेन्द्र प्रसाद सिंह : सीमान्तक संस्कार में राधा और कृष्ण २६
प्रियकान्त मणियार : अलवेला ३२
श्रीराम तिवारी : श्रेयस् की गन्ध ३३
करसनदास माणेक : अखण्ड आर्यावर्त का एकमेव लोकनायक ३४
कैलाशनाथ ओझा : बंगाल के वैष्णवों की रसेश्वरी कृष्णोपासना ३८
डॉ. शिवप्रसाद सिंह : आदिम मन की गुहा और आस्था की बांसुरी ४४
ऋषिमुनि सिंह : महाभारत का महासारथी ४८
सूर्यभानु गुप्त : कंस की मौत का दस्तावेज़ ५३
शत्रुघ्न दुबे : श्री युगल की सनातन लीला-भूमि : वृन्दावन ५४
जानकीनाथ शर्मा : कूट-नीतिज्ञ शिरोमणि श्रीकृष्ण ६०
नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी : बाँसुरी वियोग ६५
देवदत्त : तंत्रेश्वर श्रीकृष्ण ६६
रामलाल : रसिक-शेखर बिल्व-मंगल का श्रीकृष्ण लीला-गान ७२

आगामी दीपोत्सवी विशेषांक में

- महर्षि दयानन्द : श्री अरविन्द (महर्षि की निर्वाण जयन्ती दीपावली के उपलक्ष्य में)
- नया दिन उगने को है : पृथ्वी पर अवतीर्ण हो रहे नूतन प्रकाश-युग का उद्घोष
- निखिल की एकात्मता के ज्योतिर्द्रष्टा, भगवान वेदव्यास : स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती
- आधुनिक साहित्य का प्रधान स्वर : जीवन का उल्लास : डॉ. क.मा.मुन्शी
- भगवान राम का व्यक्तित्व: नवीन चिन्तन् के आलोक में : श्री हरि
- प्रेम और मृत्यु : श्री अरविन्द की सावित्री पर आधारित एक आत्मकथन : अमृता भारती
- भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य : 'रघुवंश' : शिवकुमार शुक्ल
- प्राचीन भारत की दीपिकाएँ : दिनेश शाह
- भारत की राग-रागिनियों का स्वरूप-चित्रण : प्रो.ओ.सी. गांगुली
- राजस्थान की लोककला : मांडणा : धनलक्ष्मी त्यागी
- बीजाक्षरों के साधन और

[illegible] चौधरी : श्रीकृष्ण-लीला और आधुनिक समाज-जीवन ७८
कृष्ण चैतन्य : श्रीकृष्ण-कथा का पौराणिक सत्य ८४
चन्द्रभूषण मिश्र : भारतीय शिल्प में श्रीकृष्ण-लीला ८८
करसनदास माणेक : प्रभु का अन्तिम वचन ९२
कन्हैयालाल मुन्शी : कृष्णावतार ९६
वीरेन्द्रकुमार जैन : हिन्दी का एक युवा सूर्य अस्त हो गया १०६
पं. रमाशंकर शास्त्री : श्रीकृष्णाख्यान के प्रतीकार्थ और शुभ नियुक्ति ११४
रामनारायण उपाध्याय : बाजी रे यमुना तीर मुरलिया बाजी रे ११९
डॉ. गणपतिराय पुरोहित : कृष्णा के अन्तिम सर्वस्व, दर्पहारी मधुसूदन १२२

इस अंक के सज्जाकार :
सर्वश्री दिनेश शाह, महेन्द्रनाथ सिंह, टी. के. राव, कुमार ज्योतीन्द्र जैन,

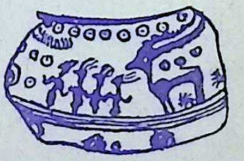

आवरण-चित्र : **कालिय-दमन**
चित्रकार : **दिनेश शाह**

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

प्रत्येक दिशा से शुभ एवं सुन्दर विचार हमें प्राप्त हों।

भारती
[भवन की पत्रिका]

●

आगामी विश्व विकास का सूचक:

जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

●

वन्दना

वंदे नवघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
सानंदं सुंदरं युद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥

प्रकृति से परे अत्यन्त पवित्र आनन्दस्वरूप रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाले एवं नव जलद कान्तिमय भगवान श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

—श्रीनारद पंचरात्र

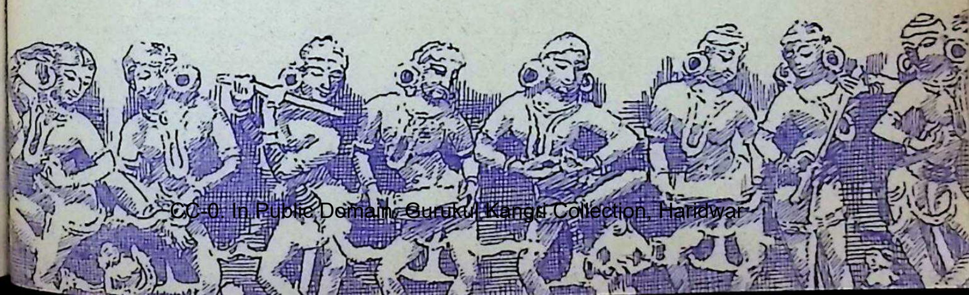

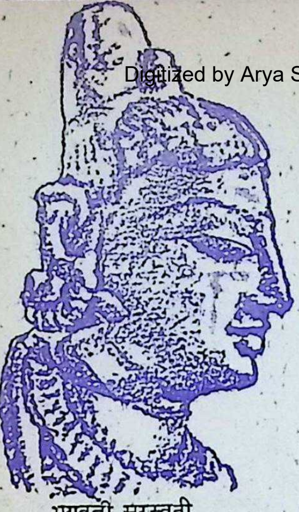

भगवती सरस्वती
पार्श्वनाथ जैन मंदिर,
खजुराहो, ११ वीं शती

कुलपति का पत्र

जीवन साहित्य तथा संस्कृति से संबंधित

- भगवद्गीता, साहित्य के रूप में
- उसकी लोकप्रियता
- मूल गीता

भारतीय विद्या भवन,
चौपाटी रोड, वंबई,
१ अक्तूबर, १९६२

मेरे युवा मित्र,

भारत का सर्वोच्च धर्मग्रंथ, भगवद्गीता महाभारत के छठे भाग, भीष्मपर्व का एक अंग है। आज जो गीता का रूप प्रचलित है, वह गुप्तकाल के पूर्व ही महाभारत का प्रमुख भाग वन गया प्रतीत होता है, क्योंकि उस काल में महाभारत का जो आधुनिक रूप तैयार हुआ था, उसके कई भाग आधुनिक गीता से प्रेरित हैं। गुप्त-काल के पश्चात् उसका प्रभाव चीन और जापान तक फैला, और वहुत से महायान ग्रंथ भी इससे प्ररित हुए।

८वीं सदी में शंकराचार्य ने इसकी गणना हिन्दू विचार और धर्म के स्रोत तीन धर्मग्रंथों में की। ९वीं शताब्दि में काश्मीर के एक सम्राट अवन्तिवर्मन ने अपनी मृत्यु-शैय्या पर इसे सुना। पर्यटक अल्वेरुनि ने, जो ११वीं सदी में यहाँ आया था, इस ग्रंथ की भारी प्रशंसा की थी।

गुप्त-काल से ही गीता ने भारतीय विचार, धर्म और आचार को अत्यंत प्रभावित किया है। सन् १८०९ से, जव पहले-पहल इसका मुद्रण हमारे देश में हुआ, इसकी प्रतिवर्ष असंख्यों प्रतियाँ सभी भारतीय भाषाओं में छपती हैं। गीता का प्रथम अंगरेजी अनुवाद १७८५ में हुआ था। १८२३ में इसका लैटिन अनुवाद हुआ। तव से पाश्चात्य विचारकों पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा है।

गीता तथा हमारे अन्य धर्मग्रंथों के प्रभाव के बारे में वारेन हेस्टिंग्ज़ ने बड़ी दूरदर्शितापूर्वक लिखा था: 'किन्तु ऐसे प्रभाव केवल उनके लेखों में ही उपलब्ध

हो सकते हैं; और ये तब भी शेष रहेंगे, जब भारत पर ब्रिटिश शासन कभी का ख़त्म हो चुकेगा, और जब धन और शक्ति के वे स्रोत, जो उसने प्रदान किये, याद भी नहीं रहेंगे।'

प्रसिद्ध अमेरिकन विचारक थोरो गीता के अनन्य प्रशंसक थे। डब्ल्यू. फान हम्बोल्ट ने उसमें एक ऋषि की प्रेरणात्मक और ज्ञानगर्भित वाणी सुनी थी। संस्कृत साहित्य के महान जरमन इतिहासकार विन्टरनीत्स के अनुसार 'यह ग्रंथ इसलिए इतना लोकप्रिय तथा सर्वमान्य हुआ कि घोर विरोधी दार्शनिक धाराएँ और धार्मिक दृष्टिकोणों का सामंजस्य इसमें हुआ है।' आलडूक्स हक्सली इसे सर्वकालीन शाश्वत दर्शन का एक स्पष्टतम तथा सर्वतोमुखी तत्व मानते हैं।

आधुनिक भारत का आध्यात्मीकरण इसी से हुआ है। परंपरावादी ब्राह्मण इसीसे प्ररणा प्राप्त करते हैं। संन्यासी देशभर में इसका उपदेश देते हैं। थिओसोफिस्ट श्रीमती बीसेंट, भारतीय अध्यात्म का शंख फूंकनेवाले स्वामी विवेकानन्द, महान देशभक्त तिलक, महायोगी अरविन्द और गांधीजी जो इसे 'माता' कहते थे— सभी ने गीता से प्रेरणा प्राप्त की। पिछले पचहत्तर वर्षों में लाखों लोगों ने इसे शक्ति का मुख्य स्रोत पाया है; हममें से हजारों को जेल में इसी का संबल था।

डा. राधाकृष्णन् ने गीता के बारे में लिखा है: 'यह संपूर्ण हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करती है, केवल हिन्दू धर्म का ही नहीं, बल्कि काल और दिक् की सीमा से परे समस्त मानव धर्म का।' उनके अनुसार 'गीता में जीवन के मूल्य तथा अर्थ विषयक जो विचार व्यक्त किये गये हैं, तथा जिस प्रकार शाश्वत मूल्यों की भावना और सृष्टि के सर्वोच्च रहस्यों को बुद्धि तथा नैतिक अन्तर्दृष्टि के प्रकाश में प्रकट किया गया है, वह मन और आत्मा में सामंजस्य का एक ऐसा आधार प्रस्तुत करते हैं, जो सभ्यता के बाह्य अंगों के सर्वमान्य होने के कारण भौतिक रूप से एक हुए विश्व को संलग्न रखने में अति आवश्यक है।'

● ● ●

गीता की अपार लोकप्रियता केवल उसके संदेश के कारण ही नहीं, जो मानव को नैतिक और आध्यात्मिक बल प्रदान करता है, बल्कि उसके अद्भुत साहित्यिक रूप के कारण भी है। प्रभु श्रीकृष्ण ने जिस परिस्थिति में यह संदेश सुनाया था, उसमें एक अनुपम नाटकीय तत्व है।

युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन को शंका होती है, वह नैराश्य और भय से ग्रस्त होता है। एक भीरु पुरुष की भाँति वह कर्तव्य से विमुख होता है। अपने प्रिय और पूज्य व्यक्तियों की हत्या की संभावना उसे कँपा देती है। जब प्रभु [illegible] करते हैं

कि 'मैं मनुष्यों का विनाश करने को आया हुआ काल हूँ' तो वह भयभीत हो उठता है। जब उसे कहा जाता है कि 'धर्म की जय के हेतु दुष्टों का नाश करना आवश्यक है' तो वह चौंक पड़ता है। अंततः उसे इन सबका सामना करना पड़ता है – द्वेष से क्रुद्ध अथवा भय से मलीन नेत्रों का रहस्य उसे समझना और उन क्रुद्ध शत्रुओं का सामना करना पड़ता है जो रक्त और हत्या के पिपासु हैं। इस अनुभव के बाद ही वह प्रभु की शरण आता है और उनका उपकरण बनता है। (भगवद्गीता और आधुनिक जीवन, पृष्ठ १२)

गीता में वर्णित समस्त संवाद में प्रभु स्थान-स्थान पर अपने मानवीय अनुभव से बोलते हैं; कभी-कभी वे अपना उदाहरण भी देते हैं, जिससे ईश्वर और मनुष्य में एक गहरा सम्बंध स्थापित होता है। उसकी भाषा, शैली और छंद मूल महाभारत जैसे ही हैं। अर्थपूर्ण और अत्यंत सूक्ष्म होते हुए भी भाषा स्पष्ट और सरल है। प्राचीन काल की प्रारंभिक बोलचाल की भाषा की ताज़गी उसमें है। उसकी उपमाएँ तथा अलंकार संस्कृत साहित्य के और उसके माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं की रचना में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

तीक्ष्ण व्यतिरेक्त अथवा मार्मिक सूक्तियों द्वारा सत्य का दिग्दर्शन गीता में कराया गया है और माल हृदयस्पर्शी भाषा तो इस सुंदर भाषा में व्यक्त किये गये हैं कि बार-बार पढ़ने से वे पाठक के अंतर में पैठ जाते हैं।

योगः कर्मसु कौशलम्। (२.५०)
कर्म ज्यायोह्यकर्मणः। (३.८)
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। (३.५३)
न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति। (६.४०)
न मे भक्तः प्रणश्यति। (९.३१)
निमित्तमात्रं भव। (११.३३)

इन जादूभरे शब्दों ने किसको जीवन-पर्यंत प्रभावित नहीं किया होगा?

गीता का वर्णन अत्यंत स्पष्ट सुनिर्दिष्ट एवं चित्रमय है। अर्जुन के नैराश्य से अधिक करुण प्रसंग क्या होगा? (अध्याय १) विभूतियोग (अध्याय १०) से अधिक रोचक तथा विराट स्वरूप के वर्णन (अध्याय ११) से अधिक भव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ● ●

गीता के मूल रूप, जिससे उसका आधुनिक रूप विकसित हुआ, का रचना-काल ईसा से ५वीं शताब्दि पूर्व निश्चय ही कहा जा सकता है। कुरुक्षेत्र का युद्ध ८वीं-९वीं शताब्दि ईसा पूर्व तक हो गया होगा। महाभारत के मूल रूप की रचना इसके कुछ समय बाद ही हुई होगी।

संभवतः वेदव्यास ने इसे इतिहास के रूप में अपने शिष्यों के लिए लिख छोड़ा था। इसी काल में हम ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें द्रौपदी पांच पतियों से विवाह कर सकती थी; जब युधिष्ठिर अपनी रानी को जुए के दाँव पर लगा सकते थ; जब भीम दुशासन का खून पी सकता था, और जब श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं, एक प्रज्ञावान और धार्मिक महापुरुष माने जाते थे।

मेरे विचार से मूल गीता रणक्षेत्र में दिया गया एक छोटा-सा संभाषण होगा और उसका उपदेशक उस समय तक वासुदेव पूर्णतः नहीं माना जाता था। महाभारत का दूसरा संस्करण तब हुआ, जब कि उसके मूल पर किसी एक लेखक ने कार्य कर उसे अकेले श्रीकृष्ण के विषय में एक महाकाव्य बना डाला। इसका रचना-काल ५वीं शताब्दि ईसा पूर्व रहा होगा, जबकि ११वाँ स्कंध इसमें जोड़ा गया।

कई सुप्रसिद्ध विद्वानों का कथन है कि आज जिस रूप में गीता हमें प्राप्त है, वह एक बारगी ही लिखी गयी थी और उसमें सर्वत्र समान भाव है। अन्य उतने ही उच्च कोटि के विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। मैं भी प्रथम मत का अनुमोदन नहीं कर सकता। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण को भगवान के रूप में प्रथम ११वें अध्याय (विश्वरूप दर्शन) में ही देखा। मूल गीता का यदि यह वास्तविक भाग होता हो, उसके साहित्यिक एवं नाटकीय अंग की दृष्टि से वही इस महाकाव्य का चरम बिंदु होता। फिर भगवान के रूप में कृष्ण से जो शब्द अन्य अध्यायों में कहलाये गये हैं, वे बाद के क्षेपक होते।

रूडोल्फ ओटो ने काफी अध्ययन के बाद, मूल गीता को एकतत्वीय महाकाव्य के चरमोत्कर्ष के रूप में पाया, जिसमें सांख्य योग और भक्ति विषयक कोई सांप्रदायिक साहित्य नहीं था। उसका उद्देश्य किसी मत या सम्प्रदाय की विवेचना करना नहीं है, बल्कि ओटो के शब्दों में 'सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक देव की पृष्ठभूमि में मानव कर्म के द्वारा मनुष्य की महान भवितव्यता का अत्यंत प्रबल प्रभाव मन पर स्थापित करना है और इस उद्देश्य में वह इस प्रकार सफल हुई है, जितना संसार का कोई महाकाव्य नहीं।' इस प्रकार भगवद्गीता एक अपूर्व साहित्यिक सौंदर्य का एकरूप काव्य रह जाता है, जिसमें १३३ से अधिक श्लोक नहीं।

मूल गीता की पुनर्रचना के हेतु अर्जुन का दुःख प्रथम अध्याय में वर्णित किया गया है। द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण मानवीय

स्तर पर अर्जुन को आत्मा की अमरता और उसके क्षात्र-धर्म की दुहाई देकर युद्ध करने का आदेश देते हैं। तब अर्जुन भ्रम में पड़ जाता है। इसका क्रम फिर दसवें अध्याय के कुछ श्लोकों में दिखायी पड़ता है। अर्जुन का भ्रम दूर करने के लिए तब प्रभु एक मानवीय परामर्शदाता बनकर उसे आत्मा की अमरता अथवा वीरोचित कर्तव्य का स्मरण नहीं कराते, बल्कि अर्जुन को कहते हैं: श्रुणु मे परमं वचः। अर्थात् मेरे परम वचन का श्रवण कर और वह परम वचन है: मत्तः सर्वं प्रवर्तते। अर्थात् सभी कुछ मुझ से ही प्रकट हुआ है।

और तब अर्जुन का संशय मिटाने के लिए ग्यारवें अध्याय में श्रीकृष्ण अपने महात्म्य का वर्णन करते हैं, किसी तत्व-दर्शन अथवा धार्मिक उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि अपना भयंकर विराट रूप दिखा कर। उसका उद्देश्य अर्जुन को उस महात्म्य को समझाना है, जो मनुष्य की समझ के परे अपना दिव्य लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है।

अर्जुन के प्रतिपक्षी वीरों के होनेवाले विनाश का स्पष्ट वर्णन कर प्रभु अपने विषय में इस प्रकार कहते हैं:

कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्त ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥
(११.३२)

"मैं लोगों का विनाश करने को प्रवृत्त महाकाल हूँ। और ये जो योद्धा यहाँ एकत्र हुए हैं, उनमें से तेरे बिना भी, कोई नहीं बचेगा।"

फिर वे अपना अंतिम समादेश इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।
(११.३३)

"मेरे द्वारा वे कब के मारे जा चुके हैं; तू तो केवल निमित्त मात्र बन!"

इस प्रकार अर्जुन को वह रूप दिखाया जाता है, जो फिर ओटो के शब्दों में स्वयं अपने ही निर्देश से उचित समय आने पर, अपना क्रोध व्यक्त करता है और लोगों के भाग्य का निर्णय कर काल रूप में उनका विनाश करता है।

श्रीकृष्ण के परम वचन सुन कर अर्जुन उन्हें परमेश्वर मान लेता है। (अध्याय ११, श्लोक ४३) फिर अन्य अध्यायों को छोड़ कर, जो मेरे ख्याल से बाद में जोड़ गये मालूम होते हैं, हम सीधे १८वें अध्याय के श्लोक ७२–७३ पर आ जाते हैं; जिनमें श्रीकृष्ण अर्जुन से पूछते हैं:

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥

"हे अर्जुन, क्या तुमने यह एकाग्रचित्त से सुना? हे धनंजय, अज्ञान से प्राप्त तुम्हारा संमोह क्या नष्ट हुआ?"

अर्जुन तब सरलता से स्वीकार करता है:

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥

"मेरा मोह नष्ट हो गया; मुझे आपकी कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ। अब मैं संशयरहित हूँ, आपकी आज्ञा का पूर्णतः पालन करूँगा।"

मेरे विनम्र मत से यही मूल गीता है, और संसार के किसी भी साहित्य में ईश्वर के भव्य महात्म्य का इतना सुन्दर वर्णन कहीं नहीं मिलता।

• • •

मूल गीता की रचना के पश्चात् जैसे-जैसे कई शताब्दियाँ बीतती गयीं, महाभारत को पांचवे वेद का पद प्राप्त हो गया; और श्रीकृष्ण सब से प्रमुख देवता वन गये। समय-समय पर नये भाग मूल में जोड़े जाने लगे। कई असंगतियाँ भी वाद में उसमें आ गयीं। पहले के हिस्सों में संशोधन अथवा वृद्धि के प्रयास हुए। वंशावली, उपकथाएँ और दार्शनिक तथा उपदेशात्मक साहित्य भी जोड़ा गया, जिसका एक अच्छा उदाहरण शांति पर्व है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायवालों ने अपनी मान्यताओं को श्रीकृष्ण के मुख से कहलाकर उनसे अपने मत को पुष्ट किया।

जो-कुछ हो, मैंने भगवद्गीता को एक ऐसा धर्मग्रंथ पाया है, जो ज्ञान को प्रकाश के रूप में परिवर्तित कर देता है। गीता पढ़ने पर मैंने पाया कि जीवन संघर्षमय है, क्योंकि जो कुछ भी विचार, व्यक्तित्व अथवा उपलब्धि में सर्वोत्तम और सबसे सुन्दर है, वह दुःख और संघर्ष से ही उद्भूत है।

केवल ईश्वर का उपकरण बनने से ही हमारा जीवन-दर्शन बुद्धियुक्त हो सकता है और हमारी कल्पना में मूलभूत महत्वाकांक्षाएँ उद्दीप्त हो सकती हैं। तब सत्य बौद्धिक न रह कर एक ज्योति बन जाता है, जिसके प्रकाश में मनुष्य देवता बन सकता है।

आपका

कन्हैयालाल मुन्शी

श्री अरविन्द

श्री कृष्ण चेतना

गीता के उपदेष्टा श्रीकृष्ण केवल मनुष्य के वे अन्तर्यामी ईश्वर ही नहीं हैं, जो केवल ज्ञान के प्रवक्ता के रूप में प्रकट होते हों: बल्कि वे तो मनुष्य के वे अन्तर्यामी भगवान हैं, जो सारे कर्म-जगत के संचालक हैं, जिनसे और जिनके लिए ही मानव-जाति संघर्ष और श्रम कर रही है, और जिनकी ओर ही समस्त मानव-जीवन यात्रा कर रहा है। वे सब कर्मों और यज्ञों के छुपे हुए स्वामी हैं और सबके सुहृद हैं।

दूसरी बात यह है कि इन मानव श्रीकृष्ण का एक लाक्षणिक, प्रायः प्रतीकात्मक मर्म है, यही महाभारत के महान कर्म का प्रवर्तक है। नायक-रूप से नहीं, बल्कि उसके गुप्त केंद्र और अज्ञात संचालक के रूप से। यह कर्म एक विराट कर्म है, जिसमें मनुष्यों और राष्ट्रों का सारा-का-सारा संसार सम्मिलित है, इनमें कुछ लोग और राष्ट्र ऐसे हैं, जो केवल इस कर्म और इसके परिणाम के सहायक होकर ही आये हैं, जिससे उनका अपना कोई लाभ नहीं है, श्रीकृष्ण इनके नेता हैं, कुछ लोग ऐसे हैं, जो इस कर्म के विरोधी हैं और उनके श्रीकृष्ण भी विरोधी हैं,– उनकी चालों को उलटानेवाले और उनका संहार करनेवाले हैं; और कुछ लोग तो यहाँ तक समझते हैं कि इस सारे अनर्थ के मूल श्रीकृष्ण हैं, जो पुरानी व्यवस्था, सुपरिचित जगत् और पुण्य और धर्म की सुरक्षित परंपरा को मिटाये दे रहे हैं; इनमें फिर कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके द्वारा यह कर्म सिद्ध होनेवाला है और श्रीकृष्ण उनके उपदेष्टा और सुहृद हैं। जहाँ यह कर्म अपनी प्राकृतिक गति से हो रहा है और इस कर्म के करनेवालों को इसके शत्रुओं से पीड़ा पहुँचती है और उन्हें

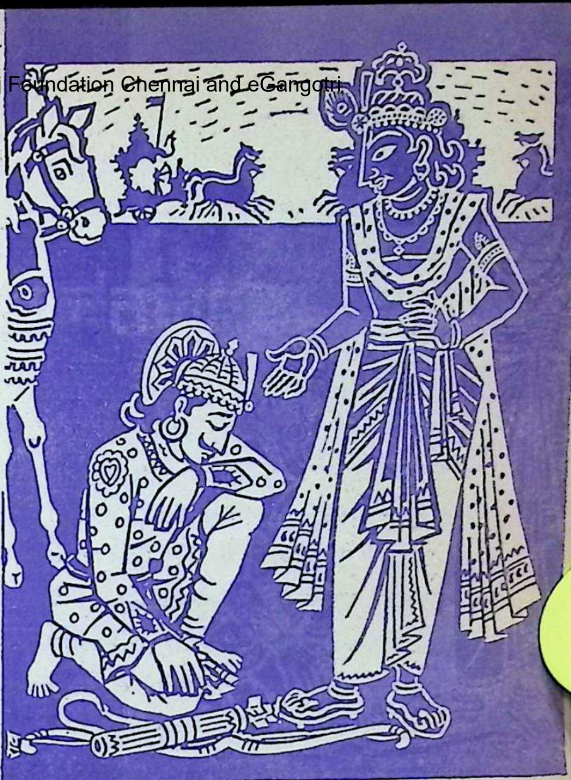

श्रीकृष्ण और अर्जुन, चित्र : टी. के. राव

उन अग्निपरीक्षाओं को पार करना पड़ता है, जो उनको प्रभुत्व लाभ करने के लिए तैयार करती हैं वहाँ अवतार अप्रकट हैं अथवा प्रसंग-विशेष पर उतनी ही सांत्वना और सहायता भर के लिए ज्ञान प्रकट होते हैं, किंतु प्रत्येक संकट में उनके सहायक हाथों का अनुभव होता है, फिर भी यह अनुभव इतना हल्का है कि इस विराट् कर्म के सभी कर्त्ता अपने आप को ही कर्त्ता मानते हैं और अर्जुन भी, जो उनका अति प्रिय सखा और उनके हाथ का मुख्य यंत्र या उपकरण है वह भी, यह अनुभव नहीं करता कि मैं उपकरण हूँ और उसे यह बात अंत में स्वीकार करनी पड़ती है कि अब तक मैंने अपने सखा सुहृद भगवान् को सचमुच में जाना ही नहीं था। अर्जुन को उनके ज्ञान से बराबर मंत्रणा मिलती रही, उनकी शक्ति से सहायता भी मिलती रही, अर्जुन उन्हें प्यार करता रहा और उनसे प्यार पाता भी रहा; अवतार के भगवत् स्वरूप को जाने बिना अर्जुन उन्हें पूजता भी रहा, पर यह सब और सब लोगों की तरह अर्जुन के अहंकार में से ही होकर होता रहा और अर्जुन को जो मंत्रणा, सहायता और आदेश दिया गया वह अज्ञान की ही भाषा में दिया गया और अर्जुन ने उसे अज्ञान के विचारों के द्वारा ही ग्रहण किया। और यह सब उस समय तक चलता रहा, जब तक कि सब कुछ कुरुक्षेत्र के मैदान में इस संघर्ष की भीषण अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ, और तब अवतार सामने आये, अभी भी योद्धा बनकर नहीं, बल्कि युद्ध की भवितव्यता को वहन करनेवाले रथ के ऊपर विराजमान सारथी बनकर; तब तक उन्होंने अपने स्वरूप को अपने चुने हुए उपकरणों के आगे भी प्रकट नहीं किया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण यहाँ मनुष्यों के साथ भगवान के व्यवहारों के ही प्रतीक होकर उपस्थित हैं। इस जगत में हम लोगों के द्वारा जो संपूर्ण कर्म कराया जाता है, वह हम लोगों के अहंकार और अज्ञान के रास्ते से ही कराया जाता है और हम लोग यह समझते हैं कि हम ही अपने सव कर्मों के कर्त्ता हैं, और इनका जो कुछ फल होता है, उसके हम ही असली कारण हैं। ऐसा समझकर हम अपने लिए गर्व करते रहते हैं, पर यथार्थ में जो चीज हमसे यह सव कराती है, वह कुछ और ही है और उसे हम लोग यदा-कदा प्रसंगवशात् ही ज्ञान, अभीप्सा और शक्ति के किसी अस्पष्ट स्रोत के रूप में या फिर किसी मानव और पार्थिव स्रोत के रूप में भी देख पाते हैं, या किसी सिद्धांत या प्रकाश या सामर्थ्य के रूप में भी जानते और मानते हैं और उसके वास्तविक रूप को जाने बिना ही उसे पूजते भी हैं; वह चीज वास्तव में क्या है यह हमें तव तक नहीं मालूम होती, जब तक वह प्रसंग नहीं उपस्थित होता, जो हमें वलात् इस रहस्य के सामने लाकर खड़ा कर दे। भगवान श्रीकृष्ण मानव-जीवन के समस्त विशाल कर्म के अंदर क्रियाशील हैं, केवल उसके आभ्यंतर जीवन में ही नहीं, वल्कि जगत के उस सारे अज्ञान-अंधकारमय क्रम के अंदर भी, जिसका निर्णय हम अपनी वुद्धि के उतने से टिमटिमाते हुए प्रकाश में ही करते हैं, जितना कि हमारी अनिश्चित अग्रगति के आगे यह एक छोटे से दायरे को अस्पष्ट रूप से खोलकर दिखा देती है। गीता की यही विशेषता है कि यह ऐसे ही एक कर्म का पर्यवसान है, उसीसे गीतोक्त उपदेश का प्रादुर्भाव हुआ है, और उसीसे गीतोक्त कर्म-सिद्धांत को इतना महत्व प्राप्त हुआ और उसका इतना सुस्पष्ट और जोरदार प्रतिपादन हुआ है कि वैसा अन्य किसी भी भारतीय धर्मग्रंथ में नहीं दीख पड़ता। केवल गीता में ही नहीं, महाभारत के अन्य स्थानों में भी श्रीकृष्ण ने कर्म की आवश्यकता की वड़े जोर के साथ घोषणा की है; पर उसका रहस्य और हमारे कर्मों के पीछे छिपी हुई दिव्य सत्ता तो, गीता में ही प्रकट की गयी है।

अर्जुन और श्रीकृष्ण के अर्थात् मानव-आत्मा और भागवत आत्मा के सख्य का रूपक अन्य भारतीय ग्रंथों में भी वर्णित है, जैसे एक स्थान में यह वर्णन है कि इंद्र और कुत्स एक ही रथ पर वैठे हुए स्वर्ग की ओर यात्रा कर रहे हैं, जैसे उपनिषदों में दो पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हुए मिलते हैं, अथवा जैसे यह वर्णन आता है कि नर-नारायण ऋषि ज्ञानार्थ एक साथ तपस्या कर रहे हैं। पर इन तीनों ही उदाहरणों में वह ज्ञान ही लक्ष्य है— जिसमें, जैसा कि गीता ने कहा है, "सारा कर्म परिसमाप्त होता है;" परंतु गीता में वह कर्म लक्ष्य

है, जो उस ज्ञान को प्राप्त कराता है और जिसमें ज्ञाता भगवान ही कर्म के कर्ता वनकर सामने आते हैं। यहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण अर्थात मनुष्य और भगवान ऋषि-मुनियों के समान किसी तापस आश्रम में ध्यान करने नहीं वैठे हैं, बल्कि रणभेरियों के तुमुल निनाद से आकुल समरभूमि में शस्त्रों की खनखनाहट के बीच युद्ध के रथ पर रथी और सारथी के रूप में विद्यमान हैं। अतएव गीता के उपदेष्टा गुरु केवल मनुष्य के वे अंतर्यामी ईश्वर ही नहीं हैं, जो केवल ज्ञान के वक्ता के रूप में ही प्रकट होते हों, वल्कि मनुष्य जाति के वे अंतर्यामी ईश्वर हैं, जो सारे कर्म जगत के संचालक हैं, जिनसे और जिनके लिए ही वह संघर्ष और श्रम कर रही है और जिनकी ओर ही समस्त, मानवजीवन यात्रा कर रहा है। वे सव कर्मों और यज्ञों के छिपे हुए स्वामी हैं और सव के सुहृद हैं। ●●

भारती का नवम्बर १९६२ का अंक
दीपोत्सवी विशेषांक होगा

●

धर्म, अध्यात्म, कला, संस्कृति, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, चित्र, संगीत, काव्य, साहित्य सम्बन्धी उत्कृष्ट सामग्री और नवीनतम चित्र-सज्जा से मंडित, प्रस्तुत विशेषांक—

- **रस-लक्ष्मी के पूजा-पर्व के उपलक्ष्य में**
- **नूतन वर्ष की नवालोक वेला में**

● भारती के पाठकों को सस्नेह भेंट ●

श्रीमती लीलावती मुन्शी

श्रीकृष्ण, अपने जीवन की संध्या में

संसार की द्रष्टि में सर्वाधिक सफल और विजयी जीवन श्रीकृष्ण ने जिया था। राज्य खोये, पाये और दे दिये। शत्रुओं और दुष्टों का संहार किया, मित्रों का उद्धार किया, प्रेम पाया और बाँटा, चक्रवर्ती की सम्पत्ति प्राप्त की और खोयी। इससे अधिक कोई एक जीवन में क्या कर सकता है। परन्तु इन सब वर्षों में क्या उन्होंने एक पल भी शान्ति अथवा सुख से व्यतीत किया ?......

दिन ढल रहा था; सूर्य की प्रचंड गर्मी अब शांत हो चली थी; उसकी किरणों में अब वह तेज नहीं रह गया था। सामने एक पहाड़ कहीं तो सूर्य की शांत, सुनहली किरणों में चमक रहा था, कहीं बादलों की छाया में अंधकार-आच्छन्न था। रास्ते के दोनों ओर खेत थे, परन्तु अनाज उनमें से किसी में उगा हुआ नहीं था। थोड़ी-थोड़ी दूर पर रास्ते के किनारे वृक्ष भी थे, परन्तु मुसाफ़िरों की थकान दूर करने में वे पूर्णतया सफल नहीं थे।

इसी रास्ते पर अवस्था के बोझ से झुके हुए और मार्ग की थकावट से कलांत कृष्ण आगे बढ़ रहे थे। उनका उस समय

कोई गंतव्य अथवा निर्धारित स्थान नहीं था, जहाँ पृथ्वी माता अपनी गोद में शरण दे, जहाँ उन्हें कोई पहचानता नहीं हो, ऐसे ही किसी शांत कोने की तलाश उन्हें थी। उनके पैर थक-थक कर चूर हो रहे थे, शरीर क्लांत था, आँखें निस्तेज थीं, वस्त्र मैले और अस्तव्यस्त थे।

यादवों के युद्ध और सर्व स्वजनों के संहार के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने लिए कोई शांत, अपरिचित स्थान ढूँढ़ने निकले थे। परन्तु अब तक भारत में ऐसा कोई कोना उन्हें नहीं मिला था, जहाँ लोग उन्हें जानते न हों। उनके पूर्व पराक्रमों से सारा संसार सुपरिचित था। ऐसा कोई जन नहीं था, जो उन्हें देखकर काँपता न हो, पलायन करने की चेष्टा न करता हो।

कोई उन्हें देखकर पूतनावध से लेकर जरासंध, भीष्म, शिशुपाल तथा अनेक अन्य वधों में अमानुषी दैवी शक्ति अथवा दैत्य का छल और क्रूरता देखकर उनके मार्ग से दूर भागता। रूपवती स्त्रियों के स्वामी तथा सुंदरी बालाओं के पिता उनके स्त्री-पराक्रमों को याद कर अपनी स्त्रियों व बालिकाओं को उनकी दृष्टि से बचाते। पंडित वादविवाद में हार जाने और राजा अपने राज्य गँवाने के भय से उनके पास नहीं फटकते। साधारण जन उनको समझ में न आये ऐसा विलक्षण पुरुष मानकर उनसे किनारा कसते। यहाँ तक कि नन्हे-नन्हे बालक भी इस विचित्र व्यक्ति को देखकर दूर भागते।

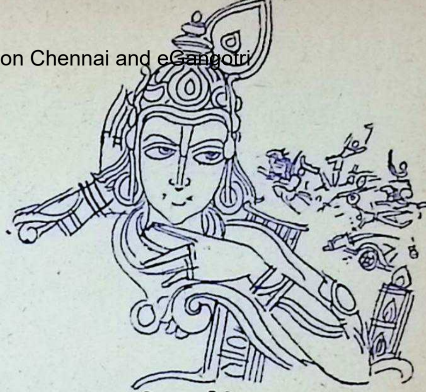
चित्र : दिनेश शाह

हारे-थके दैवी श्रीकृष्ण अपने मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़े जा रहे थे। महाभारत युद्ध के विजेता, अर्जुन के सखा एवं सारथि, कंस के हंता, कालियनाग का मर्दन करनेवाले, अनेक दैत्यों के काल और ऋषि-मुनियों के भक्तिगानों के पात्र, गोपियों के प्रिय श्रीकृष्ण आज असहाय अवस्था में विश्रामस्थल की खोज में मारे-मारे फिर रहे थे।

उनका एक भी मित्र, एक भी स्वजन नहीं बचा था। जीवन में महाभारत आदि अनेक युद्धों में और अंत में यादवस्थली में वे सभी नष्ट हो गये थे। केवल वे ही एक बचे थे—भक्तविहीन, मित्रविहीन, सोलह हज़ार और आठ पत्नियों से विहीन। जिसके एक-एक शब्द का पालन करने मानवों तथा देवों का समस्त विश्व तत्पर रहता था, उसीका साथ देने आज संसार में कोई नहीं था।

दिन भर तेज़ धूप में चल-चल कर ताप

तथा भूख से कृष्ण के प्राण व्याकुल हो रहे थें। सामने एक झोंपड़ी में एक ग्वालन गायें दोह रही थी। सारे जीवन में श्रीकृष्ण का अधिक से अधिक सत्कार स्त्रियों ने ही किया था। इसी आशा में वे झोपड़ी की ओर बढ़े।

ग्वालन कृष्ण को अपनी ओर आते देखकर चौंकी और खड़ी हो गयी। यह बात उसने सुन रखी थी कि श्रीकृष्ण उस प्रदेश में घूम रहे हैं। आज इस वृद्ध, मलीन, हारे-थके व्यक्ति की मुस्कान में गोकुल की गोपियों का हृदय हरण करने की शक्ति नहीं रह गयी थी। उन्होंने थके-मांदे स्वर में पूछा, 'ग्वालन, दही देगी?'

ग्वालन से ना कहते नहीं बना। पत्ते की तरह काँपती हुई उसने ताज़े दूध का घड़ा उठाया, परन्तु वह उसके हाथ से छूट गया और सारा दूध ज़मीन पर बह गया। बिना कुछ कहे वह अपनी झोंपड़ी में से दधि का एक मटका उठा लायी और उसे कृष्ण की अंजलि में उड़ेलना शुरू किया। कई दिनों के भूखे कृष्ण सारा मटका गट-गट पी गये। उनके शरीर में कुछ शक्ति का संचार हुआ। आभार की एक गहन दृष्टि डाल कर भयभीत ग्वालन से उन्होंने विदा ली।

कृष्ण को जीवन में प्रथम बार आत्मग्लानि हुई। यह नहीं कि वे किसी मानव के सहवास-योग्य नहीं रह गये थे—बल्कि कोई मानव ही स्वयं को उनके सहवास-योग्य नहीं समझता था और उन्हें देख कर दूर भागता था। हजारों स्त्री-पुरुषों से घिरा रहनेवाला व्यक्ति एसा भयंकर एकांत किस प्रकार सहन कर सकता था? मानव के उद्धार के लिए उन्होंने अवतार लिया, मानवजाति की सेवा में उन्होंने अपनी शक्तियाँ समर्पित कीं और मानवों के युद्ध ही वे जीवनपर्यंत लड़ते रहे और इस सवासौ वर्ष की पकी आयु में एक झोंपड़ी भी ऐसी नहीं जो उन्हें आश्रय दे सके! 'हे परमात्मा! इस जीवन का अन्त कर दे।' कृष्ण के हाहाकार कर रहे हृदय ने पुकारा।

पूर्वजीवन की स्मृतियाँ उन्हें एक के बाद एक सताने लगीं। संसार की दृष्टि में सर्वाधिक सफल और विजयी जीवन उन्होंने जिया था। राज्य खोये, प्राप्त किये और दे दिये, शत्रुरूपी दुष्टों का संहार किया, मित्रों का उद्धार किया, प्रेम पाया और बाँटा, चक्रवर्ती की सम्पत्ति प्राप्त की और खोयी—इससे अधिक कोई जीवन में क्या कर सकता है। परन्तु इन सब वर्षों में क्या उन्होंने एक पल भी शांति अथवा सुख से व्यतीत किया? उनकी दैवी अथवा दानवी शक्तियों के भय से मित्र अथवा शत्रु क्या उन पर कभी पूरी तरह विश्वास कर सके? तथाकथित मित्र उनकी अपार शक्ति का लाभ उठाने को ही उनके पास

आते। स्वजन सदा उनकी शरण मांगते और अपना काम निकाल लेते। शत्रु संभवतया उन्हें छेड़ते नहीं। उनके अंत:पुर में वास करती सोलह हज़ार सुंदरियाँ और उनके सहस्रों पुत्र उनके साथ निर्भयता, अथवा विश्वास से व्यवहार नहीं कर सकते थे। सभी उनको कपटी और क्रूर मानते थे। भक्तों को भी ज़रूरत के वक्त खुशामद के शब्द कहकर अपना काम निकालने के सिवा और कोई प्रयोजन श्रीकृष्ण से नहीं था। वह एक बड़े अत्याचारी थ, उनकी इच्छानुसार ही सबको चलना पड़ता था। नाराज़ होने पर किस समय वे क्या कर बैठेंगे, यह उनके परम मित्र भी नहीं कह सकते थे।

परन्तु उनका क्या कभी कोई वास्तविक मित्र भी था? श्रीकृष्ण को अब शंका होने लगी थी। यदि वे कोई साधारण मनुष्य होते, उनकी शक्तियों में किसी ने दैवी अथवा दानवी अंश न देखा होता, तो इतने तथाकथित मित्रों के स्थान पर थोड़े-से वास्तविक मित्र तो उन्हें मिले ही होते और जीवन के संध्याकाल में इस तरह अकेले उन्हें नहीं भटकना पड़ता। कोई सहृदय मित्र उनका कष्ट और थकावट मिटाने अवश्य उपस्थित होता।

कृष्ण बहुत थक गये थे; आगे एक डग भी और बढ़ना उनके लिए असंभव था। रास्ते के किनारे पर एक वृक्ष के नीचे जाकर वे पड़ गये। विचार कर कर उनका मस्तिष्क भन्ना गया था, चल-चल कर उनका प्रत्येक अंग दुखने लगा था। सुवर्ण के सिंहासन पर बैठनेवाले मुरारी आज ज़मीन पर हाथ का तकिया बनाकर लेट गये। शरीर को उन्होंने अंगोछे से ढँक लिया और आँखें बंद कर लीं। उन्हें अब कोई विचार नहीं करना था; परन्तु सारे संसार को नचानेवाला इस दशा में स्वस्थता से किस प्रकार सो सकता था?

आँखें मूँद लेने पर उन्हें शंका होने लगी: 'मैंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए जन्म लिया था; परन्तु मेरे समस्त जीवन-काल में पृथ्वी को क्या सर्वाधिक पीड़ा नहीं सहनी पड़ी?'

गोकुल से ही उसकी शुरुआत हो गयी थी। कृष्ण की शक्ति पर गर्वित ग्वालों ने आसपास के गाँवों में कितना उत्पात मचाया था। और कंस के वध होने पर यादव गर्व से कितने प्रमत्त हो उठे थे! एक द्रोपदी के लिए उन्होंने पांडव जैसे मूर्खों को राज्य दिलाने महाभारत के युद्ध में करोड़ों का संहार कराया और उसमें हुए अपने मित्रों और गुरुजनों की हत्या का भी विचार नहीं किया। और अंत में उन्हीं की शक्ति से बलवान बने यादव इतने गिर पड़े कि न्याय और अन्याय का विचार भी उन्हें नहीं रहा। नीति-अनीति को भी वे भूल बैठे और

रात-दिन मदिरा में मस्त रहने लगे — उनमें बलराम, सांब, प्रद्युम्न तथा प्रिय अनिरुद्ध सभी थे ! कृष्ण जैसे जगतपुरुष की आँखों में भी इस विचार से आँसू आये बिना नहीं रहे ।

'हे परमेश्वर ! जिस तेज के अंश में से तुमने मेरा निर्माण किया, वहीं मुझे वापस बुला ले। तुमने मुझ में जो विश्वास रखा था, वह अफल हुआ है । मेरे जीवन में निष्फलता की परंपरा के अतिरिक्त और कुछ मुझे दिखायी नहीं दे रहा । जीवन भर नाश ही नाश मैंने किया । मेरे चाहनेवालों ने भी कभी मुझ पर विश्वास नहीं किया, परन्तु आज तो वह आडंबर और भव्यता भी नहीं रही । जिंदगी के तूफान भी पूरे हो गये । अब तो अशक्त और अकेला, जर्जरित तथा निर्बल तेरा बालक, मैं तुझे पुकार रहा हूँ । 'दीनानाथ ! यह जीवनलीला अब शेष कर दे ।'

क्या वास्तव में विश्वपालक ने कृष्ण की प्रार्थना सुनी ? जो कपड़ा उन्होंने ओढ़ रखा था वह उतना बड़ा नहीं था कि उनके समूचे तन को ढँक सके । उनके पैर उसमें से बाहर निकल आये थे । पाद पर लाल पद्म का चिह्न संध्या के हल्के प्रकाश में दूर से चमक रहा था, जिससे पैर एक पक्षी-सा दिखायी पड़ रहा था । एक व्याध ने दूर से उसे देखा और तीर मारा । क्षण भर में कृष्ण का पैर ज़ख्मी हो गया और वे पुकार उठे, 'पिता, तूं ने मेरी प्रार्थना सुन ली ।'

मृत्यु ? जगत का महापुरुष इस प्रकार वीरान में व्याध के हाथ मरे ? मानने को मन नहीं करता, फिर भी जैसा कि कथा में वर्णित है, ऐसा ही हुआ था ।

●

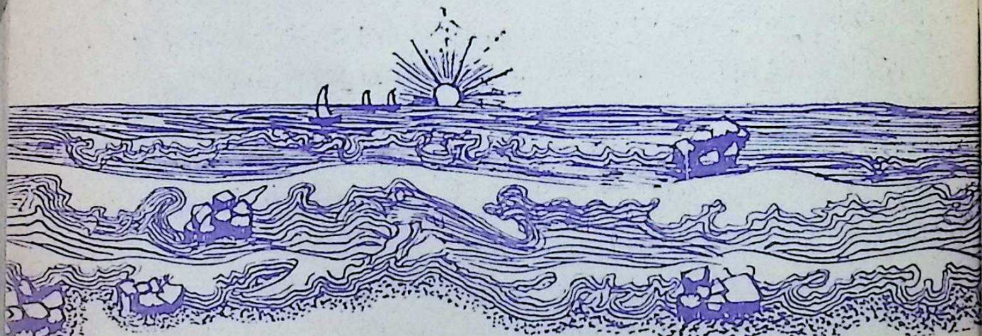

लावण्यप्रभा राय

वृन्दा का वन

राजकन्या सत्यवती ही थी वृन्दावन की वृन्दा। भगवान श्रीकृष्ण की कृपा पाने की आशा से वृन्दा ने तपस्या की थी। श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने वृन्दा को वर देना चाहा। वृन्दा ने गदगद् होकर कहा—

"मेरे प्रभो, तुम्हारी लीला के लिए मैं वन बनाऊँगी। उस वन में एक साथ छः ऋतुओं का आविर्भाव होगा। फूल-फल के समारोह से, विहंग की मधुर काकलि से, कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु आदि के रहने से वह वन नन्दनवन जैसा शोभित होगा। मुझे केवल यही वर चाहिए कि तुम प्रतिदिन अपनी कान्ता के साथ इस वन में विहार करोगे।"

भक्तवत्सल भगवान ने कहा—"तथास्तु। परन्तु वृन्दे, यह तो बताओ कि मैं अपनी कान्ता के साथ प्रति दिन तुम्हारे वन में विहार करूँगा इससे तुम्हें क्या मिलेगा?"

वृन्दा ने मुस्कराकर कहा—"क्यों? मुझे युगलरूप के नित्य दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा। तुम दोनों साथ-साथ विहार करोगे: तुम्हें आनन्द होगा और तुम्हें देख कर मुझे अतुल आनन्द होगा। मुझे एक और वर दोगे प्रभो? तुम कभी मेरे इस वन को छोड़ कर चले तो नहीं जाओगे? कहो भगवन्! मेरी मनोकामना पूरी करोगे?"

कृष्ण ने केवल एक शव्द कहा—"तथास्तु।"

यही है वृन्दा का वन—वृन्दावन। भगवान ने वृन्दा की मनोकामना पूरी की। वृन्दा के ही वन में कृष्ण ने परम मधुर लीला की। यह लीला चिरकाल से हो रही है, चिरकाल तक होगी।

परम भाग्यवान भक्त ही यह नित्यलीला देख पाते हैं। परमपुरुष श्रीकृष्ण हैं इस लीला के कान्त नायक, भगवती लक्ष्मी हैं इसकी कान्ता नायिका। इस वृन्दावन की भूमि है चिन्मयी: जल अमृत। नेत्र में प्रेम का नीलांजन लगा कर ही भक्त वृन्दावन देख सकते हैं—अन्यथा नहीं।

●

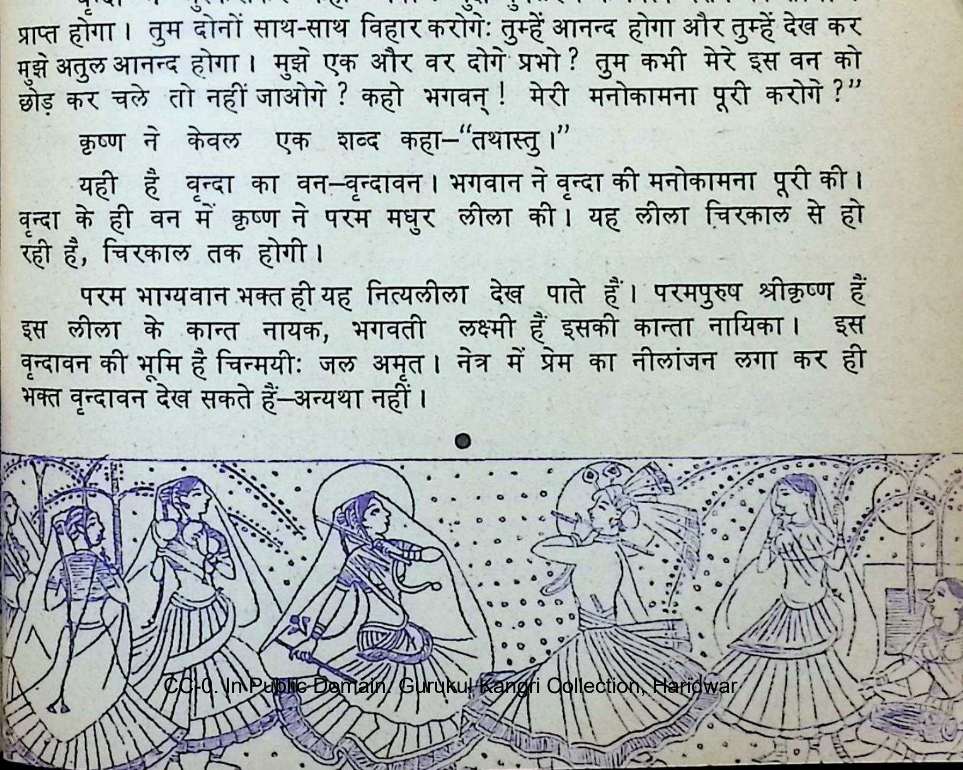

कृष्णदत्त बाजपेयी

द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण

* * *

द्वारिका में कृष्ण का जीवन तत्कालीन राजनीति की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में ही व्यतीत हुआ। महाभारत-युद्ध के द्वारा उन्होंने नृपतंत्र के उस रूप को नष्ट करने का उत्कट प्रयास किया, जो सत्ता के मद से विद्रूप हो गया था और जिसके कारण लोकमानस आकुल था। अत्याचारी शासकों के उन्मूलन में कृष्ण ने सभी उपायों का प्रयोग किया। जिस कर्मयोगी स्वस्थ समाज की रचना उन्हें अभीष्ट थी, उसकी आधारशिला उन्होंने द्वारिका में ही स्थापित की थी।

* * *

लीलामय कृष्ण के जीवन के साथ द्वारका का सबसे पहला संबंध उस समय मिलता है, जब वे जरासंध के भय से मथुरा को छोड़कर द्वारका भगे। श्रीकृष्ण के बहुत पहले द्वारका (द्वारावती) में यादवों का केंद्र स्थापित हो गया था और वहाँ वे बड़ी संख्या में निवास करते थे।

जरासंध, के कारण उग्रसेन, कृष्ण, बलराम आदि के नेतृत्व में यादवों ने बहुत बड़ी संख्या में मथुरा से प्रयाण किया और सौराष्ट्र की नगरी द्वारावती में जाकर बस गये। द्वारावती का जीर्णोद्धार किया गया और उसमें बड़ी संख्या में नये मकानों का निर्माण हुआ।

मथुरा के इतिहास में महाभिनिष्क्रमण की यह घटना बड़े महत्व की है। यद्यपि इसके पूर्व भी यह नगरी कम-से-कम दो बार खाली की गयी थी—पहली बार शत्रुघ्न-विजय के उपरांत लवण के अनुयायियों द्वारा और दूसरी बार कंस के अत्याचारों से ऊबे हुए यादवों द्वारा—पर जिस बड़े रूप में मथुरा इस तीसरे अवसर पर खाली हुई, वैसे वह पहले कभी नहीं हुई थी। इस निष्क्रमण के उपरांत मथुरा की आबादी बहुत कम रह गयी होगी। कालयवन और जरासंध की सम्मिलित सेना ने मथुरा नगरी को कितनी क्षति पहुँचायी, इसका सम्यक् पता नहीं

चलता। यह भी नहीं ज्ञात होता कि जरासंध ने अंतिम आक्रमण के फलस्वरूप मथुरा पर अपना अधिकार कर लेने के वाद शूरसेन जनपद के शासनार्थ अपनी ओर से किसी यादव को नियुक्त किया, अथवा किसी अन्य को।

परंतु जैसा कि महाभारत एवं पुराणों से पता चलता है, कुछ समय बाद ही श्रीकृष्ण ने बड़ी युक्ति से पांडवों की सहायता से जरासंध का वध करा दिया। अतः मथुरा पर जरासंध का आधिपत्य अधिक काल तक न रह सका।

संभवतः उक्त महाभिनिष्क्रमण के वाद कृष्ण फिर कभी ब्रज न लौट सके। द्वारका में जीवन की जटिल समस्याओं में फँस कर भी कृष्ण ब्रजभूमि, नंद-यशोदा तथा साथ में खेले हुए गोप-गोपियों को भूले नहीं। उन्हें ब्रज की सुधि प्रायः आया करती थी। अतः वलराम को उन्होंने भेजा कि वे वहाँ जाकर लोगों को सांत्वना दें। बलराम ब्रज में दो मास तक रहे। इस समय का उपयोग भी उन्होंने अच्छे ढंग से किया। वे कृषि-विद्या में निपुण थे। उन्होंने अपने कौशल से वृंदावन से दूर बहने वाली यमुना में इस प्रकार से बाँध बाँधा कि वह वृन्दावन के पास से होकर वहने लगी। पुराणों में इस घटना को यह रूप दिया गया है कि बलराम ने अपने हल से यमुना को अपनी ओर खींच लिया। परंतु हरिवंश (अध्याय १०२) में स्पष्ट कहा है कि यमुना पहले दूर बहती थी, उसे वलरामद्वारा वहाँ से निकट लाया गया, जिससे यमुना वृंदावन के खेतों के पास से बहने लगी। कई पुराणों में वलराम द्वारा गोकुल में अत्यधिक वारुणी-सेवन का भी उल्लेख है और लिखा है कि

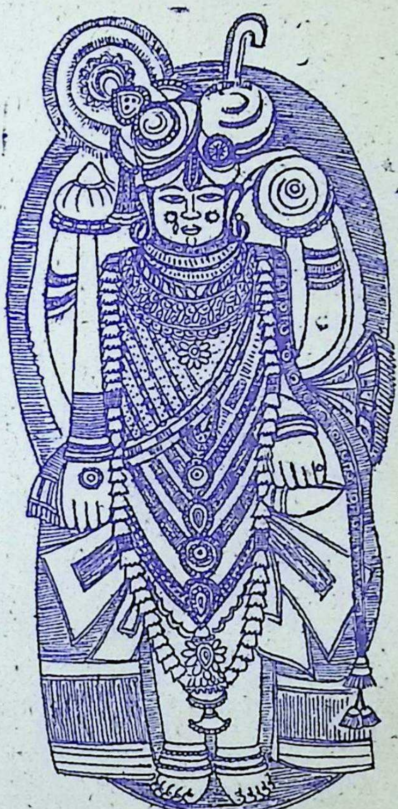

श्री द्वारिकाधीश : द्वारिका
अनुकृति : महेन्द्रनाथ सिंह

यहाँ रेवती से उनका विवाह हुआ। परंतु अन्य प्रमाणों के आधार पर बलराम का रेवती से विवाह द्वारका में हुआ।

कृष्ण के द्वारका में निवास करते समय कांपिल्य में पंचाल राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर किया। इसमें कृष्ण भी गये, जहाँ उनकी बुआ कुंती के लड़के पाँचों पांडव मौजूद थे। यहीं से पांडवों के साथ कृष्ण की घनिष्टता का आरंभ हुआ। स्वयंवर में अर्जुन ने मत्स्य-भेद कर द्रौपदी को प्राप्त किया।

कुछ दिन बाद अर्जुन तीर्थयात्रा करते हुए सौराष्ट्र गये और वहाँ वे प्रभासक्षेत्र में कृष्ण से मिले। कृष्ण उन्हें अपने साथ द्वारका ले आये। कृष्ण की बहिन सुभद्रा को अर्जुन, कृष्ण की सहमति से हर ले गये और उसके साथ विवाह किया।

इसके बाद इंद्रप्रस्थ में पांडवों के राजसूय-यज्ञ का प्रारंभ हुआ। अर्जुन और भीम की सहायता से कृष्ण ने जरासंध को मरवा डाला। कृष्ण ने जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध का राजा बनाया। फिर उन्होंने गिरिव्रज में कारावास में बंद बहुत से राजाओं को मुक्त किया। इससे कृष्ण की ख्याति बढ़ी। पांडवों ने कृष्ण की सहायता से अन्य कितने ही शासकों पर विजय प्राप्त की।

राजसूययज्ञ में चेदिराज शिशुपाल ने विघ्न डालना चाहा, परंतु कृष्ण ने उसे यज्ञस्थल पर ही समाप्त कर दिया। अब राजसूय यज्ञ सकुशल सम्पन्न हुआ। यज्ञ की समाप्ति पर कृष्ण द्वारका लौट गये।

पांडवों के बढ़ते हुए प्रताप को कौरवराज दुर्योधन न सह सका। उसने छल से पांडवों को जुए में हरा दिया और उन्हें तेरह वर्ष के लिए निर्वासित करा दिया।

वनवास की अवधि समाप्त होने पर कृष्ण ने कौरव-पांडवों के बीच संधि कराने का प्रयास किया, परंतु इसमें उन्हें सफलता न मिली। अंत में भयंकर महाभारत युद्ध हुआ। कृष्ण ने इसमें पांडवों की बड़ी सहायता की और उन्हें विजयी बनाया। विजय के अनंतर पांडवों ने अश्वमेध यज्ञ किया। युधिष्ठिर भारत के चक्रवर्ती सम्राट् घोषित हुए और हस्तिनापुर में उनका राज्याभिषेक हुआ। कृष्ण इस यज्ञ और अभिषेक में शामिल हुए और फिर द्वारका वापस चले गये। यह कृष्ण की अंतिम हस्तिनापुर-यात्रा थी।

द्वारका में कृष्ण ने उग्रसेन को वृष्णि-गण का प्रमुख बनाया। वहाँ का शासन गणतंत्रात्मक ढंग से चलता रहा—द्वारका में कृष्ण के वैयक्तिक जीवन की पहली मुख्य घटना थी—कुंडिनपुर की सुंदरी राजकुमारी रुक्मिणी के साथ विवाह। हरिवंश पुराण में यह कथा विस्तार से दी हुई है। रुक्मिणी का भाई रुक्मी था। वह अपनी बहन का विवाह चेदिराज

शिशुपाल से करना चाहता था। मगधराज जरासंघ भी यही चाहता था। किंतु कुंडिनपुर का राजा कृष्ण को ही, अपनी कन्या देना चाहता था। रुक्मिणी स्वयं भी कृष्ण को वरना चाहती थी। उसने उनके सौंदर्य और शौर्य की प्रशंसा सुन रखी थी। रुक्मिणी का स्वयंवर रचा गया और वहाँ से कृष्ण उसे हर ले गये। जिन लोगों ने उनका विरोध किया, वे पराजित हुए। इसी घटना से शिशुपाल कृष्ण के प्रति गहरा द्वेष मानने लगा था।

हरिवंश (अध्याय ११६) के अनुसार वलराम का विवाह भी द्वारका में आनर्त-वंशी यादव रेवत की पुत्री रेवती से हुआ। संभवतः पहले वलराम का विवाह हुआ, फिर कृष्ण का। वाद के पुराणों में वलराम और रेवती की विचित्र कथा मिलती है।

रुक्मिणी के अतिरिक्त कृष्ण के सात अन्य पत्नियाँ होने का उल्लेख प्रायः सभी पुराणों में मिलता है। इनके नाम सत्यभामा, जांववती, कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा दिये हैं। इनमें से कई को उनके माता-पिता ने विवाह में प्रदान किया और शेष को कृष्ण विजय में प्राप्त कर लाये।

पुराणों से ज्ञात होता है कि कृष्ण के संतानों की संख्या वड़ी थी। रुक्मिणी से दस पुत्र और एक कन्या थी। इनमें सबसे वड़ा प्रद्युम्न था। भागवतादि पुराणों में कृष्ण के सुखी गृहस्थ-जीवन तथा उनकी दैनिक चर्या का हाल विस्तार से मिलता है। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह शोणितपुर के राजा वाणासुर की पुत्री उषा के साथ हुआ।

अंधक-वृष्णि यादव वड़ी संख्या में महाभारत-युद्ध में काम आये। जो वचे वे आपस में मिलजुलकर अधिक समय तक न रह सके। श्रीकृष्ण-वलराम अव काफी वृद्ध हो चुके थे और संभवतः यादवों के ऊपर उनका प्रभाव भी कम हो गया था। पौराणिक विवरणों से पता चलता है कि, यादवों में विलास की वृद्धि हो चली थी और वे मदिरा-पान अधिक करने लगे थे। कृष्ण-वलराम के समझाने पर भी, ऐश्वर्य से मत्त यादव न माने और वे कई दलों में विभक्त हो गये। एक दिन प्रभास के मेले में, जब यादव लोग वारुणी के नशे में चूर थे; वे आपस में लड़ने लगे। यह झगड़ा इतना वढ़ गया कि अंत में वे सामूहिक-रूप से कट मरे। इस प्रकार यादवों ने गृह-युद्ध द्वारा अपना अंत कर लिया।

प्रभास के यादव-युद्ध में चार प्रमुख व्यक्तियों ने भाग नहीं लिया, जिससे वे वच गये। ये थे—कृष्ण, वलराम, दारुक सारथी और वभ्रु। वलराम दुःखी होकर समुद्र की ओर चले गये और वहाँ से फिर उनका पता नहीं चला। कृष्ण वड़े मर्माहत हुए। वे द्वारका गये और दारुक को उन्होंने

[शेष पृष्ठ १०५ पर]

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

सीमान्तक संस्कार में राधा और कृष्ण

दैहिक, मानसिक, पारस्परिक और सापेक्ष लालसाओं के मोह से बँधा संकीर्ण प्रेम श्रीकृष्ण के मर्म में अनुराग नहीं जगा पाया। वैसे प्रेम को मोह-भंग की पीड़ा भोगनी पड़ी। किन्तु श्रीराधा? उनके प्रेम की प्रक्रिया स्वयंसिद्ध थी, घोषित नहीं। उनकी अभिलाषा भी निरपेक्ष थी, स्पर्द्धित नहीं। इसीलिए श्रीराधा और श्रीकृष्ण का मिलन-भाव भी चिरन्तन वियोग की शपथ-सा रहस्य-मय है और उनका वियोग-भाव भी चिरमिलन के संकल्प सा कल्पनातीत। उनकी प्रीति के समग्रात्मक आयाम किसी व्यवधान में सीमित नहीं हैं।

क्षमा करो, बन्धु ! तुम शोधकर्ता हो, परम्परा की शल्य-परीक्षा की, इतिहास की मेरी बातें नहीं मान सकते, क्यों कि तुम शोध करने के पूर्व ही मान चुके हो कि तुम्हारी विषय-वस्तु तुमसे विलग है, नितांत भिन्न और असम्बद्ध है, कहीं नैसर्गिक रूप से सम्पृक्त नहीं। इसीलिए तुमने तर्क का आश्रय लिया, टूटी पगडंडियों को जोड़ा और देश-काल की धुंधली कन्दराओं में यथार्थ का आलोक-दण्ड लिये, दूर-दूर तक वर्षों-वर्षों प्रामाणिकता की खोज की है। कैसे फल निकले, कभी सोचा है तुमने ? फल ...कि आज भी तुम वैसा कुछ भी नहीं कह सकते, जो

सभी के लिए और सदा के लिए अकाट्य हो। नहीं, बन्धु! मेरी दृष्टि में ऐसे निष्कर्षों का अधिक महत्व नहीं है कि कुछ कहा नहीं जा सकता कि सचमुच किसी श्रीराधा से श्रीकृष्ण का व्यक्तिगत सम्बन्ध हुआ या नहीं? या पुराणों का काल-निर्णय भी मि. पॉर्जीटर के काल-निर्णय से कम या अधिक प्रामाणिक है, जहाँ तक श्री कृष्ण के जन्म काल का प्रश्न है, अथवा आभीर-संस्कृति की प्रेम-देवी का आरोपित महत्व पानेवाली श्रीराधा ही वास्तविक शरीर धारण कर बरसाने में जन्मीं, पलीं और बढ़ीं; संभवतः किसी से व्याही गयीं, श्रीकृष्ण की तथा-कथित परकीया प्रेमिका रहीं और वैधव्य भोगकर अथवा आत्मघात कर अपने अवैध प्रेम, आन्तरिक आसक्ति, विवशता और वियोग के उत्पीड़न की इतिश्री कर गयीं या नहीं, कुछ निश्चित नहीं है। बन्धुवर! यह व्यापक अनिश्चय, जो तुम्हें शोध के सौ रास्तों पर भटकाता और चुनौती दे रहा है उसी राधा के सम्बन्ध में है न? वही,—नारी, जो किसी की कोख से जन्मी, अपने-पराये वन्धनों में बँधी और जीवन की अवाध गति में समर्पित-सी, जर्जरा होकर, मर गयी? उसकी अजिर-समाधि की ईंटे खोद-खोदकर भी तुम उस महीयसी नायिका श्रीराधा का स्वरूप नहीं पा सकते, उसके प्रमाण नहीं दे सकते, जो तुम्हारे भारतीय संस्कारों में समाहित हैं, मित्र! एक ओर ऐसी पंक्तियाँ याद आती हैं:

"रही ब्रज आमन्त्रण के राग
श्याम की मुरली
नित्य नवीन,
विकल-सी दौड़-
दौड़ प्रतिकाल
सरित हो रही
सिन्धु में लीन।
सनातन महानन्द
में आज
बाँसुरी-कंकण
एकाकार,
बहा जा रहा
अचेतन विश्व,
रास की मुरली रही पुकार।"

[रसवन्ती : दिनकर]

और दूसरी ओर

"राधिका कोई न नारी एक,
भावना वह हृदय-हारी एक।"
रक्त-मज्जा की नहीं वह देह,
राधिका का अर्थ निर्मल नेह।

[राधा : जानकी वल्लभ शास्त्री]

मैं ढूंढ़ता हूँ, मित्र ! उसे अपने संस्कारों मैं ढूंढ़ता हूँ। ये मेरे-जैसे भारतीय व्यक्तियों के नैसर्गिक और उपार्जित संस्कार ही उसके अधिकरण हैं। भूल नहीं पाता हूँ, वचपन की वह कौतूहलमयी अवस्था, जब पारिवारिक ठाकुरवाड़ी में, श्री कृष्णाष्टमी मनायी जाती थी। सुबह से ही घर आँगन का धोया जाना, लीपा जाना-जैसे सामूहिक कार्यक्रम था। तरह-तरह के पकवान और प्रसाद बननें की उथल-पुथल और भगवान की झाँकी सजाने का ललित प्रयास मेरे बाल-मन को अनजानते ही उल्लास-विह्वल कर देता था। दुपहरिया ढलते ही गाँव के पड़ोसी सपरिवार मेरे घर चले आते थे, हँकार या निमंत्रण की पूर्ति के हेतु, जिनकी औरतें हवेली में एकत्र, नये-नये रंगीन वस्त्रों में सजी-धजी, भजन-कीर्त्तन का सहगान करती रहती थीं। अशोक-किसलयों से सजाये गये खंभे, आम्रपल्लवों से पिरोये बन्दनवार और कदली-स्तंभों की 'डँफोर काटने की कला' से बनाया गया मण्डप, मण्डप के शीर्ष पर ऊँचा मुख किये मुकुलित केले का लाल फूल ! अहा ! वांस की पट्टियों पर सजी दीपावलियाँ और मण्डप के बीचोंबीच रेशम-डोर से बँधा छोटा पलना, जिस पर वालकृष्ण की मूर्ति ज़रतार ओढ़नी से ढ़ँकी रहती थी, क्योंकि जन्म-लग्न तो निशीथ-वेला में आता, जब ओढ़नी हटा ली जाती और पलना झुलाया जाता था।

एक पुजारी का परिवार साल भर जन्म-वस्त्र पाता था, तो क्या मैं भी मानूँ कि ठाकुरवाड़ी के पर्वोत्सव उसके स्वार्थ की रक्षा के लिए षड्यन्त्र मात्र थे ? नहीं, वन्धु ! धर्माचारों की ऐसी अनिवार्यता का कारण मैं वर्ग-स्वार्थ को ही नहीं समझ लेता ! अपने वचपन में श्रीकृष्णाष्टमी की संध्या को, सामूहिक संकीर्त्तन का उत्साह देखकर और अनसोचे ही उसमें तल्लीन रहकर, मैंने सभी वर्गों का भाव-संगम पहचाना है, जो निःस्वार्थ ही जान पड़ा। रंग-विरंगी कन्दीलों से जगमगाते दालान में, मण्डप के सामने बनी, लम्बी-सी, वनावटी यमुना एक सिमेन्टेड हौज भले हो, मगर कागज़ की रंगीन किश्तियाँ जब तैरने लगती थीं,—श्रीकृष्ण के जन्म, बाल-विनोद, लीला-प्रवाह और महिमा-रहस्य से उत्प्रेरित पदावलियों का गान जब चरम आनन्द का इंद्रजाल रच देता था; तो सामूहिक मन की एकाग्रता में यमुना बनावटी नहीं दिखती थी, किश्तियाँ कागजी नहीं रह जाती थीं; पलना पर पौढ़ाये बालमुकुन्द मूर्त्तिमात्र नहीं जान पड़ते थे और प्रतिध्वनित स्वर-लहरियों में बार-बार गूँजता श्रीराधा का नाम प्रश्नवाचक नहीं रह जाता था— कि उसे किसी उत्तर या शोध की अपेक्षा हो।

हमारे सामूहिक संस्कार केवल आत्मिक परितोष के लिए अपनी परम्परा की चरितार्थता के स्रोतों को सहज ही स्वीकार लेते हैं, क्योंकि वे स्रोत किसी विशेष स्थान, काल, सम्बन्ध, घटना और तथ्य का यथार्थता से मुक्त होकर, सीमाओं को अतिक्रांत कर, परम्परा की सीमान्तक संभावना में जीवित रहते हैं। उनका यही सातत्य हमारे सामूहिक मनोलोक का संघटन, पोषण और उन्नयन करता है। उन स्रोतों में बहते हुए प्रसंग, प्रतीक बिम्ब और प्रतिमान, हमारे सामूहिक मन में एक प्रकार का समग्रात्मक आसंग जगा देते हैं, जो बार-बार व्यवधानों का बोध मिटा देता है और हम अतीत, वर्तमान एवं भविष्य का परस्परावर्तन या आरोपित विनिमय करने लगते हैं। मनोलोक की सहजता में यह उपक्रम जीवन भर चलता रहता है।

कैशोर और यौवन के संधि-वर्षों में, जिज्ञासा, आकर्षण और परिकल्पनाओं में उलझा हुआ, मैं प्रति दिन कुछ प्रश्नों से गुजरता था, जैसे श्रीकृष्ण तो भगवान हैं (या थे?), तो उन्हें कारागार में जन्म लेना पड़ा—क्योंकि जब कोर-कोर तकभरी यमुना उनके पाँव छूते ही घट गयी, तो वे बच्चे क्यों बने रहे, बाल-लीलाएँ क्यों करते रहे—तत्काल भगवान का चिर युवा रूप धारण कर कंस से क्यों नहीं लड़ पड़े? मेरे अभिभावकों ने उत्तर दिया कि भगवान तभी अवतार लेते हैं, जब वे आदर्श-हीन समाज में मनुष्य का पूरा जीवन जीकर, सभी अवस्थाओं से गुजर कर, अपने कर्त्तव्य और आदर्श को चरितार्थ करते हैं, यानी सभी के लिए उदाहरण स्वरूप बन जाना चाहते हैं, मैंने मान लिया कि भगवान श्रीकृष्ण का जीवन सभी अवस्थाओं में मानवोचित आदर्श का उदाहरण था। किंतु श्रीराधा? मेरे प्रश्न अन्तर्मुख हो चले। मैंने किसी से पूछा नहीं कि माखनचोरी में श्रीकृष्ण को पकड़कर यशोदा के सम्मुख उलाहने देनेवाली, दान-लीला की परेशानियों से क्षुब्ध और छलावे-भरे खेलों में रूठ-रूठ जानेवाली श्री राधा ने श्रीकृष्ण को क्यों प्रश्रय दिया कि वे चीर-हरण लीला तक कर गुजरे और पूरे अधिकार से श्रीराधा के अतिरिक्त भी, अनेक गोपिकाओं के नाम पर, वंशीवट में आमन्त्रण की वंशी-रागिनी फूंकने लगे? मेरे मन में तो शंका छिपी थी कि पूतनादि दुःशक्तियों को पूरा पराजित कर, कालिय-मर्दन कर और गोवर्द्धन धारण कर भगवान श्रीकृष्ण ने ग्रामवासियों को ऐसा अभिभूत कर दिया था, कि अलौकिक पुरुष के रूप में उन्हें सभी स्वीकारते थे; तो नारियाँ विशेषतः असामान्य और अलौकिक के प्रति सहज ही मोह-मुग्ध हो गयीं। फिर कुमारियों में तो शायद उन्हें पति-रूप में

प्राप्त करने की प्रतिस्पर्द्धा ही बढ़ चली होगी। ऐसी प्रतिस्पर्धा की रसमयी आँधी में श्रीकृष्ण तो प्रत्येक की प्रेम-परीक्षा लेते रहे, किंतु सामूहिक परीक्षा के अवसरों पर भी श्रीराधा के अतिरिक्त किसी का प्रेम आत्म-परिणत या पर-निरपेक्ष नहीं सिद्ध हुआ। दैहिक, मानसिक, पारस्परिक और सापेक्ष लालसाओं के मोह से बँधा संकीर्ण प्रेम तो श्रीकृष्ण के मर्म में अनुराग नहीं जगा पाया। वैसे प्रेम को मोहभंग की पीड़ा भोगनी पड़ी। किंतु श्रीराधा? उनके प्रेम की प्रक्रिया स्वयंसिद्ध थी, घोषित नहीं। उनकी अभिलाषा भी निरपेक्ष, स्पर्द्धित नहीं। उनकी सीमाएँ भी स्वीकृत थीं, आयोजित नहीं। इसीलिए वे श्रीकृष्ण की आत्मीया हो चलीं, स्वकीया या परकीया नहीं। मेरे अन्तर्मुख प्रश्न और शंका-भरे विश्वास पर यह धारणा छा गयी कि प्रीति तो निरपेक्ष आत्मीयता की प्रक्रिया है, जो भिन्न हृदयों कों और भिन्न संस्थानों कों मार्मिक अभिन्नता के सम्बन्ध में जोड़ देती है। इसीलिए श्रीराधा और श्रीकृष्ण का मिलन-भाव भी चिरन्तन् वियोग की शपथ-सा रहस्यमय है और उनका वियोग-भाव भी चिरमिलन के संकल्प-सा कल्पनातीत। उनकी प्रीति के समग्रात्मक आयाम किसी व्यवधान में सीमित नहीं हैं। अपनी युवावस्था के आरम्भ में मैं इस वोध से गुजर रहा था, केवल व्याख्या नहीं कर पाता था।

अपनी युवावस्था में मैं अपने एक मित्र का बहुत सन्निकट हो चला था। हम दोनों हिन्दी लेकर एम.ए. कर रहे थे और 'विशेष पत्र' के रूप में 'विद्यापति का अध्ययन' ले चुके थे। चैत मास के चाँदनी-भरे निशीथ में, छात्रावास के वरामदे पर टेबिल-लैम्प जलाकर हम दोनों देर से विद्यापति के राधा-कृष्ण-भाव पर विचार कर रहे थे। मेरा मित्र कह रहा था:– "विद्यापति ने जब गार्हस्थ के मर्म-निवेदन से जयदेव की तरह ही, ज्ञान को भी आत्मीय बना लिया है, तो राधा वह राधा मात्र नहीं रह गयीं, जो अब भगवान कृष्ण की आह्लादिनी परा-शक्ति हैं, या कभी हाड़-मांस की पुतली भर मानी गयी होंगी और वह कृष्ण भी केवल भगवदावतार, षोड़शकलापूर्ण विश्व-पुरुष नहीं, जग-जग की घटनाओं में वँधे महापुरुष भी नहीं रहे,–दोनों ही इस सामान्य मानवों के जीवन की चिरागत प्रक्रिया के सहभोगी हैं।"

मैंने तनिक भी समय नहीं देकर, सामने खुले पृष्ठ का पद अपने मित्र को सुना देना चाहा–

"कर धरु, करुमोहे पारे,
देव हम अपुरव हार, कन्हैया!"

–"नहीं नहीं, क्षमा करो, मैं यह पद न पढ़ सकता हूँ, न सुन सकता हूँ।"–मेरे

मित्र ने विचित्र विह्वलता में रोका और कुछ लज्जा, कुछ असमंजस और कुछ भावुकता से व्याकुल होकर वह उठा और अपने कमरे में घुस गया। मैं रुकना या रोकना नहीं चाहता था; तो सम्पूर्ण पद उसे सुना-सुना कर तेज आवाज़ में पढ़ने लगा –

"सखि सब तेजि चल गेली,
न जानु कौन पथ मेली ?
हम नजा एव तुअ पासे,
जायव औघट घाटे !"

–अजब-सी घुटन में, सहसा मैं भी उठ चला और मैंने देखा कि कमरे में मेरा मित्र तकिये में चेहरा डुबोये, औंधे मुंह पड़ा था। कुछ तो अपने आवेश में और कुछ उसकी मुद्रा तोड़ने के लिए, मैंने इस पद की बावत ही वोलना शुरू कर दिया और उसे कुरेदने लगा–"अजी, राधा तो शिकायत भी करना चाहती है कि माधवजी विना किसी लोभ के पार नहीं उतारेंगे (जव यमुना भी नहीं सूखती)–लोभी हैं, तो जो भी चाहें, वह नहीं–केवल हार मिल जायगा, एक अपूर्व हार, बहुत हुआ ; हाँ, वह अपनी असहाय अवस्था में अपनापन के दो वोल भी तो सुनना चाहती है, जव सखियाँ छोड़कर न जाने कहाँ चली गयी हैं ! (भला श्रीकृष्ण उसे सान्त्वना क्यों नहीं देते, पूरे स्वार्थी हैं; सिर्फ अपने पास बुलाते हैं, कभी दूसरों की पुकार पर भी दौड़ते हैं क्या ?) तो वह नहीं जायगी। चली जायगी अवघट घाट; जहाँ कोई न हो–वे भी नहीं ! अवघट घाट ! !"–सहसा मेरे मित्र ने जोरों की सिसकी भरी और मैं घवरा उठा कि रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँधने लगीं। मेरा आवेश-भरा विनोद-भाव एक क्षण में गायव हो गया और बड़ी कठिनाई से मैं उसे सहेजने-सँभालने लगा। पूरी आत्मीयता, स्नेह और दुलार से धीरज वँधा कर जव मैंने पूछा कि उस पद को सुनते ही वह किस आसंग से विह्वल हो गया; तो बड़ी करुणा से उसने संक्षेप में अपनी कथा यों सुनायी :

वह मिथिला के एक ऐसे गाँव का वासी है, जो शहर से कोसों दूर है। गाँव में उसने मैट्रिक्युलेशन तक शिक्षा प्राप्त की। वहाँ उसे बचपन में ही पड़ोस की एक लड़की से बड़ी घनिष्टता हो गयी। उस लड़की का ननिहाल पड़ोसी परिवार में था। दोनों प्राइमरी स्कूल में साथ-साथ पढ़ते थे। स्कूल जाने के पहले और लौटने के बाद दोनों अक्सर साथ-साथ खेलते रहते थे। दोनों के नटखटपन की शिकायतें भी, दोनों परिवारों में हर रोज़ छः सात-वार तूतू-मैंमैं की नौबत ला देतीं, दोनों पर अक्सर पिटायी पड़ती, गालियाँ पड़तीं, दोनों हरएक दिन झगड़ते फिर भी

[शेष पृष्ठ १११ पर]

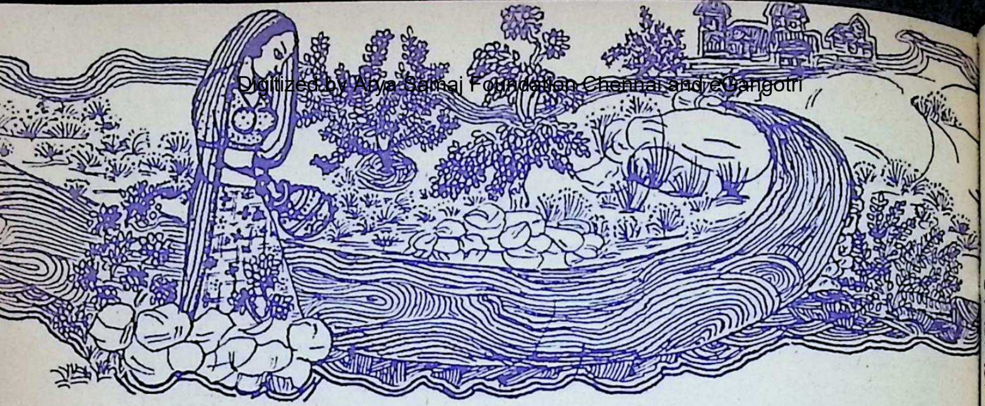

प्रियकान्त मणियार

अलबेला

[गुजराती गीत]

अलबेला छुए मुझे आँख से रे
इसका करूँ तो कैसे रे उपाय ?
गहरा मैं तानूं अपना घूंघटा
तो छोटा सा जी मेरा घुट जाय !

जलती दुपहरिया में पानी रे सींचने को
औचक थमे क्या रे श्वास ?
कितनी रे दूर से वेणु का नाद मुझे
घेर के खड़ा हो चौपास।

'और कहीं बजाओजी', अपने निकुंज में
बैठे से कैसे कही जाय ?
अलबेला छुए मुझे आँख से रे
इसका करूँ तो कैसे रे उपाय ?

रुपेरी रुपेरी चढ़ती पूनम भरपूर,
ओजी, क्वाँर का झूमता अकास;
गोपों औ' गोपियों के घूमते रे घेरे में
जमा है जी, रंगत में रास।

मेरी तो जोड़ में आया अलबेला वही
उसकी ताली को कैसे ठेला जाय ?
अलबेला छुए मुझे आँख से रे,
इसका करूं तो कैसे रे उपाय ?

श्रीराम तिवारी

श्रेयस् की गन्ध

पुलकवाही रथ चढ़े
तुम आ गयें,
तुम्हारा पादपी अस्तित्व
धारणा के वलय-कुसुमों की सहस्रों
दृष्टियों से देखता है मुझे !
मैं जो,–
रेणुका की भट्ठियों में
अनथही गहराइयों में डूबता हूँ :

●

ओ भिज्ञ मेरे कृष्ण !
प्रेय का अनुताप इतना
धमनियों में
ना उड़ेलो !
ना उड़ेलो !!
चुप
करोड़ों नील कमलों का समुन्दर
प्रणय की पीयूष ये नदियाँ गंधाती
[पिता है आकाश]
यह क्रम समेटो–
श्रेय का मधुवात
मेरा गुहा-मानव
सूँघता है
पुलकवाही रथ चढ़े
तुम आ गये !

करसनदास माणेक

अखण्ड आर्यावर्त का एकमेव लोक-नायक

[गुजराती पौराणिक आख्यान]

....यह मुचुकुन्द क्या आर्यावर्त की जनता ही नहीं था ? युगों से जो सोयी थी, और विदेशी आक्रमणकारी उसकी धरती को बार-बार रौंदते और लूट जाते थे !...श्रीकृष्ण के पीताम्बर-परस से वह मुचुकुन्द उठा। आर्यावर्त का विराट जाग्रत हुआ। और उसी के साथ कालयवन की मृत्यु भी जाग उठी। वह मुचुकुन्द आज फिर से सो गया है। उसे कौनसा कृष्ण झकझोर कर जगायेगा?

कालयवन् के आतंक से उस समय आर्यावर्त की प्रजा त्राहि-त्राहि पुकार रही थी।

कालयवन ? काल अर्थात् विनाशकाल की वृष्टि करता भारत भूमि पर आक्रमण करनेवाला कोई यवन। संभव है, विदेशी आक्रमणकारी के लिए यह आलंकारिक नाम रखा गया हो ! जो हो, कथा यह है कि भगवान श्रीकृष्ण ने कालयवन के आक्रमणों को रोकने का प्रयत्न सतरह बार किया; और सतरह बार ही उन्हें पराजित होकर पीछे हटने को बाध्य होना पड़ा। अंत में, उत्तर में स्थित मथुरा नगरी का त्याग कर उन्हें अपनी राजधानी सौराष्ट्र के पश्चिम सागर के किनारे द्वारमती में स्थापित करनी पड़ी और वह कालयवन के प्रताप से ही!

परन्तु इससे केवल यादव कुल की ही रक्षा हो सकी। बारंबार आक्रमण करनेवाले कालयवन का आतंक तो फिर भी बना ही रहा। आर्यावर्त उस समय अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। सभी को अपनी-अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और अपनी-अपनी लघु सीमाओं की चिंता थी; और इन सब को एकतंत्र में लाकर देश की रक्षा कर सके ऐसी, भीष्मादि के अनुभव तथा द्रोणादि के शस्त्रबल पर समग्र हस्तिनापुर की राज्यसभा, उस समय

रजस्वला द्रौपदी का चीर खींचने में तल्लीन थी।

इस विषम समस्या के समाधान के लिए आर्यावर्त के लोक-नायक श्रीकृष्ण ने उस समय एक दीर्घदृष्टिपूर्ण योजना सोची। उन्हें मुचकुन्द की याद आयी। कथा के अनुसार, हजारों वर्ष पहले, सत्य युग में यह राजर्षि निद्रामग्न हो गये थे। अपने जीवन में जनकल्याण के लिए जो भगीरथ प्रयत्न उन्होंने किये, उसीसे वे थक गये थे। इस पर मुचकुन्द ने तप किया, जिसके परिणामस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्मा प्रकट हुए।

"माँग, माँग!" ब्रह्मा ने उन्हें समाधि में से जगाते हुए कहा, 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, जो चाहे सो माँग!'

"यदि आप मुझ पर वास्तव में प्रसन्न हैं, प्रभु!" मुचकुंद ने कहा, "तो मुझे अनंत निद्रा का वरदान दें।"

"तथास्तु!" भोले ब्रह्मा बोल उठे, "और कुछ?"

"और कुछ नहीं, प्रभु!" जीवन तथा जागृति से थके हुए मुचकुंद ने प्रार्थना की, "किंतु इतना मैं अवश्य चाहता हूँ कि अनन्त निद्रा से मुझे यदि कोई जगाने का प्रयत्न करे, तो वह मेरी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जाय!"

"तथास्तु!" कहकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये।

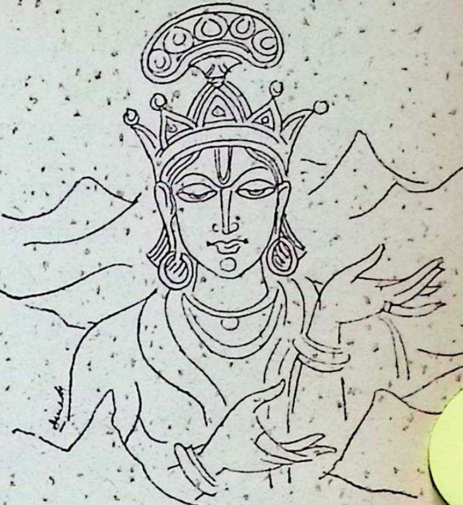

चित्र : दिनेश शाह

और मुचकुंद जिस गुफा में तपस्या करते थे वहीं, अनंत निद्रा के आधीन हो गये।

कालयवन के विनाश का उपाय वर्षों से सोच रहे भगवान श्रीकृष्ण को, ब्रह्मा के वरदान से युगों से निद्रामग्न मुचकुंद की याद आयी... और उनकी आँखों में एक नया तेज़ आ गया। कालयवन के विनाश का मार्ग उन्हें मिल गया था। वे कालयवन के अठारहवीं बार आर्यावर्त पर चढ़ाई करने की प्रतीक्षा करने लगे।

कालयवन को भारत के अतुल धन की चाट लग गयी थी। वह जानता था कि कृष्ण के सिवा और किसी में तो उसके सामने आने की हिम्मत भी नहीं थी,

और कृष्ण को वह सतरह बार हरा चुका था। इसलिए सतरहवीं लूट का माल, ज्यों ही ख़त्म हुआ कि आर्यावर्त पर फिर से आक्रमण करने वह चल पड़ा।

"इस बार तो इस कालिये को भी छोड़ना नहीं है," उसने संकल्प किया, "केवल इसके हौसले गुम कर दूं तो फिर आर्यावर्त में सदा के लिए कोई नाम का भी मेरा विरोधी न रहेगा।"

कालयवन की चढ़ाई का समाचार मिलते ही सदा की भाँति कृष्ण ने उसका मार्ग अवरुद्ध किया ; भयानक युद्ध हुआ। इस बार तो श्रीकृष्ण को पीछे हटना ही था, कालयवन को आर्यावर्त के भीतर उसकी प्रतीक्षारत, प्रसुप्त मृत्यु तक खींच ले जाने के लिए !

इसीलिए वे युद्धक्षेत्र से भागे, और उनके नाश की प्रतिज्ञा लेकर आनेवाला कालयवन भी उनके पीछे-पीछे दौड़ा। आगे श्रीकृष्ण और पीछे कालयवन ! पर्वत

अपनी आवश्यकता के लिए खरीदिए
Hind FLOORING TILES
हाइड्रालिक इटालियन मशीनों से
निर्मित : प्रीफ़ब (पूर्वनिर्मित) आर. सी. सी. गृह, सीमेण्ट पाइप, टैंक, रंगाई की नाँदें व बाग़ीचों के सामान का निर्माण करते हैं। सरकार, रेलवे, म्युनिसिपैलिटी, पी. डब्ल्यु. डी. के कंट्राक्टर हैं और सामान मुहैया करते हैं।
हिन्दुस्तान सीमेन्ट पाइप्स एण्ड कंक्रीट कन्स्ट्रक्शन कं०
मुख्य कार्यालय : **ओछवलाल गोरधनदास शाह**
टाइल, पाइप्स एण्ड सेनीटरी मरचेण्ट्स
खाडीआ, चार रस्ता, अहमदाबाद
फैक्टरी : सुएज फार्म रोड, अहमदाबाद
कार्यालय तथा निवास फोन : ५२२९२
फैक्टरी फोन : ५१६३६

लांघते, नदियाँ पार करते, जंगल मापते दोनों बेतहाशा दौड़े जा रहे थे।

अपने शिकार को पकड़ने की धुन में कालयवन को यह खबर भी नहीं थी कि अपने वतन से बहुत दूर वह चला जा रहा है। दौड़ते-दौड़ते, अंत में एक गुफा दिखायी दी और श्रीकृष्ण उसमें घुस गये। भीतर मुचकुंद ब्रह्मा के वरदान से निद्रा-मग्न, सोये थे। श्रीकृष्ण ने उनकी मुंदी, निद्रित आँखों की ओर देखा। विदेशी आक्रमणकारों को भस्मीभूत करने के लिए उनमें युगों से दावानल प्रसुप्त पड़ा था।

अपना पीला दुपट्टा, जिसके कारण वे पीताम्बर कहलाते थे, श्रीकृष्ण ने मुचकुंद की देह पर ओढ़ा दिया। और फिर, एक कोने में वे यह देखने के लिए दुबक कर खड़े हो गये कि देखें आगे क्या होता है।

पल भर भी न बीता होगा कि हिंसा से सुलगता कालयवन गुफा में घुसा, और उसने पीतवस्त्र ओढ़े एक व्यक्ति को सोया पाया।

"उठ, ऐ धूर्त!" उसने ललकार कर कहा, "क्या तू समझता है कि सोये रहने का ढोंग कर तू मुझसे बच सकेगा?"

और पीतवस्त्र से ढँकी देह को उसने श्रीकृष्ण समझ कर झकझोरा। मुचकुंद की निद्रा भग्न हुई। युगों का आलस मोड़ कर वे उठ बैठे। बड़े कष्ट से उन्होंने अपनी वर्षों से मुंदी पलकें खोलीं। और, कृष्ण के वदले यह कौन निकल गया, यह प्रश्न मन में उठने से पहले ही, कालयवन राख की ढेरी वन गया।

यह मुचुकुंद क्या आर्यावर्त की जनता नहीं हो सकती? युगों से जो सोयी थी और जिसकी निद्रावस्था का लाभ उठाकर विदेशी आक्रमणकारी उसकी धरती को बार-बार रौंदते और लूट जाते थे!

लोकशक्ति से विलग, राजकर्ताओं को अपनी-अपनी संकुचित सीमाओं को लेकर छोटे-मोटे झगड़ों से ही फुर्सत न थी कि वे संयुक्त रूप से किसी विदेशी आक्रमण का सामना करने का विचार करें। और अगर, किसी के ख़याल में यह वात आयी भी होगी, तो प्रजा के पीठवल के विना वे ऐसा कर सकते, यह भी शंकास्पद ही था। इसी परिस्थिति को देखकर पीतांवर ने उसे जगाया। उस पर अपनी चादर ओढ़ा कर उसके साथ अपना तादात्म्य साधा।

वह उठा।

आर्यावर्त का विराट जाग्रत हुआ।

और उसीके साथ कालयवन की मृत्यु भी जाग उठी।

यह मुचुकुंद आज फिर से सो गया है।

उसे कौनसा कृष्ण झकझोर कर जगायेगा?

कैलाशनाथ ओझा

बंगाल के वैष्णवों की रसेश्वरी कृष्णोपासना

◆

अन्तःसलिला नदियों की रसवन्ती भूमि बंगाल की मूल चेतना अपने प्रकृत स्वरूप में ही वैष्णवी और वल्लभी चेतना रही है। धरती की माटी के भीतर ही, रक्तमांस की काया में ही, श्रीभगवान और भगवती की अमृता प्रणय-माधुरी का साक्षात्कार, मानो बंगाल की आत्मा चिरकाल से करती आयी है। बंगाल के वैष्णवों और शक्ति-पूजकों ने समान रूप से भगवान के इस महाभाव स्वरूप की ही आराधना की है।

◆

जिन दिनों आर्य जाति अनार्यों से मिश्रित होती हुई क्रमशः पूर्व की ओर अग्रसर हो रहीं थी, बंगाल, असम, बर्मा एवं पूर्वी द्वीपसमूह में मंगोल जाति की 'मां-ख़मीर' शाखा का पदार्पण हो चुका था। बंगाल में 'मां-खमीर' जाति के पहले से ही 'मुंडा' जाति रहती थी, जिसका प्रसार कलिंग, छोटानागपुर एवं मध्यप्रांत तक था। इन जातियों के साथ ई. पू. २५० के लगभग पश्चिम से बढ़ती हुई आर्यानार्य मिश्र जाति का संगम हुआ। आर्य जाति अपने साथ जातीय संस्कृति के अटूट प्रवाह को लेती आयी और उस प्रवाह में परम्परागत वैष्णव भावना भी सम्मिलित थी। ऐसा इसीलिए कहा जा सकता है कि वासुदेव कृष्ण का पता 'छान्दोग्योपनिषद्', 'महाभारत', 'पञ्चरात्र' आदि ग्रंथों से चलता है और आर्यों की यह शाखा उससे अवश्य ही परिचित होगी।

बंगाल में आनेवाली आर्यों की शाखा ने यहाँ के आदिम निवासियों के भीतर शक्ति-पूजा की तांत्रिक पद्धति देखी। इसकी पुष्टि यहाँ के आदिवासियों एवं पहाड़ी जातियों के रीति-रिवाज के अध्ययन से होती है। आर्यों के लिए शाक्त भावना कोई नयी चीज नहीं थी। 'महाभारत' के पहले से ही दुर्गा-पूजन का कोई-न-कोई स्वरूप अवश्य ही था। आर्य्य एवं अनार्य

ातियों ने परस्पर सम्बद्ध होकर शक्ति ी, नवीन उपचारों से पूजा, बंगाल एवं सम से ही प्रारम्भ की। धीरे-धीरे अन्य ावनाओं के ऊपर शक्ति-पूजन का ाबल्य हो गया।

मत-मतान्तर :–इस प्रकार वैष्णव ावना के साथ-साथ प्रबल शाक्त भावना ा क्रमशः विकास होता रहा। इसी बीच ौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा। बौद्ध धर्म ने हाँ तन्त्र को व्रात्यों एवं शाक्तों से लिया, उपासना एवं प्रपत्ति को वैष्णवों से। स प्रकार तन्त्र एवं भक्ति से युक्त होकर हायान बौद्ध मत वज्रयान एवं तन्त्रयान में रिणत हो गया। शाक्तों एवं तन्त्रयानियों े मिलन से वाम-मार्ग पंच'म'कारों के साथ ोक अध्यात्म की पृष्ठभूमि पर अवतरित ुआ। इन विविध मत-मतान्तरों के साथ ाथ पंथियों के तत्त्वावधान में अभिनव ंव मत का प्रचार हुआ। 'गोपीचन्द' े गीत में प्रयुक्त होनेवाला 'कंदली वन' ा 'तिरिया राज'–पूर्वी बंगाल से लेकर णिपुर तक का ही क्षेत्र था। सह स्तित्व एवं संवर्द्धन के कारण यहाँ की ष्णवोपासना पर विविध मतों एवं ंयों के प्रभाव पड़ते गये। 'परकीया' ंवं 'राग रंजित उपासना' की मौलिक ाधि परिवेश से ही उपलब्ध हुई।

चित्र : दिनेश शाह

इस्लाम का प्रवेश :–ईस्वी सन् बारहवीं ताब्दी में बंगाल का सामन्त वर्ग शक्ति का उपासक था, जब कि सामान्य जन-वर्ग अपनी विशाल संख्या में विविध-मत-मतांतरों का अवलम्ब लिये खड़ा था। अन्त्यजों एवं शूद्रों की आस्था धीरे-धीरे सामन्तों की ओर से विमुख हो रही थी एवं वे किसी ऐसे मत की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिसके नेतृत्व में वे शोषण एवं प्रपीड़न का प्रतिशोध ले सकें। इसी भावना की अभिव्यक्ति 'शून्य पुराण' में हुई। जब उन्होंने यह सुना कि मन्दिरों के शिखरों को चूर्ण करनवाले पठानों का भारत में प्रवेश हुआ है, तो उनका मन-ही-मन स्वागत किया। जनता में यह प्रचलित हो गया कि हिन्दू देवताओं ने अरब में नाम बदल कर जन्म ग्रहण किया है, तथा वे विधर्मी हिन्दुओंको सजा देने के लिए भारत में प्रवेश कर रहे हैं। यही कारण है कि बंगाल को जीत लेने में पठानों को कठिनाई नहीं हुई तथा इस्लाम को क़बूल कराने के लिए जेहाद की ज़रूरत नहीं पड़ी। पीड़ित जाति ने स्वेच्छा से नये धर्म को अपनाया।

सूफी संत :—एक तरफ पठान-प्रभाव के अन्तर्गत नये मुसलमान लूट-पाट मचा रहे थे—दूसरी ओर सूफी संतों का प्रवेश भी हो रहा था। यहाँ यह संकेत भी कर देना आवश्यक है कि सूफी मत मध्य एशिया में प्रचलित महायान पंथ से प्रभावित था। सूफी मत की माधुर्य प्रधान उपासना की ओर जन-समूह आकृष्ट हुआ। हिन्दू नारियाँ पीरों की पूजा करने लगीं, सूफी संतों से तिलस्मी-ताबीजें लेने लगीं और इधर मुसलमानों ने भी हिन्दुओं के जातीय उत्सवों में भाग लेना शुरू किया। यह सूफियों के प्रभाव के कारण ही था कि उस काल में सारे भारत में हिन्दू-मुसलमान एकता की आवाज़ उठायी जाने लगी। समस्त सामाजिक बन्धनों को तोड़कर नये सिरे से समाज गढ़ने की प्रवृत्ति जगी। उस युग की उपासना के भीतर भी शास्त्रीय विधि-निषेध भंग करने की प्रवृत्ति देखी गयी और वैष्णवोपासना इससे वंचित न रह सकी।

चैतन्यावदान :—समाज की ऐसी ही भूमिका पर लीला पुरुषोत्तम की प्रेम एवं माधुर्य से अभिमंत्रित विभूतियों को लेकर अवतरित हुए। चैतन्य, लड़खड़ाती हुई निराश्रिता जातीय आस्था को एक दृढ़ स्तम्भ मिला। श्रीमद्भागवत् की गोपियों की जवानी गदरा गयी, 'वेणु-वादन' को नयी रागिनी मिली। गायें रांभ उठीं, वन-उपवन, सर-सरिता, जीव-जन्तु श्रीकृष्ण के माधुर्य से ओत-प्रोत हो उठे। तम्बूरे बज उठे, मादलों पर चाँटें पड़ने लगीं, घुंघरुओं को सम्भालकर बांधा गया, जयदेव, विद्यापति एवं चंडीदास के पदों ने नव परिवेश में नूतन रूप धारण किया। चिरन्तन भारतीय संस्कृति की माधुर्य-सम्पदा 'मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीर' में महारास रचाने लगी। इस जातीय महाभाव के जागरण से संस्कृति को नवजीवन मिला।

उपकरण एवं प्रारूप :—बंगाल के वैष्णवों की कृष्णोपासना के उपकरण एवं प्रारूप शिष्टकाव्य, सम-सामयिक उपासना एवं लोकजीवन से गृहीत हुए। शिष्टकाव्य में मुख्य प्रभाव 'पंचरात्र' एवं 'श्रीमद्भागवत' का पड़ा। सम-सामयिक उपासना-पद्धतियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है—उनके साथ ही दाक्षिणात्य की वैष्णवोपासना की भी छाप पड़ी। चैतन्य के आविर्भाव के पूर्व अद्वैत संन्यासी माधवेन्द्र पुरी ने श्रीकृष्णोपासना की शास्त्रीय भूमिका तैयार की थी। वे हर साल चन्दन की लकड़ी लाने के लिए राढ, महावलेश्वर एवं पुरी होते हुए दाक्षिणात्य की यात्रा करते थे। इनके द्वारा चैतन्य की माता एवं बड़े भाई की दीक्षा भी हुई थी। अतः दक्षिण के आलवार संतों एवं रामा-

ुजादि आचार्यों की कृतियों से चैतन्य के रिचित होने के बारे में जरा भी संदेह हीं रहता। साथ ही उन दिनों वृन्दावन ारे भारत के वैष्णवों का संगम-स्थल था। ल्लभाचार्य भी वृन्दावन पहुँचे थे एवं ूरदास ने उनसे दीक्षा ली थी। कहना होगा कि सूरदास चैतन्य के समकालीन े, तथा उन दिनों व्रज एवं बंगाल के ष्णवों में घनिष्ठ सम्बन्ध था।

वैष्णव काव्य की भाषा:–वैष्णव पदों में ादेशिक भाषा का सारे भारत में प्रयोग ुआ। इसका कारण यह है कि वैष्णव ांदोलन का सम्बंध शिष्ट जीवन की पेक्षा लोक-जीवन के साथ कहीं अधिक ा और आंचलिक भाषाओं के माध्यम े ही जनोद्बोधन सम्भव था। इस प्रकार ंगाल में भी वैष्णव पदों की रचना ंगला भाषा में ही हुई। पुनः यह भाषा िविध प्रभावों से वञ्चित नहीं रही। स पर मैथिल भाषा का प्रभाव विद्यापति माध्यम से पड़ा। जयदेव के अनुसरण संस्कृतनिष्ठ बंगला में पदों की चना हुई। चंडीदास के पदों में विशुद्ध थानीय प्रभाव पाया जाता है। इन सबों साथ सुदूर पश्चिम की भाषाओं का ी संगम हुआ। विविध क्षेत्रों में पर्यटन रनेवाले बंगाली वैष्णव अपने साथ एक कार की सधुक्कड़ी भाषा लाये, जिसे ंगाल, असम एवं उड़ीसा के क्षेत्रों में व्रजकुली कहते थे। इस व्रजकुली के भीतर व्रज एवं अवधी भाषाओं का प्राधान्य था।

बंगाल के वैष्णव कवि :–ईस्वी सन् पन्द्रहवीं शताब्दी में चैतन्य का आविर्भाव हुआ। उस समय से लेकर रवीन्द्र तक के काव्य में वैष्णवता का प्रभाव परिलक्षित होता है। चंडीदास के अतिरिक्त कानूराम दास, चाँद काजी, वंशीवदन, वासुदेव घोष एवं मुरारि गुप्त पन्द्रहवीं शताब्दी के मुख्य वैष्णव कवि हुए। सोलहवीं शताब्दी में वैष्णवोपासना का व्यापक प्रभाव पड़ा एवं शिक्षित वर्ग ने भी इस परम्परा के पोषण में योगदान दिया। नरोत्तम दास, वृन्दावनदास, श्रीनिवास आदि उल्लेख्य हैं। इनमें वृन्दावन दासने चैतन्य भागवत की रचना की। सत्रहवीं शताब्दी में मुसलमान वैष्णव आलाओल उल्लेख्य हैं। इन्होंने जायसी के पद्मावत का बंगला अनुवाद किया तथा इनके वैष्णव पदों पर सूफी मत का स्पष्ट प्रभाव देखा गया। अट्ठारहवीं शदी में उद्धवदास, जगदानन्द, यादवेन्द्र आदि मुख्य वैष्णव कवि हुए।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण के लिए साधना प्रारम्भ हुई। भारत का सम्बन्ध पश्चिम से हुआ एवं सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना का अवतरण हुआ। बंगाल में इस युग में भी वैष्णवता को ही संशोधित रूप में खड़ा किया गया। ब्रह्मसमाज की स्थापना के

मूल में वैष्णव भावना थी। रामकृष्ण परमहंस की उपासना में शक्ति की मूर्ति तो सजीव हुई, किंतु प्रधानता रही माधुर्य भाव की ही। माइकेल मधुसूदन ने हिन्दू संस्कृति का विरोध करना तो अवश्य चाहा, किंतु 'मेघनाद वध' के पूर्व, काव्य की सरस भूमिका प्रस्तुत करने के लिए, 'ब्रजांगना काव्य' की रचना की। रवीन्द्र ने समस्त भारतीय संस्कृति को वैष्णवोपासक की दृष्टि से देखा। विश्व-मानव की भूमिका पर वैष्णव भावना का अवतरण रवीन्द्र द्वारा ही हुआ :—

"एइ प्रेम गीतिहार
गाँथा हय नर-नारी मिलन मेलाय।"

रसेश्वरी उपासना :—बंगाल के वैष्णवों की उपासना में माधुर्य भाव का प्राधान्य है। उपासना-रीति के स्थूल रूप के पर्यवेक्षण से बुद्धिवादियों को काम-वासना का भ्रम होता है। किंतु स्थूल रूप के अन्तर्गत उपासना की वृत्ति का अभाव रहता है। उपासना हृदय की ह्लादिनी शक्ति से युक्त वृत्ति विशेष है। जब इसका विकास होता है, तो स्थूल रूप अपने मायिक स्वरूप को छोड़कर भावरूप ग्रहण कर लेता है। बुद्धि का पट बन्द हो जाता है, समस्त विधि-निषेध की मर्यादा से सम्बन्ध टूट जाता है। अन्तःकरण के भाव-राज्य में दिव्य रस का क्षरण लेने लगता है।

"आमार वाहिर दुयारे कपाट लेगे छे
भीतर दुयार खोला।" (चंडीदास)

ऐसी ही स्थिति में 'परपति सने शयने स्वपने सतत करिबि लेहा' का अधिकार भी साधक को मिलता है।

साधक जब अपने भाव को समष्टि में सम्प्रेषित करता है, तब महाभाव की उपलब्धि होती है—समस्त जड़—चेतन इस महाभाव से अभिभूत हो उठते हैं। इस महाभाव को राधा भाव भी कहते हैं एवं राधाभाव की उपासना ही रसेश्वरी उपासना है। रस-सम्पत्ति से अलंकृत भावदेह प्रिय-विरह में छटपट करने लगती है :—

"जतबे साजालूँ फूलेर सेज—
गंधे मोह-मोह करे।
अंग छटपटि सहबे न जाय—
दारुण विरह-ज्वरे॥"

(अनन्तदास)

राधा-भाव :—उपासक अपने मायिक स्वरूप को भूल कर राधा भाव में स्थित हो जाता है। स्थूल जगत का रूप दिव्य भाव-भूमि पर अमृत-सिंचित होकर उतरता है। उपास्य मनमोहन उस रूप का वर्णन सुनता है :—

"केश पाशे शोभे तार सुरंग सिन्दूर।
सजल जलदे जेन्ह उइल नव सूर॥"

(चंडीदास)

(नायिका राधा के काले केश में सुरंजित सिन्दूर की शोभा सजल जलद में उदित प्रभात-सूर्य की तरह है।)

मनमोहन रूप-वर्णन सुनकर आकुल हो जाता है—सारा शरीर थर-थर काँपने लगता है, चित्त भ्रमित हो जाता है। उसके बाद राधा के रूप का दर्शन होता है। कन्हैया का उन्माद और भी बढ़ जाता है। उपास्य को अपने प्रति इस प्रकार आकृष्ट कर—आश्वस्त होकर कि अब प्रेम-बन्धन नहीं टूटने का राधा-भाव में स्थित साधक संसार के विधि-निषेध, सामाजिक मर्यादा, भेद-भाव, जात-पाँत, लाज-भय आदि को छोड़कर अभिसार-पथ पर अग्रसर होता है।

घनघोर वर्षा हो रही है, रह-रह कर वज्रपात होता है, दसों दिशाओं को दामिनी भस्म कर देना चाहती है, पथ पर आँखें नहीं ठहरतीं,—किंतु प्रियतम-मिलन की उत्कंठा बरबस खिंचे लिये जा रही है :—

घन-घन झन-झन वजर निपात
शुनइत श्रवण मरम जरिजात।
दश दिश दामिनी दहन वियार
हेरइत लोचन उचकई तार।
(गोविन्ददास)

शरद की चाँदनी छिटक रही है—रसेश्वर ने मुरली-धुनि पर प्यारी को पुकारा है। समस्त लोक-लाज को छोड़कर हरि-अभिसार-पथ पर अग्रसर होना ही पड़ता है :—

"चान्द निरजनि उजोरलि गोरि
हरि—अभिसार रअस रमें भोरि।"
(गोविन्ददास)

भाव-राज्य में रसिक माधव वसन्तोत्सव मना रहा है। लाल गुलाल की वर्षा हो रही है। पिचकारियाँ वसुधा को अरुणामृत में बोर रही हैं। रसिक नागर रसेश्वरी राधा के पास आता है, उसे राग के अम्बर में ढँक कर केलि करता है :—

"नयने नयने वयने वयने
हृदये हृदये मेलि।
दुहु कलेवर अरुण अम्बर
झाँपिया कैल केलि॥" (उद्धव)

इस महा-मिलन में राधा-कृष्ण एक रूप हो जाते हैं—उपास्य—उपासक भेदाभेद से मुक्त होकर सायुज्यता की उपलब्धि करते हैं। समस्त संसृति पुष्पाभरण से अलंकृत हो उठती है :—

"फूलमय दोलने फूलमय तनु
फूल अभरन करे फूल घनु।
फूल नय क्षिति तल फूलमय कुञ्ज
फूलमय सखी बरिखते फूलपुंज।
(यदुनन्दनदास)

और समस्त संसृति को पुष्पमयी देखना 'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः' के वैदिक संस्कार से देश-काल के माधुर्य का साक्षात्कार ही तो है!

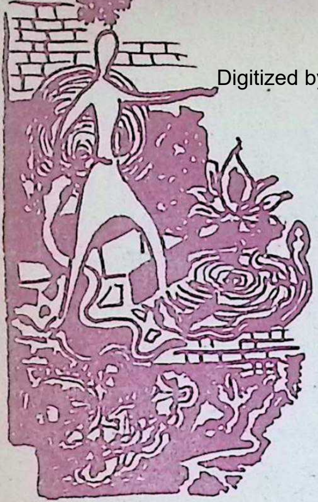

डा. शिवप्रसाद सिंह

●

आदिम मन की गुहा, और आस्था की बाँसुरी

[१]

बार बार मन की गुहा में
अंध तम की वल्लरी पर
तृषाकुल सर्प-गेंडुर में
घिरता रहा ज्योति-फूल।
बार बार
काले अशनिपाती मेघों ने
करका की बेड़ी में धरती को बाँधा सदा
बिजली की चाबुक से देह-वल्लि लोहू-लुहान बनी।
बार बार
आहत स्वर पंछी के गूंजा किये
जलते हुए वन की तड़पती शिराओं में।
चट चट कर जलते करील-कुंज
फटते भटवांस-गुल्म
धू धू कर उठता अंदोर वन
लटें लटका कर
वृक्ष मौन हुए जाते जब।
टूटे रथ-चक्र
अग्नि बाणों से फूटे सभी तन के कवच-त्राण
किस पर प्रहार करें
किस का प्रहार सहें
सोच सोच हुआ किये दिग्भ्रमित मूढ़ प्राण
चारों ओर उर्मिल रक्त दरिया लहरता था
कर्दम के अजगर लील लेते थे तुरंग-अंग
जाने तभी नाग-फण कैसे झुक जाते थे
ज्योति-फूल चन्द्रस्नात खूब खिलखिलाते थे
भरता था आस्था-अमिय मणि पूर में
मन की अबोध कली
आईने में लाज भरी

हाथों से बीन बीन बिखरे मयूर-पंख
केशों में गूंथ उन्हें खूब खिलखिलाती थी
अग्नि के समूह में, बाण-प्रत्यूह में,
नाग-फण व्यूह में बांसुरी बजाती थी।

[२]

आह मेरी भी प्रिया तो
उस राधा के जैसी ही भोली शुचिस्मिता थी
तादृश कजरारी अनियारी थी आँखें वे
वर्षा से भींगी मासूम किसी तितली सी गीली सदा
उड़ने के अछोर रंग-रेणु में रँगाई हुई
उसके भी हाथ में थी नीले व्योम-रंध्रों को
स्वर से मदहोश करे वैसी वह बाँसुरी
किंतु हर फूंक वह वंशी झुठाती थी
व्यंग्य विद्रूप हास उठते थे गलियों में
मंत्रों से विद्ध स्वर गले में अटकते थे
घिग्घी बंध जाती थी।

सोचता था मेरा मन काँप काँप बार बार
कहाँ से जगाऊँ वह जोगिया अलाप हाय
पाथर के होंठों से फूटे स्रोतस्विनी
पीड़ा के समुद्र को जो बाँस में उलीच दे
लाऊँ कहाँ से उन हाथों का मधु-स्पर्श
सूखे से काठ में जो प्राण भरे
कालिय विष-निर्झर की धारा को मीच दे।

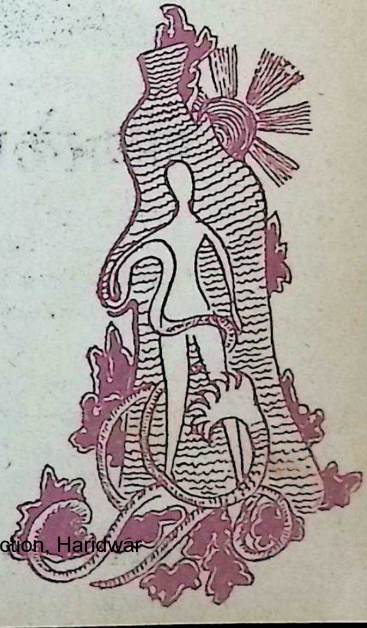

[३]

सारा विश्व क़ैद है कंसों की कारा में
और उन तालों की कुंजी जो सींकचों में बन्द हैं

जहाँ केवल सर्वोत्तम ही स्वीकार है...

परिवार के लिए माँ की पसंद डालडा

'पिता पर पूत...' स्वस्थ, मनचला, हंसमुख! माँ के लालन पालन और शुद्ध स्वादिष्ट भोजन के कारण, जिसकी डालडा जैसी सर्वोत्तम सामग्री माँ खुद अपने हाथों चुनती है।

शुद्ध वनस्पति तेलों से बना हुआ डालडा केवल मुहरबंद डिब्बों में मिलता है ताकि इसकी शुद्धता और ताज़गी सुरक्षित रहे। डालडा में विटामिन हैं जो बढ़ते हुए बच्चों के लिए आवश्यक हैं। शुद्ध स्वादिष्ट भोजन के लिए आज ही लाइये...

डालडा वनस्पति एक विशेष, शुद्ध चिकनाई

DL, 81-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

किसी विषकुंड में सोये सहसफनी नागों के मुंह में
दाढ़ों के नीचे मणि-संजूषा में धरी है
इसी अंधकारा में जन्मते हैं शिशु सभी
शाप ग्रस्त जननी के थनों से छुड़ाकर
कहीं और पलने को बेबस धरे जाते हैं
मांस-व्यवसायी, अनाथगृह-स्वामिनें
आशालताओं को पालनें झुलाती हैं
काली वीरान रोग-कीटों से भरी हुई,
सड़कों पर
रेनु तन मंडित शिशु घुटने घिसाते हैं
गटरों के पास विषमक्खियाँ, युवति जन
नाना भंगिमाओं से चित्त को विचित्त कर
नये नये रास के अभिनय सिखाती हैं
चारों ओर कालिय, अघासुर बकासुर इन्हें
अपने चंचु कोटर में लीलने को आते हैं
गलित कुष्ट, भिक्षावृत्ति, मत्सर विवर्णता
गाली-गलौज, श्वान जीवन, उच्छिष्ट वृत्ति
हाथ में पखावज लें, ग्वाल बाल सखा संग
अद्भुत समूह आत्महत्या का मादल बजाते हैं
अब भी हमारी अंध श्रद्धा किंतु जीवित है
कि प्रतिवर्ष
उस पूर्णकाम युग शिशु की स्मृति में
हम बड़ी भक्ति से अष्टमी मनाते हैं।

ऋषिमुनि सिंह

महाभारत का महासारथी

. . . .जब अर्जुन का भ्रम दूर करने के लिए केशव वभ्रुवाहन के शिर के निकट खड़े होकर पूछ रहे थे कि 'बताओ बभ्रुवाहन, महाभारत का युद्ध कैसा देखा तुमने?' उत्तर दिया बभ्रुवाहन ने, 'युद्ध हुआ हो तब तो बतलाऊँ। मैंने तो देखा कि एक विकट आकृति का पुरुष सबको काटता जा रहा है, और द्रौपदी केश खोले, खप्पर लेकर सारा रुधिर पीती जा रही है!' . . . वह महान पुरुष केवल अर्जुन का सारथी ही नहीं, सम्पूर्ण महाभारत का महान सारथी था, जिसने सम्पूर्ण युद्ध का योग्य नियंत्रण कर उसका परिणाम, धर्म के संरक्षण और दुष्टों के विनाश के पक्ष में निकाला।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं ममदेव देव॥

श्रीमद्भागवद्गीता का यह श्लोक इस वात का साक्षी है कि अर्जुन ने केवल अपने रथ की ही वागडोर श्रीकृष्ण जी के हाथों नहीं थमायी थी, वल्कि अपना सर्वस्व उनके सामने न्योछावर कर दिया था। केवल इतना ही नहीं, सम्पूर्ण पाण्डवों के जीवन की वागडोर श्रीकृष्ण के हाथों में थी। महर्षि व्यासदेव का यह कथन कि,

"यत्र योगेश्वरः कृष्ण यत्र पर्थः धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयोर्भूति ध्रुवनीति मतिर्मम॥"

काफी गुरुता रखता है। सम्पूर्ण पाण्डव पक्ष से भगवान श्रीकृष्ण को यदि थोड़ी देर के लिए पृथक कर परिणाम के सम्बन्ध में सोचा जाय, तो पाण्डवों का भविष्य और उसके साथ ही सम्पूर्ण राष्ट्र का भविष्य क्या होता, इसकी कल्पना स्पष्ट हो जाती है। "दुष्टों का विनाश तथा धर्म संस्थापन का दैवी कार्य, स्वप्न बनकर रह जाता। एक बार सम्पूर्ण महाभारत पर इस दृष्टि से विचार

किया जाय कि श्रीकृष्ण ने किस-किस के जीवन-रथ की बागडोर संभाली, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि केवल अर्जुन ही नहीं, अपितु दोनों ही पक्ष के कई ऐसे व्यक्ति दिखायी देंगे, जिनके जीवन की बागडोर श्रीकृष्ण को सँभालनी पड़ी थी, भले ही कुछ ही क्षणों के लिए क्यों न हो। बहुत ही स्पष्ट यदि कहना हो, तो यह कहने में कोई हिचक नहीं कि, श्रीकृष्ण ने अपनी कुशलता से महाभारत युद्ध का परिणाम धर्म के ही पक्ष में जाय, इस दृष्टि से अपनी सम्पूर्ण शक्ति का योग्य उपयोग यथा समय किया था।

इंद्रप्रस्थ की द्यूत सभा के विवरण से यह स्पष्ट हो गया था कि राष्ट्र के मनीषी चाहे, "अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुं, उभयोः द्रोण सामर्थ्यः शापादपि शरादपि" के विरदधारी आचार्य द्रोण हों, शत्रुओं को कँपानेवाले तथा अमरत्व को प्राप्त अश्वत्थामा हों, महान आचार्य कृपा हों, या परशुराम को पराभूत करनेवाले दादा भीष्म हों; भगवान परशुराम के यशस्वी शिष्य तथा दानवीर कर्ण ही क्यों न हों, कोई भी किसी न किसी कारण से ही क्यों न हों, सामान्य परिस्थिति की तो कोई चर्चा ही करना निरर्थक है, चीरहरण के प्रसंग पर भी दुर्योधन को रोकने का सामर्थ्य नहीं रखते। केवल इतना ही नहीं उन्होंने "पुरुषोहि अर्थस्य दासः" इस

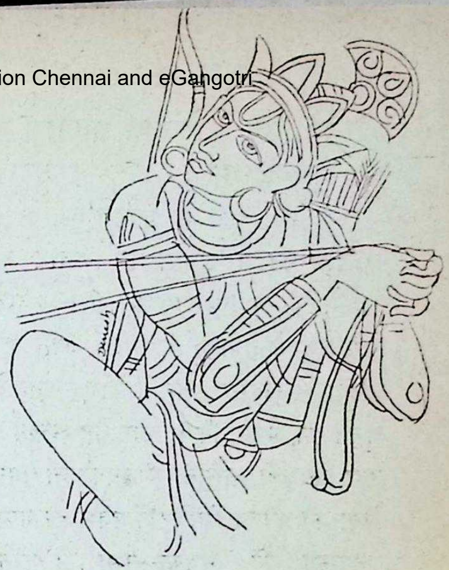

चित्र : दिनेश शाह

युक्ति के सहारे अपने बचाव का रास्ता भी ढूंढ़ने का प्रयत्न किया है, और "धर्म की गति गूढ़ है" यह कहते हुए, "इसका योग्य निर्णय करने में धर्मराज ही समर्थ हैं," ऐसा कहकर धर्मराज के सामने एक विचित्र धर्मसंकट की स्थिति भी पैदा कर दी है।

राष्ट्र में व्याप्त अव्यवस्था और धर्म के गूढ़ रहस्यों तथा मानव जीवन के लक्ष्य को सही अर्थ में समझने पर परिस्थिति की विकटता का प्रतिरोध करने के स्थान पर उसके समक्ष नत-मस्तक होकर बैठ जानेवाले आत्मवंचक जननायकों की विचित्र स्थिति ने धर्मसंस्थापन का उद्देश्य लेकर चलनेवाले श्रीकृष्ण को ललकार दिया। वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि समस्या समझ से परे की स्थिति को

प्राप्त हो चुकी है, इसलिए समझौता की वात व्यर्थ ही जायगी। फिर भी जागरूक और दूरदर्शी होने के कारण युद्ध के पूर्व समझौते की सम्भावना पर विचार कर उन्होंने कौरव तथा पाण्डव पक्ष के युद्ध-निमन्त्रण लानेवालों के समक्ष अपने तथा अपनी नारायणी सेना में से एक-एक को चुनने का आग्रह किया और यह अच्छा ही रहा कि बड़ी आसानी से उनकी नारायणी सेना का कौरव शिविर में प्रवेश हो गया। इन्द्रप्रस्थ की मंत्रणा–सभा में उनके कूटनीतिपूर्ण भाषण ने जब कौरव पक्ष के समस्त वीरों को उनका नैतिक पक्ष कमज़ोर हैं, यह अनुभव कराते हुए, यह भी स्पष्ट कर दिया कि अत्याचार अनाचार की जड़ कौरव पक्ष है, और उसीके पक्ष को लेकर सभी पथभ्रष्ट हो रहे हैं, तब दुर्योधन आपा खो बैठा और कूटनीतिक मर्यादा तथा सभा, की परम्परा की दृष्टि से तो वह सर्वथा नग्न ही हो गया। इतना ही नहीं, उसने तो अपने अन्तरंग साथियों को लेकर जब इससे भी निन्दनीय कदम बढ़ाने, अर्थात् उन्हें क़ैद करने चला तो उसे यह देखकर काठ मार गया कि श्रीकृष्ण की नारायणी सेना का सेनापति कृतवर्मा प्रतिरोध करने की पूरी तैयारी में है। अपने को राजनीति का पण्डित समझने वाला बड़ी बुरी मात खा गया, क्योंकि श्रीकृष्ण सभा से उठते हुए उसकी निन्द्य योजना का रहस्योद्घाटन करना नहीं भूले थे। साथ ही उसने यह भी देखा कि उसका परममित्र कर्ण श्रीकृष्ण से हाथ मिलाये सभामण्डप से वाहर जा रहा है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण के जन्म का रहस्य समझाते हुए उसको यह समझाने का प्रयत्न किया, कि वही वास्तव में सम्पूर्ण कौरव वंश में बड़ा लड़का है, सबसे अधिक सभी दृष्टियों से योग्य भी है और यदि उसने अपने जीवन की बागडोर दैवी संस्कृति के उद्धारक श्री कृष्ण के हाथों में दी, तो उसके जैसे उपेक्षित से व्यक्ति को भारत सम्राट् वनने का सौभाग्य प्राप्त होगा, तथा धर्म की संस्थापना तथा राष्ट्र की सुव्यवस्था का कार्य एक योग्य हाथों में जायगा, और कौरव पक्ष का आधार होने के कारण उसके सत्पथ पर आजाने के कारण दुर्योधनादि शिर उठाने का साहस ही नहीं कर सकेंगे, तथा व्यर्थ की खून खराबी से राष्ट्र भी बच जायगा। पर वर्षों से कुसंगति में पड़ा रहने के कारण उसकी जीवन-दृष्टि ही विपथगामिनी बन चुकी थी और उपकार का बदला चुकाने तथा कृतज्ञता ज्ञापन करने जैसी व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठा के महत्व की बातों का महत्व ही उसे राष्ट्र, समाज तथा धर्म सम्बन्धी बातों से श्रेष्ठ लगा। यही कारण था कि अभिशापित होते हुए भी विलक्षण शक्तियों से युक्त यह व्यक्ति श्रीकृष्ण के

लिए महाभारत के युद्ध में विशेष ध्यान देने योग्य बन गया। उन्होंने उसे ही स्पष्ट रूप से रण-निमन्त्रण भी दिया, मानों सम्पूर्ण महाभारत का युद्ध इनके और उसके ही बीच होनेवाला हो। यह भी स्पष्ट है कि उस एक वीर को मारने में ही श्रीकृष्ण को काफी परेशानी और विशेष युक्ति भिड़ानी पड़ी, यह सर्वविदित है। फिर भी उसके प्रति उनके कैसे भाव थे, यह कर्ण के अंतिम क्षणों में स्पष्ट हो गया, जब श्रीकृष्ण की भावुकता रोकने पर भी नहीं रुक सकी।

वयोवृद्ध भीष्म अपनी आयु की सान्ध्य-वेला में सारी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे थे, साथ ही एक भीषण प्रतिज्ञा भी कर बैठे थे। भीषण संघर्ष के पश्चात् भी उनको ऐसा लगने लगा कि उनकी प्रतिज्ञा असफल न हो जाय और सम्भव था कि श्रीकृष्ण कोई युक्ति लड़ाते, अथवा भीषण हानि उठा कर भी अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा कर लेने पर देखा यह गया कि एक टूटे हुए रथ का चक्का, चक्र भी भाँति घुमाते हुए श्रीकृष्ण विद्युत गति से भीष्म की ओर दौड़ पड़े हैं, मानों वे प्रतिज्ञा को भूल सा गये हैं। युद्ध में रत अन्य लोग भले श्रीकृष्ण के दौड़ने का महत्व न समझे हों, पर दादा भीष्म युद्ध बन्द कर आँखों में कृतज्ञता के आँसू लिए केशव का आह्वान करते हुए बोल उठे, "केशव आइये मुझे मार डालिये, अब मुझे कोई कामना नहीं। अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर दूसरे की प्रतिज्ञा की रक्षा करने का कार्य और दूसरा कौन कर सकता है। केशव! आप धन्य हैं! धन्य हैं!" उस ज्ञानवृद्ध तथा अनुभव वृद्ध की वाणी यह सिद्ध करती है कि उसके जीवन की भी बागडोर उनके ही हाथों में थी।

अर्जुन के और उनके सम्बन्ध तो इतने स्पष्ट हैं कि चर्चा की आवश्यकता ही नहीं। यदि श्रीकृष्ण नहीं होते, तो अर्जुन युद्ध के मैदान से कायर का विशेषण मात्र पाकर लौट आता, वह तो तब बढ़ सका जब श्रीकृष्ण ने, "अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षभिष्यामि मा शुच" कहते हुए, अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराया और सब प्रकार से सभी बातों की जिम्मेदारी अपनी ओर ले लिया। उसमें स्वयं की कितनी शक्ति थी, यह तो तभी पता चल गया, जब श्रीकृष्ण के परमधाम गमन के बाद गाण्डीव तक उससे खींचा नहीं जा सका।

युद्धिष्ठिर कभी का कमण्डलु उठाकर जंगल की राह ले लिये होते, यदि श्रीकृष्ण नहीं होते। द्रौपदी तो नग्न ही हो गयी होती, यदि श्रीकृष्ण एक पल मात्र की भी देर करते। उसके तो एक मात्र सहारा श्रीकृष्ण ही बने। उस घटना का हम स्मरण करें, जब संधि के लिए बढ़ते समय कृष्णा अपने केश खोले रास्ता रोक कर श्रीकृष्ण से

वोल उठी, "केशव, सन्धि कराने जा रहे तो जाओ, पर याद रखना, पति अपने पत्नी का अपमान भूल सकता है, पर पुत्र अपनी माता का अपमान नहीं भूल सकता। हमारे पाँचों बच्चे, भाई तथा पिता और स्वयं मैं कौरवों को ललकार कर अपने अपमान का बदला लूँगी।" कितना विचलित हो उठे थे, केशव उस समय कि सारी कूटनीतिक परम्परा ही भूल गये। उनके हृदय के संयम का वाँध तोड़कर मानो उनके उद्‌गार फूट पड़े, "कृष्णा! वैसा समय आने ही वाला नहीं है, पर यदि वैसा समय आ ही गया, तो तुम्हारे पाँच बच्चों, भाई और पिता की बगल में तुम्हारा यह भाई भी आ खड़ा होगा और उस समय निहत्था नहीं रहेगा।"

महाभारत में वर्णित वह प्रसंग, जव अर्जुन का भ्रम दूर करने के लिए केशव बभ्रुवाहन के शिर के निकट खड़े होकर पूछ रहे थे कि बताओ बभ्रुवाहन महाभारत का युद्ध कैसा देखा तुमने, और जव उसने यह कहा कि "युद्ध हुआ हो तव तो वतलाऊँ। मैंने तो देखा कि एक विकट आकृति का पुरुष सब को काटता जा रहा है और द्रौपदी केश खोले खप्पर लेकर सारा रुधिर पीती जा रही है।" ऐसा वर्णन किया तो, यह विवरण ही स्पष्टकर रहा है कि वह महान पुरुष केवल अर्जुन का सारथी नहीं, सम्पूर्ण महाभारत का महान सारथी था, जिसने सम्पूर्ण युद्ध का योग्य नियन्त्रण कर उसका परिणाम धर्म के संरक्षण और दुष्टों के विनाश के पक्ष में निकाला।

*

परिवार
सद्वैद्यशाला
जिंजीप
अपचन दूर करते
आयुर्वेदिक फॅक्टरी
ज्वरेंग
तापांतर
नांजनगुड.
आठमनटाईन
टॉनिक
सहायक

प्रत्येक शहर के लिए
हम एकही व्यापारी
को अपना स्टाकिस्ट
नियुक्त करते हैं।

नांजनगुड
टुथपावडर

सोल एजेन्ट्स:
दी युनायटेड कन्सर्न
५४, बन्दर स्ट्रीट,
मद्रास–१.

शाखा–ज्योति स्टोर्स, किंग सर्कल, माटुंगा, बम्बई १९

सूर्यभानु गुप्त

कंस की मौत का दस्तावेज़

[प्राकृतिक भावनाओं के चित्रण में पारंगत, वान गॉग के प्रसिद्ध चित्र 'ओलिव ऑरचर्ड' से प्रभावित होकर]

सितारों की सहमी हुई चीख़ें,
हवा की बेमतलब भाग-दौड़
किसी बनिये की तरह
रंगों के भाव बदलता हुआ आसमान;
जैसे पागल लपटों में घिरा कोई अनाथाश्रम हो।
जिसके भीतर ठण्डे आँसुओं का
एक खौलता हुआ जहन्नुम
रह-रह कर किसी बँधी-बँधायी धुन पर
उगल रहा हो
पिछली हुई आग की चाशनी में डुबोई हुई
धुएँ की भीमाकार जलेबियाँ।
और किसी अण्डे की तरह उबलती हुई यह धरती,
गोया कोई गर्भवती हो
जिसकी दबी-दबी कराहें
ज़ंजीरों में जकड़े हुए वर्तमान की उत्सुकता में
डाल रही हैं घी।
और यह औरत कोई और नहीं
देवकी है।
बाहर प्रेतों की तरह पहरा देते हुए
लम्बे-लम्बे पेड़
ऊँघते रह जायेंगे
और कंस की मौत का दस्तावेज़
किन्हीं दो अजाने हाथों द्वारा
आज रातों-रात
लिख दिया जायेगा
भविष्य के नाम।

शत्रुघ्न दुबे

श्रीयुगल की सनातन लीला-भूमि : वृन्दावन

आँखोंवाले को कुछ भी असूझ नहीं, हृदयवाले को कुछ भी अबूझ नहीं। श्री रूपगोस्वामी ने तो यहाँ तक लिखा है कि यदि कोई श्रीकृष्ण का प्रेम-पात्र उत्कण्ठार्त्त होकर उनकी लीला का अवलोकन करना चाहे, तो परम प्रेमिक प्रभु आज भी उसे वृन्दावन में अपनी लीला दिखाकर कृतार्थ करते हैं। प्रेम-विभोर रसिकोत्तमों को अब भी वृन्दावन में क्रीड़ा करते हुए श्रीयुगल के दर्शन होते हैं।

अत्याचारी शासक प्रजा के संभावित विद्रोह के प्रति सर्वदा सशंक रहते हैं, फिर राजधानी मथुरा से कुल तीन मील दूर गोकुल में जब जन-स्वास्थ्य के प्राण दूध-दही-मक्खन के व्यवसायी अपने आप में सुसंगठित और देह-समृद्धि से युक्त उन्मुक्त स्वभाव के आभीर रहते हों, तिस पर अपने पिता के उत्तराधिकारियों में से एक, (पिता उग्रसेन पुत्र कंस की दुष्ट प्रवृत्ति के कारण उसे अपने उत्तराधिकार के सर्वथा अयोग्य समझते थे, फलतः दुर्दान्त दैत्यों के सहारे कंस ने उन्हें कारागार में डालकर राज्य शासन पर बलात् अधिकार कर लिया था) अपनी उस बहिन के भुवन मोहन चमत्कारी पुत्र कि जो उसके अत्याचारों से पीड़ित उसके कारागार में पड़ी थी, को एक तूफानी रात में संदिग्ध स्थिति में गुपचुप उन लोगों के बीच पहुँचाया जाना कंस के भयभीत होने का स्वाभाविक कारण बना, यों आभीरों अहीरों अथवा गोप-ग्वालों पर उसके अत्याचार बढ़ने लगे, जिनसे बचने के लिए उन्होंने अपना स्थान छोड़ वृन्दावन जाने का निश्चय किया।

अतएव यह कंस के दैत्यों के लिए दुर्गम, किंतु गोप-ग्वालों की आत्मरक्षा हेतु

चित्र : दिनेश शाह

सुगम सिद्ध हुआ। पश्चात् जब श्रीकृष्ण ने इन झोंपड़ियों में रहने वाले दीन-हीन गोप-ग्वालों को संगठित करके कंस के निरंकुश-शासन के विरुद्ध प्रथम जन-विद्रोह का झंडा उठाया तो वृन्दावन की पर्वत-कंदराओं ने किले की सुरक्षा उपलब्ध करायी और उसकी सघन तरु-पंक्तियों ने दुर्ग की दुर्गम प्राचीरों के समान काम दिया, सम्भवतः इसी कारण विश्व का सर्वप्रथम छापामार अथवा गुरिल्ला युद्ध श्रीकृष्ण ने यहाँ सफलतापूर्वक सञ्चालित करके कंस को हीन शक्ति कर दिया।

इस भूभाग का वृन्दावन नाम यदि इसलिए पड़ा कि यहाँ वृन्दा (तुलसी) के पौधे बहुतायत से पाये जाते थे, तो गँवार कहे जाने वाले गोप-ग्वालों की आयुर्वेदिक-बुद्धि की सराहना करनी पड़ेगी, क्योंकि तुलसी का पौधा वातावरण को शुद्ध रखनेवाला अनेक रोगनाशक एवं स्वास्थ्यवर्द्धक माना गया है। अथवा वृन्दाबन नाम इसलिए पड़ा कि राजा केदार की पुत्री वृन्दा ने इस स्थान पर तप किया था।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार केदार राजा की उक्त पुत्री का विवाह जलंधर के साथ हुआ। किंतु हरिवंश, मत्स्य, विष्णु, भागवतादि प्राचीन पुराणों में इस कथा का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

वृन्दा या वेंदा नामक यक्षी का उल्लेख भी प्राचीन ग्रंथों में मिलता है, उसके नाम से भी वृन्दावन को संबंधित माना जाता है। बौद्ध ग्रंथों में मथुरा की अन्य यक्षियों—अलका, मधा और तिमिसिका के साथ उक्त नाम आता है। इन यक्षियों को अत्यंत शक्तिमती बताया गया है। यह भी कहा जाता है कि

वृन्दावन नाम यहाँ वृन्दादेवी के शक्तिपीठ होने के कारण पड़ा। अकबर के समय में राजा मानसिंह ने जब इस भूमि पर हिन्दू और मुगल स्थापत्य वास्तुकला के मिश्रित आधार पर गोविन्द देव मंदिर बनवाया, तो उन्हें उसके पार्श्व में ही वृन्दादेवी का मंदिर भी बनवाना पड़ा था।

निस्संदेह एक समय ऐसा भी आया, जब कि वेद-विरोधी स्वरों के बीहड़ में भारतीय चिंता-धारा भटकने लगी, यक्ष-यक्षी पूजा, तंत्र-मंत्र-जंत्र मुद्रा, जादू टोना, अंध-विश्वासों का ज़ोर बढ़ गया, लिंगायत, कापालिक, वज्रयानी, वाममार्गी इत्यादि की वीभत्स साधना पद्धति में भ्रष्टाचार मद्यपान—स्त्रियों के साथ विहार, नरबलि इत्यादि से मोक्षप्राप्त की कल्पना के कारण सामाजिक असुरक्षा बढ़ गयी, किसी की युवती पत्नी, बहन आदि का सतीत्व कौमार्य कब लुट जाय, किसी का भाई, पिता अथवा पुत्र कब लोप कर दिये जायें, कुछ निश्चित न था। यक्षियों अथवा देवियों के भयंकर स्वरूप की कल्पना, उनके अनेक हाथों में अस्त्रशस्त्रायुध रक्तखप्पर, शव पर उनकी सवारी, जिनकी पूजा पद्धति में विघ्न से महामारी आदि आपत्तियों के अनिष्ट की संभावना, यों किसी में विरोध करने का साहस ही न था। ऐसे समय में भक्ति-आंदोलन समाज में प्राण-सञ्चारक सिद्ध हुआ। कृष्णभक्ति-धारा के वैष्णवाचार्यों ने उक्त अनार्य साधना पद्धति... आसुरी प्रवृत्ति के 'सब्लिमेशन' (शोधन) के लिए 'राधा' अनन्त सौन्दर्य की देवी, भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति, रास की प्रमुख सञ्चालिका की पुनःप्रतिष्ठा की। रास... संगीत-नृत्य-नाट्य की त्रिवेणी, 'रस एवं रासः' रस ही रास और 'रसो वै सहः' श्रुतियों में भगवान को ही रस-स्वरूप कहा गया है, किंतु रसों में श्रृंगार रसराज-सर्वश्रेष्ठ "श्रृंगार नायक रसः", श्रृंगार रस का वर्ण श्याम, श्रीकृष्ण का वर्ण भी श्याम, अतः श्रीकृष्ण श्रृंगार रस के देवता, रास के नायक यों रास श्रृंगाररसप्रधान और जहाँ यह रास होता हो वही वृन्दावन।

ग्यारहवीं शती में बिल्हण ने भी रासक्षेत्र को ही कृन्दावन माना है, क्योंकि उसका संकेत राधिका और श्रीकृष्ण की श्रृंगारिक चेष्टाओं की ओर ही है।

गौड़ीय वैष्णवाचार्यों द्वारा राधा की एक सख़ी वृन्दा का नाम प्रस्तुत किये जाने से "रासक्षेत्र ही वृन्दावन" जहाँ इस तर्क को बल मिलता है, वहाँ यदि किसी वृन्दादेवी की उपासना वृन्दावन में होती थी, तो राधा से हीन स्तर पर उनकी सखियों में उसे स्थान दे देने से वाममार्गीय प्रवृत्ति के सब्लिमेशन (Sublimation) वाली बात की पुष्टि होती है।

राधा के सोलह नामों में से एक

वृन्दा श्रुति प्रसिद्ध था, श्रीराधा का रम्य क्रीड़ाबन होने से इसका नाम वृन्दावन पड़ा। किंतु गोप-ग्वालों के गोकुल छोड़ने के समय राधिका क्रीड़ा योग्य थीं ही नहीं, उस समय ही इसका नाम वृन्दावन था, अतः राधा का एक नाम वृन्दा था और उसीसे इसका नाम वृन्दावन पड़ा, यह सही प्रतीत नहीं होता। आगे चलकर ब्रह्म वैवर्त–पुराणकार ने स्वयं ही अपनी त्रुटि सुधार ली है।

इस प्रकार प्रथम वृन्दावन, ब्रज, गोष्ठ, गोकुल आदि शब्द समान अर्थ में एक विस्तृत भूभाग के लिए प्रयुक्त किये गये, पश्चात् वृन्दावन शब्द धीरे-धीरे रूढ़ होता गया और उसका तात्पर्य केवल रासक्षेत्र से ही रह गया। श्रीमद्भागवत में भी संपूर्ण भूभाग को वृन्दाब्रन संज्ञा दिये जाने के बाद ही उसके भिन्न-भिन्न भागों को भिन्न-भिन्न नाम दिये गये यथा गोवर्द्धन, नन्दगोकुल, वृन्दावन आदि।

एकदा तु विना रामं कृष्णो वृन्दावनं ययौ।
विचचार वृतो गोपैर्वन्यपुष्पस्रगुज्ज्वलः।।

–विष्णु पुराण पञ्चम स्कंध. अ. ७

उपर्युक्त पंक्तियों से ब्रज और वृन्दावन का भेद स्पष्ट होजाता है, साथ ही उसका (वृन्दावन का) श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रिय होना भी सिद्ध सद्ध होता है कि साथी न होने पर वे अकेले ही वृन्दावन

राधा-कृष्ण प्रणय : एक आधुनिक उक्ति

●

पतिगृह : स्मरण में कितनी
क्षणस्थायी है सुन्दरता

अभिसार-वन : स्पर्श में
कितना अनन्त है यौवन

द्वारिकापुरी : परोक्ष में
दूरी कितनी है असंक्रामक

वृन्दावन : प्रत्यक्ष में
कितना समीप है दोनों का मन

स्मरण जैसे हैं विकलता का संगीत
स्पर्श वर्तमान नहीं,
हैं जन्म-जन्मान्तर अतीत
परोक्ष आत्माओं का असंभाव्य है
प्रत्यक्ष वासना नहीं, किन्तु काव्य है

——राजकमल चौधरी

चले जाते थे। बहुत काल पश्चात, जिसकी उपमा महाकवि कालिदास ने कुबेर के उद्यान "चैत्ररथ" से दी हो (रघुवंश ६,५०) वहाँ भागवत में वर्णित शरदरास हो, अथवा गीत गोविंद में वर्णित वसंतरास, प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा सर्वदा ही उद्दीपनकारक रहती थी, किंतु कालीनाग की उपस्थिति वृन्दावन के लिए चन्द्र में कलंक के समान थी। वृन्दावन के यमुना के देह से सहस्र कमलदल श्रीकृष्ण द्वारा लाये जाकर उपहार में प्राप्त होने पर, आभीरों पर अत्याचार बंद करने का जब संधि-प्रस्ताव कंस की ओर से आया, तो श्रीकृष्ण को कालीनाग से मरवाने की कंस की कुचाल गोप-ग्वालों की समझ में तुरंत आगयी, उन्होंने श्रीकृष्ण को वृन्दावन जाने से मना किया, किंतु वे तो इतने रमणीक क्षेत्र को निष्कंटक करना ही चाहते थे, और जब वे वृन्दावन जाकर कालीनाग को पराजित करने के लिए उसके निवास कालीदह में कूद पड़े, तो साथी गोप रोते-रोते ब्रज में पहुँचे। कालियदमन की कथा में भागवतकार ने बृहत्तर वृन्दावन अथवा ब्रज से मुख्य वृन्दावन की स्थिति स्पष्टतया भिन्न स्वीकार कर ली है। कालीनाग के परास्त होकर वृन्दावन छोड़ जाने पर यह श्रीकृष्ण की मुख्य विहारस्थली बन गया, निजी क्षेत्र।

वृन्दावन' में यमुना के कंकणाकार (उसे तीन ओर से घेर कर) बहने, प्रदक्षिणा करने, अथवा उसके दाहिने तट पर उसकी स्थिति "श्री वृन्दावनं रम्यं यमुनायाः प्रदक्षिणाम्" आदि पुराणों में वर्णित आधारों पर भक्ति-आंदोलन के समय नास्तिकवाद के ज़ोरशोर में विस्मृत-विलुप्त वृन्दावन का प्राकट्य किया गया, और एकत्रित होने लगे संत-साधक गोपियों की इस साधना भूमि में। श्रीकृष्ण के ब्रज से चले जाने पर विरहावस्था में उनके गुणकथन स्मरण इत्यादि के लिए प्रियतम को प्रियतम इस वृन्दावन से उत्तम अन्य कौनसा स्थान हो सकता था? गोपियाँ यहाँ श्रीकृष्ण द्वारा की गयी लीलाओं का अनुकरण करते-करते उनके साथ तदाकार होने की पुण्य दशा तक पहुँच जाती थीं, 'श्याम श्याम' कहते-कहते स्वयं को श्याम समझने लगतीं थीं। वृन्दाबन वह भूमि है, जहाँ विरह-ज्वालाओं में पड़कर श्रृंगार का स्वर्ण शुद्ध होगया, प्रदीप्त हो उठा, चमकने लगा। बेचारे उद्धव की क्या औक़ात थी, जो इतनी उच्च स्थिति पर पहुँची हुई गोपियों के गुरु बन सकते, लेने के देने पड़ गये, उद्धव को यहाँ से गोपियों का शिष्य होकर जाना पड़ा। यों ज्ञान पर भक्ति की विजय, बुद्धि-पक्ष से हृदय-पक्ष की श्रेष्ठता सिद्ध जहाँ हुई, उस वृन्दावन में गोपयों के समान ही स्वयं को सखी मानकर श्रीकृष्ण की उपासना के अतिरिक्त किसी अन्य

प्रकार की भक्ति-पद्धति की कल्पना नहीं की जा सकती थी। संगीतगुरु स्वामी हरिदास जी ललिता सखी के अवतार माने जाते थे, भावुक-संत महाप्रभु हित हरिवंश जी श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते थे, विद्वान-संत रूप जीव गोस्वामी इत्यादि भी सखीरूप में ही उपासना करते थे। भक्तिमती मीराबाई ने वृन्दाबन में जब कहा, कि वे यहाँ श्रीकृष्ण को छोड़कर किसी अन्य को पुरुष मानती ही नहीं, तो संपूर्ण संत-समाज ने उनका बड़ा आदर किया। निस्संदेह रास-क्षेत्र में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था, यहाँ तक कि जब पौरुष के पुञ्ज, ताण्डव के देवता महादेव तक रास देखने वृन्दाबन पधारे, तो उन्हें भी गोपी रूप धारण करना पड़ा था, पूर्ण परब्रह्म ही वासना इत्यादि दोषों से मुक्त रहता है अन्य नहीं, यों 'सखी-सम्प्रदाय', एक नवीन भक्ति-परंपरा भक्ति-क्षेत्र में प्रकट हुई। भगवद्भक्ति का माध्यम बन जाने से नील रंग के शृंगार में उज्ज्वलता का समावेश हुआ, 'उज्ज्वलनील रस' की साधना अथवा 'रसोपासना' इसकी आधार भित्ति है।

उक्त उपासना-पद्धति के संबंध में समय-समय पर संतों में विचार-विमर्ष होता रहा, एक निश्चित चिंता-धारा.... दर्शन प्रस्तुत हुआ, साहित्य, संगीत, कला इत्यादि शृंगार के पोषक होते ही हैं, और भगवद्भक्ति में पद-रचना भक्तकवियों में परंपरा ही बन चुकी थी, फलतः शोध-खोज के लिए वृन्दाबन एक विस्तृत क्षेत्र है। संतों के श्री विगृहों के लिए उदार धनिकों-राजाओं इत्यादि ने यहाँ विशाल मंदिर बनवाये। यों पुरातत्व की दृष्टि से भी वृन्दाबन महत्वपूर्ण है, वास्तव में वृन्दावन भारत का प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र है, जहाँ संगीत की ध्रुपद और धमार गायन पद्धतियाँ जनमी हों, जहाँ रसखान और घनानन्द जैसे भावुक कवि रहे हों। संक्षेप में यह वह धरा है जहाँ शक्ति-प्रेरणा जनमी, जो रंगमञ्च रही कला की, सौंदर्य और माधुरी का क्षेत्र, जहाँ के रजकण मिलन-विरह जनित हास-अश्रु में सिद्ध किये गये, जहाँ का वातावरण कदम्ब-सुरभि-भीने खोये-खोये वंशी के स्वरों, जीवन-दर्शन के साधना-क्षणों की विधि समय की लोलुप निष्ठुर दृष्टि से बचाये आज भी अपने में समेटे है। आँखोंवाले को कुछ भी असूझ नहीं, हृदयवाले को कुछ भी अबूझ नहीं। श्री रूप गोस्वामी ने तो यहाँ तक लिखा है कि यदि कोई श्रीकृष्ण का प्रेमपात्र उत्कण्ठार्त्त होकर उनकी लीलाओं का अवलोकन करना चाहे, तो वे आज भी उसे श्री वृन्दनबन में दिखाकर कृतार्थ करेंगे।

*

जानकीनाथ शर्मा

कूट-नीतिज्ञ शिरोमणि श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण पूर्ण योगीश्वर थे। वे लीला-पुरुषोत्तम थे। जीवन की सर्वांगीण लीलाओं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में ही उनके व्यक्तित्व की, उनके लीला-पुरुषोत्तमत्व की सार्थकता है। वे पारलौकिक मोक्ष के प्रवक्ता निरे ज्ञान-योगी नहीं, भक्ति, ज्ञान, कर्म, और वैराग्य के समन्वित प्रयोक्ता और प्रवक्ता महान् जीवन-योगी थे। इसीसे वे तत्कालीन राजनीति के क्षेत्र में कूट-नीतिज्ञों के बीच परम चतुर चूड़ामणि कूटनीतिज्ञ भी थे।

आजकल कूटनीतिज्ञों में इटली के 'मेकेयाविलि' का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उसकी 'प्रिन्स' पुस्तक प्रसिद्ध है। किन्तु "कौटल्य" के सामने वह निरा छोकरा जँचता है। इनके अर्थशास्त्र का लोहा आधुनिक बुद्धिमानों को भी पग-पग पर मानना पड़ता है। किन्तु इन कौटल्य ने भी असुरगुरु शुक्र को अपने अर्थशास्त्र में बार-बार आदर से स्मरण किया है। इस तरह शुक्र की कूटनीति की उड़ान बड़ी ही ऊँची दिखती है। पर वे ही शुक्र अपने नीतिसार के उपसंहार में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जब लिखते हैं :–

> न कुटनीतिरभवत् श्रीकृष्णसदृशो नृपः।
> (नीतिसार ४-६-१२१३)

अर्थात् आज तक पृथ्वी में श्रीकृष्ण के समान कोई भी कूटनीति का प्रयोक्ता राजा न हुआ, तो चकित रह जाना पड़ता है। वस्तुतः श्रीकृष्ण के मानो नस-नस में कूटनीति का अंश भरा था। दूसरे शब्दों में उन्हें भगवान् के साथ कूटनीति का भी मूर्तिमान अवतार कहा जा सकता है।

जब श्रीकृष्ण बढ़ते हैं–थोड़े ही बड़े होते हैं, तो उनकी माखन चोरी आदि की लीला आरंभ हो जाती है। इसमें उनकी बुद्धि का विलास देखते ही बनता है। पकड़े जाने पर भी धोखा देकर भाग

निकलते हैं। एक दिन एक ग्वालिन ने बड़े प्रयत्न से उन्हें पकड़ लिया और बड़े प्रसन्न मन से उलाहना देती हुई उन्हें नन्द-रानी के पास ले चली। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि अब काम सर्वथा बिगड़ना चाहता है, तो उन्होंने झट उस स्त्री के छोटे देवर को इशारे से बुलाया और अपने हाथ बदलवाने की बात कह कर, उसका हाथ गोपी के हाथ में रखकर आप चम्पत हो गये हैं।

एक अन्य गोपी का श्रीकृष्ण के साथ वार्तालाप सुनिये। एक सूने घर में घुसकर वे माखन चुरा रहे थे कि उसने देख लिया। गोपी बोली 'अरे! तुम कौन हो?' श्रीकृष्ण बोले-लोग मेरा नाम तो कृष्ण कहते हैं? 'पर आपका इस स्थान से क्या मतलब?' गोपी ने पूछा। 'देवि! मैं भ्रम में पड़ गया। क्या बतलाऊँ, भूलकर इसे अपना ही मकान समझ कर आ गया।' श्रीकृष्ण ने बड़ी शान्त मुद्रा से मुँह बनाकर उत्तर दिया। गोपी बोली 'खैर, इसमें कोई खास बात नहीं, किन्तु यह तो बतलाएँ कि माखन के घड़े में आपने हाथ क्यों डाल रखा है?' अरे अरे, श्रीकृष्ण ने कहा, 'अजी कुछ न कहो, इसमें चीटियाँ बहुत-सी पड़ गयी थीं, उन्हें निकाल रहा था।' 'यह भी ठीक, किन्तु आपने सोते हुए बच्चों को क्यों जगाया?' गोपी ने पूछा। 'देवि! इन्हें बछडों का पता लगाना चाहिए, पता नहीं

યોગસ્થઃ કુરુ કર્માણિ સઙ્ગં ત્યક્ત્વા ધનંજય।
સિદ્ધ્યસિદ્ધ્યોઃ સમો ભૂત્વા સમત્વં યોગ ઉચ્યતે ॥

कि वे कहाँ भाग गये हैं, (तात्पर्य जनाब ने बछड़ों को इससे भी पहले खोल भगाया था) इन्हें व्यर्थ नहीं जगाया।'

तत्पश्चात् तो ये 'चोर जारशिखामणिः' नाम से ही प्रसिद्ध हो गये। बकासुर, वृत्रासुर, अरिष्टासुर के वध में कूटयुद्ध का ही आश्रय लिया। जरासन्ध-वध के अवसर पर ये अर्जुन, भीम को साथ ले अपना और इन सबों का ब्राह्मण वेश बनाकर उसके पास पहुँचे और उससे मल्लयुद्ध की भिक्षा माँगी। क्योंकि अन्य सभी युद्धों में उसने बीसों बार इन्हें परास्त कर दिया था। बाद में २७ दिनों के मल्ल-युद्ध में वह भीमसेन जैसे योद्धा से

भी न पराजित हुआ। बाद में घास चीरने का संकेत कर कूट-युद्ध द्वारा भीमसेन से उन्होंने उसका अन्त कराया। क्या यह कार्य किसी दूसरे से सम्भव था?

इसी प्रकार रुक्मिणी-विवाह में सबों को धता बतलायी।

अब कूटयुद्ध का एक विचित्र उदाहरण देखिये। कालयवन के युद्ध में परास्त होकर यह भागे। उसने इनका पीछा किया। गुफा में घुस कर इन्होंने अपनी पीताम्बर मुचुकुन्द पर डाल दिया। इन्हें भलीभांति ज्ञात था कि इसको जगाने वाला भस्म हो जायगा। कालयवन ने भी जल्दी में यही समझा कि इस गुफा में वही घुसा है। और भय से सोने का नाटक कर रहा है। उसके अतिरक्त यहाँ आया ही कौन? अन्त में उसने इन्हें जगाने के लिए लात मारी। मुचकुन्द ने ज्यो हीं जगकर-उसपर दृष्टि डाली कि वह, जलकर भस्म हो गया।' चलिए! विना किसी कर्म के उसका अन्त हुआ। यह कूटयुद्ध नहीं तो और क्या था? महाभारत के युद्ध में कृष्ण ने शस्त्र तो नहीं लिया, पर कूटनीति के सामने शस्त्र की आवश्यकता भी क्या थी?

भीष्म पितामह युद्ध में, हार नहीं रहे थे। कठिन समस्या थी। रात में द्रौपदी को लिये, उसके पैर की जूतियाँ हाथ में दबाये भीष्म के शिविर में पहुचे। आप एक ओर छिप गये। भीष्म ने द्रौपदी से कहा 'बेटी क्या चाहती हो, ?' दादा जी आप अपनी मृत्यु का रहस्य बतायें, द्रौपदी ने पूछा। भीस्म सब समझ गये। कहा– 'श्रीकृष्ण अवश्य तुम्हारे साथ आये हैं और उनकी ही यह युक्ति है।' किन्तु विवश थे। वचन दे दिया था। शिखण्डी की कथा उन्हें बतलानी पड़ी और अर्जुन ने इसी का सहारा लेकर उन्हें मार गिराया।

कर्ण की समस्या बड़ी कठिन थी। उसे आपने साम, दाम, भय सब दिखलाया। अन्त में यह भी कह दिया कि द्रौपदी मानुषी नहीं देवी है। । वह यज्ञकुण्ड से युवा ही पैदा हुई है। तुम पाण्डवों के ज्येष्ठ भाई हो। यदि तुम हमारे पक्ष में आ जाओ, तो यह साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप दिव्य द्रौपदी छठे अवसर पर तुम्हारे पास भी आयेगी। 'षष्ठे त्वां च तथा काले द्रौपदी द्युपगमिष्यति।' (महा. उद्योग. ६८)। पर यदि यह सब भी न मानोगे, तो निश्चय जान लो, हमारे निर्देशन में अर्जुन तुम्हारा वध कर डालेगा। क्या जादू था कूटनीति का। अन्त में कर्ण नहीं माना और अर्जन को ललकार कर अधर्म युद्ध द्वारा उसका उस समय वध करा दिया, जब विचारे के रथ के चक्के पृथ्वी में धँस गये थे, उसने शस्त्रों का परित्याग कर दिया था और वह चुपचाप खड़ा था।

बड़ौदा ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट के संग्रहालय में अभिमन्यू 'उपाख्यानम्' नामक संस्कृत काव्य की एक हस्तलिखित प्रति है। इसमें श्रीकृष्ण–कूटनीति की एक अद्भुत कथा है। इसमें बतलाया गया है कि एक बार अपलोचन नामक एक दैत्य ने श्रीकृष्ण से अपने पितृवध का बदला चुकाने के लिए भगवान शंकर की आराधना की। एकांत स्थान में उसने घोर तपस्या की। भगवान् भोलेनाथ भी वर देने को पहुँच गये। वास्तव में एक ओर तो वह अपना अमरत्व चाहता था, दूसरी ओर श्रीकृष्ण का वध। पर पार्वती को इसका रहस्य ज्ञात था और उन्होंने शंकर को सावधान कर दिया। इसलिए शंकर जी ने अपलोचन से कहा:– 'मैं समझ गया, तुम कृष्ण अर्थात् विष्णु से लड़ना चाहते हो, जाओ किसी भी अस्त्र-शस्त्र से तुम्हारी मृत्यु न होगी।' अपलोचन निहाल हो गया और उसने समझ लिया कि मैं अमर हो गया। वह मय दानव के पास गया और उसने एक वज्रपिंजर (लोहे का एक पींजडा) बनाने को कहा। मय ने उसे ६ महीने में बनाकर तैयार कर दिया और अपलोचन उसे लेकर द्वारिका में श्रीकृष्ण को फँसाने पहुँचा। उसने सोचा था कि इसी में वन्द कर दम घुटाकर श्रीकृष्ण का सारा झगड़ा समाप्त कर दूँगा। पर श्रीकृष्ण को इन सब बातों का पता पहले ही चल गया। वह एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर रास्ते में ही अपलोचन से जा मिले और कहने लगे कि 'आपके पिता मेरे यजमान थे। उनसे मेरी जीवन-यात्रा चलती थी। जब से श्रीकृष्ण ने उनका वध किया है, मेरी बड़ी ही दुर्दशा है। आपने बड़ा भला किया जो श्रीकृष्ण से बदला लेने का सोचा। अब क्या था, अपलोचन उनकी बातों में आ गया और पिंजड़े का रहस्य उसने बतला दिया। इसपर वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी श्रीकृष्ण ने कहा कि आपको यह पिंजड़ा श्रीकृष्ण के शरीर का नाप लेकर बनाना चाहिए था। पता नहीं वे इसमें आयेंगे भी या नहीं, क्योंकि उनका शरीर तो पर्याप्त पुष्ट है।' तब वह घबड़ाया और श्रीकृष्ण के शरीर के बारे में पूछताछ करने लगा। वृद्ध ब्राह्मण ने कहा– 'वे प्रायः तुम्हारे ही जैसे हैं। यदि तुम इसमें आ जाओगे तो वे भी निश्चय ही इसमें आ सकेंगे।' इसपर अपलोचन किसी प्रकार पिंजड़े में घुसने का प्रयत्न करने लगा और अन्त में घुस भी गया। उसके घुसते ही श्रीकृष्ण ने झट पिंजड़े का दरवाजा बंद कर दिया और अन्त में वह दम घुट कर मर ही गया।

'अभिमन्यु' आख्यान में आता है कि इसके बाद कृष्ण ने उस वज्रपिंजर को उसी

प्रकार उठाकर अपने महल में रख दिया। रुक्मिणी, सत्यभामा, आदि रानियों को उसे देखने का कुतूहल हुआ। उन्होंने सुभद्रा से उसे खुलवाया। उन दिनों वह गर्भिणी थी। वह अपलोचन का भयानक शव देखते ही डर गयी और उसका प्रेत वायु, जो पिंजर में सर्वथा अवरुद्ध था, उसके मुँह में घुस गया। उसी समय से सुभद्रा के पेट में पीड़ा होने लगी और वह बढ़ती गयी। जब श्रीकृष्ण को इन सब बातों का पता लगा, तो वे चक्रव्यह की कथा कहने लगे। इधर सुभद्रा की आँखें लग गयीं। श्रीकृष्ण ने देखा कि उसके गर्भ से शब्द आ रहा है। उसी समय उन्होंने कथा बन्द कर दी और व्यूह से बाहर निकलने की विधि नहीं बतलायी। यह अपलोचन ही अभिमन्यु के रूप में उत्पन्न हुआ और अन्त में चक्रव्यूह में फँसकर मारा गया।

अभिमन्यु उपाख्यान की यह कथा गुजराती तथा राजस्थानी लोक साहित्य में भी प्रचलित है। श्रीकृष्ण के लिए वह सब कुछ भी आश्चर्यकर न था। शुक्र ने लिखा है कि सुभद्रा को छलपूर्वक अर्जुन से ब्याह कराने में तो श्रीकृष्ण ने अपने घर के सभी लोग, माता-पिता तथा अपनी बहन से भी कूटनीति का आचरण कर दिया था। पर उनकी धर्मनीति भी प्रबल थी। वे गीता के वक्ता तथा आदर्श योगी भी थे। कूटनीति का प्रयोग प्रायः असुरों तथा दुष्ट राजाओं से ही करते थे। शास्त्रों ने ऐसा करना बुरा भी नहीं माना है। बल्कि 'महाभारत' में तो मायाचारियों को माया पूर्वक ही परास्त करने की बात आयी है। 'मायाचारी माययाबाधितव्यं साध्वाधारो साधुनः प्रत्युधेयः।' कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र के अन्त में कूटयुद्ध की बातें लिखी हैं। भारवि ने तो और ठिकाने से कहा है-

'व्रजन्ति ने मूठधियः पराभवं भवन्ति
मायाविषु ये न मायिनः।'

अर्थात् वे मूढ़ बुद्धि जो मायावियों से मायापूर्वक—छलछद्म, कूटयुद्ध आदि का आश्रय लिये बिना युद्ध करते हैं, वे निश्चय ही पराभूत हो जाते हैं। श्रीकृष्ण इसी से शकुनि, कर्णिक जैसे कूटनीतिज्ञों को भी परास्त कर सके थे। किन्तु साधु, संतो एवं सज्जनों के प्रति उनका व्यवहार साधु ही रहा। इसलिए व्यास, विदुर, अच्छव, युधिष्ठिर आदि उनके सदा भक्त बने रहे। इन्हीं सर्व समन्वय गुणों के कारण वे साक्षात भगवान के रूप में स्वीकृत हुए। वस्तुतः जैसे वे कूटनीति कें प्रयोक्ता थे, वैसे ही प्रेम, औदार्य, मृदुभाषण, विद्या एवं अन्यान्य गुणों के भी केन्द्र थे।

★

नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी

●

बाँसुरी वियोग

जिस दिन से अधरों की बाँसुरी तुम्हारी
मेरे अधरों से रूठ गयी,
उस दिन से ही
कविता की स्वर से लगी सगाई छूट गयी !
प्यास हो गयी पागल मेरी
सपन अनाथ हो गये
पावों ने मंजिल की पहिचान भुला दी
मोती की माला के दानों जैसा,
बिखर गया जीवन मेरा !
मेरा तो वो ही एक सहारा थी
उसके अधरों पर धरते ही
मेरे जलते ओंठों पर
पूनम के चंदा की शितलाई छा जाती थी
उसके अधरों पर धरते ही, मेरी पीड़ा--मीराएँ
पावों में गति के घुंघरू बाँध
स्वयं ठुमुकने लगती थीं
उसके अधरों पर धरते ही
मधु की खेती होने लगती थी,
हर साँस महकने लगती थी !
आज उसी बाँसुरिया को बिना सूचना दिये मुझे
मेरे अलसाये और अचेतन अधरों से
कोई स्वर का सौदागर लूट ले गया !
नींद खुली उस समय
जबकि अधर पर कुछ हलकापन पाया !
लेकिन अब तो कुछ भी हाथ नहीं मेरे,
मेरा जीवन तो अब,
बिना शीर्षकवाली पुस्तक जैसा है !

●

देवदत्त

तंत्रेश्वर श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण और उनके आदि रूप विष्णु की उपासना तांत्रिक ग्रंथों में भी मिलती है। कुण्डलिनी योग की परम्परा में, पीताम्बर, प्रथम यौवन गर्वधारी विष्णु, स्वाधिष्ठान चक्र के देवता हैं। सहस्रार को शाक्त तंत्रों में भी हरिहर स्थान कहा जाता है। श्रीकृष्ण के उसी तंत्रेश्वर रूप पर यह लेख अपूर्व प्रकाश डालता है।

ककारञ्च ऋकारञ्च कामिनी वैष्णवी कला,
ष कारञ्च चन्द्रमा देवः कला षोड़श संयुतः,
णकारञ्च सुतश्रेष्ठ साक्षान्निवृत्ति रुपिणी,
राधातंत्रम् । ६पटल

कृष्ण के नाम की यह व्याख्या नितांत तांत्रिक है और कई तांत्रिक ग्रंथों में इस तरह की व्याख्याएँ मिलती हैं। वे योगेश्वर कहे जाते हैं। योगेश्वर होने के नाते वे सिद्ध भी हैं, साधक भी। गुरु भी हैं, तो शिष्य भी हैं। यह सत्य है कि गीता में तंत्र या तंत्रोक्त आदर्शों का प्रश्न नहीं उठाया गया है, पर वहाँ पर उनकी आवश्यकता वेदांत के उपदेश से कम थी, दूसरी बात गीता में कृष्ण ने जिस गुप्त ज्ञान की घोषणा की वह गुप्तज्ञान उन अर्थों में गुप्त नहीं था, जिन अर्थों में तंत्र का ज्ञान गुप्त है। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कई तंत्र ग्रंथ हैं और उनमें शाक्त या शैव तंत्रों से कम कोई चीज नहीं है, पर वैष्णव तंत्र (पाञ्च रात्र) बहुत ही जटिल हैं और जब शाक्त तंत्रों में, जो अपना द्वार सबके लिए खुला रखता है, विना गुरु के साधना करने का विधान नहीं तो वैष्णव तंत्र तो और अधिक जटिल है। तंत्र साधना के पुस्तकीय ज्ञान से भी परिचित जनों को यह अपरिचित नहीं कि तंत्र साधना के पाँच विभाग हैं। शैव, सौर्य, गाणपत्य, शाक्त और वैष्णव (पाञ्च रात्र)। शाक्त ग्रंथ कुछ अधिक परिचित हैं। बंगाल में वाममार्गीय साधना का काफी

प्रभाव रहा है और इसने मातृशक्ति की मदद तथा कुण्डलिनी योग के द्वारा साधना को एक नितांत व्यावहारिक स्तर भी प्रदान किया है। पर वैंष्णव तंत्र जरा उपेक्षित से रहे। इसका एक कारण द्रविड़ के प्रांत से प्रारम्भ भक्ति की वह बाढ़ भी है, जो सारे देश में फैल गयी और वैष्णव भक्ति के नवधा स्वरूप ने तांत्रिक साधना की आवश्यकता भी कम कर दी। पर एक कारण यह भी है कि वैष्णवी तंत्र साधना को उतना लौकिक नहीं बनाया जा सकता है, जितना अन्य साधनाओं को। तंत्र के एक लक्ष्य, भागवत आनन्द का उपभोग और उसे जीवन में उतार लाने का प्रयत्न, वैष्णव साधना का आधार रहा है। विधा चाहे कोई भी हो, जब साधक राधा, माधव या शिवशक्ति के मिलन का एकांत उपभोग अपने में करना चाहता है, तो वह पद्धति सामने आ ही जाती है जिसका तंत्र समर्थन करता है। कलिंग प्रांत के तांत्रिकों में प्रचलित प्रवाद (?) के अनुसार स्वयं कृष्णावतार श्री चैतन्य ने भी तंत्र का आधार कभी लिया था, यद्यपि प्राप्त वैष्णव ग्रंथों में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।

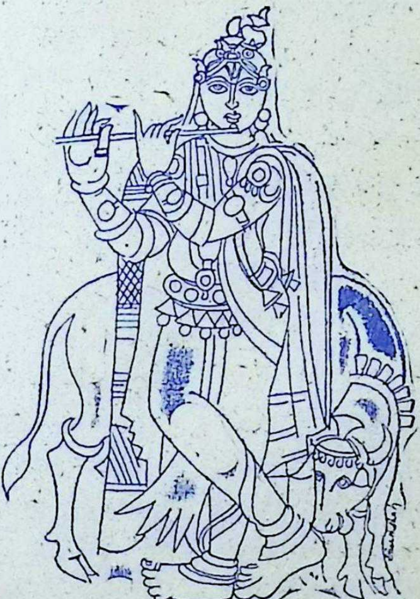

चित्र : दिनेश शाह

तंत्र की वैष्णव परम्परा में वैष्णवामृत, लक्ष्मी-कुलार्णव, विष्णु धर्मोत्तर तंत्र, राधा तंत्र, विष्णु याभल तंत्र आदि ग्रंथ आते हैं। ग्रंथ तो और भी हैं, जो अप्राप्य हैं। माने वे अधिकारी जनों के पास ही हैं और वे विशेष लोगों को ही दिखाते हैं।

श्रीकृष्ण या उनके आदिरूप विष्णु की उपासना तांत्रिक ग्रंथों म भी मिलती हैं। कुण्डलिनी योग की परम्परा में, पीताम्बर प्रथम यौवन गर्वधारी, विष्णु स्वाधिष्ठान चक्र के देवता हैं। सहस्रार को शाक्त तंत्रों में भी हरिहर स्थान कहा जाता है।

श्रीकृष्ण के नव दूर्वादल श्याम स्वरूप का वर्णन प्रत्येक भक्त के द्वारा पाया

जाता है। पर तंत्र ने विभिन्न इष्टों की सिद्धि और विभिन्न मंत्रों के साथ विभिन्न प्रकार के ध्यान का विधान किया है। तंत्र के कृष्ण इस पूर्णता के प्रतीक हैं, जो साधक-सिद्धि तथा सिद्ध तीनों को अपने में धारण करती है।

शारदा तिलकतंत्र के अनुसार श्रीकृष्ण की लक्ष्य साधना में अयुत जप और होम करना होता है। इसी तंत्र में विभिन्न प्रकार की सिद्धियों के लिए विभिन्न प्रकार के ध्यान का विधान किया गया है :—

अथवा स्फटिकाभासं लेख पुस्तक धारिणम् ।
तं विचिन्त्य जपे लक्षं मूलं ब्राह्ममुहूर्त्तके ।।
जप्तो मंत्री त्रिकाज्ञो बृहस्पति समो भवेत् ।

यहाँ वे स्फटिक के समान हैं। वेदार्थी के लिए वे गाय चरानेवाले धेनु वत्सल कृष्ण हैं। बालरूप में वे सब कामों के सिद्धदाता हैं। गोपालभाव में वे जागतिक और पारमार्थिक दोनों स्तरों पर भक्त के संकल्पपूरक हैं।

कृष्ण और गोपाल इन दो रूपों में विशेष रूप से पूजित रसेश की पूजाविधि वैष्णव तंत्रों में भी शाक्त तंत्रों की ही तरह है। श्रीकृष्ण और गोपाल के लिए इष्ट मंत्रों की संख्या के अतिरिक्त मंत्रान्तर भी मिलते हैं।

जैसे मंत्र से दशाक्षर "गोपी जनवल्लभाय स्वाहा:" गोप्तमीय तंत्र के अनुसार इसी मंत्र के प्रारंभ में काम बीज "क्लीं" जोड़कर जप किया जाता है। पर राशि और नक्षत्रों की एक विशिष्ट स्थिति में इसे बीज रहित कर देते हैं, इसी कारण इसे गुप्त बीज, भी कहा जाता है।

वैष्णव मंत्र की तरह ही कृष्ण मंत्र की सारी प्राथमिक क्रियाएँ भूतशुद्धि, न्यास आदि की जाती हैं पर ये वैष्णव मंत्र से अधिक जटिल हैं इसीसे गुरु के बिलकुल सान्निध्य में ही श्रीकृष्ण मंत्र की साधना करने का विधान है। इस मंत्र के न्यासों को एक जटिल परम्परा और उनके अलग-अलग फल, तथा प्राणायामों में भी इसके अलग-अलग प्रकार हैं। इसी मंत्र की एक विशिष्ट प्रक्रिया काम मुक्ति के लिए बहुत फलप्रद वतायी गयी है।

मंत्र के बाद ही तंत्र में यंत्र का स्थान है। श्रीकृष्ण के तीन यंत्र सामान्य भाव से प्रचलित हैं। इन मंत्रों का भी पटलन्यास अलग-अलग है।

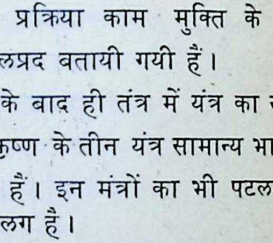

श्रीकृष्ण यंत्रम्

"क्लीं" कृष्ण का एकाक्षर यंत्र है। अन्य मंत्र इससे भी जटिल हैं। और

उन्हें सिद्ध करने की पद्धति भी जटिलतर होती चली गयी है। वेष्ठनी से लेकर आन्तर गर्भ तक वीज रूप शक्तियों की क्रमशः प्रतिष्ठापनाएँ, उनका न्यास, उच्चाटन तथा उन्मीलन इतनी जटिल प्रक्रिया में से गुज़र कर वैष्णव तंत्र को एक ऐसी विद्या में परिर्वतित कर देता है, जिसकी प्राप्ति ऊँचे स्तर के साधकों को ही हो सकती है। यंत्र की पूजा और प्राणन्यास के बाद श्रीकृष्ण का ध्यान द्वारिका में सूर्य किरणों से समुज्ज्वल ग्रह में अत्यंत वैभवमय, पर विशिष्ट प्रतीकों से गुजरते हुए किया गया है। धीरे-धीरे साधक मन को एकाग्र कर रमणियों और दासियों से घिरे हुए, तंत्रेश्वर श्रीकृष्ण के पास पहुँचता है।

श्रीकृष्ण गायत्री

दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहिः
तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।

इसके शब्द हैं गायत्री, ऋषि है गोपी, (राधा) और देवता है कृष्ण।

समासीनोऽच्युतो ध्योयो प्रतहारक सन्निभः समानोदित् चन्द्रार्क तड़ित-कोटि समद्युतिः सर्वांग सुन्दरः सौम्यं सर्वाभरणभूषितः पीत-वासाश्चक्रशंखगदापद्मोज्ज्वलभुजः ॥

पर जब तांत्रिक अन्य विधान प्रारंभ करता है, तो ध्यान में प्रत्येक वस्तु प्रतीकात्मक अर्थ रखने के नाते बदल जाती है—

ध्याये वृन्दावने रम्ये काञ्चनी भूमि मध्यगे।
नाना पुष्पलता कीर्णे वृक्षषन्डैश्च मण्डिते ॥

इसी तरह विभिन्न मंत्रों के साथ अलग-अलग ध्यान हैं। श्रीबीज, मायाबीज और कामबीज के बाद "श्रीकृष्ण गोविन्दायै-नमः स्वाहा" का द्वादशाक्षरी मंत्र तो बहुत फलप्रद माना जाता है।

स्तोत्र और कवच भी श्रीकृष्ण साधना के प्रमुख अंग हैं। स्तोत्र पूजा की प्रक्रिया में भक्ति के उद्घाटन का एक महत्वपूर्ण साधन है, जो नादध्वनि और छंद की सहायता से साधक के अन्तर और पूजास्थान के बाह्य वातावरण को उपयुक्त बनाता है। कवच का एक अंश है—

नमोऽस्ते योगिध्येयाय नमो-स्वहृचात्मरुपिणे
भक्तिप्रियाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने।
पूजनं हवनं चेष्टा ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया
देवेशं कर्मं सर्वं मे भवेदाराधनं तव ॥

श्रीकृष्ण के कवच का देह ब्रह्म मंत्र समष्टि है। इसी कवच का पाठ करके ब्रह्मा ने सृष्टि क्रिया की शक्ति पायी है। सनत्कुमार तंत्र का विधान है कि तत्वनिष्ठ साधक के अतिरिक्त इस कवच को किसी को नहीं दिया जाना चाहिए।

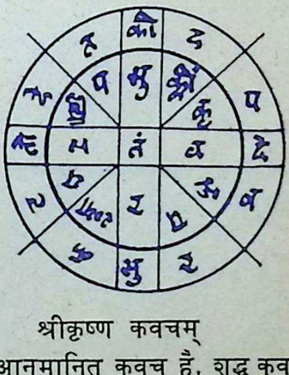

श्रीकृष्ण कवचम्

यह आनुमानित कवच है, शुद्ध कवच न दिया गया है।

वैष्णव तंत्रों में राधा तंत्र का काफी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राधा और कृष्ण को तंत्र ने कभी अलग-अलग करके नहीं देखा। राधा के आगमन के विषय में कहा गया है।

पद्मिनी मम देवेश ब्रजे राधा भविष्यति।
अन्याश्च मातृका देव्या सदा तेरपानुचारिका

तंत्र के कृष्ण सगुणाश्रमी कूटस्थ ब्रह्म है। इसी आधार पर तंत्र ने कृष्ण पर लगाये गये आरोपों का तांत्रिक दृष्टि से खंडन करके, श्रीकृष्ण चेतना के समझने के लिए एक अनुपम तार्किक आधार पाया जाता है। तंत्र ही कृष्ण के रूप के विभिन्न विधानों का अर्थ प्रदान करता है जैसे :–

कृष्णस्यांग महेशानि सौरभं मृदु दाहते।
कलासौरभ विज्ञेया, साक्षात् प्रकृति रूपिणी।

राधा तंत्र के अनुसार काली ने स्वयं नौका के वेश में आकर कृष्ण से साधना करायी थी। वे कहती हैं कुरुक्रीड़ा जपं कुरु वर्णन है –

नमस्कृत्य महा नौका श्री दामादि भिरान्वितः।
आसध्य परमेशानि इष्ट विद्या जपेद्धरिः।
मंत्र जप्त्वा रात्रि शेषे वंशीश्च वादयन हरिः।
जगतां मोहिनी वंशी महाकाली स्वयंप्रिये॥

फिर कृष्ण ने अपनी धारिका महाशक्ति श्रीराधा जी के निर्देशन में राधा जू की प्राप्ति के लिए, उनका मिलन लाभ करने के लिए प्रार्थना की। राधा जू ने उन्हें कुल साधन की दीक्षा दी, उनसे साधना करायी, प्रजप्य परमां विद्या निजरूपमवाप्नुयात्, और फिर "पौर्णमास्यां निशामध्ये कार्त्तिक्यां तरि मध्यतः" इस तरह अपना मिलन लाभ कराया।

द्वारका में अवस्थित कृष्ण कुण्डलिनी शक्ति के देव भी माने गये हैं। इस तरह कृष्ण ने सिद्ध, सिद्धि और साधक तीनों रूपों में तंत्र का निर्देश किया और तंत्र ज्ञान के व्यावहारिकता को ठोस भूमि दी है।

*

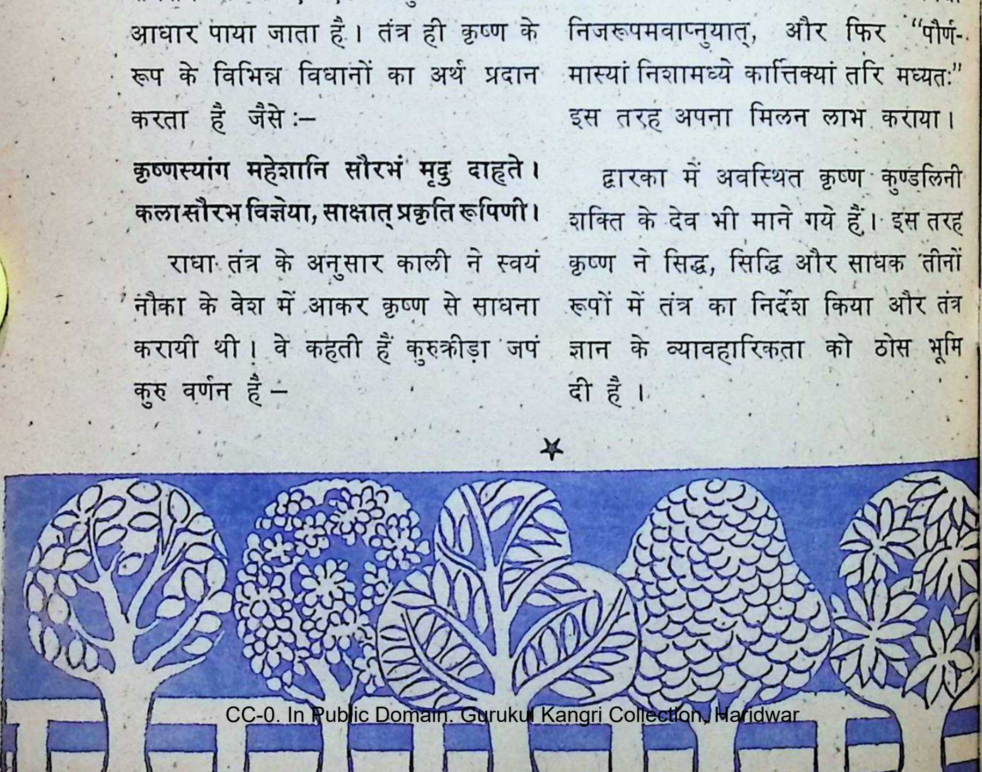

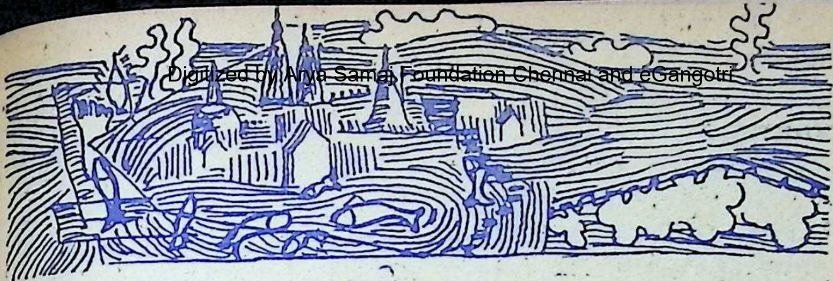

मैं प्यार....

मैं प्यार...,
कैसे कहूँ,
:...नहीं करती ?
समझा बुझा के
हार गयी हैं सखियाँ
रुक्मणी की व्यंग्य भरी हँसी
सूने कुंज, सूनी गलियाँ
बुद्धि का उद्धव भी तो
बार बार कहता है यही
"मूर्ख श्याम तेरे नहीं, तेरे नहीं"
हाय मेरा दिल सच
बस में नहीं
कई बार होंठों तक आती है
यह बात--मैं प्यार...नहीं
नहीं ! नहीं ! नहीं !
मैं प्यार करती हूँ
हाय मेरी सादादिली !

★ --तृप्ता कपूर

कृष्ण

राधे ! मैं मोहन तुम्हारा
लिख रहा हूँ पाती,
महलों में हूँ यहाँ,
रुक्मणी सँग हैं, मानिनी,
हर रानी जलती हैं
तुम्हारे नाम से
कहता हूँ सबसे
"तुम मेरी हो"
ठगता हूँ सबको
तुम--
तुम्हें कैसे कहूँ
"तुम मेरी हो"
जब म स्वयं तुम हूँ
अरुण चरण तुम्हारे
मुझमें बसे हैं
मैं राजा हूँ, विवश हूँ
भूलना न निठुरे,
मैं तुम हूँ, मैं तुम हूँ
लौटा दिया पत्र राधिका ने
कह-- "ठग कहीं के !"

★ -- मोहिनी विरदी

रामलाल

रसिक-शेखर बिल्व-मंगल का श्रीकृष्ण-लीला गान

महाकवि बिल्व मंगल के उपास्य थे, रसेश्वर श्रीकृष्ण। उन्होंने श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन कर उनको अपने 'कृष्ण-कर्णामृत', काव्य में अक्षर-देह प्रदान किया था। 'कर्णामृत' मंत्र-काव्य है। इसका प्रत्येक श्लोक कृष्ण को आकृष्ट करने का महामंत्र है। यह निरी कल्पना-प्रसूत कविता नहीं, दिव्यता के रस-साम्राज्य का सांगोपांग साक्षात्कार है।

कृष्णकर्णामृत कृष्णप्रेमरस-सिन्धु का अनुपम रत्न है, रसरूप नन्दनन्दन के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्य का नितांत अलौकिक तथा मौलिक वाङमय है। कृष्णतत्व के अद्‌भुत पारखी परमभागवत कृष्णदास कविराज ने कृष्णकर्णामृत को महारत्न की संज्ञा प्रदान की है, चैतन्य चरितामृत में कविराज का निवेदन है:

ब्रह्मसंहिता कर्णामृत दुइ पुंथि पाइया।
महारत्न प्राय पाइ आइला संगे लइया॥

(चैतन्यचरितामृतः मध्यलीलाः ९वां परिच्छेद)

इसका अभिप्राय यह है कि चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण की तीर्थयात्रा में महारत्नरूप में दो ग्रंथ प्राप्त किये। कृष्णकर्णामृत का रहस्य भगवान कृष्ण की कृपा होने पर ही समझ में आ पाता है, अन्यथा रसिक-शेखर लीलाशुक बिल्वमंगल के रस-वाङमय में प्रवेश करने का अधिकार असंभव न होने पर भी दुर्गम और अमित कठिन है। कृष्णकर्णामृत सरस अमृत है; यह देवलोक में अप्राप्य है; मानव के सहज कल्याण के लिए बिल्वमंगल के तप-कल्पतरु पर सरस्वती ने इस अमृतफल का सृजन कर पृथ्वी पर काव्य-वृन्दावन का अवतरण सम्भव कर दिया, जिसमें कृष्ण की रसमयी भक्ति-मधुर लीला के रसास्वादन से असंख्य प्राणी तृप्ति का अनुभव करते चले आ रहे हैं। इसके पठन से हृदय पवित्र हो जाता है, मन में निर्मलता आती

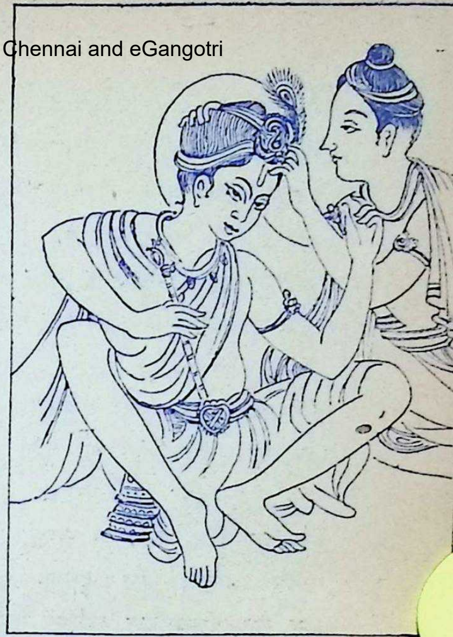

सखा-श्रृंगार : बंगाल शैली
अनुकृति : महेन्द्रनाथ सिंह

है। कृष्णकर्णामृत में कृष्ण-माधुर्य अनायास अभिव्यक्त हो उठा है, यह काव्य परम मधुर रूप है कृष्ण का। मधुर कृष्ण का इसमें वर्णन होने से यह मधुर काव्य हो गया है। बिल्वमंगल ने आजीवन मधुर कृष्ण की ही उपासना की :

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धिमृदुस्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥
(कृष्णकर्णामृत १।९२)

जिस तरह श्रीकृष्ण मधुर-ही-मधुर हैं, मूर्तिमान् माधुर्य हैं, उनके प्रत्येक अंग से निरन्तर प्रतिक्षण मधुरिमा-रमणीय कान्ति, अथवा सुन्दरता की ही वृष्टि होती रहती है, उसी तरह उनके माधुर्य का काव्यप्रतीक कृष्णकर्णामृत मधुर-ही-मधुर है, उसके प्रत्येक अक्षर मधुर हैं, प्रत्येक स्वर और व्यंजन, शब्द और मात्रा, छन्द तथा अलंकार मधुर रसात्मक, अथवा मूर्तिमान माधुर्य है; कृष्णर्णामृत की यही अक्षर रसात्मकता है।

कृष्णकर्णामृत की रचना की ऐतिहासिकता केवल यही है कि चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के प्रायः तीन-चार सौ साल पहले बिल्वमंगल ने इसको कृष्णभक्ति के आवेश में रचा, वे कृष्णवेणा नदी के तटदेश के निवासी थे, केरल प्रदेश उनका जन्म-स्थान था। अपनी दक्षिण देशीय तीर्थयात्रा के समय चैतन्य महाप्रभु ने एक मन्दिर में वैष्णवों को कृष्णकर्णामृत का पाठ करते देखा, वे आनन्दमग्न हो गये, उन्होंने अपने लिए कर्णामृत की प्रतिलिपि करा ली। —महाप्रभु ने ग्रन्थ राय-रामानंद को दिखाया, उनसे कहा कि आपने कृष्ण-भक्ति के जो सिद्धांत कहे हैं, उनका पूर्ण रूप से तीर्थ में प्राप्त ब्रह्मसंहिता और कर्णामृत में निरूपण है, राय महोदय ने महाप्रभु के साथ ग्रंथ का आस्वादन किया और अपने लिए प्रतिलिपि करा ली। कृष्णदास कविराज महोदय का कथन है :

तबे महाप्रभु आइला कृष्णवेणा-तीरे।
नाना तीर्थ देखि ताहाँ देवतामन्दिरे ॥

ब्राह्मण समाज सब वैष्णवचरित ।
वैष्णव सकल पड़े कृष्णकर्णामृत ।।

० ०

ब्रह्मसंहिता कर्णामृत दुइ पुंथि पाइया।
महारत्न प्राय पाइ आइला संगे लइया ।।

० ०

तीर्थयात्रा कथा सकल कहिला ।
कर्णामृत ब्रह्मसंहिता दुइ पुंथि दिला ।
प्रभु कहे, तुमि येइ सिद्धांत कहिले ।
येइ दुइ पुंथि सेइ सब साक्षी दिले ।।
रायेर आनन्द हैल पुस्तक पाइया ।
प्रभु सह आस्वादिल राखिल लिखिया ।।

(चैतन्यचरितामृतः मध्यलीलाः ९ वां परिच्छेद)

यह घटना १५१२ ई. के लगभग की है। इसका आशय यह है कि दक्षिण भारत में यह ग्रंथ इसके पहले वैष्णवों का प्रियपात्र हो चुका था। विल्वमंगल की सबसे बड़ी कामना यही थी कि मेरा कृष्णकर्णामृत काव्य भक्तों और वैष्णवों का आस्वाद्य बन जाये। उनका विज्ञापन है :

धन्यानां सरसानुलापसरणीसौभाग्यमभ्यस्यतां
कर्णानां विवरेषु कामपि सुधावृष्टिं दुहानं मुहुः ।
श्यानां सुदृशां मनोनयनयोर्मग्नस्य देवस्य नः
कर्णानां वचसां विजृम्भितमहो कृष्णस्य कर्णामृतम् ।।

(कृष्णकर्णामृत १।१।१)

विल्वमंगल की कामना है कि मेरे मन में और नयनों में निरन्तर बसने वाले हमारे परम देव श्रीकृष्ण के कानों के लिए रचित यह अमृतस्वरूप कृष्णकर्णामृत काव्य परम कृतार्थ पुण्यात्माओं के, जो सदा काव्यरस-रीति के सौंदर्य का परिशीलन करते रहते हैं, कर्णछिद्रों में अमृत बरसाते हुए जितेन्द्रिय मुनियों और योगियों के श्रवण और वाणी में—जीवन्मुक्तों के वाग्विलास में प्रकाशित रहे, नित्य प्रवाहित अथवा प्रस्फुटित हो, अथवा पुण्यात्मा भक्तजन काव्यरसिक महात्मा इसका श्रवण करते रहें और जीवन्मुक्त इसका गान करते रहें। महाप्रभु चैतन्य देव की कृपा से कवि की कामना सत्य में परिवर्तित हो उठी, वंगदेश में ही नहीं, समस्त उत्तर भारत में विल्वमंगल के हृदय का अमृतद्रव प्रवाहित हो उठा, दक्षिण भारत तो इसका रसास्वादन कर ही रहा था।

महाकवि विल्वमंगल के उपास्य श्रीकृष्ण थे, इसलिए कर्णामृत काव्य में आदि से अन्त तक कृष्णलीला का ही चिंतन मिलता है। विल्वमंगल ने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन कर उनको अपनी वाणी का विषय बनाया, कर्णामृत मन्त्रकाव्य है, इसका प्रत्येक श्लोक कृष्ण को आकृष्ट करने का महामंत्र है, इसमें कल्पना ही नहीं, दिव्यता के रससाम्राज्य का अंकित किया है, कवि ने । कर्णामृत रस-

संहिता है। इसमें व्रजकृष्ण अथवा विशेष रूप में वृन्दावनकृष्ण का ही उपास्य रूप वर्णित है। सौन्दर्यसारसर्वस्व नन्दात्मज की ही उपासना इसका मौलिक विषय है। विल्वमंगल ने इस काव्य में उज्ज्वल रस का प्रतिपादन किया। विल्वमंगल ने घोषणा की :

तत्कैशोरं तच्च वक्त्रारविंदं
तत्कारुण्यं ते च लीलाकटाक्षाः।
तत्सौन्दर्यं सा च मन्दस्मितश्रीः
सत्यं सत्यं दुर्लभं दैवतेषु॥
(कृष्णकर्णामृत १।५५)

श्रीकृष्ण अनुपम हैं, यह ध्रुव सत्य है, अकाट्य सत्य है कि वे ही परम देव हैं, अद्वितीय हैं, स्वर्ग-वैकुण्ठ, लोक-लोकांतर में ब्रह्मा, रुद्र, नारायण आदि देवों में वह बात कहाँ है, जो श्रीकृष्ण में हैं। श्रीकृष्ण की किशोरलीला कितनी रमणीय है। कितना सुंदर है, उन उज्ज्वल नीलमणि नन्दनन्दन का नील कमल के समान मुख! कितनी करुणा है उनके अनुरागी नयनों में। कितने मनोमोहक हैं, उनके कृपाकटाक्ष। सौंदर्य के तो वे श्यामसिन्धु ही हैं और उनके अरुण अधरों की मधुमयी अमृत मुसकान का तो कहना ही क्या है। यह बालचापल्य, यह रमणीय मुखकमल, कृपाकटाक्ष, यह सौन्दर्य और मुसकान संजीवनी—ये अन्य देवों में नितांत दुर्लभ हैं, इनके धनी तो श्रीकृष्ण ही हैं। विल्वमंगल ने श्रीकृष्ण को असीम मनोहरता के रूप में देखकर उनकी शृंगारजा भक्ति में ही अपनी उपासना अथवा साधना की प्राणप्रतिष्ठा की। उन्होंने चिंतामणि की कृपादृष्टि से, सोमगिरी की प्रपन्नता और श्रीकृष्ण के दिव्य लीलादर्शन से रसपद्धति का भक्तिमूलक रहस्य समझकर कृष्णकर्णामृत की रचना की।

महाभागवत विल्वमंगल के पूर्वाश्रम-जीवन ने उनके कर्णामृत प्रणयन को विशेष रूप से प्रभावित किया। उनके चरित्र के अध्ययन से पता चलता है कि वे पहले अत्यंत विलासी थे, चिंतामणि वारांगना में उनकी बड़ी आसक्ति थी। उसे देखे बिना उन्हें पलभर के लिए भी कल नहीं मिलता था। यद्यपि उनके पिता दामोदर और माता नीवी दोनों-के-दोनों बड़ी धार्मिक रुचि के थे, आचार-विचार के कड़े थे, उनसे विल्वमंगल प्रभावित होकर संध्यावंदन में रत रहते थे, तथापि वारांगना में उनकी आसक्ति बढ़ती ही चली गयी। एक दिन भीषण झंझावात और तूफान का सामना कर रात में नदी पारकर वे चिंतामणि के पास पहुँच गये। चिंतामणि ने समझाया कि इतनी आसक्ति यदि आपकी भगवान में होती, तो भवसागर से पार उतर जाते, विल्वमंगल के जीवन में यह अत्यंत परिवर्तनकारी घटना सिद्ध हुई, वें चिंतामणि के सान्निध्य से भगवान श्रीकृष्ण के रूप के रसिक उपासक बन

गये। कृष्णकर्णामृत की रचना का यही शिलान्यास स्वीकार किया जा सकता है। संध्या-वंदन में रत रहने वाले परम शैव लीलाशुक विल्वमंगल, चिंतामणि के मार्मिक उपदेश से परम वैष्णव कृष्णप्रेमी हो गये। उनकी काव्यभारती बोल उठी :

चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे
शिक्षागुरुश्च भगवाञ्छिशिखिपिच्छमौलिः।
यत्पादकल्पतरुपल्लवशेखरेषु
लीलास्वयम्वररसं लभते जयश्रीः।
(कृष्णकर्णामृत १।१)

वारांगना चिन्तामणि, गुरुदेव सोमगिरि तथा मेरे शिक्षा गुरु भगवान मयूरपिच्छधारी श्रीकृष्ण की जय हो, जिनके चरण कल्पतरुपल्लव में—चरण नखदेश में विजयलक्ष्मी—साक्षात् सौन्दर्य रमणी रसमयी जयश्री सहज स्वेच्छा से लीला रस-परमानन्द रस, अथवा सरस विलास का आस्वादन करती है। चिन्तामणि ने बिल्वमंगल को कवि वना दिया, वे परम विरक्त सोमगिरि से दीक्षित होकर अपने आराध्य श्रीकृष्ण की खोज में विह्वल होकर वृन्दावन की ओर चल पड़े। उन्होंने संध्या-वंदन आदि को प्रणाम कर कहा :

संध्यावन्दनभद्रमस्तु भवते भोः स्नान तुभ्यं नमो।
भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम्॥
यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः।
स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे।
(कृष्णकर्णामृत २।१०७)

संध्या-वन्दन, देव, पितृ, ध्यान-पूजन चिंतन सब को प्रणाम है। मैं क्षमा का पात्र हूँ। मुझसे ये सब नहीं हो सकते हैं, मैं एकांत में वैठ कर श्रीकृष्ण के ध्यान से अपने पाप का अंत कर देता हूँ, बस यही मेरी साधना है, मुझे अब दूसरों की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। उनके जीवन का ध्येय कृष्ण गुणगान वन गया। उन्होंने भगवती सरस्वती से क्षमायाचना की कि हे देवि! अपने पेट-पालन के लिए मैंने आपको दुष्टों के समक्ष नचाया, यह वड़ी अनुचित वात थी, इस पाप का प्रायश्चित्त मैं गोपवेष में अवतरित भगवान विष्णु के गुणगान द्वारा करूँगा, उन्होंने प्रतिज्ञा की :

मातर्नातः परमनुचितं यत्खलानां पुरस्ता-
दस्ताशङ्कं जठरपिठरीपूर्तये नर्तितासि।
तत्क्षन्तव्यं सहजसरले वत्सले वाणि कुर्यां
प्रायश्चितं गुणगणनया गोपवेषस्य विष्णोः॥
(कृष्णकर्णामृत २।४)

वाणी की कृपा से वे भगवद्गुणगान में लग गये।

'चिन्तामणिसंग पाय के व्रजवधू-केलि बरनी अनूप।'

बिल्वमंगल ने भागवत के दशम स्कन्ध के शुक-वर्णन के अनुरूप कृष्णकर्णामृत

का स्वरूप निर्धारित किया; शुकदेव में अन्यतम श्रद्धा के प्रतीक स्वरूप लीलाशुक कहलाने में आत्मगौरव का अनुभव किया, उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि पुण्यचरित श्रीकृष्ण के चरणाश्रय से प्राणी निर्भय और दुःख से मुक्त हो जाता है।

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्॥
(श्रीमदभा. १०।१४।५८)

उन्होंने श्रीकृष्ण को नायक निर्धारित किया। वे पूर्ण सर्मापित थे, शरणागत थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की पूर्णता– अखंडता का समर्थन करश्रीमद्भागवत केस्वर में स्वर मिलाया :

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
(श्रीमद्भा. १।३।२८)

विल्वमंगल भगवद्सुख के मर्मज्ञ थे। उन्होंने श्रीकृष्ण के समस्त ऐश्वर्य, सौंदर्य और माधुर्य के निरूपण में कृष्णभक्ति के आचार्यों द्वारा निश्चित सेवा, उत्साह, सुरत, सहज और सिद्धांत–पांच सुखों की विधि प्रस्तुत कर दी। उनकी काव्यकारिता बोल उठी :

चापल्यसीम चपलानुभवैकसीम
चातुर्यसीम चतुराननशिल्पसीम।
सौरभ्यसीम सकलाद्भुतकेलिसीम
सौभाग्यसीम तदिदं व्रजभाग्यसीम॥
(कृष्णकर्णामृत १।७४)

अपने उपास्य के प्रत्येक गुण को विल्वमंगल ने असीम ही देखा। कृष्णकर्णामृत श्रीकृष्ण की लीला की पूर्णता का अखंडकाव्य है। इसमें ब्रजकृष्ण, वृन्दावनकृष्ण और गोपांगनावल्लभ मधुर कृष्ण, अथवा रसकृष्ण की ऐश्वर्य-लीला और सौंदर्य तथा माधुर्य का ही चित्रण किया गया है। ऐश्वर्य-निरूपण में कवि ने ब्रजकृष्ण की बाल-लीलाओं की ओर संकेत किया है, सौंदर्य बोध में वृन्दावन में रमण करनेवाले श्यामीभूत कृष्ण वर्णित हैं, तथा माधुर्य के अन्तर्गत गोपीप्रेम का रस-सिन्धु प्रवाहित किया गया है।

कवि की विज्ञप्ति है :

परभिममुपदेशमाद्रियध्वं
निगभवनेषु नितान्तचारखिन्नाः।
विचिनुत भवनेषु वल्लवीना
मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥
(कृष्णकर्णामृत २।२८)

निगम में ब्रह्म को खोजने वाले परिश्रांत लोगों, ब्रह्म-उपनिषदों का सारतत्व तो प्राणमय होकर श्रीकृष्ण रूप में, गोपांगना के घर में ओखली में बंधा पड़ा है, खोजना हो तो वहीं खोज लो।

श्रीकृष्ण सौंदर्यसारसर्वस्व हैं, ऐसा तत्वदर्शी महात्माओं ने विचारपूर्वक कहा है। विल्वमंगल ने इस सौन्दर्यस्वीकृति परम्परा का कृष्णकर्णामृत में पूर्णरूप से निर्वाह किया है।

*

राजकमल चौधरी

श्रीकृष्ण लीला और आधुनिक समाज-जीवन

श्रीकृष्ण हमारी आत्मा में आश्रित श्रद्धा है, और श्रीराधा हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व की काम्य करुणा। इस श्रद्धा और करुणा का सम्मिलन ही जीव और ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष का सम्मिलन है : और यह सम्मिलन ही प्रेम है। यह प्रेम ही नूतन मानवता का एकमेव धर्म हो सकता है, और इसीकी आधार-शिला पर आधुनिक समाज जीवन का पुनर्संघटन (Reintegration) किया जा सकता है।

मैं यही विश्वास करता हूँ कि श्रीकृष्ण-लीला भी एक दार्शनिक प्रतीक-कथा है, और इस प्रतीक-कथा की घटनाओं को और स्थितियों को साधारण अर्थ में ग्रहण करने से कोई अर्थ नहीं प्राप्त हो सकता है।

"शतपथ ब्राह्मण' में लिखा गया है,—"न त्वं युयुत्से कतमच्च नाहः, न तेऽमित्रोमघवन्, कश्चनास्ति, मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुः;"— अर्थात्, हे इन्द्र, तुमने किसी दिन युद्ध नहीं किया, तुम्हारा कहीं कोई शत्रु नहीं है, और तुम्हारे सारे युद्धों की कहानियाँ माया (कल्पना) हैं।

मैं 'शतपथ ब्राह्मण' के इस कथन पर विश्वास करता हूँ, और इसी विश्वास से समस्त पौराणिक गाथाओं की व्याख्या ग्रहण करता हूँ। श्रीकृष्ण भगवान के विषय में बंगला सन्त-कवि चंडीदास की प्रसिद्ध उक्ति है—

संसार में एक अमृत ब्रह्मात्मक सत्य है
जो रस से तृप्त जोति से भरा और
आनन्द से परिपूर्ण है।
हृदय की एकान्त श्रद्धा ही कृष्णरूपी अमृत-
सत्य प्राप्त करने का एकमात्र पथ है।
चैतन्य को बन्धन में लाने के लिए
श्रद्धा के अतिरिक्त
और कोई रस्सी नहीं बनी है।

और, मैं श्रीकृष्ण-लीला को उसी भाव और उसी भूमि में ग्रहण नहीं कर पाता हूँ, जैसे रीतिकालीन कवियों ने, अथवा जयदेव और विद्यापति ने ग्रहण किया है। मैं धर्म को मर्यादा और शील मानता हूँ। मैं धर्म को रास और अभिसार और रसभोग नहीं मानना चाहता हूँ—श्रीकृष्ण-लीला के नाम पर भी नहीं!

मैं सिर्फ अपनी बात नहीं कहता, अपनी पीढ़ी के उन सारे युवकों की बात कहता हूँ, जिन्होंने धर्म-संस्कारमय संस्कृति के वातावरण में जन्म-ग्रहण किया है, बचपन से ही रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनी हैं, विद्यापति, सूरदास और मीराबाई के गीत सुने हैं—और फिर भी, जीवन और आचार और विचारों के किसी बोल में जो रूढ़िग्रस्त या 'आउट--डेटेड' नहीं हैं, जो विज्ञान और राजनीति और समकालीन समाज के प्रत्येक विकासचरण के साथ आगे बढ़ रहे हैं। मैं अपने विचारों के माध्यम से अपने समकालीन युवक-समाज की बात कहता हूँ कि धर्म को, और परम्परागत संस्कृति को, और श्रीकृष्ण को, और उनकी काव्यमय लौकिक-अलौकिक लीलाओं को हम गतानुगतिक भाव से स्वीकार करने में सर्वथा असमर्थ हैं!

किन्तु, हम धर्म-विरोधी नहीं हैं। हम धर्म को मानते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि धर्म उसी प्रकार भारतीय संस्कृति का अंग है, जिस प्रकार साहित्य अथवा शिल्प अथवा समाज-जीवन! और, हम भारतीय संस्कृति को मानते हैं, क्योंकि हमारी संस्कृति ही हमें और हमारे देश-समाज को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती है। हमारी संस्कृति हमें विश्व की अन्य सारी वस्तुओं से अधिक प्रिय है। संस्कृति ही हमारी स्वाधीनता है। यह सांस्कृतिक स्वाधीनता हमने ग्रीक, शक, हूण, पठान, मुगल, अँग्रेज, किसी भी विदेशी विजेता के आक्रमण और साम्राज्य-विस्तार से नष्ट नहीं होने दी। हमने संस्कृति को क़ायम रखा, और हमने धर्म को क़ायम रखा, और हमने अपना स्वाधीन व्यक्तित्व क़ायम रखा!

और, हमारे इस स्वाधीन व्यक्तित्व को समय की नास्तिकता, अथवा पश्चिम की आधुनिकता, अथवा अस्तित्ववादी भ्रामक विचारधारा, अथवा यन्त्र-युग की जड़ता समाप्त करने में समर्थ नहीं हो सकती है। हम अन्ध नहीं हैं, किन्तु हम विश्वासी अवश्य हैं, और निरे तर्क

के लिए हम मूर्ति को खण्डित नहीं कर सकते, प्रतीक को पार्थिव आवरण से ढक नहीं सकते, आग को धुआँ नहीं कह सकते हैं। तर्क तो हर कुछ तोड़ डालता हैं। तर्क निर्माण नहीं करता है, निर्मित के प्रति शंका प्रकट करता है। हम तर्क नहीं करते, न्याय करते हैं। हम न्याय नहीं करते, विश्वास करते हैं। हम विश्वास भी नहीं करते, प्रेम करते हैं। और, प्रेम करते हैं तो किसी तर्क का प्रश्न ही नहीं उठता है। तर्क निम्न वस्तु है। ऊँची वस्तु है प्रेम !

जड़ जगत के प्रति एवं इसके साथ ही चेतन आत्मा के प्रति अबाध-अदम्य प्रेम ही श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य है। रहस्य और कारण और उद्देश्य और प्रतीक है प्रेम ! और, इस प्रेम के आग्रह को आत्मीकृत किये बिना यह महागाथा, यह महान प्रतीक-कथा व्याख्यायित एवं अर्थीकृत नहीं हो सकती है।

यह प्रेम दो मूल तत्त्वों से बना है,– करुणा, और श्रद्धा। करुणा और श्रद्धा के आत्म-मिलन की यौगिक स्थिति ही प्रेम है। प्रेम योग करता है। प्रेम आश्रित के प्रति श्रद्धा करता है और काम्य के प्रति करुणा करता है। साधारण सांसारिकता की दृष्टि से देखने पर मेरी इस बात में विरोधाभास दीख सकता है ! क्योंकि, सामान्यतः हम लोग आश्रित को ही करुणा और काम्य को ही श्रद्धा देते हैं। किन्तु, इस सांसारिक व्यवहार में करुणा होती है, श्रद्धा भी होती है, केवल प्रेम नहीं होता !

जब प्रेम होता है तो लौकिक ही अलौकिक बन जाता है, सांसारिकता ही मुक्ति बन जाती है– और जीवन्मुक्ति की यौगिक स्थिति में आश्रित ही आश्रय देता है, काम्य ही शराणागत होता है, और करुणा और श्रद्धा परस्पर इस प्रकार सम्मिश्रित हो जाते हैं कि केवल एक ही अमृत रस बच जाता है–प्रेम !

"जा तन की झाँई परत, स्याम हरित द्युति होय"–इस पंक्ति में बिहारीलाल ने शायद, इसी स्वाधीन (अस्तित्त्व-स्वाधीन) स्थिति की ओर इशारा किया है। यह स्थिति राधिका और श्रीकृष्ण के मिलन की स्थिति हैं।

किन्तु, आज हम जिस सामाजिक स्थिति में हैं, और जो सामूहिक जीवन बिता रहे हैं, उसमें मिलन का प्रश्न ही नहीं उठता। चारों ओर विच्छेद ही विच्छेद है। विच्छेद और असंतोष और पराजय और भौतिक लालसाओं की तृप्ति के लिए विश्व व्यापी हाहाकार ! मनुष्य और मशीनों में कोई अन्तर नहीं रह गया है। ऊँचे-ऊँचे दफ़्तर हैं। मीलों तक फैले हुए कल-कारखाने हैं। और, सिर के ऊपर से गोले-बारूदों से लदे

हवाई जहाज उड़ते रहते हैं। और, नौकरी के लिए, धन्धों के लिए, रोटी के टुकड़ों के लिए और मुनाफे की रक़म के लिए सभी लोग पागल हैं। अपराध बढ़ रहे हैं; अपराधी-अनाचारी बढ़ रहे हैं। जीवन दूर खिसकता जा रहा है। मृत्यु नज़दीक आती जा रही है। और, नैतिकता?

नैतिकता नहीं है। कहीं नहीं है। फिर धर्म कहाँ रहेगा, क्यों रहेगा? धर्म प्रवृत्तियों को, पशु-प्रवृत्तियों को रोकता है। धर्म सीमा-निर्धारण करता है। आज जीवन और मरण, और इनके मध्य किये गये कार्यों की कोई सीमा नहीं है। कोई निवृत्ति नहीं रह गयी है। इसीलिए, धर्म कुछ लोगों के लिए व्यवसाय बन गया है, और अधिकांश लोगों के लिए विलासिता! साधारण जन के लिए धर्म का अवकाश कहाँ है?

भगवान श्रीकृष्ण की जिस सगुण उपासना ने इस शताब्दी के आरम्भ तक रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों का कीर्ति-प्रसारण किया—वह उपासना इस समय क्या मात्र एक औपचारिकता नहीं बन गयी है?

ब्रिटिश दार्शनिक व्हाइतहेड ने अपने लेख 'धर्म और विज्ञान' में लिखा है कि अगर धर्म को जीवित रहना है, और अब भी भटकी हुई मानवता का पथ-प्रदर्शन करना है, तो उसे विज्ञान की ही तरह वैज्ञानिक और दर्शन-सम्मत बनना होगा। मैं विज्ञान और धर्म, दोनों की प्रक्रिया (विकास-प्रक्रिया) को एकरूप नहीं मानता हूँ— किन्तु, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि दर्शन और मीमांसा के बिना धर्म की भी गति नहीं है। और, यह सच है कि धर्म का विकास रुक गया है, क्योंकि वह अपने-आप को ही दुहराता जा रहा है, और दर्शन के बौद्धिक विकास के समानान्तर नहीं चल रहा है। दर्शन की बौद्धिकता और धर्म की आध्यात्मिकता, दोनों ही मूल में एक ही हैं— और, दोनों के सही सामंजस्य के बिना समाज में आस्तिक जीवनधारा और आस्थामूलक प्राण प्रवाह की स्थापना नहीं हो सकती है।

किन्तु, अपनी औपचारिकताओं के कारण धर्म पुराने सिक्के की तरह घिस गया है। दर्शन के नये सिद्धान्तों और न्याय-मीमांसा के नय सूत्रों से यह सिक्का फिर से गढ़ने की ज़रूरत है। सिक्के पर मूर्ति वही रहे, छाप वही रहे, मूल्य वही रहे, किन्तु, उपासना का रूप बदल दिया जाय, साधना का स्वरूप बदल दिया जाय—और, केवल निर्मम आस्था-विश्वास ही नहीं, दया और करुणा और सहानुभूति की शक्ति से भी धर्म को स्वीकार किया जाय!

श्रीकृष्ण-चरित्र जिस प्रकार 'हरिवंश' में वर्णित है, क्या आज का बुद्धिजीवी मनुष्य उसे ठीक उसी रूप में स्वीकार कर सकता है? और, क्या उसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए? श्रीकृष्ण की वाल्यकालीन लीलाओं, कंस द्वारा भेजे गये राक्षसों के हनन, गोवर्धन-उत्तोलन आदि अलौकिक-अस्वाभाविक घटनाओं पर विचार नहीं भी किया जाय– तो क्या आधुनिक मनुष्य की सामाजिक नैतिकता और ज्ञान-बुद्धि श्रीकृष्ण के समाजिक और राजकीय जीवन की घटनाओं और प्रणय-लीलाओं को स्वीकार कर सकेगी? सोलह हजार रानियों की वात नहीं की जाय, फिर भी, सत्यभामा, रुक्मिणी और श्रीराधा-श्रीकृष्ण की इन तीन प्रेयसियों को भी आज सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल सकती है! और, अगर श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं, तो उनकी लीलाओं को लौकिक घटनाओं का स्वरूप नहीं दिया जाना चाहिए।

आनन्द कुमारस्वामी ने 'देवासुरम्' शब्द की टीका करते हुए एकदम सही लिखा है, कि दर्शनशास्त्र में जिस प्रकार शब्द ही अर्थ प्रतीक वन जाते हैं, उसी प्रकार आध्यात्म-विद्या में पार्थिव घटनाएँ ही अनादि अगोचर की व्याख्या की भाषा वन जाती हैं।

आज की परिस्थितियों में आकर हम यह भाषा भूल गये हैं, और आवश्यकता है कि आध्यातम का मर्म समझने के लिए, श्रीकृष्ण-लीला का सही अर्थ और सही उद्देश्य समझने के लिए, नयी धार्मिक भाषा का निर्माण किया जाय। स्वयं शंकराचार्य ने उपनिषदों की पुरानी टीकाओं को अस्वीकृत किया था, और उन्हें नया भाष्य दिया था। हमें फिर नये भाष्य की आवश्यकता आ पड़ी है। क्योंकि, धर्म पुराने सिक्के की तरह घिस गया है, और हम श्रीभगवद्गींता के श्रीकृष्ण को भूल गये हैं, और हमें याद रह गयी है केवल जयदेव की वाणी,–

धीर समीरे यमुना तीरे
वसति वने वनमाली!

जब कि, श्रीकृष्ण यह वनमाली नहीं हैं, जो कुंजवन में वैठा किसी राधा--प्रेयसी की प्रतीक्षा कर रहा है। श्रीकृष्ण हमारी आत्मा में आश्रित श्रद्धा है, और श्रीराधा हमारे संपूर्ण अस्तित्व की काम्य करुणा! इस श्रद्धा और करुणा का सम्मिलन ही जीव और ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष का सम्मिलन है–और यह सम्मिलन ही प्रेम है!

इस महाचेतन प्रेम को इस सांसारिक-व्यावहारिक-लौकिक मापदंड से माप सकें– यह न धर्म को स्वीकार होगा, और न आज के बुद्धिजीवी मनुष्य को! इसीलिए मापदंड वदलने की जरूरत है। व्याख्या वदलने की जरूरत है। श्रृंगार-

काव्य के श्रीकृष्ण को फिर से आध्यात्म-जिज्ञासा का श्रीकृष्ण बनाने की ज़रूरत है—नहीं तो बुद्धिहीन लोग पूछते ही रहेंगे, राधारानी क्या श्रीकृष्ण के मामाजी की पत्नी थीं ? और 'मनुस्मृति' लिखनेवाला धर्म इस मूर्ख-प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे सकेगा !

फिलिप द्वारा अनूदित 'न्यू-टेस्तामेन्ट' की भूमिका में विख्यात शब्दशास्त्री, प्रोफेसर सी. एस. लेविस ने लिखा है—"१६११ में सम्राट जेम्स प्रथम ने पहले-पहल बाइबिल का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। उस समय के लिए जेम्स का अनुवाद सरल, सुन्दर और परम उपयुक्त था। किंतु, आज के लिए वह अनुवाद उपयुक्त नहीं है। क्योंकि, आज भाषा बदल गयी है, शब्दों के अर्थ और प्रतीक बदल गये हैं। सोलहवीं सदी में कही गयी बात आज के मनुष्य को वही अर्थ नहीं दे सकेगी। इसीलिए, बाइबिल के नये अनुवाद की आवश्यकता हुई है !"

जब धर्म-ग्रंथ के नये अनुवाद की आवश्यकता पड़ रही है, तो धर्म-सूत्रों का नया भाष्य करना तो और भी अनिवार्य है। और, हमारे धर्म की सारी कथाएँ, आख्यायिकाएँ, गाथाएँ तो भाष्य और व्याख्याओं पर ही आश्रित हैं।

*

सुकुञ्चित रेशमी
केश राशि के लिए

परफिउमड्
कैस्टर
आयल
व्यवहार करें

यह मनोरम सुगन्धयुक्त केश तैल है।

बंगाल केमिकल
कलकत्ता · बम्बई · कानपुर

कृष्ण चैतन्य

श्रीकृष्ण-कथा का पौराणिक सत्य

हमारे देश में जिन पौराणिक यथार्थों और आख्यायिकाओं ने साहित्य, संगीत, चित्र-कला, मूर्ति-कला और धार्मिक-दार्शनिक विचार-धारा को सबसे अधिक प्रेरित अथवा अनुप्राणित किया है, उनमें श्रीकृष्ण-कथा का महत्व सबसे अधिक है। युग बीत जाते हैं, काल अपनी अबाध गति से चलता जाता है, फिर भी इस पौराणिक 'मिथ' का प्रवाह-स्रोत सूख नहीं पाता है। क्या इसीलिए नहीं, कि श्रीकृष्ण सर्वतोमुखी सनातन जीवन-लीला के चिरन्तन् प्रगतिमान सत्यों के एक ऐसे अप्रतिम संयुक्त व्यक्तित्व हैं, जिसकी तुलना में हर अन्य पौराणिक व्यक्तित्व कम पड़ जाते हैं।

योरप में जब तक रोमाण्टिसिज़्म की काव्यधारा ने धार्मिक "मिथ" की काव्यात्मक विशेषताएँ आग्रहपूर्वक ग्रहण नहीं कीं—यूरोपीय दिमाग़ इन पौराणिक यथार्थों के प्रति अन्धविश्वासी ही बना रहा। रूढ़िवादी दिमाग़ उन सारे पौराणिक यथार्थों को उनके शाब्दिक अर्थ में ही स्वीकारता रहा, आकस्मिकता एवं संयोग के कारण धार्मिक विश्वासों में जो बातें आरम्भ से ही स्वीकृत हो गयी थीं। सुधारक मार्टिन लथर ने कहा था—"अगर अदन के बाग़ और साँप की कहानियाँ, जोनाह और व्हेल-मछली, जोशुआ और सूरज की कहानियाँ 'स्क्रिप्चर' में नहीं होतीं, तो मैं उन्हें दन्तकथा मानकर उनकी हँसी उड़ाता।"

अधिक भावुक और बुद्धिवादी, किंतु, फिर भी रूढ़िग्रस्त व्यक्ति अपनी धार्मिक आस्थाओं के कारण इन पौराणिक यथार्थों पर अविश्वास तो नहीं कर पाये—और इनमें ही नये अर्थ और नयी व्याख्याएँ ढूंढने लगे। ये प्रतीकात्मक व्याख्याएँ

क्रिश्चियन नीति के आरम्भिक काल से ही की जाने लगीं। अगस्तीन पाँचवीं सदी में हुए, और ओरिजेन तो उनसे भी पहले तीसरी सदी में। किंतु, जो पौराणिक आख्यायिकाएँ धार्मिक विश्वासों से संपूर्णतः संबंधित नहीं थीं, उनके प्रति बुद्धिवादी व्यक्तियों का मन विरक्ति से वैसे ही भरने लगा, जिस प्रकार सभ्य-सुसंस्कृत व्यक्ति लोकसंस्कृति की परम्पराओं और लोकगाथाओं के प्रति विरक्त हो जाते हैं।

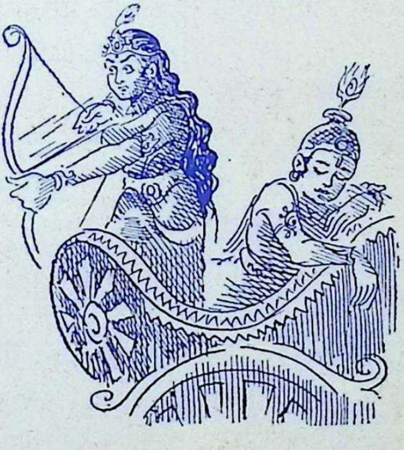

हमारे देश में जिन पौराणिक यथार्थों और आख्यायिकाओं और "मिथ" ने साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला और धार्मिक-दार्शनिक विचारधारा को सबसे अधिक प्रेरित तथा अनुप्राणित किया है—उनमें, श्रीकृष्ण-कथा का महत्व सबसे अधिक है। युग वीतते जाते हैं, काल अपनी अबाध गति से चलता जाता है, फिर भी इस पौराणिक "मिथ" का प्रवाह-स्रोत सूख नहीं पाता है।

छान्दोग्य-उपनिषद् में एक देवकीपुत्र कृष्ण का वर्णन है, जो गौड़-ऋषि अंगिरस का शिष्य तथा एक वैदिक देवता था। महाभारत के प्रारम्भिक खण्ड कृष्ण को एक क्षत्रिय सम्राट, जन-नायक और पाण्डवों के शुभचिंतक के रूप में चित्रित करते हैं। महाभारत के अंतिम खंड 'हरिवंश' में उन्हें परब्रह्म और ईश्वर का साक्षात् रूप माना गया है।

जैसा कि इतिहासकार बार्थ (barth) कहता है, क्या श्रीकृष्ण एक सूर्यवंशी देवता थे? या, जैसा भारतविद् कीथ (keith) मानता है, प्राकृतिक देवता थे? या, वे गंगा-तट की समतल-भूमि में वास करनेवाली एक जंगली जाति के कौलिक देवता थे, जैसा हॉपकिन्स (hopkins) मानता है? जैसा उनके श्याम वर्ण से प्रकट है, क्या श्रीकृष्ण एक आर्य-पूर्व देवता थे? या नील आकाश की अनन्तता के प्रतीक के रूप में ही श्रीकृष्ण के स्वरूप को नील-श्यामवर्णी कहा गया है? जैसा कि इतिहासज्ञ सिडविक (sedwick), विन्टरनिज़ (winkrnitz), और केनेडी (kennedy) कहते हैं, क्या दो, तीन, या चार आदि-

कालीन लोकगाथाओं के नायकों को मिश्रित करके श्रीकृष्ण की कल्पना की गयी है ?

ये सारे प्रश्न इतिहासवेत्ताओं और धर्मवेत्ताओं के द्वारा हल किये जाने के लिए हैं। हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि समाज-मानस और व्यक्ति-मानस पर श्रीकृष्ण की पौराणिक लीलाओं के प्रभाव और इस प्रभाव से अनुप्रेरित सृजनात्मक कल्पनाशीलता को देखें और समझने की कोशिश करें।

"मधुरता से भी अधिक मधुर, सुंदरता से भी अधिक सुंदर श्रीकृष्ण का वाल्य-जीवन मेरे हृदय को रसमय वनाता है"—संस्कृत कवि ने लिखा है। और इसीकी गूंज मध्ययुगीन क्रिश्चियन गीतों में भी मिलती है। क्लेयरवैक्स के वर्नार्ड का गीत है— "ईश्वर के पुत्र जीजस से कोई गीत अधिक मधुर नहीं है, कोई कथा अधिक प्यारी नहीं है, कोई विचार अधिक सुंदर नहीं है!"

फिर भी, योरप के धार्मिक कला-शिल्प में यह सत्य अखंडित ही रह जाता है कि पालने (cradle) पर क्रॉस की छाया पड़ती है, और माँ और बच्चे (madonna and child) से अधिक प्रभावोत्पादक चित्र सलीव का ही है। अर्थात् योरप की कला में आकर भी धर्म-धर्म ही वना रह जाता है, परम पवित्र एवं कठोर—और, कला की कोमलताएँ उसमें आ नहीं पाती हैं। बैजन्टाइन (byzantine) चित्रकला ने हमें शिशु के दुखग्रस्त एवं प्रौढ़ चित्र दिये हैं। और रेनासाँ-काल की कूची ने भी जो सुंदर शिशु-चित्र दिये, उन्हें भी अतिरिक्त धार्मिकता ने और अंतिम सत्य (ultimate destiny) के चित्रण ने वरवाद कर रखा है।

किंतु, भारतीय परम्परा ऐसी नहीं है। भारतीय कला-शिल्प की परम्परा में आकर धर्म मानवीय संवेदनाओं के द्वारा कोमल वना लिया गया है। 'सूरसागर' में हमें अन्ध सूरदास से साक्षात्कार होता है, जिसकी कोमल-भावुक आंतरिक दृष्टि में शिशु श्रीकृष्ण यशोदा से शिकायत करते हैं कि उन्हें वलराम यह कहकर चिढ़ा रहे हैं कि तुम यशोदा के पुत्र नहीं हो, वाज़ार से ख़रीद लाये गये काले-कलूटे लड़के हो! वम्वई के ट्रेज़रीवाला-संग्रह में एक प्राचीन राजपूत-चित्र है, जिसमें यशोदा काले-कलूटे कृष्ण को नहला रही है। स्वस्थ-वलिष्ठ वालक कृष्ण इस स्नान-अत्याचार का विरोध कर रहे हैं, मगर यशोदा जवरदस्ती पानी ढाल रही हैं, और कई गोपी सुंदरियाँ मुस्कुराती हुई पास खड़ी तमाशा देख रही हैं।

यह कोमलता और यह मानवीय संवेदनता विश्व के किसी अन्य धर्म से प्राणित-

पोषित कला-शिल्प में संभव नहीं है !

यही शिशु श्रीकृष्ण किशोरावस्था में आजाते हैं–और, 'गोधूलि-वेला' के राजपूत-शैली के चित्रों में सायंकाल की नीरवता और शांति फैलने लगती है। जब कालिन्दी के तट पर चरती हुई गायें वापस लौटती हैं, और, जब किशोर श्रीकृष्ण युवक हो जाते हैं, तो एक नयी काव्यमय परम्परा का जन्म होता है। भारतीय लोकसंस्कृति और लोकपरम्परा के लिए, आत्मा और परब्रह्म के मिलन के रागात्मक प्रतीक के रूप में दैहिक मिलन के काव्यमय चित्र उपस्थित करना नयी घटना नहीं हैं।

हमें स्मरण यह रखना चाहिए कि श्रीमद्भागवत में वर्णित, गोपियों के साथ श्रीकृष्ण के रास-विहार में केवल रागात्मक-रसात्मक चित्रण ही नहीं है, आत्मा की पवित्रमय पुकार भी है। इस चित्रण में व्यवहृत काव्य-भाषा और उपमाएँ प्रभावोत्पादन के लिए ही हैं।

"वर्षा का आगमन हुआ। चन्द्रमा बादलों में छिप गया, जैसे अहंकार आत्मा को छिपा लेता है। दैविक बरदानों की भाँति पानी बरसने लगा।....तब शरद-ऋतु आयी। तपस्या-निरत मन की भाँति जल और आकाश निर्मल-पारदर्शी हो गये। सड़कों पर फैली कीचड़ मूर्खों की आकांक्षाओं की तरह गायब होने लगी।..... आत्म-लीन आत्मा की तरह समुद्र शांत था। चन्द्रमा सत्य-ज्ञान की तरह जाज्वल्यमान ......"–यही भागवत का वर्णन हैं।

सूफियों का दर्शन वैष्णव सन्तों के दर्शन से बहुत मिलता-जुलता है। किंतु, इस्लामी परम्परा में दर्शन की कल्पनात्मक धारा कविता के छन्दों में ही सीमित रही–धर्म ने उसे ग्रहण नहीं किया। और यह कल्पनात्मक धारा इस्लामी चित्र कला में फलवती नहीं हो सकी। तेरेसा (Teresa) योरप की मीराबाई थी, और ईश्वर के रूप-वर्णन पर प्रतिबन्ध लगाने में क्रिश्चिय निती ने इस्लाम का अनुकरण नहीं किया। फिर भी, योरप में भी यह धारा कविता तक ही सीमित रही। अन्य कलाओं पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सका।

किंतु, अपने देश में जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, गोविन्ददास और मीराबाई के गीतों के अलावा श्रीकृष्ण, और राधा की महागाथा से संबंधित असंख्य चित्रकृतियाँ हैं। श्रीकृष्ण और राधा परब्रह्म के युगल-रूप तो बने ही रहे, जन-जीवन में भी उतर आये सामान्य स्त्री-पुरुष बन कर ! राधा विरहिणी नायिका की प्रतीक बन गयीं। वर्षा-विहार के अनुपम चित्रों में बारह मासा के लोकगीतों में, पत-चित्रण में, अलपना में, हर जगह राधा-कृष्ण को भावमय-रूपमय स्थान मिला।

[शेष पृष्ठ ९१ पर]

चन्द्रभूषण मिश्र

भारतीय शिल्प में श्रीकृष्ण-लीला

जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं में जन-जीवन और लोक-व्यवहार की झाँकी मिलती है, उसी प्रकार उनके जीवन से सम्बन्धित शिल्पाकृतियों में भी लोक-कला की विभिन्न शैलियों का प्रतिनिधित्व हुआ है।

भारतीय जन जीवन की अन्तरात्मा में व्याप्त भगवान कृष्ण और उनकी लीलाओं का चित्रण एवं अंकन, भारतीय शिल्प में अपेक्षाकृत कम हुआ है। इस अभाव का कारण था भगवान कृष्ण का जनजीवन में घुल–मिल जाना। उनकी लीलायें भारतीय जीवन की उन अन्तरतम भूमियों पर हो रही थीं जहाँ तूलिकाओं और छेनियों का बंधन न था, जहाँ आस्था और अनुभूतिजन्य प्रत्यक्षीकरण मुख्य था।

भगवान कृष्ण के जीवन से संबन्धित शिल्पों का स्वभावतः सर्वप्रथम मथुरा में ही विकास हुआ। यहाँ प्राप्त हुए शिल्पों में तीन ही मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम वह खंडित शिलापट्ट जो स्थानीय गायत्री टीले से प्राप्त हुआ था–अब मथुरा संग्रहालय में है–मथुरा से गोकुल जाते हुए वसुदेव जी यमुना पार कर रहे हैं–कृष्ण सिर के ऊपर सूप में रखे हुए हैं– नदी का प्रवाह लहरों की धारीदार टेढ़ी रेखाओं द्वारा अंकित किया गया है– कछुए, मछली आदि जल में तैर रहे हैं– कुछ दूर पर नागराज स्थित हैं। यह ईसा सन् की प्रथम शती का शिलापट्ट कृष्ण संवन्धी मूर्तियों में सर्व प्राचीन है।

दूसरा गोवर्धन धारण का दृष्य उपस्थित करता है–कृष्ण के बायें हाथ की हँथेली पर पर्वत, नीचे गौवें और ग्वालबाल–यह प्रतिमा विश्राम घाट के ऊपर स्थित नारायण मंदिर के पास से मिली थी– इसका काल छठीं शती माना जाता है। भारत कला-भवन वाराणसी की मूर्ति भी इसी की समकालीन मानी जा सकती है– कला भवन की यह गोवर्धनधारी भीमकाय मूर्ति अर्लईपुर नामक स्थान के झरिया

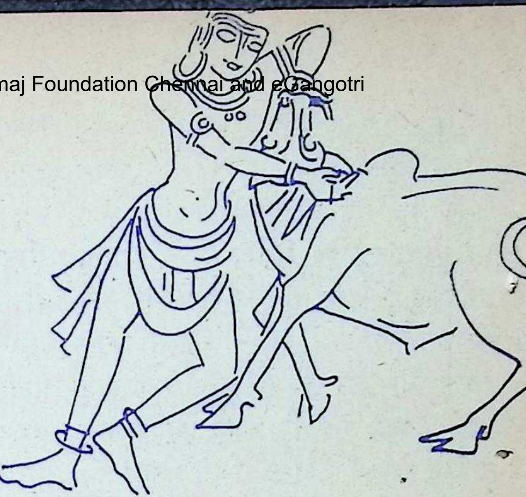

वादामी गुफा की एक शिल्पाकृति का
श्री दिनेश शाह द्वारा रेखांकन

तलाव (प्राचीन पुष्पा सरोवर) से प्राप्त हुई थी। कला भवन की एक अन्य उकेरी में माखन चोरी का दृष्य अंकित है। बाल गोपाल माखन चुरा रहे हैं तथा माता यशोदा उस का मंथन कर रही हैं। पार्श्व में सर पर घट रखे दो ग्वाल-बालायें खड़ी हैं। यह गोवर्धनधारी से प्राचीन है तथा इसे चौथी शती का कहा जा सकता है।

मथुरा से प्राप्त तीसरे शिलाखंड पर कालिय दमन का अंकन है जिसे प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी ने प्राप्त किया था। यद्यपि यह मूर्ति भग्नावस्था में मिली, फिर भी अन्य मूर्तियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर और महत्वपूर्ण हैं– सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार तथा कलाई पर कटक धारण किये हुए भगवान कृष्ण अद्वितीय लग रहे हैं–सिर के ऊपर नागत्व सूचक फणों की व्यवस्था की गयी है। बायें पैर के पास नागराज्ञी हाथों में उपहार लिए खड़ी है जिसकी दयनीय मुद्रा तथा केशपाश सुन्दर एवं दर्शनीय हैं। यह मूर्ति प्रायः पाँचवीं शती की है तथा कालिय दमन की सबसे प्राचीन मूर्ति है। यह कंस के किले की खुदाई में प्राप्त हुई थी।

दूसरा प्रमुख व प्राचीन स्थान कृष्ण मूर्तियों का मन्दोर है जो जोधपुर से पाँच मील उत्तर में है। यहाँ प्राचीनतम दो तोरणों की प्राप्ति डा. भंडारकर को हुई थी। लाल बलुआ पत्थर के वने ये तोरण स्तंभ भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का अंकन उपस्थित करते हैं। प्रथम फलक गोवर्धन धारण का है जो 'हरिवंश' में वर्णित कथा का स्वरूप उपस्थित करता है– गोवर्धन की सात चोटियाँ जिस पर सिंह, सिंहिनी तथा नागों का अंकन हुआ है– कृष्ण के बायें तीन खड़ी तथा दो बैठी आकृतियाँ हैं– जिनमें एक वलराम भी हैं। नीचे गायों का अंकन हुआ है। दूसरा फलक माखन चोरी का है– यशोदा दधिमंथन कर रही हैं, शिशु-कृष्ण उसे चुराने के लिए प्रयत्नशील हैं। सबसे निचले फलक में शकट-भंग का दृश्य है।

दूसरे तोरणस्तंभ में केवल चार फलक ही दृष्टिगत हैं। शीर्षस्थ दो फलक धेनुक वध के हैं जो हरिवंश में वर्णित कथा पर आधारित हैं। द्वितीय फलक कालिय दमन का है–कृष्ण बायें पैर से कालिय नाग के फण को तथा दाहिने पैर से उसके शरीर को दबा रहे हैं और बायें हाथ द्वारा उसकी पूँछ को जकड़े हुए हैं तथा दाहिने हाथ में तीन फूलों का गुच्छा है। कालिय का शिरोभाग मानवीय है।

जहाँ तक वस्त्र और अलंकरण का संबन्ध है, शरीर के अधोभाग में सिंहचर्म है, आभूषणों में गले में दो हार, कानों में वड़े कर्णकुण्डल सुशोभित हैं। यह कलाकृतियाँ साँची के तोरण द्वारों की शिल्पाकृतियों से काफी साम्य रखती हैं। यहाँ के गोवर्धन धारण का दृश्य अजन्ता से मेल खाता है। कृष्ण के दोनों हाथों में दो दो भुजवंध हैं तथा केशराशि का अंकन अपूर्व है। डा. भंडारकर ने इन्हें पूर्वगुप्त काल का वतलाया है और इन्हें चौथी शती के पूर्व का मानने में असमर्थता प्रकट की है।

एक अन्य महत्व पूर्ण स्थान है वेत्रवती.

'टुबा' के सम्बन्ध में गुजराती के सुप्रख्यात हास्य लेखक क्या कहते हैं?

'मैं गंजेपन का शिकार हो गया हूँ और उत्तरोत्तर और भी अधिक होता जा रहा हूँ।' मेरे किसी लेख में ऐसा पढ़ कर भाई श्री बंदुकवाला ने मुझे उनके तेल 'टुबा' की दो शीशी भेज दी। उन्होंने जोर देकर लिखा था कि दस-बारह शीशी का उपयोग करने से आपको उक्त रोग से मुक्ति मिल जायगी। मेरा तो दृढ़ विश्वास था, एक बार बाल झड़ जाने और गंजापन आ जाने पर पुनः वाल का आना असम्भव है। किंतु जब किसी तेल का उपयोग करना ही है तो यह क्या बुरा? ऐसा समझकर बिना किसी फलाकांक्षा के मैंने पाँच शीशियों का उपयोग कर डाला। इससे गंजापन विशुद्धरूप से समाप्त तो नहीं हुआ, किंतु प्रथम शीशी के उपयोग के बाद ही उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी। आगे चल कर जहाँ एक भी बल नहीं था; वहाँ कहीं-कहीं नये वाल आने शुरू हो गये। ऐसा मैंने ही अनुभव किया हो, यह वात नहीं। मुझे देखनेवालों का भी यही अनुमान था। इससे इतना लाभ होगा, इसकी मुझे किंचित भी आशा नही थी। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निस्संकोच कह सकता हूँ कि 'टुबा' के उपयोग से भले ही संपूर्णरूप से लाभ न हो, फिर भी आपके रोग की प्रगति अवश्य रुक जायगी। साथ ही यह थोड़ा-बहुत लाभ भी पहुँचायेगा।

'टुबा हेयर टानिक' झड़नेवाले बालों को रोकने का एक प्रभावशाली एवं विश्वसनीय इलाज है।

श्री ज्योतीन्द्र ह. दवे

४ औंस की दो शीशिओंका पोस्टेज पेकिंग के साथ दाम रु. ९–०–० मनिआर्डरसे भेजना होगा; वी. पी. से माल नहीं भेजा जाता।

टुबा प्रोडक्ट्स, ९१, भाजीपाला स्ट्रीट, बम्बई–२.

के उपकूल पर अवस्थित देवगढ़ का दशावतार मंदिर, जिसकी जगती पीठ के शिला फलकों पर कृष्णलीला का अविस्मरणीय अंकन हुआ है– देवकी का अपने नवजात शिशु को वसुदेव के हाथ में देना, कृष्ण और बलराम को लिए हुए नन्द और यशोदा पृष्ठ भूमि में आसीन और अस्थानक गायें– कृष्ण जन्म वाले दृष्य में देवकी साड़ी पहने हैं और उनके केश बँधे हैं। द्वितीय फलक में यशोदा ग्राम्य वेशभूषा में ओढ़नी और लहँगा पहने हुए हैं। तीसरा दृष्य शकट लीला का है– पीठ के बल लेटे हुए कृष्ण दुग्ध शकट को वाम पैर से ठुकरा रहे हैं, जिसके ऊपर के तीन दुग्ध कलश लुढ़क कर गिर गये हैं। चतुर्थ दृष्य कृष्ण और सुदामा का है– मध्य में स्थित कृष्ण की लहराती अलकावली कृत्रिम ढंग से संयोजित हैं तथा दक्षिण में रुक्मिणी हैं।

इसी प्रकार मध्य भारत के पठारी नामक स्थान में तथा बंगाल के पहाड़पुर के उत्खनन में भी कृष्णलीला संवन्धी शिल्पों की प्राप्ति हुई है। पठारी का कृष्ण जन्म का अंकन उल्लेखनीय है– यशोदा के बगल में कृष्ण शिशु के रूप में लेटे अंकित हैं तथा पार्श्व में पाँच परिचारिकायें खड़ी हैं। यहाँ का अंकन भी देवगढ़ का समकालीन है। पहाड़पुर में भी कृष्णलीला संवन्धी दृष्य प्राप्त हुए हैं जो सातवीं शती की गुप्त कला का स्थानीय स्वरूप उपस्थित करते हैं।

उपरिवर्णित स्थानों के अतिरिक्त, दक्षिण के महाबलीपुरम्, राजस्थान, गुजरात के कतिपय उत्खननों तथा त्रिपुरी और खजुराहो जैसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों में भी कृष्णलीला के अंकनों की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान कृष्ण की लीलाओं में जनजीवन और लोकव्यवहार की झांकी मिलती है उसी प्रकार उनके जीवन से संबन्धित शिल्पाकृतियों में भी लोककला की विभिन्न शैलियों का प्रतिनिधन हुआ हैं।

★

[पृष्ठ ८७ का शेषांश]

और, इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण-चरित्र की एक और दिशा भी है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र राजनेता हैं, जिन्होंने युद्धभूमि को ही अपने आध्यात्मिक उपदेश का स्थान चुना। और, इस प्रकार उन्होंने स्पष्टतः इंगित किया कि कर्त्तव्य-पूर्ति का गतिरोध अस्तित्व का गतिरोध है, जिसे केवल सशक्त नैतिक निर्णय से ही मिटाया जा सकता है।

इस इंगित से आजके हमारे देश को प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। क्या हम लोगों में ऐसा कोई शिल्पी नहीं है, जो श्रीकृष्ण-लीला की इस दिशा को अपने चित्रों और मूर्तियों में अभिव्यक्ति दे सके?

● ● ●

करसनदास माणेक

प्रभु का अन्तिम वचन

> '...मैं यही कह रहा था दारुक, कि तुम लोग जिसको पूर्णावतार कहते हो, उस मेरे आठवें अवतार में जगत ने मुझे एक बात विशेष रूप से सिखायी है.... और वह यह कि आगामी काल में जगत का उद्धार स्वयम् उसके अपने ही हाथों होगा, किसी उद्धारक के हाथ से नहीं...!'

जगत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के जीवन की यह अंतिम घड़ी थी। सभी मानते थे कि जिस प्रकार उनका जीवन अलौकिक और अपूर्व था, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी शानदार होगी; किंतु जैसा कुछ हुआ, उसकी कल्पना उनके शत्रुओं तक को न थी। कई लोग तो उन्हें अमर भी मानते थे। परन्तु इन सभी कल्पनाओं को मिथ्या सिद्ध करते हुए वे आज महाप्रयाण की तैयारी कर रहे थे।

मानव-बस्ती से बहुत दूर, पश्चिम सागर के शांत किनारे, किसी व्याध ने उन्हें पशु समझ कर बाण से बींध दिया था। कैसा विचित्र अंत है यह! जो जीवन भर मनुष्य में पशुत्व का नाश करने का प्रयास करते रहे, उन्हें ही पशु समझकर किसी व्याध ने अपने तीर का निशाना बनाया!

उनके पास उस समय कोई नहीं था। जो विशाल जनसमुदाय उनका जयनाद करने तथा चरणस्पर्श का सौभाग्य प्राप्त करने को चितातुर रहता था, उसका एक भी प्रतिनिधि आज नहीं बचा था। बचा था केवल एक उनका सारथि दारुक—उनका अनुचर और सखा दारुक—इस दुर्घटना से दुःखी तथा कृष्णविहीन भारत की कल्पना में आँसू बहाता हुआ!

'अब मैं इस धरती पर थोड़ी ही देर का मेहमान हूँ, दारुक!' श्रीकृष्ण ने शीघ्र आनेवाली मृत्यु का मज़ाक करते हुए कहा। दारुक जो अब तक स्वयं पर किसी तरह नियंत्रण रखे था, फफक पड़ा।

'दारुक, यह क्या कर रहा है तूं।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'मैंने तो सोचा था कि जाते-जाते तेरे माध्यम से मैं जगत को दो-एक बातें बता जाता–परन्तु दारुक.....'

'परन्तु क्या पुरुषोत्तम ?' गद्गद् कंठ से दारुक ने पूछा।

'यही कि तूं इस समय किसी बात को स्वस्थ मन से सुनने लायक नहीं है !' श्रीकृष्ण ने उलाहना दिया। दारुक ने प्रयास कर आँखों से बह रहे आंसुओं को किसी तरह रोका और दोनों हाथ जोड़ कर भगवान के सामने खड़ा रहा। उसे कुछ स्वस्थ देखकर भगवान ने कहा, 'मैं यह मानता था कि इस जगत में अधिक नहीं तो कम-से-कम दो आदमी तो मुझे समझ ही सके होंगे।'

'कौन हैं ये दो भाग्यवान व्यक्ति, प्रभो ?' दारुक ने पूछा।

एक अर्जुन.....' भगवान ने उत्तर दिया, 'और दूसरा....'

'दूसरे भीष्म ?' दारुक ने अनुमान लगाया।

'नहीं, भीष्म नहीं ! विदुर भी नहीं, उद्धव और युधिष्ठिर भी नहीं !' श्रीकृष्ण ने कहा, 'दूसरा तूं है दारुक !'

'मैं ! आप मुझे आवश्यकता से अधिक मान दे रहे हैं, प्रभु !' दारुक ने कहा।

भगवान ने मेरी तुलना अर्जुन से की, और वह भी भीष्म जैसे को छोड़कर ! इस बात से सारथि के आश्चर्य की सीमा नहीं थी।

चित्र : दिनेश शाह

'तूं मुझे पूरा नहीं समझ सका, दारुक !' भगवान ने मुस्करा कर कहा, 'मैं तो यही मानता था कि तूं और अर्जुन मुझे अच्छी तरह समझ सके हो।'

भगवान के वचन का आशय दारुक की अब समझ में आया; मस्तक झुका कर वह शांत खड़ा रहा। भगवान ने आगे कहा, 'परन्तु युद्ध के आरंभ में ही अर्जुन ने मेरी इस मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया! और मुझे गीता का संदेश सुनाना पड़ा, उसे फिर से समझाने के लिए।'

दारुक जिस स्थिति में खड़ा था, वैसे ही खड़ा रहा : बद्धांजलि, नतमस्तक, नीरव।

'बाकी बचा था तूं, दारुक !' भगवान की वाग्धारा बह रही थी, 'तूं, जो नित्यप्रति मेरे साथ रहता था ! अब तक मेरी यही

मान्यता थी कि तूं मेरे विश्वास को मिथ्या सिद्ध नहीं करेगा, परन्तु....।'

दारुक फूट-फूट कर रो पड़ा।

'रो मत, दारुक!' सारथि को अपने पास बैठने को कह, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए श्रीकृष्ण ने आश्वासन के स्वर में कहा, 'अब मैं तुझे दूसरी गीता सुनाऊँ, इसका तो समय नहीं रहा।'

'परन्तु प्रभु!' धैर्य धरने की चेष्टा करता हुआ दारुक बोला, पर न जाने क्यों एकाएक रुक गया।

'परन्तु क्या दारुक? तू क्या कहना चाहता था?'

'यही कि प्रभु! हमें...हमें...सभी को....इस जगत को...आपके जीवन की.....'

बहुत चेष्टा करने पर भी दारुक अपना वाक्य पूरा नहीं कर सका।

'तूं क्या कहना चाहता है, दारुक, वह मैं कुछ-कुछ समझ सका हूँ; परन्तु जगत को अब मेरी आवश्यकता नहीं—शायद उसे मेरी कभी आवश्यकता नहीं थी!'

'आप यादवस्थली से अत्यंत निराश हो गये हैं स्वामी!' फिर से रोते-रोते तथा भर्राई हुई आवाज़ में सारथि ने कहा।

भगवान पल भर उसकी ओर देखते रहे—अपार सहानुभूति से—फिर जीवन में जैसे अंतिम बार बोल रहे हों, इस प्रकार कहना शुरू किया:

'कैसे भी अवतारी पुरुष को निराश कर सके, ऐसी वह घटना थी, दारुक! परन्तु एक यादवस्थली ही क्यों? तूं तो मेरे जीवन की अधिकांश घटनाओं का साक्षी रहा है। यह जीवन ही क्या एक दीर्घ यादवस्थली जैसा नहीं रहा दारुक?'

दारुक को कोई उत्तर सूझ न पड़ा, इसलिए वह चुप था।

'इस दीर्घ जीवनकाल में मैंने क्या नहीं देखा, दारुक? क्या नहीं देखा.....क्या नहीं किया? कंस, शिशुपाल, जरासंघ, कालयवन, भीष्म तथा कर्ण। भारतीय तथा इतर जन! लाक्षागृह, द्यूत, द्रौपदी-वस्त्रहरण! वैर-ज्वालाएँ तथा विष-प्रयोग! द्वंद्व-युद्ध तथा कुरुक्षेत्र! हजारों का रक्त मेरे निमित्त बहा और लाखों का रक्त न बहे इसके प्रयत्न मेरे द्वारा हुए!'

भूतकाल की परतों में कोई अत्यंत महत्व की खोई हुई वस्तु को मानों खोज रहे हों इस प्रकार श्रीकृष्ण सहज ही शांत हो गये। दारुक उनके तीर लगे चरण की ओर देखता हुआ नीरव बैठा था—बीच में बोलने की अब उसकी हिम्मत नहीं थी।

'परन्तु प्रश्न यह है दारुक', जैसे कोई बिल्कुल नयी ही बात शुरू कर रहे हों, इस भाव से भगवान ने फिर कहना शुरू किया, 'कि यह सब किसलिए?'

'जगत अत्यंत कृतघ्न है, प्रभु !' सारथि ने भगवान को आश्वासन देने का प्रयत्न किया। वह यह समझ रहा था कि जगत की कृतघ्नता से भगवान दुःखी हो रहे हैं।

'जगत कृतघ्न हो या गुणग्राही, इसके साथ इस बात का कोई संबंध नहीं दारुक !' भगवान ने दारुक का भ्रम दूर करते हुए कहा, 'मैंने अनेक अवतार लिये हैं और प्रत्येक अवतार में मुझे कुछ नया सीखने को मिला है—यह मैं सत्य कह रहा हूं।'

शोक के गरजते सागर के बीच भी दारुक के होठों पर एक हल्की सी मुस्कान की रेखा खिंच आयी। भगवान युग-युग में अवतार लेते हैं, तो क्या कुछ नया सीखने के लिए? इसकी तो उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी। यह किस प्रकार की गीता है !

'इस बात को सुनकर तुझे हँसी आ रही है !'

'क्षमा करें महाराज, परन्तु आप जो कह रहे हैं, वह मेरी समझ में नहीं आता।'

'स्वस्थ होकर सुनेगा तो अवश्य ही समझ सकेगा। मेरी सबसे बड़ी भ्रांति यही थी कि मैं जगत का उद्धार कर सकूंगा।'

'भ्रांति? जगत का उद्धार करने के लिए तो आप युग-युग में अवतार लेते हैं, प्रभु ! अर्जुन को गीता सुनाते समय भी.....'

'अर्जुन को मैंने ऐसे ही कहा था गीता में, दारुक!...अथवा अर्जुन ऐसे ही समझा था! परन्तु सत्य यह है कि मेरी सबसे बड़ी भ्रांति यही थी अथवा सिद्ध हुई है कि मैं जगत का उद्धार कर सकूंगा! हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकश्यप को जब मैंने मारा तब थोड़ी देर के लिए तो मुझे यही लगा कि पृथ्वी का उद्धार हो गया, कि मानवता अब असुर के अत्याचार से सदा के लिए छुटकारा पा गयी। परन्तु हुआ क्या, वास्तव में? हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकश्यप—दो के बाईस लाख बन कर इस धरती पर आये, भिन्न-भिन्न नाम-रूप से; और....और..वराहत्व तथा नृसिंहत्व मुझसे सदा के लिए चिपक गया। दूसरे शब्दों में असुर लाभ में रहे और मैं ईश्वर, देवाधिदेव नुकसान में! इस पर से मैंने एक शिक्षा ग्रहण की : असुरों का संहार करने के शुभ हेतु के लिए भी ईश्वर को पशु अथवा नर-पशु का अवतार नहीं लेना चाहिए !'

'यह आप क्या कह रहे हैं, प्रभो !' काँपती हुई आवाज़ में दारुक ने कहा।

'असह्य कटुता है मेरे इन शब्दों में—है न? परन्तु सत्य सदा कटु ही होता है। इसीलिए तो 'हिरण्यमय पात्र' से 'सत्य का मुख' ढाँकने का प्रयत्न लोग करते हैं।

[शेष पृष्ठ १०३ पर]

कृष्णावतार

• श्री कन्हैयालाल मुन्शी

धारावाहिक पूर्ण-पुरुष लीला

[१४]

तृणावर्त

पूतना की मृत्यु का समाचार सुनकर कंस के क्रोध की सीमा नहीं रही। अपने मंत्री, सलाहकार तथा मार्गदर्शक वृद्ध प्रलंब को उसने तुरंत बुला भेजा।

'प्रलंव, अब तक तो मैं किसी प्रकार स्वयं को संयत कर रहा था; परन्तु अब संभव नहीं। गोकुल से प्रद्योत के लौटते ही मुझे उस अभागे गाँव पर आक्रमण कर उसे तहस-नहस कर डालना है। पूतना मेरे लिए अत्यंत उपयोगी थी—उसकी मृत्यु का बदला मुझे लेना ही होगा।'

हाथ जोड़कर विनयभाव से प्रलंब ने कहा, 'महाराज, यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो फिर मैं क्या निवेदन करूँ? हाँ, आपकी यदि आज्ञा हो तो मैं अपना मत प्रकट कर सकता हूँ।'

'तुम्हारा मत जानने के लिए ही तो मैंने तुम्हें बुलाया है। जो कुछ तुम्हें ठीक लगे सच-सच कहो; परन्तु इतना याद रखना कि पूतना का बदला न लेने की सलाह मैं कभी मानने का नहीं!'

नम्रतापूर्वक मुस्कराकर प्रलंब ने कहा, 'परन्तु प्रभु, आप यदि गोकुल पर आक्रमण करें, तो क्या इसका यह स्पष्ट अर्थ नहीं होगा कि पूतना आपके कहने पर ही बालकों की हत्या करती थी।'

'दुनिया क्या कहेगी, इसकी मुझे परवाह नहीं–मैं दुनिया का ग़ुलाम नहीं हूँ।'

'आप ग़ुलाम नहीं, मालिक हैं प्रभु! मैं तो मेरी सामान्य बुद्धि से ही सोच रहा था। अब तक तो आपने जो कुछ किया, वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए ही किया, भले ही लोग कुछ भी कहें; किंतु प्रत्येक के धिक्कार की पात्र, पूतना के लिए यदि आप स्त्री-पुरुष-बालकों सहित समस्त गोकुल गाँव को नष्ट कर देंगे, तो वह एक और बात होगी। इससे यादव रोष से भरे बिना नहीं रहेंगे।'

'यादवों की मुझे कोई परवाह नहीं। मेरे विरुद्ध जो कुछ वे कर सकते थे, उन्होंने अब तक किया–अब और अधिक वे क्या कर लेंगे?'

'मैं जानता हूँ प्रभु, कि अधिक वे कुछ भी नहीं कर सकेंगे, परन्तु पांचाल के प्रतापी राजा द्रुपद की सहायता प्राप्त कर वे हमारे लिए आफ़त खड़ी कर सकते हैं। मथुरा पर द्रुपद की हमेशा आँख रही है और यहाँ से भाग कर कई यादवों ने उसकी राजसभा में उच्च अधिकार भी प्राप्त किये हैं।'

क्षणभर तो कंस विचारनिमग्न हो गया, फिर बोला, 'द्रुपद को यदि मेरे साथ लड़ना ही है, तो मैं भी तैयार हूँ। युद्ध के लिए दीर्घकाल से हम दोनों तैयारी कर रहे हैं, तो फिर युद्ध यथाशीघ्र हो, यही अच्छा है।'

प्रलंब ने समझाते हुए कहा, 'हाँ महाराज, आपने युद्ध की तैयारी कर रखी है, यह मैं जानता हूँ। परन्तु गोकुल को आप तहस-नहस कर देंगे, तो शूर विद्रोह किये बिना नहीं रहेंगे। अक्रूर के वृष्णि भी फिर से उपद्रव करेंगे। शायद वसुदेव के सम्बंधी राजा कुंतिभोज भी द्रुपद से मिल जायँ। आपको याद तो होगा ही महाराज, कि हस्तिनापुर के राजा पांडु की पत्नी और वसुदेव की बहन पृथा को राजा कुंतिभोज ने दत्तक लिया है। और फिर हस्तिनापुर के महाभयंकर महारथी भीष्म भी शायद युद्ध में सम्मिलित हो जायँ। यदि ऐसा हुआ तो हमारी स्थिति चिंताजनक हो सकती है।'

थोड़ी देर कंस मौन रहा, फिर तिरस्कार से जाँघ पर हाथ मारकर बोला, 'तुम्हारी बात सदा सच निकलती है। तुम्हारी सलाह मुझे माननी ही पड़ेगी, परन्तु पूतना की मृत्यु का बदला किसी न किसी दिन मैं अवश्य लूंगा।'

प्रलंब के चले जाने के बाद कंस गहराई से इस समस्या पर विचार करने लगा। 'नंद के पुत्र का जीवित रहना मेरे लिए संकटमय हो सकता है; परन्तु इस कंटक को दूर किस प्रकार किया जाय? प्रलंब की बात भी सच है, गोकुल पर

प्रत्यक्ष आक्रमण करना कई खतरों को मोल लेना है।' उसने मन-ही-मन कहा।

सिंहासन पर से उठ कर वह खिड़की के पास गया और अन्यमनस्क सा यमुना की ओर देखने लगा। एकाएक उसकी दृष्टि किनारे पर खड़े पक्षी पकड़ने का प्रयत्न करते हुए एक वनवासी की ओर गयी और उसके मन में एक विचार उठा- पक्षियों का शिकार करनेवाला बालकों के शिकार में भी इतना ही निपुण होगा। 'यही ठीक है', उसने फैसला किया और फिर ताली बजाकर अपने विश्वसनीय भृत्य को बुलाया तथा उस शिकारी को तुरंत ले आने का हुक्म दिया। ०००

पूतना निर्जीव होकर एकाएक भूमि पर गिर पड़ी और कृष्ण के प्राण किसी तरह बच गये, यह जानकर यशोदा को गहरा आघात लगा था। यह तो उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी, कि कोई ऐसा क्रूर व्यक्ति, स्त्री या पुरुष, होगा, जो उनके बालक को ज़हर देने को तैयार हो। सारी ज़िंदगी में उन्होंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं था, बल्कि हर एक की सहायता ही की थी। सभी से उनका स्नेहभाव था। परन्तु पूतना किस प्रकार मथुरा के निर्दोष बालकों को ज़हर देकर मार डालती थी, यह बात अब उनके ध्यान में आयी।

यदि वह दुष्ट राक्षसी अपनी युक्ति में सफल हो जाती, तो उनका क्या होता, यह सोच कर ही यशोदा थर्रा उठीं। मृत्यु-मुख से कृष्ण किस प्रकार बाल-बाल बचा, यह सोचकर उनकी आँखों से अश्रु बहने लगते। कृष्ण को अपनी छाती से लगाकर मंद स्वर में वे कहतीं, 'मेरा कृष्ण-मेरा लाल!'

एक ओर तो यशोदा को कृष्ण की सुरक्षा के लिए ऐसे विचार मन में उठते, दूसरी ओर उनके प्रति एक अज्ञात भय तथा आदर की भावना भी उनके मन में आती। कृष्ण का रूपलावण्य जितना अद्भुत था, उतने ही अद्भुत उनके पराक्रम भी थे। पूतना ने उनको स्तनपान कराया, किन्तु विष का प्रभाव उन पर ज़रा भी नहीं हुआ, उलटे पूतना ही निर्जीव होकर गिर पड़ी। और यह एक दो वर्ष के बालक का पराक्रम था! फिर भी यशोदा ने निश्चय किया कि कृष्ण को वह अब एक क्षण भी अपने से विलग नहीं होने देंगी। और यदि वह किसी प्रकार दूर भाग भी जाय, तो उसका अच्छी तरह ध्यान रखने के लिए उन्होंने नन्द, रोहिणी तथा कुटुंब के अन्य जनों को अच्छी तरह सचेत कर दिया था।

फिर भी कृष्ण को काबू में रखना कोई आसान बात नहीं थी। यशोदा एक क्षण भी किसी काम में लग जातीं, तो कृष्ण रोहिणी पुत्र बलराम के साथ घूमने निकल

जाते। यशोदा का मन भय से सिहर उठता और वे कृष्ण, कृष्ण पुकारती उनको खोजने निकल जातीं। और, जब वे मिल जाते तो मानों कोई भयंकर विपत्ति टल गयी है, उस भाव से उन्हें उठाकर हृदय से लगा लेतीं। मंद-मंद मुस्कराकर जब कृष्ण उनके गले से लिपट जाते, तो यशोदा सारा गुस्सा भूल जातीं।

यशोदा से भी अधिक भय नंद को कृष्ण के विषय में था। वे जानते थे कि पूतना गोकुल क्यों आयी थी। ऐसा लगता था, मानों कंस को इस बात की खबर लग गयी हो कि कृष्ण देवकी का आठवाँ पुत्र है। पूतना की मृत्यु से कंस कृष्ण की हत्या करवाने का अपना इरादा नहीं बदल सकता था। नंद ने अपने सम्बंधियों और नौकर-चाकरों को बुला कर सावधान किया कि गोकुल में आये किसी भी नये व्यक्ति पर अच्छी तरह निगरानी रखी जाय। किसी भी अनजान आदमी को कृष्ण के पास नहीं जाने देना चाहिए। एक-दो मजबूत आदमियों को साथ भेजे बिना कृष्ण को यशोदा के साथ भी बाहर नहीं भेजा जाता।

परंतु कृष्ण कोई सामान्य बालक नहीं था, वह तो किसी और ही मिट्टी का गढ़ा हुआ था। वह अपनी इच्छा होती वहाँ घूमता-फिरता और मौक़ा मिलते ही अपने चौकीदारों की नज़र बचाकर किसी दीवाल के पीछे, गोशाला अथवा घास भरने के स्थानों में जा छिपता! कृष्ण को कहीं न देखकर यशोदा आकाश-पाताल एक कर देतीं और सभी उन्हें खोजने लगते। जब वह मिलते तो उनके मुख पर एक मंद-मंद मुस्कान छायी रहती। कभी-कभी तो वह बलराम को धक्का देकर आगे कर देते, मानों सारा दोष उन्हीं का हो। इस आंखमिचौनी के खेल में उन्हें बहुत मजा आता, परंतु यशोदा और उनके संबंधी, व नौकर-चाकरों को यह ज़रा भी पसन्द नहीं था। अत्यंत चिंतातुर होकर वे ठौर-ठौर जब कृष्ण को खोज कर थक जाते, तो वह पास ही खड़े मंद-मंद मुस्कराते दिखायी पड़ते।

'कृष्ण, तू था कहाँ? मैं तो ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गयी तुझे!' यशोदा कहतीं, और कृष्ण, 'मैं तो यहीं था, माँ!' कहकर उनसे लिपट जाते। यशोदा अपना सारा परिश्रम सार्थक अनुभव करने लगतीं। परन्तु कृष्ण के इन उत्पातों से नंद और उनके साथी अत्यंत चिंतातुर हो उठे थे।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन यशोदा अपने सम्बंध की किसी प्रसूता स्त्री को देखने गयीं, क्योंकि उसके बहुत कष्ट से प्रसव हुआ था। वहाँ से लौटते समय सदा की भाँति उन्होंने कृष्ण को गोद में लेकर बाँये हाथ से पकड़ रखा था। एकाएक कृष्ण को खेल सूझा।

मानों घोड़े पर सवार हो, इस प्रकार वे ज़ोर-ज़ोर से ऊपर-नीचे उछलने लगे। उन्हें पकड़ रखना यशोदा के लिए असंभव हो गया। 'कृष्ण, ये तू क्या कर रहा है, बेटा! चुप-चाप बैठा रह न!' उन्होंने कृष्ण को कहा, मगर वे तो और भी जोर से उछलने लगे। आखिर यशोदा को उन्हें संभालना कठिन हो गया। उन्होंने हार कर कृष्ण को नीचे उतारा और खुद एक चबूतरे पर सांस खाने बैठ गयीं।

एकाएक आकाश बादलों से घिर गया। धूल का बवंडर सारे शहर पर छा गया और इस ज़ोर से बहने लगा कि यशोदा के लिए खड़ा रहना मुश्किल हो गया। उनकी आँखों में भी धूल भर गयी। कृष्ण को एक ओर बैठा कर उन्होंने एक हाथ से एक खंभे को पकड़ लिया। कृष्ण बार-बार उनका हाथ छुड़ाने की कोशिश कर रहे थे और उन्हें पकड़ रखना मुश्किल हो रहा था। थोड़ी देर बाद जब आंधी का ज़ोर कुछ कम पड़ा, और आँखें खोल कर उन्होंने देखा, तो कृष्ण वहाँ नहीं थे।

'कृष्ण, कृष्ण, कहाँ है तू?' उन्होंने ज़ोर से पुकारा। परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। पास-पड़ोस की गली-कूंचिओं में वे उसे ढूंढ़ने निकलीं। लेकिन कृष्ण का कहीं पता नहीं था। भय से यशोदा पीली पड़ गयीं और कृष्ण-कृष्ण चिल्लाने लगीं। जब कहीं भी कृष्ण दिखायी नहीं पड़े, तो वे रोने लगीं। और 'मेरा कृष्ण कहाँ गया? कृष्ण कहाँ गया?' कह कर विलाप करने लगीं।

उस मार्ग से गुजरती हुई गोपिकाओं को जब इस बात की खबर लगी, तो वे भी कृष्ण को ढूंढ़ने लगीं। नंद को भी सूचित किया गया और सभी लोग कृष्ण की खोज में चल पड़े। जगह-जगह तलाश करते हुए वे गाँव के किनारे पहुँच गये। वहाँ उन्होंने एक आदमी की लाश पड़ी देखी। उन्होंने सोचा कि धूल के बवंडर में भागते समय वह आदमी गिर गया होगा और वहाँ पड़ी शिला से उसका सिर टकरा गया होगा। एक गोकुलवासी ने उसे पहचान भी लिया। वह एक व्याध था। दो दिन पहले वह मथुरा से आया था। उसका नाम तृणावर्त था।

नंद के मुख से निराशा के उद्गार निकल पड़े। इसी आदमी ने कृष्ण को कहीं छिपा दिया होगा! लेकिन कहाँ? सभी लोग कृष्ण को पुकारते हुए भिन्न-भिन्न दिशाओं में दौड़े! थोड़ी देर बाद एक मधुर, प्रिय स्वर सुनायी पड़ा, 'मैं यहीं हूँ, बाबा!' और, पड़ौस के आम्र-कुंज से कृष्ण निकल आये। नंद ने दौड़ कर उन्हें गोद में उठा लिया।

'कृष्ण, तू यहाँ कैसे आ गया?' नंद

ने पूछा। धरती पर निर्जीव पड़े तृणावर्त्त की ओर अंगुली से इशारा करते हुए कृष्ण ने कहा, 'यह मुझे इधर धकेल लाया। इसने ज़ोर से मुझे पकड़ लिया था और मैं भी ज़ोर से इसका हाथ पकड़े था। परन्तु, फिर तो यह गिर पड़ा और मैं इसकी पकड़ से छूट कर भाग गया।' यह कह कर वे हंमने लगे। ०००

पूतना के कृष्ण को विष देने के प्रयास की खबर जब वसुदेव-देवकी ने सुनी, तो वे दोनों अत्यंत भयभीत हो उठे। उन्हें लगा कि कंस को पता चल गया है, कि कृष्ण कौन है और कहाँ हैं, नहीं तो पूतना गोकुल नहीं जाती; और अब वह कृष्ण के प्राण लिये बिना नहीं छोड़ेगा। गर्गाचार्य ने जब उन्हें सारी बात कही कि पूतना किस प्रकार ब्राह्मण पत्नी बन कर गोकुल गयी, स्तन पर ज़हर लगा कर कृष्ण को पिलाने का प्रयास किया और अंत में अपने ही प्राण खो बैठी, तो वसुदेव-देवकी ने अत्यंत व्याकुलता से यह सब विवरण सुना।

देवकी की यह श्रद्धा और भी बलवती हो उठी कि मेरा बालक अवश्य ही अवतारी पुरुष है। पूतना को मारने जैसा चमत्कार भगवान के सिवा और कौन कर सकता है! अश्रुभीगे नयनों से वह अपने पूजागृह में गयीं और भक्तिभाव से प्रार्थनालीन हो गयीं। परन्तु वसुदेव को अपने बालक में इतनी श्रद्धा नहीं थी। वे तो इस आशंका से बहुत घबड़ा गये कि कृष्ण की हत्या करवाने का संकल्प कंस कभी नहीं छोड़ेगा। थोड़े दिन बाद वसुदेव ने अक्रूर तथा गर्गाचार्य से मंत्रणा की। किसी भी उपाय से कृष्ण को बचाना ही होगा। और कुछ नहीं तो कंस का ध्यान कहीं और जाय इसका प्रबंध करना पड़ेगा।

अक्रूर ने वसुदेव के मन का समाधान करते हुए कहा, 'वसुदेव, अधिक चिंता करने की आवश्यकता नहीं। अभी तो वैसे चिंता का कोई कारण है भी नहीं। मैंने सुना था कि कंस ने प्रलंब को बुला कर उसकी सलाह मांगी थी—वह तो गोकुल को नष्ट-भ्रष्ट कर देने पर तुला था!'

' हे भगवान!' वसुदेव ने कहा।

'यह मत भूलो कि प्रभु ने हमारा उद्धार करने के लिए ही अवतार लिया है,' अक्रूर ने कहा, 'उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। फिर भी हमें तो सामान्य लोगों की भांति ही पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। वैसे भय की कोई बात नहीं। मुझे खबर मिली है कि पूतना का बदला न लेने की प्रलंब ने सलाह दी है।'

'परन्तु एक भय है,' गर्गाचार्य ने कहा, 'प्रति सप्ताह मैं गोकुल जाकर वहाँ के समाचार ले आता हूँ। नंद की ओर से

आपको भी समाचार मिलते रहते हैं। कृष्ण के बारे में पूछताछ किये बिना आपसे नहीं रहा जाता। देर-अबेर कंस को इसकी खबर पड़ ही जायगी। इसी से शायद वह यह अनुमान लगा ले कि कृष्ण आपकी ही संतान है; और यदि उसकी यह शंका दृढ़ हो गयी, तो वह कृष्ण को मारने का कोई उपाय नहीं छोड़ेगा।'

'तो आप क्या परामर्श देते हैं?' वसुदेव ने पूछा।

'कृष्ण के साथ आप का कुछ भी सम्बंध है, इसकी आशंका कंस को नहीं होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि आप तथा देवकी मथुरा छोड़ कर एक लंबी यात्रा पर निकल जायँ।' गर्गाचार्य ने उत्तर दिया।

'हमारी अनुपस्थिति में हमारे बालक का क्या होगा?' करुण स्वर में वसुदेव ने प्रश्न किया।

'मैं तो यहाँ रहूँगा ही! पूजा-पाठ कराने के लिए गोकुल जाते हुए वृद्ध ब्राह्मण के प्रति किसी की क्या शंका होगी? और फिर नंद को कह कर उससे यज्ञ भी कराऊँगा, ताकि कुछ दिन वहाँ रहा भी जा सके।' गर्गाचार्य ने कहा।

अक्रूर ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा, 'वसुदेव, मुझे भी लगता है कि गर्गाचार्य की बात सही है। यदि आप मथुरा छोड़कर कुछ समय के लिए कहीं दूर चले जायँ, तो कृष्ण अधिक सुरक्षित रहेगा। वैसे भी मथुरा में रहकर आप कृष्ण को बचाने के लिए क्या कर सकते हैं? और फिर मैं तो सब समय यहाँ उपस्थित रहूँगा ही।'

'अक्रूर, मथुरा छोड़कर इतनी दूर चले जाना, जहाँ कि हमारे प्रिय पुत्र का कोई समाचार न मिल सके, देवकी के लिए अत्यंत कष्टप्रद होगा।' वसुदेव ने कहा।

भयमिश्रित स्वर में गर्गाचार्य ने कहा, 'जानते हैं, आज सवेरे मुझे क्या खबर मिली है? चार दिन पहले एक वनवासी ने कृष्ण का हरण किया था, जिस दिन रेत का बवंडर आया था, उसी दिन। किंतु वनवासी तो बवंडर में फँसकर अपनी जान गवाँ बैठा और कृष्ण हँसता-खेलता वापस घर आ गया। वसुदेव, देवकी की श्रद्धा सच्ची है—वह प्रभु का ही अवतार है।'

'तो फिर हम फैसला कर ही लें, वसुदेव!' अक्रूर ने कहा, 'मैं तुमको वचन देता हूँ कि एक-एक वृष्णि का बलिदान भले ही देना पड़े, परन्तु कृष्ण का बाल भी बांका हम नहीं होने देंगे। मथुरा छोड़कर यदि तुम लोग चले जाओ, तो शायद कृष्ण की संभाल मैं अधिक अच्छी तरह रख सकूँगा। यह शंका कंस के मन से मिटानी अति आवश्यक है कि कृष्ण तुम्हारा पुत्र है।'

[शेष पृष्ठ ११० पर]

[प्रभु का अंतिम वचन : पृष्ठ ९५ का शेषांश]

रन्तु इस चर्चा के लिए अब मेरे पास समय नहीं। वराह तथा नरसिंह अवतारों की शिक्षा के बाद, पाँचवें अवतार में बलि को कपट से जीतने के लिए मुझे विराट से वामन बनना पड़ा। छठे अवतार में इसीसे प्रच्छन्न कपट के बदले प्रकट रोष का मैंने आश्रय लिया : परशुराम बनकर मदमत्त क्षत्रियों के मस्तकों को परशु की धार पर उतार कर मैंने अपने वामनत्व को भूलने का प्रयत्न किया। परन्तु परिणाम क्या हुआ? मैं स्वयं ही पराजित हुआ—स्वयं अपने ही हाथों! अपने राम-अवतार के हाथों अपने परशुराम-अवतार के पराभव होने पर मैंने कपट और क्रोध दोनों का त्याग किया.., फिर भी एकाध अपवाद तो हो ही गया...और दस मस्तक कटने पर भी रावण जीतता ही रहा!

'उस समय जगत ने मुझे एक दूसरी शिक्षा दी, दारुक' सुन रहा है न तू!

भूगर्भ में से मानों आ रही हो इस प्रकार की आवाज में दारुक ने कहा, 'हा महाराज!'

'रामावतार ने दूसरी बात जो मुझे सिखायी, दारुक, वह यह थी कि जगत की सेवा करना जो चाहता हो, उसे जगत का भय त्याग देना चाहिए। जगत का भय रहने पर जगत की सेवा नहीं बन सकती। सीता का त्याग मैंने जगत के भय से ही किया और सीता के बदले सीता की स्वर्णप्रतिमा से काम चलाया....और जगत ने स्वयं अपने से ही डर कर मेरे स्थान पर मेरी स्वर्णप्रतिमा को प्रतिष्ठित किया और मेरा त्याग कर दिया।'

'कुछ-कुछ समझ में आ रहा है, प्रभो! परन्तु ये सब तो भूतकाल की बातें हैं—आपका यह आठवाँ अवतार तो पूर्णावतार है न?'

भगवान खिलखिलाकर हँस पड़े।

'पूर्णावतार!....पूर्णावतार.. और अंशावतार.. तुम लोगों की की हुई इस व्यवस्था को मैं ठीक समझता हूँ! पहले सात अवतार थे, अंशावतार और यह आठवाँ पूर्णावतार है—यही न? परन्तु इस अवतार में भी कई अपूर्णताएँ तो रह ही गयी हैं। दारुक, मुझे तो लगता है कि पूर्णता और अपूर्णता दोनों की साधना इस ब्रह्मांड में साथ ही चला करती है।'

सदा के लिए मूँदते हों इस प्रकार अपनी आँखों को मूंद कर भगवान ने कहा, और फिर कुछ क्षण के लिए वे समाविस्थ हो गये।

'महाराज!' हृदय-विदारक स्वर में दारुक चीख पड़ा।

'यह तू क्या कर रहा है, दारुक ?' समाधि में से जग कर एकदम विरक्त भाव से श्रीकृष्ण ने कहा, 'क्या गीता के प्रणेता को भी इतनी शांति नहीं मिलेगी दारुक, कि आत्मा के अमरत्व के उसके संदेश को और किसी ने नहीं तो उसके सारथि ने तो ग्रहण किया है! मैं ब्राह्मी स्थिति में जा रहा हूँ, दारुक! तेरा कल्याण हो!'

'परन्तु महाराज, आप कुछ कहने जा रहे थे न!' अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदा ले रहे भगवान की ओर देखते हुए दारुक ने कहा।

'मैं यही कह रहा था, दारुक कि तुम लोग जिसको पूर्णावतार कहते हो, उस मेरे आठवें अवतार में जगत ने मुझे एक बात विशेषरूप से सिखायी है... और वह यह कि जगत का उद्धार स्वयं उसके अपने ही हाथों में होगा, किसी उद्धारक के हाथ से नहीं.....'

और भगवान के समाधिस्थ कलेवर के सम्मुख काफी देर तक दारुक शून्यमनस्क हो बैठा रहा....आँसू बहता...और उनके अंतिम शब्दों को मन ही मन दुहराता।

[अनु. ओंकारनाथ शर्मा]

★

Perfumed
BRAHMI
HAIR OIL

बंगाल केमिकल का
सुगंधित
ब्राह्मी केश तैल

बड़ी कारीगिरी के साथ सुगंधित यह आयुर्वैदिक केश तैल मस्तिष्क को शीतल और शान्त रखता है। ब्राह्मी केश तैल के नियमित व्यवहार से मानसिक क्लान्ति दूर होती है और आराम कीं नींद आती है। केशों की स्वस्थ वृद्धि में भी यह सहायता करता है। कठोर मानसिक परिश्रम करने-वालों के लिये यह आदर्श केश तैल है।

बेंगाल केमिकल
कलकत्ता • बम्बई • कानपुर

[द्वारिकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र : पृष्ठ २५ का शेषांश]

र्जुन के पास भेजा कि वह आकर स्त्री-च्चों को हस्तिनापुर लिवा ले जायँ। छ स्त्रियों ने जल कर प्राण दे दिये। र्जुन आये और शेष स्त्री-वच्चों को लिवा कर चले। कहते हैं मार्ग में श्चिमी राजपूताना के जंगली आभीरों से र्जुन को मुकाबला करना पड़ा। कुछ स्त्रियों को आभीरों ने लूट लिया। शेष ो अर्जुन ने शाल्व देश और कुरु देश में सा दिया।

कृष्ण शोकाकुल होकर घने वन में ले गये थे। वे चिंतित हो लेटे हुए कि जरा नामक एक बहेलिये ने हरिण भ्रम से तीर मारा। वह बाण श्रीकृष्ण के र में लगा, जिससे शीघ्र ही उन्होंने इस ंसार को छोड़ दिया। मृत्यु के समय वे ंभवतः १०० वर्ष से कुछ ऊपर थे। ष्ण के देहांत के बाद 'द्वापर' का अंत और लियुग' का आरंभ हुआ

श्रीकृष्ण के अंत का इतिहास वास्तव में ादव गण-तंत्र के अंत का इतिहास है। कृष्ण वाद उनके प्रपौत्र वज्र यदुवंश के उत्तरा-धकारी हुए। पुराणों के अनुसार वे ुरा आये और इस नगर को उन्होंने पना केन्द्र बनाया। कहीं-कहीं उन्हें द्रप्रस्थ का शासक कहा गया है।

द्वारका में कृष्ण का जीवन तत्कालीन ाजनीति की अनेक गुत्थियों को सुलझाने में तीत हुआ। महाभारत युद्ध के [illegible] उन्होंने नृपतंत्र के उस रूप को नष्ट करने का उत्कट प्रयास किया, जो सत्ता के मद से विद्रूप हो गया था और जिसके कारण लोकमानस आकुल था। अत्याचारी शासकों के उन्मूलन में कृष्ण ने सभी उपायों का प्रयोग किया। उन्हें जिस कर्मयोगी, स्वस्थ समाज की रचना अभीष्ट थी, उसके लिए वे जीवनभर लड़े। शासन की गणतंत्र व्यवस्था को उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के कुछ भागों में परीक्षण-रूप में चुना। सौराष्ट्र में यादवों का गण-तंत्रात्मक संगठन उन्होंने इसी हेतु बनाया। अपनी महान् प्रतिभा एवं असाधारण व्यक्तित्व के कारण वे, उसे सबल बनाने में सफल भी हुए। परंतु यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकी। महाभारत के शांति पर्व (अध्याय ८२) में श्रीकृष्ण और नारद के बीच जो संवाद दिया है, उससे यादवों की प्रजातंत्रात्मक शासन-प्रणाली पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। जातीय संघों का जोर बढ़ जाने तथा आपसी मतभेदों की वृद्धि से गणतंत्र शिथिल हो गये और वे तत्कालीन शक्तिशाली राज्यतंत्र के सामने अधिक समय तक न ठहर सके।

इसमें संदेह नहीं कि श्रीकृष्ण न केवल एक महान् तत्त्वज्ञानी थे, अपितु वे उत्कृष्ट कोटि के राजनेता हुए। भारतीय समाज एवं राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में उनका योग सदा अमर रहेगा। ●

वीरेन्द्रकुमार जैन

हिन्दी का एक युवा सूर्य अस्त हो गया

गत १२ सितम्बर १९६२ के तीसरे पहर ४ बजे, बम्बई के बॉम्बे हास्पिटल में डा. रांगेय राघव के अवसान के साथ, हिन्दी की मध्य-युवा पीढ़ी का एक ऐसा दुर्द्धर्ष तेजोमान सूर्य असमय में ही अस्त हो गया, जो प्रतिभा की सर्वतोमुखीनता, पाण्डित्य की प्रचण्डता, अपनी सत्य-शोध की तीव्रता और प्रखर सत्य-निष्ठा में, केवल हिन्दी में ही नहीं, समस्त भारतीय वाङ्मय मण्डल में अपने समकालीनों के बीच अपने ढंग का एक अप्रतिम व्यक्तित्व था।

केवल ३९ वर्ष की उम्र में १३६ ग्रन्थों के रचयिता, इस अस्खलित लेखनी-व्रती ब्राह्मण-कुमार की, अकल्प्य ज्ञान-साधना और सृजन क्षमता को, देश-काल के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए स्तम्भित रह जाना पड़ता है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, साहित्य-समीक्षा, जीवन-चरितात्मक उपन्यासों का सृजन; ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक अनुसंधान, विश्व-मानवता का अन्तर-सांस्कृतिक अध्ययन, पौर्वात्य और पाश्चात्य दर्शनों का मन्थन तथा उनके संयुक्त विकासैतिहास का एक शृंखलाबद्ध मौलिक व्याख्यात्मक परिशीलन; भारतीय धर्म, दर्शन, पुराण, इतिहास का तलस्पर्शी अध्ययन और नवीन मानव-चेतना-सम्मत मर्मोद्घाटन: ऐसा विशाल और नाना-आयामी था डा. रांगेय राघव के चिन्तक, साधक और सर्जक का साधना-मण्डप।

आज विश्व-जगत में चेतन के ऊपर अचेतन की आसुरी विजय पराकाष्ठा पर पहुँचने के साथ, सारे भूमंडल की मानवता, एक सर्वनाशी विघटन, अराजकता और अधःपतन से गुज़रती हुई, एक अनबूझ महामृत्यु के सम्मुख खड़ी बौखला रही है। सार्वभौम मूर्छा की इस तमस-बेला में कुछ विरल स्वयम् प्रकाशित सूर्य-पुरुष, चिन्तक, कवि साहित्यकार कलाकारों से ही यह आशा की जाती है कि वे अपने अपराजेय प्रेम और आत्म-तेज के बल इस मरण-कुहा को बींध कर मानवता के लिए नूतन जीवन का द्वार मुक्त करें। पर सार्वभौमिक अधःपतन की इस घड़ी में कविता, साहित्य, क़ला, चिन्तन, दर्शन, विज्ञान भी जैसे सत्ता और सम्पदा के

स्वामी युग-मान्धाताओं की मुट्ठी में, बन्दी हो गये हैं, और साहित्यकार के लिए जाने-अनजाने साहित्य, सत्य-शोध की अकपट और निर्भीक साधना के बजाय, कामिनी, कांचन और कीर्ति के अर्जन का एक व्यावसायिक हथियार बन गया है।

आज जब साहित्य में एक सिरे से ऐसे ही मुखौटेबाज सौदागरों और अपनी सरस्वती के वेश्याचारियों की भरमार है, तब डा. रांगेय राघव वाणी के उन कुछ विरल देवदूतों में थे, जिन्होंने असत्य, अन्याय, अत्याचार और शोषण की शक्तियों के खिलाफ आजीवन युद्ध किया, युग के धनसत्ताधारी मान्धाताओं के हाथ अपनी आत्मा की रस-लक्ष्मी को नहीं बेचा, अनास्था के सर्वग्रासी अन्धकार के बीच आस्था और सत्य-शोध की अपनी मशाल को अविचल निष्ठा से ऊँचा रक्खा।

हिन्दी की एक अंमर तेज-शिखा
डॉ. रांगेय राघव

डा० रांगेय राघव का व्यक्तित्व क्षुर-धार सत्य-शोध की एक अकुंठित बेचैनी और आत्म-श्रद्धा के एक स्वयम्-प्रकाशित सूर्य से प्रदीप्त था। अपने लेखन के आरम्भिक काल में एक प्रचण्ड साम्य-उद्घोषक के रूप में प्रकट होकर भी, मार्क्स के एकान्त भौतिकवादी जीवन-दर्शन में वे बन्दी नहीं हो सके। विश्व-साहित्य के प्रकाण्ड अध्येता होते हुए भी, पश्चिम से आयात होकर हमारे आज के साहित्य-क्षेत्रों में छायी हुई नकली आधुनिकता से भी वे कभी प्रभावित और आतंकित नहीं हुए। राघव अपनी युग-चेतना से सम्पूर्ण प्रबुद्ध होकर भी, अपनी चरम-परम सत्य-शोध की जिज्ञासा में, भारतीय ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा के आलोक-समुद्र में बहुत गहरे डूबे-उतराये थे। अपनी मर्मगामी दृष्टि से राघव ने भारत की आर्ष वाणी के भीतर अन्तर्निहित, सार्वलौकिक और सार्वकालीन गति-प्रगति के जो शक्ति-बीज और अग्नि-बीज खोज

निकाले थे, उसकी जानकारी साहित्य में बहुत कम लोगों को है। पिछले महीनों के अपने आत्मीय सम्पर्क में राघव की आत्मा के उस सतत ऊर्जस्वल और जीवन्त रत्न-कोष का परिचय पाने का सुअवसर मुझे मिला था। रांगेय राघव के व्यक्तित्व में पूर्व और पश्चिम के श्रेष्ठ का एक अत्यंत तेजस्वी, स्वस्थ और सत्य-प्रखर समन्वय हुआ था। अहं-स्वार्थों के जड़त्वों से ग्रस्त, आज के साहित्य में चहुँ ओर फैले वादों और दलों के घेरों से रांगेय का व्यक्तित्व सर्वथा ऊपर था। यही कारण है कि इतनी अल्पायु में, साहित्य और मौलिक चिन्तन के क्षेत्र में इतनी तेजस्वी और राशिकृत देन देने के बाद भी, साहित्य समीक्षा के अहंकारी गुटबन्द सौदागरों ने राघव के काम का यथेष्ट मूल्यांकन नहीं किया, मुक्त कण्ठ से उसके व्यक्तित्व और कृतित्व की अद्वितीयता को नहीं स्वीकारा। मगर सत्य के सूर्य को तमस के परदे से ढाँका नहीं जा सकता। आनेवाली पीढ़ियाँ और आनेवाला युगदेवता निश्चय ही रांगेय के अक्षर व्यक्तित्व की महिमा को पहचान कर नव युग की संवाहक विभूतियों के बीच उसे अभिनंदित और प्रतिष्ठित करेंगे।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में, रोग और मरण की विभीषिका के सम्मुख भी, डा. राघव की चेतना सृजन के आनन्द से उन्मेषित थी। पिछले मई महीने की एक शाम माहिम के समुद्र तट के 'पेरापेट' पर बातें करते हुए उन्होंने अपने एक महाकाव्य की आयोजना मेरे साथ 'डिसकस' की थी, जिसमें उन्होंने आधुनिक मानव के सत्य-शोध के महान अभियान को एक विशद-विस्तृत यथार्थवादी फलक पर उभारते हुए, उसकी अन्तश्चेतना के गहिरतम द्वंद्वों, ग्रंथियों और चरम-परम प्रश्नों के निराकरण के लिए बीच-बीच में पौराणिक कथाओं को एक नवीन व्याख्या के आलोक में उद्घाटित और उद्भावित करना चाहा था। शेष में एक अदम्य उल्लास में भरकर वे बोल उठे थे: 'वीरेन, सच पूछो तो इतना लिख कर भी, मैं अपनी असली बात अभी तक नहीं कह पाया। सबसे पहले मैं कवि हूँ, फिर कुछ और। मेरा कवि अव्यक्त ही रह गया। इस महाकाव्य में मेरी अन्तरतम रसात्मा का वह द्रष्टा कवि सबसे पहले प्रकाश पायेगा।' हमारा दुर्भाग्य कि 'रसोवैसः' का यह आधुनिक द्रष्टा अपने उस विराट 'विज़न' को साकार करने के लिए हमारे बीच नहीं रहा और भारत तथा हिन्दी का एक आधुनिक महाकाव्य अनलिखा ही रह गया।

डा. रांघेय राघव के निधन से हिन्दी और हिन्दुस्तान ने अपने युग का एक

श्रेष्ठ स्रष्टा और पारद्रष्टा चिन्तक खोया है, और व्यक्तिगत रूप से मैंने सृजन और चिन्तन क्षेत्र का अपना एक ऐसा अन्यतम आत्म-सहचर खो दिया है, जिसके बिछोह की दरार आजीवन मेरे हृदय में कसकती रहेगी। पिछले महीनों की कुछ ही निकटतम चर्चाओं में मैंने अपने इस अन्तर-सखा को discover किया था: ठीक मेरी ही तरह उसकी चेतना में भी पूर्व और पश्चिम, आत्मिक और विज्ञानिक के सहज संयोजन द्वारा आगामी कल की ऊर्ध्वगामी नूतन मानव-जाति का सपना सम्पूर्ण उन्मेष से उदय हो रहा था। देश-काल के पटलों को बींधती राघव की वे बड़ी बड़ी मर्मवेधिनी आँखें, इस बीच कई-कई रातों मेरी समूची सत्ता को झकझोरती रही हैं। और मरण की बाधा पर सदेह और ससंज्ञ विजय पान की महावेदना से हिल्लोलित होकर मैंने बारम्बार दिशाओं पर पुकारा है: 'राघव, मेरे प्यारे दोस्त, मेरी आत्मा के अभिन्न सहचर, नहीं, तुम कहीं चले नहीं गये हो; मेरी नाड़ियों के स्पन्दनों में, मरण-विजय के लिए चीखते मेरे हृदय के खून में, मेरी बाँह में बाँह गूथे सत्य-शोध की मेरी महायात्रा में तुम पल-पल मेरे साथ हो। भीतरी रोशनी के कक्षों में हम हर दिन मिलेंगे, और अपनी स्वप्न-सृजनाओं के बल हम एक दिन निश्चय ही भगवान की अमृता भूमा को मर्त्यों की पृथ्वी पर साकार करेंगे।... राघव, तुम अनन्तों में अमर हो और चिरकाल जयवन्त हो। तुम्हारा अनलिखा महाकाव्य मानव की आनेवाली पीढ़ियों में, सदेह रक्त-मांस में साकार होकर, एक दिन तुम्हारी स्वप्न-सिद्धि की साक्षी देगा!....'

हिन्दी भारती के इस योद्धा और विजेता बेटे का स्मारक सम्भवतः क्या हो? राघव की आत्मा में आज के इस घोर व्यावसायिक युग में लेखक की अव्यभिचरित सत्ता और स्वाधीन व्यक्तिमत्ता को क़ायम रखने के लिए बड़ा तीखा दर्द था। क्यों न राघव के नाम पर एक 'डा. रांगेय राघव सहकारी प्रकाशन' की स्थापना हो, जो प्रकाशन के लिए तरसते, अपने को हर कदम पर झुठलाने और बेचने को विवश हिन्दी के आज के हर प्रतिभावान लेखक के कृतित्व को सुलभ प्रकाशन द्वारा मुक्ति देकर, प्रकाशन की स्थापित स्वार्थी ठेकेदारी और व्यावसायिक सत्ताशाही के अत्याचारों से बचा ले। हिन्दी की अस्मिता के संरक्षक गुरुजनों, हिन्दी के शुभचिन्तकों और अपनी सर्वांगीण मुक्ति के लिए जूझती आज की तरुण साहित्यिक पीढ़ी के सम्मुख, मेरा यह प्रस्ताव विचारार्थ निवेदित है।

* * *

[कृष्णावतार : पृष्ठ १०२ का शेषांश]

'देवकी से मैं मथुरा छोड़ने को कैसे कहूँगा ? आगे भी वह कम दुःखी नहीं है, उस पर यदि यह आफत उस पर आ गयी तो वह बचेगी नहीं। जिस पुत्र के मुखदर्शन का आनन्द वह क्षणभर भी नहीं उठा सकती, उसके क्षेमकुशल की चिंता में वह मृतप्राय जीवन बिताती है। आपको खबर नहीं, उसका तो सारा जीवन ही कृष्णमय हो गया है।'

'स्वामी !' अत्यंत भावविह्वल देवकी का कंपित स्वर सुनायी पड़ा।

तीनों जनों ने पीछे मुड़कर देखा। दरवाजे के बीच खंभे का सहारा लिये देवकी खड़ी थीं। दृढ़ तथा कठोर मुखाकृति ! होंठ कांप रहे थे और आँखें भय से फटी हुई थीं !

'स्वामी, आचार्य ठीक ही कहते हैं ! हमें मथुरा छोड़कर चले ही जाना चाहिए। मेरा प्रभु यदि जीवित रहे, तो मैं मरने को भी तैयार हूँ।' देवकी ने कहा और मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ीं।

[क्रमशः]

अनु : ओंकारनाथ शर्मा

ऑर्डर फ़ॉर्म

श्री व्यवस्थापक **'भारती', भारतीय विद्या भवन,**
चौपाटी मार्ग, **बम्बई–७,**

प्रिय महाशय,

मैं **'भारती'** का वार्षिक सदस्यता शुल्क ५/ (पाँच रुपये केवल)/ अर्द्धवार्षिक शुल्क ३) (तीन रुपये केवल) मनीऑर्डर/पोस्टल ऑर्डर/चेक द्वारा भेज रहा हूँ/रही हूँ। कृपया मुझे ....के अंक से वार्षिक/अर्द्धवार्षिक ग्राहक बनाकर निम्नांकित पते पर 'भारती' भेजने का कष्ट करें :—

नाम ______________________________

पूरा पता ______________________________

____

____

दिनांक............ भवदीय,

____

[सीमान्तक संस्कार में राधा और कृष्ण : पृष्ठ ९१ का शेषांश]

आपस की दूरी कभी नहीं निभती और साथ नहीं छूटता था। मिडल स्टैन्डर्ड तक पहुँचते ही, दोनों आपसी व्यवहार में शांत, कुशल और सहानुभूति से आत्मीय हो चले। एक साँझ को, जोरों की आँधी उठी और दोनों निकट ही, आम के बग़ीचे में गिरे हुए टिकोरे बटोरने लगे। जोरों की वर्षा भी आयी और दो घंटों तक बरसती रही। वे रखवाले की सूनी 'गोहिया' में छिपे रहे और जब वर्षा समाप्त हुई, तो घर की ओर चल पड़े। बग़ीचे के बाहर की पतली खाई पानी से भर गयी थी, जिसे पार करना था, तो बाँस का एक बड़ा सा बल्ला उठाकर मेरे मित्र ने आर-पार डाल दिया और उस लड़की को हाथ का सहारा देकर पार हो जाने दिया। राह चलते, वह सचमुच यही पद गुनगुनाने लगी, —"कर धरुकरुमोहे पारे...।" फिर वह अपने सखा के अनुरोध पर स्पष्ट स्वरों में गाती हुई घर पहुँच गयी। मैट्रिक्युलेशन में दोनों साथ नहीं पढ़ सके। वह अपने घर भेज दी गयी, फिर भी पत्राचार चलता रहा, उसकी ननिहाल के परिवार और मित्रवर के परिवार में निर्णय भी हो गया कि दोनों की शादी के लिए उसके पिताजी से बातें की जायँ; इन दोनों परिवारों के सदस्यों और ग्रामीण-समाज में भी शिक्षा का प्रसार है, दृष्टिकोण की आधुनिकता है, किंतु लड़की के पिताजी का गाँव और परिवार, दोनों दकियानुसी सें बँधे रहते हैं। उस गाँवका कोई आदमी राजी नहीं हुआ कि सात साल की उम्र में ही विवाहिता और आठ साल की उम्र में ही बाल-विधवा हुई उस लड़की का पुर्नविवाह हो। वह अधिक तो पढ़ भी नहीं सकी कि अच्छे तबके की अध्यापिका का भी जीवन बिता सके। वह, विद्यापति की पद-नायिका की तरह लोकोत्तर सौंदर्य की स्वामिनी नहीं, दुबली, साँवली—यों हीं साधारण है और मिलने-जुलने की छूट भी उसे नहीं, साथ ही मेरा मित्र उस पद-नायक की महत्ता के नितांत प्रतिकूल कुछ नर्वस मनःस्थिति का भावुक नवयुवक है। फिर भी सामान्य मानवों के भी ऐसे जीवन्त सम्बन्ध पर जब पारस्परिक संस्कार श्रीराधा और श्रीकृष्ण की महीयसी प्रीति का दाय आरोपित कर देता है, तो प्रतीत होता है कि संस्कृत की पुराकालीन गाथाओं और कृष्णराधा की परिकल्पना और स्मृति से, विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा और अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों के भी रचना-प्रवाह में विकसित होकर श्रीराधा और श्रीकृष्ण की नव्यतम व्यापक और एक प्रक्रिया से निर्वैयक्तिक अवधारणा हमारे संस्कारों को परिचालित करने लगती है।

विवेकानन्द-ग्रन्थावली

सचित्र आकर्षक गेट-अप

भारत में विवेकानंद (भारतीय व्याख्यान) ...	५.००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश) ...	२.७५
पत्रावली–प्रथम भाग ...	५.६५
पत्रावली–द्वितीय भाग ...	४.२५
विवेकानंदजी के संग में ...	५.२५
विवेकानंदजी की कथाएँ ...	१.६०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ...	१.६०
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ...	१.५०
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त ...	१.१५
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)...	१.५०
विवेकानंदजी के सान्निध्य में ...	०.९०
कर्मयोग	१.४०
भक्तियोग	१.५०
राजयोग	३.००
ज्ञानयोग	३.००
प्रेमयोग	१.३७
हिन्दू धर्म	१.५०
धर्मरहस्य	१.२५
धर्मविज्ञान	१.६२
विविध प्रसंग	१.१२
चिन्तनीय बातें	१.००
शिकागो वक्तृता	०.६२
भारतीय नारी	०.७५
विवेकानंद चरित	६.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए –

श्रीरामकृष्ण आश्रम (भा.)

धन्तोली, नागपुर–१

मैंने अपने मित्र से कहा कि ऐसे आसंगों का विषाद अपने मन पर छाने नहीं दे। यदि हो सके तो ऐसे आसंगों से एक प्रकार का आत्मिक प्रसाद ही प्राप्त करना चाहिए। हमारी सफलताएँ या विफलताएँ मूल्यवान नहीं होतीं,–वे तो जीवन-प्रक्रिया की विश्रामस्थली हैं। मूल्यवान होती हैं, वे उपलब्धियाँ जो सर्वमुखी अनुभूति के रूप में हमारे संघर्षी अस्तित्व और व्यक्तित्व को प्रसादित कर जीवन-प्रक्रिया को बार-बार जीवन्त बना देती हैं। वे उपलब्धियाँ आस्था और आत्मबल का पोषण करती हैं।

"राधिका, जैसे मकर की चाँदनी
भोर का भ्रम भर रही उन्मादिनी,
पर अभी तो शेष आधी रात है,
प्रेम-पंथी, चल, सुदूर प्रभात है!"
(राधा : जानकीवल्लभ शास्त्री)

हाँ, मेरे शोधकर्ता बन्धुवर! उस रात, अपने एकांत कमरे में, रात्रि के अंतिम प्रहर भी जब मैं खुली आँखों काट रहा था, मुझे प्रतीत हुआ कि आधुनिक जगत् के हम सभी पुरुष श्रीकृष्ण के जैसे सौभाग्यशाली भी नहीं हैं कि स्वयं निःशस्त्र रहकर महाभारत का संचालन करें और न उनकी तरह निर्मोही, कि कर्म-क्षेत्र का संघर्ष आरम्भ कर फिर कभी बांसुरी न बजावें; फिर भी सामूहिक अवचेतन के दुर्निवार आवर्त्तों में कोई धूमिल दृश्य उभरता आ

रहा है कि हमारे आधुनिक हृदयों में बसनेवाले असंख्य आत्मीय श्रीकृष्ण किसी महाभारत के क्षेत्र से, एक अलभ्य अवकाश-सन्ध्या में, भटक-भटक कर सपनों की यमुना के अवघट घाट पर आ गये हैं। असंख्य श्रीकृष्ण इस साँझ की रहस छाया में, आलिंगन-बद्ध होकर 'एक' हो चले हैं। अब एकीभूत श्रीकृष्ण देख रहे हैं कि सपनों की यमुना का अश्रु-जल सूख ही चला, अभिलाषाओं के हरित कूल भी उजड़ गये और जिन चरणों को छूकर कोई शक्ति हरे बाँस के टुकड़े को वंशी में परिणत कर गयी थी, वे चरण भी काँटों के बन में भटकने लगे। जिस आत्मिक लालसा की सर्वार्थ नयी बाँसुरी ने मौन उच्छ्वासों को वाणी दी, अब उसकी स्मृति ने ही करुणा की प्रतिध्वनि बनकर जीवन की प्रत्येक दिशा को घेर लिया है। वे अनुभव करते हैं कि सघन आनन्द के वृन्दावन में, क्षणों की रास-लीला के लिए जब अन्तर के स्वरों में बजकर वह मुरली आमन्त्रण जगाती थी, तो प्रीतिस्वरूपा श्रीराधा के अतिरिक्त भी हर साँस गोपिका बनकर मदमाती-सी दौड़ पड़ती थी, –उस मुरली की छाया भी छिन गयी– जब जीवन में संघर्ष की पुकारों ने जगकर शारदी पूर्णिमा के अंचल में आग लगा दी। वे आवेगशील हो सोच रहे हैं कि जीवन की सहज माधुरी की एकांत प्रतीक वह वंशी कितनी दूर छूट चुकी है–किसी मरुभूमि में जैसे अमृत-भरे बादलों की छाँह अभिशप्त हो, रुकी हो और उनकी साँवली देह चमकती विजलियों से घिरी घनघटा-सी निर्लिप्त है। वे उस मरुभूमि में जा नहीं सकते और संघर्ष की पुकारों को झुठला नहीं सकते। उनकी आत्मा छटपटा रही है कि मथुरा ही माँ का आँचल पसार कर उनके पौरुष का विजय-मुकुट पा लिया, कुरुक्षेत्र ने अपनी अमिट बुभुक्षा मिटाने को उनकी प्रज्ञा का अमृत-फल ले लिया है, किंतु वह मुरली–वह गोकुल की राग-वधू तो विस्मृति का शाप ही पा सकी? उनके मन में एक ही क्षोभ है कि संसार अपने कल्याण और स्वार्थ के लिए उन्हें अपना भगवान बनाकर भी उनकी मानवीय वेदना को कोई प्रतिदान नहीं दे सकेगा! तभी बन्धु! मेरी यह प्रतीति एक गीत बन गयी–"ओ दूर बसी वंशी मेरी!"

पं. रमाशंकर शास्त्री

श्रीकृष्णाख्यान के प्रतीकार्थ और शुभ नियुक्ति

श्रीकृष्ण की जीवन-लीला के गूढ़ प्रतीकार्थों और रूपकार्थों को प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने खोल कर, उनकी समस्त व्यक्तिसत्ता और चरित्रसत्ता पर एक नया ही प्रकाश डाला है।

पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां
मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम् ।
एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां
श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम् ॥

श्रीकृष्ण सम्बन्धी विपुल वाङ्मय के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ब्रह्म के तीन रूपों के अनुसार ही इनका ऐतिह्य विविक्त है। श्रुतियों के एकीभूत गुप्तवित्त (उपनिषद् में) ब्रह्म, गोपाङ्गनाओं के पुञ्जीभूत प्रेमस्वरूप (भागवत में) परमात्मा और यदुओं के मूर्तिभूत भागधेय (गीता में) पुरुषोत्तम का चरित त्रिवेणी-रूप में प्रवाहित होकर हमें आप्यायित करता है। इनके व्यक्तित्व में वैदिक विष्णु, अध्यात्म के ब्रह्म और भारत-लोकनायक का एकीकरण पाञ्चरात्र मत की प्रतिष्ठा के अनन्तर पूर्णरूप से हो गया। 'शिव-शक्ति' के समायोग से सृष्टि-कल्पना के सिद्धांत का विस्तार मिथुन-वासना को प्रधानता देकर पुराणकार ने तत्त्वमीमांसा के साथ किया अवश्य, पर उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्हें कहना पड़ा कि वेदों के सारभूत उपनिषदों के दुग्ध को वेदांत सूत्रों के रूप में भक्तों को पिलाने पर भी जब मेरी तृप्ति नहीं हुई, तो मैंने भागवत की रचना की। और इस रचना में भारतीय संस्कृति के त्रिविध मार्ग (ज्ञान-भक्ति-कर्म) द्वारा परम-पुरुषार्थ का लक्ष्य एक की उपासना में केंद्रित करने का पूर्ण श्रेय महर्षि व्यासदेव को है। श्रीकृष्ण की स्वरूप-मीमांसा में पुराणकार ने मूल परमेश्वरी शक्ति और परमेशान का जो स्वरूप सामने रखा, वह युगों तक मनन और उपासना का विषय बना रहा

तथा कर्म और ज्ञान की पराकाष्ठा 'भक्ति' के अक्षय्य स्रोत का उद्‌गम सिद्ध हुआ। इतिहास साक्षी है कि भावनात्मक ऐक्य द्वारा राष्ट्रीय-हित का सम्पादन किस रूप में लीला-पुरुष के आख्यान से हुआ है। आख्यान का आदर्शीकरण जिन रूप को, अतिशयोक्तियों या प्रतीकों के सहारे किया गया है, उनके आधिदैविक, आध्यात्मिक या आधिभौतिक मूलार्थ समानरूप से हमारा परिष्कार कर सकते हैं। ज्ञान में अद्वैत, भाव में विश्वसौहार्द और कर्म में योग की सिद्धि हो सकती है।

उपनिषदों के तत्त्व को स्पष्ट करते हुए परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए निगमागम-मूलक-पुराण-सूत्रों के संव्यसन करनेवाले व्यासदेव ने जिन नानार्थक रूपकों का सहारा लिया है, उनका अवान्तरकालीन आचार्यों ने अपनी मान्यताओं के अनुकूल व्याख्यान दिया है। इनकी प्रतीक-व्याख्या में कहीं श्रीकृष्ण का ज्ञानाश्रित-स्वरूप स्पष्ट किया गया है और कहीं विशुद्ध धार्मिक स्वरूप विविक्त है। सम्बद्ध पदार्थों, चरितों और घटनाओं की व्याख्या भी, इन्हीं दो स्वरूपों पर आधृत है।

पुराणों के अंगभूत सृष्टि-प्रकरण में 'कृष्ण' और 'राधा' के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में परमात्मा और उनकी 'शक्ति' का ऐक्य प्रदर्शित है। कृष्ण 'सर्वादि', 'सर्वबीज' और 'सर्वात्मा' इसलिए हैं कि 'कृषि' सर्व का वाचक और 'नकार' (ण) आदि, बीज और आत्म का वाचक है। अथवा वे 'सदानन्द' भी इसीलिए हैं कि 'कृष्' धातु का अर्थ भू (सत्ता) और 'न' (ण) का अर्थ निर्वृत्ति या आनन्द है। इसी तरह पञ्चप्राणाधिदेवी कृष्णप्रेममयी शक्ति 'राधा' के विवेचन वाले पुराणवचन से स्पष्ट है कि 'शक्' ऐश्वर्यबोधक है और 'ति' पराक्रमवाचक है। फलतः 'राधा' ऐश्वर्य और पराक्रम प्रदान करनेवाली तत्स्वरूपा शक्ति है। अन्यत्र 'रा' का अर्थ 'आदान' और 'धा' का अर्थ 'निर्वाण' है। अतएव वहाँ राधा 'मुक्तिप्रदा' प्रकीर्तित हैं। इन व्युत्पत्तियों से सिद्ध है कि कृष्ण और उनकी अन्तरंगा शक्ति राधा परस्पर अपरिहार्य बन्धन में आबद्ध हैं, कभी परस्पर वियुक्त नहीं होते।

पुराणों के इस प्रकार के व्याख्यान का आशय यह है कि रूपरहित तत्त्व विशेष प्रकार की शक्ति के समायोग से रूपवान होता है। अनन्तशक्तियों की केंद्रभूता महाशक्ति कभी भौतिकशक्ति के रूप में और कभी चैतन्य के रूप में समुल्लसित होती है। उसीके योग से निराकार सगुण विग्रह धारण करता है। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका अंग है। पद्मपुराण के उत्तरखंड में (२४५ अध्याय) पार्वती ने जनार्दन के परदाराभिगमन की शंका की है। रुद्र

ने उत्तर देते हुए कहा है कि संपूर्ण जगत् उन्हीं का अंग है और अपने शरीर के परिष्वंग से 'रति' नहीं होती। सर्वभर्तुत्व और आत्मेशत्व के कारण जगत्पति महात्मा-पुरुष का स्त्री-पुम्भेद भी नहीं होता।

पहले संकेत किया जा चुका है कि आख्यान से सम्बद्ध चरितों की भी व्याख्या ज्ञानाश्रित है। रहस्य प्रतिपादन के लिए उपनिषदों में जो प्रतीकार्थ व्यक्त हैं, वही ज्ञानाश्रयी व्याख्या के मूल माने जा सकते हैं। कृष्णोपनिषद् में वसुदेव 'निगम', देवकी 'ब्रह्मपुत्रा' गोपियाँ और गायें 'ऋचाएँ', नन्द 'परमानन्द', यशोदा 'मुक्तिगेहिनी' और कृष्ण 'वेदार्थ' कहे गये हैं। श्रीमद्भागवत् में कृष्णोपनिषद् के समान ही गोपियाँ 'श्रुतिरूपा' मानी गयीं हैं। अन्यत्र उन्हें विश्वरूपा, सखीरूपा और अप्सरारूपा भी माना है। श्रुतियाँ अन्यपरा और अनन्यपरा दो प्रकार की हैं। अनूठा कृष्णपरा गोपियों की तरह अनन्यपरा श्रुतियों का पर्यवसान 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' में होता है और अन्य परा श्रुतियों का दूसरे देवताओं से सम्बन्ध रखते हुए परब्रह्म में। उपनिषदों की प्रणाली में कृष्ण को प्रणवात्मक और गोपियों को ऋचात्मक माना है। इसी प्रकार के आध्यात्मिक मूल के अनुसार बलराम 'शेषनाग', कश्यप 'उलूखल', अदिति 'रज्जु', वन 'वैकुण्ठ', द्रुम 'तापस', यष्टिका 'ब्रह्मा', वंश 'रुद्र' और शृंग 'इन्द्र' हैं। पाश्चात्य विद्वानों की कल्पना में कंस 'हेमन्त', कृष्ण 'वसन्त' और गोपियाँ 'ग्रहनक्षत्र' के प्रतीक हैं। आध्यात्मिक और आधिदैविक मूल का यह भेद प्रकृति-भेद के कारण है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि 'जीवलीला' को 'जीवनसङ्ग्राम' का अभिधान देनेवाले पाश्चात्य विद्वान अन्यथा सोच ही क्या सकते हैं?

जीव को शुद्ध ब्राह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित करने के लिए धर्म की भावात्मक अनुभूति की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए साधक-बाधक, दैवी-आसुरी मनोवृत्तियों के रूप में भी कृष्णकथा से सम्बद्ध चरित्र हैं। साथ ही कलिधर्म का संकेत करते हुए कंस को 'कलि' और अधासुर को 'महाव्याधि' कहा गया है। असद्वृत्तियों के रूप में राक्षस 'गर्व,' चाणूरमल्ल 'द्वेष' और कुवलयापीड 'दर्प' हैं। सद्वृत्तियों के प्रतीकरूप में सुदामा, अक्रूर और उद्धव हैं, जिन्हें क्रमशः 'शम,' 'सत्य' और 'दम' कहा गया है। रोहिणी दया है। इसी परम्परा में गोपियाँ 'आत्मा' और उनका वस्त्र अस्मिता के प्रतीकरूप में ग्रहीत हैं। इस प्रकार चीरहरण का तात्पर्य 'आत्मा के द्वारा अस्मिता का निरास' है। दूध को 'घीन्द्रिय संयम विषयक' प्रतीक और दूहने को 'पौर्वदेहिक कर्मेन्द्रिय संयम विषयक

संयोग लाभ का संकेत करनेवाला माना गया है।

इनके अतिरिक्त औपनिषद् और पौराणिक दोनों परम्पराओं में एक-एक के दो-दो प्रतीकार्थ भी प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्ण 'चौर' के रूप में ज्ञानाश्रित और धार्मिक दोनों स्वरूपों में विविक्त हैं। एक अर्थ में तो वे सम्पूर्ण संसार को अपने में लीन करने वाले हैं और दूसरे अर्थ में प्रपन्नों के अशुभ कर्मों को 'चुरानेवाले' हैं। कृष्णोपनिषत् में सत्यभामा को 'धरा' माना है और पद्मपुराण में यशोदा को। इसी के अनुसार नन्द 'द्रोण' (वसु) के प्रतीक हैं। वासुदेव को 'चित्त' या 'आत्मा', सङ्कर्षण को 'जीव' या 'बुद्धि' के प्रतीकभेद से व्यक्त किया गया है। कहीं प्रद्युम्न 'मन' माने गये हैं। और कहीं ब्रह्मा को 'मन' के प्रतीकरूप में स्वीकृत किया है। अनिरुद्ध और रुद्र दोनों को 'अहंकार' कहा गया है।

आध्यात्मिक मूलपर ही अवांतर कालीन आचार्यों ने गोपियों से सम्बद्ध रहस्यात्मक कल्पनाओं का विश्लेषण किया। पर इन आचार्यों ने भावात्मक ऐक्य के लिए या यों कहिये कि अनुरागरस के साथ सम्पूर्णतया विश्व की तादात्म्यापत्ति के लिए उपनिषदों के आनन्दवाद को भक्तिसमुद्र में तरंगायित कर दिया। आत्मनिष्ठ की रहस्यसाधना को सर्वजनसुलभ बनाने के लिए प्रेमतत्त्व को प्रतिष्ठित किया। एक ओर तो उन्होंने स्वीय कामशक्ति को दिव्यत्याग या आत्मसमर्पण द्वारा शुभनियुक्त करने के लिए समाज को संदेश दिया और दूसरी ओर भाव को देवता मानकर मनसम्भवा आध्यात्मिकी भावना के अतिशय उद्रेक द्वारा भक्तिरस की पद्धति समाज में चलायी। इस प्रकार मन के अमनीभाव और रागात्मकता से सम्वद्ध प्रतीकार्थ भी उपलब्ध होते हैं। अहेतुकी कृष्ण-लीला में अखंड आनन्दप्रद 'रति' की चर्चा सामान्यतया इनके विश्लेषणों में है। बाललीला 'प्रीतिरति' ('लरिकाईं कौ प्रेम'), गोचारणलीला 'प्रेमरति', कैशोरलीला 'मधुररति', व्रजलीला 'विरहप्रधानरति' और 'निकुञ्जलीला' 'संयोगैक-प्रधानागोप्यरति' मानी जाने लगी। दुस्त्यज आर्य-पथ और स्वजनों का परित्याग करनेवाली गोपियाँ 'प्रेमभक्ति साधना' की प्रतीक हो गयीं और राधा 'रस-सिद्धि' की प्रतीक बनीं। स्मरण रहे कि रागात्मिका भक्ति की कल्पना भी कोई नयी उपज नहीं थी। इसका आधार भी आगममूलक पुराणवचन ही है। सुखानुवर्तक प्रेमतत्व में प्रत्यक्षता, सन्निधान और अंतरंगता का महत्व दिखलाकर इन आचार्यों ने श्रीकृष्ण को 'रसस्वस्वरूप' परमात्मा अभिहित किया। वृन्दावन को 'अमरपुरी' माना जाने लगा और वेणुरव 'आनन्दमयी लीला' के रूप में ग्रहीत हुआ।

आगे के निर्गुणी सन्त भी 'मन' को मथुरा और 'दिल' को द्वारका इसी परम्परा के अनुवर्तन में मानने लगे।

उक्त प्रेमरसज्ञ आचार्यों ने जिस अभेद-पोषक, व्यवधाना-सहिष्णु, अनन्याश्रयी रसमय प्रेमतत्व का विश्लेषण किया, उसमें भक्ति के तृप्तिकारी आलम्बन को स्वीकार किया और वैषयिक प्रीति को त्याज्य कहा। काम का आलम्बन सदा अतृप्तिकर होता है। अपरिमित अनुद्भुत कामशक्ति वाले चित्त-यंत्र का जगत्-सम्बन्ध-स्फुरण मननी शक्ति है। इस शक्ति के निरोध से चित्त 'चित्' हो जाता है। अन्यथा जीवचित्ति बुद्धि के विलास में विलास और विषाद में विषाद करने लगती है। भक्त अपनी कामशक्ति को भक्ति के विषय में नियुक्त कर देता है। वैषयिक प्रीति में अवरोध, असंतृप्ति, व्याकुलता से जो प्रतिक्रिया होती है, उससे द्वेष की सृष्टि होती है। यह द्वेष बुद्धि अंततः दुःखवाद की सृष्टि करती है, अस्तु यदि उस कामशक्ति को शुभनियुक्त कर दिया जाय, तो तत्वज्ञान के समुदयसे आत्म-लोक कल्याण होता है। उक्त आचार्यों ने होली की व्याख्या रागात्मिका शुभ-नियुक्ति के आधार पर ही की है। होलिकादाह 'निवृत्त्यग्नि से बाह्य आशापाशों का जलाना' है। सखियाँ 'अनन्तवृत्तिरूपा' हैं और नायिका (प्रधान) 'निर्मलप्रज्ञा' है। इसी प्रकार रंग का प्रकरण भी रूपकप्रधान है। पिचकारी 'अभिधानरूपा' है और उसमें 'बोध रूप' रंग भरा जाता है। स्निग्ध मानसी वृत्तियाँ प्रियतम को अपने रंग में रंग देती हैं। आधिदैविक दृष्टि से तो वसन्तोत्सव प्राचीन और नवीन विचारों की सन्धि है ही।

ऐतिहासिक दृष्टि डालने पर दीख पड़ता है कि नानाधर्मों के समुदय, कालकृत व्यवधान या राष्ट्रीय विच्छित्ति के कारण श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के प्रति अनन्यभाव दुर्बल पड़ गया। रामानुजाचार्य, मध्व, वल्लभ, निम्बार्क या चैतन्य के योगदान से समाज में जिस स्नेहमूलक जीवनीशक्ति का संचार हुआ था, उसमें शिथिलता आ गयी। हमें आध्यात्मिकता स्वीकृत न हो तो इस प्रेरणादायक कृष्णाख्यान के आधिदैविक या आधिभौतिक अर्थों से भी नियोजन किया जा सकता है। अन्न को ब्रह्म माननेवाले भूतार्थवादियों के लिए भी तो हलधर, गो, संकर्षण और कृष्ण अपने 'कृष्यर्थ' को व्यक्त करने के लिए पहले से विराजमान हैं। रजोगुणियों के लिए रजोगुणविशिष्ट श्रीकृष्ण उपास्य हो सकते हैं। उस अवस्था में भी शक्ति के धर्म प्रवृत्तिकारक रज से अभिनव समाजसृष्टि की जा सकती है। मुझे तो यही कहना है :—

प्रपन्न के प्रश्रय लीलाधाम्
राग के आलम्बान अभिराम्
धनन्जयसूत मध्य सङ्ग्राम्
वन्द्य जिनके हैं, उन्हें प्रणाम ॥

(आत्मानन्द)

* * *

रामनारायण उपाध्याय

बाजी रे यमुना तीर-मुरलिया बाजी रे

* * *

विन्ध्यांचल में स्थित निमाड़ प्रदेश के लोक-गीतों में श्रीकृष्ण की माधुरी लीला का ऐसा भाव-विभोर गान देख कर आश्चर्य और आनन्द से स्तब्ध रह जाना पड़ता है। निमाड़ की लोक-रसवन्ती का यह अनुपम स्वाद हमारे पाठकों तक पहुँचाकर, सचमुच ही भाई रामनारायण ने हमें अत्यन्त उपकृत किया है।

* * *

निमाड़ी लोकगीतों में भगवान कृष्ण की मधुर-लीलाओं के स्वर अत्यंत ही प्रबल होकर उतरे हैं। इनमें कहीं गाँव के आँगन से बहनेवाली गीतों की गंगा में यमुना का जल हिलोरें लेता है; तो कहीं अपनी प्रिया को लेने को आये हुए कुंवर कन्हैया, बिना उसे अपने साथ ले जाये वापस नहीं लौटते। कहीं सुदूर ब्रज में खेली जानेवाली होली में इतना गुलाल उड़ता है कि स्वयं कन्हैया भी रास्ता भूल जाते हैं; तो कहीं भादों की उतरती रात में रास का ऐसा रंग जमता है कि सुबह हो जाने पर भी लोगों में अपने घर लौटने की याद नहीं जगती। लेकिन इसमें लोगों का क्या दोष? जिस बंशी के स्वर सुनकर गोपिकाएँ अपनी सुधबुध खो बैठती थीं, उसी की प्रतिध्वनि सुनकर, यदि लोगों में अपने घर लौटने की याद न जागें, तो इसमें क्या आश्चर्य।

देखिए भगवान कृष्ण की बंशी का स्वर सुनकर गोपिकाओं की कैसी स्थिति हो जाती थी।

"बाजीरे यमुनातीर मुरलिया बाजीरे।
सबही गुवालन दौड़ी न चाली,
अजी पेरी न उलटो चीर।"

अर्थ है:—

यमुना के तीर पर, बंशी बजी है
बंशी, बजी है यमुना के तीर,
सब गोपिकाएँ वहाँ दौड़ कर पहुँच रही हैं
दौड़ कर पहुँच रही हैं।
अजी पहन कर उल्टा चीर।
बंशी बजी है यमुना के तीर।

भगवान कृष्ण की बंशी में कुछ ऐसा जादू था कि, उसे सुनकर गोपिकाएँ ही अपनी सुधबुध नहीं खोती थीं, वरन, कालिंदी का जल भी थम जाता था, पवन लजा जाता और चांद-सूर्य भी एक क्षण अपना रथ रोककर खड़े हो जाते थे।

उसी बंशी के मोहक स्वर को आप भी सुनिए–

कानूड़ो लाल, बंशी बजाई रे।
बंशी बजाई मुख मुरली बजाई रे।
एक आधी सी रात हऊं मज घरमऽसोई,
मखऽभर निद्रा मऽचमकई रे।

अर्थ है :–

कन्हैया ने बंशी बजाई है।
बंशी बजाई है मुख से मुरली बजाई है।
आधी रात को मैं मध्यगृह में सोई थी
उसने मुझे प्रगाढ़ निद्रा में चौंका दिया है।

उनकी इन्हीं सब हरकतों से परेशान होकर, आखिर एक दिन गोपियों ने उनकी बंशी छिपा दी। ऐसे में उनकी मनस्थिति का आनंद लीजिए –

वे कहते हैं –

"दीजो न हो ब्रजनार बंशी हमारी।
कालिन्दी के तीर, बंशी हम भूली बिसारे हो,
लेरे गई मुख ढाँक के हो, घूंघट ओट छिपाय
एजी छिपाये ना छिपेहो, असी नंही वो;
नंही कही जाय,
लंगर कन्हैया की ढीट, ढीट को का कहिये
भूल रहे कछु ठौर दोष हमरे सिर दै हैं।
इत उत खेलणहार, न जाने कहा रख दीन्हि
सत्य शब्द, बाबा नंद के, हम नंही लीन्ही
तू गूजरी जात गँवार काहे को रार बढ़ावे।
सोच समझ मन मांहि काहे को लोग हँसावे।
लोग हँसे चर्चा करे, सुण सुंदर ब्रज नार
हमारी वंशरी दे दीजे, मत कर मुरख गँवारं
वंशी कैसी होय कान्ह हम नजर नी देखी हो,
पिता तुम्हारा बाबा नंदजी, तुम धमकी देता हो।
ले लकड़ी मुख में धरी, बंशी वाको नाँव,
तुम मोहन जसोदा जी के लाला; कसी पत बसऽथारो गांव।
बसःऽकी तो उजड़ऽकाई परवाह तुम्हारी जी–
तुमरा सरीखी लख नार नंदघर गोबर हेड़ऽजी।
हम खऽ कहत गंवार, मोहन तू म्होरा मत लीजे नाँव
थारा सरीखा गवळई म्हारा यहाँ, घर घर दूह गाय।
ई बंशी की साख ग्वालन तू काई जाण री,
तीन लोक खऽमोह, शब्द मखऽमत्त मार री,
बंशी ढूंढत हम हारया, हमन मानीहार
हम तो आधीन हुई माँगता; तुम देवो न ब्रज की नार
श्याम सुंदर ब्रजनाथ, आपकी बंशी लीजो हो।
लेओन कुंवर पहिचाण, हंसत मुख बंशी बाजे हो।

वृदावन की कुंज गलिन में, रचियो रास
विलास,
व्रज नारिन के संग में, नित होय हास
उल्लास।

अर्थ है –
"हे व्रज की बालाओं, हमारी वंशी दे दो। कालिन्दी के तीर पर हम अपनी वंशी भूल आये हैं। कोई उसे अपना मुंह ढांक के घूंघट की ओट में छिपाकर ले गयी है। लेकिन वह छिपाये से नही छिपती। वह ऐसी नहीं हैं कि कोई उसे लेकर नहीं कह जाये।

इस पर गोपियाँ कहती हैं–
झूटे कन्हैया की ढिटाई को क्या कहें? वह और कहीं अपनी वंशी भूल आये हैं। और दोष हमारे सिर लगाते हैं।

वे तो इधर उधर मटरगश्ती करने वाले हैं। न जाने कहाँ रख आये।

हम बाबा नंद के लाला की तरह सच कहते हैं, बंशी हमने नहीं ली है।

इस पर कृष्ण कहते हैं –

हे गंवारिन गूजरी! तू व्यर्थ ही झगड़ा क्यों बढ़ाती है। अपने मन में सोच समझ कर देखले, लोगों को क्यों हँसाती है? हे ब्रज की सुंदरी जब लोग इस बात को सुनेंगे तो हँसेंगे।

यहाँ वहाँ उसकी चर्चा करेंगे, अब भी हमारी वंशी दे दे। मूर्खता और गंवारी मत कर।

इस पर गोपियाँ कहती हैं–
"वंशी कैसी होती है। कान्ह हमने तो उसे नज़र से नहीं देखा। तुम्हारे पिता नन्द बाबा हैं। इसलिए व्यर्थ की धमकी देते हो।

एक लकड़ी को मुंह में रख लिया और उसे बंशी कहते फिरते हो।

हे जसोदा के लाल इस तरह से झूट बोलने से गाँव नहीं बसता।"

इस पर क्रोध में आकर कृष्ण कहते हैं–

"गाँव बसे या उजड़े, तुम्हें इसकी क्या परवाह, तुम्हारे जैसी तो लाखों स्त्रियाँ नन्द के घर गोबर निकालती हैं।"

सुनकर गोपियों को भी क्रोध आ जाता है– और वे बोलीं–

"हमको गँवार कहते हो हे मोहन! तुम हमारा नाम मत लो।

तुम्हारे जैसे तो अनेकों गवळी हमारे यहाँ गायें दुहते हैं।"

इस पर विनम्र होकर कृष्ण कहते हैं–
"इस वंशी के महत्व को हे ग्वलिन तू क्या समझ सकती है।

"इसने तीनों लोकों को वश में कर लिया है। तू मुझे शब्द मत मार।

वंशी को ढूंढ़ते मैं हार गया हूँ। और मैं तो तुम्हारे आधीन होकर वंशी माँग रहा हूँ। हे ब्रज की नार तुम हमारी वंशी लौटा दो। इतना सुनते ही हँसते हुए ब्रज वाला ने वंशी लौटा दी, और बोली–

"हे कान्ह तुम अपनी वंशी को पहचान लो। तुम्हारे हँसते ही वंशी बजने लगती है। इस तरह ब्रज की नारियों को लेकर वृन्दावन की गलियों में नित्य हास उल्लास चलता रहता हैं।

★

डॉ. गणपति राय पुरोहित

कृष्णा के आन्तिम सर्वस्व दर्पहारी मधुसूदन

प्राण-प्राण और मन-मन के सारे गोपनतम भेदों को जानते थे, वे सर्वान्तिर्यामी श्याम-सुन्दर। उनकी परम स्नेह-भाजन थी कृष्णा द्रौपदी। एक दिन प्रसंगवशात् किस प्रकार चतुर-चूड़ामणि मधुसूदन ने उस कृष्णा के मन के चिर गुह्य मर्म को भेद कर उसमें छुपे सूक्ष्मतम अहंकार का निर्दलन किया था, उसी की एक मर्म-स्पर्शी कथा यहाँ पढ़िए।

दर्पोद्धत दुःशासन ने भरी सभा में महारानी द्रौपदी को विवस्त्र करना चाहा, तो उसने निरुपाय होकर अपनी लज्जा का भार मधुसूदन के हाथों सौपकर प्रतिवाद करना छोड़ दिया और दूसरे ही क्षण उसका वस्त्र, लोभी की कामना की तरह बढ़ता चला गया।

गोद में पड़े शून्य पाक-पात्र की ओर अंतिम बार निराश दृष्टि डालकर वनवास दुःखिनी राजनंदिनी द्रौपदी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से आकाश की ओर मुंह उठकर एक बार फिर भगवान् का स्मरण किया। भगवान् आये और आते ही बोले "द्रौपदी भूख के मारे प्राण निकल रहे हैं कुछ खाने को दे।" म्लान मुख से द्रौपदी ने कहा, "यह शून्य स्थाली कल प्रातः काल से पहले खाने के लिए कुछ न देगी। आप को मैं इस समय खाने को क्या दूं"। क्षुधा से अधीर कृष्ण ने कहा, "देख तो सही इस पाक-पात्र के किसी कोने में कहीं कोई अन्न का दाना चिपका हुआ मिल जाये। द्रौपदी ने देखा कि स्थाली के एक किनारे पर एक कण अन्न चिपका हुआ था। उसने उस अन्न कण को उतार तो लिया पर उस अति तुच्छ भेंट को भगवान् को अर्पित करते समय उसका हाथ काँपने लगा। कृष्ण ने उसके कुण्ठा कम्पित हाथ पर पड़े अन्न कण को उठा कर मुँह में रख लिया। अधोमुखी कृष्णा की आँखों से टप-टप आँसू पड़ने लगे। कृष्ण ने सस्नेह पूछा "आज द्रुपदनंदिनी की आंखों में आँसू क्यों हैं?" भीगी पलकों को ऊपर उठाकर द्रौपदी बोली, "प्रभो! भीषण क्रोधी मुनि

दुर्वासा अपने शिष्यों के साथ अभी भोजन करने के लिए आने वाले हैं। मैं उनको क्या खिलाऊँगी"। इतने में एक मुनि कुमार ने आकर कहा "कल्याणि ! मुनिराज ने कहा है कि आज तो हम इतने तृप्त हो गये कि एक कण अन्न भी पेट में नहीं समा सकता और किसी दिन तुम्हारे इस आश्रम में आयेंगे।" कटी हुई लता की तरह द्रौपदी भगवान् के चरणों में लोट गयी और बोली "प्रभो ! आपकी जय हो।" द्रौपदी ने मन ही मन कहा "भगवान् की मुझपर पूर्ण कृपा है।" अहंकार का यह अंकुर धीरे-धीरे बढ़ता चला गया और एक दिन इन दोनों घटनाओं को बीते क़रीब १२ वर्ष हो गये। तब पांडव काम्यक वन में थे। मार्कंडेय मुनि, धर्मराज युधिष्ठिर को अनेक उपदेश और कथाएँ सुनाकर अपने आश्रम में लौट गये थे। तभी द्वारका से श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिर ने कहा कि बारहवाँ वर्ष बीतने वाला है। अब अज्ञातवास के लिए किसी सुरक्षित स्थान की खोज करनी चाहिए। कृष्ण ने उनकी बात का समर्थन किया। आयोदधौम्य आदि ऋषियों से धर्मराज ने पांचाल और हस्तिनापुर चले जाने की प्रार्थना की। पांडवों ने अज्ञातवास के लिए प्रस्थान किया। रंधनस्थाली हाथ में लिए याज्ञसेनी, त्रैलोक्य मोहिनी-रूपमें सब के पीछे-पीछे चल रही थी। दूसरे दिन वे काम्य सरोवर के तट पर पहुँच कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उस रमणीय सरोवर पर वे तीन दिन तक ठहरे। अगले दिन सूर्योदय से पूर्व उनकी यात्रा प्रारम्भ हुई। प्रकृति ने इस वन भाग को अकृपण हाथों से समृद्ध किया था। एक से एक अधिक सुन्दर दृश्य आँखों के सामने आते। कुछ क्षणों तक ठहर कर वे उसे देखते और धीरे-धीरे बातें करते हुए आगे बढ़ जाते। दिन चढ़ने के साथ साथ सूर्य की गर्मी भी बढ़ने लगती। पथ श्रम से क्लान्त पांचाली के शरीर से पसीना निकलने लगता, फिरभी सब के साथ-साथ चलती हुई वह सोच सोचती जाती—

"इस संसार में केवल मैं ही सर्वश्रेष्ठ सत्ती और पतिव्रता हूँ। वनवनान्तर के भयानक कष्टों को प्रसन्न चित्त से पतियों के साथ मैं ही झेल रही हूँ। मेरे इस आचरण की ऋषिमुनियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मेरा जन्म सफल हो गया। मेरे लिए इससे अधिक अहोभाग्य की बात और क्या हो सकती है कि अखिल विश्वपति कृष्ण मेरे चरित्र की इस पवित्रता के कारण ही मेरे वश में हैं।'

भगवान उसके वश में थे या नहीं, यह एक दूसरी बात थी, किन्तु इतना सत्य था कि द्रौपदी के हृदय पर अहंकार का अंधकार धीरे-धीरे घना हो रहा था। दर्पहारी मधुसूदन से अपने भक्त का

यह अहंकार नहीं देखा गया। चलते-चलते वे एक तपोवन में पहुचे। आम्रकुंजों की स्निग्ध श्यामल शोभा एवं शीतल छाया में पहुँचने पर उनको बड़ी शान्ति मिली। वन की अपूर्व शान्तिदायी शोभा को देखती हुई द्रौपदी की दृष्टि सहसा आम के एक फल पर जा टिकी। आम के असंख्य पेड़ों से घिरे उस तपोवन के केवल आम की एक डाली पर एक पका हुआ आम लटक रहा था। परम कौतुकी कृष्णा लुब्ध नेत्रों से उसी आम के फल को एक टक देखने लगी। अर्जुन ने द्रौपदी के मन की इच्छा को जानकर वाण मारकर आम के फल को नीचे गिरा दिया। द्रौपदी ने लपक कर आम को उठा लिया। वह बहुत प्रसन्न हुई। इसी समय कृष्ण वहाँ आ पहुँचे। द्रौपदी के औत्सुक्य चंचल मन और प्रमोद चंचल शरीर पर प्रमाद के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर केशव की मुखमुद्रा एक क्षण के लिए कठोर हुई, फिर दृढ़ निश्चय के साथ गम्भीर स्वर से उन्होंने अर्जुन से कहा, "पार्थ तुमने यह क्या कर डाला? मालूम होता है इस दुरन्त अनर्थ का सम्बन्ध किसी पूर्व कृत कर्म के साथ बँधा हुआ है। इसके परिणाम की भयंकरता का अनुमान कर मुझे तुम लोगों के लिए बड़ी दुश्चिता हो गयी है।"

भगवान् की बात सुनते ही सबके मुख विवर्ण हो गये। भय से स्तब्ध होकर सब उनकी ओर देखने लगे। युधिष्ठिर ने पूछा—"केशव! ऐसी क्या बात है जिससे आप जैसे सर्वसमर्थ पुरुष भयभीत हो उठे हैं?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "इस अनर्थ की जड़ यह असमय का आम्र-फल है। देखते नहीं इस आम्र अरण्यानी में जहाँ लाखों आम्र होने चाहिए इस फल के अतिरिक्त दूसरा फल है ही नहीं। तुमको इस फल के रहस्य का पता नहीं है। इसी कारण इसे एक तुच्छ घटना समझ रहे हो। वह रहस्य मैं तुम को वता रहा हूँ।

"यह आम्र-उपवन महर्षि संदीपन का है। त्रिभुवन के साध्यसिद्ध और ऋषियों में ऐसा कोई तपस्वी नहीं है, जो महर्षि संदीपन की बराबरी कर सके। इस आम्र-आश्रम को छोड़कर वे अन्यत्र कहीं नहीं जाते। उनकी तपस्या का क्या ही विचित्र आश्चर्य है कि प्रति दिन प्रातः काल इस वृक्ष पर केवल एक आम लगता है और संध्या तक वह पक कर तैयार हो जाता है। सान्ध्य सूर्य को अर्घ्य देकर मुनि इस वृक्ष के नीचे आकर खड़े होते हैं और वृक्ष की डाल से टूट कर वह फल मुनि की अंजली में गिर पड़ता है। आज अर्जुन और द्रौपदी के कर्म विपाक से मुनि की दिनचर्या में व्याघात हो गया। संध्या होने ही वाली है। आम न मिलने पर मुनि सब को भस्म कर देंगे।"

युधिष्ठिर ने रुंधे गले से कहा "भगवान् हम सदा से आप के शरणागत रहे हैं। आपने कितनी ही विपत्तियों से हमें उबारा है। आप ही इस संकट से हमारा उद्धार कीजिए।"

थोड़ी देर सोचकर कृष्ण भगवान् बोले, "इस पेड़ पर यह आम जहाँ और जैसे लगा हुआ था यदि फिर वैसे ही वहीं पर लग जाये, तो तुम लोग इस अनर्थ कृत्य के परिणाम से बच सकते हो।"

युधिष्ठिर बोले, "यह असम्भव दिखायी पड़ने वाली बात कैसे सम्भव होगी। हो सके तो आप ही इसका कोई उपाय बताइए।" श्रीकृष्ण बोले, "तुम पांचों भाई और द्रुपदनंदिनी यदि कपट छोड़कर यह बता दो कि तुम लोग अनुक्षण किस मनोरथ का चिन्तन करते रहते हो, तो यह वृन्तपातित आम्रफल पुनः अपने वृन्त पर लग सकता है।"

भय से त्रस्त पांडवों के निराशा मूर्च्छित मनों में केशव की बात सुनकर कुछ आशा की चेतना जगी। सबसे पहिले धर्मराज ने अपना अभीप्सित बताया:–"नारायण! मैं रात दिन यही सोचता हूँ कि प्रति दिन ब्राह्मणों को यथेच्छ भोजन कराऊँ। यज्ञ और जप में अपना समय बिताऊँ।"

युधिष्ठिर की बात सुनकर वह असमय का आम पृथ्वी से थोड़ा ऊंचा उठकर रुक गया। वृन्तच्युत आम्र फल को पुनः अपने वृन्त की ओर उठते और शून्य में निराधार रुके देखकर सबको आनन्द और विस्मय हुआ।

अब भगवान् ने भीमकर्मा वृकोदर की ओर देखा। "मैं सोचता रहता हूँ कि अपनी गदा के भीषण प्रहार से सब कौरवों और दुःशासन को मारकर उनका रक्त पान करूं और उसी रक्त से कृष्णा की १२ वर्ष से मुक्त वेणी को अपने हाथों से बाँधूं।" आम अपनी बिछुडी शाखा की ओर कुछ हाथ ऊपर की ओर उठकर फिर रुक गया।

अर्जुन बोले, "मैं अपने दिव्य बाणों से कर्ण का शिरश्छेदन करना चाहता हूँ।" आम्र ऊर्द्ध पथ से आगे बढकर फिर रुक गया।

नकुल बोले, "भगवन्! मैं तो पहले के समान युवराज रूप में रहकर धर्मराज की सेवा करना चाहता हूँ।" आम्रफल अपने पूर्व वृन्त की ओर थोड़ा ऊपर और उठ गया।

सहदेव बोले, "धर्मराज के सिंहासनारूढ़ होने पर मैं उनको चामर व्यजन करूं। नगर के गोधन की वृद्धि और पूजितलक्षण वृषभों का पालन करूं।" आम और ऊँचा उठ गया।

अब डाली और आम में बहुत कम अन्तर रह गया। द्रौपदी की एकान्त कामना के व्यक्त होते ही आम्रफल यथास्थान लग जायेगा। मुनिराज संदीपन के श्राप का डर अब नहीं रहेगा। सभी

1135 33

पांडव भगवान् कृष्ण की ओर भक्ति-कृतज्ञता एवं विस्मय से देख रहे थे। मधुसूदन ने हँसकर द्रौपदी की ओर देखा ।

द्रौपदी वोली, "जिनके कारण मैं वन-वन भटक रही हूँ, उन कौरवों को मारकर वीर पांडव हस्तिनापुर में राज्य करें। उन शत्रु नारियों को रोते कलपते देखकर मैं अपना कलेजा ठंडा करूँ। प्रभो! मेरी यही इच्छा है।"

द्रौपदी की वात समाप्त होते न होते वह ऊर्ध्वगति आम्रफल तेजी से नीचे की ओर गिरने लगा। आम को नीचे की ओर गिरते देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने भय एवं विस्मय से कहा, "प्रभो, यह क्या अनर्थ हुआ। आम नीचे की ओर क्यों खिसका?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "इस गुणवती द्रौपदी ने सव चौपट कर दिया। इसने सव झूठी वातें कहीं हैं। इसके कपट वचनों के कारण सत्तत्व के गठित इस पवित्र आम्रफल की ऊर्ध्वगति में वाधा पड़ी और इसका पतन हुआ।" फिर भी द्रौपदी सिर नीचा किये चुपचाप वैठी रही। भगवान् ने कहा, "पांचाली! निष्कपट हृदय से मन की वात कह दे। मैं सच्च कहता हूँ यह आम फिर अपनी जगह लग जायेगा और तुम सव एक वड़े सर्वनाश से वच जाओगे। सूर्य अस्ताचल में जाने वाले हैं। मुनि भी अव दिखायी पड़ने वाले हैं। कल्याणी लज्जा न कर। मन के कलुष को खोलकर वतला।"

किन्तु तव भी प्रस्तर प्रतिमा की तरह वह स्थिर वैठी रही। इस सर्वनाश की घड़ी के समय द्रौपदी के इस आचरण से क्रुद्ध हो धनंजय ने एक दिव्य शरसंधान कर उसकी ओर आग्नेय नेत्रों से देखा। वेतस लता की तरह काँपती हुई द्रौपदी वोली, "हे अन्तर्यामी! आप सवके मन की वात जानते हैं। मेरे स्वयंवर के समय यज्ञ में जव वीर कर्ण आया था, तव उसके सौन्दर्य और शौर्य को देखकर मैंने सोचा था कि यदि यह भी कुन्ती का पुत्र होता, तो इसको मिलाकर मेरे कुल छः पति हो जाते। वह वात मैं आज तक भी न भूल सकी।" कहकर द्रौपदी रोती हुई भगवान के चरणों पर गिरकर मूर्च्छित हो गयी। आम अपनी जगह पर जा लगा। पांडवों के मनों में उसके प्रति तीव्र घृणा पैदा हुई। भीम गदा उठाकर वोला, "इतने दिनों वाद नारी का सत्य रूप सामने आया है।"

भगवान कृष्ण ने भीम को वारण करते हुए कहा, "वृकोदर! इस में कृष्णा का कोई अपराध नहीं है। यह एक रहस्य है कि ऐसा इसने क्यों सोचा, वह रहस्य मैं आज रात तुमको सुनाऊँगा।"

*

अन्तर महाविद्यालय नाट्य प्रतियोगिता समाप्त

भारतीय विद्या भवन के कलाकेन्द्र द्वारा आयोजित १२ वीं अन्तर महाविद्यालय नाट्य प्रतियोगिता गत माह समाप्त हो गई। इस वर्ष २० महाविद्यालयों द्वारा १२ भाषाओं में करीब ६५ नाटक प्रस्तुत किये गये।

अपने एक वक्तव्य में भारतीय विद्या भवन की उपाध्यक्षा तथा कलाकेन्द्र की अध्यक्षा श्रीमती लीलावती मुन्शी ने कहा कि विजयी पक्ष को ही नहीं अपितु मैं उन सभी को हृदय से बधाई देती हूँ जिन्होंने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। १२ वर्ष पूर्व यह प्रतियोगिता केवल चार भाषाओं में शुरू हुई थी। इस वर्ष १२ भाषाओं में नाटक प्रस्तुत किये गये। क्या इस प्रकार हम राष्ट्रीय संघटनात्मक प्रवृत्ती को बल देने में सहायक नहीं हो रहे हैं।

यह अन्तर महाविद्यालय नाट्य प्रतियोगिता कितने ही अव्यवसायिक कलाकारों को प्रकाश में लाने में सफल हुई है। हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि आज अव्यवसायिक नाट्य क्षेत्र में कार्य करनेवाले कितने ही कलाकार इसी प्रतियोगिता की खोज हैं। हर्ष का विषय है कि नाटकों का सर्वांगीण स्तर भी सुधरता जा रहा है।

मैं एक कलाकार-रंगमंच की स्थामना के पक्ष में हूँ और यह विचार मेरे मस्तिष्क में कभी से गूँज रहा है। इस कार्य में सभी के सहयोग की अपेक्षा है। ऐसे कार्य के लिए भवन हर प्रकार की सुविधा देने के लिए तैयार है।

मैं तो यह भी चाहूँगी कि आप आयें और अपने अनुभवों तथा कठिनाइयों पर विचार विमर्श करें। साथ ही अपने सुझावों को भी हमारे सम्मुख रखें ताकि आगामी वर्ष इस प्रतियोगिता को हम और भी सफल बना सकें।

एक बात मैं आपसे और कहना चाहूँगी। इस वर्ष भारतीय विद्या भवन दिसम्बर माह में अपना रजत जयंती समारोह मनाने जा रहा है। मैं पूर्ण आशा रखती हूँ कि इस समारोह को सफल बनाने में आप सब भी पीछे नहीं रहेंगे। जो इस शुभ कार्य में सहायता की रुचि रखते हों, उनका हमारे यहाँ सदा स्वागत है।

एक बार मैं पुनः आप सब को इस प्रतियोगिता में सहयोग देने के लिए हृदय से धन्यवाद देती हूँ। प्रतिवर्ष कलाकेन्द्र के इस रंगमंच पर हम नये-पुराने कलाकारों को देखते हैं। दिनप्रतिदिन कलाकारों की कला में निखार आता जा रहा है ऐसा भी मैं अनुभव करती हूँ। देखा जाय तो इस प्रतियोगिता ने एक युवक-समारोह का रूप धारण कर लिया है। 'ट्राफी डे' के अवसर पर तो अध्यक्ष महोदय ने इसे 'ओलम्पिक आफ ड्रामाज' की संज्ञा दे दी थी। इस प्रकार विभिन्न कालेजों के विद्यार्थी एक स्थान पर मिल कर एक दूसरे के सहयोग, सद्भावना एवं सद्विचार से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

इस वर्ष खालसा कालेज द्वारा प्रस्तुत कन्नड़ भाषा का नाटक 'हृदय डेगुल' को [illegible] [illegible] (कलाविजयोपहार)

13533

जीतने का श्रेय प्राप्त हुआ।

अन्य परिणाम इस प्रकार रहे:

हिन्दी—

जयहिन्द कालेज, 'और दिया बुझ गया।'

व्यक्तिगत पुरस्कार—

प्रथम-कुमारी लाजवन्ती कृपलानी (जयहिन्द कालेज), द्वितीय–श्री रणवीर सिंह चौहान (जयहिन्द कालेज), तृतीय-श्री अमृत पटेल (खालसा कालेज)

गुजराती––

वी. जे. टेकनिकल इन्स्टीटचूट–– "वगड़ियो वगड़्यो।"

व्यक्तिगत पुरस्कार –

प्रथम–श्री अमृत पटेल (खालसा कालेज), द्वितीय–श्री प्रफुल्ल पाध्ये (वी. जे. टी. इन्स्टीटचूट), तृतीय–श्री कालिदास लिलानी (वी. जे. टी. इन्स्टीटचूट)

मराठी –

सिद्धार्थ कालेज आफ लॉ–'पांगुल गाडा'

व्यक्तिगत पुरस्कार–

प्रथम–कु. नीना नाडकर्णी (सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाईड आर्ट्स), द्वितीय– श्री अम्बाये (भवन्स कालेज), तृतीय–कु. ललन पैंगनकर (सिद्धार्थ कालेज ऑफ लॉ)

अंग्रेजी–

सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाइड आर्ट्स : 'रनएराउण्ड'

व्यक्तिगत पुरस्कार–

प्रथम–श्री सलीम पटेल (सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाईड आर्ट्स), द्वितीय– कु. सुनीता बक्सी (सर जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाइड आर्ट्स), तृतीय–मौरिश पिन्टो (सिद्धार्थ कालेज आफ कामर्स एण्ड इकानामिक्स)

संस्कृत –

खालसा कालेज–मृच्छकटिकम्

व्यक्तिगत प्रथम पुरस्कार –

श्री बाल घाटे (खालसा कालेज)।

सिन्धी –

जयहिन्द कालेज–'शालचोर अचान'

व्यक्तिगत प्रथम पुरस्कार –

श्री मोहन बेलानी (जयहिन्द कालेज)।

पंजाबी—

खालसा कालेज—"सेठ आत्माराम एण्ड को॰"

कोकणी—

सेठ जी. एस. मेडिकल कालेज— 'अवई'।

बंगाली—

वी. जे. टेकनिकल इन्स्टीट्चूट–'अतथ्या'

तमिल––

वी. जे. टी. इन्स्टीटचूट– 'निनैत्तपडी नदान्दल'।

मलयालम—

सिद्धार्थ कालेज आफ आर्ट्स—'मरु मरुन्नुगल'।

कन्नड—

खालसा कालेज–'हृदय डेगुला'।

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन के लिए बम्बई से प्रकाशित व मुद्रित तथा एसोसिएटेड एडवर्टाइजर्स एण्ड प्रिन्टर्स, ताड़देव, बम्बई ३४ में मुद्रित।

Compiled
[illegible]-2000